श्रीकृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्

!! भागवतकल्पद्रुम !!
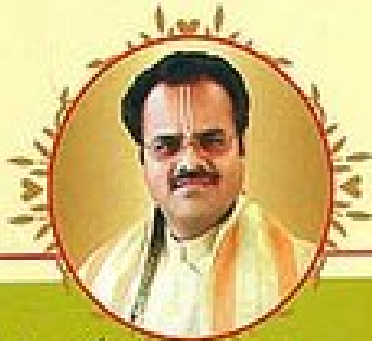
प्रवक्ता- डॉ. श्यामसुन्दर पाराशर शास्त्री
"श्रीधाम वृन्दावन"

भागवतकल्पद्रुम

भागवतमहामहोपाध्याय विद्यावाचस्पति

डॉ. श्रीश्यामसुन्दरपाराशर 'शास्त्री' जी

(श्रीधाम वृन्दावन)

के दिव्य प्रवचनों का भव्य लिपिबद्ध स्वरूप

* * *

विशेष आकर्षण

श्रीकृष्णलीला व्रजभाषा में

* * *

श्रीश्याम प्रेम संस्थान (वृन्दावन)

प्रकाशक : श्रीश्याम प्रेम संस्थान
334ए, चैतन्यविहार फेस - 1, वृन्दावन
उत्तरप्रदेश - 281121 (भारत)
दूरभाष : 09837026101, 9760220174
09754727722, 09457486809
Website: www.ssparashar.org
Email: ssparasharji@gmail.com
Facebook: shyamsundar.parashar

प्रथम संस्करण : मात्र 3000 प्रतियाँ
द्वितीय संस्करण : मात्र 3000 प्रतियाँ
(शरदपूर्णिमा, वि.सं. 2072)

पुनः प्रकाशनार्थ सहयोग : मात्र तीन सौ रुपये (300/-)

मुद्रक : नव ज्योति प्रेस
पंचवटी, मसानी, मथुरा

● खण्डेलवाल एण्ड सन्स
अठखम्बा बाज़ार, वृन्दावन, जिला मथुरा,
उत्तरप्रदेश-281121
दूरभाष : 0565-2443101

● श्री ठाकुर प्रसाद पुस्तक भण्डार
कचौड़ी गली, वाराणसी,
उत्तरप्रदेश - 221001
दूरभाष : 0542-2392543

卐 卐

प्रकाशिका

॥ श्रीराम ॥

॥ श्रीमते रामानन्दाचार्याय नमः ॥

स्वसुखनिभृतचेतास्तद्व्युदस्तान्यभावोऽप्यजितरुचिरलीलाकृष्टसारस्तदीयम् ।
व्यतनुत कृपया यस्तत्त्वदीपं पुराणं तमखिलवृजिनघ्नं व्याससूनुं नतोऽस्मि ॥

उन परमहंसशिरोमणि यतीन्द्र भगवान् श्रीशुकदेवमहाप्रभु के श्रीचरणारविन्द में हम अपनी प्रणति निवेदित करते हैं, जिन्होंने श्रोताप्रवर धर्मचक्रवर्ती महाराज श्रीपरीक्षितजी को निमित्त बनाकर स्वात्मस्वरूप का बोध करवाने वाले अत्यन्त गोपनीय-रहस्यात्मक सर्ववेदान्तसारसर्वस्व श्रीमद्भागवत का प्रकाशन किया। उन्हीं की कृपा से विद्वज्जन श्रीमद्भागवत-विषयक चिन्तन करने में समर्थ होते हैं।

सम्प्रतिकाल में **'कलेर्दोषबहुत्वाच्च पुराणार्कोऽधुनोदितः'** कलियुग में दोषों की अधिकता होने से अन्यान्य साधनों के सफल नहीं होने की दशा में पुराणरूपी सूर्य श्रीभगवान् के द्वारा प्रकट किया गया है। पद्मपुराणोक्त माहात्म्य में बताया गया है कि जब उद्धवजी ने भगवान् से प्रार्थना की कि 'आप तो पृथ्वीलोक को छोड़कर जा रहे हैं। आपके भक्त कैसे जीवित रहेंगे?' तो श्रीभगवान् ने उद्धवजी की इस बात पर गौर किया और मनन करके अपना तेज श्रीमद्भागवत में आसीन कर दिया -

स्वकीयं यद्भवत्तेजः तच्च भागवतेऽदधात् (भागवत माहात्म्य)

इसलिए इस शास्त्र की सर्वाधिक महिमा लोकप्रसिद्ध है। शब्दब्रह्म के द्वारा ही परब्रह्म की अभिव्यक्ति सम्भव है। उपरोक्त सिद्धान्त से ही यह सिद्ध व पुष्ट होता है कि श्रीमद्भागवत परिपूर्णतम-ब्रह्म श्रीकृष्णचन्द्रजी का अभिव्यंजक संस्थान है। समस्त उपनिषदों के सारभूत तत्त्वज्ञान से संयुक्त यह ग्रन्थ भगवच्चरित्रों के तथा भगवान् के लाडले भागवतजनों के चरित्रों से परिपूर्ण है। किसी लौकिक विषय की पुनरावृत्ति व्यक्ति को नीरस बनाने में सक्षम है। किन्तु, श्रीमद्भागवत की पुनरावृत्ति जीव को नित्यप्रति नवीन भाव व रस का अनुभव करवाती है - **'स्वादु स्वादु पदे पदे'**। इस विश्व में ऐसा कोई विषय नहीं है, जिसका स्पर्श श्रीमद्भागवत में न किया गया हो। जीव को अपने ब्रह्मत्व का बोध करवाने वाले इस ग्रन्थ की श्रेष्ठता को सिद्ध करने के लिए इसकी तुलना वैष्णवकुलशिरोमणि भगवान् शङ्कर से की गयी है -

वैष्णवानां यथा शम्भुः पुराणानामिदं तथा (भागवत 12/13/16)

इसके अतिरिक्त पद्मपुराण, स्कन्दपुराण, भविष्यपुराण, आदि में भी इस ग्रन्थ की महिमा द्रष्टव्य है। भक्तकुलगुरु श्रीनाभाजी ने भी **'साधन साध्य सत्रह पुरान फलरूपी श्रीभागवत'** (भक्तमाल १३) कहकर इसकी महिमा बता दी है। श्रीमद्भागवत समाधिभाषा है व वेदों के समकक्ष ही परोक्षवादी है। इसके तात्पर्य को समझाने के लिए श्रीधर, वंशीधर, वल्लभाचार्य, विजयध्वजतीर्थ, जीवगोस्वामी, वीरराघवाचार्य, भगवत्प्रसादाचार्य, आदि आचार्यों ने दिव्य-टीकाग्रन्थों का प्रणयन किया। किन्तु,

मन्दाः सुमन्दमतयो मन्दभाग्या ह्युपद्रुताः (भागवत 1/1/10)

卐 卐
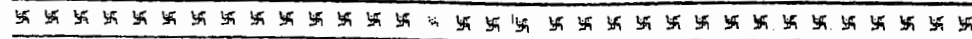
उपरोक्त सूत्रानुसार प्राय: हम सभी की बुद्धि कालवश कुण्ठित होती जा रही है। एतावता, किसी ऐसे मार्ग की आवश्यकता प्रतीत होती है कि श्रीमद्भागवत में जीव का प्रवेश सरल व प्रामाणिक रूप से हो सके। तो श्रीमद्भागवत का जैसा-जैसा तात्पर्य हमने हमारे पूर्वाचार्यो से समझा, वैसा-वैसा ही '**भागवत-कल्पद्रुम**' नामक इस प्रबन्ध के रूप में आपके करकमलों में निवेदित है। यदि मूल श्रीमद्भागवत के साथ इस ग्रन्थ का आश्रय मुमुक्षु करेंगें, तो श्रीमद्भागवत में प्रवेश सम्भव है - ऐसा हमारा विश्वास है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में यह बारम्बार प्रयास किया गया है कि श्रीमद्भागवत का मूलार्थ तथा विभिन्न आचार्यों के दिव्य-भाव सरल व सरस भाषा में सुरक्षित रहें। हमारी जिस कथा-वाचन की शैली को आप श्रोता-महाभागों ने बहुत भावपूर्वक सराहा है, उसी शैली में इस प्रबन्ध का निर्माण हुआ है।

कुछ वर्ष पूर्व हरिद्वार में हमने एक बार श्रीमद्भागवत की कथा सुनाई थी। उसी कथा की रिकॉर्डिंग को हमारे कई श्रोताओं के द्वारा बहुत परिश्रमपूर्वक यथारूप लिपिबद्ध किया गया। उन सभी से प्राप्त प्रतियों के द्वारा बहुत सहयोग मिला, एतावता वे सब बहुत साधुवाद के पात्र हैं। पुन: हमारे कई श्रोता-अनुयायियों ने इस ग्रन्थ का परिष्कार करने में सहयोग किया। हमारे परमस्नेहभाजन पण्डित श्रीरामनारायणजी गर्ग (दमोह, मध्यप्रदेश) द्वारा प्रयत्नपूर्वक बनायी गयी प्रति के विषयवस्तु का सर्वाधिक उपयोग प्रस्तुत पुस्तक में किया गया है। साथ ही, हमारे परमकृपापात्र बालक अंकुर नागपाल (दिल्ली) ने पुस्तक का बहुविध परिष्कार करके इसे एक स्वस्थ व विद्वद्भोग्य स्वरूप देने में पर्याप्त परिश्रम किया। एतदर्थ दोनों महाभागों के लिये हमारा बहुत साधुवाद एवं मङ्गलकामना है। पं. श्रीराघवेन्द्रपाराशर शास्त्री, पं. श्रीराजेश पचौरी, आचार्य संतोष गौतम, धीरेन्द्र पाठक, पं. श्रीशारदाप्रसाद त्रिपाठी (दिल्ली), आदि महाभागों के द्वारा विशेषरूप से इसमें सहयोग किया गया। उपरोक्त सभी महाभाग हमारे स्नेह व साधुवाद के विशेषपात्र हैं।

विभिन्न सम्प्रदायों के आचार्यों ने इसे अपना शुभाशीष प्रदान किया, इससे इस ग्रन्थ की उपादेयता में विशेष वृद्धि हुई। सभी आचार्यो के श्रीचरणारविन्द में हमारी प्रणति निवेदित है, आप सब महाभागों ने हमें व हमारे ग्रन्थ को कृपापूर्वक कृतार्थ किया है। इसके अतिरिक्त, जो-जो महाभाग इस ग्रन्थ के सफल प्रकाशनार्थ प्रत्यक्ष अथवा परोक्षरूप से कार्यरत हैं, उनका सर्वविध कल्याण हो - यही भावना है, श्रीयुगलसरकार के श्रीचरणों में प्रार्थना है। इति शम्॥

- डॉ. श्यामसुन्दर पाराशर (शास्त्री)
334, चैतन्य विहार फेस - 1, वृन्दावन,
जिला मथुरा, उत्तरप्रदेश - 281121

卐 卐
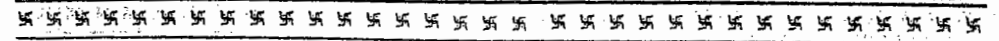
अनन्त श्री विभूषित ज्योतिष्पीठाधीश्वर एवं द्वारकाशारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शङ्कराचार्य

स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती

ज्योतिर्मठ	श्रीशारदापीठम्
तोटकाचार्य गुफा, चमोली गढ़वाल, उत्तराखण्ड	द्वारका, जामनगर, गुजरात
दूरभाष : 01389-222185	दूरभाष : 02892-235109

॥ श्रीत्रिपुरसुन्दर्यै नम:॥

स्वस्तिश्री श्यामसुन्दर पाराशर,

नारायणस्मरणपूर्वक शुभाशीर्वाद !!

अकारणकरुणावरुणालय सच्चिदानन्दघन अचिन्त्यशक्ति अखण्डानन्त शुद्ध-बुद्ध-मुक्त-नित्य-स्वभाव प्रत्यगेक-रसपरिपूर्ण सर्वेश्वर परमात्मा ने सकल-लोकोद्धार के लिए स्वयं अनेकों अवतार स्वीकार किए। उनमें से दो अवतार सुप्रसिद्ध हैं। सूर्यवंश में श्रीरामावतार एवं चन्द्रवंश में श्रीकृष्णावतार। महात्मा-भक्तजन इन दोनों को ही पूर्णावतार मानते हैं। इन दोनों अवतारों का आधिकारिक वर्णन श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण एवं महर्षि व्यासकृत श्रीमद्भागवत में प्राप्त होता है। अनेकों विद्वानों ने इन पूर्णावतारद्वय की लीलाओं का वर्णन किया है।

'हरि अनन्त हरिकथा अनन्ता'

'**विष्णोर्नुकं वीर्याणि प्रोवाचं य: पार्थिवानि विममे रजांसि**'

सम्पूर्ण भूमण्डल के मृत्तिकाकण गिने जा सकते हैं, किन्तु अनन्तगुण भगवान के गुणों को नहीं गिना जा सकता। ऐसे अनन्तगुण भगवान का चरित्र '**स्वमति परिणामावधिगृणन्-निरपवाद:**' इस न्याय से '**यथामति वाचं शौरि कथालापै:**' इत्युक्ति के अनुसार वर्णन करते हुए धन्य होते हैं। इसी परम्परा में श्यामसुन्दर पाराशर ने हिन्दी भाषा में संक्षिप्तरूप में जो 'भागवतकल्पद्रुम' नाम से भगवत्कथा का वर्णन किया है, वह निखिलजनोपकारक सर्वजगत्कल्याणकारक होगी - ऐसा हमारा विश्वास है।

श्रीकृष्णचन्द्र का स्मरण करते हुए भूरिश: शुभकामनाऐं प्रेषित हैं। भगवान् चन्द्रमौलीश्वर प्रकाश्यमान-ग्रन्थ को निर्विघ्नता प्रदान करें।।

स्वरूपानन्द सरस्वती

श्रीहरि:

श्रीगणेशाय नम:

पूर्वाम्नाय श्रीगोवर्द्धनमठ-पुरीपीठाधीश्वर श्रीमज्जगद्गुरु-शङ्कराचार्य-स्वामी निश्चलानन्दसरस्वती

श्रीगोवर्द्धनमठ-पुरी- ७५२००१, ओड़िशा, दूरभाष/फेक्स:- ०६७५२-२३१०९४

निज सचिव - स्वामीश्रीनिर्विकल्पानन्दसरस्वती, मो-९४३७०३१७१६,९४३७००४७९५

Tele-Fax 06752 - 231094, Ph.- 231716, Mobile No :- 9437031716, 9437004795

e-mail-contact@govardhanpeeth.org,website-www.govardhanpeeth.org

॥ श्रीहरि:॥

॥ श्रीगणेशाय नम:॥

सरल, सरस, शास्त्रसम्मत शैली में श्रीमद्भागवत की कथा श्रीश्यामसुन्दरपाराशरजी की अद्भुत विशेषता है। सन्तों के प्रति आस्थान्वित और स्वभावत: सुशील श्रीपाराशरजी अवश्य ही प्रशंसा के पात्र हैं।

इन्होंने स्वान्त:सुखाय एवं लोकोपकार की भावना से अपने भावों को लिपिबद्ध कर इसके प्रकाशन का निर्णय लिया है, जो कि सराहनीय है ।

निगमसारसर्वस्व श्रीमद्भागवत पारमहंस्य संहिता है। इसमें सगुण-निर्गुण सच्चिदानन्दस्वरूप सर्वेश्वर के स्वरूप, स्वभाव, प्रभावादि का अद्भुत शैली में चित्रण है। इसके विधिवत् अनुशीलन से भक्ति, विरक्ति तथा भगवत्प्रबोध सुनिश्चित है। इसमें सन्निहित ऐतिह्य तथ्य तथा आख्यायिका चित्ताकर्षक एवं सर्वहित में प्रयुक्त तथा विनियुक्त है। इसके विधिवत् श्रवण और पारायण से पापक्षय एवं सर्वविध उत्कर्ष सुनिश्चित है। श्रीहरि एवं गुरुकरुणा के अमोघ प्रभाव से यह प्रबन्ध सर्वसुखप्रद सिद्ध हो, ऐसी भावना है॥

निश्चलानन्दसरस्वती
(श्रीमज्जगद्गुरु-शङ्कराचार्य, पुरी)
फाल्गुन-शुक्ल त्रयोदशी २०६८
६.३.२०१२
श्रीवृन्दावनधाम

श्रीराधासर्वेश्वरी विजयते

दूरभाष : 01497-227821

फैक्स : 227921

मिति श्रावण शुक्ल 12

रविवार वि. सं. 2070

।।श्रीभगवन्निम्बार्काचार्याय नम:।।

श्रीमन्निखिलमहीमण्डलाचार्य, चक्रचूडामणि, सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र, द्वैताद्वैतप्रवर्तक, यतिपतिदिनेश, राजराजेन्द्रसमभ्यर्चितचरणकमल, भगवन्निम्बार्काचार्यपीठविराजित, अनन्तानन्त श्रीविभूषित

जगद्गुरु श्री निम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर

श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य श्री ''श्रीजी'' महाराज

अ.भा. श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ, श्रीनिम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद) पुष्कर क्षेत्र, किशनगढ़, जि.-अजमेर (राज.)-305815

देवर्षिप्रवर श्रीनारदजी से किसी मुमुक्षु जिज्ञासु ने अपनी जिज्ञासा अभिव्यक्त की, हे देवर्षे! **'कस्तरति कस्तरति मायाम्?'** अर्थात् जगन्नियन्ता सर्वान्तरात्मा सर्वेश्वर श्रीकृष्णभगवान् इस अघटघटना-पटीयसी त्रिगुणात्मिका माया से यह संसारासक्त प्राणी किस विधा से तर सकता है? प्रत्युत्तर में देवर्षिवर श्रीनारदजी ने जिज्ञासा का समाधान करते हुए अपना भाव प्रकट किया, **'य: संगांस्त्यजति, यो महानुभावं सेवते, निर्ममो भवति'** अर्थात् जो साधक दुस्संग का त्याग करता है तथा जागतिक ममता से रहित होता है और **'लोकेऽपि भगवद्गुणश्रवणकीर्तनात्'** अर्थात् इस जगत् में भी स्पष्ट दृश्यमान् है सर्वेश्वर श्रीराधामाधवभगवान् के उत्तमोत्तम दिव्य गुणगणों का श्रवण-कीर्तन करता है, **'स तरति स तरति स लोकांस्तारयति'** वह स्वयं इस भवार्णव से निश्चित्‌रूप से तर जाता है और सम्पर्क में आये उत्तमजनों को भी भगवदीय आराधना करवाकर तार देता है।

वस्तुत: ऐसे ही श्रेष्ठतम पुरुषों में विद्वद्वरेण्य पण्डितप्रवर श्रीश्यामसुन्दरपाराशर हैं, जिनकी मधुर कथा को श्रवण कर भगवज्जन परमपुलकित-मनस्क हो जाते हैं । श्रीधाम वृन्दावन में निवास के साथ श्रीमद्भागवत की कथासुधा का अभिवर्षण कर सभी श्रोताओं को पुलकित कर देते हैं।

सम्प्रति आपने अपनी कथा के मधुर प्रसंगों के **'श्रीभागवतकल्पद्रुम'** नामक ग्रन्थ के स्वरूप में प्रकाशित कर रहे हैं, जो निश्चय ही कथाप्रवक्ताओं को कथा करने में परमोपादेय होगा। हम आपके सर्वविध वर्चस्व एवं दीर्घायु के लिए श्रीसर्वेश्वरप्रभु एवं श्रीराधामाधवभगवान् से पुन: पुन: मंगलमयी-अभिकामना करते हैं॥

श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य

卐 卐

दूरभाष : 0542-2402230 (श्रीमठ), 2402006 (श्रीविहारम्)

।। सर्वे प्रपत्तेरधिकारिणो मतः।।

श्रीसम्प्रदायाचार्य जगद्गुरु रामानन्दाचार्यपदप्रतिष्ठित

स्वामी श्रीरामनरेशाचार्यजी महाराज

श्रीमठ, पंचगंगा घाट (वाराणसी) - 221001

अतीव प्रसन्नता का अवसर है कि डॉ. श्यामसुन्दरपाराशरशास्त्री के माध्यम से अनादि एवं परम मंगलमयी कथा श्रीमद्भागवत सप्ताहकथा के रूप में प्रकट हो रही है। निश्चितरूप से यह मुमुक्षुजनों एवं डॉ. पाराशर के परम सौभाग्य का विज्ञापन है। विमुक्ति साधक सम्पूर्ण ज्ञानों के मूल उत्स तथा प्रवर्तक वस्तुतः परमप्रभु ही है, तथापि उन्हीं की प्रेरणा एवं शक्ति से निरन्तर उनका ज्ञान तथा उनकी कथा विभिन्न उत्सों से प्रवाहित होते रहते हैं, जो महत्वपूर्ण एवं श्लाघनीय है।

डॉ. पाराशर सरस कथा प्रवाहक के साथ-साथ की मूल-मर्यादित तथा परम्परागत आत्मा के प्रशंस्य संरक्षक हैं। अन्यथा सम्पूर्ण संसार की परम चिन्ता का विषय प्रदूषण कथाक्षेत्र में भी प्रगाढ़ता के साथ स्थापित हो रहा है। परमप्रभु से प्रार्थना है कि डॉ. पाराशर तथा इनसे निःसृत कथागंगा को दीर्घजीवन-निरन्तरता तथा व्यापक मंगलदायकता प्रदान करे॥

।। जाति पाँति पूछे नहिं कोई। हरि को भजे सो हरि का होई।।

卐 卐

सर्वाम्नाय श्रीतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य धर्मचक्रवर्ती अनन्तश्री विभूषित स्वामी श्रीरामभद्राचार्यजी महाराज की शुभाशंसा

वसिष्ठपुत्रीपुलिने विहारिणं सीतासमेतं रघुवंशवर्धनम्।
श्रीराघवं चापधरं महामतिं रामं श्रिये लक्ष्मणलालिताङ्घ्रिकम्॥

श्रीमद्भागवताख्यानं कल्पद्रुम मुदारधीः।
देयोज्जनेभ्यो नितरां पुरुषार्थ चतुष्टयम्॥

श्यामसुन्दरनामायं पाराशरकुलोद्भवः।
व्याख्यद्भागवताख्यानं कल्पद्रुममनुत्तमम्॥

मनसैवमयादृष्टं सृष्टं पुस्तकमद्भुतम्।
कथाकलेवरं रम्यं वैष्णवानन्ददायकम्॥

पाराशर्यवचोऽमृतं विलसितं सच्छास्त्ररत्नाकरम्।
राधाकृष्णविहारवीचिविलसद्-प्रेमैकपाथोनिधिम्॥

नानावक्तृसुवक्त्रवाच्यवलितं टीकाकृतां धीधनम्।
श्रीमद्भागवतं भवाय भवतात् कल्पद्रुमो माद्यताम्॥

श्रीकृष्णलीलारसजागरुकं राधापदाम्भोजमरन्दजुष्टम्।
पुष्टं श्रिया वैष्णवमानवानां भूयान्नृणां भागवतं भवाय॥

पठन्तु गायन्तु भवन्तु हृष्टा नृत्यन्तु नन्दन्तु सुखं वसन्तु।
कल्पद्रुमाख्यानमिदं निषेव्य पाराशरेण ग्रथितं श्रमेण॥

संस्तौमि सानन्दमिदं हि दिव्यं व्याख्यानरत्नं गतपक्षपातम्।
पाराशरोक्तं किल रामभद्राचार्यो गुरुर्वैजगतां जनानाम॥

श्रीवृन्दावनस्थ मलूकपीठधीश्वर जगद्गुरु द्वाराचार्य अनन्तश्री विभूषित स्वामी श्रीराजेन्द्रदासदेवाचार्यजी 'भक्तमालीजी' महाराज की शुभाशंसा

॥ श्रीमते रामानन्दाचार्याय नमः ॥

पुराणसम्राट श्रीकृष्ण के वाङ्मयविग्रह श्रीमद्भागवतमहापुराण की आचार्यपरम्परा में आदि से अन्त तक श्रीमन्नारायण ही है। यह सिद्धान्त अन्तिम मंगलाचरण '**कस्मै येन विभसितो...**' इत्यादि के द्वारा कहा गया है। वस्तुतः मातृ-पितृ परम्परा से विशुद्ध सत्सम्प्रदाय परम्परा में दीक्षित सच्छिष्य के शुद्धान्तःकरण में भगवान के वाङ्मयविग्रह श्रीमद्भागवत का प्राकट्य तथा मुखचन्द्र से कथामृतरूप में निर्झरण होता है।

हमारे अतिशय स्नेहभाजन आदरणीय डॉ. श्रीश्यामसुन्दरपाराशरजी श्रीमद्भागवत, श्रीरामकथा, आदि के अधिकारिक, मर्मज्ञ, समर्थ, विश्वविश्रुत एवं अप्रतिम वक्ता हैं। आप मातृ-पितृ परम्परा से तो विशुद्ध विप्रकुलभूषण हैं ही, आपकी शिक्षा भी धर्म और सदाचार के मूर्तिमन्तस्वरूप वसिष्ठकल्प षडंगवेदविदुष् प्रातः स्मरणीय गुरुदेव पूज्य पं. श्रीराजवंशीद्विवेदीजी के चरणाश्रय में सम्पन्न हुई। इस नाते से आप हमारे गुरुभ्राता भी है। आपका दीक्षासंस्कार भी प्रेममूर्ति पंचरसाचार्य वैष्णवाचार्यचरण प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद श्रीमत्स्वामी श्रीरामहर्षणदासजी महाराज के द्वारा सम्पन्न हुआ। इस प्रकार आप भगवद्-भागवत-संत-सद्गुरु-कृपारससिक्त होने के कारण रससिद्ध वक्ता है।

आपकी कैसेट, आदि के द्वारा तो अबतक आस्तिक जिज्ञासु वर्ग लाभान्वित हो ही रहा था; पर अब भगवत्कृपा से आपका प्रवचन लिपिबद्ध होकर ग्रन्थाकाररूप में 'भागवत कल्पद्रुम' नाम से प्रकाशित होने जा रहा है। समस्त आस्तिक जगत् तो इससे लाभान्वित होगा ही, विशेष लाभ श्रीमद्भागवत के नवोदित वक्ताओं को मिलेगा। इस दिव्य ग्रन्थ के द्वारा हम सभी के हृदय में अहैतुकी-अप्रतिहता-भक्ति एवं अहैतुक अप्रतिहत ज्ञान-वैराग्य की प्रतिष्ठा हो - ऐसी प्रभु चरणों में प्रार्थना है। श्रीपाराशरजी सुदीर्घायुष्य सम्पन्न होकर सुदीर्घकाल तक समग्र जगत् को रसाप्लावित करते रहें। शुभं भूयात्॥

रमेश भाई ओझा

श्रीमद् भागवत श्रीकृष्ण परमात्मा का वाङ्मय स्वरूप है। भगवदीय जनों की रसतृषा का केवल संतोषण ही नहीं, अपितु उसका संपोषण भी करती है। '**वयं तु न पितृप्याम उत्तमश्लोकविक्रमे......**' में शौनकादिकों ने इसी बात की पुष्टि की है।

श्रद्धेय प्रिय डॉ. श्री श्यामसुन्दर जी पाराशर के श्रीमुख से कथाश्रवण करने का अवसर मिला। शास्त्र के प्रति निष्ठा, स्वाध्याय प्रवणता और कथन में प्रवीणता (प्राविण्य), संगीत की मधुरता और वक्तव्य की तरलता एवं स्वभाव की सरलता से कथा विद्वद्भोग्य और लोकभोग्य हो जाती है।

है तो यह गंगा, लेकिन कभी भागीरथा की भांति द्रुतगति से (सभास) और कभी कभी वृन्दावन को छूती है, तो यमुना की मंथर गति (व्यास) से बहती है। स्नान पान और दर्शन, तीनों भक्तहृदय श्रोताओं का रसमग्न और धन्य करते हैं।

यहा धारा अब जब 'श्रीमद्भागवत कल्पद्रुम' के नाम से ग्रन्थ रूप में प्रकट हो रही है, तो अनेकों के हृदय में बैठै हुये 'एक' श्यामसुन्दर खूब प्रसन्न होंगे।

मैं अपनी प्रसन्न्ता प्रकट करता हूँ और शुभाशंसा व्यक्त करता हूँ। मेरे प्रभु श्रीहरि सदैव अपनी दिव्य कृपा का वर्षा करते रहें।

सान्दीपनि विद्यानिकेतन महर्षि सान्दीपनि मार्ग रांघावाव पोरबन्दर 360 578 गुजरात भारत
फोन: 91-286 2221698 फैक्स 91-286 2222912 contactus@sandipani.org www.sandipani.org

डॉ. श्याम सुन्दर "शास्त्री"

गालव ऋषि की तपस्थली एवं संगीत सम्राट तानसेन जी की साधना भूमि ग्वालियर जिला मुख्यालय से 72 किमी दूर नगर भितरवार जहाँ माँ पार्वती नदी का कल-कल करता हुआ कलरव बरबस सभी के मन को मुग्ध कर देता है ऐसी पुण्यभूमि में पूज्य डॉ. श्री श्यामसुन्दर पाराशर जी का जन्म ज्येष्ठ की वट्अमावस्या वि. सं. 2024 तद्नुसार दिनांक 8.6.1967 को एक उत्तम ब्राह्मण कुल में हुआ। आपके पितामह सनाढ्य कुल भूषण पं. श्री जीवनलाल जी पाराशर ज्योतिष के महान विद्वान थे उनका आदर प्रत्येक प्राणी के मन में स्वाभाविक रूप से था। श्री शास्त्री जी के माता-पिता वैद्य श्री भगवानलाल जी पाराशर एवं माता श्रीमती विमला देवी जी अत्यंत धार्मिक, गृहस्थ, समाजसेवी हैं। माता-पिता ने जब बालक श्याम सुन्दर को बाल्यावस्था से ही भगवत कथा श्रवण तथा भगवत सेवा की रूचि से परिपूर्ण देखा तो इस बालक को वृन्दावन भेजने का निश्चय किया ताकि वैदिक संस्कारों से भली भाँति परिष्कृत होकर जन कल्याण कर सके।

वृन्दावन के मूर्धन्य विद्वान वेदमूर्ति पं. श्री राजवंशी जी द्विवेदी जी महाराज के चरणों में इस बालक को माता-पिता ने समर्पित कर दिया, जहाँ इस बालक के सम्पूर्ण वैदिक संस्कार करके श्री गुरूदेव ने इन्हें धर्मसम्राट स्वामी श्री करपात्री जी महाराज के द्वारा प्रतिष्ठापित श्री धर्म संघ संस्कृत विद्यालय वृन्दावन में प्रवेश दिया। इस विद्यालय में 7 वर्ष रहकर व्याकरणादि शास्त्रों का अध्ययन करके शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण की तथा "श्यामसुन्दर शास्त्री" नाम से विभूषित हुए।

तदुपरान्त वृन्दावन की रमणरेती में 25 वर्षों से अखण्ड वास करने वाले बरेली के भूतपूर्व सांसद एवं कुशल राजनीतिज्ञ श्री सेठ विशनचंद जी के सानिध्य में रहकर नित्य भगवान रूद्र का विविध पुष्पों से श्रृंगार एवं अभिषेक करते हुए निवास किया। इसी अवधि में श्री शास्त्री जी ने श्रीमद्भागवत एवं शास्त्रीय संगीत का विधिवत् अध्ययन किया।

एक बार रमणरेती के संतों ने मिलकर श्री संतदास जी महाराज के आश्रम में श्री शास्त्री जी को प्रथम बार श्रीमद्भागवत कथा हेतु व्यासपीठ पर आसीन किया उस समय शास्त्री जी की अवस्था मात्र 16 वर्ष की थी। शुक स्वरूप श्री शास्त्री जी के मुख से भागवत कथा श्रवण कर सभी महात्मा मुग्ध हो गये और आशीर्वाद स्वरूप एक श्लोक निर्मित करके स्वामी श्री केशवानंद सरस्वती जी ने प्रदान किया-

श्यामावामाकृतपदनतिः सुन्दरः श्यामपूर्वः

श्रीमद् भागवते महामुनिकृतेऽनुष्ठितो येन यत्नः।

शाब्दे शास्त्रे कृतपरिचयो गीत संगीत वाद्ये

सोऽयं प्राप्तः सदसि भवतां सद्कथां वस्तुमत्र।

श्री विशनचंद सेठ जी ने भी एक बार श्री शास्त्री जी से कथा श्रवण की कामना प्रगट की तो प्रतिदिन श्री सेठ जी के यहाँ भी कथा होने लगी। एक दिन सेठ जी के लघुभ्राता श्री त्रिलोक चंद सेठ जी वृन्दावन आये और उन्होंने जब अपने भाई के साथ बैठकर श्री शास्त्री जी के मुख से भागवत कथा का श्रवण किया तो मुग्ध होकर अपने बड़े भाई से बोले- "भैया जी! देखना किसी दिन अपने श्याम सुन्दर जी विश्वस्तर के व्यास बनेंगे।" श्री त्रिलोकचंद सेठ जी ज्वेलर्स होने के नाते हीरा स्वर्णादि की परख तो रखते ही हैं किन्तु संत विद्वानों की कृपा से उन्हें व्यासों की भी पारखी दृष्टि प्राप्त हुई; क्योंकि उनकी भविष्यवाणी कुछ ही समय में तब सिद्ध होती दिखाई पड़ी जब श्री शास्त्री को वे (सेठ जी) प्रथम बार अपने शहर बरेली में आनंद आश्रम लाये जहाँ श्री शास्त्री जी के प्रवचनों को श्रवण कर श्रोता समुदाय भक्तिसागर में निमग्न होकर नाच उठा और शनैः शनैः बरेली से ही उनकी वाणी का जादू भारत के अनेक राज्यों में व्याप्त होता चला गया। वर्तमान में भारत वर्ष का ऐसा कोई महापुरुष नहीं जो श्री शास्त्री जी की इस शैली और मधुरवाणी का प्रशंसक न हो। अनेक महानगरों में आपकी कथा बड़े विशाल श्रोता समुदाय के मध्य सम्पन्न हो चुकी है। आज मात्र 47 वर्ष की अवस्था में श्री शास्त्री जी ने श्रीमद्भागवत कथा के 800 पारायण सम्पन्न कर लिये है। अनेक स्थानों से विद्वानों द्वारा श्री शास्त्री जी को विविध उपाधियाँ भी प्राप्त हुई हैं। उत्तरकाशी में गंगा के पावन तट पर सम्पन्न हुई श्रीमद्भागवत सप्ताह में शिवानन्द आश्रम द्वारा आपको 'रसेश' की उपाधि से विभूषित किया गया किन्तु वे इन उपलब्धियों को प्रभु का दिया प्रसाद समझकर उन्हीं के चरणों का चमत्कार मानते हैं, इसीलिये उनका जीवन बड़ा ही सरल और सहज है।

श्री शास्त्री जी बाल्यावस्था से ही श्रीधाम वृन्दावन में आकर रहे तथा श्री बालकृष्ण प्रभु की वाङ्गमयस्वरूप श्रीमद्भागवत का प्रवचन भी किया; किन्तु उनके अर्न्तमन में मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्री राम के प्रति जो आकर्षण था, वही उन्हें अयोध्या लाया और प्रेममूर्ति पंचरसाचार्य श्री स्वामी रामहर्षण दास जी महाराज के द्वारा उन्होंने वैष्णवी दीक्षा ग्रहण की तथा अपनी जन्म भूमि भितरवार में माँ पार्वती के पावन तट

पर श्री रामजानकी जी का सुन्दर मन्दिर निर्माण कराया जहां प्राय: प्रतिवर्ष एक विशाल धार्मिक आयोजन किया जाता है।

भारत के परम विरक्त संत विद्वानों का श्री शास्त्री जी को विशेष अनुग्रह प्राप्त है। परम वीतराग संत स्वामी श्री विष्णु आश्रम जी महाराज (शुक्रताल) श्री महन्त नृत्यगोपालदास जी महाराज (अयोध्या), शंकराचार्य श्री स्वामी माधवाश्रम जी महाराज, श्री सीताराम शरण किलाधीश जी (अयोध्या), श्री रामकिंकर जी महाराज स्वामी विद्यानंद गिरि जी महाराज, पुरी शंकराचार्य श्री निश्चलानंद सरस्वतीजी, देश के महान गायक पं. जसराज जी, श्रीमन् नारायणदास (मामाजी) एवं विश्व संत पूज्य मोरारी बापू जी तथा श्री रमेश भाई जी (भाई श्री) आदि अनेक महापुरुषों ने आपकी कथा की भूरि-भूरि प्रशंसा की एवं आशीर्वाद प्रदान किया। श्री शास्त्री जी इसी आशीष को अपने जीवन का कवच मानते हैं।

आपने अपने देश के अलावा विदेशों में भी धर्म ध्वजा को लहराया। गत वर्षों में थाईलैण्ड साउथ अमेरिका तथा हॉलैण्ड में आपकी वाणी से हिन्दू समाज लाभान्वित हुआ एवं कथा की भरपूर प्रशंसा की गई।

पूज्य श्री शास्त्री जी को तीर्थराज प्रयाग में संतों के द्वारा 'विद्वन्मार्तण्ड'' उपाधि तथा दिल्ली धर्म सङ्घ में ''भागवत महामहोपाध्याय'' की उपाधि से सम्मानित किया गया है। श्री शास्त्री द्वारा भगवत कथा की भागीरथी में डूबकर गाये हुए भजनों का श्रवण कर श्रोतागण देह-गेह का विस्मरण कर भक्ति रस धारा में निमग्न हो नाच उठते हैं, उन भक्तों की विशेष मांग पर अपने भजनों का संकलन कर (पुस्तकबद्ध करके) छापने का दायित्व श्री शास्त्री जी ने मुझे प्रदान किया जो मेरा सौभाग्य है। आज ''भजनामृत'' के रूप में वही संकलन आपके हाथ में है। मुझे आशा है इस भजन-अमृत का पान कर आप अपने जीवन का भव ताप दूर करेंगे और भगवत चरणों से जुड़कर भागवती यात्रा मंगलमयी बनावेंगे।

संपादक

कथा-सङ्केत

पद्मपुराणोक्त माहात्म्य

माहात्म्य का उपक्रम, नारदजी की वृन्दावन में भक्ति से भेंट, भक्ति का दु:ख दूर करने के लिये नारदजी का उद्यम, भक्ति के कष्ट की निवृत्ति

गोकर्णोपाख्यान का प्रारम्भ, आत्मदेव ब्राह्मण का चरित्र, धुन्धुकारी को प्रेतयोनि की प्राप्ति एवं उससे उद्धार, श्रीभागवत सप्ताहयज्ञ की विधि

प्रथमस्कन्ध (अधिकारी)

ग्रन्थ का उपक्रम, श्रीसूतजी से शौनकादि ऋषियों का प्रश्न, भगवत्कथा एवं भगवद्भक्ति का माहात्म्य, भगवान् के अवतारों का वर्णन

महर्षि व्यास का असन्तोष, भगवान् के यश-कीर्तन की महिमा और देवर्षि नारदजी का पूर्वचरित्र, शुकदेवजी का चरित्र

अश्वत्थामा द्वारा द्रौपदी के पुत्रों का मारा जाना, अर्जुन द्वारा अश्वत्थामा का मानमर्दन, गर्भस्थ परीक्षित की रक्षा, कुन्ती द्वारा श्रीभगवान् की स्तुति

युधिष्ठिर का शोक, भीष्मकृत भगवत्स्तुति, परीक्षित का जन्म, श्रीकृष्ण का द्वारकागमन, श्रीकृष्ण एवं पाण्डवों का परमधामगमन

राजा परीक्षित का चरित्र, परीक्षित द्वारा कलियुग का दमन, श्रृंगी द्वारा परीक्षित को शाप, परीक्षित का शुकताल में आगमन, अनेक संतों व श्रीशुकदेवजी महाराज का आगमन

द्वितीयस्कन्ध (साधन)

श्रीशुकदेवजी द्वारा उपदेश प्रारम्भ, ध्यानविधि एवं विराट्रूप का वर्णन, क्रममुक्ति व सद्योमुक्ति का व्याख्यान, कामनाभेद से देवोपासना, श्रीशुकदेवजी महाराज कृत मंगलाचरण

सृष्टि वर्णन, ब्रह्माजी को श्रीभगवान् द्वारा चतु:श्लोकी का उपदेश, भागवत के दस लक्षणों का वर्णन

तृतीय स्कन्ध (सर्ग)

विदुरजी और उद्धवजी की भेंट, विदुरजी का मैत्रेयजी के पास जाना, मैत्रेयजी द्वारा सृष्टिक्रम एवं श्रीवराहावतार का वर्णन

कर्दमजी की तपस्या और भगवान् द्वारा वरदान, देवहूति-कर्दम विवाह, श्रीकपिलदेवजी का अवतार, कपिल-अष्टाध्यायी का उपदेश

चतुर्थ स्कन्ध (विसर्ग)

स्वायम्भुव मनु की कन्याओं के वंश का वर्णन, अत्रि-चरित्र, शिवजी और दक्ष का मनोमालिन्य, दक्ष-यज्ञ का विध्वंस

ध्रुव-चरित्र, ध्रुवजी का वनगमन, भगवान् का दर्शन एवं वर प्राप्ति, ध्रुव का यक्षों के साथ युद्ध, मनुजी द्वारा समझाने पर युद्ध-विराम कुबेरजी द्वारा ध्रुव को वरदान एवं ध्रुवजी का परमधाम गमन

राजा अङ्ग का चरित्र, वेन की कथा, श्रीपृथुजी महाराज का आविर्भाव, पृथुजी द्वारा पृथ्वी का दोहन एवं शत-अश्वमेध यज्ञ करना, पृथुजी को भगवान् विष्णु का दर्शन एवं वरप्राप्ति, पृथुजी को सनकादि का उपदेश

राजा प्राचीनबर्हि का चरित्र, नारदजी द्वारा पुरञ्जनोपाख्यान का प्रवचन, पुरञ्जनोपाख्यान का तात्पर्य, प्रचेताओं को नारदजी का उपदेश

पंचम स्कन्ध (स्थान)

प्रियव्रत-चरित्र, भगवान् ऋषभदेवजी की कथा

महाराज भरत का चरित्र, जडभरत-रहूगण की भेंट एवं संवाद, रहूगण के सभी प्रश्नों का श्रीभरतजी के द्वारा निवारण

विभिन्न वर्षो व द्वीपों का वर्णन, भारतभूमि की महिमा, श्रीशुकदेवजी द्वारा नरकों का वर्णन

षष्ठ स्कन्ध (पोषण)

अजामिलोपाख्यान का प्रारम्भ, विष्णुदूतों द्वारा भागवतधर्म का निरूपण, अजामिल का परमधामगमन, यम-यमदूतों का संवाद

श्रीनारदजी के उपदेश से दक्षपुत्रों की विरक्ति, नारदजी को दक्ष का शाप, देवताओं द्वारा विश्वरूप को देवगुरूपद पर अभिषिक्त करना, नारायणकवच का उपदेश, वृत्रासुर-इन्द्र युद्ध

सप्तम स्कन्ध (ऊर्ति)

नारद-युधिष्ठिर संवाद, हिरण्यकशिपु की तपस्या एवं वरप्राप्ति, प्रह्लादजी का चरित्र एवं उनके द्वारा दैत्य-बालकों को उपदेश

हिरण्यकशिपु द्वारा प्रह्लादजी को प्रताड़ित करना, नृसिंहभगवान् का प्रादुर्भाव, हिरण्यकशिपु का उद्धार, देवताओं एवं प्रह्लादजी द्वारा श्रीनृसिंहभगवान् की स्तुति, श्रीनारदजी द्वारा युधिष्ठिरजी को वर्णाश्रमधर्म का उपदेश

अष्टम स्कन्ध (मन्वन्तर)

मन्वन्तरों का वर्णन, ग्राह के द्वारा गजेन्द्र का पकड़ा जाना, गजेन्द्र के द्वारा श्रीभगवान् की स्तुति और उसका संकटमुक्त होना, गज और ग्राह का पूर्वचरित्र तथा उनका उद्धार

दुर्वासाजी द्वारा इन्द्र को शाप, देवताओं का श्रीहीन होना, देवताओं का भगवान् के पास जाना, समुद्रमन्थन का वर्णन, मोहिनी भगवान् का अवतार

देवासुर-संग्राम, बलि की स्वर्ग पर विजय, वामनावतार एवं मत्स्यावतार की कथा

नवम स्कन्ध (ईशानु)

वैवस्वत मनु के पुत्रों का चरित्र, च्यवन एवं सुकन्या का चरित्र, नाभाग-अम्बरीष-सगर-भगीरथ-आदि अन्य सूर्यवंशियों का चरित्र, गंगावतरण की कथा, चन्द्रवंश का वर्णन

दशम स्कन्ध (निरोध)

वसुदेव-देवकी का चरित्र, देवताओं द्वारा गर्भस्तुति

श्रीभगवान् का प्रादुर्भाव, देवकी-वसुदेव के द्वारा भगवान् की स्तुति वसुदेवजी द्वारा भगवान् को व्रज में छोड़कर आना

गोकुल में श्रीभगवान् का जन्ममहोत्सव, नन्द-वसुदेव की भेंट, पूतना उद्धार, शकटभञ्जन, तृणावर्त उद्धार, श्रीभगवान् का नामकरण

श्रीभगवान् की बालक्रीडाएँ, ऊखल-बन्धन लीला, यमलार्जुन-उद्धार, श्रीभगवान् का गोकुल से श्रीवृन्दावन पधारना, वत्स-बक-अघासुर-उद्धार

श्रीभगवान् द्वारा ब्रह्माजी का मोहभंग, ब्रह्माजी द्वारा भगवान् की स्तुति, धेनुकासुर का उद्धार, कालिय-मर्दन-लीला, श्रीभगवान् द्वारा दावाग्निपान, वर्षा व शरदऋतु का वर्णन, वेणुगीत, चीरहरण

श्रीभगवान् द्वारा इन्द्रयज्ञ-निवारण, गोवर्धन-धारण-लीला, नन्दबाबा से गोपों की श्रीकृष्ण के प्रभाव के विषय में चर्चा, इन्द्र व कामधेनु द्वारा श्रीकृष्ण का 'गोविन्द' पद पर अभिषेक, श्रीभगवान् द्वारा वरुणलोक से नन्दबाबा को छुड़ाकर लाना

श्रीशुकदेवजी द्वारा रासलीला का वर्णन, श्रीकृष्ण के विरह में गोपियों की दशा, गोपीगीत, श्रीभगवान् द्वारा प्रकट होकर गोपियों को सान्तवना देना, महारास का वर्णन, सुदर्शन-शंखचूड का उद्धार, युगलगीत

अरिष्टासुर-उद्धार, केशी का उद्धार, श्रीअक्रूरजी की व्रजयात्रा, श्रीकृष्ण-बलराम का मथुरागमन, कुब्जाप्रसंग, धनुषभंग, श्रीभगवान् का अखाड़े में प्रवेश, चाणूर-मुष्टिक-कंस, आदि का उद्धार

श्रीकृष्ण-बलराम का यज्ञोपवीत एवं गुरुकुल-प्रवेश, उद्धवजी की व्रजयात्रा, उद्धव-गोपी संवाद, भ्रमरगीत, उद्धवजी का मथुरा लौटना, भगवान् का कुब्जा व अक्रूरजी के घर जाना

जरासन्ध से युद्ध, द्वारकापुरी का निर्माण, कालयवन-उद्धार, श्रीकृष्ण के पास रुक्मिणीजी का सन्देश लेकर ब्राह्मण का आना, रुक्मिणी-हरण, प्रद्युम्न का जन्म, शम्बरासुर-वध, स्यमन्तकमणि-कथा, भगवान् के अन्यान्य विवाह, भौमासुर-वध, श्रीकृष्ण-रुक्मिणी संवाद

अनिरुद्ध के विवाह में रुक्मी का मारा जाना, ऊषा-अनिरुद्ध मिलन, श्रीकृष्ण-बाणासुर संग्राम, राजा नृग की कथा, श्रीबलरामजी की व्रजयात्रा, पौण्ड्रक-काशिराज-द्विविद, आदि का उद्धार, कौरवों पर दाऊजी का कोप तथा साम्ब का विवाह, देवर्षि नारदजी द्वारा भगवान् की नित्यचर्या देखना

श्रीकृष्ण के पास जरासंध के कैदी राजाओं का दूत आना, भगवान् का इन्द्रप्रस्थ पधारना, पाण्डवों द्वारा राजसूययज्ञ का आयोजन, जरासन्ध-उद्धार, जरासन्ध के बन्दी राजाओं द्वारा भगवान् की स्तुति, भगवान् की अग्रपूजा, शिशुपाल-उद्धार, सुदामा-चरित्र, कुरुक्षेत्र में भगवान् की गोप-गोपियों से भेंट

वसुदेवजी का यज्ञोत्सव, श्रीभगवान् द्वारा देवकीजी के छः पुत्रों को लौटा लाना, सुभद्राहरण, भगवान् द्वारा जनक और श्रुतदेव ब्राह्मण के घर एक-साथ जाना, वेदस्तुति, शिवजी का संकटमोचन, भृगुजी द्वारा त्रिदेवों की परीक्षा, भगवान् द्वारा मरे हुए ब्राह्मण-बालकों को वापस लाना

एकादश स्कन्ध (मुक्ति)

यदुवंश को ऋषियों का शाप, नारदजी द्वारा वसुदेवजी को नवयोगेश्वर संवाद सुनाना, देवताओं द्वारा श्रीभगवान् से स्वधाम पधारने हेतु प्रार्थना

श्रीभगवान् द्वारा उद्धवजी को अवधूतोपाख्यान का उपदेश, एकादशस्कन्ध के बहुविध विषयों का प्रतिपादन

द्वादश स्कन्ध (आश्रय)

यो द्वितीय संस्करणमा पृष्ठ १८ देखि ३३ सम्म गायब छन् । पृष्ठ संख्या बिग्रिएपनि केही पृष्ठ चैं प्रकाशन भएनछन् ।

*अक्लेश

॥ मङ्गल-प्रार्थना ॥

हरि: ॐ

नम: परमहंसास्वादितचरणकमलचिन्मकरन्दाय
भक्तजनमानसनिवासाय श्रीरामचन्द्राय ॥

ध्येयं सदा परिभवघ्नमभीष्टदोहं तीर्थास्पदं शिवविरिञ्चिनुतं शरण्यम् ।
भृत्यार्तिहं प्रणतपाल भवाब्धिपोतं वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ॥
त्यक्त्वा सुदुस्त्यजसुरेप्सितराज्यलक्ष्मीं धर्मिष्ठ आर्यवचसा यदगादरण्यम् ।
मायामृगं दयितयेप्सितमन्वधावद् वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ॥
वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभा-पीताम्बरादरुणबिम्बफलाधरोष्ठा: ।
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रा: कृष्णात्परं किमपि तत्त्वमहं न जाने ॥

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥
अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नम: ॥
सीतानाथसमारम्भां श्रीरामानन्दार्यमध्यमाम् ।
अस्मदाचार्यपर्यन्तां वन्दे श्रीगुरुपरम्पराम् ॥
गौराङ्गं रसमयं नित्यं रसाचार्यं रसोत्सुकम् ।
श्रीरामहर्षणदेवाख्यं सद्गुरुं प्रणमाम्यहम् ॥
जय जय श्रीराधारमण जय जय नवलकिशोर ।
जय गोपीचित्तचोर प्रभु जय जय माखनचोर ॥

अथ श्रीपद्मपुराणोक्त

श्रीमद्भागवतमाहात्म्यम्

सच्चिदानन्दरूपाय विश्वोत्पत्त्यादिहेतवे ।
तापत्रयविनाशाय श्रीकृष्णाय वयं नुम: ॥ (भा.मा. 1/1)

भगवान् का स्वरूप कैसा है? सत्-घन, चिद्-घन और आनन्दघन है। ऐसे भगवान् सच्चिदानन्द स्वरूप, जो समस्त विश्व का पालन, सृजन और संहरण - तीनों के जो हेतु हैं तथा जिनकी पावन चरण-शरण ग्रहण करते ही जीव के तापत्रय समाप्त हो जाते हैं - ऐसे गोविन्द के पादपद्मों में हम सब मिलकर बारम्बार प्रणाम करते हैं। महाभागवत श्रीशुकदेवजी का ध्यान करते हुए, नैमिषारण्य की पावनभूमि में सूतजी महाराज शौनकादि ऋषियों को यह मंगलमयी कथा सुना रहे हैं। हम भी अपने मन को वहीं लेकर चलें। अट्ठासी हज़ार ऋषियों के मध्य श्रीशौनकजी प्रधान श्रोता बनकर सबका प्रतिनिधित्व कर रहे हैं और आयु में जो छोटे हैं, ऐसे श्रीसूतजी महाराज व्यासपीठ पर सुशोभित हो रहे हैं। शौनकजी आयु में बड़े हैं, पर वयोवृद्ध होकर भी श्रोता बनकर बैठे हैं और इनकी विशेषता यह है कि, **कथामृतरसास्वादकुशल:**

भगवान् का कथामृत पान करने में परमकुशल हैं। जब श्रोता बनकर बैठते हैं, तो महान् विद्वान् और वयोवृद्ध होकर भी एकदम अनभिज्ञ बन जाते हैं - यही इनकी कुशलता है। आज शौनकजी सूतजी को नमन करके पूछते हैं,

अज्ञानध्वान्तविध्वंसकोटिसूर्य सम प्रभ ।
सूताख्याहि कथासारं मम कर्णरसायनम् ॥ (भा.मा. 1/4)

हे सूतजी महाराज! हम लोगों के हृदय में अज्ञान का घोर अन्धकार व्याप्त है। यह त्रिभुवन के अन्धकार को दूर करने में तो भगवान् सूर्य समर्थ हैं। पर जीव के हृदयगत अज्ञान-अन्धकार को सूर्य की किरणें दूर नहीं कर सकती। सूतजी महाराज! उस अज्ञान-तिमिर को ध्वस्त करने के लिये आपके पास करोड़ों सूर्य के समान ज्ञान का प्रकाश है। उस ज्ञान की एक किरण हम लोगों के हृदयपटल पर भी डाल दीजिए, जिससे हमारा अज्ञान-तिमिर ध्वस्त हो जाये। हम यह जानना चाहते हैं कि भक्ति, ज्ञान और वैराग्य को बढ़ाने के लिये वैष्णवलोग क्या करते हैं? ऐसा कौन-सा कार्य किया जाये, जिससे माया-मोह का निवारण हो जाय? देखिये महाराज! अब घोर कलिकाल आ गया है, जिससे लोगों की आसुरीवृत्ति हो गयी है। हर प्राणी क्लेश से आक्रान्त है। ऐसे प्राणियों का कैसे कल्याण होगा? जो पवित्र को भी पवित्र कर दे और भगवत्प्राप्ति का सरलतम साधन हो - वह कृपया आज हमें बतलायें क्योंकि आपके ऊपर गुरुदेव भगवान् की बड़ी कृपा है।

संसार में किसी को चिन्तामणि मिल जाये, तो जिस वस्तु का चिन्तन करो, वही वस्तु प्रदान कर देती है। और कल्पवृक्ष का यह चमत्कार है कि उसके नीचे जो कल्पना करो, तो वह स्वर्ग की सम्पत्ति को भी प्रकट कर

देगा। पर चिन्तामणि और कल्पवृक्ष में भी यह सामर्थ्य नहीं है कि वह परमात्मा को प्रकट कर दिखा दे या ब्रह्मसाक्षात्कार करा दे। यह सामर्थ्य तो केवल गुरुदेव भगवान् की कृपामयी छाया में है और वह आपको सदा प्राप्त है। इसलिए हे सूतजी महाराज! आपके लिए कुछ भी दुर्लभ नहीं है। जो बड़े-बड़े योगियों को दुर्लभ वैकुण्ठ है, वह भी गुरुकृपा से अति सुलभता से प्राप्त हो सकता है।

चिन्तामणिर्लोकसुखं सुरद्रुः स्वर्गसम्पदम् ।
प्रयच्छति गुरुः प्रीतो वैकुण्ठं योगिदुर्लभम् ॥ (भा.मा. 1/8)

इसलिए हे सूतजी महाराज! गुरुकृपा का प्रसाद हमें भी कृपा करके प्रदान करें। सूतजी महाराज प्रसन्न हो गये और प्रमुदित मन से बोले, हे शौनकादि ऋषियों! आपके मन में हमारे प्रति यदि इतना प्रेम और स्नेह है, तो अब हम तुम्हें समस्त शास्त्रों का सार ही सुनाने जा रहे हैं, जो संसार के भय को दूर कर देगा। इसे आप सावधान होकर सुनिये। जब कोई व्यक्ति कोई कीमती वस्तु देता है, तो लेने वाले को सावधान कर देता है कि ज़रा सम्भालकर रखियेगा। उसी प्रकार से वक्ता जब कोई विशिष्ट बात कहने जाता है, तो श्रोताओं को सावधान कर देता है। **सावधानतया शृणु**

सूतजी कहते हैं, ऋषियों! संसार में सबसे बड़ा डर है मृत्यु का। मरने का भय प्रत्येक प्राणी को भयाक्रान्त रखता है और इसका नाम है – मृत्युलोक। जो आया है, उसका जाना सुनिश्चित है। **'संसरति इति संसारः** - यह सरकता रहता है, खिसकता रहता है। कोई कितना भी पकड़ने का प्रयास करें, यह किसी की पकड़ में नहीं आता। तो संसार सरक रहा है और हम चाहते हैं कि ऐसा ही बना रहे। हमारे साथ और हमारे चाहने पर भी जब हमसे खिसक जाता है, तो हमें बड़ा कष्ट होता है। इस संसारभय को समाप्त करने के लिए महाभागवत श्रीशुकदेवजी महाराज ने श्रीमद्भागवतसंहिता को कलिकाल में प्रकट किया।

कालव्यालमुखग्रासत्रासनिर्णाशहेतवे ।
श्रीमद्भागवतं शास्त्रं कलौ कीरेण भाषितम् ॥ (भा.मा. 1/11)

'कीरेण शुकेन भाषितम्'

तोता बड़ा मीठा बोलता है। किन्तु बोलता वही है, जो उसे सिखाया जाता है। तो श्रीशुकदेवजी महाराज ने भी जगत् में कल्याणकारी भागवतरूपी फल प्रदान तो किया, पर यह मनमुखी फल नहीं है। उन्हें भी आचार्यपरम्परा से जो प्राप्त हुआ, वही उन्होंने संसार को दिया। जब महाराज परीक्षित के सामने मृत्यु का भय उपस्थित हुआ, सात दिन में मरना सुनिश्चित हो गया; तो वे अपने कल्याण का मार्ग खोजने लगे। उसी समय महामुनि शुकदेवजी ने ही श्रीमद्भागवतसंहिता के द्वारा परीक्षित को भयमुक्त कर दिया। जैसे ही गंगा के तट पर शुकदेवजी भागवतसंहिता का प्रवचन करने के लिए विराजमान हुए, तो देवताओं को पता चल गया।

सुधाकुम्भं गृहीत्वैव देवास्तत्र समागमन् (भा.मा. 1/13)

सभी देवतालोग अमृत का कलश लेकर आये और शुकदेवजी को प्रणाम करके अमृत का कलश सामने रख दिया। देवता बोले, महाराज! हमने जैसे सुना कि परीक्षित के सामने मृत्यु का भय उपस्थित हुआ है, इसलिए आप उन्हें कथा सुनाने जा रहे हैं। महाराजजी! अमृत का कलश हम ले आयें हैं। परीक्षित को यह अमृत पिला दीजिये, तो वह मृत्युभय से मुक्त हो जायेंगे। शुकदेवजी को सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि देवतालोग इतने

परमार्थी कब से हो गये? इस मृत्युलोक में तो आये दिन लोग मरते रहते हैं। न हमने बुलाया, न परीक्षित ने पुकारा। तो फिर बिना बुलाये ही देवता अमृत ले आये – ये तो महान् आश्चर्य है।

महाभारत (आदिपर्व/22-23) में प्रसंग आता है कि पक्षीराज गरुड को अपनी माँ वनिता को दासत्व से मुक्ति दिलवाने के लिये अमृत की आवश्यकता पड़ी। वनिता और कद्रु में होड़ हुई और वनिता हार गई। शर्त रखी कद्रु ने कि यदि तुम स्वर्ग का अमृत हमें दो तो हम अपने दासत्व से तुम्हें मुक्ति दिला देंगे। माँ दासी है, इसलिए उनके पुत्र गरुड को भी दास बनकर रहना पड़ता है और सर्पों की सेवा करनी पड़ती है। सभी सर्प गरुड के सिर पर सवार होकर कहते है कि 'उड़ो', तो जहाँ कहें, वहाँ जाना पड़ता है।

गरुड़ ने अपनी माता से कहा, माँ! मैं इतना बलिष्ठ हूँ, फिर भी मुझे इन सर्पों की दासता करनी पड़ती है। मैं क्या करूँ कि इस दासत्व से मुझे छुटकारा मिले? माँ ने कहा, बेटा! मिल तो सकता है, पर इसके लिए तुझे स्वर्ग का अमृत लाना पड़ेगा। गरुडजी बोले, माँ! मैं आपके लिए सब कुछ करने को तैयार हूँ। तब गरुडजी स्वर्ग का अमृत लेने गये। देवराज इन्द्र ने वज्र लेकर युद्ध की चुनौती दी और कहा, तुम अमृत को हाथ नहीं लगा सकते। गरुडजी ने देवताओं से कहा, आज सारे देवता मिलकर भी मुझे नहीं रोक सकते। यों कहते-कहते गरुड़ ने हठात/बलपूर्वक अमृत का कलश देवताओं से छीन लिया। तब इन्द्र घबड़ाते हुए हाथ जोड़कर बोले, भाई! तुम जिन सर्पों के लिए अमृत लेकर जा रहे हो, यदि उन्होंने अमृत पी लिया तो सर्वनाश हो जाएगा। तब दोनों के बीच समन्वय हुआ। गरुड ने अमृत लाकर सर्पों को दिया, दासत्व से माँ को मुक्त किया और उसी समय इन्द्र आकर अमृत का अपहरण करके अन्तर्धान हो गये।

कहने का अभिप्राय है कि गरुड को आवश्यकता थी, तो देवता लड़ने-मिटने को तैयार हो गये और अन्त में दिया भी नहीं। इसके विरुद्ध आज परीक्षित को बिना बुलाये ही अमृत देने चले आये। इसी बात पर शुकदेवजी को बड़ा आश्चर्य हुआ। तब देवताओं ने कहा, महाराज! एक निवेदन हमारा भी सुनिये। यह स्वर्ग का अमृत आप परीक्षित को पिला दें। इसके बदले में जो कथामृत आप इन्हें पिलाने वाले थे, वह हमें पिला दीजिए।

प्रपास्यामो वयं सर्वे श्रीमद्भागवतामृतम्

देवताओं ने यह प्रस्ताव रखा तो शुकदेवजी बड़ी ज़ोर-से हँसे और बोले, अरे ठगियाओं! तुम्हारे आते ही मैं समझ गया था कि कुछ गड़बड़ है। दधीचि बाबा को दण्डवत् करने गये, तो बदले में हड्डियाँ माँग लाये। तुम लोग बड़े स्वार्थी हो, अपना कार्य करने में बड़े निपुण हो।

स्वकार्यकुशलाः सुराः

स्वार्थी व्यक्ति यदि तुम्हारे फायदे की ज्यादा बातें करे, तो सावधान हो जाना चाहिए कि हमारे प्रति यह इतना उदार क्यों हो रहा है? तो देवताओं ने पहला फायदा तो परीक्षित का ही बतलाया कि महाराज! इसे अमृत पिला दीजिए, अमरत्व को प्राप्त हो जायेगा तो शुकदेवजी तो उसी समय सजग हो गये। अमृत कोई साधारण वस्तु तो है नहीं? समुद्रमन्थन किया गया, तो उससे प्रकट हुए चौदह रत्नों में सबसे दिव्य रत्न अमृत प्रकट हुआ। जिसके बँटवारे को लेकर बड़ा भयंकर देवासुर-संग्राम भी हुआ। और ऐसा वह दुर्लभ अमृत आज देवता अपने आप ही (बिना माँगे) प्रदान कर रहे हैं? बिना आह्वान किये ही दौड़े-दौड़े चले आ रहे हैं? बिना मतलब के कोई इतनी कीमती वस्तु क्यों देगा? परन्तु जब इसके बदले में भागवतामृत माँगा, इसी से आप समझ लीजिये कि वह अमृत इतना दुर्लभ है? तो यह भागवतामृत कितना अद्भुत होगा, जिसके बदले में देवतालोग वह अमृत देने को तैयार हो

गये। घाटे का सौदा देवता कभी नहीं करते। आज अपना अमृत रख दिया सामने कि ले लीजिए महाराज! परीक्षित को पिला दीजिए और इसके बदले में हम यह भागवतामृत चाहते हैं।

शुकदेवजी हँसते हुए बोले, अरे देवताओं! तुम लोग श्रद्धा से श्रोता बनकर आते, तो मैं अवश्य सुनाता। पर तुम तो सौदागर बनकर आये हो। सौदागर ही नहीं, अपितु ठग बनकर आये हो। क्योंकि कोई काँच का टुकड़ा देकर बदले में करोड़ों की कीमती बहुमूल्य मणि माँगे, तो उसे सरासर ठग ही कहा जायेगा। कहाँ काँच का टुकड़ा और कहाँ लाखों की मणि? देवताओं! तुम्हारा अमृत काँच है और मेरा कथामृत करोड़ों की मणि है। विनिमय बराबर की वस्तुओं का होता है। पर काँच और मणि की तो कोई बराबरी नहीं है, इसलिए तुम ठग हो।

क्व सुधा क्व कथा लोके क्व काचः क्व मणिर्महान् ।
ब्रह्मरातो विचार्यैवं तदा देवाञ्जहास ह ॥
अभक्तांस्तांश्च विज्ञाय न ददौ स कथामृतम् ।
श्रीमद्भागवती वार्ता सुराणामपि दुर्लभा ॥ (भा.मा. 1/16-17)

सूतजी कहते हैं, हे ऋषियों! यह देवदुर्लभ कथामृत है, क्योंकि देवताओं को शुकदेवजी ने डाँटकर भगा दिया, पर नहीं दिया।

विचार कीजिए कि कथामृत और सुधामृत में कौन-सा अमृत श्रेष्ठ है? सुधामृत का यह वैशिष्ट्य है कि बड़े-बड़े पुण्यात्मा जब इस मृत्युलोक से देह त्यागकर स्वर्गलोक में पहुँचते हैं, तब यह प्राप्त होता है। इसके विरुद्ध, कथामृत की यह विशेषता है कि कथामृत के लिए तो कोई पुण्यात्मा हो, दुष्टात्मा हो, पतितात्मा हो, या पापात्मा हो - कोई कैसा भी हो, यह अमृत सबको पिलाया जाता है और सबके लिए सुलभ है। तो पहली विशेषता यह सिद्ध हुई कि स्वर्ग का सुधामृत पक्षपाती है (भेदभाव करता है) और हरिकथामृत निष्पक्ष है, जो आवे सबको मिलता है, अत: अभेदवादी है।

दूसरी विशेषता क्या है कि स्वर्ग का अमृत पीने वाले देवताओं के शनैः-शनैः सुकृत क्षीण होते चले जाते हैं और पुण्य समाप्त होते ही वह धरातल पर गिर पड़ते हैं ।

क्षीणे पुण्ये मृत्युलोकं विशन्ति

हरिकथामृत की विशेषता है कि **'कल्मषापहम्'** - हरिकथामृत पापों को नष्ट करने वाला है। स्वर्ग का सुधामृत पुण्यों को क्षीण करने वाला और हरिकथामृत पापों को क्षीण करने वाला है। एक ओर स्वर्ग का अमृत पुण्यों को क्षीण करके ऊपर से नीचे गिराता है। इसके विपरीत दूसरी ओर, हरिकथामृत पाप व कल्मषों को नष्ट करके श्रीहरि के परमपद को प्रदान करवाता है। अब आप स्वयं ही निर्णय करें कि कौन-सा अमृत श्रेष्ठ मानें? स्वर्ग सुधामृत दीर्घजीवी बनाता है, पर हरिकथामृत दिव्यजीवी बनाता है। स्वर्ग का सुधामृत अमरत्व प्रदान करता है, पर हरिकथामृत अभयत्व प्रदान करता है।

शुकदेवजी ने अच्छे-से तौलकर निर्णय लिया है कि हर दृष्टि से हरिकथामृत ही दिव्य है। जहाँ पर विष्णुरात (परीक्षित) श्रोता हों, और ब्रह्मरात (शुकदेवजी) वक्ता हों - ऐसे श्रोता और वक्ता को कौन छल सकता है? परीक्षित कोई साधारण श्रोता नहीं है? माता के गर्भ में ही अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र से बचाने के लिए परमात्मा ने स्वयं इन्हें दर्शन दिया और गर्भ में जाकर परीक्षित को कृपा प्रदान की। वैसे ही शुकदेवजी महाराज को भी माता के गर्भ में भगवान् ने ही आकर आशीर्वाद दिया, तब माँ के गर्भ से बारह साल बाद शुकदेवजी बाहर

आये। तो भागवत के वक्ता और श्रोता - दोनों ही माँ के गर्भ में भगवान् की कृपा का कवच धारण करके प्रकट हुए हैं। इसलिए संसार में इनको छलने वाला, ठगने वाला कौन हो सकता है?

शुकदेवजी हरिकथामृत के परमरसिक हैं, इसलिए देवताओं को डाँटकर भगा दिया। देवतालोग लौटकर आये और ब्रह्माजी से शिकायत की, देखिये महाराज! हम देवता होकर भी हरिकथामृत से वंचित हैं और मानवों को शुकदेवजी ने इसका अधिकार दिया? हम जानना चाहते हैं कि इस कथामृत में ऐसी क्या विशेषता है? ब्रह्माजी ने कहा कि पहले यह देखो कि परीक्षित का कथा सुनकर क्या परिणाम होता है। तो सात दिन के बाद कथामृत पान करने वाले परीक्षित को जब परमपद प्राप्त करते हुए देखा, तो ब्रह्मा जी भी आश्चर्यचकित हो गये।

राज्ञो मोक्षं तथा वीक्ष्य पुरा धातापि विस्मितः।
सत्यलोके तुलां बद्ध्वातोलयत्साधनान्यजः ॥ (भा.मा. 1/18)

जब ब्रह्माजी ने महाराज परीक्षित का मोक्ष देखा, तो आश्चर्यचकित हो गये। तराजू पर तौल करके देखा कि आखिर भागवत की क्या विशेषता है? तो तराजू के एक पलड़े पर भागवत को रखा और दूसरे पलड़े पर अनेकानेक धर्मशास्त्रों को रखकर, जब उठाकर देखा तो,

लघून्यन्यानि जातानि गौरवेण इदं महत् ।
तदा ऋषिगणाः सर्वे विस्मयं परमं ययुः ॥ (भा.मा. 1/19)

सब देवता और महात्मा महान् आश्चर्यचकित रह गये कि श्रीमद्भागवत की तुलना में अन्य धर्मशास्त्रों का पलड़ा एकदम ऊपर लटक गया। तुरन्त महात्माओं ने घोषणा कर दी ।

मेनिरे भगवद्रूपं शास्त्रं भागवतं कलौ

साक्षात् श्रीकृष्ण ही कलियुग के कलुषित प्राणियों का कल्याण करने के लिए श्रीमद्भागवतसंहिता में आकर विराजमान हो गये हैं। इसलिए भागवत के प्रत्येक अक्षर में गोविन्द की श्यामलता समायी हुई है। यह साक्षात् भगवान् का वाङ्मय विग्रह है। ऋषियों ने सूतजी से प्रश्न किया, महाराज! यह सात दिन में सुनने की परम्परा कैसे प्रारम्भ हो गयी? सूतजी कहते हैं कि सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार - इन चारों ऋषियों ने देवर्षि नारद को सुनाकर यह सप्ताह की परम्परा प्रारम्भ की। शौनकजी ने पूछा, नारदजी तो दो घड़ी से ज्यादा कहीं टिकते ही नहीं? तो ऐसे उन अस्थिर नारदजी ने सात दिन बैठकर भागवत को कैसे सुना? कहाँ सुना? क्यों सुना? कृपा करके बतलाइये। सूतजी कहते हैं,

एकदा हि विशालायां चत्वार ऋषयोऽमलाः ।
सत्सङ्गार्थं समायाता ददृशुस्तत्र नारदम् ॥ (भा.मा. 1/25)

एक समय की बात है विशालापुरी (बद्रीनारायणधाम) में सनकादि चारों भाई सत्संग की इच्छा से विचरण कर रहे थे क्योंकि ध्यान, भजन, पूजन, आदि तो सब एकान्त में हो सकता है। पर सत्संग का एकान्त में थोड़े-ही आनन्द आता है। तो चारों भैया विचरण कर रहे थे कि अचानक नारदजी को देखा। नारदजी को देखकर बहुत प्रसन्न हो गये। संत को जब कोई भगवद्रसिक संत मिलता है, तो बड़े प्रसन्न हो जाते हैं कि आज कुछ भगवतचर्चा होगी। और सनकादियों का तो जीवन ही भगवत्कथा है **'कथामात्रैक जीविनः'**। पर जैसे ही नारदजी के निकट आये तो बड़ा आश्चर्य हुआ? क्योंकि नारदजी का मुख बहुत चिन्तित नज़र आया।

सनकादिक आश्चर्यचकित हो गये कि समाज की चिन्ताओं को दूर करने वाले परमसंत श्रीनारदजी आज चिन्तातुर है? बड़ा आश्चर्य है? पूछा,

कथं ब्रह्मन्दीनमुखः कुतश्चिन्तातुरो भवान् ।
त्वरितं गम्यते कुत्र कुतश्चागमनं तव ॥
इदानीं शून्यचित्तोऽसि गतवित्तो यथा जनः ।
तवेदं मुक्तसंङ्गस्य नोचितं वद कारणम् ॥ (भा.मा. 1/26-27)

'भो ब्रह्मन्! कथं दीनमुखः?'

अरे नारदजी महाराज! आपका मुख इस प्रकार से लटका हुआ क्यों है? किस बात की चिन्ता आपको सता रही है? यह भागे-भागे कहाँ से आ रहे हो, कहाँ जा रहे हो? आपका मुखकमल तो ऐसे लग रहा है, जैसे कोई महाकृपण का धन चला गया हो? **'गतवित्तो यथा जनः'** तुम्हारा क्या चला गया? क्योंकि जो धन छीन लिया जाये, संत-महापुरुष ऐसे धन को अपना समझते ही नहीं। और संतों का जो अपना धन है, उसे संसार में कोई चुराने वाला नहीं है। और महात्माओं का धन क्या है? वृन्दावन में जाकर देखिए,

कीर्तन — हमारो धन राधा श्रीराधा श्रीराधा

तो प्रभु का नाम ही संतों का तो एक परमधन है, जिसे संसार में कोई चुराने वाला नहीं जिसकी कोई किसी प्रकार की चिंता करने की आवश्यकता नहीं। फिर नारदजी! तुम तो ऐसे वीतराग और मुक्तसंग हो कि दुनिया में अपने लिये एक झोपड़ी तक नहीं बनायी कहीं, क्योंकि दो घड़ी से ज्यादा कहीं टिकते नहीं। तो रमते-राम होकर भी इस प्रकार मुँह लटकाये क्यों घूम रहे हो? संसारियों को जब समस्यायें सताती हैं, तो संतो की शरण में शान्ति पाने के लिए आते हैं। और सन्त ही यदि इस प्रकार से चिन्ता में मुँह लटकाये दिखेंगे, तो संसारियों पर क्या बीतेगी, **'नोचितं वद कारणम्'**। आप-जैसे विरक्त संतों को इस प्रकार चिन्ता करना उचित नहीं है, हमें अपने दुःख का कारण बताइये।

तब नारदजी ने अपने चारों अग्रजों को प्रणाम करते हुए अपनी समस्या सामने रखी कि भैया! मैं अपनी समस्या आपको सुनाता हूँ। मैं इस संसार में सत्संग की इच्छा से घूम रहा था कि भगवद्रसिकों के बीच बैठकर कुछ भगवच्चर्चा करूँगा और सुनूँगा। इस संसार में मैं सर्वत्र घूमा और मैंने सारे तीर्थों में परिभ्रमण कर लिया, पर कहीं मुझे सत्संग का आनन्द नहीं मिला। कोई भी तीर्थ नहीं छोड़ा।

पुष्करं च प्रयागं च काशीं गोदावरीं तथा ॥
हरिक्षेत्रं कुरुक्षेत्रं श्रीरङ्गं सेतुबन्धनम् ।
एवमादिषु तीर्थेषु भ्रममाण इतस्ततः ॥ (भा.मा. 1/28-29)

जब समस्त भूमण्डल में मेरे चित्त को शान्ति नहीं मिली, तो मैंने सोचा कि चलो अब संतों के पास चला जाये। सम्भवतया संतों के यहां शान्ति मिले? पर मैंने क्या देखा कि **'पाखण्डनिरताः सन्तः'** सन्त भी पाखण्ड-परायण होते चले जा रहे हैं। पाखण्ड का अर्थ है **'पापस्य खण्डः पाखण्डः'**। पाप का ही जो खण्ड हो, उसका नाम पाखण्ड है। उनकी परिभाषायें बदल गईं हैं - 'यह बंगला किसका है? ... त्यागीजी महाराज का', 'यह बच्चे किसके हैं? ... ब्रह्मचारीजी महाराज के', 'इतना शोर-हल्ला कहाँ सुनाई पड़ रहा है? ... मौनी बाबाजी के आश्रम में' - ऐसी बड़ी विचित्र स्थिति है।

तपसी धनवन्त दरिद्र गृही ।
कलि कौतुक तात न जात कही ॥ (रामचरितमानस 7/121क)

पहले सन्त-महात्मा जितना विरक्त होता था, वह उतना ही महान् माना जाता था। किन्तु आज जितना वैभव-सम्पन्न होता है, वह उतना ही श्रेष्ठ माना जाता है। यह सब देख-देखकर मेरा चित्त और भी अशान्त हो गया। मैं आया था शान्ति के लिये यहाँ तो क्रान्ति मच गई। चित्त में खलबली मच गई। मैंने तब विचार किया कि चलो छोड़ो, गृहस्थों को ही देख लेते हैं। पर गृहस्थों के यहाँ भी विडम्बना क्या?

तरुणीप्रभुता गेहे श्यालको बुद्धिदायकः ।
कन्याविक्रयिणो लोभाद्दम्पतीनां च कल्कनम् ॥ (भा.मा. 1/33)

मैंने देखा गृहस्थों के यहाँ माता-पिता की सेवा तब तक ही है, जबतक माता-पिता ने तिजोरी की चाबी नहीं सौंपी। और जहाँ सर्वाधिकार प्राप्त हुए, सो ही देवीजी का चलावा हो गया। फिर माता-पिता की खटिया तो खेत में या किसी तीर्थ स्थान में डाल दी। कदाचित् माता-पिता घर में जबरदस्ती बैठे भी हों, तो उनसे किसी भी प्रकार की कोई चर्चा नहीं की जाती।

वार्ता कोऽपि न पृच्छति गेहे

कोई बड़ा भारी कार्य किया जा रहा है, तो किससे परामर्श लिया जाये? तो ससुराल से साले साहब को बुलवाया जाता है। वह जो कहेंगे, वही माना जायेगा। सलाह तो खूब लिया जाये, परन्तु यह सब होने के बाद भी पति-पत्नी में ही प्रतिदिन महाभारत हो रहा है। लोभ इस पराकाष्ठा पर पहुँच गया है कि बेटा-बेटियों का भी क्रय-विक्रय होने लगा है। सम्बन्ध नहीं, अपितु सौदे होते हैं। जहाँ सौदा पट जाये, वह समधी बन जाये। तो जब बुद्धि-विचार सम नहीं, केवल सम्पत्ति के आधार पर समधी बन जाते हैं। इसलिए सम्बन्धों में आये दिन कलह मचा करती है। भैया! यह सब देख-देखकर मेरा चित्त बड़ा अशान्त हो गया।

एवं पश्यन् कलेर्दोषान् पर्यटन्नवनीमहम् ।
यामुनं तटमापन्नो यत्र लीला हरेरभूत् ॥ (भा.मा. 1/37)

मृत्युलोक में यह सब देख-देखकर मेरा चित्त एकदम अशान्त हो गया। मैंने सोचा कि अब कहाँ जायें भाई? तब मुझे तुरन्त श्रीधाम-वृन्दावन का स्मरण हो आया। मेरे प्रभु की उस दिव्य प्राकट्यभूमि के यमुनापुलिन पर मेरे चित्त को अवश्य विश्राम मिलेगा - ऐसा विचार करके मैं सीधा यमुनातट पर वृन्दावनधाम में पहुँचा। और वहाँ पहुँचकर एक आश्चर्य और देखा,

तत्राश्चर्यं मया दृष्टं श्रूयतां तन्मुनीश्वराः।
एका तु तरुणी तत्र निषण्णा खिन्नमानसा ॥ (भा.मा. 1/38)

मैंने देखा कि एक युवती खिन्नमना होकर बैठी हुई आँखों से अश्रुपात कर रही है और दो बुड्ढे उसके सामने अचेतन-अवस्था में पड़े हैं। तमाम देवियाँ उसको घेरकर बैठी हैं। कोई पानी पिला रही है, कोई पंखा कर रही है कोई समझा रही है। मैंने सोचा, यह बेचारी क्यों रो रही है? कौन है? चलकर मैं ही इसका कष्ट दूर करने का प्रयास करूँ। संतों का हृदय तो नवनीत के समान कोमल होता है। सो महाराज! उसको दुःखी देखकर मेरा मन भी द्रवित हुआ, मैं उसके पास गया। फिर मैंने सोचा कि केवल देवियों का ही समुदाय बैठा है। यहाँ कोई पुरुषवर्ग नहीं दिख रहा। अब मैं उनके बीच में जाकर कहूँ, 'देवीजी! क्यों रो रही हो? क्या कष्ट है?' और

उसने कहीं कोई उल्टा-सीधा जवाब दे दिया, 'ऐ बाबा! चल तू अपना काम कर, देवियों के समुदाय में तू कहाँ घुसा चला आ रहा है?'। मातायें जब आपस में बात करती हैं, तो एक मिनट में ही आँसू बहाने लग जायें और अगले ही मिनट में मुस्कराने लग जायें। तो हम बाबा-वैरागियों को बिना बुलाये, बिना मतलब के नहीं जाना चाहिये। इसलिए मैं पास तक तो गया, परन्तु प्रश्न करने का साहस नहीं हुआ तो लौट पड़ा। जब उस देवी ने मुझे देखा, तो तुरन्त आवाज़ लगाई -

भो भोः साधो क्षणं तिष्ठ मच्चिन्तामपि नाशय ।
दर्शनं तव लोकस्य सर्वथाघहरं परम् ॥ (भा.मा. 1/42)

महाराजजी! कहाँ भाग रहे हो? एक मिनट रुकिये तो सही। आप-जैसे संतों के तो दर्शनमात्र से ही जीव के पाप-ताप-सन्ताप नष्ट हो जाते हैं। मेरे तो न जाने कितने जन्मों के भाग्योदय हुये, जो आपके दर्शन प्राप्त हुये। आपके तो दर्शनमात्र से जीव का दुःख-दारिद्र्य दूर हो जाता है। नारदजी कहते हैं, भैया! जब उन्होंने इस प्रकार से हमें बुलाया तो हम उस देवी के पास गये और हमने पूछा, '**कासि त्वं**' - देवीजी! आप कौन हैं? और '**काविमौ**' - यह दोनों बुड्ढे जो पड़े हैं, यह कौन हैं? तुम्हारे क्या लगते हैं? और '**का इमाः**' - यह जो देवियां आपको घेरकर खड़ी हैं, यह सब कौन हैं? और तुम रोती क्यों हो?

वद देवि सविस्तारं स्वस्य दुःखस्य कारणम्

तुम्हारे दुःख का कारण क्या है? विस्तार से हमें बताओ। जब मैंने उस देवी के प्रति सहानुभूति दिखायी, तब उसने अपना पूरा परिचय विस्तार से दिया।

अहं भक्तिरिति ख्याता इमौ मे तनयौ मतौ ।
ज्ञानवैराग्यनामानौ कालयोगेन जर्जरौ ॥ (भा.मा. 1/45)

महाराज! मैं भक्ति के नाम से विख्यात हूँ और यह दोनों बुड्ढे जो मेरे सामने पड़े हैं, यह दोनों मेरे बच्चे हैं। इनका नाम ज्ञान और वैराग्य है। समय की विडम्बना देखो कि माँ तो नवयुवती बनी बैठी है और बच्चे दोनों ही बुड्ढे हो गये। कितनी जर्जरित स्थिति हो रही है इनकी। मेरे दुःख का मूल कारण यही है। मैं अपना पूरा परिचय आपको सुनाऊँ - मैं दक्षिण भारत में पैदा हुई, कर्णाटक में बड़ी हुई, महाराष्ट्र आदि प्रदेशों मेरा कहीं-कहीं पर बड़ा सम्मान हुआ। पर कई प्रदेश ऐसे भी थे, जहाँ पाखण्डियों से खण्डित होकर मुझे पीड़ित होकर भागना पड़ा। इस प्रकार से अनेक देश-प्रदेशों में घूमती-घूमती जैसे-ही मैं वृन्दावन में पधारी तो,

वृन्दावनं पुनः प्राप्य नवीनेव सुरूपिणी

इस व्रजभूमि में आते ही मैं नवयौवना हो गई। पर न जाने क्या हुआ कि मेरे दोनों बच्चे एकदम बुड्ढे हो गये? और मेरे बालकों की यही स्थिति रही, तो मैं इस स्थान को छोडकर के विदेश भाग जाऊँगी।

इदं स्थानं परित्यज्य विदेशो गम्यते मया

नारदजी ने सारी स्थिति को एक क्षण में समझ लिया और विचार किया कि भक्ति, ज्ञान और वैराग्य एक-दूसरे के पूरक हैं। जैसे क्षुधातुर व्यक्ति भोजन करने बैठे तो ग्रास-ग्रास पर उसे तुष्टी-पुष्टी और क्षुधानिवृत्ति की प्राप्ति होती है। भूख भी मिटेगी, पेट भी भरेगा और इन्द्रियों में बल भी आयेगा। प्रत्येक ग्रास पर उसे यह तीनों बातें एक-साथ ही प्राप्त होती हैं, अलग-अलग नहीं। उसी प्रकार ज्यों-ज्यों भगवच्चरणारविन्द में प्रेम बढ़ता जायेगा, भक्ति पुष्ट होती जायेगी, त्यों-त्यों भगवान् के स्वरूप का बोध होता जायेगा। और ज्यों-ज्यों

भगवान् के स्वरूप में प्रेम होता गया और भगवान् के स्वरूप का ज्ञान होता गया, तो यह संसार की आसक्ति अपने आप छूटती चली जायेगी सहज वैराग्य हो जायेगा। यह क्रियायें अलग-अलग नहीं हैं। यदि आपके जीवन में कोरी भक्ति है और ज्ञान-वैराग्य ठीक नहीं है, तो आपकी भक्ति बाँझ है। ज्ञान-वैराग्य के बिना भक्ति अपूर्ण है।

सन्तान के बिना माँ का मातृत्व पूर्ण नहीं है। उसी प्रकार ज्ञान और वैराग्य भक्ति के पुत्र हैं। ज्ञान और वैराग्य के बिना भक्ति की परिपूर्णता नहीं है। नारदजी ने तुरन्त भक्ति माता को वचन दिया कि माँ! आप वृन्दावन छोड़कर न जाइये क्योंकि आज हर क्षेत्र के लोगों का आकर्षण विदेश की ओर है। संतों को भी जबतक दो-चार देशों का परिभ्रमण न हो जाय, तब तक संतत्व प्राप्त नहीं होता। हम भारतवासियों की दृष्टि ही कुछ ऐसी ही बन गई है। चाहे वह कथावाचक हो, चाहे कोई महात्मा हो। जब देश-विदेशों में प्रमाणिकरूप से उनका प्रचार-प्रसार हो जाता है, तब भारतीयों की दृष्टि उन पर जाती है। भक्ति मैया ने भी जब यही बात कही, तब नारदजी ने कहा कि माताजी! ऐसा आप मत कीजिए। सत्ययुग, द्वापर और त्रेता में तो बड़े आनन्द से आप रहीं। पर अब घोर-कलिकाल आ गया है। इस कलियुग में सब सदाचार लुप्त होता चला जाता है।

तेन लुप्तः सदाचारो योगमार्गस्तपांसि च

बुद्धिमान वही है, जो धैर्यपूर्वक अपने नियमों का पालन करता रहे। क्योंकि अभी तक तो फिर भी बहुत कुछ मंगल दिखाई पड़ रहा है पर,

वर्षे वर्षे क्रमाज्जाता मङ्गलं नापि दृश्यते

समय ज्यों-ज्यों बढ़ता जायेगा, जो थोड़े बहुत शुभकर्म दीख रहे हैं, वह भी अब दिखाई नहीं पड़ेंगे। पर इस घोर कलिकाल में भी आप इस श्रीधाम-वृन्दावन की भूमि में इस प्रकार से नवयुवती बनकर नाच रही हो। मैं तो कहता हूँ कि धन्य है यह व्रजभूमि, जहाँ इस कलिकाल में भी आपका इतना सम्मान है।

वृन्दावनस्य संयोगात्पुनस्त्वं तरुणी नवा ।
धन्यं वृन्दावनं तेन भक्तिर्नृत्यति यत्र च ॥ (भा. मा. 1/61)

व्रजभूमि धन्य है, जहाँ पर इस कलिकाल में भी भक्ति का इस प्रकार आदर किया जा रहा है, जहाँ आप नाच रही हैं। भक्ति मैया ने पूछा, बाबा! एक बात बताओ। कलियुग यदि इतना दुष्ट है? तो परीक्षित ने इसको दण्ड क्यों नहीं दिया? और परीक्षित ने कदाचित् यदि दण्ड न भी दिया, तो भी भगवान् इसकी उद्दण्डता सहन क्यों कर रहे हैं? भगवान् को तो दण्ड देना चाहिये? नारदजी बोले, माँ! यदि आप पूछ रही हो, तो ध्यान से सुनिये। जिस दिन गोविन्द अपनी लीलासम्पन्न करके परमधाम गये, उसी दिन कलियुग ने अपना पैर इस मृत्युलोक पर जमाना प्रारम्भ किया। और महाराज परीक्षित जब इसे मारने के लिए उद्यत हुए, तो दीन-हीन होकर यह कलियुग उनकी शरण में चला आया। महाराज परीक्षित तो परमवैष्णव थे। इस कलियुग में असंख्य दोष होने के साथ-साथ, एक बहुत बढ़िया गुण उन्हें इसमें दिखाई पड़ गया। इसलिये महाराज परीक्षित ने इसे छोड़ दिया।

यत्फलं नास्ति तपसा न योगेन समाधिना ।
तत्फलं लभते सम्यक्कलौ केशवकीर्तनात् ॥ (भा. मा. 1/68)

कलिजुग केवल हरि गुन गाहा ।
गावत नर पावहिं भव थाहा ॥ (रामचरितमानस 7/103क)

अन्य युगों में जो घोर तपस्या करने से फल प्राप्त होता था, बहुत बड़े-बड़े यज्ञ करने से जो फल मिलता था; वही फल कलिकाल में केवल नाम-संकीर्तन मात्र से जीव को प्राप्त हो जायेगा। यही इसका विशिष्ट गुण है, जो महाराज परीक्षित को पसन्द आ गया। अत: महाराज परीक्षित ने इसे अपने राज्य में स्थान दे दिया। पर जैसे ऊसर भूमि में बढ़िया से बढ़िया बीज भी बेकार ही सिद्ध होता है, उसी प्रकार इस कलियुग के कलुषित वातावरण में इतने दुर्गुण हैं कि भगवन्नाम-संकीर्तन का जो एकमात्र गुण था, वह भी प्राय: लुप्त हो गया है।

कलियुग में भागवत की कथायें तो बहुत होती हैं, पर भागवत के अर्थ पर किसी का ध्यान नहीं। भागवत से अर्थ (धन) कैसे प्राप्त हो, उसी पर दोनों की दृष्टि है, क्या श्रोता तो क्या वक्ता। श्रोता भी इसी उद्देश्य से कथा करवा रहा है, 'महाराज! हमारी फैक्टरी बढ़िया चल जाये, तो एक भागवत हमारी तरफ से भी करायें।' और वक्ता का भी वही दृष्टिकोण बन गया है। **'दुस्त्यजस्तत् कथार्थः'** - भागवत के अर्थ पर यदि दृष्टि चली जाय, भागवत के तात्पर्यार्थ को समझ लिया जाये, तो अपने आप ही धनासक्ति छूट जायेगी।

भागवत तो कल्पवृक्ष है, जो माँगो सो मिलेगा। जो व्यापार बढ़िया चलाना चाहे, तो उनका व्यापार खूब चलेगा और जो विद्वान् वास्तव में भागवत के द्वारा अपना अर्थसिद्ध करना चाहते हैं, तो ठाकुरजी की कृपा से ऐसा कोई ही कथावाचक होगा, जो भागवत की कल्पवृक्ष की छाया में बैठकर निर्धन हो। परन्तु भागवत के तात्पर्यार्थ को यदि कोई समझ ले, तो वह परमहंस हो जाता है।

शुकदेवजी-जैसे निष्काम परमहंसों का यह परमधन है - **'यद्वैष्णवानां धनम्'**। परमहंसों की यह पावन-संहिता है। तुम्हारा लक्ष्य क्या है? तुम्हारी कामना क्या है? उसी की पूर्ति करेगा। भक्तिमैया को इस प्रकार से नारदजी समझा रहे हैं। भक्ति मैया गद्गद होकर बोली, नारदजी! मेरे बड़े भाग्योदय हुये, जो आपके दर्शन मुझे प्राप्त हो गये। धन्य हैं नारदजी! जिनकी महिमा स्वयं भक्ति मैया गा रही हैं।

जयति जगति मायां यस्य कायाधवस्ते वचनरचनमेकं केवलं चाकलय्य ।
ध्रुवपदमपि यातो यत्कृपातो ध्रुवोऽयं सकलकुशलपात्रं ब्रह्मपुत्रं नतास्मि ॥ (भा. मा. 1/80)

हे ब्रह्माजी के मानसपुत्र नारदजी! आपकी जय हो। आपके एक वचन पर निष्ठा करके कयाधुनन्दन प्रह्लाद भक्ति के परमाचार्य बन गये। आपके अनुग्रह को प्राप्त करके ध्रुवजी महाराज तो पाँच वर्ष की अवस्था में ही साक्षात् भगवान् को प्रकट करने में समर्थ हो गये और आज ध्रुवलोक में चमक रहे हैं। बाबा! मेरे बालकों पर भी कृपा दृष्टि डालो। नारदजी बोले, माताजी! आप इतनी दु:खी क्यों हो रही हो? अरे! जिन प्रभु ने कौरवों की कुत्सित सभा के बीच से द्रौपदी की रक्षा की, वे कृष्ण-कन्हैया आज भी हमारे मध्य विराजमान हैं।

स कृष्णः क्वापि नो गतः

वे कहीं चले नहीं गये, बल्कि आज भी भक्तों के हृदय में हैं। इसलिए आपको किसी भी प्रकार से चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं।

श्रीकृष्णचरणाम्भोजं स्मर दुःखं गमिष्यति

आप तो गोविन्द के पादपद्मों का स्मरण करो, दु:ख अपने आप ही भाग जायेगा। **'हरिस्मृतिः सर्वविपद्विमोक्षणं'** - गोविन्द की स्मृति सारी विपत्तियों से अपने आप ही मुक्ति दिला देती है। इसलिए माताजी! गोविन्द के चरणकमलों का ध्यान करो।

भजन - व्रज के नन्दलाला, राधाजी के सांवरिया

देवर्षि नारद ने समझाया, आप तो गोविन्द के चरणकमलों का ध्यान करो, दु:ख अपने आप भाग जायेगा। फिर आप तो इनकी प्राणवल्लभा हो, प्रियतमा हो। आप जहाँ और जब बुलावो, प्रभु तो वहीं दौड़े-दौड़े चले आयेंगे। चाहे वह कैसा भी घर हो, कितना भी पतित का घर हो।

त्वयाऽऽहूतस्तु भगवान् याति नीचगृहेष्वपि

जहाँ-जहाँ भक्ति महारानी, वहाँ-वहाँ भगवान रहते हैं। चाहे वह व्याध का घर हो, बहेलिया का घर हो, रैदास का घर हो, मीराजी का घर हो, किसी का भी हो। गजेन्द्र का हृदय हो, वानर-भालू का हृदय हो - भक्ति जहाँ है, वहाँ भगवान् आये बिना रह नहीं पाते। प्रियतम प्रभु अपनी प्राणवल्लभा के पीछे लगे रहते हैं। इस प्रकार भक्ति की बड़ी महिमा नारदजी ने गाई।

अब नारदजी ज्ञान और वैराग्य को स्वस्थ करने का प्रयास करने लगे। ज्ञान और वैराग्य के पास आकर देवर्षि नारद ने बड़े-बड़े दिव्य वेदमन्त्रों के माध्यम से वेदपाठ किया। चारों वेद शनै:-शनै: सुना दिये, पर लाभ नहीं हुआ। उपनिषदों का पाठ किया, फिर भी लाभ नहीं हुआ? सबका सार भगवद्गीता भी सुना दिया। वह भी एक बार नहीं, **'गीतापाठैर्मुहुर्मुहुः'** अनेक बार भगवद्गीता का भी पाठ सुनाया। थोड़ी-सी चेतना तो आयी, परन्तु फिर गिर गये। अब नारदजी को चिन्ता होने लगी,

ज्ञान प्रबुध्यतां शीघ्रं रे वैराग्य प्रबुध्यताम्

ज्ञान खड़े हो जाओ! वैराग्य सावधान हो!! बहुत प्रयत्न करने पर जब कोई लाभ नहीं दीखा, तो नारदजी को चिन्ता हो उठी कि अब क्या करूँ? मेरे तो औषधालय में जितनी चूर्ण-चटनी थी, सब चटा दी। इन दोनों का तो स्वास्थ्य नहीं ठीक हो रहा। अब कौन-सी दवा लाई जाये? उसी समय आकाशवाणी हो गयी -

व्योमवाणी तदैवाभून्मा ऋषे खिद्यतामिति ।
उद्यमः सफलस्तेऽयं भविष्यति न संशयः ॥ (भा. मा. 2/31)

आकाशवाणी ने दिशा-निर्देश दिया, नारदजी! उद्यम करो, सफलता अवश्य मिलेगी। नारदजी ने पूछा, क्या करूँ? तो आकाशवाणी ने कहा,

एतदर्थं तु सत्कर्म सुरर्षे त्वं समाचर

नारदजी! सत्कर्म करो, तभी यह स्वस्थ्य होंगे। वह सत्कर्म कैसा होगा, यह कोई संत तुम्हें समझायेगा। अब नारदजी सोचने लगे कि आकाशवाणी ने भी बात स्पष्ट नहीं कही। अरे! या तो कोई संत का नाम ही बता देते कि अमुक् महात्मा के पास चले जाओ, तो मैं सीधा पहुँच जाता? या दवा का ही ठीक से नाम बता देते, तो मैं उस दवा को ढूँढ़ लाता। सत्कर्म करो और कोई सन्त समझायेगा, दोनों बातें गोलमोल। तो मैं इतने जो उपनिषद् और गीता के पाठ सुना रहा था, यह क्या सत्कर्म नहीं था? यदि यह सत्कर्म नहीं है, तो सत्कर्म का स्वरूप कैसा होगा? और कौन संत समझायेगा? चलो ढूँढ़ते हैं, कोई-न-कोई तो मिलेगा ही।

नारदजी निकल पड़े। जो महात्मा मिलता है, उसी को प्रणाम करके कहते हैं, महाराजजी! बताइये सत्कर्म किसे कहते हैं? छोटे-मोटे महात्मा तो वैसे ही नारदजी के हाथ जोड़ लेते हैं, अरे नारदजी! ब्रह्माजी के पुत्र हो, सारे ब्रह्माण्ड में तुम्हारी गति है और इतना दुनियाभर में घूमने वाले महात्मा हमसे आकर पूछ रहे हैं कि सत्कर्म किसे कहते हैं? हम क्या बतायेंगे महाराज? और जो बहुत प्रतिष्ठित महन्त-महात्मा थे, वे अपनी इज्जत बचाने के लिए इशारा कर देते कि आजकल हमारा मौनव्रत चल रहा है। मौन खुलेगा तब बात करेंगे।

मूकीभूतास्तथान्ये तु कियन्तस्तु पलायिताः

कुछ मौनव्रत लेकर बैठ गये, कुछ दायें-बांये हो गये; पर नारदजी को समुचित उत्तर देने वाला कोई महात्मा नहीं मिला। अब नारदजी को और भी ज्यादा परेशानी बढ़ गयी कि अब क्या किया जाये भाई? सामान्य कोई व्यक्ति दवा पूछे, तो कोई भी डॉक्टर बता देगा। पर कोई बहुत अनुभवी विख्यात डॉक्टर यदि कोई औषधि पूछे, तो छोटे-मोटे डाक्टर बताने में भी साहस नहीं जुटा पाते कि इतना बड़ा विशेषज्ञ हमसे पूछ रहा है, क्या बतायें? नारदजी कोई अपने में कम संत थोड़े-ही हैं? महान् संत हैं। उनको जवाब देने वाला कोई ऐसे थोड़े ही साहस कर लेगा?

जब कहीं से कोई भी जवाब नहीं मिला, तो नारदजी सीधे बद्रीनाथ की ओर चल पड़े कि भगवान् नर-नारायण वहाँ नित्य निवास करते हैं। 'ऐसी विशालापुरी बद्रीनाथ में मेरा समाधान अवश्य हो जायेगा' - यही सोचकर नारदजी बद्रीनाथ में विचरण कर रहे थे कि सनकादि चारों भाईयों से भेंट हो गई। नारदजी अपनी पूरी व्यथा-कथा सुनाते हुए कहते हैं कि, महाराज! अब आप ही बताइये। आपने मेरी चिन्ता का कारण पूछा, तो मैंने समस्या पूरी सामने रख दी। अब कृपया बताइये कि वह सत्कर्म कौन-सा है, जो आकाशवाणी ने मुझे बताया था। महाराज! आप भी कोई साधारण महात्मा नहीं हो। आपकी सबसे बड़ी विशेषता तो यह है कि सदेह वैकुण्ठ में पहुँच गये। वहाँ भगवान् के नित्यपार्षदों नें जब आपको रोकने का दुस्साहस किया, तो टेढ़ी-भृकुटी करके तीन जन्म के लिए उन्हें धरती पर गिरा दिया।

येषां भ्रूभङ्गमात्रेण द्वारपालौ हरेः पुरा ।
भूमौ निपतितौ सद्यो यत्कृपातः पुरं गतौ ॥ (भा. मा. 2/49)

भृकुटी टेढ़ी करने मात्र से भगवान् के नित्यपार्षद नीचे गिर गये और आपकी कृपा से ही फिर पुनः अपने स्थान पर पहुँचे - यह आपकी प्रतिभा और तपस्या है। प्रत्यक्ष आपके जीवन में उस तपस्या का प्रभाव यह है कि चौबीसों घंटे '**हरिः शरणं हरिः शरणं हरिः शरणं हरिः शरणं**' मन्त्र का जप आपके श्रीमुख में चलता रहता है। इसलिये '**जरायुष्मान्न बाधते**', आपको कभी बुढ़ापा आता ही नहीं। पूर्वजों के भी पूर्वज हो गये, पर आप पाँच साल से कभी छः साल के नहीं हुए। कालगति आपको प्रभावित नहीं कर पाती है। इसलिये आप-जैसे संत और कहाँ होंगे? कृपया मुझे आप ही बताइये कि वह सत्कर्म कौन-सा था, जो आकाशवाणी ने मुझे बताया था। चारों भैया मुस्कुराये और बोले, नारदजी! मात्र इतनी छोटी-सी बात को लेकर तुम इतने परेशान हो रहे हो? बिल्कुल चिन्ता त्याग दो, समाधान हमारे पास है।

मा चिन्तां कुरु देवर्षे हर्षं चित्ते समावह ।
उपायः सुखसाध्योऽत्र वर्तते पूर्व एव हि ॥ (भा. मा. 2/53)

सनकादियों ने कहा कि जो सत्कर्म आकाशवाणी ने कहा था, वह कोई और नहीं बल्कि,

श्रीमद्भागवतालापः स तु गीतः शुकादिभिः

शुकदेवजी-जैसे परमहंसों के श्रीमुख से गाया हुआ वह मधुरगीत श्रीमद्भागवत ही वह दिव्य महौषधि है, जिसका पान करते ही ज्ञान और वैराग्य की वह वृद्धावस्था दूर हो जायेगी और नवयौवन-सम्पन्न होकर अपनी मैया के साथ नाचेंगे।

जब नारदजी को सनकादियों की बात पर विश्वास नहीं हुआ तो सनकादिक कहते हैं, नारदजी! वही दावा

हमारा है। तुमने सारे वेद सुनाये, उपनिषद सुनाये, भगवद्गीता सुनाई; परन्तु हम आपको विश्वास दिलाते हैं कि शुकदेव-जैसे परमहंसों का गाया हुआ यह जो भागवत का दिव्य मधुरगीत है, इसका श्रवण करने मात्र से ज्ञान और वैराग्य स्वस्थ्य हो जायेंगे। उनकी सारी बीमारी दूर हो जायेगी। नारदजी बोले, महाराज! भागवत तो मैंने भी पढ़ा है। मेरे पिता ब्रह्माजी ने ही मुझे भागवत का अध्ययन कराया था। इसलिए मैं जानता हूँ कि भागवत में जो भी व्याख्यायें हैं, वह सब वैदिक सूत्रों की ही व्याख्या है। वेदरूपी वृक्ष का ही तो फल श्रीमद्भागवत है। जब वेद-उपनिषद् सुनाने से कुछ नहीं हुआ, तो वेदों की व्याख्या करने वाले ग्रन्थ श्रीमद्भागवत से भला क्या हो जायेगा?

सनकादिक मुस्कुराते हुए बोले, नारदजी! कोई आम का मीठा फल खाने वाला यह कहे कि वाह! फल जब इतना मधुर है, तो वह वृक्ष भी कितना मधुर होगा, जिसने इसको पैदा किया है? और फल को त्यागकर कोई वृक्ष चबाने लग जाये, तो क्या माधुर्यरस मिलेगा? स्वाद लेने के लिए फल का ही सेवन करना पड़ेगा, वृक्ष में वह स्वाद नहीं मिलेगा। दूध से घी निकाला जाता है। पर जो काम घी कर लेगा, वह दूध नहीं कर सकता। घी में बढ़िया-बढ़िया पूड़ी सेंकते-सेंकते घी खत्म हो जाये तो, कोई तर्क दे कि बची हुई पूड़ी दूध में निकाल लो क्योंकि दूध से ही तो घी निकला है। पर दूध से कुछ नहीं होने वाला। गन्ना का रस ही शक्कर बनता है। पर जो मिठाईयाँ शक्कर से बनती हैं, वह गन्ने के रस से नहीं बन पायेंगी।

इस प्रकार विविध दृष्टान्तों से जब सनकादियों ने नारदजी को समझाया, तो नारदजी की शंका तुरन्त दूर हो गई। नारदजी हाथ जोड़कर बोले, भैया! अब मैं समझ गया कि पढ़-लिखकर कोई कितना भी बड़ा पण्डित बन जाये, पर आप-जैसे महापुरूषों का सत्संग जबतक नहीं करेगा, तब तक शास्त्रों का रहस्य समझ नहीं सकता। पर आप-जैसे महान् संतों का दर्शन भी ऐसे ही नहीं मिल जाता।

भाग्योदयेन बहुजन्मसमर्जितेन सत्सङ्गमं च लभते पुरुषो यदा वै ।
अज्ञानहेतुकृतमोहमदान्धकारनाशं विधाय हि तदोदयते विवेकः ॥ (भा. मा. 2/76)

इसी जन्म के भाग्य से नहीं, अपितु जन्म-जन्मान्तरों के जब पुण्योदय (भाग्योदय) होते हैं, तब जीव को सत्संग-लाभ प्राप्त होता है। आप-जैसे संतों का दर्शन और संग मिलता है और उससे विवेक जागता है। जब विवेक का सूर्य उदय होता है, तो अज्ञान का सारा अन्धकार नष्ट होता चला जाता है। इसी बात को हमारे गोस्वामीजी कहते हैं -

बिनु सतसंग बिबेक न होई । राम कृपा बिनु सुलभ न सोई ॥
आवत एहिं सर अति कठिनाई । रामकृपा बिनु आइ न जाई ॥
(रामचरितमानस 1/3/4, 1/38/3)

सत्संग की सरिता में सरावोर होने का सौभाग्य उन्हीं सत्पुरूषों को प्राप्त होता है, जिन्हें गोविन्द अपनी कृपामयी चुम्बक से खींचकर लाते हैं। वे न चाहें तो छुट्टी लिए बैठे रहो, सात दिन इधर-उधर के गोरखधन्धो में निकल जायेंगे, पर एक क्षण का भी समय कथा सुनने का नहीं मिल पाता। चाहकर भी लोग नहीं आ पाते। आते वही हैं, जिन्हें श्रीहरि अपनी कृपा की चुम्बक से खींचकर बुला लेते हैं।

नारदजी बोले, महाराज! मेरा परम सौभाग्य है कि आप-जैसे संतों का मुझे दर्शन प्राप्त हुआ। अब तो मैं आपके ही श्रीमुख से भागवतसंहिता श्रवण करना चाहता हूँ। सनकादिक बोले, नारदजी! हमें तो एक ही प्यारी जगह लगती है। माँ गंगा के पावन-पुलिन पर हरिद्वार है, उसी के आनन्दतट पर कथा होगी।

गङ्गाद्वार समीपे तु तटमानन्दनामकम्

एक बात विचारणीय है कि जब कहीं भी कथा करनी थी, तो बद्रीनाथ में ही कर लेते? बद्रीनाथ से उतरकर हरिद्वार में आयोजन करने क्यों आये? इसका समाधान यह है कि बद्रीनाथ में कथा तो प्रेम से हो जायेगी, पर श्रोता कहाँ मिलेंगे? यह उस काल की बात है, जब लोग प्रायः महाप्रयाण करने ही जाते थे। गिने-चुने लोग तो बद्रीनाथ पहुँच पाते थे। और जो पहुँच जाते थे, वह इतने सिद्ध कोटि के होते थे कि उनकी समाधि ही लग जाती। तो पहले तो गिने-चुने लोग, उसमें भी सब समाधि लगाये बैठे हैं; तो वहाँ कथा कौन सुनेगा? इसलिए नीचे उतरकर हरिद्वार में आये। दूसरी बात, ज्यादा नीचे भी इसलिए नहीं गये कि जो सिद्ध कोटि के संत हैं, वह संसारियों के बीच ज्यादा नहीं जाते। हरि का द्वार है यह हरिद्वार। यहाँ पर यह कथा का ज्ञानदीप प्रज्जवलित हुआ, तो ऊपर-नीचे, बाहर-भीतर सर्वत्र इसका प्रकाश पहुँचेगा। दिल्ली वाले कथा सुनना चाहें, तो छुट्टी लेकर हरिद्वार आ सकते हैं। और बद्रिकाश्रम की पर्वतमालाओं में विराजमान जो सिद्ध कोटि के संत हैं यदि वे सुनना चाहेंगे, तो अपनी समाधि छोड़कर हरिद्वार तक आयेंगे।

जीवन् मुक्त ब्रह्म पर चरित सुनहिं तजि ध्यान

महात्मालोग ध्यान-समाधि, आदि छोड़कर नीचे आ जायेंगे और संसारी लोग नीचे से थोड़ा ऊपर आ जायेंगे। इसलिए यह भव्य-आयोजन मध्य की भूमि हरिद्वार में ही करना श्रेष्ठ होगा। तो नारदजी सनकादिक चारों भैयाओं के साथ हरिद्वार की पावन भूमि में आये। और नारदजी ने बढ़िया गंगाजी की रेती इकट्ठी करके एक छोटा-सा मंच बना दिया। चारों भैया उसी पर व्यासपीठ समझकर बैठ गए। और गद्दा और बिछौने की कोई जरूरत नहीं। गंगाजी की नवकोमल बालू कण में ही महात्माओं की आसन जम गई। गंगामैया के पावन-पुलिन पर प्रेमपूर्वक भगवान् की मंगलमयी कथा सनकादियों ने प्रारम्भ कर दी। ऋषि-मुनियों को पता चला तो सब दौड़े भागे चले आ रहे हैं -

भृगुर्वसिष्ठश्च्यवनश्च गौतमो मेधातिथिर्देवलदेवरातौ ।
रामस्तथा गाधिसुतश्च शाकलो मृकण्डुपुत्रात्रिजपिप्पलादाः ॥
योगेश्वरौ व्यासपराशरौ च छायाशुको जाजलिजह्नु मुख्याः ।
सर्वेऽप्यमी मुनिगणाः सहपुत्रशिष्याः स्वस्त्रीभिराययुरतिप्रणयेन युक्ताः ॥

(भा. मा. 3/13-14)

जो गृहस्थ संत थे, वह अपने स्त्री-पुत्रादि के साथ दौड़े-दौड़े आये। जो विरक्त संत थे, वह अपने शिष्य परिकर को साथ में लेकर आये। सब ऋषि-मुनि दौड़े-दौड़े आये और देखते-देखते गंगातट ऋषियों से भर गया। कोई जय-जयकार बोल रहा है, कोई शंख फूंक रहा है।

जयशब्दो नमःशब्दः शंख शब्दस्तथैव च

गंगातट जयघोष से गूँज उठा। अब उस पावन संतों के समाज के मध्य सनकादियों ने कथा का शुभारम्भ किया।

सदा सेव्या सदा सेव्या श्रीमद्भागवती कथा ।
यस्याः श्रवणमात्रेण हरिश्चित्तं समाश्रयेत् ॥ (भा. मा. 3/25)

(सनकादि कहते हैं -) भगवान् की कथा सदैव श्रवण करने योग्य है। इसके श्रवण करने मात्र से चित्त में

हरि चिपक जाते हैं। वह टेढ़ी टाँग वाला द्रवीभूत चित्त में ऐसा गड़ जाता है कि तुम निकालना भी चाहोगे, तो निकलेगा नहीं। पुरूषसूक्त, गायत्री, आदि के जप से जो सुकृत प्राप्त होता है, वह भागवत के श्लोक-श्लोक के पाठ करने मात्र से प्राप्त हो जाता है। और मानव-तन पाकर भी जिसने इस परमलाभ को प्राप्त नहीं किया, वह चाण्डाल के समान है, गधे के समान है, श्वास लेता हुआ मुर्दे के समान है - इस प्रकार न जाने कितनी गालियाँ दे डालीं। नारदजी ने पूछा, महाराज! आप क्यों गाली देते हो? सनकादिक बोले, यह गाली हम नहीं दे रहे,

एवं वदन्ति दिवि देवसमाजमुख्याः

ऐसा आकाश में खड़ा पूरा देवसमाज कहता है कि इन अभागों को देखो। भगवान् के चरितामृत की पवित्र धारा बह रही है और यह उसमें आचमन और अवगाहन नहीं करते। हम लोग अमृत का कलश लेकर गये, फिर भी भगा दिये गये। इन्हें तो यह कथामृत सुलभ है, पर यह लोग इसका लाभ नहीं लेते। इसलिए उन जीवों के दुर्भाग्य पर देवता उन्हें गालियाँ देते हैं। सनकादिक चारों भाई भागवत की महिमा मुक्तकण्ठ से गा ही रहे थे कि उसी क्षण एक दिव्य अलौकिक नाम संकीर्तन की ध्वनि सुनाई पड़ी। सबने क्या देखा?

भक्तिः सुतौ तौ तरूणौ गृहीत्वा प्रेमैकरूपा सहसाऽऽविरासीत्।
श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे नाथेति नामानि मुहुर्वदन्ती ॥ (भा. मा.3/67)

भक्ति महारानी अपने पुत्र ज्ञान और वैराग्य के साथ सबके बीच में प्रकट होकर ता-ता-थैया करके नाच उठीं और झूम-झूमकर नाम-संकीर्तन गा उठीं। समस्त श्रोता-समुदाय भक्तिमैया के साथ भगवन्नाम-संकीर्तन में लीन हो गये।

कीर्तन - श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारी । हे नाथ नारायण वासुदेव ॥

भगवान् के मधुर मंगलमय नामों का दिव्य-संकीर्तन करती हुई माता भक्ति श्रोता समुदाय के बीच प्रकट हो गई। श्रोताबन्धु सब तर्क-वितर्क करने लगे,

कथं प्रविष्टा कथमागतेयं मध्ये मुनीनामिति तर्कयन्तः

यह कहाँ से आई? कब इन्होंने हमारे बीच प्रवेश किया, पता ही नहीं चला कैसे प्रकट हो गई? सनकादियों ने कहा, भाई! जहाँ भगवान् की मंगलमयी मधुरकथा होती है, वहाँ पर भगवती भक्ति महारानी स्वतः प्रकट होती हैं। भक्तिमैया ने सनकादियों से प्रणाम करके पूछा, भगवन्! यहाँ आपने बैठने की अलग-अलग व्यवस्थायें सबको दी हैं, परन्तु **'अहं क्वतिष्ठामि'**, महाराज! मैं कहाँ बैठूं? मेरा स्थान कौन-सा है? सनकादियों ने कहा, देवि! यहाँ जितने भी वैष्णवभक्त श्रोता-समुदाय जो बैठा है, उन सबके हृदयभवन में जाकर आप विराजमान हो जाइये। क्योंकि त्रिभुवन में वही धन्य है, जिसके हृदयभवन में भक्ति का निवास है। जिसके भवन में भक्ति महारानी विराजमान हो जायें, फिर उसे भगवान् के पीछे नहीं भागना पड़ता, वरन् भगवान् ही उसके पीछे-पीछे भागते हैं।

सकलभुवन मध्ये निर्धनास्तेऽपि धन्या निवसति हृदि येषां श्रीहरेर्भक्तिरेका ।
हरिरपि निजलोकं सर्वथातो विहाय प्रविशति हृदि तेषां भक्तिसूत्रोपनद्धः ॥

(भा. मा. 3/73-74)

त्रिभुवन में वही धन्य हैं, जिसके हृदयभवन में भक्तिमहारानी विराजमान हैं। क्योंकि भगवान् जिस भवन में

भक्ति को देखते हैं, फिर अपना वैकुण्ठ त्यागकर, उस भक्त के हृदय में भगवान् जबरदस्ती घुसपैठ करते हैं। और एक बार सरकार घुस पाये, फिर भक्त कितनी भी कोशिश कर ले, फिर निकलने वाले नहीं हैं।

भाई! भवन सुन्दर हो और भगवान् की प्रिया भक्ति से समन्वित हो, तो भगवान् भला कैसे कब्जा न करें? खाली मकान पर ही कब्जा होता है, भगवान् भवन में झाँककर देखते हैं। जब देखते हैं कि काम, क्रोध, मोह, लोभ, मद, मोह, मत्सर, ईर्ष्या, द्वेष, छल, कपट, - अरे साहब! इस भवन में तो बड़ी लम्बी सेना भरी है। तो अपने लिए स्थान रिक्त न पाकर ठाकुरजी लौट पड़ते हैं। और जब झाँककर देखते हैं कि भवन एकदम खाली है। भवन खाली होने के साथ-साथ सुन्दर भी है और भगवान् को जब उस भवन में अपनी प्राणप्रिया भक्तिदेवी का दर्शन भी हो जाये तो फिर भगवान् कैसे भी अपने आपको रोक नहीं पाते हैं। ऐसे खाली मकान पर भगवान् का तो तुरन्त कब्जा करने का मन होता है। जिस भवन में भक्तिदेवी रहती हैं, उस भवन को ऐसा परिष्कृत-परिमार्जित कर देती हैं कि भगवान् के अनुकूल उसका श्रृंगार कर देती हैं सुसज्जित कर देती हैं। अब मकान खाली, वह भी सजा हुआ, उस पर भी कृष्णप्रिया भक्ति का उसमें निवास होय तो फिर ठाकुरजी कैसे छोड़ें? **'प्रविशति हृदि तेषां'**, हठात् उस भवन में घुस पड़ते हैं। और एक बार प्रवेश कर पाये, तो भक्तिसूत्र में बँध जाते हैं। भगवान् को बाँधने वाली भगवान् की प्रिया भक्ति महारानी है। ऐसा प्रेमपाश में प्रभु को बाँधती हैं कि यदि यह जाना भी चाहें, तो जा ही नहीं सकते। ठाकुरजी का ही वह मकान छोडने का मन ही नहीं होता।

श्रीसूतजी कहते हैं, हे ऋषियों! अब देवर्षि नारद ने सनकादियों से कहा कि भगवन्! हमने प्रत्यक्ष देख लिया कि श्रीमद्भागवत के श्रवण से ज्ञान और वैराग्य के साथ भक्ति किस प्रकार से पुष्ट होकर नाचती हैं। परन्तु, अब यह प्रश्न करना चाहता हूँ कि श्रीमद्भागवत के सुनने से केवल भक्ति, ज्ञान और वैराग्य ही पुष्ट होते हैं अथवा पापियों के पापों का भी प्रक्षालन हो सकता है? यदि हो सकता है, तो कैसे-कैसे पापों का शोधन सम्भव है।

के के विशुद्ध्यन्ति वदन्तु मह्यम्

सनकादिक मुस्कुराते हुए बोले, नारदजी! कैसे-कैसे पापी तरते हैं, इसे तो छोड़ो। हम तो यह कहते हैं कि जिसने जीवन में पाप के अतिरिक्त दूसरा कोई काम ही नहीं किया हो (अत्याचार, दुराचार, भ्रष्टाचार, पापाचार में ही अपने जीवन को जिसने समर्पित कर दिया), ऐसा महापापी कदाचित जीवन में एक बार भी कथा न सुन पाये तो मरने के बाद कहीं भूत-प्रेत की योनि में जाकर सुने, तो भी वह परमपावन हो जाता है।

ये मानवाः पापकृतस्तु सर्वदा सदा दुराचाररता विमार्गगाः ।
क्रोधाग्निदग्धाः कुटिलाश्च कामिनः सप्ताहयज्ञेन कलौ पुनन्ति ते ॥ (भा. मा. 4/11)

नारदजी बोले, वाह महाराज! गजब कर दिया आपने। जीते-जी की बात छोड़ दो, मरने के बाद भी सुनकर तर जाये। ऐसा कभी आज तक सम्भव हुआ है? कोई प्रमाण है क्या? सनकादिकों ने कहा, हाँ नारदजी! हम तुम्हें एक इतिहास सुनाते हैं।

गोकर्णोपाख्यान :-

अत्र ते कीर्तयिष्याम इतिहासं पुरातनम् ।
यस्य श्रवणमात्रेण पापहानिः प्रजायते ॥ (भा. मा. 4/15)

हे ऋषियो! ये इतना सुन्दर पावन इतिहास है कि इसके सुनने से भी पापों का शोधन होता है। तुंगभद्रा नदी

के किनारे एक गाँव में एक पण्डितजी रहते थे। उनका नाम था पण्डित आत्मदेव शर्मा। द्वितीय-भास्कर समान बड़े विद्वान् थे। विशुद्ध ब्राह्मणवृत्ति से जीविका चलाते थे, सम्पन्न थे। उनकी धर्मपत्नी का नाम श्रीमती धुन्धुली देवी था। पतिदेव जितने विद्वान् और सुशील स्वभाव के थे, ठीक इसके विपरीत उनकी धर्मपत्नी-

लोकवार्तारता क्रूरा प्रायशो बहुजल्पिका ।
शूरा च गृहकृत्येषु कृपणा कलहप्रिया ॥ (भा. मा. 4/19)

भयंकर झगड़ालु थी। जबतक पड़ौसिन से लाठीचार्ज न हो जाये, तबतक उसका भोजन ही हज़म न होय - इतना खतरनाक स्वभाव। इधर-से-उधर चुगली करके आपस में लोगों का झगड़ा करवाना, या झगड़ा कर बैठना, यह सब विचित्र स्वभाव। पर ब्राह्मण इतने सीधे और सरल थे कि उसमें भी अपना निर्वाह कर रहे थे। दोनों दम्पत्ति के मन में एक ही कष्ट था कि कोई सन्तान नहीं है। ब्राह्मण के मन में तो एक दिन इतनी पीड़ा हुई इस बात को लेकर कि **'गृहं त्यक्तवा वनं गतः'** वह ब्राह्मण घर छोड़कर वन की ओर चला गया और एक वृक्ष के नीचे बैठा-बैठा आँसू बहाने लगा। एक संत निकल पड़े। ब्राह्मण की आँखों में आँसू देखे तो विचार आया कि इस वन में एकान्त में आँसू बहा रहा है। निश्चित ही प्रभु के लिए रो रहा होगा। कोई भगवत्प्राप्ति का मुमुक्षु जिज्ञासु है, चलो कुछ मार्गदर्शन करते हैं। संत चले गये पूछ लिया -

कथं रोदिषि विप्र त्वं का ते चिन्ता बलीयसी ।
वद त्वं सत्वरं मह्यं स्वस्य दुःखस्य कारणम् ॥ (भा. मा. 4/26)

संत ने पूछा, भाई! क्यों रो रहे हो? कौन-सी चिन्ता सता रही है? शीघ्र हमें बताओ। ब्राह्मण ने देखा कि संत सहानुभूति दिखा रहे हैं। ब्राह्मण संत के सम्मुख और मुक्तकण्ठ से रो पड़ा और चरणों में चिपक गया,

किं ब्रवीमि ऋषे दुःखं पूर्वपापेन संचितम् ।
मदीयाः पूर्वजास्तोयं कवोष्णमुपभुञ्जते ॥ (भा. मा. 4/27)

महाराज! अपने मन की बात आपको क्या बताऊँ? न जाने पूर्वजन्म के कितने पाप उदय हो गये। पूर्वजों को जल देता हूँ, तो उनकी आँखों से आँसू आ जाते हैं क्योंकि मेरे बाद उन्हें कोई जल देने वाला नहीं है। भगवान् का दिया घर में सब कुछ है, पर सन्तान के बिना वह घर काटने को दौड़ता है। महाराज! मैंने एक गाय पाली पर वह भी बांझ है। उस गाय के कोई बछड़ा नहीं हुआ। बरसों से घर में बंधी है। एक वृक्ष लगाया, वह भी कितना बड़ा हो गया, पर अब तक उसमें एक फल नहीं आया है। बताईये! मेरा दुर्भाग्य। संत ने मन ही मन सोचा, राम-राम! हम तो कुछ और सोचकर आये थे। हमनें तो सोचा कि प्रभु के लिए रो रहा होगा, तो मार्गदर्शन करूँगा? पर ये तो पुत्र के लिए रो रहा है। फिर भी अब इसका मार्गदर्शन कुछ-न-कुछ तो करना ही चाहिये। संतजी ने समझाने का प्रयत्न किया -

मुञ्चाज्ञानं प्रजारूपं बलिष्ठा कर्मणो गतिः ।
विवेकं तु समासाद्य त्यज संसारवासनाम् ॥ (भा. मा.4/34)

ऐ ब्राह्मण! क्या बेटा-बेटियों के चक्कर में रोता है? यह महा-अज्ञान है। कर्मों की गति बड़ी गहन और बलवती है। इसलिये विवेक से काम लो और संसार की बेटा-बेटी की वासना को निकाल दो। कौन किसका बेटा? ब्राह्मण! तुमने इतिहास पढ़ा होगा या सुना होगा। राजा सगर के साठ हजार बेटा हुये थे। पर कौन-से बेटे ने सगर को सुख दिया? कपिल भगवान का अनादर करके सभी भस्म हो गये। पीढ़ियां लग गई तपस्या

करते-करते, तब जाकर भगीरथ पूर्वजों का उद्धार कर पाये। धर्मात्मा अंग का नाम सुना होगा? संतानहीन थे। बड़े-बड़े यज्ञ किये, तब जाकर एक बेटा हुआ सो निकल पड़ा महा-नास्तिक वेन। ऐसा नास्तिक निकला कि घर छोड़कर बाप को ही भागना पड़ा। तो बेटे के हो जाने से तुम सुखी हो ही जाओगे, इसका क्या निश्चय है?

आत्मदेव ब्राह्मण ने कहा, सुनो महाराजजी! यह प्रवचन देना तो मुझे भी बहुत आता है, मैं भी पढ़ा-लिखा हूँ। अरे! आप बाबा-वैरागी बेटे का सुख जानते ही क्या हो? छोटे-छोटे बच्चे पापा-पापा कहते हैं, तुतला-तुतलाकर मीठी-मीठी बातें करते हैं, तो इतना आनन्द आता है। कानों में रसगुल्ला-सा घुल जाता है। उस तोतली वाणी सुनने के लिए मेरे कान कब से तरस रहे हैं। मुझसे कोई बात करने वाला बालक ही घर में नहीं है।

गृहस्थः सरसो लोके पुत्रपौत्रसमन्वितः

छोटे-छोटे बच्चों की किलकारियों से गूँजते हुए घर-गृहस्थी का आनन्द ही कुछ अनोखा होता है। मुझे आपका कोई प्रवचन नहीं सुनना है। मुझे तो बेटा चाहिये। संत समझ गये कि इसे बेटे का भूत सवार है। इस समय यह और कुछ नहीं सुनेगा। संतजी बोले, सुनो ब्राह्मण! मैंने तेरे ललाट की रेखाओं को पढ़ लिया है। तेरे माथे में तो स्पष्ट लिखा है कि

सप्तजन्मावधि तव पुत्रो नैव च नैव च

तू आज की बात छोड़, सात जन्म तक तुझे कोई सन्तान नहीं होगी। इतना सुनते ही ब्राह्मण का दुःख सात-गुना हो गया। जोर से सिर उठाकर संतजी के चरणों में पटका। संतजी घबरा गये, अरे ब्राह्मण! क्या कर रहे हो? मर जाओगे। ब्राह्मण ने कहा, मरने तो मैं बैठा ही था, मैं अपने दुख से वैसे-ही मर रहा था। आपने दुख दूर करने की जगह सात गुना और बढ़ा दिया। मैं तो इसी जन्म के लिये रो रहा था, आपने सात जन्मों का हिसाब और सुना दिया। अब या तो मुझे बेटा दो महाराज! नहीं तो दूसरी बार इतनी जोर से सिर पटकूँगा कि मेरे तो प्राण ही निकल जायेंगे। मैं तो निश्चित् मर ही जाऊँगा पर आपको भी जरूर ब्रह्महत्या लगेगी। मुझ ब्राह्मण का जो भी कष्ट है, उसके कारण आप बनेंगे।

संतजी की धड़कन तेज हो गई, हे भगवान! यह व्यर्थ ही ब्रह्महत्या मोल ले ली हमनें। अब यह कहता है कि इसकी मृत्यु का कलंक हमें लगेगा। भाई! मैंने क्या किया तेरा? सोच-विचारकर संतजी ने कहा, सुनो! ऐसा-ना करो भैया। जब विधाता ने तुम्हारे ललाट पर सन्तान योग नहीं लिखा, तो मैं कहाँ से दूँगा? ब्राह्मण बोला, कहीं से भी दो महाराज! मुझे इतना विश्वास है कि संतों के वचन पर विधाता को भी विचार करना पड़ता है। संत चाहें, तो विधाता के विधान को पलट दें। संतजी समझ गये कि यह छोड़ने वाला नहीं है। तुरन्त भगवान् का नाम लेकर एक फल ब्राह्मण के हाथ में थमा दिया।

इदं भक्षय पत्न्या त्वं ततः पुत्रो भविष्यति

यह फल लेकर जाओ और अपनी धर्मपत्नी को खिला देना। मुझे विश्वास है कि प्रभु ने चाहा तो निश्चित् उसको बेटा हो जायेगा। बस इतना सुनते ही ब्राह्मण खुशी के मारे उछल पड़ा। बस-बस महाराज! बन गया काम अब तो जल्दी बतलाइये, कुछ नियम तो नहीं पालने पड़ेंगे? संत बोले, नहीं-नहीं! नियम तो कुछ पालने पड़ेंगे। केवल खास नियम ज्यादा नहीं हैं। एक समय भोजन करना, पवित्रता से रहना, जीवों पर दया करना, किसी से लड़ाई-झगड़ा न करना - यह सब दो-चार नियम यदि तुमने ठीक से पालन किये, तो बहुत सुन्दर बेटा हो जायेगा। सुनते ही ब्राह्मण ने संतजी को साष्टाँग दण्डवत् प्रणाम किया और फल हाथ में लेकर घर को दौड़ लगाई।

घर आकर आत्मदेव ने अपनी पत्नी से कहा, अरी सुनती हो! देखो! क्या सुन्दर सुस्वादु फल लाया हूँ। जल्दी से पा लो। खा लोगी, तो बेटा हो जायेगा। ब्राह्मणी बड़ी चक्कर में पड़कर बोली, यह फल किसने दिया महाराज? तो आत्मदेव ने पूरी कहानी सुना डाली। अब धुन्धुली ने सोचा, भगवान् जाने किसने दिया होगा? कौन-सा मंत्र पढ़ा होगा? कोई मेरे ऊपर जादू-टोना तो नहीं चल रहा? मैं तो बहुत विचार के ही काम करती हूँ। ऐसे-ही इनकी तरह आँख मूँदकर विश्वास नहीं करती। पण्डितजी से फल तो ले लिया, पर ब्राह्मणी बोली, महाराज! आप अपना काम करो। मैं अभी शुद्ध-पवित्र होकर, पूजापाठ करके तब खाऊँगी - यों समझा-बुझा दिया। फल देकर पण्डितजी तो चले गये और आस-पड़ौस के मित्रों को कहानी सुनाने लगे, देखना! आज से नौ महीने बाद हमारे घर में भी किलकारियाँ गूंजेंगी।

अव उधर देवीजी फल लिये बैठी हैं, हे भगवान्! खाऊँ कि न खाऊँ? इतने में पड़ौसिन आ गई और बोली, बहिन धुन्धुली! यह बैठी-बैठी क्या सोच रही है? धुन्धुली ने पूरी कहानी तुरन्त ही सुनाते हुए कहा कि बहिन! मैं बड़ी झंझट में पड़ गई। आज मेरी समझ में ही नहीं आ रहा है कि इस फल को खाना चाहिए कि नहीं? पड़ौसिन ने कहा, इसमें सोचने की क्या बात है? तेरे भाग्य खुल गये जो संत की कृपा से फल मिल गया।

फलभक्षेण गर्भः स्यादगर्भेणोदरवृद्धिता ।
स्वल्पभक्षं ततोऽशक्तिर्गृहकार्यं कथं भवेत् ॥ (भा. मा. 4/45)

धुन्धुली बोली, मैंने सचमुच फल खा लिया, तो मैं गर्भवती हो जाऊँगी। और कहीं सचमुच गर्भवती हो गई, तो यह बता कि जब मेरे पेट में बच्चा होगा, तो मेरा भोजन कम नहीं हो जायेगा। और मेरा भोजन कम हो गया तो मैं कमज़ोर हो जाऊँगी और यदि कमजोर हो गई तो फिर घर का काम कौन करेगा? पड़ौसिन बोली, यह कोई बहुत बड़ी समस्या नहीं है। अरे! अपनी ननद को बुला लेना। जब अपनी ननद बुआ बन जाती है, तो बधाई तो देना ही पड़ती है? इससे अच्छा तो यह है कि चार महीने पहले से बुलाकर घर का खूब काम करवाओ और काम कराने के बदले में जितना बने सो बधाई के नाम पर देकर विदा करो।

धुन्धुली बोली, बहिन! तू नहीं जानती मेरी ननद महा चोट्टी है। चार महीने में तो मेरा पूरा घर ही साफ कर जायेगी। उससे तो अच्छा है कि कोई नौकर रख लूँ। उसी से काम करवा लूँगी। अच्छा! फल को तो मैं खा लूंगी। पर एक बात बता, मैंने सुना है कि गर्भवती स्त्री ज्यादा तेज दौड़ नहीं सकती। पड़ौसिन बोली, तुझे कहाँ दौड़ना-भागना है? तू तो घर में आराम करना। धुन्धुली बोली, घर में आराम तो करूँगी पर अचानक यदि भूकम्प आ गया तब? या घर में ही आग लग गई तब? देख बहिन! कब भागना पड़े कोई भरोसा नहीं। और कुछ भी दुर्घटना हुई तो, सब तो भाग के अलग खड़े होंगे और मरना तो मेरा होगा। मैं कैसे भागूँगी?

दैवाघाटी व्रजेद्ग्रामे पलायेद्गर्भिणी कथम्

पड़ौसिन बोली, हे भगवान! तू क्या ऊटपटांग बातें सोच रही है। यह सब सोचना बन्दकर और भगवान् का नाम लेकर फल खा ले। अच्छा बहिन! तू कहती है तो अब मैं खा ही लेती हूँ। पर एक बात और बता। मैंने ऐसा सुना है कि श्रीशुकदेवजी महाराज माँ के पेट में बारह साल तक रहे। क्या यह बात सत्य है? पड़ौसिन बोली, हाँ बहिन! सुना तो मैंने भी ऐसा ही है। धुन्धुली बोली, हे भगवान! कहीं मेरा बेटा दो-चार भी साल रह गया, तो **'तदा मे मरणं भवेत्'** - मैं तो बिना मौत के मर जाऊँगी। देख बहिन! पहले तो बालक को जन्म देने में ही समझो कि माँ का ही दूसरा जन्म होता है। और जन्म सकुशल हो जाये तो,

लालने पालने दुःखं प्रसूतायाश्च वर्तते

बालक के लालन-पालन में भी बड़े कष्ट। इसलिए मैंने तो एक ही निर्णय लिया है कि इस झंझट में मुझे पड़ना ही नहीं है। पड़ौसिन ने कहा, तेरी बुद्धि में जो आवे, सो कर। इस प्रकार और समझाकर वह तो परेशान होकर बेचारी चली गई पर,

एवं कुतर्कयोगेने तत्फलं नैव भक्षितम्

धुन्धुली ने इतने कुतर्क किये कि अन्ततोगत्वा उस फल को खाया ही नहीं। पतिदेव लौटकर शाम को आये और पूछा, देवि! फल खा लिया? धुंधली ने झूठ बोलकर पण्डितजी को सन्तुष्ट करते हुए कहा, हाँ महाराज! वह तो तभी खा लिया था।

दूसरे दिन इसकी छोटी बहिन मिलने आई। धुन्धुली बोली, अरी बहिन! तू खूब आई। आज मैं ऐसे चक्कर में फंसी हूँ। तू मेरा कुछ समाधान कर। धुंधली ने पूरी कहानी अपनी बहन को सुना दी। अब छोटी बहिन यही चाहती थी कि इसके कोई भी न हो। मेरे कई बच्चे हैं, एक बच्चा इसे दे दूँगी, तो इसका माल मेरा हो जायेगा। छोटी बहन ने और माथा खराब कर दिया, ऐ बहिन! बातों में मत आना। यह बाबा-वैरागी दुनिया को पागल बनाते फिरते हैं। फल खाने से भी कहीं बेटे होते हैं? सब बकवास है। अरे! तुझे थोड़ी-सी भी सच्चाई मालूम पड़ती हो, तो इस फल का प्रयोग तू अपनी गाय पर क्यों नहीं करती? वर्षों से यह गैया तेरे घर में बँधी है। उस गाय को फल खिला देखें क्या होता है? और तू अपनी चिन्ता मत कर। मैं इस समय गर्भवती हूँ। अबकी बार जो मेरे बच्चा होगा, वह तेरा। तुझे ही दूँगी। रही बात पतिदेव की, तो थोड़ा पैसा दे देना। मैं उनका मुँह बन्द कर दूँगी। किसी को कानों-कान भनक नहीं पड़ेगी। तुझे कोई कष्ट नहीं होगा, बेटा का बेटा मिल जायेगा। अरे! मुझमें-तुझमें कोई अन्तर है क्या बहिन? धुन्धुली छोटी बहिन की बातों पर प्रसन्न हो गई। बहिन! बहिन हो तो तेरी जैसी। तूने मेरी सारी समस्या एक क्षण में दूर कर दी। अपना बेटा जरूर दे देना। उसने बहिन की बातों में आकर अपनी गाय को चुपचाप फल खिला दिया।

पतिदेव को विश्वास दिलाती रही, महाराज! मुझे बहुत फायदा हो रहा है। पण्डितजी बड़े भोले-भाले प्रसन्न हो रहे हैं। कालान्तर में छोटी बहिन के बेटा हुआ, उसने रात में आकर धुन्धुली को सौंप दिया। धुन्धुली ने वह बच्चा गोद में लेकर अपने पतिदेव को दिखा दिया, देखो महाराज! मुझे बेटा हुआ है। भोले-भाले पण्डितजी खुशी से नाचने लगे। उसके ठीक तीन माह बाद जिस गाय को फल दिया था, उस गाय के भी बेटा पैदा हो गया। परम सुंदर कनककांति उस बालक की थी।

सर्वांगसुंदरं दिव्यं निर्मलं कनकप्रभम्

गाँव वालों को पता चला तो देखने वालों की भीड़ लग गई। पण्डितजी! बधाई हो। भगवान् देते हैं, तो छप्पड़ फाड़कर देते हैं। कहाँ तो एक बेटा नहीं था? अब देखो तो गाय ने भी बेटा दे दिया, दो-दो बेटे हो गये।

भाग्योदयोऽधुना जात आत्मदेवस्य पश्यत ।
धेन्वा बालः प्रसूतस्तु देवरूपीति कौतुकम् ॥ (भा. मा. 4/64)

विधाता का कौतुक तो देखो? एक गाय ने मानव पुत्र को जन्म दिया। हमारे पण्डितजी का तो भाग्योदय हो गया। लोगों ने खूब बधाईयाँ दीं, बड़ा भारी उत्सव मना। पण्डितजी ने नामकरण संस्कार किये। गाय के पुत्र के कान गाय जैसे हैं, इसलिये इसका नाम गोकर्ण रखा। अपने बेटे का बढ़िया-सा नाम सोच रहे थे कि धुन्धुली

खड़ी हो गई, सुनो जी! नौ महीने कष्ट मैंने भोगे हैं, तो नाम भी मैं ही रखूँगी। अच्छा बताओ, क्या नाम रखना है? धुन्धुली बोली, मेरा नाम धुन्धुली, तो मेरे बेटे का नाम धुन्धुकारी होना चाहिये। ठीक है देवी! जैसी आपकी इच्छा। धीरे-धीरे दोनों बालक बड़े हुए। तो ख्याती तो दोनों ने ही प्राप्त की, पर एक विख्यात हुआ और दूसरा कुख्यात।

कियत्कालेन तौ जातौ तरूणौ तनयावुभौ ।
गोकर्णः पण्डितो ज्ञानी धुन्धुकारी महाखलः ॥ (भा. मा. 4/66)

बालक ज्यों-ज्यों बड़े होते गये, गोकर्णजी उतने ही प्रकाण्ड विद्वान् होते चले गये और धुन्धुकारी उतना ही दुष्ट-दुराचारी होता चला गया। **'गोकर्णः पण्डितो ज्ञानी'** पण्डित का अर्थ है। **'सत-असत् विवेचनी बुद्धिः पण्डा, सा अस्य संजाता सः पण्डितः'** - सत् और असत् का जो ठीक से विवेचन कर सके, ऐसी बुद्धि का जो मालिक है, वह पण्डित है। इसलिये तो भगवान् ने अर्जुन को डाँटा, पण्डित ऐसा थोड़े सोचते हैं, जैसा तू सोच रहा है?

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे ।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः ॥ (भगवद्गीता 2/11)

सत-असत् का जिसमें विवेक हो, वह पण्डित है। ऐसे महान् पण्डित श्रीगोकर्णजी महाराज हुए। और धुन्धुकारी तो चोरी करने लगा, दुराचार में प्रवृत्त हो गया, जुआरी बन गया। घर का जितना धन था, एक-एक करके सब ठिकाने लगा दिया। व्यभिचार में प्रवृत्त हो गया। एक दिन तो घर के बर्तन तक उठाकर बाज़ार में बेच दिये। अब तो पण्डितजी सिर पकड़कर रोने लगे।

क्व तिष्ठामि क्व गच्छामि को मे दुःखं व्यपोहयेत् ।
प्राणांस्त्यजामि दुःखेन हा कष्टं मम संस्थितम् ॥ (भा. मा. 4/72)

हे भगवान! कहां जाऊँ? कहाँ बैठूँ? किसे अपनी व्यथा-कथा सुनाऊँ? ऐसे जीवन से तो अच्छा है कि कहीं जाकर मर जाऊँ। **'प्राणांस्त्यजामि दुःखेन'** पुत्र के इन दुर्गुणों से दुखित हुए ब्राह्मण आज मरने की सोचने लगे। पहले भी मरने जा रहे थे क्योंकि बेटा नहीं है। आज भी मरने जा रहे हैं कि बेटा क्यों हुआ? यही विडम्बना है। जब अत्यन्त दुखित होकर निकल पड़े, तब गोकर्णजी की दृष्टि पड़ गई। पिताजी की मनःस्थिति को समझकर, एकान्त में बैठाया और समझाने लगे, पिताजी! यह बताइये आपको संसार में सुखी कौन दिखाई पड़ रहा है? यह संसार दुःखालय है, सुख का केवल भ्रम है। पिताजी! अब हमारी-आपकी तो बात छोड़ दीजिये, तीनों लोकों के अधिपति इन्द्र से भी पूछिये तो वह भी परेशान हैं। चक्रवर्ती की गद्दी पर जो बैठा है, वह भी परेशान है।

न चेन्द्रस्य सुखं किंचिन्न सुखं चक्रवर्तिनः ।
सुखमस्ति विरक्तस्य मुनेरेकान्तजीविनः ॥ (भा. मा. 4/75)

पिताजी! संसार में सभी दुखी हैं क्योंकि यह संसार दुःखरूप ही है। सुखी तो केवल एक ही है, जो सबसे विरक्त होकर एकान्त में भगवद्-भजन में मस्त हो गया। जिसके मन में कोई कामना-वासना शेष नहीं रह गई, केवल वही महापुरुष इस संसार में सुखी है। जीव स्नेह के पाश में बँधा हुआ इस संसार के अन्धकूप में पड़ा हुआ है। बुद्धि मान वही है, जो इस कुएँ से अपने को निकाल ले। आत्मदेव ने पूछा, बेटा! तो मैं क्या करूँ? मैं भी इस संसार से मन हटाना चाहता हूँ, पर मन लगता नहीं है। गोकर्णजी कहते हैं, उसका हम उपाय बताते हैं-

देहेऽस्थिमांसरुधिरेऽभिमतिं त्यज त्वं जायासुतादिषु सदा ममतां विमुञ्च ।
पश्यानिशं जगदिदं क्षणभंगनिष्ठं वैराग्यरागरसिको भव भक्तिनिष्ठः ॥
धर्मं भजस्व सततं त्यज लोकधर्मान् सेवस्व साधु पुरुषान् जहि कामतृष्णाम्।
अन्यस्य दोषगुणचिन्तनमाशु मुक्त्वा सेवाकथारसमहो नितरां पिबत्वम् ॥

(भा. मा. 4/79-80)

गोकर्णजी कहते हैं, पिताजी! ध्यान से सुनिये। जीव को संसार में बाँधने की दो रस्सियां हैं। उन रस्सियों के नाम हैं, अहमता और ममता। देह में अहमता और देह के नातों में ममता - इन दो रस्सियों में जीव बँधा हुआ है। यह पांचभौतिक देह जो पंचायती-धर्मशाला है, इस धर्मशाला में कमरा बुक कर लिया है, तो आराम से रहो। पर तुम उस पर आधिपत्य स्थापित करने का प्रयास न करो। क्योंकि पंचों की धर्मशाला पर किसी का कब्जा नहीं हो सकता, वह धक्का मारकर निकाल देगा।

छिति जल पावक गगन समीरा ।
पंच रचित यह अधम सरीरा ॥ (रामचरितमानस 4/11/2)

इन पंचतत्वों ने यह पंचायती-धर्मशाला अपने-अपने अंशदान करके बनाई है, हम लोग प्रेम से रहें। पर हमलोग तो कब्जा ही कर बैठे? कोई एक बार रहने के बाद खाली करना ही नहीं चाहता? इसलिये पिताजी! देह पर बारम्बार विचार करने से देहासक्ति छूट जाती है। यह शरीर मांस, मेद, मज्जा, स्नायु, आदि से विनिर्मित है -

अस्थिस्तम्भं स्नायुबद्धं मांसशोणितलेपितम् ।
चर्मावनद्धं दुर्गन्धं पात्रं मूत्रपुरीषयोः॥ (नारदपरिव्राजकोपनिषद् 3/46)

ईंट, गारे, सब भरे पड़े हैं, दीवालों पर बढ़िया डेंटिग-पेंटिग कर दिया इसलिये चमक मारने लगे। तो यही स्थिति तो इस भवन की है? जिसमें हम देहात्मबुद्धि किये बैठे हैं, इस नाशवान् शरीर को आत्मा मान लेना, यह पहली रस्सी है। और दूसरी? **'जायासुतादिषु सदा ममतां विमुञ्च'** - अरे! जब देह ही हमारा नहीं, तो देह के नाते हमारे कहाँ से हो जायेंगे? अतः उन सबकी ममता को त्यागना चाहिये।

हमने जहाँ रेल में रिजर्वेशन करवाया और यात्रा की तिथि में हम अपनी बर्थ पर जाकर, कब्जा करके बैठ गये। गाड़ी चल पड़ी। और भी कई उस डिब्बे में यात्री बैठे थे, आसपास उनसे राम-राम होने लगी। गाड़ी चल पड़ी यात्रा का शुभारम्भ हो गया और बातों-बातों में, यात्रियों से गपशप करते-करते, घनिष्टता बढ़ गई। चर्चा करते-करते, अचानक सामने वाले का स्टेशन आ गया। उसने बोरिया-बिस्तर बाँधे, अच्छा भैया! चलते हैं हमारा टिकट पूरा। हमें यहीं उतरना था। आपने भी हाथ जोड़े और 'राम-राम' कहकर विदा कर दिया। उसकी सीट खाली हुई, तो वहाँ दूसरा यात्री आ गया। भैया! यहाँ से हमारा रिजर्वेशन है। जिसका जहाँ-जितना यात्रा का टिकट हो उतरते जा रहे हैं।

मानव-जीवन की यात्रा में जैसी-ही हमने अपनी यात्रा का शुभारम्भ किया, गाड़ी में बैठे कि सहयात्री मिल गये। माताजी, पिताजी, भैयाजी, बहिनजी, दादाजी, बाबाजी, काकाजी, फूफाजी, आदि सब हमारे जीवन के सहयात्री हैं। कल तक जिनको जानते भी नहीं थे और अब धीरे-धीरे उनसे इतनी प्रगाढ़ता हो गई कि उनके बिना रह नहीं पाते? यात्रियों से अत्यन्त प्रीति हो गई, पर सफर में थोड़े आगे चले कि दादाजी का स्टेशन आ गया

श्मशान में जाकर विदा कर दिया, वह अपने घर चले गये। जीवन की यात्रा आगे बढ़ी, तो अब विवाह हो गया। एक नया यात्री हमारी जीवन की गाड़ी में जुड़ गया, जिसका अब तक पता नहीं था। यात्रा आगे बढ़ी तो पिताजी का स्टेशन आ गया, वह गये अपने घर। और कुछ ही दिनों में बेटा हो गया, एक नया यात्री जीवन में फिर जुड़ गया। पुराने यात्री जाते जा रहे हैं, नये-नये यात्री आते जा रहे हैं। जीवन का सफर चलता जा रहा है,

पुत्रदाराप्तबन्धूनां संगमः पान्थ संगमः

यह पांथ-संगम हैं। तो यात्रा का नियम है, यात्रियों से प्रेमपूर्वक व्यवहार करो। ताकि यात्रा का आनन्द आवे, यात्रा कहीं भार न बन जावे। इसीलिए यात्रियों से मेलजोल करके स्नेहपूर्वक यात्रा करो। पर स्नेह-आसक्ति इतनी ज्यादा न हो जाये कि जब यात्रा पूरी होवे तो उन यात्रियों को छोड़ा न जाये। अब टिकट पूरा हो गया। गाड़ी आपके स्टेशन पर खड़ी है। यहीं तक का आपके पास टिकट है और आप यात्रियों से बार-बार मिलने में ही लगे हुए हो। वाह भैया! कितना आनन्द आया आपके साथ, अब आपको तो छोड़ने का ही मन नहीं हो रहा और उधर गाड़ी चलने को तैयार, तो क्या होगा? कालाकोट वाला टीटी आयेगा और हाथ पकड़कर, धक्का मारकर हटायेगा। अरे हटिये! निकलिये! गाड़ी चलने वाली है? आप अभी तक उतरे ही नहीं? बुद्धिमान यात्री वही है कि एक स्टेशन पहले से ही बोरिया-बिस्तर बाँध ले। और जिससे मिलना-जुलना है, पहले ही मिल ले। स्टेशन पर गाड़ी आये, तुरन्त उतरिये इसी में बुद्धिमानी है।

उसी प्रकार जीवन के सफर में यह सारे यात्री तुम्हारे साथ हैं। इनसे प्रेमपूर्वक व्यवहार करो। परन्तु जब सफर पूरा हो जाये तो, उससे पहले ही तैयार हो जाओ। क्योंकि काला कोट वाला फिर यम का दूत आता है न! वह फिर एक नहीं चलने देता एक सेकिंड का भी समय नहीं देता मिलने के लिये। विशेष समय माँगा जाये, जब इतने वर्ष मिले तब भी तू बात नहीं कर पाया? जो अब एक सेकेंड मांगता है? तो भैया! वह काला कोट वाला धक्का मारकर उतारे, इससे पहले अच्छा है कि तुम ही राजी-राजी चल पड़ो। क्योंकि यात्रियों का संग तो छोड़ना ही पड़ेगा। जीवन के इस रहस्य को जो ठीक से जान ले, वह यात्री बड़ा आनन्द से यात्रा करता है।

इसलिए पिताजी! अहंता-ममता की रस्सी को त्यागकर इस जगत् को अनित्य, नाशवान् और क्षणभंगुर समझो एक पल का भी भरोसा नहीं। संसार में राग करके क्या मिला, यह तो आप देख चुके हैं। अब वैराग्य से क्या मिलता है, उसका भी तो आनन्द लेकर देखो। पिताजी! लौकिक-धर्म का परित्याग करके परमधर्म का आश्रय लो।

कथा सुनने का लक्ष्य बनाकर आप घर से निकले। रास्ते में कोई इष्टमित्र मिल जाये तो, राधे-राधे भी कर ली दो बातें भी कर लीं और फिर चल दिये। व्यवहार निभाते हुए लक्ष्य की ओर बढ़ो। ऐसा भी नहीं कि भाई! हम इस समय कथा में जा रहे हैं, राम-राम करने की भी फुरसत नहीं। अरे! 'राम-राम' करने में कितना समय लगेगा? 'राम-राम' करने में तो कोई बुराई नहीं है, परन्तु इतने घनिष्ठता में बातें भी मत उलझाओ कि बातों-बातों में ही दो घंटे निकल गये और कथा का समय ही पूरा हो गया। निकले तो थे कथा सुनने को और मार्ग में मित्र ऐसा मिल गया कि दो घंटे उसी की चर्चा में बीत गये? तो लक्ष्य भ्रष्ट हो गया।

उसी प्रकार **'आये थे हरि भजन को, ओटन लगे कपास'** लक्ष्य क्या लेकर आये थे? यह मानव-तन उस परमतत्त्व को पाने के लिये था, जिसे पाने के बाद कुछ पाना शेष नहीं रह जाता। रही बात व्यवहार की तो जीवन चलाने के लिये थोड़ी जीविका का भी आश्रय ले लिया, कुछ व्यापार भी किया, आदि-आदि। विवाह करके

गृहस्थ-जीवन बसाया है, तो उसका भी दायित्व निभाना चाहिये। **परन्तु जीविका जीवन के लिये है, जीवन जीविका के लिये नहीं है।** पर हम तो यह ही कर बैठे? जीविका जीवन के लिये होनी चाहिये, पर हमने तो जीवन को ही जीविका के लिये समर्पित कर दिया। अंतिम क्षणों तक जीविका का ही चिन्तन करते-करते पूरा जीवन निकाल दिया।

भोजन देहयात्रा के लिये आवश्यक है, पर देहयात्रा भोजन के लिये तो नहीं है। यह शरीर भोजन के लिये धारण किया है या भोजन शरीर धारण करने के लिये किया है? आज हर व्यक्ति सम्पूर्ण जीवन अपनी जीविका में ही गंवा देता है। जीवन के स्वरूप और लक्ष्य को ही भूल जाता है। जगद्गुरु भगवान् शंकराचार्यजी कहते हैं कि जन्मना उसी का सार्थक है, जिसका दुबारा जन्म न हो। इसी प्रकार मरना भी उसी का सार्थक है, जिसे दुबारा न मरना पड़े। उसी का जन्म-मरण सार्थक है। तो भगवत्प्राप्ति के बाद जन्म-मरण ही छूट जायेगा, यही परमलक्ष्य है। परन्तु जिन माता-पिता ने जन्म दिया है, उनकी भी सेवा करो, '**मातृ देवो भव। पितृ देवो भव।**' यह भी आवश्यक है, यह लोकधर्म है। परन्तु संसार के व्यवहार में हम इतने न डूब जायें कि जीवन के लक्ष्य को ही भूल जायें। गोकर्णजी कहते हैं, इसलिए पिताजी! मानवजीवन का परमलक्ष्य है प्रभु का प्रेम और भगवत्प्राप्ति।

धर्मं भजस्व सततं त्यज लोकधर्मान् सेवस्व साधुपुरुषाञ्जहि कामतृष्णाम्

गोकर्णजी कहते हैं, पिताजी! साधु पुरूषों की संगति करो। और संसारियों का संग करोगे, तो संसार की कामनायें होंगी। संसारियों की संगति से संसार चित्त पर चढ़ता है। और जो भगवत्प्रेम में रंगे हुए हैं भगवद्-रसिक हैं, उनकी संगति करोगे तो भगवत्प्रेम आपके भीतर भी जागृत होने लगेगा। नेताओं के साथ में रहना प्रारम्भ करो, नेतागिरी अपने आप धीरे-धीरे आ जायेगी। पहलवानों के संग उठना-बैठना प्रारम्भ करो, तो पहलवानी भी आ जायेगी। जुँआरियों के साथ बैठना प्रारम्भ करो, पत्ते फेकने आ जायेंगे। ठीक इसी प्रकार से भगवद्-रसिकों का संग करोगे, तो भगवत्प्रेम अपने आप जीवन में आता चला जायेगा। जैसी संगत वैसी रंगत। तो संतों का संग करने से क्या होगा?

भजन - संतन के संग लाग रे तेरी अच्छी बनेगी

श्रीगोकर्णजी कहते हैं, पिताजी! भगवान् की मधुर-रसमयी कथा सुनो। जिसकी चर्चा ज्यादा-से-ज्यादा सुनते हैं, चित्त उधर ही खिंचता है। गोविन्द के तो चरित्र ही खींचने वाले हैं। कृष्ण शब्द का अर्थ होता है, **'कर्षति इति कृष्णः'।** जो मन को अपनी ओर आकर्षित करे, उसी का नाम है 'कृष्ण'। इसलिए भगवान् की मधुर-मधुर कथा सुनो, भगवच्चर्चा ज्यादा-से-ज्यादा करो। ऐसा करने से आपका चित्त अपने आप ही भगवद्-रसिक हो जायेगा। गोकर्णजी का एक-एक शब्द आत्मदेव की बुद्धि में बैठ गया। और

एवं सुतोक्तिवशतोऽपि गृहं विहाय यातो वनं स्थिरमतिर्गतषष्टिवर्षः ।
युक्तो हरेरनुदिनं परिचर्ययासौ श्रीकृष्णमाप नियतं दशमस्य पाठात् ॥ (भा. मा. 4/81)

साठ वर्ष की अवस्था में आत्मदेव को पुत्र की एक-एक बात अच्छी तरह चित्त में बैठ गई और तुरन्त घर को त्यागकर वन को चला गया। संतों के बीच रहकर श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध का पाठ करते हुए, भगवच्चरणारविन्द में रति करता हुआ ब्राह्मण अन्त में परमगति को प्राप्त हुआ।

अब पिताजी के वन जाते ही धुन्धकारी ने माताजी को पकड़ा, माताजी! पिताजी सारा माल तुम्हें सौंप गये होंगे, अब जल्दी-जल्दी बता दो, माल कहाँ गाड़ रखा है? कितनी तिजोरियां छुपा रखी हैं? मैया बोली, बेटा! तूने घर में छोड़ा ही क्या है? सब तो बर्बाद कर दिया। अब फूटी-कौड़ी घर में नहीं है, मैं तुझे कहाँ से लाकर दूँ? डाँटने लगा, झूठ बोलती है। नहीं बतायेगी तो जलती लकड़ी से बुरी तरह पीटूँगा,

क्व वित्तं तिष्ठति ब्रूहि हनिष्ये लत्तया न चेत्

तब तो धुन्धुली रोने लगी, हाय-हाय! यह क्या हो गया? अब तो निश्चित् ही यह दुष्ट मुझे मारेगा। कहाँ जाऊँ? क्या करूँ? कुछ समझ में नहीं आया तो रात में घर छोड़कर भाग गई और,

कूपे पातः कृतो रात्रौ तेन सा निधनं गता

अंधकुआ में गिरकर रात्रि के समय अपने जीवन का प्राणान्त कर दिया। पिताजी संतों के साथ गये और माताजी कुआँ में गिर गई। गोकर्णजी को लगा कि शायद अब हमारी बारी हैं। अतः तीर्थयात्रा करने के बहाने भैया को समझा-बुझाकर गोकर्णजी निकल गये। अब धुन्धुकारी घर में बिल्कुल अकेला रह गया तो, पाँच गणिकाओं को बाज़ार से बुलाकर घर में बैठा लिया और निरन्तर चोरी-डकैती डालकर धन-संपत्ति जो भी कमाता है, उन देवियों को लाकर सौंप देता है।

विचार कीजिये! यह आत्मदेव की कथा नहीं, हम सबकी कथा है। तुंगभद्रा नदी के तट पर रहने वाला था यह ब्राह्मण आत्मदेव। उसी प्रकार यह हमारा शरीर भी तो तुंगभद्रा है। तुंग अर्थात् श्रेष्ठ और भद्र अर्थात् कल्याण। जिसके द्वारा उत्तम कल्याण का मार्ग प्रशस्त हो, वह तुंगभद्रा। और वह हमारा मानव शरीर है। इसी में रहने वाला प्रत्येक जीवात्मा ब्राह्मण आत्मदेव है। आत्मदेवरूपी जीवात्मा तो बेचारा भोला-भाला है, पर यह संशयात्मिका बुद्धिरूपी उसकी पत्नी धुन्धुली बहुत खतरनाक है। एक दिन आत्मदेव जंगल में गया, तो उसे भगवान् की कृपा से संत का दर्शन हो गया। संत को जब अपनी समस्या बताई तो संत ने बहुत समझाया। पर आत्मदेव ने मानी नहीं। वरन् आत्मदेव बोले, हमें कुछ नहीं सुनना है, हमें तो एक बेटा चाहिये। संत ने कहा, अच्छा ठीक है! यदि बेटा चाहिये, तो यह फल अपनी पत्नी को खिला दीजिए, बेटा हो जायेगा। तो क्या पण्डितजी ने फल खिलाया? पण्डितजी ने तो स्वीकार किया कि खिला दूँगा और लाकर देवीजी को थमा दिया कि खा लेना। यदि अपने सामने ही लाकर खिला दिया होता, तो आज गोकर्ण ही आत्मदेव का बेटा होता, धुन्धुकारी की तो समस्या ही घर में पैदा न होती। परन्तु गलती कहाँ हो गई? कि खा लेना और धुन्धुली ने खाया नहीं।

उसी प्रकार हम संतों के पास भी बैठते हैं और संतों का उपदेश सुन-सुनकर हमें ज्ञानरूपी फल भी प्राप्त होता है। संतों के वचनों से जो ज्ञान प्राप्त होता है, वही दिव्यफल है। पर संत कहते हैं, जो प्रवचन सुन रहे हो, इसे घर में जाकर ज़रा मननपूर्वक अपनी बुद्धि को खिला देना। इसे अपनी बुद्धि में उतार लेना, जीवन का कल्याण हो जायेगा। पर हम लोग कथा तो बड़े ध्यान से सुनते हैं और सिर हिला-हिलाकर स्वीकार भी करते हैं। महाराजजी बहुत बढ़िया बात बोले हैं , बहुत सही कही। परन्तु बुद्धिस्वरूपा धुन्धुली हर उस बात को, जो सत्संग में बहुत अच्छी लग रही थी, अपने कुतर्क से काटकर रख देती है। और,

एवं कुतर्क योगेन तत्फलं नैव भक्षितम्

जैसे धुन्धुली ने कुतर्क करके फल नहीं खाया, वैसे ही सत्संग में संतों से प्राप्त हुआ ज्ञान का दिव्यफल अपने कुतर्क की कैंची से यह बुद्धिरूपी धुन्धुली काट डालती है और उस फल को नहीं खाती है। परिणाम क्या हुआ? धुन्धुकारी घर में आ गया। सत्संग को जब तक हम व्यवहार में नहीं उतारेंगे (आत्मसात नहीं करेंगे), तबतक यह अज्ञानरूपी धुन्धुकारी हमें सताता ही रहेगा। परन्तु एक बात ध्यान देने की है कि भले ही धुन्धुली ने फल नहीं खाया, पर उसी फल के द्वारा गोकर्ण पैदा हुआ। इसलिए आत्मदेव को रास्ता भी उसी ने दिखाया।

उसी प्रकार सत्संग में अच्छी-अच्छी बातें हम सुनते हैं। भले ही कुतर्क की बुद्धि हमें वह ज्ञान का फल खाने नहीं देती, परन्तु सत्संग के सूत्र समय आने पर जीव का मार्गदर्शन अवश्य करते हैं। जब जीवन में ऐसी स्थिति बन जाये, '**किंकर्तव्यविमूढ़ता**', जब आ जाये कि अब क्या करें? अचानक यह क्या हो गया? हर प्राणी के जीवन में ऐसा क्षण कभी-न-कभी अवश्य आता है, जब वह निर्णय लेने की स्थिति में नहीं हो पाता। उस समय जो सत्संग किया है, वही सत्संग का कोई-न-कोई सूत्र उसे मार्ग दिखाने के लिए प्रकट हो जाता है।

हाथ में टार्च है, पर बिजली का प्रकाश है तो उसकी आवश्यकता हमें समझ नहीं आती। व्यर्थ में भार प्रतीत होता है। पर एकदम लाइट चली गई और घोर अन्धकार आँखों के सामने छा जाये, तो उस समय टार्च का महत्त्व समझ में आया। लोग तो भटक गये, पर हमने अपनी टार्च निकाली और चल दिये। आत्मदेव ने सत्संग किया था, तो सँभल गया। पर धुन्धुली अपने को नहीं सँभाल पाई क्योंकि उसका जीवन सत्संगविहीन था। इसलिए कुआँ में जाकर मरी। आज आये दिन छोटी-छोटी बातों पर लोग आत्महत्या करने बैठ जाते है क्योंकि जीवन का महत्व समझा नहीं, सत्संग कभी किया नहीं। सो जब थोड़ी-सी समस्या आई, तो केवल आत्महत्या करने का समाधान निकाल बैठते हैं।

इस प्रकार श्रीगोकर्णजी महाराज तो अब तीर्थयात्रा के लिए निकल पड़े। धुन्धुकारी ने बहुत दुनिया को लूटा और लाकर गणिकाओं को धन सौंपा। एक दिन तो इतनी सम्पत्ति लूटकर लाया कि देखकर ही पाँचों देवियाँ आश्चर्यचकित हो गई। पाँचों गणिकाओं ने धुन्धकारी को मदिरा पिलाकर सुला दिया और रात्रि में विचार करने लगीं कि देखो! कितनी सम्पत्ति लेकर आया है? और आये दिन लाता रहता है? भाई! आज नहीं तो कल, किसी-न-किसी दिन तो यह निश्चित् पकड़ा जायेगा? और जिस दिन इसकी पिटाई हुई, तो उस दिन राजा के दरबार में यह हमारा भी नाम जरूर लेगा कि मैं तो इन्हें सौंपता हूँ। तो बहिन! सम्पति भी हाथ से जायेगी और अपने को भी कारावास की हवा खानी पड़ेगी। अब अपने पास धन पर्याप्त हो चुका है, इसलिए अब इसको ठिकाने लगाओ और जीवन भर आनन्द करो। तो रात में ही धुन्धुकारी को नशे में पड़ा हुआ देखकर पलंग में ही रस्सियों से बाँध दिया। गले में फंदा डालकर जैसे-ही पाँचों मारने लगीं कि धुन्धकारी चिल्लाया। एक गणिका तुरन्त गई और चूल्हे से आग के अंगारे भर लाई और धुन्धकारी के मुँह में ठूंस-ठूंसकर भर दिये -

तप्तांगारसमूहांश्च तन्मुखे हि विचिक्षिपुः ।
अग्निज्वालातिदुःखेन व्याकुलो निधनं गतः ॥ (भा. मा. 5/11)

आग के अंगारों से विकल होकर तड़प-तड़पकर धुन्धुकारी मर गया और गणिकाओं ने गड्ढा खोदकर उसके शव को गाड़ दिया। धन का बँटवारा करके पाँचों अपने-अपने घर को चलीं गईं। सनकादिक कहते हैं, नारदजी! जो धन से ही प्रेम करने वाली स्त्रियाँ हैं, ऐसी देवियों पर कभी विश्वास नहीं करना चाहिए -

सुधामयं वचो यासां कामिनां रसवर्धनम् ।
हृदयं क्षुरधाराभं प्रियः को नाम योषिताम् ॥ (भा. मा. 5/15)

इधर गोकर्णजी को यात्रा करते-करते जब पता चला कि हमारे भैया भी परलोक सिधार गये, तो गयाजी जाकर माता-पिता और भाई का पिण्डदान, श्राद्ध-तर्पण, आदि किया। लौटकर जब गोकर्णजी घर आये, तो आते-आते रात का समय हो चुका था। चुपचाप घर में आकर थोड़ा-सा स्थान साफ करके सो गये। सोते ही रात्रि में अचानक एक भेड़ का बच्चा दिखाई पड़ा। उसे ध्यान से देख ही रहे थे कि अचानक वही भेड़ का बच्चा हाथी बन गया, फिर भैंसा बन गया, फिर मानव बन गया, फिर जोर-जोर से रोने लगा। गोकर्णजी ने सावधान होकर पूछा, '**कस्त्वम्**', कौन हो भाई? लेकिन वह और जोर-जोर से रोता रहा, पर बोलता कुछ नहीं।

'**संज्ञामात्रं चकार ह**' केवल इशारा करता है, बोल नहीं पाता। गोकर्णजी ने तुरन्त हाथ में जल लेकर अभिमन्त्रित किया और उसके मुख पर मारा। तुरन्त वह प्रेतात्मा बोल पड़ा।

अहं भ्राता त्वदीयोऽस्मि धुन्धुकारीति नामतः ।
स्वकीयेनैव दोषेण ब्रह्मत्वं नाशितं मया ॥ (भा. मा. 5/27)

भैया! मैं तो तुम्हारा ही भाई धुन्धुकारी हूँ। मैं अपने ही दोषों के कारण आज ब्रह्मत्व को समाप्त करके, आज भयंकर प्रेत बना भटक रहा हूँ। कितने पाप किये, कितने दुष्कर्म किये, इसकी कोई गणना नहीं कर सकता। उन पापों का परिणाम यही है कि आज प्रेत बना भटक रहा हूँ। केवल वायु का आहार करने को मिलता है और कुछ नहीं भयंकर कष्ट पा रहा हूँ।

अहो बन्धो कृपासिन्धो भ्रातर्मामाशु मोचय

भैया! आप तो साक्षात् करूणामय-कृपामय हैं। मुझपर अनुग्रह करो, मुझे इस भयंकर पीड़ा से मुक्त करो। गोकर्णजी अपने भाई की इस विकलता और पीड़ा को देखकर बोले, भैया! मुझे जब आपके बारे में पता चला, तो मैंने गयाजी में आपका विधिवत् श्राद्ध किया है। '**तत्कथं नैव मुक्तोऽसि**', फिर तुम्हारी मुक्ति क्यों नहीं हुई? धुन्धुकारी बोला, गयाजी में एक नहीं, सौ पिण्डदान भी करोगे, तो भी कुछ नहीं होगा।

गयाश्राद्धशतेनापि मुक्तिर्मे न भविष्यति

एक-दो श्राद्धों की बात छोड़ दो, सौ श्राद्धों से भी मेरा उद्धार होने वाला नहीं हैं, क्योंकि मैं छोटा-मोटा प्रेत नहीं; प्रथम श्रेणी का प्रेत हूँ। मेरे-जैसे महाप्रेतों का ऐसे उद्धार होने वाला नहीं है। गोकर्णजी ने पूछा, भैया! और क्या किया जाये? धुन्धकारी ने उत्तर दिया, अब यह तो आप ही सोचिये, मैं क्या बताऊँ? गोकर्णजी बोले, हम तुम्हारा कल्याण सुनिश्चित-रूप से करेंगे, पर इस समय तुम चले जाओ। आश्वासन प्राप्त करके धुन्धुकारी अदृश्य हो गया।

रातभर चिन्ता के मारे गोकर्णजी को नींद नहीं आई। प्रातःकाल होते ही ब्राह्मणों को बुलाकर परामर्श लिया। जब कोई कुछ भी निर्णय करने की स्थिति में नहीं रहा, तब श्रीगोकर्णजी महाराज ने अन्त में सूर्य भगवान् का स्मरण किया,

तुभ्यं नमो जगत्साक्षिन् ब्रूहि मे मुक्तिहेतुकम्

हे जगत् के साक्षी! हे साक्षात् नारायण! हे प्रभु! कृपा करके आप ही बताओ, मेरे भाई का उद्धार कैसे होगा? प्रार्थना सुनते ही सूर्यभगवान् ने दिव्यवाणी से आश्वासन दिया,

श्रीमद्भागवतान्मुक्तिः सप्ताहं वाचनं कुरु

प्रिय गोकर्ण! जाओ अपने भाई को श्रीमद्भागवतसंहिता का सप्ताह विधि से श्रवण कराओ, निश्चितरूप से वह मुक्त हो जाएगा। सुनते ही गोकर्णजी गद्गद् हो गये और श्रीगोकर्णजी ने आषाढ़ मास में दिव्य-भव्य श्रीमद्भागवतकथा का आयोजन किया। लोगों को पता चला तो सब दौड़ पड़े।

वैष्णवं ब्राह्मणं मुख्यं श्रोतारं परिकल्प्य सः

उसी समय धुन्धुकारी भी एक सात गाँठ के बाँस में आकर बैठ गया। उस जनसमुदाय के बीच श्रीगोकणजी ने व्यासपीठ पर विराजमान होकर कथा प्रारम्भ कर दी। जैसे-ही प्रथम दिन की कथा सम्पन्न हुई कि उस बाँस की प्रथम गाँठ चटक गई। क्योंकि धुन्धुकारी उसी बाँस के भीतर प्रविष्ट होकर वायुरूप से कथामृत पान कर रहा है। एक-एक करके एक-एक ग्रन्थि गाँठि चटकती गई और

एवं सप्तदिनैश्चैव सप्तग्रन्थिविभेदनम्

सात दिन में उस बांस की सातों गाँठें चटक गई। और -

दिव्यरूपधरो जातस्तुलसीदाममण्डितः ।
पीतवासा घनश्यामो मुकुटी कुण्डलान्वितः ॥ (भा. मा. 5/51)

सात दिन का भागवत-सप्ताह सम्पन्न होते ही, एक दिव्यपुरुष उस सात गाँठ के बाँस से प्रकट हो गया और गोकर्णजी को प्रणाम करने लगा। गोकर्णजी ने पूछा, कौन हो भैया ? मंद-मंद मुस्कुराता हुआ वह दिव्यपुरुष बोला, भैया! आपने मुझे नहीं पहचाना। मैं आपका भाई वही धुन्धुकारी हूँ। उस दिव्यता को श्रीगोकर्णजी देखते रह गये। हाथ जोड़कर गोकर्णजी के सम्मुख धुन्धुकारी ने भागवत की बड़ी सुन्दर महिमा गाई -

धन्या भागवती वार्ता प्रेतपीडाविनाशिनी ।
सप्ताहोऽपि तथा धन्यः कृष्णलोकफलप्रदः ॥ (भा. मा. 5/53)

धन्य है भागवत की कथा! जिसने मुझ-जैसे पतित प्रेतात्मा को भी परमपुनीत बना दिया। अरे! सब प्रकार के पापों को भस्म करने वाली इस कथा में भला कौन अवगाहन नहीं करना चाहेगा ? यह शरीर जो नाशवान् है, प्रातः जो भोजन करते हैं, वह शाम तक बुझ जाता है। ऐसे अन्न से बनी हुई यह काया कितने दिन तक टिकेगी ? ऐसी अनित्य-काया को पाकर जो नित्य-शाश्वत परमतत्त्व को जान ले, उसी मानव की मानवता सार्थक है। अन्यथा, '**बुद्बुदा इव तोयेषु मशका इव जन्तुषु**', पानी में बुलबुला पैदा हुआ और फूट गया। मच्छर पैदा हुए और मर गये। ऐसे ही आप मानव-शरीर पाकर खाने-पीने-सोने में ही समय समाप्त करके चले गये, तो उसमें और हममें क्या अन्तर रहा? भगवान् की यह मंगलमयी कथा संसार के समस्त प्रकार के पापों को प्रक्षालन करने में समर्थ है। कथा-मंदाकिनी में स्नान करते ही जीव के समस्त पाप धुल जाते हैं।

संसारकर्दमालेपप्रक्षालनपटीयसि

सारे संसार का कीचड़ धुल जाता है। भयंकर गर्मी पड़ रही हो, लम्बी यात्रा करके पसीने से आपका शरीर लथपथ हो रहा हो, धूल-मिट्टी पूरे शरीर में लगी हो। लेकिन गंगामैया में जैसे ही गोता मारा कि गर्मी का पता ही नहीं चला, कहाँ भाग गई और धूल-मिट्टी भी सारी धुल गई, देह चमचमाने लगी। उसी प्रकार से, जीव के मन का ताप और मैल, दोनों ही भागवती ज्ञान गंगा में गोता लगाने से धुल जाते हैं।

धुन्धकारीजी भागवत की महिमा गा ही रहे थे कि इतने में एक दिव्य-अलौकिक विमान आकाशमण्डल में प्रकट हो गया और विमान से भगवान् के दिव्य पार्षद नीचे उतरकर, धुन्धुकारी को भगवद्धाम ले जाने के लिये आये। तो धुन्धुकारी सबको प्रणाम करके विमान में बैठ गया। गोकर्णजी ने भगवत्पार्षदों से पूछा,

अत्रैव बहवः संन्ति श्रोतारो मम निर्मलाः।
आनीतानि विमानानि न तेषां युगपत्कुतः ॥ (भा. मा. 5/69)

यहाँ हज़ारों श्रोताओं ने बराबर कथामृत-पान किया है, तो आपने सबके लिए विमान प्रकट क्यों नहीं किये ? एक ही विमान क्यों लाये ? भगवान् के पार्षदों ने कहा, भैया गोकर्ण!

श्रवणस्य विभेदेन फलभेदोऽत्र संस्थितः ।
श्रवणं तु कृतं सर्वैर्न तथा मननं कृतम् ।
फलभेदस्ततो जातो भवनादपि मानद ॥ (भा. मा. 5/71)

कथा तो सभी ने सुनी, परन्तु मननपूर्वक जो कथामृतपान करना चाहिये, वह केवल धुन्धुकारी ने ही किया। कुछ लोग समय पास के लिए ही कथा में आते हैं, तो कुछ छिद्रान्वेषण करने आते हैं, तो कोई व्यवहार निभाने

आते हैं। परन्तु वास्तव में जो आत्मकल्याण की भावना से कथामृतपान करते हैं, निश्चितरूप से उनका कल्याण होता है। पर यह भावना तो केवल धुन्धुकारी में थी।

सब पार्षद विमान को लेकर धुन्धुकारी के साथ तो चले गये, पर सभी श्रोता उदास हो गये। गोकर्णजी बोले, चिन्ता मत करो! अब की बार कथा का आयोजन फिर करेंगे। श्रावण मास में पुनः एक भव्य आयोजन किया। अबकी बार श्रोतागण इतने सावधान थे, अबकी बार चूक न जायें ? तो गोकर्णजी ने जब सप्ताह सम्पन्न किया तो जितने श्रोता थे, उतने ही विमान प्रकट हो गये। स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ने प्रकट होकर गोकर्ण को हृदय से लगा लिया।

अयोध्यावासिनः पूर्वं यथा रामेण संगताः ।
तथा कृष्णेन ते नीता गोलोकं योगिदुर्लभम् ॥ (भा. मा. 5/85)

जैसे श्रीराघवेन्द्र प्रभु के साथ समस्त अवधपुरवासियों अपने परमधाम को प्रस्थान किये थे, ऐसे ही आज गोकर्णजी के साथ श्रोता-समुदाय भगवान् के परमपद को प्राप्त हुआ।

सनकादि कहते हैं, अब बताइये नारदजी! आप कह रहे थे कि कैसे-कैसे पापी तर सकते हैं। तो बताओ धुन्धुकारी-जैसा प्रथम श्रेणी का महापापी, जो प्रेतयोनि में पड़ा हुआ था; वह भी कथामृत-पान करके परमपावन बन गया। तो छोटे-मोटे पापी तर जायें, तो कौन-से आश्चर्य की बात है ?

देवर्षि नारद सुनकर गद्गद् हो गये और बोले, महाराज! एक अन्तिम प्रश्न और कर रहा हूँ? भागवत कथामृत पान करने के नियम और विधि क्या है? कथा करवाने में खर्चा कितना आएगा, सनकादिकों ने सबसे पहला यही नियम बताया। प्रायः लोग यही ज्यादा पूछते हैं कि महाराज! कथा करवाने का मन तो बहुत है, पर इसमें खर्चा कितना आ जाएगा। तो वही खर्चा सनकादिकों ने सबसे पहले बताया,

विवाहे यादृशं वित्तं तादृशं परिकल्पयेत्

जैसे हम बेटी के विवाह की तैयारी धूमधाम से अपनी सामर्थ्यानुसार करते हैं, ऐसे-ही भागवत का समारोह अपनी सामर्थ्यानुसार भव्य-दिव्य और बृहद् करना चाहिए। जैसे बेटी के विवाह में कितना खर्चा आये, ये पूछा जाए तो कोई बता सकता है क्या ? हर व्यक्ति अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुसार से बेटी का विवाह करता है, कोई थोड़े में, तो कोई बहुत में। ऐसे ही अपनी सामर्थ्य के अनुसार भागवत का समारोह भव्य और दिव्य करना चाहिए, महोत्सव मनाना चाहिए। यदि सकाम अनुष्ठान किया है, तो किसी दैवज्ञ से बहुत बढ़िया मुहूर्त पूछना चाहिए। यदि निष्काम भाव से केवल भगवत्प्रीत्यर्थ ही कथा सुननी है, तो मुहूर्त का कोई महत्त्व नहीं। जब मन में आवे, तब सुनो। सुन्दर व्यासपीठ का निर्माण करो, किसी वैष्णव-साधु पुरुष वक्ता को ही व्यासपीठ पर बैठाओ, जो समझाने में कुशल हो।

विरक्तो वैष्णवो विप्रो वेदशास्त्रविशुद्धिकृत् ।
दृष्टान्तकुशलो धीरो वक्ता कार्योऽतिनिःस्पृहः ॥ (भा. मा. 6/2)

कम-से-कम पाँच ब्राह्मणों का वरण करो, जो द्वादशाक्षरमंत्र '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**' का जप करते रहें, ताकि कथा में विघ्नबाधा न आवे। और '**लघ्वाहार सुखावहः**' थोड़ा भोजन करो, ताकि कथा में कोई विक्षेप न हो। और जैसा शरीर हो, तदनुसार व्रत लेवें।

भोजनं तु वरं मन्ये कथाश्रवणकारकम् ।
नोपवासो वरः प्रोक्तः कथाविघ्नकरो यदि ॥ (भा. मा. 6/43)

उपवास रखने से कथा में यदि कोई बाधा उत्पन्न होती है, तो उपवास की कोई आवश्यकता नहीं है; प्रेम से

भोजन करके आवें। लक्ष्य यह है कि कथामृत में जैसे-जैसे प्रीति हो सुनने में जितना आनन्द आवे, वैसा-ही शरीर के सामर्थ्य अनुसार नियम लेवें। वक्ता में साक्षात् शुकदेवजी का दर्शन करें।

शुकरूप प्रबोधज्ञ सर्वशास्त्र विशारद ।
एतत्कथाप्रकाशेन मदज्ञानं विनाशय ॥ (भा. मा. 6/33)

इस भावना से शुकरूप-व्यास का और व्यासपीठ का पूजन करें। कथा के समापन में श्रोतासमुदाय खूब नाम-संकीर्तन करें। जब नाम-संकीर्तन की बात कहीं, तो नारदजी ने अपनी वीणा को सँभाल लिया। जितने श्रोता-समुदाय में बैठे हुए भक्तजन थे, वे अपनी-अपनी योग्यतानुसार संकीर्तन में भाग लेने लगे। प्रह्लादजी महाराज ताली बजाने लगे, उद्धवजी ने मँजीरा सँभाल लिये, श्रीदेवर्षि नारदजी ने वीणा पर मालकोष राग छेड़ दिया। अर्जुन बड़े भारी संगीताचार्य हैं। उन्होंने उसी राग-रागिनी में आलाप करना प्रारम्भ कर दिया। पर बिना ताल के राग अधूरा-सा ही है। अतः देवराज इन्द्र ने मृदंग पर थाप देना प्रारम्भ कर दिया। सनकादिकों ने बीच-बीच में **'जय हो'** **'बलिहारी-बलिहारी'** कहकर संगीतकारों का उत्साहवर्धन करना प्रारम्भ कर दिया।

कहहिं सुनहिं अनुमोदन करहिं

श्रीसनकादिक मुनि सबका अनुमोदन कर रहे हैं। उसी क्षण सभी श्रोताओं के मध्य व्यासनन्दन भगवान् शुकदेवजी प्रकट हो गये और वह श्रीमद्भागवत के श्लोकों को अपने मधुरकण्ठ से गुनगुनाते हुए आनन्द में झूमने लगे। अद्भुत व औलकिक संकीर्तन होने लगा।

प्रह्लादस्तालधारी तरलगतितया चोद्धवः कांस्यधारी
वीणाधारी सुरर्षिः स्वरकुशलतया रागकर्तार्जुनोऽभूत्।
इन्द्रोऽवादीन्मृदंगं जयजयसुकराः कीर्तने ते कुमाराः
यत्राग्रे भाववक्ता सरसरचनया व्यासपुत्रो बभूव ॥ (भा. मा. 6/86)

संगीत के तीन अंग हैं - गायन, वादन और नृत्य। गायन, वादन करने वाले तो महापुरूष बहुत दीख रहे हैं, पर नाचने वाला कोई नज़र नहीं आता तो। उस कमी को पूर्ण करने के लिए भक्ति महारानी अपने दोनों पुत्रों का हाथ पकड़कर संत-समुदाय के बीच प्रकट हो गई और ता-ता-थैया करके भाव में डूबकर नाच उठीं,

ननर्त मध्ये त्रिकमेव तत्र भक्त्यादिकानां नटवत्सुतेजसाम् ।
अलौकिकं कीर्तनमेतदीक्ष्य हरिः प्रसन्नोऽपि वचोऽब्रवीत्तत् ॥ (भा. मा. 6/87)

हरिद्वार में गंगा के आनन्दतट पर अलौकिक संकीर्तन प्रारम्भ हो गया। कोई ताली बजा रहा है, कोई नाच रहा है, कोई वीणा बजा रहा है, कोई मँजीरा बजा रहा है, कोई अपने मधुरकण्ठ से आलाप कर रहा है, कोई मृदंग पर थाप दे रहा है। समस्त श्रोता-समुदाय, संत-समुदाय, भक्त-समुदाय झूम-झूमकर इस संकीर्तन में नाच रहे हैं, गा रहे हैं। आईये! हम और आप भी अपने मन को भगवान् के इस मंगलमय नाम संकीर्तन में समर्पित करें -

कीर्तन - निकुंज में विराजे घनश्याम राधे-राधे

अथ श्रीमद्भागवतपुराणस्य

॥ प्रथमः स्कन्धः ॥

(अधिकारी)

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्
तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत्सूरयः ।
तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोमृषा
धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि ॥ (भा. 1/1/1)

श्रीकृष्ण द्वैपायन वेद व्यास जी ने श्रीमद् भागवत जी की रचना करके जब श्री हरि नारायण प्रभु को दिखाई तो प्रभु ने पूछा इस ग्रन्थ का नाम क्या है? व्यास जी ने कहा- ''भागवत''। इसका अर्थ है ''भगवता प्रोक्तं भागवतम्'' भगवान का कहा हुआ है, इसमें भगवान की महिमा है। वहाँ श्री लक्ष्मी जी बैठी थीं वे बोली- इस ग्रन्थ में मेरा नाम तो आया ही नहीं? व्यास जी बोले-माताजी ''भगवत्या प्रोक्तम्'' भागवतम्। भगवती का कहा हुआ भी भागवत ही बनेगा व्याकरण में। इस प्रकार आपका नाम भी आ गया। लक्ष्मी जी बोली-ऐसे नहीं, स्पष्ट नाम आना चाहिए हमारा तो व्यास जी ने उसमें ''श्रीमद्'' और जोड़ दिया। ''श्री'' जी का स्पष्ट नाम आ गया। इसका नाम हो गया ''श्रीमद् भागवत''

इस ग्रन्थ का शुभारम्भ **''जन्माद्यस्य यतः''** इस ब्रह्मसूत्र से किया गया। व्यास जी बताना चाहते हैं कि इस ग्रन्थ में हम वैदिक सूत्रों की ही व्याख्या करने जा रहे हैं।

अर्थोऽयं ब्रह्मसूत्राणां भारतार्थ विनिर्णयः। गायत्री भाष्य भूतोऽसौ वेदार्थ परिबृंहितः।।
वेदार्थादधिकं मन्ये पुराणार्थं वरानने । वेदाः प्रतिष्ठिताः सर्वे पुराणेनाऽत्र संशयः।।
पुराणांवांसामरूपः साक्षाद् भगवतोदितः । ग्रन्थोऽष्टादश साहस्रः श्रीमद् भागवतभिधः।।

श्रीमद् भागवत के मंगलाचरण की महापुरुषों ने अनेकों व्याख्या की हैं आइये श्रीधर स्वामी पाद जो प्रमुख टीकाकारों में जाने जाते हैं उनके अनुसार जो मूल अर्थ है तदनुसार व्याख्या श्रवण करें-

''जन्माद्यस्य यतः- अस्य विश्वस्य यतो यस्माद् जन्म स्थिति भंगाः भवन्ति'' इस विश्व की जिससे उत्पत्ति-पालन और अन्त में जिसमें यह लीन हो जाता है उस परम सत्य परमात्मा का हम ध्यान करते हैं

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते। येन जातानि जीवन्ति।
यत्प्रन्त्यभि संविशन्ति।

जो श्रुति इस तत्व का प्रतिपादन करती है, उसी को व्यास जी ने प्रतिपादन किया संसार के सभी पदार्थों में जो अन्वित है। पदार्थ परस्पर व्यावृत्त है, पदार्थों का परस्पर व्यतिरेक है। घट-पट नहीं हो सकता, पट-घट नहीं हो सकता। किन्तु परमात्मा सम्पूर्ण पदार्थों में अनुगत हैं। ''अन्वयादितरत'' [illegible]
सांख्य वाले [illegible]

''अभिज्ञः'' उस चेतन परमात्मा का ध्यान करते हैं जो स्वतः सिद्ध ज्ञानवान है ''स्वराट्'' तो क्या ब्रह्मा ? नहीं ब्रह्मा जी को जिन्होंने अपने संकल्प मात्र से वेदों का रहस्य प्रदान कर दिया।'' तेने ब्रह्म हृदा य आदि कवये'' जिन वेदों के विषय में बड़े-बड़े ज्ञानी मोहित हो जाते है।

''यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै''

जिस भगवान के स्वरूप में यह त्रिगुणात्मक संसार सूर्य की किरणों में जैसे जल की प्रतीति (मृगमरीचिकावत्) मिथ्या संसार भी सत्यवत् प्रतीत होता है। जो अपने स्वरूप की महिमा से ''निरस्तकुहकं'' संसार और संसार के पदार्थों से सर्वथा विरक्त है। माया और माया के कारणों से जो सदा असंगत रहते हैं, उन पर सत्य परमात्मा का हम ध्यान करते हैं। इस प्रकार आपने वेदान्त परक श्री स्वामी श्री धर जी के अनुसार श्रीमद् भागवत की व्याख्या श्रवण की। आइये श्री वंशीधर स्वामी जी के अनुसार इसी मंगलाचरण की श्रीकृष्ण परक व्याख्या श्रवण करें।

ब्रह्मसूत्र का पहला सूत्र है - **अथातो ब्रह्मजिज्ञासा** और दूसरा सूत्र है - **जन्माद्यस्य यतः** और इसी ब्रह्मसूत्र से श्रीमद्भागवत का शुभारम्भ किया। तो हम और आप भी भगवान् का ध्यान करें। विद्वानों ने श्रीमद्भागवत के इस मंगलाचरण के अनेक अर्थ किये हैं। सभी ने अपने-अपने इष्ट का इसमें वन्दन किया, हम भी अपने इष्ट भगवान् श्रीकृष्ण का ध्यान करें।

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्
तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत्सूरयः ।
तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोमृषा
धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि ॥ (भा. 1/1/1)

हम परमसत्य का ध्यान करते हैं। श्रीमद्भागवत को श्रीकृष्ण का स्वरूप माना जाता है। श्रीकृष्णपरक अर्थ का ही आप श्रवण करें।

सत्यं सच्चिदानन्दस्वरूपं श्रीकृष्णं परं परमेश्वरं धीमहि ध्यायेम

सत्य का अर्थ श्रीकृष्ण इसलिये है, क्योंकि श्रीमद्भागवत में भगवान् श्रीकृष्ण को ही सबसे अधिक सत्य-सत्य कहकर पुकारा है। गोविन्द जब देवकी माँ के गर्भ में आये, तो सब देवताओं ने भगवान् कृष्ण की स्तुति की वहाँ भी केवल सत्य-सत्य कहकर ही पुकारा,

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये ।
सत्यस्य सत्यमृतसत्यनेत्रं सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः ॥ (भा. 10/2/26)

तो देवताओं ने भगवान् श्रीकृष्ण को ही बार-बार सत्य कहकर पुकारा, इसलिए सत्यस्वरूप श्रीकृष्णजी को ध्यान करते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण कैसे हैं?

जन्माद्यस्य यतः - आद्यस्य जन्मादिविकाररहितस्यापि यतः यत्र वसुदेव गृहे जन्म

जो भगवान् अजन्मा हैं, आदि-अन्त से परे हैं, वे परमात्मा भक्तों को परमानन्द प्रदान करने के लिए वसुदेवजी के घर में प्रकट हुए। आप कहेंगे, वसुदेवजी के घर में जन्म हुआ ही नहीं था, वरन् उनका जन्म तो जेल खाने में हुआ था। **न गृहं गृहमित्याहु गृहिणी गृहमुच्यते**- ईट-पत्थर के घर को घर नहीं कहते, गृहिणी को घर कहते हैं। **वसुदेव पत्न्यां देवक्याम्**- भगवान् श्रीकृष्ण ने वसुदेव की पत्नी के गर्भ से जन्म लिया।

अन्वयादितरतः - अनुपश्चात् अयात् अगच्छत

जन्म लेते ही जो भाग लिये। **इतरतः - इतर गोकुले**- जन्म लिया मामा के बन्दीगृह मथुरा में और जन्म लेते ही तुरन्त भागकर पहुँच गये गोकुलधाम में।

अर्थेष्वभिज्ञः - अर्थेषु कंसवंचनादिप्रयोजनेषु अभिज्ञः निपुणः

जो हमारे कन्हैया इतने कुशल हैं कि मामा कंस के बन्दीगृह में जन्म लेकर गोकुल भाग आये, पर मामा कंस को भनक भी नहीं लगने दी, पता भी नहीं चलने दिया ऐसे परम निपुण, परम कुशल है हमारे केशव।

स्वराट् - स्वेषु गोपेषु राजते शोभते इति स्वराट्[1]

गोकुल में आकर अपने श्रीदामा, मधुमंगल आदि ग्वालबालों के बीच, गोपवेष में सुशोभित हुए ऐसे श्रीकृष्ण।

तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत्सूरयः - आदिकवये ब्रह्मणे ब्रह्माणं विस्मापयतुं वत्सवत्सादिरूपम् तेने विस्तारितवान् (तनु विस्तारणेः)

जिन प्रभु ने व्रज में आकर ऐसी लीलायें की कि विचित्र लीलाओं को देख-देखकर चतुर्मुख ब्रह्माजी भी विमोहित हो गये कि ये कैसा भगवान् है, जो ग्वाल-बालों के बीच जंगल में बैठा जूठा-मीठा सब खा रहा है। न हाथ पैर धोये, न कोई पवित्रता का विचार। ये भगवान् हो ही नहीं सकते। - ऐसे चक्कर में ब्रह्माजी पड़े कि परीक्षा लेने के लिए व्रज के ग्वाल बालों बछड़ों को ही चुराकर चले गये।

परिणाम यह हुआ कि ब्रह्माजी को अपनी भगवत्ता बतलाने के लिए भगवान् स्वयं ही उतने बछड़े बन गये और स्वयं ही उतने ग्वाले बन गये। अपने ही स्वरूप को प्रकट करके विस्तृत कर दिया। **तेने विस्तारितवान्** - अपने स्वरूप का विस्तार करके ब्रह्माजी को दिखा दिया कि हम ही चरने वाले, हम ही चराने वाले, हम ही बनने वाले, और हम ही बनाने वाले। परमात्मा ही तो इस जगत् के अभिन्न निमित्तोपादान कारण हैं। बनते भी वही हैं, बनाते भी वही हैं। यही बात भगवान् ने वृन्दावन में दिखा दी। दशमस्कन्ध में वर्णन आया है, बछड़े भी स्वयं बने और ग्वाला ही नहीं बने, अपितु उनके लाठी-डण्डा भी बन गये। उनके कपड़े-वस्त्रादि भी बन गये।

यावद्वत्सपव सकाल्पकवपुर्यावत्कराङ्घ्र्यादिकं
यावद्यष्टिविषाणवेणुदलशिग्यावद्विभूषाम्बरम् ।
यावच्छीलगुणाभिधाकृतिवयो यावद्विहारादिकं
सर्वं विष्णुमयं गिरोऽङ्गवदजः सर्वस्वरूपो बभौ ॥ (भा. 10/13/19)

विश्वरूप भगवान् सब कुछ बनने में समर्थ हैं। ब्रह्माजी का मोह भंग किया, बल्कि ब्रह्माजी का ही नहीं, **मुह्यन्ति यत्सूरयः** भगवान् के अग्रज संकर्षण श्रीदाऊजी महाराज भी कन्हैया की लीलाओं को देखकर मोहित हो जाते हैं - ऐसे श्रीकृष्णजी।

तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो

कन्हैया जब वंशी की तान छेड़ते हैं, तो उनकी मधुर तान जिसके कान में पड़े, वह समस्त भान भूल जाता है। कन्हैया की वंशी रव का श्रवण करके कलकल-कल्लोल करती हुई कमनीय-कालिन्दी का कलरव भी कुण्ठित हो जाता है। जल का धर्म है निरन्तर बहते रहना। लेकिन जब यमुनाजी वंशी की तान सुनती है, तो

1. स्वराट् - स रे ग म प ध नी सप्त स्वरेणोपलक्षिता वंशी, तया वंश्या सह राजते इति ।

उनकी धारा रुक जाती है। और गिरिराज गोवर्धननाथ जब वंशी सुनते हैं, तो उनके पाषाणखण्ड द्रवीभूत हो जाते हैं। तो पाषाण में जल का धर्म आ गया और जल में पाषाण का धर्म पहुँच गया।

पाषाणाऽद्रेः द्रवत्वम् यमुनायाः कठिनत्वम्

यमुना की धारा पाषाणवत् हो गई और गोवर्धन के पाषाण द्रवीभूत हो उठे ये कन्हैया की वंशी का वैशिष्ट्य है।

कृष्णलीला त्रिधा प्रोक्ता तत्तदभेदैरनेकधा गोकुले मथुरायां च द्वारावत्यां तथा क्रमात्॥

यत्र त्रिसर्गोऽमृषा - यत्र श्रीकृष्णचरित्रे त्रिसर्गः अमृषा

भगवान् के तीन धाम हैं - श्रीधाम वृन्दावन, श्रीधाम मथुरा और श्रीधाम द्वारिका। और ये तीनों धामों का जो भी परिकर है, वह नित्य है। जैसे कि वृन्दावन में श्रीदामा, मधुमंगल, नन्द, यशोदा, आदि मथुरा में अक्रूर, उद्धव, आदि और द्वारिका में रुक्मिणी, सत्यभामा, आदि जो भी परिकर है - **त्रिसर्गः अमृषा सत्यः**। उन सच्चिदानन्द भगवान् का समस्त परिकर भी सच्चिदानन्द स्वरूप ही है। आपने वृन्दावन से रासमण्डली बुलवाई, तो रासाचार्यजी अकेले थोड़ा-ही आयेंगे। पूरे दस-बीस पात्रों को लेकर आयेंगे। फिर रंगमंच पर आकर (वे ही पात्र, जो एक ही घर के सदस्य हैं) कोई कंस बन जाय, कोई कृष्ण बन गया, कोई यशोदा बन जाय, कोई नन्द, कोई अघासुर, बकासुर भी बन जाता है। उसी प्रकार भगवान् जब धरातल पर पधारते हैं, तो अपने पूरे परिकर को साथ लेकर आते हैं। तुम्हें यह भूमिका बनानी है, तुम्हें यह भूमिका निभानी है ... अब सूत्रधार जिसको जो अभिनय सौंप दे।

तो ठाकुरजी पूरे परिकर के साथ पधारते हैं। द्वारपालों से यह कहा कि तुम हमारे दुश्मन बनकर पहुँचो। तो जो अभिनय दिया गया, सब अपना-अपना अभिनय निभा लियें। मोहन अपने परिकर के साथ पधारते हैं और जिसको जो भूमिका दी जाये।

धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि -

स्वेन मथुराख्येन धाम्ना तन्निवासिनां सदा सर्वदा निरस्तं कुहकं संसारलक्षणं येन तं

भगवान् के मथुरादि धामों में निवास करने वाले भक्तजनों का भगवान् संसार प्रपंच समाप्त कर देते हैं। ऐसे सच्चिदानन्दघन परमपरमेश्वर श्रीकृष्णचन्द्रजी का हम सब मिलकर ध्यान करते हैं। अब द्वितीय श्लोक में व्यासजी अनुबन्धचतुष्टय का निरूपण करते हैं। श्रीमद्भागवत का विषय क्या है? श्रीमद्भागवत सुनने का पात्र कौन है? और श्रीमद्भागवत सुनने से क्या लाभ है?

धर्मः प्रोज्झितकैतवोऽत्र परमो निर्मत्सराणां सतां
वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवदं तापत्रयोन्मूलनम् ।
श्रीमद्भागवते महामुनिकृते किं वा परैरीश्वरः
सद्यो हृद्यवरुध्यतेऽत्रकृतिभिः शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात्॥ (भा. 1/1/2)

इस श्लोक में तीन बार अत्र शब्द का प्रयोग किया गया है। व्यासजी कहते हैं, **अत्र श्रीमद्भागवते प्रोज्झित कैतवः परमो धर्मः निरूप्यते**- श्रीमद्भागवत में निष्कपट परमधर्म का निरूपण किया गया हैं। परमधर्म किसे कहते हैं? इसकी चर्चा आगे के प्रसंगों में विस्तारपूर्वक सुनेंगें। तो श्रीमद्भागवत का मुख्य विषय क्या है? परमधर्म का निरूपण। **अत्रैव निरूप्यते नान्यत्र** - श्रीमद्भागवत में परमधर्म का जिस विधि से वर्णन

किया गया है, वह आपको अन्यत्र सुनने को प्राप्त नहीं होगा। इसलिए अत्र शब्द का प्रयोग किया। उसका पात्र कौन है?

निर्मत्सराणां सतां - निर्गताः मत्सराः येभ्यः तेः निर्मत्सराः

जिसके भीतर से मत्सर निकल गया हो। मत्सर और मच्छर में थोड़ा-ही अन्तर है। मच्छर बाहर से काटता है, मत्सर भीतर से काटता है। लेकिन बाहर के मच्छर से बचने के लिए आप मच्छरदानी में सो जाओ। पर भीतर का मच्छर बहुत खतरनाक है, बड़े-बड़े लोगों को भी नहीं छोड़ता। मत्सर अर्थात् **मत्तः अग्रेसरति**। देखो-देखो! मुझसे भी कितना आगे निकल गया। जहाँ किसी का उत्कर्ष देखा, वैभव देखा, मान-बड़ाई देखी कि बस भीतर का मच्छर हमें काटने लगता है। इसे कहते हैं मात्सर्य, जो बड़े-बड़े महापुरुषों को भी नहीं छोड़ती।

कंचन तजना सहज है, सहज त्रिया का नेह ।
मान बड़ाई ईर्ष्या, दुर्लभ तजना येह ॥

तो श्रीधरस्वामिपाद व्याख्या करते हैं - **निर्मत्सराणां परोत्कर्षासहनं मत्सरः, तद्रहितानां सतां भूतानुकम्पिनाम** भागवत सुनने का पात्र कौन? जो निर्मत्सर हो गया हो। जिसके हृदय से मात्सर्य चला गया हो। किसी की मान, बड़ाई, धन, वैभव, प्रतिष्ठा, आदि देखकर आपका मन प्रसन्न होने लगे कि इसके ऊपर भगवान् की कैसी कृपा हुई, भगवान् ऐसी कृपा सब पर करें - ऐसा भाव आपके हृदय में आवे तो समझिए कि आप श्रीमद्भागवत के उत्तम पात्र बन गये। क्योंकि प्रायः लोग अपने दुःखो से दुःखी नहीं हैं, जितने कि पड़ोसी के सुख से दुःखी हैं। हमारे घर अन्धेरा है, उसका कष्ट नहीं हैं। पर पड़ोसी के घर में उजाला क्यों हो रहा है?

और ऐसी यदि प्रवृत्ति है, तो भागवत की पात्रता नहीं है। गाय का दूध तो अमृत के समान होता है। पर थोड़े भी खट्टे बर्तन में रख दो, तो दूध फट जाएगा, बर्बाद हो जाएगा। इसलिए भागवत का पूर्णलाभ लेना चाहो तो अपने हृदय को निर्मत्सर बनाना होगा।

अच्छा महाराज! हम पात्र बढ़िया बनायें और इस परमधर्म के निरूपण करने वाले भागवत का श्रवण करें, उस सबसे क्या फायदा होगा? तो व्यासजी लाभ गिनाते हैं -

वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवदं तापत्रयोन्मूलनम्

पुनः अत्र शब्द का प्रयोग किया। **वेद्यं वास्तवमत्र - अत्र वास्तवं वस्तु वेद्यम्** - इस श्रीमद्भागवत में वास्तव वस्तु का बोध कराया गया है। वास्तव वस्तु किसे कहते हैं, **वास्तवश्चजीवः वास्तवी च माया वास्तवं जगत्** जीव, जगत् और माया तीनों को वास्तव नाम से जाना जाता है। तो भागवत के श्रवण करने से जीव, जगत् और माया का बोध होगा। जिसके बोध हो जाने से **शिवदं**, जीव का कल्याण हो जाएगा। और **तापत्रयोन्मूलनम्** - वह संसार के दैहिक, दैविक और भौतिक - तीनों तापों से मुक्त हो जाएगा। तो भागवत का मुख्य हेतु क्या है? जीव को अपने स्वरूप का बोध होवे और तापत्रय से विमुक्त होकर परमानन्द को प्राप्त करें यही भागवत का प्रयोजन है, उद्देश्य है। अब व्यासजी महाराज दावा करते हुए कहते हैं कि और अन्य साधनों से तुम्हें परमात्मा मिलते हैं, मिल सकते हैं। पर **किं वा परैरीश्वरः** साधन करते-करते किसी काल में जाकर तुम्हें भगवत्साक्षात्कार होगा। भगवान् के दिव्य आनन्द की अनुभूति होगी?

सद्यो हृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभिः शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात्

अभी कथा सुनी नहीं, केवल सुनने की इच्छा मन में प्रबल हो गई कि हमें सुनना है। तो सुनने की उत्कण्ठा

का उदय होता है। **श्रोतुं इच्छद्भिः शुश्रूषुभिः तत्क्षणात् ईश्वरः हृदि अवरुध्यते**- सुनने की उत्कण्ठा होते ही परमात्मा हृदय में आकर अवरुद्ध हो जाते है। व्यासजी के शब्दों पर ध्यान दें, यह नहीं कहा कि भगवान् हृदय में विराजमान हो जाते हैं, अपितु **सद्यो हृद्यवरुध्यते**- शीघ्र ही भगवान् हृदय में अवरुद्ध हो जाते है। अभिप्राय है कि भगवान् आने के बाद भागना भी चाहे, तो भाग नहीं सकते, अवरुद्ध हो गये। आप तो कथा में विराजमान हैं। जब मन आवे, बैठें, जब मन आवे, उठकर चल दिये। और कहीं द्वार बंद कर दिया जाए कि ऐसा नियम है कि कथा सम्पन्न होगी, तब[1] बजे ही द्वार खुलेगा। फिर आपको विराजमान नहीं कहा जाएगा। अवरुद्ध कहा जाएगा, क्या करें फंस गये। आये तो ये सोचा कि आधा-पौना घंटा सुनेंगे, उसके बाद चल देंगे। पर यहाँ का नियम मालूम नहीं था, अब तो फंस गये। तो व्यक्ति अवरुद्ध कहा जाएगा। उसी प्रकार भगवान् भी एक बार विराजमान हो जायें, फिर जो भागना भी चाहें तो भाग नहीं पाते। भक्त के हृदय का बन्धक बन जाते है - ये प्रताप है श्रीमद्भागवत का।

निगमकल्पतरोर्गलितं फलं शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम् ।
पिबत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः ॥ (भा. 1/1/3)

नितरां गमयति बोधयति स निगमो वेदः - वेदों का नाम है निगम। वेदरूपी इस विशाल कल्पतरु का परिपक्व फल श्रीमद्भागवत है। किसी ने पूछा कि यदि भागवत रूपी फल बहुत परिक्क्व है और वेदों की उच्च-शाखा से टपककर नीचे गिरा है, तब तो फूट गया होगा? श्रीधरस्वामीपाद कहते हैं, कि यह फूटा हुआ फल नहीं है। क्योंकि, **शिष्यप्रशिष्यादिरूपपल्लवपरम्परया शनैरखण्डमेवावतीर्णं, न तूच्चनिपातेन स्फुटितम्** - यदि नीचे गिरा होता, तो शायद फूट जाता। पर ये तो शाखा-प्रतिशाखा के द्वारा शनैः-शनैः धरातल पर आया। सबसे पहले भगवान् श्रीमन्नारायण की दिव्यशाखा से यह फल टपका, **भगवता प्रोक्तं भागवतम्** - इसका नाम भागवत है, क्योंकि चतुश्लोकी-भागवत के रूप में यह बीज भगवान् ने ब्रह्माजी को प्रदान किया तो नारायण की शाखा से यह फल टपका, तो ब्रह्मा की शाखा पर आकर अटका। फिर ब्रह्मा की शाखा से टपका, तो नारद की शाखा पर लटका। फिर नारद की शाखा से टपककर, व्यासजी की शाखा पर अटका। फिर व्यास की शाखा से टपका, तो शुक-शाखा पर अटका। फिर शुक-शाखा से टपका, तब परीक्षित के माध्यम से सूतजी, आदि अनेक ऋषियों को प्राप्त हुआ। तो यह धीरे-धीरे डालियों के सहयोग से धरातल पर आया है, इसलिए टूटा-फूटा नहीं है। यथावत् ज्यों-का-त्यों यह फल धरातल पर उपलब्ध हो गया।

किसी ने पूछा, व्यासजी! आपका फल तो बड़ा सुन्दर है, और पका हुआ भी है, परन्तु खट्टा निकल पड़ा तब? खट्टा फल खाने में अच्छा नहीं लगता, फल तो मीठा होना चाहिये। व्यासजी कहते हैं, फल एकदम मीठा है। जिज्ञासु ने पुनः पूछा, आपके कहने से थोड़े ही मानेंगे? कोई प्रमाण दीजिये? व्यासजी बोले, तो प्रमाण यह है कि फल का उत्तम पारखी तोता माना जाता है। तोता जिस फल में चोंच मार दे, आँख मूंदकर समझ लो मीठा निकलेगा। तो मेरे भागवत रूपी फल में भी शुकदेवरूपी तोते ने चोंच मार दी। **शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम्** - यह श्रीमद्भागवत शुक-मुख-विगलित फल है। इस फल में शुकदेव-जैसे परमहंस का मुख लगा हुआ है। ऐसे-वैसे महात्मा नहीं, जन्म लेते ही जो परिव्राजक होकर चले गये।

1. कृतिभिः कृतं अस्ति अस्य स कृति सुकृतं अस्य स सुकृती।

तो इस भागवतरूपी फल को मुँह लगाने वाला तोता शुकदेव भी एकदम पारखी, परम बुद्धिमान, परम रसिक है। और इस फल में ऐसे विशेषज्ञ तोता की चोंच लगी है, तो खट्टे होने का प्रश्न ही नहीं है। पुनः जिज्ञासु ने व्यासजी से पूछा, बाबा! फल बहुत मीठा है, अच्छी बात है। पर इस फल में रस कौन-सा है? आम है, तो आमरस उससे बनाया जाता है। भागवत यदि फल है, तो उसका रस क्या है? **अमृतं परमानन्दः स एव द्रवोरसः** परमात्मा को श्रुतियों ने रस-रूप में ही प्रतिपादन किया है,

रसो वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति

वह परमात्मा रसस्वरूप है। वही परमात्मा-रूपी रस इस भागवत-रूपी फल में भरा हुआ है। कृष्णरस से परिपूर्ण ये फल है, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के मधुर-चरित्र ही इसमें रस स्वरूप में विद्यमान हैं। स्वयं परमात्मा की ही तो यह वांगमयी मूर्ति है ये श्रीमद्भागवत। वह रसराज श्रीकृष्ण ही इसमें रसरूप में विद्यमान है।

अतः व्यासजी कहते हैं, इस भागवत रूपी फल को पियो। पुनः एक जिज्ञासु ने कहा, जय हो व्यासजी महाराज! फल भी कहीं पिया जाता है? फल को खाया जाता है, चूसा जाता है, पीने वाला फल तो कोई नहीं होता। व्यासजी कहते हैं, भाई! चूसने की बात तब करता जब इस फल मे छिलका-गुठली होते। पर सम्पूर्ण भागवत साक्षात् श्रीकृष्ण का शब्द विग्रह है, अतः इसमें फेंकने वाली छिलका-गुठली, आदि कोई चीज ही इसमें नहीं है। इसलिए कृष्णरूप के इस रसमय फल का पान करो। यह फल रसमय माधुर्य पूर्ण है, इसलिये पियो। व्यासजी बोले-बारम्बार पियो, जितनी बार पी सकते हो, उतनी बार पियो। पीते-पीते जबतक उस रस में तुम स्वयं ही रस मग्न न हो जाओ, तबतक पीते ही जाओ। जिज्ञासु ने प्रश्न किया, अच्छा महाराज! तो किसे-किसे पिला रहे हैं आप? तो व्यासजी ने दो नामों को पुकारा

अहो रसिका भुविभावुकाः

अरे रसिकों! अरे भावुकों! आओ-आओ तुम्हारे लिए ये अमृत तैयार किया है, इसे पियो। जिज्ञासु ने पूछा, महाराज! और कोई नहीं पी सकता है क्या? इन दो लोगों को ही क्यों पुकारा? व्यासजी कहते हैं, नहीं-नहीं! प्याऊ तो सार्वजनिक है, जो आवे उसे पानी पिलाया जाता है। लेकिन, दो नाम तो मैंने उनके लिए हैं, जिनको प्यास ज्यादा लगी है। और पानी का महत्व तो प्यासा ही समझ सकता है। जिसे प्यास न हो, उसे हठात् बुलाया जाये, आओ-आओ बाबूजी! मीठा-मीठा पानी पीकर जाओ। तो बाबूजी पानी नहीं पियेंगे, क्योंकि उन्हें प्यास ही नहीं है। फिर भी दुराग्रहपूर्वक उसने बाबूजी को बुला ही लिया, तो बाबूजी आयेंगे। पानी बाद में पियेंगे, पहले उससे प्रश्नों की झड़ी लगायेंगे - ये बताओ भाई! पानी तो पिला रहे हो, पर कहाँ से भरकर लाते हो? कुआँ-बावड़ी से भरते हो? नल-तालाब से भरते हो? कहाँ का पानी है? इतने प्रश्न कर डाले, पानी को छुआ तक नहीं। ये प्रश्न इसलिए हो रहे हैं क्योंकि प्यास नहीं है। और कहीं रेगिस्तान में फंस गये होते और प्यास के मारे मुँह चिपक रहा होता और कोसों दूर पानी का दर्शन नहीं हो रहा होता, उस क्षण कोई अचानक कह दे भैया! पानी पियोगे? तो छानकर भरा, या माँजकर भरा, या कुएँ से भरा ... एक प्रश्न समझ में नहीं आयेगा, उस समय सिर्फ पानी समझ में आयेगा। उस समय वह प्यासा पानी का महत्व समझता है। इसलिए व्यास भगवान् कहते हैं, ये दिव्यकथामृत प्रभु के चरित्रों का अमृत है, पर जो पिपासु हैं, वही इसका महत्व समझ पायेंगे। रसिकों और भावुकों का नाम इसलिए लिया, क्योंकि ये कृष्णकथामृत पान करने के लिए आतुर हैं, पिपासु हैं। जो प्यासा होता है, उसकी पैनी निगाह चारों तरफ ढूंढ़ती है कि पानी कहाँ मिलेगा? वह निमंत्रण की प्रतीक्षा नहीं करेगा

रसिक तो पागलों की तरह भागते हैं, कैसे भी मिले, कहीं भी मिले हमें पीना है। इसलिए व्यासजी महाराज ने रसिक और भावुकों का ही आह्वान किया।

नैमिषेऽनिमिषक्षेत्रे ऋषयः शौनकादयः ।
सत्रं स्वर्गाय लोकाय सहस्रसममासत ॥ (भा. 1/1/4)

नैमिषारण्य की पावनभूमि में शौनक आदि अट्ठासी हजार महात्माओं का एक हजार वर्ष का सत्संगसत्र चल रहा है। जहाँ एक-एक निमिष का महत्व हो, वह नैमिषारण्य। जिस भूमि में जाकर इस चंचल मनश्चक्र को शान्ति मिले, वही नैमिषारण्य। ब्रह्माजी का भेजा चक्र यहीं गिरा, इसीलिये चक्रतीर्थ बना, वही नैमिषारण्य कहलाया। परन्तु हमारा भी मनश्चक्र चलकर जहाँ शान्त हो जाये, वही भगवान् के कथा की सबसे पावनभूमि है। मन का निग्रह करना इतना सरल नहीं, पर भगवान् के चरित्र इतने मधुर हैं कि हठात् जीव के मन को बड़ी सरलता से खींच लेते हैं। इसलिए हमारे कन्हैया तीन-तीन जगह से टेढ़े हैं।

मल्लाहों को मछली पकड़ते आपने देखा होगा। जिस कांटे से वह मछली को पकड़ते हैं, उस कांटे को वंशी कहते हैं। टेढ़े कांटें में खाद्य-पदार्थ लगाकर पानी में छोड़ते हैं। जहाँ मछली ने खाया कि कांटा चुभ गया, वंशी में फंस गई मछली। अब चाहे जितना छटपटा ले, पर बचने वाली नहीं। मल्लाह डोरी से खींच लेता है। तो विषयासक्त जीव का मन परमात्मा की ओर लगता नहीं, अभिमुख होता नहीं तो परमात्मा फिर धराधाम पर सुन्दर लीला-पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण बनकर प्रकट हुये। तीन-तीन जगह से टेढ़े हैं, ताकि यह जो जीव का चंचल-विषयानुरागी मन है, उसे सहजता से अपनी ओर खींच सकें। इसलिए नाम भी कृष्ण है। **कर्षति इति कृष्णः** - जो जीव के मन को हठात् अपनी ओर खींचे, उसका नाम कृष्ण। कृष्ण शब्द में क के नीचे जो री लगाई जाती है, वह मानो मछली पकडने वाली वंशी ही है। मल्लाह के पास वह कांटे के वंशी है, जिसमें मछली फंसती है। और ये जिसके मन को फँसाना चाहते हैं, उसे अपनी वंशी बजाकर फंसा देते हैं। महारास में गोपियों के मन को वंशी बजाकर खींच लिया। इससे बढ़िया व सरलतम साधन दूसरा सम्भव ही नहीं है।

एक हज़ार वर्ष का सत्र ये नैमिषारण्य की पावनभूमि में भगवच्चर्चा करते हुए सूतजी व शौनकजी के संवाद के माध्यम से चल रहा है। आज शौनकजी ने छः प्रश्न किये हैं, और उन्हीं छः प्रश्नों के उत्तर में सम्पूर्ण भागवत का श्रवण कराया।

पुंसामेकान्ततः श्रेयस्तन्नः शंसितुमर्हसि

सूतजी से शौनकजी ने छः प्रश्न किये - 1. प्राणीमात्र का कल्याण कैसे हो? 2. शास्त्र बहुत हैं, लेकिन मनुष्य के पास समय कम है। इसलिए समस्त शास्त्रों का सार क्या है? 3. भगवान् यदि सर्वसमर्थ जगदीश्वर है, तो वह अवतार क्यों लेते हैं? जिनके संकल्प से संसार का सृजन हो सकता है, तो क्या उनके संकल्प से दुष्टों का विनाश नहीं हो सकता? यदि उनकी इच्छामात्र से शत्रुओं का संहार हो सकता है, तो उन्हें फिर स्वयं आने की क्या आवश्यकता पड़ गई? उस परमात्मा का जन्म क्यों होता है? 4. यदि भगवान् ने अवतार लिये तो भगवान् के कितने अवतार हुए? कहाँ-कहाँ किस-किस रूप में प्रभु के अवतार हुए? 5. जीवन का परमलक्ष्य क्या है? और 6. भगवान् धर्म की स्थापना के लिए आते हैं, पर जब भगवान् लीला-सम्पन्न करके चले जाते हैं, तो फिर धर्म किसकी शरण में जाता है? **धर्मः कं शरणं गतः** यही छः प्रश्न किये।

किं श्रेयः शास्त्र सारः कः स्वावतार प्रयोजनम् ।
किं कर्म केऽवताराश्च धर्मः कं शरणं गतः ॥

इन छः प्रश्नों को सुनकर सूतजी महाराज प्रसन्न हो गये और बोले, महात्माओ! पहले हम अपने गुरुदेव भगवान् का ध्यान कर लें, तब आपके इन प्रश्नों का उत्तर देंगे। सूतजी ने शुकदेवजी महाराज का दो श्लोंको में ध्यान किया,

यं प्रव्रजन्तमनुपेतमपेतकृत्यं द्वैपायनो विरहकातर आजुहाव ।
पुत्रेति तन्मयतया तरवोऽभिनेदुस्तं सर्वभूतहृदयं मुनिमानतोऽस्मि ॥
यः स्वानुभावमखिलश्रुतिसारमेकमध्यात्मदीपमतितितीर्षतां तमोऽन्धम् ।
संसारिणां करुणयाऽऽह पुराणगुह्यं तं व्याससूनुमुपयामि गुरुं मुनीनाम् ॥

(भा. 1/2/2-3)

इन दो श्लोकों में श्रीशुकदेवजी का ध्यान किया। '**यं प्रव्रजन्तमनुपेतमपेतकृत्यम्**' - जो जन्म लेते ही प्रव्रजन्त हो गये। '**व्रजगतौ**' धातु में '**प्र**' उपसर्ग लगा हुआ है, जिनका वैराग्य उच्चकोटि का है कि परिस्थिति विपरीत हो, तो वैराग्य बहुतों को चढ़ता है। पर शुकदेवजी महाराज का तो सहज व स्वाभाविक वैराग्य है। जब पैदा हुए तो पिताजी 'पुत्र-पुत्र' कहकर वात्सल्य उड़ेल रहे हैं। फिर भी वन की ओर चले जा रहे हैं। जिनका उपनयन-संस्कार भी अभी तक नहीं हुआ, परमात्मा जिन्हें दर्शन देने आशीर्वाद देने माँ के गर्भ में ही जब पहुँच गये कि बेटा! तुझे मेरी माया प्रभावित नहीं करेगी। तू निश्चिन्त होकर आ। तभी माँ के गर्भ से बाहर निकले। अन्यथा, जीव को माँ के गर्भ में ज्ञान तो सब रहता है कि हम कौन हैं? क्या हैं? पर जहाँ माँ के गर्भ से बाहर आया कि माया लपेट लेती है और सारा ज्ञान भूल जाता है।

भूमि परत भा डाबर पानी ।
जिमि जीवहि माया लपटानी ॥ (रामचरितमानस 4/14/3)

जैसे निर्मल जल की धारा धरती का स्पर्श करते ही मलिन हो जाती है, ऐसे ही जीव जन्म लेते ही माया में मलिन हो जाता है। **अहं ममेत्यसद्ग्राहः करोति कुमतिर्मतिम्**' इसलिए शुकदेवजी माँ के गर्भ से बाहर ही नहीं निकले, जबतक प्रभु ने आशीर्वाद नहीं दिया।

माया को सब कोई भजे पर माधव भजे न कोय ।
जो कदापि माधव भजे तो माया चेरी होय ॥

जो माधव का दास बन गया, माया उसकी दासी बन जाती है। माया उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकती। माया में जो नाच रहा है, वह जीवात्मा और माया के बीच रहकर भी जो निर्लिप्त हो जाये, वह महात्मा। और माया को भी जो अपने इशारे पर नचावे, वह परमात्मा। तो शुकदेवजी विशुद्ध महात्मा हैं। विरह से कातर श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासजी महाराज पुत्र-पुत्र पुकारते जा रहे हैं। जब जोर से कहते हैं, बेटा! ... तो जंगल के वृक्षों से भी प्रतिध्वनि निकलती है, बेटा! बेटा! ऐसा लग रहा है कि जैसे व्यासजी के विरह को देखकर जंगल के वृक्ष भी विरही हो गये। और व्यासजी के स्वर में अपना स्वर मिलाकर वृक्षों ने भी बेटा-बेटा पुकारना प्रारम्भ कर दिया। ऐसे सर्वभूतहृदयसम्राट श्रीशुकदेवजी के पादपद्मों में हम बारम्बार प्रणाम करते हैं।

जिन श्रीशुकदेवजी महाराज ने समस्त श्रुतियों का मन्थन करके एक सार रूप निकाल लिया । समस्त श्रुतियों का मन्थन करके, अध्यात्म का एक दीप प्रज्जवलित किया। जो साधक अज्ञान के अंधकार में भटकते हुए रास्ता ढूँढ़ रहे थे, पर दिखाई नहीं पड़ रहा था उन्हें मार्ग दिखाने के लिए ही शुकदेवजी ने यह भागवत का

सुन्दर दीपक प्रज्जवलित कर दिया। अंधकार में भटके हुए जीवों पर करुणा करके ही संसारियों पर अनुग्रह करने के लिए ही उन्होंने ये दीपक जलाया है। ऐसे व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजी के पादपद्मों में हम बारम्बार प्रणाम करते हैं। भगवान् नर-नारायण तथा भगवती सरस्वती एवं व्यासजी का स्मरण करके ही व्यासजी के शास्त्रों का वर्णन करना चाहिए।

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥ (भा. 1/2/4)

उन सबका स्मरण करने के बाद श्रीसूतजी कहते हैं -

मुनयः साधु पृष्टोऽहं भवद्भिर्लोकमंगलम् ।

हे ऋषियो! तुमने जो प्रश्न किये हैं, वह अपने लिए नहीं लोक मंगल के लिए हैं। ऋषियो! तुमने ये बड़े सुन्दर प्रश्न किये। अब ध्यान से सुनो - जीवमात्र का परमधर्म क्या है?

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे।
अहैतुक्यप्रतिहता ययाऽऽत्मा सम्प्रसीदति ॥ (भा. 1/2/6)

प्राणीमात्र का परमधर्म एक ही है - भगवान् के चरणों में प्रेम करना। परन्तु वह भगवान् का प्रेम कैसा होवे? भगवान् से प्रेम तो हम सब कर रहे हैं, परन्तु कब करते हैं, जब कोई काम पड़ता है। भक्ति कैसी हो? अहेतुकी हेतु रहित निष्काम-भक्ति होनी चाहिए। और निष्काम होने के साथ-साथ निष्कपट भी होनी चाहिए। **'अहैतुकी अप्रतिहता'** - ये भक्ति के दो विशेषण हैं। भक्ति में कोई कामना नहीं होनी चाहिए, आपत्ति-विपत्ति में ही भगवान् याद आवें ऐसा नहीं होना चाहिए। प्रतिक्षण स्वाभाविक भगवान् से प्रीति होवे, जैसे माँ का पुत्र के प्रति स्वाभविक प्रेम होता है। चाहे वह घर में रहे या परदेश चला जाये, माँ तो उसे किसी-न किसी बहाने याद करती ही रहती है। जैसे परदेश गये हुए प्रीतम का उसकी प्रिया स्वाभाविक चिंतन करती रहती है, ऐसे ही भगवान् के प्रति स्वाभाविक प्रीति हो।

सूर्योदय होने पर कमल क्यों खिलता है? चन्द्रोदय होने पर कुमुदिनी क्यों विकसित होती है? इस का कोई जवाब नहीं है, उनका स्वाभाविक प्रेम है। तो ये जैसे सहज प्रीति इनमें होती है, ऐसी प्रभु के प्रति हमारी सहज-प्रीति होवे, स्वार्थभरी प्रीति नहीं।

अहैतुक्यप्रतिहता ययाऽऽत्मा सम्प्रसीदति

ऐसी यदि विशुद्ध-भक्ति भगवान् के चरणारविंद में हो जाये तो,

जनयत्याशु वैराग्यं ज्ञानं च यदहैतुकम्

भक्ति के ही बेटा हैं ज्ञान और वैराग्य। जब भगवान् में भक्ति सुदृढ़ हो जायेगी, तो भगवान् के स्वरूप का ज्ञान अपने आप हो जायेगा और जगत् से वैराग्य भी स्वतः हो जायेगा। अलग-अलग क्रियायें नहीं होंगी, अपने आप ही हो जायेगा। मीराजी का चित्त गिरिधर-गोपाल में ऐसा चिपक गया कि मीराजी को फिर घर छोड़ने की जरुरत नहीं पड़ी। घर अपने आप ही छूट गया। घर में रह रही हैं, तो कृष्ण-दीवानी होकर नाच रहीं हैं। और घर से कोई निकाल दे, तो कोई फर्क नहीं। उनके लिए तो घर के बन्धन ही विघ्न बनने लगे। वह घर में रहें तो वैराग्य और बाहर चलीं जायें, तो क्या फर्क पड़े? घर अपने आप ही छूट गया। कहाँ कितना बड़ा वैभव? कितनी सम्पन्नता राजघराने की? पर **'कृष्णगृहीतमानसा:'** होते ही अपने आप भगवान् के स्वरूप का ऐसा ज्ञान हुआ, जगत् से ऐसा वैराग्य हुआ कि कुछ करना नहीं पड़ा और अपने आप ही मुँह से निकल गया -

भजन - मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई ...

तो संसार में जो आसक्ति है, वह अपने आप छूट जायेगी कब? जब भगवत्प्रेम जाग जायेगा, तब। अरे भाई! कन्या का जन्म होता है, माँ-बाप के यहाँ लालन-पालन होता है, तो माँ-बाप से कन्या की कितनी प्रीति हो जाती है। माँ-बाप के प्रति कितना प्रेम उस पुत्री के मन में होता है? कोई पूछे, बेटी! तुम्हारा घर कौन-सा है? तुरन्त दिखायेगी ये मकान हमारा है, ये गाड़ी हमारी है, ये माताजी हैं, ये पिताजी हैं, ये भैया हैं। कितनी प्रीति? और जहाँ बीस वर्ष की हुई, घर-परिवार वही सब था और जहाँ विवाह हुआ तब? सब कुछ बदल गया। अब एकदम तो नहीं बदलेगा, थोड़ा समय लगेगा। पर धीरे-धीरे जब वही कन्या ससुराल में अच्छी तरह घुल मिल जाती है, तो अब वह घर पराया नजर आने लगता है, जहाँ पैदा हुई, जहाँ इतने वर्षो तक रही अब अपना घर बदल गया। अब! ये बँगला मेरा है, ये गाड़ी मेरी है, ये मेरे पतिदेव हैं, ये मेरा बेटा है, ये मेरा परिवार है, वह मेरा मायका है बदल गया सब। कल तक वही सब कुछ था? आज यही सब कुछ हो गया। मायके में माता-पिता बुला भी लें कि माताजी की तबियत थोड़ा ठीक नहीं है, बेटी! कुछ दिन के लिये आ जाओ, तो आ जायेगी। दो-चार दिन रह जायेगी, फिर कहेगी - देखो! घर में कोई नहीं है और बच्चों की पढ़ाई खराब हो रही है। बहुत सारे काम पड़े हैं, अब ज्यादा दिन नहीं रुक सकती। तुरन्त अपनी ससुराल के लिए भागती है। क्योंकि अब उसे महसूस हो गया कि वह मेरा घर है। सब कुछ बदल गया।

उसी प्रकार जबतक यह संसार है, तबतक हम इसी को ही अपना समझते रहते हैं। परन्तु कोई सद्गुरु की कृपा दृष्टि हो जाये और पाणिग्रहण उस परमपति के साथ हो जाये, तो अपने वास्तविक घर को हम समझ लें कि हमारा घर वास्तव में तो ये है।

उस परमात्मा रूपी पति को पहचानकर जीवात्मा का उसके साथ ठीक संबंध हो जाये, तो ये संसार अपने आप छूट जायेगा। इसलिए हम जितने भी धर्मानुष्ठान करते हैं, उन सबकां एक ही फल है। भगवान् से प्रेम हो जाये। बड़े-बड़े अनुष्ठान कर रहे हैं, पुरुश्चरण कर रहे हैं, पर भगवान् से प्रेम नहीं हो रहा? तो फिर तो कोरा परिश्रम कर रहे हैं।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेनकथासु यः ।
नोत्पादयेद्यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥ (भा. 1/2/8)

ये जितना भी धर्मानुष्ठान हम करते हैं, उसका फल क्या है? **'धर्मस्य ह्यापवर्गस्य'** धर्म का अर्थ ये नहीं है कि हमें बहुत सारा धन मिल जाये। धर्म का उद्देश्य अपवर्ग की प्राप्ति है। अपवर्ग अर्थात् मोक्ष! मोक्ष का नाम अपवर्ग क्यों है? **'अपगतावर्गः अपवर्गः'** जहाँ पर कोई वर्ग नहीं। हम लोग कई वर्गों में बैठे हैं, स्त्रीवर्ग, पुरुषवर्ग, संतवर्ग, ब्राह्मणवर्ग, क्षत्रियवर्ग - ये कई वर्ग हैं। पर जहाँ जाने के बाद सब एक ही वर्ग के हो जायें, वह अपवर्ग है। अथवा **'नाऽपवर्गः अपवर्गः'** जहाँ पर प-वर्ग न हो, वह अपवर्ग।[1] और ऐसे दिव्य अपवर्ग को पाना ही धर्म का उद्देश्य है।

धर्मस्य ह्यापवर्ग्यस्य नार्थोऽर्थायोपकल्पते

भगवान् ने अर्थ दिया है तो धर्म करो, धर्म अर्थ के लिए न करो। अर्थ का उद्देश्य तो धर्म है, धर्म का उद्देश्य अर्थ नहीं। धन से धर्म भी करना चाहिए और जितनी आवश्यकता हो उतना विषय का सेवन भी करना चाहिए। शरीर पर बिल्कुल ध्यान नहीं दोगे, तो ये शरीर किसी मतलब का नहीं रह जायेगा, रोगों का घर बन सकता है।

1. पार्वतीफणि बालेन्दु भस्म मन्दाकिनी तथा । पवर्गसहितो देव अपवर्ग फलप्रदः॥

शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्

तो शरीर का भी ध्यान रखना चाहिए। जितना हमें भोजन की जरुरत है, उतना भोजन भी देना चाहिए। सर्दी-गर्मी से आवश्यकतानुसार इसे बचाना भी चाहिए। विषय की भी आवश्यकता है, पर वह विषय इतने हों जिससे शरीरयात्रा सुगमता से चले। इन्द्रियों की दासता न करें, हम विषयों का दास इन्द्रियों को न बना लें। इन्द्रियां हमारे अनुसार चलें, हम इन्द्रियों के अनुसार न चले-

कामस्य नन्द्रियप्रीतिः

इस जीवनरथ में दस घोड़े हैं और दसों घोड़ों की लगाम स्वतन्त्र कर दी जाये, तब क्या होगा? किसी गड्ढे में गिरेगा कि नहीं? पूर्णनियंत्रण आपके हाथ में उन घोड़ों का होना चाहिए। अर्थात् हम जो देखना चाहें, आँख वह देखे। ऐसा न हो आँख जो देखना चाहे, वह हम देखें। हम जो सुनना चाहें, कान वह सुनें। ऐसा न हो कि कान जो सुनना चाहें, वह हम सुनें। हम जो कहना चाहते हैं, वह वाणी कहे। ऐसा न हो कि जो वाणी कहना चाहे, वह हम कहें अनर्गल। कुल-मिलाकर यह समझिये कि ये घोड़े हमारे नियंत्रण में रहें, हम घोड़ों के अधीन न चलें। सो इन्द्रियों की दासता के लिये हम विषय-सेवन न करें। जीवन की यात्रा के लिये विषय-सेवन करो, अब प्रश्न उठता है कि महाराज! जीवन का उद्देश्य क्या है?

जीवस्य तत्त्वजिज्ञासा नार्थो यश्चेह कर्मभिः

बहुत कर्म कर लेना जीवन की सार्थकता नहीं है क्योंकि बहुत कर्म करने के बाद भी जबतक तत्त्वज्ञान नहीं हुआ, तब तक जन्म-मरण तो चलता ही रहेगा। इसलिये जीवन का परम लक्ष्य है उस परमतत्त्व को जानना, क्योंकि उस परमतत्त्व को जाने बिना जन्म-मरण की यात्रा समाप्त नहीं होगी। प्रश्न उठता है कि वह तत्त्व क्या चीज है? किस तत्त्व को जानने की बात कर रहे हैं? तो तत्त्व की परिभाषा देखो,

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम् ।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ॥ (भा. 1/2/11)

तत्त्व एक ही है, लेकिन '**एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति**' एक तत्त्व को तत्त्ववेत्ता विविध नामों से पुकारते हैं। ज्ञानियों से कहो, तो वह उसी तत्त्व को ब्रह्म कहेंगे। योगियों से कहो, तो वे उस तत्त्व को परमात्मा कहेंगे। भक्तों से कहो, तो भक्त उसी तत्त्व को भगवान् कहेंगे। तत्त्व एक है, वही सगुण-निराकार है, वही सगुण-साकार है। उदाहरण से समझें - बिजली एक है। पहले जब व्यापक थी, तब हमारे अनुभव में नहीं थी पर बिजली का अस्तित्व तो था। परन्तु वैज्ञानिकों ने यांत्रिक-पद्धतियों के द्वारा बिजली को प्रकट कर दिया। पहले बिजली निर्गुण-निराकार रूप में व्याप्त थी, परन्तु अनुभूति नहीं हो रही थी। तो जो बिजली है, वह ब्रह्म का स्वरूप है। निर्गुण-निराकार विद्युत। पर यांत्रिक-पद्धतियों से वैज्ञानिकों ने बिजली को बना लिया, बिजली तैयार हो गई। अब वह बिजली तारों में करेंट रूप में प्रवाहित होने लगी, तो वही बिजली का वह सगुण-निराकार रूप हो गया। अब बिजली के तार को हाथ लगा दो तो भयंकर करेंट लगेगा। उसमें करेंट आ गया, पर आँखों से दिखाई नहीं पड़ रही कि बिजली कैसी है। उसका रूप दिखाई नहीं दे रहा, पर गुण तो उसमें आ गया। ये विद्युत का सगुण-निराकार रूप है। परन्तु वही बिजली का करेंट जब बल्ब से जोड़ा, तो प्रकाश फेंकने लगा। अब बिजली का रूप भी समझ में आ गया। जहाँ बल्ब जलता देखा तो हमने कहा कि बिजली आ गई। अब हमें छूने की सोचने की आवश्यकता नहीं क्योंकि प्रकाश दीख रहा है। तो जो पहले बिजली व्यापक थी, वह निर्गुण-निराकार

थी। बनकर जब तारों में प्रवाहित होने लगी, तो वह सगुण-निराकार थी। और बल्ब से प्रकाशित होने लगी, तो सगुण-साकार हो गई। ऐसे ही जब वह निर्गुण-निराकार तत्त्व था, तो ब्रह्म के रूप में था। सगुण-निराकार बना तो परमात्मा के रूप में घट-घटवासी बन गया, सबका संचालन करने लगा। और वही राम, कृष्ण, नृसिंह, आदि दिव्यरूप धारण करके हमारे बीच प्रकट होकर नाचने भी लगा, गाने भी लगा, तो उसी तत्त्व को हम भगवान् कहने लगे।

यदि वह बिजली प्रकाश के रूप में प्रकट न होवे, तो बिजली हमारे किस मतलब की? प्रकट भी होना चाहिए? इसलिये वही अपना दिव्यरूप बनाकर प्रकट जब होता है, तो वह भगवान् हमारे बीच में आँखों का विषय बन जाता है। '**सेस गनेस महेस दिनेस, सुरेसहु जाहि निरंतर ध्यावें**' पर वही जब प्रकट होकर हमारे बीच आया, तब '**ताहि अहीर की छोहरियां, छछिया भर छांछ पे नाच नचावें**' कहाँ तो वह ब्रह्म ध्यान में नहीं आ रहा था और आज व्रज की ग्वालनियां कहती हैं - 'कन्हैया! बढ़िया ठुमका मारकर नाच दे, तो ताजो-ताजो माखन खवाऊँगी!', तो वही परमतत्त्व ठुमक-ठुमककर नाच-नाचकर व्रजवामाओं के मन को मुग्ध कर रहा है। भक्तों को परमानन्द प्रदान करने के लिये वही परम-तत्त्व प्रकट भी होता है।

अब प्रकट होने के कई रूप हैं, रामजी के रूप में, श्यामजी के रूप में, वाराह के रूप में, कपिलजी के रूप में; अनेक रूपों में वह प्रकट हुआ। मुख्यरूप से भगवान् के चौबीस अवतार[1] हुए हैं। वैसे तो भगवान् के अनन्त अवतार हैं। अवतार के कई भेद हैं जैसे अंशावतार, आवेशावतार, कलावतार, पूर्णावतार, आदि। तो कोई आवेशावतार है, तो कोई अंशावतार है, पर

एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान्स्वयम्

भगवान् श्रीकृष्णजी का और श्रीरामभद्र का परिपूर्ण अवतार हैं '**चकार शब्देन रामोऽपिज्ञेयः- एते चांश**'। तो च-कार शब्द इसमें जुड़ा है। तो च-कार के द्वारा श्रीसूतजी महाराज श्रीरामभद्र को भी पूर्णावतार स्वीकार कर रहे हैं। तो श्रीरामजी और श्रीकृष्णजी का ही पूर्णावतार है। बाकि, कोई आवेशावतार, तो कोई अंशावतार, तो कोई कलावतार। अब रसिकों की अपनी-अपनी उपासना है, किस रूप में वह परमतत्त्व उन्हें ज्यादा आनन्द देता है। किसी को छैल-छबीले कृष्ण-कन्हैया बहुत अच्छे लगते हैं, तो किसी को मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरामजी का रूप ज्यादा भाता है, तो किसी को जटाजूटधारी फक्कड़ भोले-बाबा ज्यादा अच्छे लगते हैं। वही परमतत्त्व विभिन्न रूपों में प्रकट हैं, तुम्हें कौन-सा रूप पसंद है? किसी को पूड़ी अच्छी लगती है, किसी को पराठे अच्छे लगते हैं, तो किसी को रोटी में ही आनन्द ज्यादा आता है। अब अपना-अपना स्वाद है, तुम्हारा रस जहाँ हो।

हरि ब्यापक सर्बत्र समाना ।
प्रेम ते प्रकट होय मैं जाना ॥ (मानस 1/185/3)

प्रह्लादजी की निष्ठा एक खंभे में भी प्रभु को प्रकट कर देती है। तुम्हारा प्रेम कहाँ पुष्ट हो जाये, परमात्मा वहीं से प्रकट हो जायेगा। नामदेवजी ने कुत्ते से ही भगवान् को प्रकट कर दिया। फुलका सेंककर भोग लगाने

1. जय जय मीन बराह कमठ नरहरि बलि बावन । परसुराम रघुबीर कृष्ण कीरति जगपावन ॥
बुद्ध कलक्की ब्यास पृथु हरि हंस मन्वंतर । जग्य रिषभ हयग्रीव [illegible]

की तैयारी कर रहे थे, तभी कुत्ता आकर मुँह में टिक्कड़ दबाकर भाग लिया। नामदेवजी को उसी में अपने प्रभु का दर्शन हो रहा है, अरे! वाह प्रभु! रूखे-रूखे टिक्कड़ खा रहे हो? अरे! जब आपकी कृपा से घी है, तो जरा चुपड़ के ही भोग लगाइये? घी की कटोरी लेकर पीछे-पीछे भागने लगे तो भगवान् उसी श्वान-शरीर से ही प्रकट हो गये। तो भगवान् की सत्ता तो सार्वभौम है। तत्त्व वही है, उसमें भेद नहीं है। बिजली वही एक है, उसके प्रयोग अनेक हैं, यथा - बल्ब से जुड़कर प्रकाश दे रही है, पंखा से जुडकर हवा दे रही है, हीटर से जुड़कर गर्मी दे रही है, कूलर से जुड़कर शीतलता दे रही है, आदि-आदि तमाम उसके अनेक प्रयोग हैं। बिजली के भीतर कोई भेद नहीं, सब एक ही बिजली है। आवश्यकतानुसार जहाँ तुम्हारी उपयोगिता सिद्ध होवे, वही सबसे उत्तम है। यदि उस परमतत्त्व को ठीक से जान लिया, तो उससे क्या होगा,

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि दृष्ट एवात्मनीश्वरे ॥ (भा. 1/2/21)

उस परमतत्त्व को जानते ही तुम्हारे हृदय की अज्ञान की सारी ग्रंथियां खुल जायेंगी। जितने भी बुद्धि में संशय और भ्रम है, सब समाप्त हो जायेंगे। जितने भी कर्मबंधन हैं, उनसे तुम विमुक्त हो जाओगे। इसलिए उस परमतत्त्व को जानना ही जीवन का परमलक्ष्य है। और उस परमतत्त्व को मानव जीवन में ही जाना जा सकता है। अन्य जितने शरीर हैं, वह तो भोग के लिये हैं। जितने भी जानवर हैं, आहार, निद्रा, भय, मैथुन, में जीवन निकाल देते हैं। केवल मानव की इसलिए विशेषता है क्योंकि मानव उस परमतत्त्व को जान सकता है, जिसे जानने के बाद आवागमन ही छूट जाता है। इसलिये मानव जीवन की बड़ी महिमा शास्त्रों ने गाई है। मोक्ष के दरवाजे में जो ताला लटका है, वह ताला इस मनुष्य शरीर की चाबी से ही खुलता है। चाबी तो चौरासी लाख हैं, पर चौरासी लाख चाबियों में वहाँ कोई फिट नहीं बैठती। मानव-तन की चाबी इतनी बढ़िया है कि इस चाबी को प्राप्त करके एकदम ताला खुल जाता है। पर चाबी हाथ में लग गई, फिर भी ताला न खोले, तो उससे बड़ा अभागा कौन? तो ये मनुष्य शरीर साधनों का धाम है। हम मनुष्य शरीर से ही साधन कर सकते हैं, उस परमतत्त्व को जान सकते हैं। इसलिये इस चाबी का सदुपयोग करना चाहिये।

बड़े भाग मानुष तन पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रंथहिं गावा ॥
साधन धाम मोक्ष करि द्वारा। पाइ न जेहिं परलोक संवारा ॥ (रामचरितमानस 7/43/4)

व्यास-नारद संवाद :-

उस परमतत्त्व का विविध रूपों में अवतार हुआ। और यहाँ सूतजी महाराज ने चौबीस अवतारों का निरूपण किया, जिनकी चर्चा आगे के प्रसंगों में विस्तार से की गई है। शौनकजी ने पूछा, महाराज! जिस भागवत का आप हमें उपदेश दे रहे हैं, इस भागवत की रचना किसने की? कब की? कहाँ की? क्यों की?

द्वापरे समनुप्राप्ते तृतीये युगपर्यये।
जातः पराशराद्योगी वासव्यां कलया हरेः।। (भा. 2/4/14)

सूतजी कहते हैं, ऋषियो! जिस समय द्वापर के अंत में भगवान् के कलावतार श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यासजी का प्राकट्य हुआ, तब अपनी दिव्यदृष्टि से त्रिकालद्रष्टा व्यासजी महाराज ने भविष्य पर दृष्टिपात करके देखा, तो घोर कलिकाल के कलुषित प्राणियों को देखकर चित्त अशान्त हो गया।

मन्दा सुमन्दमतयो मन्दभाग्या ह्युपद्रुताः

जीवों का कैसे कल्याण होगा? कलिकाल में लोगों की बुद्धि भी मन्द, भाग्य भी अति मन्द है। कोई बुद्धिहीन व्यक्ति हो, पर यदि भाग्यशाली हो, तो काम चल जायेगा। भाग्यहीन व्यक्ति हो पर, यदि बुद्धिमान हो तो, बुद्धि के बल पर अपना निर्वाह कर लेगा। पर बुद्धि और भाग्य - दोनों ही मन्द पड़ गये हों, तो ऐसे जीवों का कैसे कल्याण होगा? इसलिये व्यासजी महाराज ने उन सबका ध्यान रखते हुए एक वेद के चार विभाग कर दिये - ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद। इस पर उनके चित्त को फिर भी शान्ति नहीं हुई क्योंकि वेदों में ज्ञान का भण्डार तो बहुत भरा पड़ा है, पर वेद के ज्ञान को समझने वाला कोई नहीं है। वेद की भाषा जटिल है, तो उसे और सरल करने के लिये पंचम वेद महाभारत की रचना कर दी। जिनकी गति वैदिक ज्ञान में न हो, वह महाभारत का स्वाध्याय करके वैदिकज्ञान प्राप्त कर सकेंगे इसलिये महाभारत की रचना हुई, परन्तु फिर भी मन को संतोष नहीं हुआ। तब पुराणों की रचना प्रारम्भ की। एक-एक करके सत्रह पुराण लिख डाले, पर व्यासजी महाराज का मन अभी भी संतुष्ट नहीं हुआ। सोच रहे थे कि अब क्या किया जाये? कि अचानक! उनके कान में ध्वनि सुनाई पड़ी।

कीर्तन - नारायण नारायण नारायण श्रीमन्नारायण नारायण नारायण

देवर्षि नारद अपनी वीणा पर गोविन्द के गुणानुवाद गाते हुए व्यासजी के सामने प्रकट हो गये। देवर्षि नारद का दर्शन करते ही व्यासजी महाराज खड़े हुए। और,

पूजयामास विधिवन्नारदं सुरपूजितम्

बड़े-बड़े देवताओं के द्वारा परमपूज्य देवर्षि नारद का व्यासजी महाराज ने पाद्य, अर्घ्य, आचमन, आदि के द्वारा विधिवत् पूजन किया। अतिथिपूजन करने के पश्चात् जब आदरपूर्वक आसन देकर बैठाये, तब नारदजी मुस्कुराये और बोले;

पाराशर्य महाभाग भवतः कच्चिदात्मना ।
परितुष्यति शारीर आत्मा मानस एव वा ॥ (भा. 1/5/2)

हे पराशरनन्दन! **'पराशरस्यापत्यं पुमान् पाराशरः'** पराशर ऋषि की संतति में जो हुए वह सब पाराशर तो व्यासजी को पाराशर कहकर सम्बोधित कर रहे हैं। हे पाराशरजी! आपका मुख थोड़ा मलीन-सा क्यों दीख रहा है? आपके धर्म-कर्म सब व्यवस्थित तो चल रहे हैं? आपकी दिनचर्या में, भगवत्सेवा-पूजा में कोई विघ्न तो उपस्थित नहीं हो रहा? व्यासजी कहते हैं, नारदजी! आपने जो भी कुछ पूछा, वह सब ठीक चल रहा है। मेरे पूजापाठ में कहीं कोई बाधा नहीं है। मैंने जीवों के कल्याणार्थ भी बड़े-बड़े ग्रन्थों की रचना कर डाली, फिर भी न जाने क्यों, मेरे चित्त को चैन नहीं पड़ रहा? अभी भी मेरा मन संतुष्ट नहीं हो पा रहा? अभी भी मेरे हृदय में एक आह्लाद जो होना चाहिए कि मैंने समाज के लिये कुछ किया उससे पूर्ण संतुष्टि मेरे मन में नहीं है। और वह क्यों नहीं है? ये कारण मैं स्वयं भी नहीं जानता। नारदजी बोले, तो हम बतायें? तब सूतजी कहते हैं, **'श्रीनारद उवाच'**। अब नारदजी बोले।[1]

आप कभी श्रीमद्भागवत की मूलपाठप्रति में ध्यान दीजिये। इस प्रकरण में पहले केवल 'नारद उवाच' कहा, लेकिन अब लिख रहे हैं 'श्रीनारद उवाच'। 'श्री' अब लगाई, पहले नहीं लगाई; क्योंकि पहले केवल नारदजी

1. कस्मै येन विभासितोऽयमतुलो ज्ञानप्रदीपः पुरा तद्रूपेण च नारदाय मुनये कृष्णाय तद्रूपिणा।
योगिन्द्राय तदात्मनाथ भगवद्राताय कारुण्यतस्तच्छुद्धं विमलं विशोकममृतं सत्यं परं धीमहि ॥ (भा. 12/13/19)

बोल रहे थे। अब जो बोल रहे हैं, वह नारदजी तो बोलते दिखाई पड़ रहे हैं, परन्तु प्रेरणा देने वाले तो परमात्मा हैं। व्यासजी का मार्गदर्शन कराने के लिये नारदजी के भीतर से परमात्मा बोल रहे हैं। इसलिए '**श्रीनारद उवाच**' ऐसा पाठ देखने में आता है। क्योंकि अब स्वयं भगवान् नारदजी के माध्यम से व्यासजी को भागवत का उपदेश दे रहे हैं। भागवत का मतलब - '**भगवता प्रोक्तम्**' - भगवान् ने जो कहा।

भगवान् ने ही ब्रह्माजी के भीतर से नारदजी को कहा, फिर भगवान् ने ही नारदजी के भीतर बैठकर व्यासजी को कहा, फिर व्यासजी के भीतर बैठकर भगवान् ने ही शुकदेवजी को कहा, फिर शुकदेवजी के भीतर बैठकर भगवान् ने ही परीक्षितजी को कहा, '**तत्राभवद्भगवान् व्यासपुत्रो**'। इसलिये बोलता हुआ कोई भी दिखाई पड़े, पर वक्ता के भीतर से बुलाने वाले तो परमात्मा ही होते हैं। इसलिये वक्ता भगवद्-स्वरूप ही होता है। इसलिये अब नारदजी के भीतर से भगवान् बोल रहे हैं?

नारदजी कहते हैं, व्यासजी! तुमने बहुत कुछ लिखा और अपनी लेखनी में बहुत चमत्कार दिखाये। कहीं-कहीं पर तो आपने ऐसे-ऐसे व्यामिश्रित वाक्य बोल दिये कि लोगों की बुद्धि समझने में चक्कर खा गई।

न यद्वचश्चित्रपदं हरेर्यशो जगत्पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचित् ।
तद्वायसं तीर्थमुशन्ति मानसा न यत्र हंसा निरमन्त्युशिक्क्षयाः ॥ (भा. 1/5/10)

नारदजी बोले, व्यासजी! हंस मोती चुनते हैं। कौओं के साथ हंस थोड़े-ही घूमेंगे? उसी प्रकार तुमने बहुत चित्र-विचित्र भाषा का वैशिष्ट्य तो दिखाया, पर गोविन्द के गुणानुवाद नहीं गाये । नैष्कर्म में भी भगवान् की प्रीति न हो, तो उस निष्काम कर्म की भी कोई शोभा नहीं। उस ज्ञान की कोई शोभा नहीं, जो गोविन्द से जुड़ा हुआ न हो। इसलिये व्यासजी महाराज! जबतक भगवान् की कीर्ति-कौमुदी का विस्तार नहीं करोगे, गायन नहीं करोगे, तबतक न तो आपको ही चैन मिलेगा, न तुम्हारी उन पूर्व कृतियों में भक्तों को इतना आनन्द मिलेगा। व्यासजी महाराज! मुझे देखो।

अहं पुरातीतभवेऽभवं मुने दास्यास्तु कस्याश्चन वेद वादिनाम् ।
निरूपितो बालक एव योगिनां शुश्रूषणे प्रावृषि निर्विविक्षताम् ॥

मैं पूर्वजन्म में दासी पुत्र था, पर मेरी माँ संतो में बड़ी श्रद्धा रखती थी, ब्राह्मणों की भक्त थी। जबसे मैंने होश सँभाला, माँ के साथ ही जाता था। माँ संतों की सेवा में जाती, मैं साथ में जाता। महात्मालोग स्नान कर लेते, तो उनके कपड़े माँ के साथ मैं भी धोता था। महात्माओं के लिये जंगल से समिधायें बीन-बीनकर लाता था। महात्मा लोग प्रसाद ग्रहण कर लेते, तो उनका उच्छिष्ट-प्रसाद मैं पाता था। महात्मा लोग कीर्तन करते थे, नाचते थे, तो मैं भी उनके साथ खूब ताली बजा-बजाकर नाचता था। महात्मा लोग कथा कहते थे, तो मैं भी खूब चित्त लगाकर भगवान् की मधुर-कथा संतों के बीच बैठकर सुनता था। चातुर्मास्य में परमात्मा के भजन में उन संतो का संग पाकर मेरा चित्त खूब रम गया। संतो की संगति से मेरा मन भी परमात्मा के प्रेम में रम गया। और चातुर्मास्य पूरा होते ही महात्मा लोग तो चल पड़े, मैं भी उनके संग में चल पड़ा। महात्माओं ने टोका, ऐ बच्चे! तू कहाँ जा रहा है हमारे साथ? मैंने कहा, महाराज! मैं तो अब आपके साथ ही रहूँगा। संत बोले, न बेटा! तू अपनी माँ का इकलौता बेटा है। तेरी माँ ने कितनी सेवा की। अब तुझे हम अपने साथ ले जायेंगे, तो तेरी माँ जीवन भर गाली देगी। इसलिये बेटा! या तो तुम अपनी माँ की आज्ञा लेकर हमारे पास आओ, माँ आज्ञा देती है तो तुम्हें अपने साथ रखने में हमें कोई आपत्ति नहीं है। और माँ की यदि आज्ञा नहीं है, तो माताजी जब पधार जायें तब हमारे पास आना। जबतक माँ की सेवा करो। हम तुम्हें मंत्र दिये देते हैं, घर में बैठकर ही भजन करो।

नारदजी कहते हैं, व्यासजी! मैं जानता था कि मेरी माँ मुझे कभी घर छोड़ने की आज्ञा नहीं देने वाली। इसलिए माँ से मैंने कुछ नहीं कहा और महाराजजी से मंत्र लेकर चला आया। घर में ही बैठकर माला जपने लगा। चौबीसों घंटे प्रेम में डूबा प्रभु की माला जपता रहता था। मेरा अन्य बालकों की तरह कोई भी खेलने में मन नहीं लगता था, संसार की बातें कभी मुझे अच्छी नहीं लगती थीं। सदा हरिभजन में मस्त रहता था। मेरी माँ ने जब मेरी ये स्थिति देखी तो माँ को भय होने लगा कि कहीं मैं बाबा न बन जाऊँ? उनकी धड़कन तेज हो गई। माताओं को इस बात का बहुत डर लगता है कि कहीं मेरा बेटा बाबा न बन जाये। और कुछ न बन जाये उसकी उतनी चिन्ता नहीं करती। चोर न बन जाये, डकैत न बन जाये, नेता न बन जाये, आदि-आदि कुछ भी बन जाये, पर बाबा न बन जाये, ये बहुत डर लगता है। थोड़ा भी तिलक-चंदन और कंठी धारण की, माला लेकर भजन किया कि माताजी घबड़ाई। नारदजी कहते हैं, व्यासजी! मेरी माँ को मेरी चिन्ता होने लगी। घर में जो भी आता, मेरी माँ एक ही बात करती। मेरे बेटे की जल्दी से शादी करवा दो, बस मेरी बुढ़ापे में एक ही इच्छा है कि रुनक-झुनक करती घर में बहू आ जाये, मेरा बच्चा घर-गृहस्थी सँभाल ले, तो मैं निश्चित हो जाऊँ।

नारदजी कहते हैं, मैंने जब माँ की ये बातें सुनी तो मेरी धड़कन और ज्यादा तेज हो गई, हे प्रभु! ये क्या झंझट है? अभी माँ की प्रतीक्षा कर रहा हूँ कि माताजी पधारेंगी सो ही भजन करने संतों के साथ चला जाऊँगा। और कहीं शादी करके मैया गई? तो देवीजी के पधारने की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। फिर तो मेरा पूरा जीवन यों प्रतीक्षा ही करते-करते बीत जायेगा। क्या करूँ? हे प्रभु! अब आप ही कुछ करो।

ठाकुरजी ने ऐसी कृपा करी कि एक दिन सायंकाल का वक्त था। गईया दुहने के लिये मेरी मैया जा रही थी, उन्हें दिखाई नहीं पड़ा और एक सर्प पर उन्होंने पैर रख दिया। सर्प ने तुरन्त मेरी माँ को काट लिया, मेरी मैया मर गई। एक ने मुझे खबर करी तेरी मैया मर गई, उसे नाग ने काट लिया। मैं सुनते ही गद्गद् हो गया। मन में तो मैं बहुत खुश हुआ, पर ऊपर से थोड़ा मुँह लटकाकर, आँसू बहाया। क्योंकि यदि ऊपर से खुश होता तो मुझे संसार के लोग खूब गाली देते कि मैया मरने की खुशी मनाता है? तो,

अनुग्रहं मन्यमानः प्रातिष्ठं दिशमुत्तराम् 1/6/10

भगवान् का परम अनुग्रह मानकर माँ का संस्कार किया और सीधा उत्तर दिशा की ओर चल पड़ा, जिस रास्ते महात्मा लोग गये थे। अब महात्मा तो कब के गये? मैं कहाँ ढूँढ़ता उन्हें? ढूँढ़-ढूँढ़ के परेशान महात्मा कहीं नहीं मिले। एक दिन जब चलते-चलते खूब थक गया, तो एक सरोवर दीखा। सरोवर में मैंने स्नान किया, पानी पीकर प्यास बुझाई।

स्नात्वा पीत्वा ह्रदे नद्या उपस्पृष्टो गतश्रमः 1/6/15

पानी पीकर, प्यास बुझाकर जब मेरा परिश्रम दूर हो गया तो एक वृक्ष की सघन-शीतल छांव में मैं बैठ गया कि थोड़ा आराम कर लूं। बैठ गया तो आसन जमाकर आँख बंद करके वही मंत्र जपने लगा कि थोड़ी देर ध्यान करूँ, भजन करूँ। फिर आगे चलूँ। परन्तु वह ऐसा पावन-दिव्यस्थान था कि मैं जैसे-ही माला लेकर भजन कर रहा था कि

हृद्यासीन्मे शनैर्हरिः 1/6/17

धीरे से भगवान् की सांवली-सलौनी सूरत मेरे हृदय में प्रकट हो गई और मैंने ध्यान में जो भगवान् की बांकी-झांकी की आभा-प्रभा-शोभा का दर्शन किया, मेरे आनन्द का पारावार नहीं रहा। ... ओ हो! मेरी

साधना सफल हो गई! मैं सिद्ध हो गया! मुझे साक्षात् नारायण का साक्षात्कार हो गया! ... मेरे आनन्द का ठिकाना नहीं रहा। और उस आनन्द के सागर में गोता लगा रहा था कि अगले ही क्षण वह छवि गायब हो गयी। अब मेरे को बड़ी घबराहट हुई कि दीखते-दीखते अचानक भगवान् कहाँ भाग गये?

मैंने फिर दुबारा आसन लगाया, फिर वही भजन किया, फिर ध्यान लगाया, लाख कोशिश की, पर कुछ नहीं हुआ। अब तो मेरी विरह-वेदना इतनी प्रबल हो गई कि मैं चीत्कार करके रोने लगा, छाती पीटने लगा - हे प्रभु! क्या हो गया? मुझसे कौन-सा दोष बन गया कि इतनी सुन्दर छवि का दर्शन कराते-कराते आप भाग गये? जब मैं बहुत बुरी तरह रोया, तो अचानक मेरे कान में प्रभु की वाणी सुनाई पड़ी,

अविपक्वकषायाणां दुर्दर्शोऽहं कुयोगिनाम्

आकाशवाणी ने कहा, अरे वत्स! अभी तुम परिपक्व योगी नहीं हुए हो, कच्चे हो। जब परिपक्व सच्चे योगी बन जाओगे, तभी तुम्हें मेरा दिव्यदर्शन प्राप्त होगा। अभी तुम अनधिकारी हो। इसी प्रकार साधना करो फिर तुम्हें हम मिलेंगे। मैं बोला, महाराज! जब मैं परिपक्व नहीं था, तो आप मुझे अभी दर्शन देने आये क्यों? मैं परिपक्व हो जाता, सिद्धकोटि में पहुँच जाता, तभी दर्शन देने आते? पर आपने जो दर्शन की छटा दिखाई और फिर जो भाग गये। अब तो मैं उसके बिना रह नहीं पाऊँगा! मैं तो उसके लिये छटपटा रहा हूँ। जैसे पानी से पृथक मछली की स्थिति हो जाये, आपने तो वह स्थिति मेरी कर दी। मैं आपके बिना नहीं रह पाऊँगा। भगवान् बोले, बेटा! वह तो मैंने अपनी रूपसुधा की चटनी चटाई थी। अरे! तू बालक है! विरक्त तो हो गया। पर जब बहुत दिन हो जायेंगे, कदाचित तुझे मेरा दर्शन बहुकाल तक नहीं हुआ, तो तेरी बुद्धि में भ्रम उत्पन्न हो सकता है कि कहीं महात्मा लोग बचपन में मुझे ऐसे ही पागल तो नहीं बनाकर चले गये? न जाने कोई भगवान् होते भी हैं कि नहीं? तो मेरी सत्ता के प्रति संदेह मन में न जाग जाये, इसलिये मैंने अपनी रूपसुधा की चटनी चखा दी, स्वाद का चस्का तुझे लगा दिया। इसलिये अब तू भटकेगा नहीं और इसी स्वाद में डूबकर मेरा भजन कर। इस जन्म में नहीं अगले जन्म में तुझे मेरी प्राप्ति सुनिश्चित हो जायेगी।

नारदजी कहते हैं, व्यासजी महाराज! भगवान् के उसी वचन पर विश्वास करके मैं जम गया। उसी वृक्ष की छांव में आँख बंद करके, जो छटा मुझे दीखी थी, उसी छटा के आनन्द में डूबा हुआ, उसी का चिंतन करता रहा। और कुछ ही दिनों के बाद महाप्रलय हो गया। समुद्र ने अपनी सीमाओं को लांघ दिया और देखते-देखते सारा संसार ही जलमग्न हो गया। सारा संसार परमात्मा के उदर में विलीन हो गया। और जब उस परमात्मा ने पुन: इस संसार का सृजन किया तो उस दासीपुत्र नारद को अब की बार सृष्टि में ब्रह्मा का पुत्र बनाकर पैदा किया। व्यासजी महाराज! कहाँ दासीपुत्र नारद और कहाँ ब्रह्मापुत्र हो गया। ये उन संतों के सान्निध्य में भगवत्सत्संग का ही चमत्कार है। चातुर्मास्य के संतों के संग ने आज मुझे भगवद्रसिक बना दिया, कृष्ण-दीवाना कर दिया। ब्रह्माजी का बेटा बनकर भी मैंने उसी तत्त्व को पाने का प्रयास किया, जब देखो तब उसी का चिंतन और ध्यान करता रहा। संस्कारवश भजन करते-करते यदि इस जन्म में ब्रह्म साक्षात्कार न हो पाये और शरीर छूट जाये, तो अगला जब जन्म होगा तो बाल्यावस्था से ही वह संस्कार तुम्हारे जाग्रत हो जायेंगे। जो काम पूर्वजन्म में अधूरा रह गया, वह इस जन्म में फिर वहीं से प्रारम्भ हो जायेगा।

नारदजी कहते हैं, उसी प्रकार जन्म-जन्मान्तरों के संस्कार फलीभूत हुये कि मैं भी अपने प्रभु के गुण-गणों का गान करते हुए उनका भजनानुरागी बन गया। और उन्हीं के गुणों का गान करते हुए नाचने लगा-

भजन - जय जय गोविन्द गोविन्द गोपाला, भज मुरली मनोहर नन्दलाला

तो नारायण प्रभु के सामने ऐसा ठुमुक-ठुमुककर, नाच-नाचकर मैंने संकीर्तन किया कि मेरे प्रभु मेरे कीर्तन पर खुश हो गये। इतने प्रसन्न हो गये कि मुझे अपनी वीणा प्रदान कर दी। और कहा कि बेटा! इस वीणा पर मेरे गीतों का गायन करना, नाम का संकीर्तन करना और जगत् में विचरण करना। और मेरे नाम की महिमा का प्रचार-प्रसार करना। व्यासजी! तभी से वीणा पर, उन्हीं के गीत गाता हुआ घूम रहा हूँ। प्रभु के नाम का चमत्कार देखो कि कहाँ तो दासी पुत्र था, आज ब्रह्मा का पुत्र बन गया। और नाम की महिमा का चमत्कार देखो कि जगत् में सब जगह मेरी पूजा होने लगी। मानवों में जाऊँ, दानवों में जाऊँ, या देवताओं में जाऊँ, मेरी सर्वत्र पूजा होती है। ये मेरी पूजा नहीं है, वस्तुत: ये मेरे प्रभु के नाम की पूजा है, जिसने मुझे जगत्पूज्य बना दिया।

[1]देवदत्तामिमां वीणां स्वरब्रह्मविभूषिताम्[2]।
मूर्च्छयित्वा हरिकथां गायमानश्चराम्यहम् ॥ (भा. 1/6/33)

मैं उन्हीं के गीत गाता घूम रहा हूँ व्यासजी! इसलिये आप से निवेदन है कि आप भी गोविन्द के गुणानुवाद गाओ। फिर देखो! आपको कितना आनन्द आता है। और आपकी वाणी से भक्तों को कितना परमसुख प्राप्त होता है। **'प्रादेशमात्रं भवता प्रदर्शितम्'** गोविन्द के गुणानुवाद का संकेत भर कर दिया कि अब तुम विस्तार से सुनाओ। ऐसा कहकर नारदजी तो अर्न्तध्यान हो गये। व्यासजी महाराज ने तुरन्त अपनी कमी का अनुभव कर लिया कि अभी तक मैं वक्ता बनकर सोच रहा था कि मैं बोल रहा हूँ! मैं लिख रहा हूँ! पर अब मैं वही लिखूंगा, जो ठाकुरजी लिखायेंगे, जो उनकी प्रेरणा होगी। तुरन्त सरस्वती नदी में स्नान किया। स्नान करके जैसे-ही व्यासजी महाराज अपने शम्याप्रास आश्रम में ध्यानमग्न होकर बैठे कि हृदय में भागवत की भागीरथी प्रकट होने लगी। गद्‌गद् कण्ठ से गोविन्द के गुणानुवाद गाने लगे। व्यांसजी गाते गये और गणेशजी महाराज लिखते गये। भगवत्प्रेम में डूबे हुए श्रीवेदव्यासजी महाराज ने ये पावन-परमहंसो की संहिता प्रकट की। अट्ठारह हजार श्लोकों की ये दिव्य संहिता तैयार तो हो गई। अब मन में विचार आया कि ये अमृत किसे परोसा जाये? जब परमहंसो की कथा है तो सबसे पहले किसी परमहंस को ही सुनाया जाये। ऐसा कौन है? ध्यान करते ही अपना बेटा याद आ गया। जो जन्म लेते ही परिव्राजक हो गया, उस जैसा परमहंस कहाँ होगा? पर वह तो न जाने, किसी गिरि-गुफा में ध्यान लगाकर छुपा बैठा होगा। कहाँ ढूँढ़ता फिरूँ? तो अपने कुछ शिष्यों को बुलाकर भागवत के दो-चार श्लोक रटा दिये और कहा कि इन श्लोकों को तुम यत्र-तत्र गाओ, गुनगुनाओ। शिष्यगण तब गाते हुए घूमने लगे। जहाँ पर निर्गुण-ब्रह्म की सत्ता में श्रीशुकदेवजी समाधिस्थ बैठे थे, अचानक! उनके कान में भागवत का श्लोक टकराया, जो कोई गुनगुनाता हुआ गाता जा रहा था।

बर्हापीडं नटवरवपु: कर्णयो: कर्णिकारं बिभ्रद्वास: कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम् ।
रन्ध्रान्वेणोरधरसुधया पूरयन्गोपवृन्दैर्वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद्गीतकीर्ति: ॥
(भा. 10/21/5)

---

1. श्रीकृष्ण देवो भगवान् स्वर ब्रह्म विभूषिताम् । कल्पादौ दत्तवान् वीणां ऋषये नारदाय वै ॥ भावार्थदीपिकाप्रकाशे लिङ्गपुराण
राग ज्ञानं तथा वीणां नारदाय महेश्वर: । प्रादात् तत्तपसा प्रीत: पार्वती पति शंकर: ॥ भावार्थदीपिकाप्रकाशे स्कन्दपुराण
2. स्वयं यो राजते नाद: स स्वर: परिकीर्तित: । स्वरैश्च निखिलं व्याप्तं तद्विज्ञेयं पृथक् पृथक् ॥
षड्ज वदेन्मयूरो हि ऋषभं चातको वदेत् । अजा वदति गांधारं क्रौञ्चो वदति मध्यमम् ॥
पुष्प साधारणे काले कोकिल: पंचमं वदेत् । दर्दुरो धैवतं चैव निषादं च वदेत् गज: ॥

मोरपंख धारण किये हुए माधव दिव्य-पीतांबर ओढ़े हुए, वंशी बजाते हुए, गायें चराते हुए, ग्वालों से अपनी कीर्ति का श्रवण करते हुए वृंदावन में प्रवेश पा रहे हैं। जो ये श्लोक कान में पड़ा, शुकदेवजी की समाधि खुल गई। वाह! ऐसे सुन्दर मोरमुकुट वंशी वाले का तो दर्शन हम भी करेंगे। क्या अद्भुत छटा है? क्या प्यारी झांकी है, देखने योग्य है। चलो चलें देखें! परन्तु विचार बदल गया, अरे! जो इतना सुन्दर है, इतना मधुर है। वह आवश्यक नहीं उतना ही सरल भी हो। कहाँ-कहाँ ढूँढ़ता फिरूँ? मिलेगा कि नहीं? मिल भी गया तो स्वीकार करेगा कि नहीं? मुझे अपनायेगा कि नहीं? जो सुन्दर है, वह स्वभाव से भी सुन्दर हो, इसकी कोई गारंटी नहीं। अपने चित्त को रोका और पुनः अपने ब्रह्मचिंतन करने का प्रयत्न करने लगे। उस रूपसुधा के प्रति अपने मन में जो खिचाव पैदा हुआ, उसे रोकने का प्रयत्न करने लगे। पर जैसे ही ब्रह्मचिंतन करने का प्रयास करते हैं कि मोरमुकुट वंशी वाला चित्त में प्रकट हो जाता है। स्वभाव के प्रति संदेह हो रहा था कि तबतक व्यासजी के उस चेला ने दूसरा श्लोक गुनगुना दिया, इस दूसरे श्लोक में भगवान् के स्वरूप का वर्णन है।

अहो बकीयं स्तनकालकूटं जिघांसयापाययदप्यसाध्वी ।
लेभे गतिं धात्र्युचितां ततोऽन्यं कं वा दयालुं शरणं व्रजेम ॥ (भा. 3/2/23)

अहो आश्चर्यम! बकी नाम पूतना का, बकासुर की भगिनी - बकी, जो अपने स्तनों में कालकूट विष लगाकर भगवान् को मारने से प्रेरित होकर आई और वह विषयुक्त स्तन प्रभु के मुख में दे दिया। पर वाह प्रभु! सारे उस पापिनी के उन पापों पर पर्दा डाल दिया। और कहते हैं - बुरी-भली जैसी भी सही, पर काम तो मैया जैसा किया है। यशोदामैया की तरह कितने प्यार से, अनुराग से, हृदय से लगाकर मुझे स्तनपान करा रही है। इसलिये '**लेभे गतिं धात्र्युचितां ततोऽन्यम्**' माँ यशोदा के समान उस पापिनी पूतना को भी गति प्रभु ने प्रदान कर दी। ''**कं वा दयालुं शरणं व्रजेम**'' कौन अभागा होगा, जो ऐसे परम-कृपालु-दयालु प्रभु की शरणागति स्वीकार न करे, उनकी शरण में आना न चाहे। जो शुकदेवजी ने सुना, वाह! इतने प्यारे इतने सुन्दर इतने मधुर होने के साथ-साथ इतने सरल और इतने सुगम, इतने सहज। ऐसा तो कोई हो ही नहीं सकता। बस! अब अपने आपको रोक नहीं पाये

हरेर्गुणाक्षिप्तमतिर्भगवान् बादरायणिः ।
अध्यगान्महदाख्यानं नित्यं विष्णुजनप्रियः ॥ (भा. 1/7/11)

हरि का अर्थ हरण करने वाला। उस हरि ने इनका चित्त भी हर लिया, चुम्बक की तरह चित्त चितचोर माधव के चरणों में चिपक गया। खिचे चले आये।अरे भैया! बड़े प्यारे-प्यारे श्लोक गुनगुनाये, जरा दो-चार और सुना दो। शिष्यगण बोले, हमें तो दो ही आते हैं, तो दोनों सुना दिये। और ज्यादा आनन्द लेना है, तो हमारे गुरुदेव के पास ऐसे ही दिव्य अट्ठारह हजार श्लोकों की पावनसंहिता है। ओ हो! कहाँ हैं? आओ हमारे साथ!

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे ।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतगुणो हरिः ॥ (भा. 1/7/10)

सूतजी महाराज कहते हैं, ऋषियों! गोविन्द के गुणानुवाद ही इतने दिव्य हैं कि किसी का भी मन खिंच जाये। चुंबक की शक्ति जितनी अधिक होगी लोहा उतनी ही शीघ्रता से खिचेगा। थोड़ा बहुत गंदगी भी लगी हो, तो भी चुंबक खींच लेता है। और कहीं विशुद्ध लोहा हो, तो फिर कहना ही क्या है? जिस लोहे में बहुत ही ज्यादा गंदगी लगी हो, मोटी-मोटी कीचड़ की परत लगी हो, अनेक वस्त्रों से यह लिपटा हुआ यदि पड़ा हो, तो

चुम्बक-शक्ति बहुत अच्छा काम नहीं करेगी। निरावरण होना चाहिए, कोई कपड़ा नहीं लिपटा हो। लोहे में बहुत ज्यादा कीचड़ न लगी हो, तो चुंबक तुरन्त खींच लेगा प्रभावशील होगा। ऐसे ही गोविन्द के गुणानुवाद चित्त को खींचते हैं, पर चित्त शुद्ध हो, उसमें दुर्वासनाओं के वस्त्र न लिपटे हों।

शुकदेवजी का चित्त तो परम विशुद्ध है, इसलिये खिच गया, चिपक गया। अपने आपको रोक न सके। निर्ग्रन्थ थे, सारी ग्रंथियां जिनकी खुल चुकी थी। अज्ञान की भी ग्रंथियां होती हैं। अविद्या, स्मिता, राग-द्वेष, अविनिमेष - ये अज्ञान की ग्रंथियां हैं, जिनके जीवन से खुल चुकी हैं। इसलिये निग्रन्थ अथवा संग्रह की भी ग्रंथियां जिनकी खुल चुकी हैं। बहुत से विरक्त भी कुछ-न-कुछ संग्रह की ग्रंथी बाँधकर रखते हैं। पर शुकदेवजी के पास किसी प्रकार का कोई संग्रह नहीं है। कोई ग्रंथी इनके तन में नहीं। अरे! और तो और? कौपीन की ग्रंथी से भी रहित, इनके तन पर लंगोटी भी नहीं है। संग्रह की भी कोई ग्रंथी नहीं अथवा शिखा-सूत्र की भी ग्रंथी नहीं। शिखा की ग्रंथी और सूत्र में भी ब्रह्मगांठ होती है। सारी ग्रंथियों से रहित हरि के गुणनुवादों ने ऐसे विशुद्धात्मा शुकदेवजी के उस पावन चित्त को खींच लिया।

श्रीवेदव्यासजी के पास श्रीशुकाचार्यजी पधारे। चरणों में नमन किया, गुरुदेव! क्या ये प्रसाद हमें भी मिलेगा? अपने प्रिय पुत्र को पाकर प्रसन्नता में प्रमुदित हो उठे श्रीवेदव्यासजी महाराज। वाह! जिसके पीछे मैं पागलों की तरह पुत्र-पुत्र कहकर भाग रहा था, धन्य हैं! गोविन्द के गुणानुवाद, जो आज खुद ही भागा हुआ मेरे पास आ गया। ये प्रभु के चरित्रों का ही तो चमत्कार है। बैठाकर अपने प्रिय पुत्र को भागवतसंहिता प्रदान की। मधुर-मधुर भागवत के श्लोक सुनाये। शुकदेवजी तो दीवाने हो गये। अबतक केवल परमहंस थे, आज से श्रीपरमहंस हो गये। अबतक निर्गुणसत्ता में चित्त परिनिष्ठित था, आज से सगुण-साकार श्रीराधाकृष्ण के परमोपासक बन गये।

और वही भागवत-संहिता को आत्मसात करने के बाद, उन्हीं श्रीशुकदेवजी महाराज ने अवसर आने पर परीक्षित के सामने परोस दिया। शुकदेव जैसे परमहंस सात दिन तक उनके सामने बैठे रहे। जो गोदोहन काल से ज्यादा कहीं टिकने वाले नहीं, वह सात दिन तक लगातार परीक्षित को इस प्रकार से एक जगह बैठकर कथा सुनाते रहे। इसका कारण क्या है? परीक्षित ने भागवत क्यों सुनी? परीक्षित को ही शुकदेवजी ने पात्र क्यों बनाया? तब श्रीसूतजी महाराज अब परीक्षित का चरित्र प्रारम्भ करते हैं।

परीक्षित कथा :–

यदा मृधे कौरवसृञ्जयानां वीरेष्वथो वीरगतिं गतेषु ।
वृकोदराविद्धगदाभिमर्शभग्नोरुदण्डे धृतराष्ट्रपुत्रे ॥ (भा. 1/7/13)

सूतजी कहते हैं, ऋषियो! उस समय की बात है, जब महाभारत के युद्ध में सभी कौरव मारे गये और पाण्डवों को विजयश्री प्राप्त हुई। अन्तिम युद्ध में विशाल भीमसेन की गदा ने दुर्योधन का उरुदण्ड-भेदन कर दिया, जंघा को तोड़ दिया और मूर्च्छावस्था में दुर्योधन को छोड़कर पाण्डव अपने शिविर में पहुंचे। उस समय एकान्त में दुर्योधन के पास अश्वत्थामा आया। कुरुक्षेत्र की भूमि में अनेक शव बिखरे पड़े हैं, कई हिंसक जीव खाने के लिये झपट रहे हैं, कई गीध आकाश में दृष्टि डाले हुए जहाँ पर चाहते हैं, वहीं पर जाकर बैठ जाते हैं। कई गिद्ध दुर्योधन का भी मृत-देह समझकर आते हैं, घायल अवस्था में दुर्योधन उन्हें भगाते-भगाते अत्यंत संतृस्त हो रहा है।

ये दुर्दशा जब अश्वत्थामा ने देखी, तो विकल हो गया। दुर्योधन के पास आया, मित्र! मैंने तुम्हारा वह वैभव देखा, वह दिव्य साम्राज्य देखा और आज ऐसे उस महापुरुष का ये हाल? ये दुर्दशा? बताइये! आपके लिये मैं क्या कर सकता हूँ। मैंने तुम्हारा नमक खाया है, तुम्हारे बहुत सारे एहसान हैं हम पर। बोलिये! तुम्हारी क्या इच्छा है? मैं क्या कर सकता हूँ। दुर्योधन ने कहा, मित्र! हम सौ भाई थे, पर आज एक नहीं है। इससे अधिक पीड़ा इस बात की है कि मेरे शत्रु पाँच भाई थे, उनमें से एक भी नहीं मरा सब ज्यों-के-त्यों हैं। पाँच में से एक भी चला जाये, एक की भी संख्या कम हो जाये तो चित्त को कुछ तो संतोष मिले। अश्वत्थामा ने कहा, तो मित्र! यदि यही तुम्हारी अन्तिम इच्छा है, तो ठीक है। तुम एक की बात कर रहे हो, मैं पाचों का सिर काटकर अभी लाता हूँ।

ऐसा कहकर अश्वत्थामा चल पड़ा। सोचने लगा कि क्या किया जाये? **'काग-उलूक-न्याय'** से हमला बोलने का प्रयास किया जाये। तमाम कौवे एक वृक्ष पर बैठे थे। रात्रि में उल्लू ने हमला बोला, तो सारे कौए मारे गये, भाग गये। अकेले एक उल्लू ने सब पर विजय प्राप्त कर ली। ये न्याय अश्वत्थामा की समझ में आ गया कि पाण्डव भी इस समय सशक्त हैं और मैं अकेला क्या कर पाऊँगा? इसी विधि से मैं उन पर आक्रमण करूँ! चल पड़ा अर्धरात्रि में। पर प्रभु जिसे बचाना चाहें, जो करना चाहें, उनकी इच्छा के सामने किसी की नहीं चलती। वह जो चाहते हैं, वही होता है। भगवान् आज पाँचों पाण्डवों को शिविर से ही बाहर निकालकर ले गये, चलो भाई! विजय की प्रथम रात्रि है। धूमधाम से उत्सव मनायेंगे। और पाण्डवों की सूनी शय्या पर द्रौपदी के पाँचो बेटे आकर सो गये। ये पाँचों पाण्डवों के द्वारा उत्पन्न हुए थे, जो देखने में बिल्कुल अपने पिता के समान ही दिखाई पड़ते थे। अपने-अपने पिता की शय्या पर पाँचों द्रौपदीपुत्र आकर सो गये।

रात्रि में जब अश्वत्थामा ने आक्रमण किया, तो उन पाँच पाण्डवपुत्रों को ही पाण्डव समझ लिया, और पाँचों का सिर काट लिया। प्रसन्न हो गया कि मैं सफल हो गया। पाँचों का सिर लेकर आया, मित्र दुर्योधन! देखो-देखो! एक माँग रहे थे, मैं पाँचों का सिर लाया हूँ। दुर्योधन भी प्रसन्न हो गया। पर जब गौर से देखा, तो पहचान गया। पहचानते ही दुर्योधन बहुत दु:खी हो गया और बोला, अरे अश्वत्थामा! ये पाण्डव नहीं! पाण्डव पुत्र हैं! इन्हें मारकर तो तूने हमें पानी देने वाला भी नहीं छोड़ा! इनसे मेरा क्या वैर था? दुर्योधन का भी प्राणान्त हो गया, पर अश्वत्थामा अब बहुत घबड़ाया कि पाण्डव यदि जीवित हैं, तो अब वे मुझे नहीं छोड़ेंगे। उधर जब द्रौपदी को इस घटना का पता चला, तो अत्यंत चीत्कार कर उठी। छाती पीट-पीटकर विलाप करने लगी,

माता शिशूनां निधनं सुतानां निशम्य घोरं परितप्यमाना ।
तदारुदद्वाष्पकलाकुलाक्षी तां सान्त्वयन्नाह किरीटमाली ॥ (भा. 1/7/15)

द्रौपदी की इस व्यथा को देखकर अर्जुन ने गाण्डीव-धनुष उठा लिया और तुरन्त क्रोध में भरकर प्रतिज्ञा कर डाली, द्रौपदी! दु:खी मत हो!! जिस दुष्ट ने ये दुष्कर्म किया है, उसे मैं तुम्हारी आँखों के सामने लाकर मृत्युदण्ड दूँगा। ऐसा कहकर अर्जुन गाण्डीव उठाकर चल पड़े। गोविन्द के द्वारा संचालित उस रथ में बैठकर अश्वत्थामा का पीछा किया। अश्वत्थामा भागा कि बचूंगा नहीं! जब जान ही लिया कि अर्जुन मुझे छोड़ने वाला नहीं, तो उसने अर्जुन के ऊपर ब्रह्मास्त्र चला दिया। अर्जुन घबड़ा गये। भगवान् बोले, अर्जुन! तुम क्यों घबड़ाते हो? तुम्हें तो ब्रह्मास्त्र चलाना आता है, तुम भी चलाओ! तुरन्त अर्जुन ने भी ब्रह्मास्त्र छोड़ दिया। दोनों ब्रह्मास्त्र टकराये। भगवान् बोले, अर्जुन! तुरन्त शान्त करो। तुरन्त अर्जुन ने अपने दिव्य ब्रह्मास्त्र के प्रभाव को

शान्त कर दिया और छोड़कर अश्वत्थामा को बंदी बना लिया। रस्सियों में बुरी तरह बाँधकर, रथ में लाकर पटक दिया। भगवान् कहते हैं, इसे बाँध क्यों रहे हो? इसे यहीं मृत्युदण्ड दे दो। ये आततायी है। सोते हुए प्रबल शत्रु को भी कोई मारता नहीं, इसने सोते-सोते अबोध बच्चों को मारा है।

मत्तं प्रमत्तमुन्मत्तं सुप्तं बालं स्त्रियं जडम् ।
प्रपन्नं विरथं भीतं न रिपुं हन्ति धर्मवित् ॥ (भा. 1/7/36)

धर्मवेत्ता पुरुष स्त्री को, बालक को, मतवाले को, पागल को, सोते हुए शत्रु को, कभी नहीं मारते। इसने अधर्म किया है, अर्जुन! छोड़ना मत। अर्जुन ने कहा, सरकार! छोड़ने वाला तो नहीं हूँ। परन्तु द्रौपदी को वचन दिया है, इसलिए वहीं मारूँगा। पशुओं की तरह रस्सी से बाँधकर, अश्वत्थामा को रथ में डालकर, लाकर द्रौपदी के सामने खड़ा कर दिया। जो द्रौपदी की दृष्टि अश्वत्थामा पर पड़ी, तुरन्त खड़ी हुई और अश्वत्थामा की रस्सियां खोलने लगी।

मुच्यतां मुच्यतामेष ब्राह्मणो नितरां गुरुः

क्या कर रहे हो महाराज? ये ब्राह्मण देवता हैं। और केवल ब्राह्मण ही नहीं, आपके गुरुदेव का पुत्र है। अरे! गुरूपुत्र तो गुरुदेव के समान ही वन्दनीय होना चाहिये। और आपने इसे बाँध रखा है? भूल गये गुरुदेव के एहसानों को?

सरहस्यो धनुर्वेदः सविसर्गोपसंयमः

आपके गुरुदेव ने आपको सबसे परमप्रिय शिष्य मानकर, वह अस्त्र के रहस्य बतलाये हैं, जो किसी को नहीं दिये। धनुर्वेद में जितने भी रहस्य थे, वे सब तुम्हें प्रदान किये। और जिन गुरुदेव ने इतने रहस्य आपको दिये, आज वही गुरुदेव तो पुत्र के रूप में तुम्हारे सन्मुख खड़े हुए हैं और आपने उन्हें पशुओं की तरह बन्दी बना रखा है? अश्वत्थामा रस्सियों से बँधा नीचे सिर झुकाये खड़ा है। कर्म ही इतना जुगुप्सित किया है कि अपने पापकर्म के कारण कभी निगाह उठाकर किसी से आँख नहीं मिलाता। अश्वत्थामा स्वत: लज्जित हो रहा है, द्रौपदी उन्हें मुक्त करने की प्रार्थना कर रही है।

अर्जुन बोले, देवी! क्या तुम भूल गईं? तुम्हारे एक नहीं पाँच-पाँच पुत्रों को सोते-सोते इसने समाप्त कर दिया, और इस पर तुम इतनी दया दिखा रही? द्रौपदी ने कहा, महाराज! इस पर तो मुझे बिल्कुल भी दया नहीं आती, पर मैं ये नहीं चाहती कि जिस शोकसागर में मैं डूब रही हूँ, किसी दूसरी माँ को क्यों डुबाऊँ? मैं जान गई कि पुत्र-पीड़ा की व्यथा कितनी होती है। यदि तुमने इसे समाप्त किया, तो क्या तुम्हारी गुरुमाता मेरी तरह नहीं रोयेगी? मेरे पुत्र नहीं तो मुझे कम-से-कम पति का अवलम्ब प्राप्त है। परन्तु इनकी माँ कृपी, जिनके पति द्रोणाचार्यजी महाराज तो पधार चुके हैं, बेटे का सहारा लिये बैठी है। यदि इसे भी तुम समाप्त कर दोगे, तो तुम्हारी गुरुमाता पर क्या बीतेगी? वह तो बिल्कुल असहाय अकेली पड़ जायेगी।

मां रोदीदस्य जननी गौतमी पतिदेवता ।
यथाहं मृतवत्साऽऽर्तारोदिम्यश्रुमुखी मुहुः ॥ (भा. 1/7/47)

धर्मराज युधिष्ठिरजी को द्रौपदी के ये वचन उचित लगे। उन्होंने तुरन्त आदेश दिया, अर्जुन! द्रौपदी बिल्कुल ठीक कह रही है। जैसा भी हो, ब्राह्मण है, गुरुपुत्र है। हमारे लिये सर्वथा वन्दनीय है, हमें इसे मारना नहीं चाहिये। पर भीमसेन की आँखें टेढ़ी हो गई। गदा सँभालने लगे, तुम सब छोड़ भी दो, तो भी मेरी गदा से ये छूटने वाला

नहीं है। कदापि इसे जीवनदान नहीं मिल सकता। अर्जुन बोले, भैया! मैं भी वचनबद्ध हूँ! मैंने भी द्रौपदी के सामने प्रण किया था। इसलिये मैं भी छोड़ने वाला तो नहीं। अब तो बड़ा भारी द्वन्द्व खड़ा हो गया। द्वारकाधीश प्रभु मौन खड़े-खड़े सब कुछ सुन रहे हैं, देख रहे हैं, विचार कर रहे हैं। जब बात बहुत ज्यादा उलझती चली गई, तब अर्जुन द्वारकाधीश के पास आकर बोले, सरकार! अब आप मौन क्यों खड़े हो? आप भी तो कुछ अपना मन्तव्य बतलाइये, क्या किया जाये? भगवान् बोले, हमसे पूछते हो, तो सुनो!

तस्मात् शास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्य व्यवस्थितौ

क्या करना चाहिये और क्या नहीं, इसके शास्त्र साक्षी होते हैं। शास्त्र जो कहें, वह करना चाहिए। तो ऐसी स्थिति में शास्त्र कहता है -

ब्रह्मबन्धुर्न हन्तव्य आततायी वधार्हणः ।
मयैवोभयमाम्नातं परिपाह्यनुशासनम् ॥ (भा. 1/7/53)

शास्त्रों ने स्पष्ट आदेश दिया है कि ब्राह्मण कितना भी पतित हो, अधम हो, पर वह मारने योग्य नहीं होता। ब्राह्मण का कभी वध नहीं किया जाता। पर शास्त्रों में ये भी स्पष्ट आदेश है कि आततायी कोई भी हो, कैसा भी हो, वह वध के ही योग्य होता है। उसे छोड़ना ही नहीं चाहिये। अर्जुन ने कहा, जय हो महाराज! आपने तो ये दोनों ही बातें कर दीं। एक तरफ कह दिया, ब्राह्मण कभी मारा नहीं जाता। दूसरी तरफ कह दिया, आततायी कोई भी क्यों न हो, उसे छोड़ना ही नहीं चाहिये! तो बात तो जहाँ-की-तहाँ रही महाराज! मैं क्या करूँ?

भगवान् बोले, शास्त्र की बात हमने बता दी। अब जो उचित लगता हो, तुम करो। अर्जुन ने कहा कि महाराज! मैं कुछ समझा नहीं। भगवान् बोले, तो यों समझो! श्रीयुधिष्ठिरजी महाराज सम्राट हैं, राजा हैं, तुम्हारे बड़े भाई हैं। वह जो आज्ञा दे रहे हैं, उसका तुम्हें पालन करना चाहिये। पर ध्यान रखना कि तुम क्षत्रिय हो, अपनी प्रतिज्ञा को मत तोड़ बैठना। क्षात्रधर्म का पालन करना, वचनरक्षा करना। अर्जुन समझ गये कि ये टेढ़ी टाँग वाले सीधा बोलना जानते ही नहीं, हर मामला इनका टेढ़ा। पर अर्जुन भी भगवान् के पक्के चेला हैं। भगवान् से ही भगवद्गीता का ज्ञान प्राप्त किया है महाभारत में। अर्जुन को तुरन्त गीता का एक सूत्र याद आ गया। भगवान् कह रहे थे, माननीय पुरुषों का अपमान ही मृत्यु है। शरीर का वध ही वध नहीं कहलाता। ये भी तो मौत है। माननीय पुरुषों का अपमान हो जाये, वह जितनी बार उस अपमान को याद करेगा, उतनी मौत मरेगा।

सम्भावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते
संभावित कहुं अपजस लाहू । मरण कोटि सम दारुण दाहू ॥

तुरन्त भगवान् का वाक्य स्मरण आ गया। अर्जुन ने अश्वत्थामा के सिर से चमकती हुई मणि को निकाला और शिविर से धक्का मारकर भगा दिया।

वपनं द्रविणादानं स्थानान्निर्यापणं तथा ।
एष हि ब्रह्मबन्धूनां वधो नान्योऽस्ति दैहिकः ॥[1] (भा. 1/7/57)

ब्राह्मण का दैहिक-वध नहीं करना चाहिये। उसे विद्रूप कर दो, उसे घोर अपमानित कर दो, धक्का मारकर घर से निकाल दो - यही ब्राह्मण की मृत्यु है। शिविर से धक्का मारकर अर्जुन ने अश्वत्थामा को निकाल दिया,

1. आज्ञा भङ्गो नरेन्द्राणां विप्राणां मानखंडनम् । पृथक शय्या च नारीणामशस्त्रोविहितो वधः॥

उसकी मणि को छीन लिया। अपमान की ज्वाला में जलता हुआ अश्वत्थामा सोचने लगा कि मेरा भी नाम अश्वत्थामा नहीं, इनके वंश में कोई पानी देने वाला नहीं छोड़ूँगा। अपमानित होकर चला गया।

भगवान् अब इधर पाण्डवों से बोले, भाई! आपके बीच रहते-रहते बहुत दिन हो गये। अब हमारे द्वारिकावासी भी हमारी बहुत राह देख रहे होंगे, तो अब हम अपने घर चलें। पर कोई भी पाण्डव प्रभु को भेजना ही नहीं चाहता, विदा करना ही नहीं चाहता। आपस में विचार किया। अन्त में निर्णय लिया, देखो भाई! आज नहीं तो कल, विदाई तो देना ही पड़ेगी। कबतक हम इन्हें अपने पास बाँधकर रखेंगे? हमें अब स्वार्थ त्यागकर द्वारिकावासियों पर भी ध्यान देना चाहिये। जैसे-तैसे सब राजी हुए और भगवान् की विदाई की तैयारियाँ होने लगी। भगवान् को ले जाने के लिए दिव्य रथ तैयार होकर आ गया। समस्त पाण्डव-परिकर मिलकर प्रभु को विदा देने लगे। द्वारिकाधीश की जय-जयकार बोलते हुए सब विदाई दे रहे हैं। भगवान् द्वारिका जाने के लिये अपने रथ में एक कदम रख दिये। बड़ी अपूर्व झाँकी हो रही है। एक चरण धरती पर है, एक चरण रथ पर। एक भुजा से रथ को चढने के लिये पकड़ रखा है और दूसरी भुजा से सबको अभय-मुद्रा में आशीर्वाद दे रहे हैं। मन्द-मन्द मुस्कुराते हुए प्रभु की छटा का सभी दर्शन कर रहे थे कि अचानक! एक अबला चीखती-पुकारती बाल विधवा दौड़ी-दौड़ी आई और चरणों में लिपट के पुकारने लगी।

पाहि पाहि महायोगिन् देवदेव जगत्पते ।
नान्यं त्वदभयं पश्ये यत्र मृत्युः परस्परम् ॥ (भा. 1/8/9)

'पाहि माम्... पाहि माम्' कहते हुए चरणों में उस देवी को गिरते देखा, भगवान् सावधान हो गये! देखने वाले हैरान हो गये कि ये अचानक! कौन आ गया? प्रभु ने ध्यान से देखा, अरे! ये तो पाण्डवों की कुलवधू है, अभिमन्यु की पत्नी उत्तरा है। अभिमन्यु तो वीरगति को प्राप्त हुए चक्रव्यूह में। परन्तु गर्भवती होने के नाते देवी उत्तरा सती न हो सकी। आज वह बेचारी विकल चरणों में पड़ी है, प्रभु सावधान होकर मुस्कुराये, अरे देवी! क्या हुआ? गिड़गिड़ाती हुई उत्तरा हाथ जोड़कर बोली, प्रभो! आज मुझे आपके अतिरिक्त अपना कोई भी रक्षक त्रिभुवन में दिखाई नहीं पड़ रहा। प्रभु के अतिरिक्त दूसरा कोई भी मेरा रक्षक नहीं, ऐसा दिव्यभाव मन में जागे - वही सच्चा अनन्याश्रित भक्त है। और भगवान् की तो प्रतिज्ञा है,

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यम् ॥ (गीता 9/31)

अनन्याश्रित होकर देवी उत्तरा चरणों में गिरीं क्षण भर का विलम्ब किया होता? तो अनर्थ हो सकता था। भगवती द्रौपदी ने भी प्रभु को पुकारा तो था, पर कौरवसभा में कब पुकारा? जब चारों तरफ से निराशा हाथ लगी। कभी अपने पतियों को देखती है, कभी द्रोणाचार्य गुरुदेव को देखती है, कभी पितामह भीष्म को। पर सबका सिर झुक गया, चारों तरफ से निराशा-पिशाची ने घेर लिया। तब जाकर प्रभु से आशा जागी और द्रौपदी की रक्षा प्रभु ने की। पर उत्तरा देवी ने ये भूल नहीं की। पूरा परिवार खड़ा है प्रभु को विदा देने के लिये, परन्तु उत्तरा ने किसी अन्य का विश्वास नहीं किया, भरोसा नहीं किया, आश्रय नहीं लिया और सबके बीच आकर गोविन्द के पादपद्मों को पकड़ लिया प्रभो! रक्षा करो। आप देख रहे हैं? ये तेजपुंज मेरी ओर बढ़ता ही चला आ रहा है और निश्चित् ही ये मुझे भस्म कर देगा। मुझे अपने प्राणों का तनिक भी मोह नहीं है, ये वैधव्य जीवन मेरे लिये तो भार ही है। परन्तु भय इस बात का है कि मेरे गर्भगत-शिशु पर कोई आँच न आ जाये। क्योंकि यदि

वह समाप्त हो गया, तो आज आपके द्वारा रक्षित सम्पूर्ण कुरुवंश ही समाप्त हो जायेगा। इसलिये मैं भले ही बचूँ या मरूँ, पर मेरे गर्भ पर कोई संकट न आवे।

कामं दहतु मां नाथ मा मे गर्भो निपात्यताम्

उत्तरा केवल अपनी रक्षा की बात करती, तो हो सकता है वह बच जाती और गर्भ नष्ट हो जाता। परन्तु गर्भ रक्षा की बात करती है कि मैं बचूँ या मरूँ, कोई चिन्ता नहीं है। तो भाई! गर्भ की रक्षा भी तो तभी सम्भव है, जब माँ की भी रक्षा हो? इसलिये गर्भ की रक्षा की गुहार करती है, अपनी रक्षा की नहीं। भगवान् बोले, देवी! बिल्कुल भयभीत न हो। अभयदान देकर भगवान् तुरन्त अंगूठे के बराबर नन्हा-सा रूप धारण किये और देवी उत्तरा के गर्भ में प्रविष्ट हो गये।

उत्तरा के गर्भ में ज्यों-ही भगवान् प्रविष्ट हुए, नन्हे-से परीक्षित अभी गर्भ में विराजमान हैं। अश्वत्थामा का भेजा हुआ ब्रह्मास्त्र जलाने के लिये अंगारा बना चला आ रहा है। परीक्षित नन्हे-से कांप रहे हैं, उस तेज से संतप्त हो रहे हैं, विलख रहे हैं, विकल हो रहे हैं। पर अचानक! उनकी आँखों के सामने वहाँ चतुर्भुज दिव्यरूप प्रकट हुआ, भगवान् ने अपने दिव्य तेज और प्रभाव से ब्रह्मास्त्र को शान्त कर लौटा दिया। और परीक्षित की ओर अभयमुद्रा में आशीर्वाद दिया। परीक्षित की नन्ही-सी आँखों में वह झांकी हमेशा के लिये बैठ गई। ये अचानक! अंगारा जो आग का मुझे जला रहा था, उससे मेरी रक्षा करने वाला ये चार हाथ वाला कौन आ गया? और चित्त में जो छटा एक बार चिपक जाये, वह निकलती नहीं है। विशेषकर बालकों की, क्योंकि बालक का चित्त एकदम विशुद्ध होता है। उसमें जो भी चित्र है, वह हमेशा के लिये अंकित हो जाता है। अभी परीक्षित का तो जन्म भी नहीं हुआ, माँ के गर्भ में ही है। संसार का दृश्य अभी देखा ही कहाँ है, गर्भ में ही ये चार हाथ वाले का दृश्य दिखाई पड़ गया। और ये भी प्रत्यक्ष देख लिया कि इसी ने मेरे प्राणों की रक्षा की। बस! इसीलिये परीक्षित के चित्त में वह चित्र चिपक गया अंकित हो गया।

धन्य है उत्तरा का सौभाग्य। इस भारतभूमि में माताओं ने अपने गर्भ में भक्तों को धारण किया, ध्रुव और प्रह्लाद के रूप में। भगवान् को भी अपने उदर में धारण किया, श्रीराम और कृष्ण के रूप में। पर ऐसी भाग्यशालिनी माता कोई नहीं हुई, जिसके गर्भ में भक्त और भगवान् एक साथ विराजे होवें। आज ये परमसौभाग्य यदि मिला तो, भगवती उत्तरादेवी को। इनके गर्भ में परमभागवत परीक्षित पहले ही विद्यमान थे और आज साक्षात् प्रभु भी पधार गये। भक्त और भगवान् का ये दिव्य-संयोग भगवती उत्तरा के गर्भ में सम्पन्न हुआ।

पुनः प्रभु प्रकट हुए मन्द-मन्द मुस्कुराकर उत्तरा को देखा और कहा, देवी! अब तो कोई कष्ट नहीं है। उत्तरा के आनन्द का पारावार नहीं रहा, चरणों में बार-बार प्रणाम करने लगी, अश्रुधारा नयनों से बहने लगी। किन शब्दों में प्रभु को धन्यवाद दिया जाये, वाणी मूक हो गई। एक शब्द भी देवी उत्तरा के मुख से निकला नहीं। और भगवान् अभयदान देकर पुनः रथ में चढ़ने को उद्यत हुए, तो देवी कुन्ती महारानी से नहीं रहा गया, मेरे वंश की रक्षा की है। यदि ये बालक समाप्त हो गया होता, तो कुरुवंश उसके साथ ही समाप्त हो जाता। और इतना बड़ा कार्य करके प्रभु जा रहे हैं, कोई धन्यवाद भी नहीं दे रहा? ठीक है, आकाश का अंत कोई नहीं पा सकता, फिर भी पक्षी तो अपनी-अपनी सामर्थ्य से उड़ते ही हैं। गोविन्द के अनन्त गुणगणों का कोई भी गायन नहीं कर सकता, कोई भी पार नहीं पा सकता। फिर भी ऋषि-मुनि अनादिकाल से उनके गुणगणों का गायन

तो करते ही हैं, अपनी-अपनी सामर्थ्य से उनकी महिमा गाते हैं। कुन्ती मैया से भी नहीं रहा गया। प्रभु के चरणों में आकर प्रणाम करने लगी। भगवान् बोले, बुआ! ये उल्टी गंगा क्यों बहा रही हो? मैं आपका भतीजा विदा ले रहा हूँ, तो प्रणाम मुझे आपको करना चाहिये। और उल्टे आप मुझे प्रणाम करने लगीं? कुन्ती मैया हाथ जोड़कर कहती हैं, प्रभो! ये बुआ-वुआ कहकर मेरी आँखों पर ये मोह का पर्दा न डालिये। अनेकों बार आपकी भगवत्ता को मैंने ठीक से जान लिया, समझ लिया। पर जैसे-ही आपकी भगवत्ता मेरी समझ में आने लगती है, तभी बड़े प्यार से आप बुआजी-बुआजी! इतने प्यार से बोलते हो कि आपकी सारी भगवत्ता भुलाकर केवल भतीजा मानकर रह जाती हूँ। इसलिये निवेदन है कि थोड़ी देर मौन ही खड़े रहो और आज जो उद्गार हृदय में आ रहे हैं, उन्हें कह लेने दीजिये! मैं आज अपने भतीजे को प्रणाम नहीं कर रही अपितु,

नमस्ये पुरुषं त्वाऽऽद्यमीश्वरं प्रकृतेः परम् । अलक्ष्यं सर्वभूतानामन्तर्बहिरवस्थितम् ॥
मायाजवनिकाच्छन्नमज्ञाधोक्षजमव्यम् । न लक्ष्यसे मूढदृशा नटो नाट्यधरो यथा ॥

(भा. 1/8/18-19)

इस प्रकार से बड़े प्यार से छब्बीस श्लोकों में कुन्ती महारानी ने स्तुति की। भतीजे को नमस्कार नहीं है बल्कि, त्रिगुणात्मक प्रकृति से परे उस परमपुरुष भगवान् नारायण को मैं प्रणाम कर रही हूँ। आश्चर्य की बात है कि सबके भीतर भी आप ही विराजमान हो और बाहर कण-कण में, अणु-अणु में, आपकी सत्ता विद्यमान है। पर इसके बाद भी दिखाई नहीं पड़ रहे। भीतर-बाहर सर्वत्र आपकी सत्ता है, फिर भी दृष्टिगोचर नहीं हो रहे। क्यों दिखाई नहीं पड़ रहे? क्योंकि सबकी आँखों पर माया का घूंघट जो डाल रखा है। माया का इतना बड़ा पर्दा डाल दिया कि जबतक आप माया का वह घूंघट न उठायें, तबतक कोई आपको नहीं जान सकता, कोई नहीं देख सकता। हे प्रभु! आपका ये जो सुन्दर विग्रह है, ये परमहंसों को भी श्रीपरमहंस बनाने के लिए, उन परमहंसों के हृदय में भक्तियोग का विधान करने के लिये ही आपका मुख्य रूप से अवतार हुआ है। आपके अवतार का मुख्य हेतु मैं तो यही मानती हूँ। बड़े-बड़े अमलात्मा, विमलात्मा, महात्मा, योगीन्द्र, मुनीन्द्र, संत-संन्यासी आपके इस रूप के रहस्य को नहीं जान सकते, तो '**कथं पश्येम हि स्त्रियः**' मैं एक साधारण-सी स्त्री क्या समझूँ? मैं तो सिर्फ इतना जानती हूँ कि मेरे भैया वसुदेव और भाभी देवकी के आठवें पुत्र हैं आप! इससे ज्यादा मैं कुछ नहीं जानती हूँ। पर हां! एक विश्वास अवश्य है प्रभु! कि जो कृपा आपने मुझ पर बरसाई, ऐसी कृपा तो मेरी भाभी देवकी को भी आपसे प्राप्त नहीं हुई। भले ही आप देवकी के पुत्र हो, पर जो मुझे मिला, वह देवकी को भी नहीं। भगवान् बोले, वह कैसे?

तो कुन्तीजी बोलीं, देखिये सरकार! देवकी के आठ पुत्र हुये, आठवें हैं आप। विवाह होते ही बेचारी को जेलखाने में जाना पड़ा, भैया ने ही बंदी बना लिया। एक-एक करके सन्तान को पकड़-पकड़कर उसके भाई कंस ने उसकी आँखों के सामने मारे। अवाक् बने सब देखते रहे। परन्तु जब मैं अपनी तरफ दृष्टि डालती हूँ, कैसी आपकी अद्भुत कृपा! मैं अकेली पति-वंचिता विधवा, मेरे पाँच-पाँच अनाथ बच्चे। शत्रु कोई बाहर नहीं, घर में ही घुसे बैठे हैं। समझ में नहीं आता कौन मित्र है, कौन शत्रु है? प्रतिक्षण आक्रमण, प्रतिक्षण षडयंत्र। उन षडयंत्रों के जाल में हम हर क्षण फँसे हुए थे। कितने-कितने षडयंत्र नहीं रचाये गये? पर कितनी बार आपने हमारी रक्षा की! एक-दो बार नहीं महाराज! कहाँ तक गिनाऊँ? कबतक गिनाऊँ?

विषान्महाग्नेः पुरुषाददर्शनादसत्सभाया वनवासकृच्छ्रतः ।
मृधे मृधेऽनेकमहारथास्त्रतो द्रौण्यस्त्रतश्चास्म हरेऽभिरक्षिताः ॥ (भा. 1/8/24)

मेरे पुत्र भीम को मारने के लिए ज़हर के लड्डू खिलाये थे, परन्तु जब मुझे वापिस मिला मेरा बेटा दस हजार हाथियों का बल प्राप्त करके लौटा। जो विष मारक था, वह तारक बन गया, बलप्रदाता बन गया।

गरल सुधा रिपु करहिं मिताई ।
गोपद सिंधु अनल सितलाई ॥ (रामचरितमानस 5/5/1)

जिसके ऊपर गोविन्द की कृपा हो, उसके लिए विष भी अमृत तुल्य हो जाता है, शत्रु भी उसका मित्र बन जाता है, अग्नि उसके लिए शीतल हो जाती है। भयंकर विशाल सागर उसके लिए गोखुर (गोपद) के समान हो जाता है। मैंने प्रत्यक्ष देखा प्रभु! कि जो विष मारने के लिये खिलाया था, वह शक्तिप्रदाता बन गया। लाक्षाभवन की आग से कौन बचाने वाला था? पर आपकी कृपा से कुछ भी तो नहीं बिगड़ पाया। उन ज्वालाओं को हमने अपनी आँखों से देखा, पर आपकी कृपा से बच गये। हिडिम्बासुर, जटासुर जैसे भयंकर असुरों से वन में हमने बहुत कष्ट भोगे, पर सबसे आप बचा ले गये। अरे! ये संकट तो जीवन में यदा-कदा आते थे। पर जब महाभारत युद्ध छिड़ गया, तब तो मेरे पाँचों बालकों के चारों ओर काल-ही-काल था। जिन पितामह भीष्म ने बच्चों को अंगुली पकड़कर चलाना सिखाया, वह शत्रु बने सामने खड़े थे। जिन द्रोणाचार्यजी ने धनुष पर बाण चढ़ाना सिखाया, वह स्वयं शत्रुदल में खड़े थे। स्वप्न में भी कोई कल्पना कर सकता था कि मेरे बच्चों को इस इच्छा-मृत्यु के वरदान धारण करने वाले भीष्म से कोई बचा पायेगा? अनेक महारथी, कल्पना नहीं थी कि कैसे बचेंगे। पर वाह प्रभु! आपकी कृपा! एक को भी आंच नहीं आने दी। पाँचों के पाँच सुरक्षित हैं। भगवान् बोले- बुआ! ये तो आपकी भावना है! इस सबका सब श्रेय तुम मुझे क्यों दे रही हो? क्या तुम्हें नहीं मालूम महाभारत में मैंने तो अस्त्र भी नहीं उठाया, मैंने क्या किया? अरे! तुम्हारे पुत्र इतने पराक्रमी इतने पुरुषार्थी हैं कि बड़े-बड़े संकट इनसे स्वयं टकराकर लौट जाते हैं। पर तुम सबका श्रेय मुझे दे रही हो? कुन्ती महारानी कहती हैं, प्रभो! आप करते हुए भले ही न दिखाई पड़ो, पर करते सब आप ही हो।

और भगवान् ने अर्जुन से भी संकेत किया कि तुझे सिर्फ निमित्त बनना है, मार तो सब मैंने दिये हैं। इस कुरुक्षेत्र में कर्म तो तुम्हीं को करना पड़ेगा, बाकि करने-कराने वाला तो सब मैं ही हूँ। क्या होना है? क्या होगा? वह मुझे मालूम है। करूँगा मैं, पर करते हुए तुम दीखोगे क्योंकि कर्म तुम्हीं को करना है। सुग्रीव से भगवान् ने स्पष्ट कहा,

सुनि सुग्रीव मैं मारिहुं बालिहि एकहि बाण

एक ही बाण से मैं बाली को मारूँगा, पर फिर कहते हैं, सुग्रीव जाओ लड़ने के लिये। सुग्रीव ने पूछा, अरे! जब आपको मारना है, तो मुझे क्यों पिटवाने को भेज रहे हो? भगवान् बोले, नहीं! लड़ना तो तुम्हें ही पड़ेगा, तुम लड़ो; पर मारूँगा मैं। इसलिये जीव को कर्म तो अपनी पूरी निष्ठा के साथ करना चाहिये। परन्तु होगा क्या? वह परमात्मा ही करने वाला है। इसी प्रकार महाभारत के युद्ध में अर्जुन से ही युद्ध करवाया। परन्तु करने-कराने वाले तो प्रभु ही हैं।

कुन्ती मैया उसका अनुभव कर रही हैं, प्रभो! सब प्रकार से आपने मेरे बच्चों को बचाया है। एक बार नहीं! अनेक बार। परन्तु न तो लड़ते दिखाई पड़ते हैं, न हाथ में अस्त्र लिये दिखाई पड़ते हैं। अरे! अभी-अभी द्रोणाचार्यजी के पुत्र अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र से मेरे वंशधर को कौन बचा सकता था?

द्रौण्यस्त्रतश्चास्म हरेऽभिरक्षिता:

आपने मेरी कुलवधू उत्तरा के गर्भ की र[illegible]क्षा की है, मेरे वंशधर की रक्षा की है। प्रभु! ये तो सबके आँखों के सामने की अभी-अभी की घटना है। भग[illegible]वान् बोले, बुआ! आज इतनी लम्बी-चौड़ी मेरी महिमा आखिर क्यों गा रही हो? क्या बात है? अपने भती[illegible]जे को भगवान् बनाकर खड़ा कर दिया। क्या बात है?

कुन्ती मैया बोलीं, आज कुछ [illegible] माँगना चाहती हूँ। प्रभु! जब-जब संकट आये तो, आप मेरे सामने आये। दुर्वासाजी के उग्र-शाप का भय ज[illegible] लगा कि भोजन का निमंत्रण कर दिया और दाना एक नहीं खाने का? अक्षयपात्र भी खाली हो गया। तब [illegible]तुरन्त आप सामने आये दिखाई पड़ गये। जब भी संकट आये, तब आप भी हमारे सामने आये। आज सारे संक[illegible] भाग गये, मेरा पुत्र चक्रवर्ती सम्राट के पद पर विभूषित हो रहा है। दुःखों के बादल हट गये हैं और जहाँ सुख-साम्राज्य आया, सो ही आप हाथ जोड़कर बोले कि बुआ चलता हूँ! तो प्रभु! मैं तो यही वरदान मांगूँगी कि यदि विपत्तिकाल में ही आप हमारे पास रहते हो और सुख-समृद्धि आते ही हमें छोड़कर चले जाते हो, तो मैं वरदान माँगना चाहती हूँ कि जीवनभर इस कुन्ती के जीवन में संकटों के बादल हमेशा छाये रहें, मेरे जीवन में कभी विपत्ति का अंत न हो।

विपद: सन्तु न: शश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरो ।
भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम् ॥ (भा. 1/8/25)

जबतक जीवन है, तबतक विपत्ति इसी प्रकार आती रहे, जैसी-आती रही थी। भगवान् बोले, जय हो बुआजी! कितने वर्षों तक विपत्ति का कष्ट भोगा? लोग विपत्ति के नाम से कांपते हैं और आप विपत्ति का वर चाहती हैं? कुन्ती मैया कहती हैं, उस विपत्ति में ही तो बार-बार आपके दर्शन मिलते हैं। और केवल आपके ही दर्शन नहीं मिलते, '**अपुनर्भवदर्शनम्**' जिसे आपके दर्शन मिल गये, उसे फिर बार-बार भव-दर्शन नहीं होता। अथवा '**अपुनर्भवानाम् जीवनमुक्तानाम् दर्शनम् इति अपुनर्भवदर्शनम्**'। जहाँ भी प्रभु पधारते हैं, जीवनमुक्त संत भी उनके पीछे-पीछे भागते हैं। बड़े-बड़े सिद्धकोटि के संत और देवता भगवान् के आगे-पीछे दौड़ते रहते हैं। तो जब भगवान् इन्द्रप्रस्थ में पाण्डवों के पास आ जाते हैं, आये दिन एक-से-एक सिद्धकोटि के संत भगवान् से मिलने के बहाने आया करते हैं। इसलिए **कुन्तीमैया कहती हैं कि आपके ही दर्शन नहीं होते, बड़े सिद्धकोटि के संतों का भी आपके साथ-साथ दर्शन होता रहता है। इसलिये चाहती हूँ कि विपत्ति बनी रहे,** ताकि बिहारीजी भी बने रहें और बड़े-बड़े सिद्धकोटि के संत भी यहाँ पर पधारते रहें। क्योंकि आप तो अकिंचनों के ही परमधन हो। जो धन-सम्पदा में ही अपना सब कुछ मान बैठते हैं, उसमें मिथ्याभिमान कर लेते हैं, उनसे तो आप दूर हो जाते हो। प्रभो! याद आता है वह दिव्य क्षण, जब मैया की मटकी फोड़ दिये थे। मैया ने कान पकड़कर आपको ऊखल से बाँध दिया था। कैसे आँखें मींड़-मींड़कर आंसू बहा रहे थे! वह दृश्य जब मेरे चिंतन में आता है, तो मैं सोचती हूँ कि क्या यही वह नारायण है, जिसकी टेढ़ी भृकुटी होने पर स्वयं काल भी कांप जाता है? मूर्तिमान् भय भी जिससे भयाक्रान्त रहता है, वह भगवान् देखो आज ऊखल में बंधा हुआ रो रहा है। कौन कल्पना कर लेगा कि ये वही परमतत्त्व है?

गोप्याददे त्वयि कृतागसि दाम तावद् या ते दशाश्रुकलिलांजनसम्भ्रमाक्षम् ।
वक्त्रं निनीय भयभावनया स्थितस्य सा मां विमोहयति भीरपि यद्बिभेति ॥ (भा. 1/8/31)

वह दृश्य मेरे मन को मोहित कर देता है कि ये कैसा भगवान् है, जो ऊखल में बंधा रो रहा है। अरे! परमात्मा की तो दृष्टिपात-मात्र से संसार के बंधन खुल जाते हैं। और वह परमात्मा! खुद बंधा हुआ है? वह दृश्य मेरे मन को मोहित कर देता है, मैं व्यामोहित हो जाती हूँ। बस प्रभु! अब एक ही प्रार्थना है।

स्नेहपाशमिमं छिन्धि दृढं पाण्डुषु वृष्णिषु

मेरा मन जो पाण्डवों में थोड़ा चिपका हुआ है, जो स्नेहपाश पाण्डवों में बंधा हुआ है और वृष्णिवंशियों (यदुवंशियों) में जहाँ मैं पैदा हुई, वसुदेव आदि भाईयों के पति - इन दोनों रस्सियों को आप काट डालो। पर आप अपने चरणकमलों में मेरे चित्त को लगा लो, स्नेहपाश आपके अतिरिक्त कहीं मेरा बंधा न हो, सब जगह की डोरी काट दो।

कुन्ती मैया ने जब ये दिव्य भावना प्रकट की, तो भगवान् गद्गद् हो गये। प्रसन्न होकर बोले, बुआ! यदि **इतना आपका प्रेम है, तो अब हम द्वारिका जाते ही नहीं। और** भगवान् ने तुरन्त द्वारका की यात्रा स्थगित की। **कुन्ती बुआ के साथ उनके भवन में प्रविष्ट हो गये।**

कुन्ती मैया ने ऐसी चीज मांगी, जो भगवान् के पास थी ही नहीं, दु:ख। भगवान् तो आनन्द-सिन्धु-सुखराशि हैं। वे दु:ख कहाँ से देंगे? जो साक्षात् सच्चिदानन्द है, वह दु:ख देना भी चाहे, तो भी कहाँ से दे पायेगा? उसके खजाने में है ही नहीं। और जो दु:खरूप संसार है, उससे तुम जीवनभर सुख माँगते रहोगे, वह कहाँ दे पायेगा? क्योंकि दु:खरूप संसार में सुख है ही नहीं। जब भगवान् को लगा कि बुआ ने माँगा दु:ख और मैं दे नहीं पाया, क्योंकि देना सम्भव ही नहीं है। इसलिये भगवान् ने स्वयं को ही दे दिया कि बुआ! हम आपके साथ ही चलते हैं। पाण्डवों में आनन्द की लहर छा गई चलो! चलते-चलते प्रभु को बुआ के प्रेम ने रोक लिया भवन में आये।

भीष्म स्तुति :-

पर एक दिन प्रभु ने देखा कि श्रीयुधिष्ठिरजी महाराज थोड़े-से चिन्तित बैठे हैं, बहुत परेशान दिखाई पड़ते हैं। प्रभु ने पूछा, क्या बात है भैया? समस्त शत्रुओं का पराभव करके आज सम्राट की पदवी को विभूषित कर रहे हो, फिर भी मुँह लटकाये बैठे हो? युधिष्ठिरजी भी व्यामोहित हो उठे, हे प्रभु! ज़रा बताओ! जिन महापुरुषों की उंगली पकड़कर चलना सीखा, जिनकी गोदी में खेले, जिनको हमेशा दण्डवत् प्रणाम किया, मैंने उन्हीं सबको समाप्त करके इस गद्दी को पाया है। हमारे कितने स्नेहीजन थे, प्रेमीजन थे, उन सबको मार कर उनकी स्त्रियों का सिंदूर हमने उजाड़ दिया। जब वह विधवा स्त्रियां मेरी आँखों के सामने आती हैं, तो मेरा चित्त व्यथित हो जाता है कि इस गद्दी के लिए मैंने उनका सुहाग उजाड़ दिया? मोहग्रसित हो गये। भगवान् विविध भाँति उन्हें समझाने लगे। पर युधिष्ठिरजी की समझ में बात आती ही नहीं। क्योंकि युधिष्ठिरजी श्रीद्वारकाधीश प्रभु को अपना छोटा भैया मानते हैं, वात्सल्य भाव रखते हैं, अनुज की भावना है। और उपदेश तब प्रभावित होता है, जब उपदेशक के प्रति गुरुत्व की भावना हो। यही प्रवचन कोई सफेद दाढ़ी वाला बोले, तो ज्यादा समझ में आयेगा। भगवान् समझ गये कि इन्हें किसी बुजुर्ग के पास ले जाना चाहिए। भगवान् बोले, तो चलो! पितामह भीष्म से मिलने चलते हैं।

समस्त पाण्डव-परिकर को लेकर प्रभु पधारे। पितामह भीष्म बाणों की शय्या पर लेटे हैं। जैसे-ही पाण्डवों ने आकर प्रणाम किया, नेत्र खोलकर देखा। शरीर का हिलना-डुलना भी सम्भव नहीं है, असह्य पीड़ा हो रही है। सामने अर्जुन दिखाई पड़ गये, अरे अर्जुन! तुम्हारा सारथी नहीं आया क्या? प्रभु तुरन्त सम्मुख आ गये, दादाजी! मुझे याद किया क्या? भीष्म बोले अच्छा-अच्छा! तो आप आये हो! फिर छुपकर क्यों खड़े हो, तनिक सामने आओ! भगवान् तुरन्त सामने आ गये, कहिये दादाजी! कैसे याद किया? पितामह भीष्म बोले,

अर्जुन! पहचानते हो इन्हें? अर्जुन बोले, इन्हें कौन नहीं जानता दादाजी! भीष्मजी ने कहा, कौन हैं ये तो बताओ? अर्जुन बोले, हमारे मामा वसुदेवजी के पुत्र वासुदेव कृष्ण हैं। पितामह भीष्म हंसने लगे, वाह! अर्जुन कभी तो तुम मामा का लड़का बताते हो, कभी अपना सचिव बनाकर परामर्श लेते हो, कभी दूत बनाकर संदेश-वाहक बना देते हो, कभी गुरुजी बनाकर गीता का ज्ञान ले लेते हो, कभी सारथी बनाकर घोड़ों की लगाम थमा देते हो। कितने नाते हैं तुम्हारे?

यं मन्यसे मातुलेयं प्रियं मित्रं सुहृत्तमम् ।
अकरोः सचिवं दूतं सौहृदादथ सारथिम् ॥ (भा. 1/9/20)

धन्य हैं प्रभु! आपके प्रेमी। जो बनाते हैं, आप वही बन जाते हो, जो चाहो भगवान् वही बन जाते हैं। भगवान् सेवक बनने को भी तैयार हैं, कोई सेवक बनाने वाला तो मिले। तो पितामह भीष्म स्मरण कर रहे हैं, अर्जुन! तुमने इन्हें क्या-क्या नहीं बनाया? भगवान् की ओर इशारा करते हुए पितामह भीष्म कहते हैं, प्रभो! अब एक अन्तिम इच्छा मुझ दास की भी पूरी कर दो। हे प्रभो! ये देह बाणों की शय्या पर आपके दर्शन की प्रतीक्षा में इसलिये पड़ा था कि जबतक आप नहीं पधारेंगे, तबतक मैं जाने वाला नहीं हूँ। प्रतीक्षा करवाकर आप आये हो, तो थोड़ी-सी प्रतीक्षा में भी आपको कराना चाहता हूँ। मैं यही चाहता हूँ कि जबतक मैं न चला जाऊँ, तबतक आप भी ऐसे ही खड़े रहें।

स देवदेवो भगवान् प्रतीक्षतां कलेवरं यावदिदं हिनोम्यहम् ।
प्रसन्नहासारुणलोचनोल्लसन्मुखाम्बुजो ध्यानपथश्चतुर्भुजः ॥ (भा. 1/9/24)

हे प्रभो! '**अहं यावत् इदं कलेवरम् हिनोमि, तावत् प्रतीक्षताम्**' मरना कोई अपनी इच्छा से नहीं होता। यदि अपनी इच्छा से ही मृत्यु होती, तो शायद कोई मरना ही नहीं चाहता। परन्तु पितामह भीष्म को स्वेच्छा-मृत्यु का वर प्राप्त है। वह जबतक न जाना चाहें, तबतक उन्हें मौत भी नहीं मार सकती। इसलिये कहते हैं कि जबतक मैं इस कलेवर को त्यागकर न जाऊँ, तबतक प्रतीक्षा कीजिये और ऐसे ही खड़े रहिये। भगवान् ने मन में सोचा अच्छी ड्यूटी लगाई हमारी। अब भगवान् जाने किस सम्वत् में ये जाने का विचार बनावें? और कबतक खड़ा रहना पड़े? जहाँ मुँह लटकाया कि पितामह भीष्म ने कहा, महाराज सुनिये! ये लटका हुआ चेहरा देखने के लिये थोड़े-ही खड़ा कर रहा हूँ। जबतक खड़े हैं, तबतक मुस्कुराते रहो महाराज! आपकी मुस्कान में अद्भुत चमत्कार है।

लखी जिन लाल की मुस्कान। तिनहि बिसरी वेद विध सब योग संयम ज्ञान ।
नेम व्रत आचार पूजा पाठ गीता ज्ञान। रसिक भगवद दृग दई असि एचि के मुख म्यान॥

भगवान् की मुस्कान जिसने एक बार देख ली,

हासं हरेरवनिताखिललोकतीव्र शोकाश्रुसागरविशोषणमत्युदारम्

मानव के जीवन में जो शोकसागर है, वह सब सूख जाता है। भगवान् की मुस्कान को देखते ही खारा-पानी जो भरा है, वह खाली हो जाता है। और प्रभु की मुस्कान का दर्शन करते ही उस पात्र में दिव्य प्रेमामृत भर जाता है। भगवान् की मुस्कान पर मुग्ध हो गये श्रीपितामह भीष्म। धर्मराज की ओर इशारा किया प्रभु ने, आप पूछ लीजिये भाई! जो कुछ आपके मन में संकल्प हों, विकल्प हों, कोई प्रश्न हों तो पूछिये! युधिष्ठिरजी महाराज प्रश्न करने लगे, पितामह-भीष्म उत्तर देने लगे। बड़ा अद्भुत उपदेश दिया, इसे महाभारत में भीष्मगीता कहते हैं। जैसे महाभारत में भगवद्गीता है, ऐसे ही ये भीष्मगीता है।

दानधर्मान् राजधर्मान मोक्षधर्मान् विभागशः ।
स्त्रीधर्मान् भगवद्ध र्मान् समासव्यासयोगतः ॥ (भा. 1/9/27)

समस्त धर्मो का वृहद् व्याख्यान किया, पर किसी को संक्षेप में भी कहा, किसी को विस्तार से। उस दिव्यधर्म के मर्म को जानकर युधिष्ठिरजी महाराज सहित समस्त पाण्डवों का शोक दूर हो गया। अब माघ शुक्ल-का दिन आ गया। पितामह भीष्म को लगा, अब वढ़िया समय है, सूर्य उत्तरायण हो चुके हैं और प्रभु सामने खड़े हैं। माघ शुक्ल इससे शुभ घड़ी और कब आयेगी? उत्तरायण काल की प्रतीक्षा थी, पितामह भीष्म को वह पूरी हो गई। छः महीने उत्तरायण और छः महीने दक्षिणायन में रहते हैं सूर्य भगवान्। देवताओं के लिए दक्षिणायन ही रात्रि है, उत्तरायण ही दिन है। किसी के घर में दिन में जाओ, तो दरवाजे खुल जायेंगे और रात में जाओ, तो सवेरे तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। तो दक्षिणायन में जो देहत्याग करके जाते हैं, उन्हें दरवाजे बंद मिलते हैं। और उत्तरायण में जाने वालों को दरवाजे खुले मिलते हैं, ऐसी शास्त्रीय मान्यता है।

सो पितामह भीष्म को उत्तरायण की प्रतीक्षा थी। और इधर हमारे प्रभु भी तो उत्तरायण हैं (उत्तरा के गर्भ में जाकर परीक्षित की रक्षा करने वाले भगवान् उत्तरायण)। भगवान् जिसके सम्मुख विराजमान हों, उसी काल को उत्तरायण काल कहेंगे। और भगवान् जिससे विमुख हो जायें तो जीव के लिये वही दक्षिणायन काल है। तो सूर्य भी उत्तरायण है और गोविन्द भी उत्तरायण हैं, दोनों सम्मुख उपस्थित हैं। इसलिये अब देर करने की आवश्यकता नहीं।

पितामह भीष्म ने एकादश श्लोकों से भगवान् की स्तुति करना प्रारम्भ कर दिया। पुष्पिताग्रा छन्द में स्तुति कर रहे हैं। बाबा भीष्म विचार करने लगे कि प्रभु के चरणों में पुष्प चढ़ाने के लिये कहीं से लाऊँ? तो अपने वचनों के ही सुमन पुष्पिताग्रा छन्द में समर्पित है।

इति मतिरुपकल्पिता वितृष्णा भगवति सात्वतपुंगवे विभूम्नि ।
स्वसुखमुपगते क्वचिद्विहर्तु प्रकृतिमुपेयुषि यद्भवप्रवाहः ॥ (भा. 1/9/32)

ये पितामह भीष्म के द्वारा बड़ी मधुर स्तुति है। पितामह भीष्म कहते हैं, प्रभो! इस देहयात्रा को सम्पन्न करने से पूर्व बस एक ही छोटी-सी इच्छा है कि अपनी अविवाहिता बेटी का विवाह और कर देता। बेटी कुंआरी छोड़कर जाऊँगा, तो अधूरापन रहेगा। बेटी का सुन्दर वर ढूँढते-ढूँढते परेशान हो गया, कोई मिलता ही नहीं? भगवान् मुस्कुराये, बाबा! विवाह तो तुम्हारा ही नहीं हुआ? फिर तुम्हारी ये बेटी कहाँ से आ गई, जिसकी चिन्ता तुम्हें पड़ी है? पितामह भीष्म कहते हैं, ये जो मेरी बुद्धि है, इसी को मैंने अपनी बेटी बना लिया है। अच्छा! तो वर नहीं मिलता? बहुत ढूँढा। बेटी जैसी पढ़ी-लिखी हो सुशील हो, वर भी तो वैसा ही होना चाहिये। भगवान् बोले, क्यों! तुम्हारी बेटी कोई ज्यादा पढ़ी-लिखी है क्या? भीष्म बाबा बोले, महाराज! ऐसी बेटी आपको दुनिया में नहीं मिलेगी, कहीं नहीं मिल सकती। मेरी मति में सबसे बड़ी योग्यता ये है कि इसमें कोई तृष्णा नहीं है। संसार में किसकी बुद्धि है, जिसमें तृष्णा न हो। कोई वित्तैषणा से ग्रसित है, कोई पुत्रैषणा से, कोई लोकेषणा से।

सुत वित लोक ईशना तीनी। केहि के मति इन्ह कृत न मलीनी ॥ (मानस)

सबकी मति तृष्णा से ग्रसित है। पर प्रभु! मेरी मति में कोई तृष्णा नहीं है। और ऐसी निर्मल मति का पति संसार में ढूँढने पर कहीं नहीं मिला। पर आपको देखकर आज लग रहा है कि मिल गया! अब ये खोज मेरी

समाप्त हो गई। प्रभु! आपके-जैसे सुन्दर वर को भी तो वधू की आवश्यकता रहती है। आप कहते हो, '**मयि बुद्धिम् निवेशय:**' - अत: यह निर्मल-मति आपको समर्पित है प्रभो! त्रिभुवनकमनीय आपकी इस श्याम छटा पर पीत-पीताम्बर ऐसा दमक रहा है, जैसे तमाल वृक्ष की श्याम-छटा पर सूर्य की रश्मियां पडने पर जो दिव्य-शोभा होती है, वही आपके इस श्याम-विग्रह पर पीताम्बर की शोभा हो रही है। याद आता है वह क्षण, जब युद्ध में अर्जुन आपको आदेश देता था,

सेनायोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत

दोनों सेनाओं के बीच मेरे रथ को ले चलो। देखूं तो सही कि मुझसे युद्ध करने कौन-कौन आये हैं? तब भगवान् घोड़े हांकने लगे। जहाँ दोनों विशाल सेनाओं के बीच में रथ को खड़ा किया और भगवान् बोले, अर्जुन! देख लो। हम तो बीच में ही आकर खड़े हैं। अब तुम भी बीच में ही खड़े रहना, इधर-उधर मत डगमगा जाना। पर जब अर्जुन ने देखा तो डगमगा गया, हाथ-पांव फूल गये राम! राम! जिनके चरण छूता था, जिनकी गोदी में खेलता था, जिनकी उंगली पकड़कर चलता था, क्या मुझे इनसे युद्ध करना पड़ेगा? क्या इन्हें मारना पड़ेगा? अर्जुन का हृदय कांप गया।

सपदि सखिवचो निशम्य मध्ये निजपरयोर्बलयो रथं निवेश्य ।
स्थितवति परसैनिकायुरक्ष्णा हृतवति पार्थसखे रतिर्ममास्तु ॥ (भा. 1/9/35)

पितामह भीष्म एक रहस्य और उद्घाटित कर रहे हैं, प्रभो! अर्जुन तो अपने से लड़ने वालों को देख रहे थे, पर आप भी तो टुकुर-टुकुर सब पर दृष्टि डाल रहे थे। आपने क्यों दृष्टिपात किया, आप क्या देख रहे थे? मैं जानता था कि आप क्यों देख रहे हैं। प्रभु ने पूछा, क्यों देख रहा था मैं? आप ही बताओ! भीष्म बाबा बोले, प्रभु! आपने समस्त कौरवों पर दृष्टि डालकर उनकी आयु का हरण कर लिया। भगवान् के नेत्रों में ही चमत्कार है, जिस पर दृष्टि डाल दें तो किसी की आयु खींच लेते हैं, किसी को आयु दे देते हैं। किसी का पराक्रम छीन लेते हैं, किसी को पराक्रम प्रदान कर देते हैं।

कालियदह के विषाक्त-जल को गायों ने पी लिया तो छटपटाकर सब अचेत हो गयीं। भगवान् ने दृष्टि डाली और सबको खड़ा कर दिया। अघासुर के मुख में व्रजवासी सब मूर्छित हो गये, मरणासन्न हो गये। दृष्टि डाली तो सबको पुनर्जीवित कर दिया। कंस के वध के बाद जितने यदुवंशी लौटकर अपने घर में आये, बेचारे निर्बल कमजोर कृषकाय हो गये। भगवान् ने दृष्टि डाली और,

पिबन्तोऽक्षैर्मुकुन्दस्य मुखाम्बुजसुधां मुहुः

गोविन्द के मुखकमल की दिव्य आभा-प्रभा को देखकर, उस दिव्य रूपसुधा का पान करके सब पहलवान हो गये। बताइये! किसी को बल-पराक्रम और आयु दे रहे हैं, किसी का बल-पराक्रम और आयु को छीन रहे हैं - आँखों में सारे चमत्कार हैं। परन्तु अर्जुन व्यामोहित जब हो उठा, '**स्वजनवधात् विमुखस्य दोषबुद्ध्या:**' अबतक अर्जुन ने सैकड़ों युद्ध किये, बड़े-बड़े युद्धों पर विजय प्राप्त की पर आज जब अपनों से लड़ने की बात आई, तो हाथ-पाँव फूल गये। बुद्धि में कुमति आ गई, इसलिये भगवान् ने तुरन्त आत्मविद्या गीता का दिव्योपदेश देकर अपने प्यारे सखा की कुमति का हरण कर लिया। बुद्धि में जो अज्ञान के बादल छा गये थे, वह हटा दिये अपने दिव्यज्ञान के प्रकाश से ऐसे हे विजयसखा! हे गोविन्द! आपके पादपद्मों में मेरी खूब रति हो प्रीति हो।

पितामह भीष्म अपनी वह घटना याद कर रहे हैं, प्रभु! वह भी दिन भूलूंगा नहीं। मेरी प्रतिज्ञा और आपकी प्रतिज्ञा आपस में टकरा गई। आपका प्रण था कि मैंहथियार नहीं लूंगा, महाभारत में अस्त्र धारण नहीं करुँगा। और मैंने प्रतिज्ञा कर डाली कि या तो अर्जुन का प्राण जायेगा या प्रभु का प्रण। अब देखें दोनों में से क्या जाता है। तो अपने भक्त के प्राण रखने और इस भक्त के वचन को रखने के लिये, आपने अपना ही प्रण छोड़ दिया। मैं जानता था प्रभु! जब-जब भक्त और भगवान् की प्रतिज्ञायें यदि आपस में टकरा जायें, तब-तब भक्त के सामने भगवान् ही अपनी प्रतिज्ञा को तोड़ते हैं। कभी-कभी पिता-पुत्र में बहस हो जाये, तो पुत्र का संतोष रखने के लिए पिताजी कहते हैं, अच्छा तू जो कह रहा है, वही ठीक है। बच्चों का मन रख देते हैं। प्रभो! तीखे-तीखे बाण मैंने चलाये, तो आप अपने रथ के पहिया को ही सुदर्शन चक्र बनाकर मुझे मारने के लिये दौड़ पड़े,

धृतरथचरणोऽभ्ययाच्चलदगुर्हरिरिव

पृथ्वी कांप गयी! आपका पीताम्बर नीचे गिर गया, आपके लाल-लाल नेत्र क्रोध में भरे, जब मुझे मारने को दौड़े - वह छटा आज भी मेरी आँखों में बसी है। प्रभु! ऐसे लग रहे थे, जैसे किसी गजराज को मारने के लिए किसी सिंह ने आक्रमण कर दिया हो। क्रोध में भरा जैसे सिंह किसी गजराज पर झपट पड़ता है, ऐसे ही वह छटा, आज भी मेरी आँखों में बसी है।

पृथ्वी क्यों कांप गयी? पीताम्बर क्यों नीचे गिर गया? इस पर एक भक्त बड़ी सुन्दर भावना प्रकट करते हैं कि पृथ्वी इसलिये कांप गई कि इनका कोई भरोसा नहीं, ये तो प्रतिज्ञा करते हैं और भूल भी जाते हैं। अरे! महाभारत में अभी-अभी प्रतिज्ञा की, अस्त्र नहीं लूंगा और उठा लिया! फिर मुझे भी तो इन्होंने प्रतिज्ञापूर्वक वचन दिया था कि देवी घबड़ाना मत। मैं आऊँगा, तेरा भार दूर करूंगा। इन्होंने वचन दिया, मैं सुनकर निश्चिन्त् हो गई कि अब मेरा भार प्रभु निश्चित् दूर करेंगे। इन्होंने मुझसे प्रतिज्ञा की है। पर जब ये देखा कि ये प्रतिज्ञा भूल भी जाते हैं, तो पृथ्वी घबड़ा गई, मेरी तो बहुत पुरानी प्रतिज्ञा है, कहीं उसे भी न भूल गये हों। इन्हें कैसे याद दिलाऊँ कि मेरा भी प्रण याद है या उसे भी भूल गये? इसलिये पृथ्वी कांप गई। तो भगवान् ने अपने उत्तरीय को आदेश दिया कि जाओ-जाओ! इसे समझाओ। ये बिल्कुल न घबड़ाये, इसका प्रण मुझे याद है अरे! इसके लिए ही तो आया हूँ, मैं यहाँ पर। इसलिये पीताम्बर मानो उछल पड़ा, प्रभु के आदेश पर भूदेवी को समझाने के लिए कि देवी! घबड़ाना मत। ये तो प्रभु के भक्तों के बीच में लीला चल रही है, तेरा प्रण भूलने वाले नहीं हैं। तू तो उनकी प्रिया है, तो मानों पीताम्बर पृथ्वी को आश्वासन प्रदान करने के लिए कूद पड़ा! इस प्रकार पितामह भीष्म ने बड़े सुन्दर भावपूर्ण शब्दों से भगवान् की स्तुति की। और वह नैष्ठिक ब्रह्मचारी श्रीपितामह भीष्म आज प्राणान्तकाल में भगवान् के उस दिव्य रसमय-रास का दर्शन करने लगे।

ललितगतिविलासवल्गुहासप्रणयनिरीक्षणकल्पितोरूमानाः ।
कृतमनुकृतवत्य उन्मदान्धाः प्रकृतिमगन् किल यस्य गोपवध्वः॥ (भा. 1/9/40)

पितामह भीष्म गोपवधूटियों के बीच में विहार करते हुए उन विहारीजी का स्मरण कर रहे हैं। कल्पना कीजिये कि नैष्ठिक व्रतधारी श्रीपितामह भीष्म जब भगवान् के उस महारास का स्मरण करें, तो महारास कोई प्राकृत होगा? कोई साधारण होगा? अन्तकाल में पितामह भीष्म योगेश्वरेश्वर श्रीकृष्ण की उस अद्भुत लीला का ध्यान कर रहे हैं। भगवान् के द्वारा मन्द-मन्द मुस्कुराना, तिरछी चितवन से गोपियों के चित को चुराना, मंद गति से ठुमका मारकर चलना और नाचना उन समस्त एक-एक चेष्टाओं के द्वारा गोपियों के चित्त को चुराने

वाले प्रभु का ध्यान कर रहे हैं। अब उस दिव्य छटा का ध्यान करते-करते, सबके हृदय में हरि का दर्शन करते पितामह भीष्म ने पांचभौतिक देह त्यागा और भगवान् के परमपद को प्राप्त हो गये। **'सर्वे बभूवुस्ते तूष्णीम्'** पितामह भीष्म के महाप्रयाण के समय सब शान्त हो गये मानो सूर्यास्त होते ही पक्षियों का कलरव शान्त हो जाता है। और थोड़ी ही देर में,

तत्र दुन्दुभयो नेदुर्देवमानववादिताः

आकाश में अचानक दुंदभियां बजने लगीं, पितामह भीष्म के ऊपर सुमन-वृष्टि होने लगी। सारे जगत् ने पितामह भीष्म के सौभाग्य की सराहना की, वाह! हर प्राणी यही तो चाहता है कि जब मेरा अन्तकाल आवे तो प्यारे का नाम मुँह पर आ जावे, उनकी छटा आँखों के सामने होवे। आज सब कुछ पितामह भीष्म को प्राप्त हो गया, माधव मन्द-मन्द मुस्कुराते पीताम्बर लहराते आँखों के सामने खड़े हैं और उनकी वही बांकी-झांकी हृदयंगम किये, पितामह भीष्म देह त्याग कर रहे हैं। हम भी प्रभु से प्रार्थना करें -

भजन - देहान्तकाले तुम सामने हो, मुरली बजाते मन को लुभाते

द्वारकाधीश प्रभु पाण्डवों के शोक का पितामह भीष्म द्वारा निराकरण करवाकर अपने प्रिय भक्त भीष्म का अन्तिम मनोरथपूर्ण करते हुए, पुन: पाण्डवों से द्वारिका जाने की अनुमति प्राप्त करके चले गये। विविध देशों में परिभ्रमण करते हुए द्वारिका में पधारे। द्वारिकावासियों ने बड़ा ही दिव्य-भव्य भगवान् का बहुत दिनों के बाद आगमन हुआ है, इसलिये अद्भुत सम्मान किया। सभी से भगवान् यथायोग्य मिले।

शौनकजी ने पूछा, भगवन्! परीक्षित् का क्या हुआ? उत्तरा के गर्भ की भगवान् रक्षा करके तो गये, उसके बाद में उसका जन्म कैसे हुआ? तब सूतजी को स्मरण आया, अरे! महात्माओं! ठीक पूछा आपने। भगवान् की कृपा से वह बालक मातृगर्भ में बिल्कुल सुरक्षित रहा। समय आने पर सकुशल उसका जन्म भी हुआ, ब्राह्मणों ने उसका जातकर्म संस्कार किया। इस बालक का नाम रखते हैं - **'विष्णुरातः - विष्णुना रातः दत्तः'** भगवान् विष्णु (श्रीकृष्ण) की कृपा से ही माँ के गर्भ में इसकी रक्षा हुई, इसलिये इसका नाम विष्णुरात। पर ये बालक जिसकी गोद में जाता है या इसके सामने जो भी आता है, उसी को टुकुर-टुकुर देखता है, क्या ये वही है जो, मेरी माँ के गर्भ में जो बचाने आय। था, वह चार हाथ वाला कौन है? हर चेहरे को ध्यान से देखते थे, इसलिये प्यार से इनका दूसरा नाम पड़ा परीक्षित। परीक्षित् का अर्थ होता है, **'परितः ईक्षते इति परीक्षितः'** न जाने ये चारों तरफ किसे ढूँढ़ता रहता है? तो परीक्षित के नाम से ही बालक विख्यात हुआ।

समय आया एक दिन विदुरजी तीर्थयात्रा करते हुए आये। पाण्डवों ने उनका बड़ा भारी सम्मान किया। रात्रि के समय एकान्त पाकर धृतराष्ट्रजी से मिलने विदुरजी गये और पूछा, महाराज! कैसे हैं आप? पांण्डव लोग ठीक-ठाक आपकी सेवा कर रहे हैं कि नहीं? धृतराष्ट्र ने पाण्डवों की प्रशंसा के पुल बाँध दिये, अरे भैया विदुर! इतनी सेवा तो मैं अपने दुर्योधन, आदि पुत्रों से भी अपेक्षा नहीं रखता था। पर मेरे पाण्डव मेरी बड़ी सेवा कर रहे हैं। भोजन बने तो सबसे पहले भीमसेन मुझे भोजन कराने आता है, तब भोजन पाते हैं ये लोग। प्रातःकाल जागते ही सबसे पहले मुझे ही दण्डवत् करते हैं, मेरा बड़ा सम्मान है। विदुरजी से नहीं रहा गया, कह बैठे, महाराज! थोड़ी बहुत शर्म है कि बिल्कुल बेच खाई? इनकी महिमा गाते आपको लज्जा भी नहीं आती? जिन पाण्डवों को मारने के लिए कितने कुचक्र रचे, कितने षडयंत्र रचाये। और आज उन्हीं पाण्डवों के टुकड़ों पर कुत्ते की तरह पड़े-पड़े पूंछ हिला रहे हो?

भीमापवर्जितं पिण्डमादत्ते गृहपालवत्

धिक्कार है ऐसी जीवन की आशा को। ये भी भला कोई जीवन है? धृतराष्ट्र बोले, विदुर! तो कहाँ जाऊँ? क्या करूँ? विदुरजी बोले, चलो मेरे साथ! और रातों-रात धृतराष्ट्र व गांधारीजी को लेकर विदुरजी बाहर निकल गये।

नियमानुसार प्रात:काल जब पाण्डवों ने जागते ही ताऊजी को दंडवत करने के लिए भवन में प्रवेश किया, तो ताऊजी का कोई पता नहीं चला। संजय से पूछा तो संजय ने भी मना कर दिया, मुझे भी नहीं मालूम। बहुत ढूँढने पर दूर-दूर तक कोई पता नहीं चला, तो श्रीयुधिष्ठिरजी महाराज दु:खी हो गये। न जाने! हम लोगों से क्या अपराध बन गया? कौन-सी बात हमारे ताऊजी को बुरी लगी, जो हमें चुपचाप बिना बताये ही भाग गये? उसी समय देवर्षि नारद तुम्बुरु गन्धर्व के साथ प्रकट हुये और धर्मराज को समझाया कि राजन्! आप दु:खी न होइये! अब तुम्हारे ताऊजी को विदुर जैसे-महापुरुष का सान्निध्य मिल गया है। अब उनका निश्चिन्त कल्याण हो जायेगा, उनकी ओर से आप निश्चिन्त हो जाइये। तब पाण्डवों को शान्ति मिली।

समय बीतता गया धीरे-धीरे अपशकुन बहुत बढ़ने लगा। भगवान् द्वारिकाधीश द्वारिका गये, अर्जुन को साथ में ले गये। आज पूरे सात महीने बीत गये पर अर्जुन नहीं आया, धर्मराज को शंकायें होने लगीं। भीमसेन से बोले, भैया भीम! आज पूरे सात महीने बीत गये, न जाने क्या बात है? न अर्जुन आया, न उसका संदेश? बड़े-बड़े भयंकर अपशकुन मुझे बड़े भारी अनिष्ट का संकेत दे रहे हैं। मंदिरों में दर्शन करने जाता हूँ तो देवप्रतिमायें रोती हुई-सी नजर आती हैं, पुच्छल तारा का उदय होने लगा है, गाय को बछिया का दूध पीते देखा - ये बड़ा भारी अनिष्ट का संकेत है।

गता: सप्ताधुना मासा भीमसेन तवानुज: ।
नायाति कस्य वा हेतोर्नाहं वेदेदमञ्जसा ॥ (भा. 1/14/7)

सात महीने तक अर्जुन अभी तक लौटकर क्यों नहीं आया? नहीं आना था तो संदेश क्यों नहीं भेजा? चर्चा हो ही रही थी कि अचानक अर्जुन सामने से आ गये। अर्जुन को देखते ही पाण्डव दौड़ पड़े, अरे अर्जुन! कैसे हो? सबको महान् आश्चर्य होने लगा। क्योंकि अर्जुन का मुख एकदम कान्तिहीन हो चुका था, आँखों से अश्रुपात हो रहा था। अरे! लगता है कि कोई बहुत बड़ा अनिष्ट हो गया, अर्जुन जल्दी बताओ! हुआ क्या? तुम्हारी कान्ति नष्ट क्यों है? कहीं तुमसे कोई बहुत बड़ा पाप तो नहीं हो गया? गौवध तो नहीं हो गया? विप्रवध तो नहीं हो गया? वृद्ध और बालक की उपस्थिति में उन्हें खिलाये बिना चुपचाप उनके सामने अकेले भोजन तो नहीं किया? अगम्या स्त्री से गमन तो नहीं हुआ? शरणागत की रक्षा करने में कहीं असमर्थ तो नहीं हुए? तुम्हारी प्रतिज्ञा भंग तो नहीं हो गई? क्या बात है! तुम्हारा मुख आज कान्तिहीन क्यों है? ओ हो! द्वारिका में इतने दिन रहकर आये हो, द्वारिका में सब कुशल से तो हैं? हमारे प्यारे प्रभु अपने परिकर साथ प्रसन्न हैं? साम्ब, प्रद्युम्न, आदि सभी यदुवंशी आनन्दपूर्वक तो हैं? जब एक-एक से सबकी कुशलता के प्रश्न करने प्रारम्भ किये, तो अर्जुन महाराज युधिष्ठिर के चरणों में तुरन्त गिर पड़े।

वंचितोऽहं महाराज हरिणा बन्धुरूपिणा ।
येन मेऽपहतं तेजो देवविस्मापनं महत् ॥ (भा. 1/15/5)

भैया! हम अपने प्यारे प्रभु के सान्निध्य से वंचित हो गये। एक-एक प्रसंगों का अर्जुन स्मरण करने

लगे, जिन प्रभु की कृपा से मैंने खांडव वन का दहन किया, युद्ध में भोलेनाथ को भी संतुष्ट किया, जिन्होंने दुर्वासा मुनि के उग्रशाप से अक्षयपात्र का एक दल पाकर, विश्वात्माओं को तृप्त करके हमारे प्राणों की रक्षा की, स्वयंवर में जिनकी कृपा से मैंने द्रौपदी का वरण किया; आज उन्ही प्रभु के परमधाम जाने के बाद मैं अर्जुन वही, मेरे बाण वही, पर मेरे प्रभु मेरे साथ नहीं तो महाभारत का विजेता अर्जुन आज भीलों से भी युद्ध में पराजित हो गया। आज मुझे समझ में आया कि मेरा बल-पराक्रम जो भी कुछ था, वह प्रभु का ही था। मैं तो केवल एक निमित्त था।

यदुवंश के संहार का जब पूरा प्रसंग अर्जुन ने विस्तारपूर्वक सुनाया तो, कुन्ती मैया ने जब ये सुना कि गोविन्द भी लीला संवरण करके परमधाम गये, तो तुरन्त गोविन्द के चरणों का चिंतन करते हुए, ध्यानस्थ होकर एक क्षण में कुन्ती मैया ने अपना शरीर त्याग दिया। ऐसे प्रेमी या तो रामावतार में श्रीदशरथजी हुये या कृष्णावतार में भगवती कुन्ती, जिन्हें प्रभु के वियोग को क्षणभर भी सहा नहीं। पाण्डव भी तुरन्त द्रौपदीजी को साथ लेकर, परीक्षित को सत्ता का भार सौंपकर स्वर्गारोहण करते, हिमालय यात्रा करते-करते, अन्त में परमधाम को प्राप्त हुये।

परीक्षित् शाप :—

महाराज परीक्षित ने अपनी सत्ता को सँभाला। एक बार विचार आया कि चलकर प्रजा की व्यवस्था का निरीक्षण करें। अपने बुजुर्ग-अनुभवी मंत्रियों को साथ में लेकर महाराज परीक्षित निकल पड़े। भ्रमण करते-करते सर्वत्र अपने पूर्वजों की प्रशंसा सुनने को मिली। परन्तु एक जगह पर बड़ा अटपटा दृश्य देखा कि एक गाय-बछड़े आंसू बहाते, रोते जा रहे हैं और एक निर्दयी दुष्ट उनके पीछे पड़ा हुआ है। दोनों अपने सुख-दु:ख की बातें एक-दूसरे को सुना रहे हैं। बछड़ा कहता है, माँ! शायद आप इसलिये रो रही हैं कि मेरे तीन पैर टूट गये अथवा इसलिये रो रहीं हैं कि प्रभु हमें छोड़कर चले गये। इन दोनों के संवाद को परीक्षित ने सुना। क्रोध में नेत्र से अंगारे बरसाने लगे, मुझ परीक्षित के राज्य में गौमाता पर इतना बड़ा अत्याचार हो रहा है? अरे! जिन गायों की रक्षा के लिये मेरे प्रभु गोपाल बनकर वन-वन विचरण किये, उनके परमधाम जाते ही मेरी गायों पर इतना अत्याचार? प्रभु का नाम ही जिन गायों के द्वारा गोविन्द और गोपाल पड़ा, उन्हीं की गायों पर अत्याचार होने लगा? हाथ में तलवार लिये महाराज परीक्षित छोड़ पड़े, हे गौमाता! अब आपको रोने की आवश्यकता नहीं है। प्रभु परमधाम गये तो क्या हुआ, अभी परीक्षित जीवित है।

मा रोदीरम्ब भद्रं ते खलानां मयि शास्तरि

क्रुद्ध हुए महाराज परीक्षित जैसे-ही आगे बढ़े, उस दुष्ट को दण्ड देना चाहते थे कि वह '**दीनवत् शरणम् गत:**' मुकुट उतारकर चरणों में गिर गया, '**त्राहिमाम् त्राहिमाम्**' महाराज रक्षा करें। शरणागत की रक्षा करना क्षात्रधर्म है, ये जानकर महाराज परीक्षित ने खड्ग को म्यान में कर लिया और कहा, हे गौमाता! आप कौन हैं? मैं जान गया। आप साधारण गाय-बछड़े तो हो नहीं, आपके संवाद को सुनकर ही मैं समझ गया। हे वृषभ! आप कौन हैं? क्योंकि आपके तो तीन पैर टूटे हुए हैं। तुम्हारी ये दुर्दशा किसने की? मुझे बताओ! नि:संकोच निर्भीक होकर बताओ! बछड़ा बोल पड़ा, महाराज! मैं अपने दु:ख का हेतु किसे मानूं? कुछ लोग कहते हैं कि भाई! जैसा कर्म करोगे, वैसा फल मिलेगा। कर्म ही सुख-दु:ख का कारण है। कुछ लोग कहते हैं, भाई! ईश्वर की इच्छा के बिना पत्ता भी नहीं हिलता, भगवदिच्छा से ही सब कुछ होता है। कुछ लोग कहते हैं, भाई! ग्रहों की

गति है। अनुकूल ग्रह आ जायें तो बड़ा आनन्द आता है, प्रतिकूल पड़ जायें तो बड़े-बड़े महापुरुषों को भी कष्ट उठाना पड़ता है। इसलिये भाई! मेरी समझ में नहीं आता और मुझे नहीं लगता कि मैं अपने दुःख का किसी को दोष दूं। अतः मैं अपनी इस दुर्दशा का दोषी किसी को नहीं मानता।

महाराज परीक्षित् बोले, बस मैं पहचान गया! आप साक्षात् धर्म हैं। क्योंकि पापी को तो पाप का फल मिलता ही है। लेकिन पापी के पाप की चर्चा करने वाला भी पाप का भागीदार हो जाता है। और इसीलिये आपने किसी के दोष की चर्चा अपने मुख से नहीं की। आप साक्षात् धर्म हैं और ये गौमाता साक्षात् धरणी (पृथ्वी) हैं, जिनका भार उतारने के लिये प्रभु आये थे। पर अब लीला-संवरण करके परमधाम चले गये, इसलिये उनके वियोग में दुःखी हैं। पर ये धूर्त कौन है जो तुम दोनों के पीछे पड़ा है? ये समझ में नहीं आया। क्यों भाई! तेरा परिचय? चरणों में गिरकर बोला, सरकार! मैं कलियुग हूँ। परीक्षित बोले, अच्छा-अच्छा! तो तू कलियुग है? मेरे राज्य की सीमा में प्रवेश करने का दुःसाहस कैसे हुआ तुझे? कलियुग बोला, सरकार! ये बताइये कहाँ आपका राज्य नहीं है? इस सप्तद्वीप-वसुंधरा पर एकछत्र आपका ही साम्राज्य है, जाऊँ तो कहाँ? सब जगह आप धनुष-बाण लिये दिखाई पड़ते हैं। शरण में आ गया हूँ महाराज! जो स्थान बता देंगे, वहीं रह जाऊँगा।

महाराज परीक्षित बोले, अच्छा ये बताओ! तुम्हारे अन्दर गुण कितने हैं और दोष कितने हैं? कलियुग बोला, महाराज! दोषों का तो भण्डार हूँ। पर गुण सिर्फ एक है।

यत्फलं नास्ति तपसा न योगेन समाधिना ।
तत्फलं लभते सम्यक्कलौ केशव कीर्तनात् ॥ (पद्म.भा.मा. 1/68)

कलियुग में इससे सरल साधन कोई सम्भव नहीं है, केवल हरिनाम संकीर्तनमात्र से जीव भवसागर को बड़ी सहजतापूर्वक पार कर सकता है। इस गुण पर महाराज परीक्षित प्रसन्न हो गये और बोले, भाई! गुण तुम्हारा बड़ा अच्छा लगा, बड़ा ही दिव्य है। जीवों को इससे सरल साधन कोई मिल नहीं सकता। अन्य युगों में तो कितनी तपस्या करनी पड़ती है, यज्ञ करने पड़ते हैं और भी बहुत सारे बड़े-बड़े साधन करने पड़ते हैं। कलियुग में तो बैठे-बैठे जीभ हिलाओ, प्रभु के नाम का आश्रय लेकर पार हो जाओ। रीझ गये महाराज परीक्षित, भाई! तब तो हम तुम्हें रहने का स्थान देंगे। जाओ! चार कमरे दिये।

द्यूतं पानं स्त्रियः सूना यत्राधर्मश्चतुर्विधः

जहाँ जुआ खिले, जहाँ मदिरापान हो, जहाँ पर लम्पट पुरुष रहते हों और जहाँ जीव-जन्तुओं की हिंसा होती हो। कलियुग गिड़गिड़ाता हुआ बोला, महाराज! परिवार बहुत बड़ा है चार कमरों में गुजारा नहीं हो पायेगा और फिर आपने जैसी शकल देखी वैसे ही कमरे दे दिये हमें। अरे! कम-से-कम एक गुण मेरा आपको बहुत पसंद आया, तो क्या एक बढ़िया-सा कमरा नहीं मिलेगा? बढ़िया-सा एक कमरा मिल जाये बस! अच्छा! तो बोलो। कौन-सा स्थान और चाहते हो? कलियुग बोले, महाराज! केवल स्वर्ण में निवास और मिल जाता, तो अपना काम चल जाता।

पुनश्च याचमानाय जातरूपमदात्प्रभुः

स्वर्ण में निवास मांगा। महाराज परीक्षित चूंकि प्रसन्न थे, गुण पर रीझे हुये थे, इसलिये तुरन्त कह दिया, अच्छा जाओ! हमने तुम्हें स्वर्ण में भी निवास दिया। अब एक शंका होती है कि एक ओर प्रथमस्कन्ध में तो

सूतजी महाराज कह रहे हैं कि महाराज परीक्षित ने कलियुग को स्वर्ण में निवास दे दिया। पर दूसरी ओर, भागवत के एकादश स्कन्ध में विभूति योग का वर्णन करते हुए उद्धव से भगवान् स्वयं कहते हैं, '**धातूनामस्मि काञ्चनम्**' (भागवत 11/16/18) हे उद्धव! धातुओं में स्वर्ण मेरा ही स्वरूप है, उसमें मेरा निवास है। अब लो! भागवत में ही लिखा है कि स्वर्ण में कलियुग का निवास है और भागवत में ही भगवान् कह रहे हैं कि मेरा निवास है? तो अब किसका निवास मानें? इसका समाधान यह है कि ईमानदारी से प्राप्त किये हुए स्वर्ण में भगवान् का निवास है। कुछ लोगों ने कहा, सरकार! ईमानदारी से तो कम ही लोग हैं, जो सोना पहन पाते हैं। कृपया, कुछ और संशोधन कीजिये। तो गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज ने रामचरितमानस में एक संकेत दे दिया, संसार की कोई वस्तु है ही नहीं, जिसमें दोष न हों -

जड़ चेतन गुण दोषमय बिस्व कीन्ह करतार

भोजन करते हैं, तो अन्न में दोष, वस्त्र पहनते हैं तो वस्त्र में दोष - हर वस्तु सदोष है। परन्तु जो वस्तु भगवान् को निवेदित कर दी जाये, वह निर्दोष हो जाती है। अन्न में दोष है। पर ठाकुरजी का भोग लग जाये, तो वह प्रसाद बन जाता है। फिर अन्न नहीं रह जाता, भगवत्प्रसादी हो जाता है। उसका सारा दोष दूर हो जाता है। इसलिये जो भी वस्तु संसार की ग्रहण करो, उसे भगवान् को समर्पित करके ग्रहण करो। भोजन करना है, तो भोग लगाकर वस्त्र पहनना है, तो ठाकुरजी को पहनाकर ऐसे ही अलंकार पहनना है। होगा स्वर्ण में दोष! पर पहले ठाकुरजी को पहना दो और ठाकुरजी का प्रसाद बनाकर आप धारण कर लो। ऐसा करने पर उसमें फिर साक्षात् प्रभु का ही वास होगा। अतः भगवान् का प्रसाद बनाकर ही वस्तु को ग्रहण करना चाहिए।

तुमहि निवेदित भोजन करहीं। प्रभु प्रसाद पट भूषण धरहीं ॥

एक दिन महाराज परीक्षित स्वर्णमण्डित मुकुट धारण करके शिकार खेलने के लिये निकल पड़े। दिग्भ्रमित हो गये। भूख-प्यास से पीड़ित होकर महर्षि शमीक की कुटिया में पहुंच गये। बाहर खड़े होकर खूब आवाज दी, पर कोई प्रत्युत्तर नहीं आया। कुटिया के भीतर महाराज परीक्षित ने जाकर देखा, तो शमीक मुनि समाधिस्थ बैठे हुये थे। राजा को भ्रम हो गया, '**मृषा समाधिराहोस्वित्**' इसकी ये झूठी समाधि है। ये मेरा शब्द सुन रहा है, पर आँख बंद करके इसलिये बैठ गया है ताकि राजा के चक्कर में कौन पड़े। अपने आप चिल्लाकर चला जायेगा। अरे! राजा ईश्वर का अंश होता है। देखता हूँ, असली है कि नकली! एक मरा हुआ सर्प दिखाई पड़ा, तो धनुष्कोटि से उठाकर महात्मा के गले में लपेट दिया। पर महात्मा भी असली और उनकी समाधि भी असली। उनपर कोई भी अन्तर नहीं पड़ा।

महाराज परीक्षित तो चले गये। संत को समझने में भूल हो जाये, तो परिणाम बहुत भयानक होता है। कहीं असली को नकली समझ बैठे, तो खतरा-ही-खतरा और कहीं नकली को असली समझ बैठे, तो भी बहुत खतरा। रामचरितमानस में प्रतापभानु की कथा आपने सुनी होगी। एक पाखण्डी महात्मा के चक्कर में पड़कर राजा प्रतापभानु का सर्वनाश हो गया। एक पाखण्डी पर विश्वास करके इतना भयंकर परिणाम हुआ। और भागवत में एक असली संत को नकली समझ बैठने की गलती कर बैठे परीक्षित, मरा सर्प डाल दिया चले गये। ये दृश्य एक बालक ने देखा और छेड़ष्कर शमीक ऋषि के पुत्र को सूचित किया, जो कौशिकी नदी के तट पर खेल रहा था। जहाँ पूरा समाचार सुनाया कि वह ऋषिकुमार क्रोध में भर गया। वह बालक तुरन्त नदी के जल में प्रविष्ट हो गया और

कौशिक्याप उपस्पृश्य वाग्वज्रं विससर्ज ह

कौशिकी नदी का जल अपने हाथ में लेकर, महाराज परीक्षित को भयंकर शाप दे दिया –

इति लङ्घितमर्यादं तक्षकः सप्तमेऽहनि ।
दङ्क्ष्यति स्म कुलांगारं चोदितो मे ततद्रुहम् ॥ (भा. 1/18/37)

ऐ कुलांगार! तुम्हारे पूर्वजों ने सर्वदा संतों की चरणरज अपने मस्तिष्क पर धारण की और तूने संतों का अपमान किया। जा, मेरा शाप है – तूने सर्प के द्वारा मेरे पिता का अपमान किया है। तो आज से सप्तम दिवस सर्प का ही तुझे ग्रास बनना पड़ेगा, सर्पदंश से तेरी मृत्यु होगी। ऐसा कहकर जल छोड़ दिया और वह बालक अपने पिता के सम्मुख आया। गले में मरा हुआ सर्प देखा तो, '**मुक्तकण्ठो रुरोद ह**' इतना क्रोध उस बालक को हुआ कि अपमान की आग में जलता हुआ रोने लगा। जब जोर-जोर से रोया तो शमीक मुनि की समाधि खुल गई। नेत्र खोलकर देखा कि गले में मरा सर्प पड़ा है। उतारकर फेंक दिया। पुत्र को गोद में ले लिया, बेटा! क्या हुआ? तू इतना क्यों रो रहा है? कण्ठावरुद्ध होने से बालक तो कुछ नहीं बता सका, पर अन्य जो बालक थे उन्होंने सारा वृतान्त बतलाया।

सारा समाचार सुनते ही जहाँ ये शब्द कान में पड़ा कि मेरे पुत्र ने सात दिन में मरने का शाप दे दिया, अत्यंत खिन्नमना हो गये। अपने पुत्र से बोले, अरे! बेटा तूने कितना बड़ा अनर्थ कर दिया। जिस महाभागवत की रक्षा करने के लिये हमारे प्रभु माँ के गर्भ में गये और उत्तरा के गर्भ में जाकर उस बालक की रक्षा की, उस परमवैष्णव परीक्षित को तुमने इतना बड़ा शाप दे दिया? अब इस भारतभूमि को परीक्षित-जैसा धर्मनिष्ठ धर्मात्मा राजा नहीं मिल सकता क्योंकि अब जो राजा होंगे, सब धर्मनिरपेक्ष होंगे। धर्म से उनका कोई मतलब नहीं होगा। परीक्षित-जैसा धर्मात्मा कहाँ मिल सकता है? जब राजा धर्मात्मा नहीं होगा, तो प्रजा में धर्म कहाँ होगा? प्रजा जब धर्मनिष्ठ नहीं होगी, तो वर्णसंकरता फैलेगी। और ये सारे दोष का कारण तू बनेगा। हे प्रभु! ये क्या अनर्थ हो गया! मेरे पुत्र को हमारे अपराध को क्षमा करो। पर अब जो होना था, वह हो चुका। तुरन्त अपने सेवक को भेजकर परीक्षित को ये सारा समाचार सुनाया।

जहाँ परीक्षित महाराज ने सुना कि सातवें दिन मरना सुनिश्चित है, तो सर्वस्व त्यागकर सीधे गंगातट पर शुकतीर्थ में जाकर विराजमान हो गये। पश्चात्ताप की आग में जल उठे, जिन संतों का मैंने सर्वदा सम्मान किया, आज उन संतों का अपमान करने की भावना मेरे मन में आई कैसे? ये नीचकर्म मैं तो सोच भी नहीं सकता था।

अहो मया नीचमनार्यवत्कृतं निरागसि ब्रह्मणि गूढतेजसि

बारम्बार पश्चात्ताप करते हुए महाराज परीक्षित गंगातट पर आकर विराजमान हो गये। ऋषि-मुनियों को पता चला कि हमारे सम्राट् को सातवें दिन मरने का शाप लग गया है, तो जितने सिद्धकोटि के दिव्य महापुरुष थे, सब-के-सब परीक्षित के पास दौड़े दौड़े आये –

अत्रिर्वसिष्ठश्च्यवनः शरद्वानरिष्टनेमिर्भृगुरङ्गिराश्च ।
पराशरो गाधिसुतोऽथ राम उतथ्य इन्द्रप्रमदेध्मवाहौ ॥ (भा. 1/19/9)

अत्रि, वसिष्ठ, पराशर, भृगु, परशुराम, विश्वामित्र, आदि सब-के-सब आये। इतने संतों का समुदाय परीक्षित ने जब गंगातट पर आते देखा, तो गद्गद् होकर सबको दण्डवत् किया। विधिवत् पूजन किया और कहने लगे, महाराज! समझ में नहीं आता। मुझ क्षत्रबंधु के ऊपर आपने कैसे अनुग्रह किया? मैंने तो संत का

अपमान किया, पर धन्य हैं संत! जो मुझे घर बैठे अनुग्रह प्रदान करने के लिए पधारे। आप समस्त संतों के चरणों में शत शत प्रणाम। लेकिन, एक ही बात जानना चाहता हूँ कि मरने वाले को क्या करना चाहिये। '**म्रियमाणस्य किं कर्तव्यम्**'। चर्चा हो ही रही थी कि,

तत्राभवद्भगवान् व्यासपुत्रो यदृच्छया गामटमानोऽनपेक्षः ।
अलक्ष्यलिङ्गो निजलाभतुष्टो वृतश्च बालैरवधूतवेषः ॥ (भा. 1/19/25)

अचानक! ऋषि-मुनियों के बीच में साक्षात् भगवान् प्रकट हो गये। शौनकजी ने पूछा, महाराज! कौन-से भगवान् प्रकट हो गये? सूतजी बोले, '**भगवान् व्यासपुत्रः**' मानो भक्त की रक्षा करने के लिये भगवान् ही व्यासनन्दन शुकदेवजी बनकर प्रकट हो गये।

पहले परीक्षित पर संकट आया, वह भी ब्राह्मण था – अश्वत्थामा। उसने छोड़ा ब्रह्मास्त्र का बाण तो उस अस्त्र से बचाने के लिये भगवान् भी अपने शस्त्र सुदर्शनचक्र को लेकर छोड़े और परीक्षित की रक्षा की। अस्त्र का संकट आया, तो अस्त्र लेकर भागे। इस बार, इस ब्राह्मण ने वाग्वज्र अर्थात् वाणी का वज्र चलाया है मारने के लिये, तो भगवान् भी व्यासनन्दन शुकदेव बनकर वाणी से ही रक्षा करने के लिये प्रकट हो गये। इसलिये केवल व्यासनन्दन शुकदेव नहीं, अपितु '**तत्राभवद्भगवान् व्यासपुत्रो**' मानो भगवान् ही व्यासपुत्र के रूप में पधारे हैं। स्वेच्छा से भ्रमण करते हुए जा रहे हैं। '**अलक्ष्यलिंगः – स्त्री-पुरुष भेदरहितः**' – ऐसे परमहंसाचार्य श्रीशुकदेवजी कि जिन्हें इतना भी ज्ञान नहीं है कि स्त्री और पुरुष किसे कहते हैं। उनकी दृष्टि में तो सबमें बड़ी एक सत्ता है।

सीय राममय सब जग जानी

निजलाभतुष्टः – निजायाः श्रीराधाकृष्णयोः तयोर्दर्शन एव लाभस्तेन संतुष्टः

भगवान् शुकदेव निजानन्द में परिपूर्ण हैं। इनका तो परमानन्द इनके भीतर ही विराजमान है। उनके तो हृदयकमल में ही श्रीप्रिया-प्रीतम का नित्यनिवास है। उन्हें में सदा रमण करते रहते हैं, रमते रहते हैं। बहिरंग दृष्टि इनकी होती ही नहीं, दुनिया वालों पर दृष्टि इनकी जाती नहीं। ऐसे परमहंसशिरोमणि हैं श्रीशुकदेव जी। सोलह वर्ष की उम्र में भी नग्न अवस्था में घूम रहे हैं, '**दिगम्बरं वक्त्रविकीर्णकेशम्**' केश खुले हुए हैं, दिगम्बर स्वरूप है, बड़ी-बड़ी विशाल भुजायें हैं, दिव्य-आभा मुखकमल पर चमक रही है।

इस मुखकान्ति को देखकर कई सुन्दरियां इनके पीछे लग जाती हैं और कई गाँव के बच्चे हाथ-धोकर इनके पीछे पड़ जाते हैं। ताली बजाकर, 'नंगा बाबा आ गया ... नंगा बाबा आ गया' बच्चों की भीड़ पीछे लग जाती है, पर शुकदेवजी पर कोई अन्तर नहीं पड़ता। कोई अनुरागपूर्वक निहार रहा है, तो कोई हमारा उपहास कर रहा हैय शुकदेवजी दोनों में बराबर। ऐसे श्यामविग्रहस्वरुप शुकदेवजी का दर्शन किया, तो जितने सिद्धकोटि के संत गंगातट पर बैठे थे, सब-के-सब उठकर खड़े हो गये और शुकदेव भगवान् की जय-जयकार करने लगे। परीक्षित आश्चर्य चकित हो गये, कि सोलह वर्ष का ये बालक आया और ये दस-दस हजार वर्ष की दीर्घायु वाले महात्मा खड़े होकर स्वागत कर रहे हैं। इसका मतलब है कि बालक साधारण नहीं है, कोई सिद्ध विभूति है। परीक्षित ने तुरन्त खड़े होकर शुकदेवजी को साष्टांग दण्डवत् किया।

स विष्णुरातोऽतिथय आगताय तस्मै सपर्यां शिरसाऽऽजहार ।
ततो निवृत्ता ह्यबुधाः स्त्रियोऽर्भका महासने सोपविवेश पूजितः ॥ (भा. 1/19/29)

महाराज परीक्षित ने खड़े होकर दण्डवत् किया, आसन दिया, षोडशोपचार पूजन किया। जब महाराज परीक्षित को पूजन करते हुए उन बालकों और स्त्रियों ने देखा तो घबड़ा गये। सोचने लगे कि जिसे पागल बाबा समझकर पीछा कर रहे थे, ये तो कोई सिद्ध बाबा निकल पड़ा। अरे! हमारे सम्राट् इसे साष्टांग दण्डवत् करके पूजा कर रहे हैं। यदि महाराज ने हमें देख लिया तो लेने के देने पड़ जायेंगे। ऐसा सोचकर सब भाग गये। परीक्षित महाराज ने विधिवत् पूजन किया और कहा, भगवन्! आज मैं धन्य हो गया। मुझ-जैसे क्षत्रबंधु के ऊपर आपने अनुग्रह किया, सहज पधारकर दर्शन दिया, अरे! आप-जैसे संतों का तो कोई स्मरण भर कर ले, तो पापमुक्त हो जाये। स्मरण के साथ-साथ कहीं आप जैसे संतों का दर्शन मिल जाये, फिर तो कहना ही क्या। और दर्शन के साथ-साथ कहीं आपका चरणोदक मिल जाये फिर तो पूछना क्या! और चरणोदक के साथ-साथ कहीं आपके वचनों की गंगा में गोता लगाने को मिल जाये तब तो फिर पाप का लेश भी शेष नहीं रह सकता। अंशमात्र भी पाप है, तो वह भी टिक नहीं सकता।

येषां संस्मरणात् पुंसां सद्यः शुध्यन्ति वै गृहाः। किं पुनर्दर्शनस्पर्शपादशौचासनादिभिः॥
अतः पृच्छामि संसिद्धिं योगिनां परमं गुरुम्। पुरुषस्येह यत्कार्यं म्रियमाणस्य सर्वथा॥

(भा. 1/19/33 व 37)

परीक्षितजी कहते हैं, मैं धन्य हो गया महाराज! केवल एक ही बात जानना चाहता हूँ। आप योगियों के भी परमगुरु हैं। अतः आपसे पूछना चाहता हूँ कि '**म्रियमाणस्य किं कर्त्तव्यम्**' हर मरणधर्मा प्राणी का क्या कर्त्तव्य है, वह कृपा करके बताइये। जीवन में क्या श्रवणीय है, क्या स्मरणीय है, कौन भजनीय है, जीव का कर्तव्य क्या है और अकर्तव्य क्या है? इसे जरा विस्तारपूर्वक मुझे समझाइये। शुकदेवजी बोले, बैठने की देर नहीं हुई और तुमने आते ही प्रश्नों की झड़ी लगा दी। अरे! कोई आवे, तो पहले उसे प्रेमपूर्वक बैठने तो दो। परीक्षित महाराज कहते हैं, आप-जैसे महापुरुष ज्यादा देर तक बैठते ही कहाँ हैं। गौदोहन काल से ज्यादा टिकते नहीं। इसलिये मैंने तुरन्त प्रश्न किया है कि अब आप इन प्रश्नों का समाधान देकर ही यहाँ से प्रस्थान कर सकेंगे।

॥ द्वितीय स्कन्धः ॥

(साधन)

शुकदेवजी परीक्षित के इन प्रश्नों पर विमुग्ध हो गये। गद्गद् होकर बोले,

वरीयानेष ते प्रश्नः कृतो लोकहितो नृप।
आत्मवित्सम्मतः पुंसां श्रोतव्यादिषु यः परः॥ (भा. 2/1/1)

देखिये! डकार उसी की आयेगी, जो आपके भीतर भरी होगी। मूली खाकर आयें हैं, तो मूली की डकार अपने आप बता देती है कि मूली खाकर बैठे हैं। शुकदेवजी का जो प्रथम अक्षर मुख से निकला, वह भी ब्रह्म का ही बीज निकला। व-कार जो है, वह ब्रह्म का बीज है। और शुकदेवजी के मुख से पहला व-कार ही निकला, '**वरीयानेष ते प्रश्नः**' व शब्द पहले निकला, क्योंकि ब्रह्म का बीज व है और ब्रह्मानन्द शुकदेवजी के भीतर भरा है। शुकदेव बाबा कहते हैं, परीक्षित! ये प्रश्न तुमने अपने लिये नहीं किया है। यदि परीक्षित ये पूछते कि महाराज! मैं सातवें दिन मरने वाला हूँ, कुछ बचने का उपाय बतलाओ तो ये व्यक्तिगत प्रश्न होता। परीक्षित का प्रश्न ये है कि मरने वाले को क्या करना चाहिये? तो मरने वाले कोई परीक्षित अकेले थोड़े-ही हैं? इसका नाम ही मृत्युलोक है, मरने वाले तो सभी हैं। और सबके जीवन में ही सात दिन के भीतर ही तो कालरूपी व्याल अपना ग्रास बनाने आता है। क्योंकि सात ही दिन हैं - रवि, सोम, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि। और इन सात दिन के भीतर ही काल-व्याल का ग्रास प्रत्येक प्राणी को बनना है।

परीक्षित का प्रश्न सार्वभौम है, इसलिए शुकदेवजी गद्गद् हो गये। अरे परीक्षित! लोकहित के लिये, जनकल्याण की भावना से बड़ा प्यारा प्रश्न तुमने किया है। ये अभागा जीव मोहग्रसित है। अपने बारे में इसे सोचने का समय ही नहीं। हमेशा दूसरों के बारे में ही सोचता रहता है - मेरे बाद इनका क्या होगा? मेरा इतना बड़ा कारोबार? मेरा इतना बड़ा परिवार? मेरे इतने बच्चे? अब कैसे-क्या सम्भालेंगे? लो! अन्तिम समय जीवन का आ गया और फिर भी दूसरों के बारे में ही सोच रहे हैं। जिंदगी भर दूसरों को कमा-कमाकर दिया और अब भी अपने बारे में सोचने की फुर्सत नहीं! दिनभर पैसा कमाना और परिवार का पेट भरना। रातभर या तो खर्राटे बजाकर सोना या विषयों के भोग में डूबे रहना - इसी में सारा जीवन जीव का समाप्त हो जाता है।

निद्रया ह्रियते नक्तं व्यवायेन च वा वयः।
दिवा चार्थेहया राजन् कुटुम्बभरणेन वा॥ (भा. 2/1/3)

इसलिये परीक्षित! जो प्राणी वास्तव में मृत्युभय से मुक्त होना चाहता हो, उसे तीन बातों का अभ्यास करना चाहिये।

तस्माद् भारत सर्वात्मा भगवानीश्वरो हरिः।
श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यश्चेच्छताभयम् ॥[1] (भा. 2/1/5)

मृत्यु से जो अभय चाहता हो, वह माधव की शरण में आ जाये। माधव की शरण में आये बिना मृत्यु से कोई बच नहीं सकता। तो माधव की शरण में आने के लिए क्या करें - '**श्रोतव्यः**' सबसे पहले उनकी महिमा को सुनना प्रारम्भ कर दो। सुनने से फायदा क्या होगा? अरे! जब सुनोगे, तभी तो उनके बारे में जानोगे। और जबतक जिस व्यक्ति की पूरी जानकारी न मिले, तब-तक उसमें श्रद्धा होती ही नहीं। कोई कितना ही बड़ा महान् व्यक्तित्व हमारे बीच में आकर चुपचाप बैठ जाये, तो हम तबतक उसे नमस्कार भी न करें, जबतक उसके व्यक्तित्व के बारे में किसी ने हमें बताया।

जाने बिनु न होइ परतीती। बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती॥

इसलिये प्रभु की महिमा जानने के लिए पहले उनकी कथा सुनो। ज्यादा-से-ज्यादा भगवान् की लीलाओं का श्रवण करो तो पता चलेगा कि प्रभु का स्वरूप कैसा है, उनका स्वभाव कैसा है, उनका प्रभाव कैसा है यह जानोगे। तब प्रभु में श्रद्धा और प्रेम जागेगा। ये मन भगवान् की तरफ जल्दी से जुड़ता ही नहीं। बड़ा निष्ठुर है, जन्म-जन्मातरों से संसार में ही इसकी रती है। अब परमात्मा से कैसे जोड़ें? प्रभु की तरफ कैसे मोड़ें?

लोहा बहुत कठोर होता है, पर उसका औजार बनाना हो तो तोडना-मरोडना तो पड़ेगा। बिना तोड़े-मरोड़े उससे कुल्हाड़ी, आदि उस लोहे से कैसे बनेगी? पहले इसे गरम करके तपाओ। लोहा जब गरम हो जाये, आग में लाल हो जाये, तब उसमें द्रव्यता आ जाती है। फिर उतनी कठोरता नहीं रह जाती। और जहाँ उसमें लालिमा आ जाये, द्रव्यता आ जाये, एक हथौड़ा मार दो जहाँ चाहोगे तुरन्त वहीं मुड़ जायेगा। बिना तपाये तो मोडना बड़ा कठिन है। उसी प्रकार ये निष्ठुर मन माधव की तरफ मुड़ता नहीं कैसे मोड़ें? पहले इसे भगवान् की कथा सुनाओ। भगवान् की माधुर्यपूर्ण लीलाओं को सुनते-सुनते इसमें द्रव्वता आ जायेगी, भगवान् के प्रेम में पिघल जायेगा। और जब प्रभु की महिमा को सुनकर तुम्हारा मन पिघल जाये, तभी विवेक का हथौड़ा मारो, इसे डाँटो, अरे पापी! अरे दुष्ट! जिन प्रभु की महिमा में तू इतना मुग्ध हो रहा है, फिर उन माधव का भजन क्यों नहीं करता? फिर उनके चरणों का ध्यान क्यों नहीं करता? तो मन आज चूंकि इस समय प्रभावित है, आपकी हर बात मानेगा और प्रभु की तरफ मुड़ जावेगा।

गोस्वामीजी रामचरितमानस में वर्णन कर रहे हैं कि अहिल्या का उद्धार करके रामजी जा रहे हैं। वर्णन करते-करते गोस्वामीजी का मन पिघल गया कि रामजी इतने कृपालु हैं, इतने दयालु हैं कि बेचारी अहिल्या वन में पाषाण-प्रतिमा बनी पड़ी थी। कोई नहीं देखता था, न कोई उधर जाता था। ऐसी अभागिन अहिल्या का उद्धार करने प्रभु स्वयं गुरुजी को लेकर पहुँच गये और उसपर अनुग्रह किया, उसे परम-पावन बना दिया। और जहाँ मन पिघला, तहां गोस्वामीजी ने उस मन को फटकारा,

अस प्रभु दीनबंधु हरि कारण रहित दयाल।
तुलसीदास सठ तेहि भज छाड़ि कपट जंजाल॥ (रामचरितमानस 1/211)

अब! ये जो 'सठ' संबोधन है, वह अपने मन को है। गोस्वामीजी कहते हैं, अरे! सठ मन तू बड़ा ढीठ है, एक तरफ तो प्रभु की महिमा सुन-सुनकर आज इतना पुलकित हो रहा है। और जब भजन करने की बारी आती है

1. '**श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च...**' इत्यादि यह सिद्धान्त भागवत में तीन बार कहा है - 1/2/14, 2/1/5 तथा 2/2/26 में।

तो इधर-उधर भाग जाता है। इसलिये ये दुनिया के जंजाल को छोड़ और जिनकी महिमा से तू पुलिकित है, ऐसे प्यारे प्रभु का भजन कर। पूरी रामकथा सुनाने के बाद भी अंत में रामचरितमानस के अंत में भी अपने मन को यों-ही समझाया, ऐसा कौन पापी है जगत् में, जो श्रीरामजी का आश्रय लेकर पावन नहीं हो गया?

पाई न केहि गति पतित पावन राम भज सुन सठ मना

गोस्वामीजी ने पूरी रामकथा सुनाकर अपने मन को समझाया। इतना डाँटते हैं, अरे! मेरे सठ मन! दुष्ट! ढीठ! ध्यान से सुन।ऐसे पतित-पावन प्रभु श्रीराम, जिनका आश्रय लेकर किस पापी का उद्धार नहीं हो गया? किसे परमगति प्राप्त नहीं हुई? ऐसे रामजी का भजन कर। तो देखिये! जिस समय लोहा गरम है, पिघला हुआ है, हथौड़ा मारो तो मुड़ जायेगा। उसी प्रकार '**श्रोतव्यः**' भगवान् की महिमा को खूब सुनो। प्रभु की महिमा सुन-सुनकर मन जब प्रभावित होने लगे, तभी विवेक का हथौड़ा मारो। अपने मन को डाँटो समझाओ। चूंकि इस समय पिघला हुआ है, प्रभु की महिमा से प्रभावित है, तुरन्त आपकी बात मानेगा और भजन में समर्पित होगा। जबरदस्ती इस मन को प्रभु की तरफ मोड़ना बड़ा मुश्किल है। क्योंकि ये बड़ा निष्ठुर है बड़ा ही कठोर।

श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यश्चेच्छताभयम्

जो मृत्यु के भय से मुक्त होना चाहें, उसे भगवान् की महिमा ज्यादा-से-ज्यादा सुननी चाहिए, ताकि मन प्रभावित हो जाये। और सुनकर मन जब बहुत प्रभावित हो जाये, तब '**कीर्तितव्यः**' भगवान् की महिमा को पहले तो सुनो, उसके बाद फिर दूसरों को सुनाओ। सुनने की महिमा ज्यादा है, हमेशा सुनाने की बात दूसरे बारी पर, वर्णन करना दूसरे स्थान पर, सुनना पहले स्थान पर। क्योंकि जिसने अच्छी तरह सुना होगा, वही सुना सकता है इसलिये भी। दूसरा कारण एक और है कि जितना आनन्द सुनने में आता है, उतना सुनाने में नहीं। वक्ता भगवत्प्रेम में डूबने में स्वतन्त्र नहीं है, श्रोता स्वतन्त्र है। श्रोता तो भगवान् की महिमा को सुनता जावे और खूब आनन्द के सागर में डूबता जावे। चाहे जितना कण्ठावरुद्ध हो जावे, चाहे जितना अश्रुपात हो जावे, चाहे जितनी समाधि लग जावे - उस आनन्द में डूबने के लिये वह स्वतन्त्र है। पर वक्ता स्वतन्त्र नहीं है। वक्ता कहीं प्रेम में ज्यादा डूब गया, तो वाणी अवरुद्ध हो जायेगी। और जब वाणी अवरुद्ध हो जायेगी, तो कथा कैसे होगी? एकदम डूब गया, तो फिर वह वर्णन ही नहीं कर सकता। इसलिये उसे अपने को सँभालना पड़ता है। इसलिये पहले श्रवण करो, फिर दूसरों को भी डुबाओ।

जो ये कहता है, डूब गया भैया! बचाओ! वह अभी नहीं डूबा। डूब गया होता, तो आवाज ही नहीं निकलती। आवाज निकल रही है, इसका मतलब अभी डूबा नहीं है कसर है। केवल चिल्ला रहा है। और डूबने के बाद, डूबने वाले के पास कोई जावे, वह भी डूब जाता है। उसे भी डुबा ही लेता है। इसलिये जबतक वाणी मुखरित है, जो कह रहा है कि मैं बहुत डूब गया, वह अभी डूबा नहीं है। क्योंकि जिस दिन डूब जायेगा, उस दिन वह कह नहीं पायेगा। वह बता नहीं पायेगा कि वह आनन्द कैसा है। जो ये कहता है कि मैं जान गया, उसने अभी कुछ नहीं जाना है। क्योंकि जानने वाला बता नहीं पाता। इसलिये पहले खूब डूबो, दूसरों को भी डुबाओ। और जब भी एकान्त मिले, आँख बंद करके उन्हीं लीलाओं का रसास्वादन करो, समाधि लगाओ, उन्हीं का एकान्त में खूब स्मरण करो। पहले श्रवण, फिर संकीर्तन-गायन और उसके बाद स्मरण।

परीक्षित बोले, महाराज! मेरे तो सात दिन ही हैं। मुझे क्या-क्या करना चाहिये? शुकदेवजी बोले, सात दिन कोई कम होते हैं क्या? परीक्षित! मैं भी निर्गुण-ब्रह्म की इस सत्ता में परिनिष्ठित था। पर गोविन्द के गुणानुवाद

ही इतने सरस मधुर हैं कि हे राजर्षि परीक्षित! उस निर्गुण-सत्ता से मेरा चित्त जबरदस्ती गोविन्द के गुणगणों ने खींच लिया,

परिनिष्ठितोऽपि नैर्गुण्य उत्तमश्लोकलीलया ।
गृहीतचेता राजर्षे आख्यानं यदधीतवान् ॥ (भा. 2/1/9)

संसार में दो ही आनन्द हैं - 1. विषयानन्द और ब्रह्मानन्द। विषयों के भोग से जो आनन्द मिलता है, वह विषयानन्द है। इसके विपरीत, आँख बंद करके सुषुप्त-अवस्था में अथवा समाधि-अवस्था में जो महापुरुषों को प्राप्त होता है, वह ब्रह्मानन्द है। परन्तु गोविन्द के गुणगणों का चमत्कार देखो परीक्षित! कि विषयानन्द की चले तो क्या, ब्रह्मानन्द भी फीका पड़ गया। मैं निर्गुण-ब्रह्म की सत्ता में ध्यान मग्न परिनिष्ठित था। पर चुम्बक की तरह मेरे चित्त को गोविन्द के गुणगणों ने अपनी ओर खींच लिया । तब से मैं उनका दीवाना हो गया। इसलिये परीक्षित! कल्याण करने वाले के लिये तो एक मुहूर्त का ही समय बहुत होता है। राजा खट्वाङ्ग ने एक मुहूर्त में ही मुक्ति पाई थी।

मुहूर्तात्सर्वमुत्सृज्य गतवानभयं हरिम् ॥
तवाप्येतर्हि कौरव्य सप्ताहं जीविताविधिः ।

जब एक मुहूर्त में खट्वांग ने मुक्ति पा ली[1], तो क्या तुम सात दिन में नहीं पा सकोगे? श्रीपरीक्षितजी महाराज गद्गद् हो गये, मृत्यु का भय तुरन्त भाग गया।

देखिये, ये डाक्टरों की अपनी विशेषता है। मरीज कितना भी विकट हो, कितना भी भयंकर रोगी हो, कुछ कुशल डॉक्टर तो ऐसे होते हैं, जो आधा तो उसे तो बातों में ही ठीक कर देते हैं। अरे! मामूली-सी बात है, बिल्कुल चिन्ता न करो, निश्चिन्त् हो जाओ ... इतनी प्यारी-प्यारी बातें करते हैं कि आधा तो मरीज वैसे ही ठीक हो जाता है। और कुछ लोग ऐसे भी होते हैं कि बिना मतलब के इतना भय बना लेते हैं कि यदि कोई अधिक बीमार न भी हो, तो भी हार्ट-अटेक हो जाये। बातों ही से घबड़ाकर मर जाये। इतने रूपयों की व्यवस्था करो, ऐसे-ऐसे इंजेक्शन आयेंगे, इतना बड़ा आप्रेशन होगा ... और न जाने क्या-क्या बेचारे के सुनते ही पसीने छूट जायें।

इतने ऋषि-मुनि बैठे थे, परीक्षित ने प्रश्न तो किया था, मरने वाले को क्या करना चाहिए? सब एक-दूसरे का मुँह देख रहे थे। पर षोडशवर्षीय महाप्रभु शुकदेवजी महाराज के वचनों का आत्मविश्वास देखिये, अरे परीक्षित! सात दिन तो बहुत हैं। कल्याण करने वाले के लिये तो एक ही मुहूर्त पर्याप्त है। बताइये? परीक्षित का कितना बल बढ़ गया। वह तो घबड़ा रहे थे कि सात दिन में क्या हो पायेगा? कौन-सा साधन करूँगा? पर शुकदेवजी कहते हैं, सात दिन बहुत हैं, बल्कि एक मुहूर्त ही पर्याप्त होता। प्रसन्न हो गये, श्रीपरीक्षित महाराज और बोले कि महाराज! अब तो ये बताइये। प्रभु का ध्यान कैसे करना चाहिए? शुकदेवजी कहते हैं, परीक्षित! पहले चार बातों का अभ्यास करो।

जितासनो जितश्वासो जितसंङ्गो जितेन्द्रियः।
स्थूले भगवतोरूपे मनः सन्धारयेद्धिया ॥ (भा. 2/1/23)

परीक्षित! सबसे पहले-जितासन बनो अर्थात् आसन को जीतो। आसन जो तुम्हें अच्छा लगता हो, सुखद लगता हो, उसी आसन को सिद्ध करो। चाहे वज्रासन हो, चाहे पद्मासन हो, सुखासन होना चाहिये। रीढ़ की

हड्डी सीधी करके बैठो क्योंकि जबतक आसन की सिद्धि नहीं है, तबतक शरीर का ही ध्यान बना रहता है। पाँच मिनट हुये नहीं आँख बंद किये कि घुटने दुखने लगे, फिर कमर दुखने लगी, फिर पैर पसारने लगे। इसलिये पहले '**जितासनः**'। उसके बाद, '**जितश्वासः**' प्राणायाम का खूब अभ्यास करो। श्वास का सम्बन्ध मन से है। श्वास पर जितना नियंत्रण होगा, उतना ही मन भी तुम्हारा शान्त होगा। मन में क्रोध आ जाये तो देखिये श्वास भी गरम हो जाती है, श्वास की गति भी तेज हो जाती है, फुफकारें भरने लगता है। तो मन का श्वास से बहुत निकटतम सम्बन्ध है। इसलिये प्राणायाम पर खूब अभ्यास करना चाहिये। '**प्राणायामः परं बलम्**' (भागवत 11/19/39) भगवान् ने कहा, प्राणायाम में बड़ा बल है। तीसरी बात बताई, '**जितेन्द्रियः**' असंग हो जाओ, असंग होकर ध्यान लगाओ।

अहमेको न मे कश्चिन् नाहमन्यस्य कश्चित् ।
न तं पश्यामि यस्याहं तं न पश्यामि यो मम ॥ (देवीकालोत्तरागम 49)

प्रभोरहं ममप्रभुः—

संसार में ऐसा कोई नहीं, जो मेरा हो सके और ऐसा भी कोई नहीं, जिसका मैं हो सकूं। शरणागति उसकी ग्रहण करना चाहिये, जहाँ सार्थकता हो, जो शरण्य हो। निर्बल की शरणागति ग्रहण करोगे, तो शरणागति व्यर्थ जायेगी। रामजी समुद्र की शरण में गये, रामजी की शरणागति व्यर्थ हो गई। रामजी महाराज तीन दिन तक बैठे रहे, हाथ जोड़कर समुद्र से प्रार्थना करते रहे पर समुद्र ने बात ही नहीं की। और जो अग्निबाण निकाला, सो वह स्वयं ही लोटता हुआ शरण में आ गया। तो निर्बल-असमर्थ की शरणागति व्यर्थ हो जायेगी। किसी ने बड़ी प्यारी वंशी बजाई और आप उसके दीवाने हो गये, अब तो महाराज! हम आपके ही साथ रहेंगे, आपकी वंशी ने तो हमारा चित्त चुरा लिया। और आप सबको छोड़कर उसके पीछे पागलों की तरह दीवाने बने पड़े हैं। उसने भी सोचा जबतक माल है, लूट लो। जितना माल था, आपका सब ले लिया। बाद में नौ-दो-ग्यारह हो गया। आपने अपना सर्वस्व निवेदन किया, शरण में गये, पर शरणागति व्यर्थ हो गई क्योंकि समर्थ की शरण में नहीं गये। जो शरण्य हो, उसी की शरण में जाओ। भगवान् के चरणकमल ही शरण्य हैं।

ध्येयं सदा परिभवघ्नमभीष्टदोहं तीर्थास्पदंशिवविरिंचिनुतं शरण्यम्

अरे! भगवान् के चरणकमल तो ब्रह्मा और शंकर को भी शरण देने वाले हैं। विभीषणजी समर्थ श्रीरामचन्द्रजी की शरण में गये, सो शरण में आते ही सीधे लंकेश्वर हो गये। इसलिये बादल बहुत गरजते हैं, पर सब नहीं बरसते। सभी बादल बरसात नहीं करते। इसलिये जो मिला, '**त्वं शरणम् त्वं शरणम्**' हर किसी की शरण में न जाओ। शरणागति एक बार होती है और एक में होती है।

उन प्रभु को अपना मानो और प्रभु के चरणों में ही अपने को समर्पित कर दो। बाकी सब प्रकार से असंग होकर ध्यान में बैठो, आसन को जीतो, प्राणायाम के द्वारा श्वास पर नियंत्रण करो और असंग होकर अपने स्वरूप को समझो। समस्त इन्द्रियों पर अपना संयम रखो। ये इन्द्रियरूपी घोड़े हमारे अनुसार चलें, हमें इनके अनुसार न चलना पड़े। अतः जितेन्द्रिय हो जाओ। चार बातों का अभ्यास करने के बाद,

स्थूले भगवतो रूपे मनः सन्धारयेद्धिया

फिर परमात्मा के उस व्यापक ब्रह्मस्वरूप का जो स्थूलरूप में परमात्मा प्रकट है, उसका ध्यान करो।

देखो! एक स्थूल ध्यान है, एक सूक्ष्म ध्यान है। ये विश्व में जहाँ तक दृष्टि जा रही है और जो भी दिखाई पड़ रहा है, ये भी परमात्मा का एक स्वरूप है।[1] चौदह भुवनात्मक इस ब्रह्माण्ड में मृत्युलोक भगवान् की कमर है। इस मृत्युलोक के नीचे भी सात लोक हैं और ऊपर भी सात लोक है। नीचे के सात लोक - अतल, वितल, सुतल, तलातल, रसातल, महातल और पाताल। भगवान् के चरणों का जो तलुआ है, ये पाताललोक है। ऊपर भी सात हैं - भू, भुवः, स्वः, मह, जन, तप और सत्य। भगवान् का शीर्षस्थान सत्यलोक है। इस प्रकार चौदह भुवन ही भगवान् का विराट-वपु है। ये सारा ब्रह्माण्ड परमात्मा का स्वरूप है। जो सौंदर्य तुम्हारे चित्त को अपनी ओर खींचे, जिस सुंदरता पर मन मुग्ध हो जावे उसी में माधव की मुस्कान का दर्शन करना चाहिये। खिला हुआ सुमन चित्त को खींच रहा है, तो कि भगवान् मुस्कुराकर हमारे चित्त को ही चुरा रहे हैं - ऐसी भावना करना चाहिये। आकाश में रंग-बिरंगे पक्षी उड़ रहे हैं, यही भगवान् की चित्रकला है, कारीगरी है। चा जितना बढ़िया-बढ़िया चित्र बना लो, पर दस-बीस साल में ही फीके पड़ जाते हैं। पर मोर के पंख पर क्य चित्रकारी भगवान् ने कर डाली कि सालों तक रखे रहो, रंग भी फीका पडने वाला नहीं है। **'वर्यांसि तद्व्याकरणम्'** विचित्र कृति है प्रभु की।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र - ये चारों वर्ण भगवान् के ही अंग हैं। परीक्षित! उस परमात्मा ने जगत् में जन्म दिया और जीव के भोजन का भी सारा प्रबन्ध किया, जीवनरक्षा का भी सारा प्रबन्ध किया। रहने के लिये पर्वतों में गुफायें बना दी, पीने के लिये पर्वतों में झरने गिरा दिये, भोजन के लिये पर्वतों के ऊपर ये सुंदर-सुंदर फलदार वृक्ष पैदा कर दिये। अब जीवन धारण के लिये बस इतना ही चाहिए - रोटी, कपड़ा और मकान। भोजन के लिये वृक्षों में फल दिये, पीने के लिये पर्वतों में पानी के झरने दिये तथा रहने के लिये पर्वतों में गुफायें दे दीं। अब पहाड़ों में रहो प्रेम से हरि का भजन करो। अब आवश्यकता बढ़ाते जाओगे, तो अविष्कार भी बढ़ते जायेंगे। और प्रकृति से ज्यादा छेड़छाड़ करोगे, तो प्रकृति भी कोप करके आपको कष्ट प्रदान करने लगेगी। संत को चाहिये कि भगवान् के दिये हुए उस उपहार में प्रसन्न रहे। बर्तन लेकर चलने की जरुरत नहीं। कर (हाथ) को ही पात्र बनाकर (करपात्री) बनकर भोजन करो। धर्मसम्राट् प्रातःस्मरणीय यतिचक्रचूडामणि स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज का नाम ही इसलिये पड़ा क्योंकि वे अपने हाथ में ही प्रसाद पाते थे, कोई पात्र नहीं रखते थे। वैसे उनका नाम तो स्वामी श्रीहरिहरानन्दसरस्वती था, परन्तु कर (हाथ) को ही पात्र बनाकर पाते-पाते नाम ही उनका स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज हो गया।

सत्यां क्षितौ किं कशिपोः प्रयासैः

अरे! संतो का तो सारी धरती ही बिछौना है। और ये लम्बी-लम्बी भुजायें हैं, ये ही महात्माओं के तकिये बन जाती हैं। भुजा मोड़कर सिर के नीचे लगा लिया और बन गया तकिया। हाथ ही उनके पात्र हैं। कपड़ों की

1. विष्णुपुराण (4/4/75-82) में, भागवत (9/9/41-43) में तथा ब्रह्मपुराण (8/74-75) में राजा खट्वांग का चरित्र प्रदर्शित है। इक्ष्वाकुवंशीय राजा विश्वसह के पुत्र खट्वांग बहुत ही प्रतापी राजा थे। देवासुर-संग्राम में देवताओं के अनुरोध पर इन्होंनें दैत्यों का विनाश किया था। इनके इस कार्य से प्रसन्न होकर देवताओं ने इन्हें वर माँगने को कहा। राजा ने वरदान में अपनी आयु देवताओं से पूछी। तब देवताओं ने कहा कि तुम्हारी आयु केवल एक मुहूर्त ही शेष रह गयी है। तब देवताओं के द्वारा प्रदत्त एक दिव्य रथ पर बैठकर खट्वांग मर्त्यलोक में आये और सर्वभावेन अपना चित्त उन्होंनें अपना चित्त भगवान् में लगा लिया तथा अन्त में वे भगवान् में ही लीन हो गये। महर्षि पराशर ने विष्णुपुराण में एक बहुत दिव्य श्लोक कहा है :

खट्वांगेन समो नान्यः कश्चिदुर्व्यां भविष्यति ॥ येन स्वर्गादिहागम्य मुहूर्त्तं प्राप्य जीवितम् ।

आवश्यकता पड़े तो वृक्षों की जो छाल है, वह ही उनके कपड़े बन जाते हैं। वृक्षों ने अभी भोजन देना बंद नहीं किया।

एक महात्मा जंगल में बैठे-बैठे सोच रहे थे-चलो! आज हलवा खायें। अब जंगल में बाबा को हलवा कहाँ से आवे? इतने में पका हुआ केला मिल गया और केला छीलकर जैसे-ही महात्मा ने पाया, सो खुश होकर बोले, वाह सरकार! क्या गजब का हलवा पैकिंग करके भेज दिया। पैक करके ठाकुरजी ने हलवा बनाकर ही प्रकृति द्वारा संतों को दिया है। अब पैकिंग खोलो, हलवा निकालकर पा लो। कैसे अद्भुत रस अनार के भीतर भर दिये, आम के भीतर भर दिये। ये सब परमात्मा का दिया हुआ भोजन है, प्रेम से पाओ, स्वस्थ रहो तथा हरि का भजन करो। जो परमात्मा के आश्रित रहते हैं, उनके लिये सारा प्रबन्ध परमात्मा ने किया है।

माँ के पेट में थे, तब कौन खिलाता था? उस समय भोजन किसने दिया? ठाकुरजी ने ही तो प्रबन्ध किया। माँ के गर्भ में बालक आप्यायनी नाम की नाड़ी से सारा रस ग्रहण करता रहता है। बालक को कोई कष्ट न हो, तो वहाँ पर भी उसे सुरक्षा के कवच में व्यवस्थित कर दिया। अब बालक जगत् में आने में समर्थ हो गया, तो प्रसूति वायु के प्रबन्ध के द्वारा तुरन्त माँ के गर्भ से बाहर निकाल दिया। ये भी तो प्रबन्ध उसी का है। समय पर ही प्रसूति वायु आकर उसे गर्भ से बहिर्भूत करती है। अब जगत् में अभी-अभी आया है, जगत् की वस्तुओं को खाने में अभी समर्थ नहीं है तो कैसे भरण-पोषण होगा? भगवान् ने तुरन्त माँ के स्तनों में दूध का संचार कर दिया। लोग कहते हैं, क्षीर सागर एक कपोल-कल्पना है। दूध के भी कहीं समुद्र हुआ करते हैं? अरे भैया! प्रभु के पास यदि क्षीर-सागर न हो, तो लाखों जीव जन्म ले रहे हैं उनके दूध की सप्लाई कहाँ से होती? चौरासी लाख यौनियां हैं, किसी का भी बच्चा हो। पर जिसने भी जन्म लिया, भगवान् ने अपने क्षीरसागर से माँ के स्तनों में दूध का कनेक्शन फिट कर दिया और बालक को दुग्धपान होने लगा। बालक के निमित्त ही वह दुग्ध है। डॉक्टर भी कहने लगे हैं, माँ का दूध पिलाओ, बच्चा स्वस्थ्य रहेगा। क्योंकि ठाकुरजी दे ही उसके लिये रहे हैं।

माँ के दुग्ध का पान करने के लिये बच्चे को दातों की आवश्यकता नहीं पड़ती, इसलिये भगवान् ने दाँत दिये ही नहीं। परन्तु अब कुछ खाने-पीने की इच्छा बालक में जागी, कुछ सामर्थ्य भी शरीर में आने लगी तो दातों की आवश्यकता पडने लगी। तो भगवान् ने छोटे-छोटे से दाँत भी दे दिये, दूध के दाँत। अब देना प्रारम्भ किया क्योंकि अब आवश्यकता पड़ने लगी। और जहाँ इधर-उधर की वस्तुओं को बालक पाने लगा तो भगवान् को लगा कि अब दूध की आवश्यकता नहीं रही, तो कनेक्शन काट दिया। अब दूध नहीं मिलेगा, खाओ।

बाहर की वस्तुओं का सेवन करते-करते बालक बड़ा होने लगा, स्वस्थ होने लगा, धीरे-धीरे नवयुवक बन गया। अब तो बड़े-बड़े चनों को भी चबाकर खा जाता है, जठराग्नि भी प्रबल हो गयी। सो ही भगवान् कहते हैं, अब दूध वाले दातों से काम नहीं चलेगा, अब तो मजबूत वाले दाँत रखो। सो दूध के दाँत वापिस लेनें लगे और दूसरे मजबूत दाँत देने लगे। अब इनसे चाहे जितना चबाओ, चाहे जो कुछ चबा जाओ। युवावस्था में स्वस्थ दाँत दे दिये। परन्तु जहाँ जवानी ढलने लगी, बुढ़ापा आने लगा, मन्दाग्नि पेट में पड़ने लगी अब खट्टी डकारें आने

1. **'पुरुष एवेदं यद्भूतं यच्चभाव्यम्'** (यजुर्वेद 31/2) अर्थात् जो सृष्टि बन चुकी है और जो बनने वाली है - यह सब उस विराट् पुरुष ही है। भाष्यकार शंकराचार्य महाभाग ने कहा है कि **'पुरुष एवेदं सर्वं यदन्नातिरोहति यदिदं दृश्यते वर्तमानं यद्भूतं यच्च भव्यं भविष्यत्'** (श्वेताश्वतरोपनिषद्-शांकरभाष्य 3/15)

लगीं, कुछ हजम ही नहीं होता। तो भगवान् कहते हैं, अब दाँत वापिस करो, फिर बन जाओ बेदान्ती। अब दाँत छोड़े और एकान्त में बैठकर फलाहार करके, फिर हरि का भजन करो तथा जीवन के लक्ष्य को समझो। फलाहार करोगे तो स्वस्थ रहोगे। उल्टा सीधा खाओगे तो फिर बीमार पड़ोगे। इसलिये दाँत ही वापिस ले लिये। ये सारी अद्भुत व्यवस्था कौन कर रहा है? ये सब संचालन किसके द्वारा हो रहा है? अरे भाई! जब चित्र दिखाई पड़ता है, तो चित्र देखते ही चित्रकार का स्मरण स्वाभाविक होता है। जब कोई सुन्दर मूर्ति दिखाई पड़ती है, तो मूर्तिकार का ध्यान आ ही जाता है। कृति को देखकर कर्ता का स्मरण हो ही जाता है। कोई कृति अपने आप नहीं बनती, उस कृति का कोई-न-कोई कर्ता होता है। तो जगत् है परमात्मा की कृति। इस जगत् को देखकर उस कर्ता का भी तो स्मरण करना चाहिये। फूलों में कितने सुन्दर-सुन्दर रंग भर दिये, जीवों के भरण-पोषण का कितना सुंदर-सुंदर प्रबन्ध कर दिया इन सबका प्रबन्धक कौन है? सूर्य-चन्द्रमा का ये संतुलन कौन बना रहा है? वह भगवान् सूर्य थोड़ा नीचे खिसक आवें तो धरती भस्म हो जाये। और तनिक ऊपर खिसककर चले जायें, तो इस धरती पर बर्फ बन जाये। ये संतुलन किसने बना रखा है? ये असंख्य तारे आपस में घूम रहे हैं? ये सब प्रबन्ध करने वाला कोई तो प्रबन्धक है? इस जगत् को देखकर उन जगदीश्वर का जो सबके प्रबन्धक हैं, उनका ध्यान करना चाहिये स्मरण करना चाहिये।

बड़ा ही सुन्दर श्रीशुकदेवजी महाराज ने भगवान् के स्थूलरूप में ध्यान की विधि बतलाई। तदुपरान्त सद्योमुक्ति व क्रममुक्ति का मार्ग बतलाया। जो ब्रह्मलोक के सुखों का भोग करना चाहते हैं, वह अपने सूक्ष्मशरीर को लेकर ही ऊर्ध्वगति से ऊर्ध्वलोकों का गमन करते हैं। और जो केवल उस परमतत्त्व को ही पाना चाहते हैं, वह इस स्थूलशरीर और सूक्ष्मशरीर - दोनों का त्याग करके अपनी विशुद्ध आत्मा को परमात्मा में विलीन करते हैं। किस कामना से किस देवता का यजन-पूजन करना चाहिये, वह सब शुकदेव भगवान् ने बतलाया। अन्न की कामना है, तो अदिति माँ की उपासना करो। रूप की कामना है, तो गंधर्वो की उपासना करो। विद्या की कामना है, तो भोलेनाथ की उपासना करो। दाम्पत्य जीवन सुखमय चाहते हो, तो माता भवानी की उपासना करो। इसके विपरीत, यदि कुछ न चाहते हो, तो भगवान् नारायण की उपासना करो।

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः ।
तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम् ॥ (भा. 2/3/10)

निष्काम हो या सकाम - मानवमात्र को परमात्मा प्रभु श्रीनारायण की उपासना तो करनी ही चाहिये। क्योंकि मनुष्य शरीर ही उपासना के लिये मिला है। जो मानव तन पाकर भी प्रभु की आराधना उपासना नहीं करता, वह मानव पशुतुल्य है।

श्वविड्वराहोष्ट्रखरैः संस्तुतः पुरुषः पशुः

पहली उपमा है कुत्ता। जो संसार के विषयों में ही रमे रहते हैं और छोटी-छोटी बातों पर आपस में कलह करते रहते हैं, झगड़ते रहते हैं, एक-दूसरे पर गाली-गलौज करते हैं। कुत्ता भी यही सब कुछ करता है।

बिटबराह (ग्रामीण सूकर) दूसरी उपमा है। इसका लक्ष्य ही बन गया है, उलटा-सीधा जैसा जहाँ से भी मिले हड़प लो। न जाने-कितना बड़ा पेट हो गया, ये तृष्णा शान्त होती ही नहीं। तृष्णा की आग उत्तरोत्तर प्रबल होती चली जा रही है। सबसे बड़ा दरिद्री तो वही है, जिसकी तृष्णाएें बड़ी हों।

स तु भवतु दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला

क्या उचित है, क्या अनुचित है, सबको ताक पर रखकर जैसा भी मिले, ग्रहण कर लो। पहले लोग दूषित

धन से डरते थे, बेईमानी का पैसा है, बुद्धि खराब हो जायेगी, सन्तान दूषित हो जायेगी। हमें नहीं चाहिये भैया! जिसे चाहो बाँट दो। लोग डरते थे और आज आँख मूंदकर पीछे पड़े हैं। और कुछ लोगों का तो काम ही यही है कि कहाँ मिलेगा? कैसे मिलेगा? कई लोग तो जिंदगी बर्बाद कर देते हैं, खोदने-खोदने में। बिटबराह के समान है, जो ऊटपटांग कुछ भी ग्रहण किये चले जा रहे हैं।

तीसरी उपमा है ऊँट। थोड़ा पद मिल गया, धन मिल गया, वैभव मिल गया, विद्या मिल गई, तो '**गर्वेण तुंगशिरः**' अहंकार में मुँह उठाकर चलने लगता है। संत-महापुरुषों को प्रणाम करने में भी शर्म आने लगती है। हम इतने बड़े आदमी हैं, इन बाबा को प्रणाम करें? ऐसे देहाभिमानियों को देखकर ऊँट कहता है कि भाई! चाल तो हमारे ही जैसी है। जैसे हम लोग मुँह उठाकर चलते हैं, ऐसे ही देखो! बिल्कुल हमारी ही तरह चला आ रहा है।

और चौथी उपमा है गधा। जो जीवनपर्यन्त अपने घर-गृहस्थी का ही बोझा ढोने में लगे हुए हैं, जर्जरित काया हो गई, घर में कोई पूछने वाला नहीं, बात करने वाला नहीं, खटिया पकड़े लेटे हैं और फिर भी कहो कि बाबा! भजन करो! जवाब मिलता है, महाराज! नातिन की शादी और निपट जाती, फिर भजन ही करना था। बस उसी का टेंशन रहता है। लो! घर वाले सोच रहे हैं कि ये कब पधारें? तब बिटिया की शादी करें, भरोसा नहीं बीच शादी में ही चले जायें? ये पधार जावेंगे, तभी बेटी का विवाह रचायेंगे! और वह कह रहा है, जबतक नातिन का विवाह नहीं देख लूंगा, मैं जाने वाला नहीं - ये विडम्बना है महाराज! अभी भी चिन्ता का बोझा सिर पर लादे पड़ा है। शरीर चल नहीं रहा, फिर भी चिन्ता का बोझा लाद रहा है। गधा कहता है, मैंने भी बहुत भार ढोया। जबतक शरीर में शक्ति थी, मालिक के लिये बहुत मजदूरी की। ईंटें ढोई, गिट्टी ढोई, पर कभी धन्यवाद हमें नहीं मिला। जब भी देता था, तो दो डंडे ही देता था। आज तक किसी गधे को पारिश्रमिक नहीं मिला, कोई पुरस्कार नहीं मिला कि ये बड़ा परिश्रमी है, बड़ा मेहनती है। और जब उसी शरीर में बल नहीं रह जाता, तो उसी गधे को डंडा मारकर मालिक निकाल देता है। वही हालत संसारियों की भी होती है। जबतक नोट हैं, शरीर में थोड़ा बल है, कमाने की सामर्थ्य है, खूब बादाम के हलवा खिलाये जाते हैं, पिताजी! कोई सेवा का मौका दीजिये। घर में किसी प्रकार की चिन्ता न कीजिये। प्रेम से रहिये। और जब देख लिया कि पिताजी के पास नोट-पानी सब खत्म हो गया, कुछ नहीं बचा। तो, वाह! जब हम चार भैया हैं, तो हम ही इन्हें क्यों पालें? हमने कोई ठेका ले रखा है? बँटवारा बराबर हुआ, पिताजी! जाइये वहां, नहीं तो जाइये! तीर्थयात्रा कीजिये। आँखों से देखने को मिलते हैं ऐसे दृश्य। उस समय गधा कहता है, जो हालत हमारी हुई, सो ही तुम्हारी हो रही है।

वह पुरुष पशु तुल्य ही तो है? उन पशुओं की तरह ही जीवन है। ये मानव देह जो परमदुर्लभ था, उसे पशुओं की तरह खाने-पीने-सोने में ही बर्बाद कर दिया। अरे! जिसके नेत्र हरि का दर्शन करते हर्षाते नहीं, ऐसे नेत्र जिन्होंने प्रभु की छटा को कभी निहारा नहीं, मोर पंख के समान व्यर्थ हैं। जो कान हरि की कथा सुनते नहीं, सर्प की बाँबी के समान हैं। जो जिह्वा गोविन्द के गुणानुवाद गाती नहीं, वह दादुर (मेंढक) के समान है, व्यर्थ जीवनभर टर्राती रही। हमारे संत श्रीदरियाबजी महाराज कहते हैं -

राम नाम नहि हृदय धरा जैसा पसुआ वैंसा नरा।
पशुआ आवै पशुआ जावै, पशुआ रहे पशुआ खाय ।
नर पशुआ उद्यम करि खाय, पशुआ तो जंगल चरि आये।

राम नाम जाना नहि माई, जनम गया पशुआ की नांई।
राम नाम से नाहि प्रीतिः यही सबै पशुअन की रीति ॥
बिले बतोरुक्रमविक्रमान् ये न शृण्वतः कर्णपुटे नरस्य ।
जिह्वासती दार्दुरिकेव सूत न चोपगायत्युरुगायगाथाः ॥ (भा. 2/3/20)

बड़ा सुन्दर वर्णन किया। अन्त में परीक्षित ने पूछ दिया, गुरुदेव! कृपा करके ये बताइये कि भगवान् इस विचित्र संसार की रचना कैसे करते हैं? तब शुकदेवजी को ध्यान आया कि हमने कथा तो प्रारम्भ कर दी, पर मंगलाचरण तो अभी किया ही नहीं। तो अब शुकदेवजी प्रभु का ध्यान करके मंगलाचरण कर रहे हैं। अब बताओ! इतनी कथा कहने के बाद अब मंगलाचरण हो रहा है। परमहंस ठहरे! दूसरा कारण एक और है कि पहले प्रश्न किया था परीक्षित ने कि मानव को क्या करना चाहिए? मरणधर्मा प्राणी का कर्त्तव्य क्या है? तो बताने लगे। परन्तु अब प्रश्न कर रहे हैं कि भगवान् जगत् की रचना कैसे करते हैं? तो भगवान् के स्वरूप का वैभव का वर्णन उनकी कृपा के बिना कर पाना सम्भव नहीं। इसलिये शुकदेवजी अब प्रभु का ध्यान कर रहे हैं।

नमः परस्मै पुरुषाय भूयसे सदुद्भवस्थाननिरोधलीलया ।
गृहीतशक्तित्रितयाय देहिनामन्तर्भवायानुपलक्ष्यवर्त्मने ॥
यत्कीर्तनं यत्स्मरणं यदीक्षणं यद्वन्दनं यच्छ्रवणं यदर्हणम् ।
लोकस्य सद्यो विधुनोति कल्मषं तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ॥ (भा. 2/4/1 व 15)

बड़ा सुन्दर प्रभु का ध्यान करते हुए शुकदेवजी कहते हैं कि जिन प्रभु का कीर्तन, स्मरण, दर्शन, वन्दन, श्रवण, अर्चन करने मात्र से जीव के समस्त पाप-ताप-संताप शीघ्र ही समाप्त हो जाते हैं, ऐसे प्रभु के श्रीचरणों में मेरा बारम्बार प्रणाम है। कोई कितना भी बड़ा तपस्वी हो, मनस्वी हो, दानी हो, मन्त्रवेत्ता-ऋषि होय पर जबतक भगवान् की शरणागति ग्रहण नहीं करेगा, तबतक उसका कल्याण किसी काल में सम्भव नहीं है।

तपस्विनो दानपरा यशस्विनो मनस्विनो मन्त्रविदः सुमंगलाः ।
क्षेमं न विन्दन्ति विना यदर्पणं तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ॥ (भा. 2/4/17)

जीव का कल्याण तबतक नहीं हो सकता, जबतक भगवान् का आश्रय ग्रहण न करे। चाहे वह कितना भी बड़ा तपस्वी बन जाये। दूसरी ओर, चाहे कितना कोई पापी हो, बड़े-से-बड़ा पाप-परायण प्राणी भी हो, प्रभु के चरणों का आश्रय ले ले, तो परमपावन-विशुद्ध हो जाता है।

किरातहूणान्ध्रपुलिन्दपुल्कसा आभीरकङ्कयवनाः खसादयः ।
येऽन्ये च पापा यदुपाश्रयाश्रयाः शुध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः ॥ (भा. 2/4/18)

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्

भगवान् की बड़ी सुन्दर महिमा का ध्यान करके अब शुकदेवजी कहते हैं, परीक्षित! ध्यान से सुनो। यही प्रश्न एक बार देवर्षि नारदजी ने अपने पिता ब्रह्माजी से भी किया था। ब्रह्माजी को ध्यान लगाये एक दिन नारदजी ने देखा, तो पूछ दिया कि पिताजी! सारा संसार तो आप बनाते हो, फिर आँख बंद करके ये ध्यान किसका लगाते हो? क्या आपसे भी ऊपर कोई है? तब ब्रह्माजी हंसते हुए बोले, बेटा नारद! मेरे ऊपर भी कोई है। पुनः नारदजी के यह पूछने पर कि आपके ऊपर कौन है, तब ब्रह्माजी ने सृष्टि-प्रक्रिया विस्तारपूर्वक अपने पुत्र नारदजी को सुनाई।

प्रकृति और पुरुष की साम्यावस्था में लय हो जाता है। साम्यावस्था में ही सृजन होता है। प्रकृति और पुरुष पृथक्-पृथक् हुये। प्रकृति का दर्शन जब पुरुष ने किया, तो पुरुष के दर्शन करते ही प्रकृति में हलचल उत्पन्न हो गई, क्षोभ उत्पन्न हुआ। उससे सर्वप्रथम महत्तत्व की उत्पत्ति हुई। महत्तत्व के द्वारा त्रिविध अहंकार - सत्त्व, रज तथा तम की उत्पत्ति हुई। तमोगुण के द्वारा पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, आदि पंचमहाभूतों की उत्पत्ति हुई। और इसी के द्वारा पंचतन्मात्रायें - शब्द, स्पर्श, रूप, रस व गंध - ये सब तमोगुण के द्वारा उत्पन्न हुये। रजोगुण के द्वारा इन्द्रियों की रचना हुई। और सत्वगुण के द्वारा इन्द्रियों के अधिष्ठात्री देवों की उत्पत्ति हुई।

भगवान् श्रीमन्नारायण प्रभु के नाभिकमल से ब्रह्माजी का जन्म हुआ। ब्रह्माजी कमल से प्रकट हो गये। अब सोचने लगे, हम कौन हैं? चारों तरफ देखना चाहते थे, तो चारों दिशाओं में ब्रह्माजी के चार मुख प्रकट हो गये। पर चारों ओर ब्रह्माजी को जल और वायु के अतिरिक्त कुछ भी दिखाई नहीं पड़ा। पुनः विचार किया कि जिस कमल पर बैठे हैं, उसका तो कोई न कोई आधार मिलेगा। तो भीतर घुसकर खूब ढूँढ़ा, पर कोई आधार नहीं मिला तो वापिस आ गये। विचार करने लगे कोऽहम (मैं कौन हूँ?)। तो दो शब्द इनके कान में टकराये, **'स्पर्शेषु यत्षोडशमेकविंशम्'** स्पर्श वर्णों में जो सोलहवां 'त' और इक्कीसवां अक्षर 'प' ब्रह्माजी के कान में तप शब्द सुनाई पड़ा। तब ब्रह्माजी तपस्या में संलग्न हो गये। घोर तप किया ब्रह्माजी ने तो उस दिव्य तपस्या से प्रभु ने उनके हृदय में अपनी वाणी को प्रकट किया। उसी दिव्यवाणी को चतुश्लोकीभागवत कहते हैं।

ज्ञानं परमगुह्यं मे यद्विज्ञानसमन्वितम् ।
सरहस्यं तदङ्गं च गृहाण गदितं मया ॥ (भा. 2/9/30)

भगवान् कहते हैं, ब्रह्माजी! जरा ध्यान से सुनियेगा। मैं अपना अत्यन्त गोपनीय ज्ञान तुम्हें प्रदान कर रहा हूँ। कोरा ज्ञान नहीं है अपितु, अनुभवजन्य ज्ञान है।

अहमेवासमेवाग्रे नान्य् यत् सदसत् परम् ।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम् ॥ (भा. 2/9/32)

भगवान् कहते हैं, ब्रह्माजी! सृष्टि के पूर्व में केवल मैं ही था और निष्क्रिय था। मेरे अतिरिक्त कुछ भी नहीं था। न स्थूल था, न सूक्ष्म था एकमात्र मेरी ही सत्ता थी। मानो यहाँ ब्रह्माजी ने जिज्ञासा की, अच्छा? प्रभु! जब आप बिल्कुल अकेले थे और आपके अलावा अन्य कुछ भी नहीं था, तो फिर ये दुनिया आपने कैसे बना दी? जिससे दुनिया बनी, वह दुनिया का कुछ-न-कुछ आपके पास साधन तो होगा? बिना साधन के आपने अकेले ही इस दुनिया को कैसे बना दिया? आपके पास कुछ तो होगा? भगवान् बोले, नहीं कुछ भी नहीं था। इसलिये जो भी कुछ मैंने बनाया, वह बनने वाला मैं भी हूँ और बनाने वाला भी मैं ही हूँ। क्योंकि मैं अकेला था, मेरे पास न कोई साधन था, न कोई दूसरा बनाने वाला कर्मचारी था। इसलिये बनाया भी मैंने और बना भी मैं। निमित्त कारण भी मैं और उपादान कारण भी मैं।

भाई! कुंभकार के पास मिट्टी होगी, तभी तो वह घड़ा, सकोरा, आदि बनायेगा? ज्वैलर्स के पास जब सोना होगा, तभी तो कड़ा, कुण्डल, आदि आभूषण बनायेगा। अकेला तो वह कुछ नहीं बना सकता? पर भगवान् तो सर्वथा अकेले थे इसलिये बने भी वही और बनाये भी वही। जगत् में कई कार्य ऐसे भी देखे जाते हैं, जिनका निमित्तकारण और उपादानकारण एक ही होता है। वैसे तो अलग-अलग होते हैं। कुम्हार ने मिट्टी से घड़ा बनाया, तो घड़े का उपादान-कारण क्या हुआ? वह मिट्टी जिससे घड़ा बनाया गया। पर मिट्टी अपने आप तो

घड़ा नहीं बन गई? किसने बनाया? कुंभकार ने। तो कुंभकार हो गया निमित्त-कारण। बनाने वाला निमित्त-कारण और बनने वाला उपादान-कारण, तब कार्य सिद्ध होता है। ज्वेलर है निमित्त-कारण, सोना है उपादान-कारण। तब बनकर तैयार हुआ - आभूषण।

निमित्तकारण और उपादानकारण एक ही हो जिसका, ऐसा कोई प्रमाण? मोर का पंख या मकड़ी का जाला। मकड़ी का जो जाला है, उसका निमित्त कारण भी मकड़ी है और उपादान-कारण भी मकड़ी है। मकड़ी कोई बाजार से धागा खरीदकर तो लाती नहीं है जाला बनाने के लिये? वह जाल भी तो अपने द्वारा ही प्रकट करती है। तो धागा भी उसी ने प्रकट किया और उसकी रचना भी उसी ने की। अतः निमित्तकारण भी वही, उपादानकारण भी वही। उसी प्रकार मोर ने जो पंख तैयार किया, बनाने वाला भी वही, बनने वाला भी वही। तो जैसे मोर अपने पंख का अभिन्निमित्तोपादान कारण है, मकड़ी अपने जाले का अभिनिमित्तोपादान कारण है ऐसे-ही परमात्मा ही इस जगत् के **अभिन्ननिमित्तोपादानकारण** हैं। जगत् को बनाने वाले भी वही और जगत् के रूप में बनने वाले भी वही। ये सारा जगत् उसी का विलास है, वही जगत् के रूप में अभिव्यक्त है।

सीय राममय सब जग जानी । करउं प्रनाम जोरि जुग पानी ॥

अब जो तत्त्ववेत्ता महापुरुष हैं, वह घड़े-सकोरे, आदि जो मिट्टी के बने हुए हैं; उन सब में वह मिट्टी को ही देखते हैं। व्यवहार की दृष्टि से नाम भले ही अलग-अलग हो गये कि ये सकोरा है, ये कुल्हड़ है, ये मटका है, ये सुराही है, ये दीपक है। पर तत्त्वतः देखा जाये तो सब मिट्टी है। सब मिट्टी के ही विविध नाम-रूप हैं। ऐसे ही नाम-रूप तो अलग-अलग है, ये स्त्री है, ये पुरुष है, ये कुत्ता है, ये बिल्ली है, ये चूहा है, ये शेर है। पर तत्त्वतः जो देखा जाये, तो सब परमात्मा का ही विलास है।

एक बार एक महात्मा एक गली से जा रहे थे, तो मकान में कुछ बच्चों की आपस में लड़ने की आवाज सुनाई पड़ी। बच्चे लड़ रहे थे, पर लड़ने की जब बातें सुनीं, तो बाबा के होश उड़ गये। बच्चे लड़ते हुए कह रहे थे कि देख! शेर मैं खाऊँगा, दूसरा बोला, तो ठीक है हाथी हम खा लेंगे। बाबा ने कहा, गजब के बालक हैं। शेर और हाथी को खाते हैं? कौतुकवश वह महात्मा ने भीतर घुसकर देखा तो, सचमुच बच्चे लड़ रहे थे, बात भी ठीक कह रहे थे। पर जो शेर और हाथी खाने की बात कर रहे थे, वह सब खाण्ड-शक्कर के थे। दीवाली का उत्सव था, बड़े सुंदर-सुंदर शक्कर खिलौने बनाये जाते हैं। तो उसमें कोई हाथी बना रखा था, कोई शेर बना रखा था, बच्चे सब उसी की खाने की बात कर रहे थे। अब चाहे हाथी खावें, चाहे शेर खावें खाना सबको शक्कर है। हाथी की सूंड़ तोड़कर खा लो, तो मुँह मीठा होना है पैर तोड़ के खा लो, तो मुँह मीठा होना है। है तो वह शक्कर, पर शक्कर ही अलग-अलग नाम रूप से देखने में आ रही है। उसी प्रकार जो तत्त्ववेत्ता महापुरुष होते हैं, वह तो सारे जगत् में उसी शक्कर रूपी परमात्मा का दर्शन करते हैं। सब उसी के विविध नाम-रूप हैं।

भगवान् कहते हैं, सुनो ब्रह्माजी! ये तो रहा मेरा स्वरूप। अब मेरी माया, जो तुम्हारा कार्य सिद्ध करेगी, उसके बारे में भी जान लो।

ऋतेऽर्थं यत् प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि ।
तद्विद्यादात्मनो मायां यथाऽऽभासो यथा तमः ॥ (भा. 2/9/33)

जो नहीं है, वही माया है। माया का काम क्या है? जो नहीं है, उसे दिखा देती है और जो है, उसे छुपा देती

है। जैसे परमात्मा सत्य है, शाश्वत है, नित्य है, अविनाशी है परन्तु हमें दिखाई नहीं पड़ रहे, उनका पता ठिकाना ही नजर नहीं आता कि कहाँ हैं। हमारे शास्त्र बार-बार कह रहे हैं, **'ईशावास्यमिदं सर्वम्'**, **'वासुदेवः सर्वमिति'**, **'सर्वंऽखिल्विदं ब्रह्म'**, **'सर्वं विष्णुमयं जगत्'**, **'हरि ब्यापक सर्वत्र समाना'** - परन्तु हमें फिर भी नजर नहीं आ रहा।

अलक्ष्यं सर्वभूतानां अन्तर्बहिर अवस्थितम्

सब जगह रहने पर भी दिखाई नहीं पड़ रहा, ये ही माया का चमत्कार है। और जो जगत् अशाश्वत है, अनित्य है, विनाशी है, वह हमें आखों से प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है और उसी में हम चिपके बैठे हैं। स्वप्न के लोगों की तरह उन्हीं से जीवन की बागडोर बाँधे बैठे हैं। तो जो नहीं है, वह हमें प्रत्यक्ष दिख रहा है और जो है, उसका दर्शन नहीं हो रहा यही माया का चमत्कार है, यही माया का खेल है।

अरे भाई! विशुद्ध सोने के बहुत बढ़िया गहने नहीं बनते। बढ़िया गहने बनाने के लिये अलंकार बनाने के लिये थोड़ा टांका तो लगाना पड़ता है, कुछ-न-कुछ मिलावट तो करनी ही पड़ती है तभी गहना बढ़िया बनता है। उसी प्रकार यदि माया की मिलावट जीव में न हो, तो सभी जीव शुद्ध-बुद्ध-मुक्त हो जायें। माया के द्वारा ही तो जीव को अज्ञान से ग्रसित करके ही ये संसार चल रहा है। माया न होवे तो संसार ही ठप्प हो जावे। शुद्ध सोना बढ़िया तो होता है, पर उसके गहने नहीं बनते। बिस्किट बना लिया, बढ़िया है, शुद्ध है कोई मिलावट नहीं, अब रखे रहो। पर गहने बनाने के लिये तो टांका मारना पड़ेगा। उसी प्रकार बिना दोष उत्पन्न हुए जीव का जन्म-मरण सम्भव नहीं।

जड़ चेतन गुण दोष मय बिस्व कीन्ह करतार

मिलावट हुई, कुछ दोष आया तभी जन्म-मरण हुआ। नहीं तो, सभी शुद्ध हो गये, तो सभी मुक्त हो जायेंगे। फिर ठाकुरजी का संसार कैसे चलेगा? इसलिये ये माया भी बहुत काम की चीज है, जो भगवान् के इस सारे जगत् को बना रही है।

इस प्रकार से बड़ा सुन्दर उपदेश दिया, इस भागवत में दस लक्षणों का निरूपण किया। सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, ऊति, मन्वन्तर-कथा, ईशानुकथा, निरोध, मुक्ति और आश्रय। प्रथम और द्वितीयस्कन्ध में तो श्रोता और वक्ता के अधिकार का निरूपण किया गया हैं। तृतीयस्कन्ध में सर्ग का वर्णन किया गया है। चतुर्थस्कन्ध में विसर्ग का, पंचमस्कन्ध में स्थान का, षष्ठस्कन्ध में पोषण का वर्णन है।

शंका - भगवान् का अनुग्रह कैसे-कैसे जीवों पर हो जाता है? जीव कर्म करे, कर्म का फल भोगता रहे तो फिर भगवान् की क्या आवश्यकता रही? फिर भगवान् की क्या जरुरत? **समाधान** - नहीं-नहीं! परमात्मा का शासन राष्ट्रपति शासन है। यदि आपने किसी की हत्या कर दी, तो कानून तो आपको फांसी की सजा सुना देगा। पर राष्ट्रपति का ये स्वतन्त्र अधिकार है कि वह आपको फांसी से बचा सकता है, ये उसकी कृपा पर निर्भर है। ऐसे-ही परमात्मा की कृपा स्वतन्त्र होती है, उस पर कोई नियम लागू नहीं होता। वह घुणाक्षरन्याय से कब हो जाये? किस पर हो जाये? कैसे हो जाये? उस पर कोई नियम कानून नहीं चलता। पूजा करने वाले को भगवान् जल्दी मिलते हैं, कोई जरुरी नहीं।

किशोरीजी सखियों के साथ पूजा करने पुष्प वाटिका ही गई थीं। पर **'एक सखी सिय संगु बिहाई'** (रामचरितमानस 1/228/4) वह पूजा-पाठ छोड़कर घूमने के लिये बगीचा में निकल पड़ी। तो जो घूमने

निकली थी, उसी को परमात्मा सबसे पहले मिले। और उसी की कृपा से अन्य सखियों को मिले। तो अब आप यह कानून नहीं लगा सकते कि पूजा न करने से ही भगवान् मिलते हैं, ये कोई नियम नहीं हो गया। भगवान् की कृपा कैसे हो जाये? घर में रहने वालों को न मिलें और घर में रहने वालों को पहले मिल जायें और वन में घूमते-घूमते वर्षों बीत गये नहीं मिले। विश्वामित्रजी ने घर त्यागा और वन में खूब भटके, तपस्यायें कीं, दूसरे ब्रह्मा बनने की सामर्थ्य तक इनमें आ गया तपस्या करते-करते। और दशरथजी महाराज घर में ही रहे और रामजी घर में ही आ गये। तब विश्वामित्र बाबा ने जो घर त्याग रखा था, उसी घर में वापिस आकर विश्वामित्रजी को रामजी का दर्शन मिला। तो घर में मिलेंगे कि वन में मिलेंगे, पूजा करने से मिलेंगे कि बिना पूजा किये ही मिल जायेंगे कृपा के ऊपर कोई नियम नहीं है। कृपा तो कब हो जाये? किस पर हो जाये? कैसे हो जाये?

न जाने कौन से गुण पर दयानिधि रीझ जाते हैं

इस पर '**इदमित्थं**' कहकर कोई नहीं बता सकता कि ऐसा करोगे, तो मिलेगा ऐसा करने से ही मिलेगा, ये कोई नहीं कह सकता। घुणाक्षरन्याय आप जानते हैं, लकड़ी में घुन लग जाता है। तो कभी घर बन जाता है, कभी स्वस्तिक बन जाता है। अब किसी लकड़ी में आपने घुन के द्वारा घर बना देख लिया और आपने सोचा कि चलो हम भी अपनी लकड़ी पर घुन के द्वारा घर बनवा लें। तो कई-सौ किलो लकडियां बर्बाद हो जायेंगी, फिर भी घर बनाने वाला नहीं है। वह तो बनना था, सो बन गया। अब कैसे बन गया? ये तो वह ही जाने। ऐसे ही भगवान् की कृपा कब हो जायेगी? कैसे हो जायेगी? ये तो वह ही जाने कृपा करने वाला।

तो संतों ने भगवद्-शरणागति ही एकमात्र उपाय बतलाया है। अब भगवान् को प्रसन्न कैसे किया जाये? कोई कहता है, शुद्ध-पवित्र आचार-विचार से रहो तो भगवान् बहुत जल्दी रीझ जाते हैं। पर भगवान् की कृपा तो बहेलिया के ऊपर भी हुई, जिसका आचरण कहीं से भी ठीक नहीं। कुछ लोग कहते हैं, भाई! हम तो अभी बच्चे हैं, ये काम बुड्ढों का है। बूढ़े बुजुर्ग लोग बैठे-बैठे भजन करते हैं, बुड्ढों पर भगवान् की कृपा होती है। तो ध्रुवजी महाराज को तो पाँच वर्ष की अवस्था में ही मिल गये थे, अतः अवस्था का भी कोई प्रतिबंध नहीं है। कुछ लोग कहते हैं कि हम तो पढ़े लिखे बिल्कुल नहीं हैं, भगवान् के बारे में तो विद्वान् लोग जानते हैं उन्हीं को वह मिलते हैं। ऐसी बात भी नहीं है, एक गजेन्द्र ने गोविन्द को प्रीतिपूर्वक एक पुष्प प्रदान कर दिया, उसी पर दौड़े चले आये। अब भला! गजराज कौन-से विश्वविद्यालय में पढ़कर आया होगा? कुछ लोग कहते हैं कि भगवान् तो ऊँची जाति वालों को, ब्राह्मणों को, वेदज्ञों को ही मिलते हैं। विदुरजी महाराज तो दासी पुत्र थे, शबरी तो भीलनी थी उन्हें कैसे मिल गये? कुछ लोग कहते हैं कि भगवान् तो पहलवानों को मिलते हैं, बहुत शक्तिशाली होना चाहिये। पर उग्रसेन महाराज तो बड़े निर्बल थे। बेटा ने ही पकड़ के बंदी बना रखा था। भगवान् उग्रसेन को ही राजा बनाकर उनके सेवक बन गये, उनके सलाहकार बन गये। कुछ लोग कहते हैं, भगवान् तो धनवानों को जल्दी मिलते हैं, फिर सुदामा-जैसे निर्धन को कैसे मिल गये? कोई कहता है कि भगवान् सुंदरता पर रीझते होंगे तो फिर कुब्जा पर क्यों रीझ गये? तो फिर भगवान् रीझते किस बात पर हैं? भगवान् की कृपा स्वतन्त्र है, कब किस पर हो जाये, कोई पता नहीं।

भक्त्या तुष्यति केवलं न च गुणैर्भक्तिप्रियो माधवः

आपके अंदर भगवान् के प्रति प्रेम होना चाहिये, प्रेम ते प्रकट होहि मैं जाना प्रेम जहाँ है, जिसमें है, जैसा भी है भगवान् उसी पर रीझते हैं। दुर्योधन के यहाँ भगवान् के स्वागत में बहुव्यंजन थे, पर प्रेम नहीं था। भगवान् ने पाना तो दूर रहा, चखा भी नहीं। और विदुरजी के यहाँ प्रेम है, पर पदार्थ उतने नहीं है फिर भी भगवान् बिन

बुलाये दौड़े चले आये। भगवान् कहते हैं, भक्त का घर तो मेरा ही घर है और अपने घर में कोई निमंत्रण की प्रतीक्षा नहीं करता। कोई कहे, पिताजी! आपका न्यौता है, चलो भोजन कर लो। अरे! जब भूख लगे, तब आदेश देते हैं, भाई! थाली परोसो। ये अधिकार कहाँ होता है? जिसे हम अपना घर मानते हैं। जहाँ तनिक भी दूरी न मानें, अपना ही घर मानें, वहाँ तो सीधा आदेश देते हैं, भाई! भोजन परोसो। तो भगवान् ने विदुरजी के घर को अपना घर समझा, इसलिए सीधे ही चले आये। और दुर्योधन से कह दिया कि भाई! तुम हमारे समधी लगते हो, रिश्तेदारी अपने स्थान पर है, पर क्या नहीं मालूम! भोजन दो ही स्थिति में होते हैं - 1. या तो खिलाने वाले के हृदय में बहुत ज्यादा प्रेम होना चाहिये। अब कोई प्रेमी भोजन का दुराग्रह करे तो थोड़ा-बहुत पाना भी पड़ता है, भले ही भूख न हो। बहुत ज्यादा प्रेम हो तो भोजन पाना पड़ता है। अथवा 2. बहुत ज्यादा भूख हो, तो भोजन पाना पड़ता है। खिलाने वाले के हृदय में भले ही प्रेम न हो, पर हम तो भूख से मरे जा रहे हैं। इज्जत से मिले या बेइज्जती से मिले या कोई भी हेलीकाप्टर से भी टपकावे, तो उस समय हम छीनकर पा लेंगे क्योंकि परिस्थिति जब विषम आती हैं, कभी-कभी तो ऐसे भी पाना पड़ता है। तो भगवान् बोले, न तो मेरी ऐसी परिस्थिति है कि मैं भोजन के बिना रह न पाऊँ, मैं भूखा नहीं हूँ। और दुर्योधन! न तेरे मन में इतना प्रेम है कि मुझे पाना ही पड़े। इसलिये तेरे यहाँ भोजन का प्रश्न ही नहीं उठता।[1]

भगवान् कहते हैं, प्रेम का भूखा मैं हूँ और पदार्थ के भूखे संसारी हैं। दुनिया वाले आवें, चकाचक बढ़िया-बढ़िया माल खिला दो। खुश हो जायेंगे, गीत गाते रहेंगे - साहब! बड़ा स्वागत किया, उनके यहाँ जाकर क्या-क्या माल छाने, भाई ऐसा सम्मान कभी नहीं हुआ। तो संसार पदार्थ का भूखा है, खिला दो, गीत गाते रहेंगे। पर परमात्मा प्रेम के भूखे हैं।

प्रेम का भूखा हूँ मैं और प्रेम ही एक सार है ।
प्रेम से मुझको भजो तो भव से बेड़ा पार है ॥

पर हम लोग उल्टा करते हैं। प्रेम दुनिया वालों से करते हैं, जो जानते ही नहीं कि प्रेम होता क्या है। प्रेम करना तो दूर प्रेम का स्वरूप ही नहीं जानते कि प्रेम किसे कहते हैं। प्रेम की परिभाषा देवर्षि नारद करते हैं,

तत्सुखसुखित्वम्

जो अपने प्रियतम के, प्यारे के सुख में ही अपना सुख मान ले वह सच्चा प्रेमी है। प्रेम में कोई भी आवश्यकतायें नहीं, कोई किसी प्रकार की इच्छा-कामना नहीं,

गुणरहितं कामनारहितं प्रतिक्षणवर्धमानं अविच्छिन्नं सूक्ष्मतरं अनुभवरूपम्

ऐसा विशुद्ध प्रेम जगत् में कहाँ दिखता है? प्रीत की रीति रंगीलो ही जाने- ब्रजवासी कहते हैं कि प्रेम निभाना तो हमारे कन्हैया ही जानते हैं।

नीति प्रीति परमारथ स्वारथु ।
कोउ न राम सम जान जथारथु ॥ (मानस 2/254/3)

तो जो प्रेम निभाना जानता है, उससे प्रेम करो। पर हम लोग संसारियों से प्रेम करते हैं और पदार्थ भगवान् को दिखा देते हैं। एक कोई व्यक्ति बिहारीजी को कहता है, अबकी बार हमारी तरफ से भंडारा है दूसरा व्यक्ति कहता है, अबकी बार हमने भी छप्पन प्रकार का भोग लगाया है। तीसरा कहता है, हमारी बहू के बेटा हो गया, तो हम भी भोग लगवायेंगे। तो जैसे ठाकुरजी हमारे ही भोग के भूखे बैठे हों, पहले बेटा दें, तब भोग लगायेंगे। पदार्थ संसारियों को खिलाओ, प्रेम परमात्मा को प्रदान करो। हमने उल्टा कर दिया।

॥ तृतीयः स्कन्धः ॥

(सर्ग)

विदुर चरित्र :-

परीक्षितजी ने पूछा, महाराज! श्रीविदुरजी का चरित्र हमें सुनाइये। शुकदेवजी कहते हैं,

यदा तु राजा स्वसुतानसाधून् पुष्णन्नधर्मेण विनष्टदृष्टिः ।
भ्रातुर्यविष्ठस्य सुतान् विबन्धून् प्रवेश्य लाक्षाभवने ददाह ॥ (भा. 3/1/6)

जिस समय राजा धृतराष्ट्र बिल्कुल अंधे हो चुके थे, अंधे तो वह बचपन से ही थे, बाहर की आँखे तो पहले से ही फूटी हुई थीं। पर पुत्र के प्रेम में इतना मोह छा गया कि भीतर की आँखें भी बंद हो गईं,

ज्ञान विराग नयन उर गारी

अर्थात् ज्ञान-वैराग्य के जो दूसरे नेत्र हैं, वह भी आज नष्ट हो गये। राजा धृतराष्ट्र अधर्म का पोषण कर रहे हैं, अधर्म का आश्रय ले रहे हैं इसलिये उनके विवेक के नेत्र भी नष्ट हो गये। श्रीविदुरजी महाराज ने समझाने का प्रयास किया। विदुरजी महाराज धर्मावतार हैं, श्रीयुधिष्ठिरजी महाराज भी धर्मावतार हैं। कौरव पक्ष में विदुर के रूप में धर्म है, पाण्डव पक्ष में युधिष्ठिर के रूप में धर्म है - दोनों की ओर धर्म है। पर अन्तर क्या है? फिर पाण्डव विजयी क्यों हुए? और कौरवों का पराभव क्यों हुआ? क्योंकि कौरवों के पक्ष में जो धर्म है, उसकी विडम्बना यह है कि कौरव जैसा चाहते हैं, विदुरजी को वैसा करना पड़ेगा। विदुरजी धर्म का रास्ता दिखाते हैं, समझाते हैं पर न कोई मानने वाला है, न कोई चलने वाला है। दुर्योधन, आदि चाहते हैं कि विदुर हमारे अनुसार चलें न कि हम विदुर के अनुसार नहीं चलें। तो भैया! धर्म तब हमारी रक्षा करेगा, जब धर्म के अनुसार हम चलेंगे। '**धर्मो रक्षति रक्षितः**' धर्म की पहले आप रक्षा कीजिये, तब धर्म आपकी रक्षा करेगा।

माता जानकी पंचवटी में थीं और साधु वेष बनाकर रावण जब आया, भिक्षा मांगी, तो किशोरीजी ने सोचा, क्या किया जाये? मेरे देवरजी कहकर गये हैं कि ये निशाचरों की माया समझ में नहीं आती। माँ! यहाँ से बाहर मत निकलना, रेखा का उल्लंघन न करना। और ये साधू कह रहा है कि मैं बंधी भिक्षा नहीं लूंगा, रेखा से बाहर आकर मुझे भिक्षा दो। यदि मैंने भिक्षा नहीं दी तो मेरा धर्म नष्ट होगा कि गृहस्थ के घर से कोई भिक्षुक बिना कुछ लिये चला जाये। चलो! मुझे तो अपने धर्म की रक्षा करनी ही चाहिये। और रेखा का उल्लंघन करके जैसे ही भिक्षा दी, रावण तो हरण करके ले गया। किसी ने किशोरीजी से शंका की - आपने तो धर्म की रक्षा की, अब आपकी रक्षा कौन करेगा? किशोरीजी ने समाधान दिया - जिस धर्म की मैंने रक्षा की है, वही धर्म मेरी रक्षा करेगा। और उसी धर्म रक्षा के बल पर लंकेश्वर को भी किशोरीजी उसी के घर में बैठकर ललकार रही

1. महाभारत (5/89/२5) में भगवान् कहते हैं -
सम्प्रीतिभोज्यान्यन्नानि आपद्भोज्यानि वा पुनः । न च सम्प्रीयसे राजन्न चाप्यापद्गता वयम् ॥

हैं- ये है धर्म रक्षा का बल। जिस रावण के बल से सारा जगत् कांपता था, किशोरीजी उसे तिनका दिखा कर ललकार रही कि तेरी औकात मेरे सामने तिनके के समान है, क्योंकि मैंने अपने धर्म का पालन किया है।

पाण्डवपक्ष में महाराज युधिष्ठिर के रूप में जो धर्म है, धर्मराज जो कहते हैं पाण्डव आँख मूंदकर उसे मानते हैं। धर्मराज की आज्ञा का उल्लंघन करने वाला पाण्डवों में कोई नहीं। पर कौरवपक्ष में धर्म की बात कोई सुनने वाला नहीं, विदुरजी चिल्ला-चिल्लाकर परेशान हो गये। यही कारण था कि कौरव मारे गये और धर्म के आश्रित पाण्डवों की रक्षा हुई। '**यतो धर्मस्ततो जयः**' विदुरजी ने एक बार धृतराष्ट्र को बहुत समझाया, महाराज! ये जो आपका बेटा दुर्योधन है, जिसके मोह में आप इतने अंधे हो रहे हैं, ये मूर्तिमान् कलियुग है। और नीति कहती है कि भाई! हाथ में यदि कोई खतरनाक फोड़ा हो जाये, किसी भी प्रकार से ठीक होने वाला नहीं हो और डाक्टर साहब कहते हैं, हाथ कटवा दो तो बच जाओगे। तो बुद्धिमानी इसी में है कि सम्पूर्ण शरीर की रक्षा के लिये एक अंग को काट दो। कोई भी काटना नहीं चाहेगा, अपना हाथ। पर परिस्थिति आ जाये, तो काटना ही पड़ेगा। एक के त्यागने से अनेकों का हित हो, तो एक को निकाल देना चाहिये, त्याग देना चाहिये। दुर्योधन यदि आपकी आज्ञा का उल्लंघन करता है और इसके कारण महाभारत का समर पैदा होता है, तो निकाल दो इस दुर्योधन को। दुर्योधन ने सुना तो आग बबूला हो गया। और दरबार में ही आकर विदुरजी को बुरी तरह डाँटना-फटकारना प्रारम्भ कर दिया, ऐ दासीपुत्र! तेरी ये औकात? हमारे टुकड़ों पर पलने वाला आज हमें ही घर से निकलवा रहा है?

क एनमत्रोपजुहाव जिह्मं दास्याः सुतं यद्बलिनैव पुष्टः

हमारे टुकड़ा खाने वाला हमारे पिता को हमारे विरुद्ध भड़का रहा है। भगाओ इसे यहाँ से। विदुरजी समझ गये कि वाह! दुर्योधन इतना सब कह रहा है और धृतराष्ट्र महाराज चुपचाप मौन बैठे हैं? इसका मतलब इन्हें भी हमारे परामर्श की आवश्यकता नहीं है।

सचिव जब चाटुकार हो जाये, तो समझ लो कि अब राजा के पतन में विलम्ब नहीं है। डॉक्टर साहब मरीज की रुचि के अनुसार मीठी-मीठी बातें करने लगें तो समझ लो कि बीमारी मिटने वाली नहीं है। गुरुदेव चेला का रुख देखकर हाँ-में-हाँ मिलाने लग जायें तो समझ लो चेला का कभी कल्याण नहीं हो सकता। सचिव, वैद्य, और गुरु - तीनों को जिसमें हित दिखाई पड़े, वही कहना चाहिये। यदि वह मुँह देखी ठुकुर-सुहाती करने लगे, तो निश्चित रूप से तीनों का हित नहीं।[1] विदुरजी समझ गये कि हमारे परामर्श की आवश्यकता नहीं रह गई, अब हमें चलना चाहिये। तो,

दोहा- सचिव बैद गुरु तीन जो प्रिय बोलहिं भय आस।
राज धर्म तनु तीन करि होहिं बेगि ही नास।।

स्वयं धनुर्द्वारि निधाय मायां गतव्यथोऽयादुरु मानयानः ।
स निर्गतः कौरवपुण्यलब्धो गजाह्वयात्तीर्थपदः पदानि ॥ (भा. 3/1/16)

श्रीविदुरजी महाराज ने अपने धनुष-बाण सब देहरी पर दरवाजे पर रख दिये। अब धनुष-बाण क्यों दरवाज़े पर रख दिये? इसलिए रख दिये कि यदि ले के साथ में जाऊँगा, तो कहीं कौरव ये न समझ बैठें कि शायद शत्रुओं से मिलने जा रहे हैं। इसलिये धनुष-बाण दरवाजे पर रख कर कह दिया कि हम तो अब निष्पक्ष होकर जा रहे हैं। शुकदेव बाबा कहते हैं, राजन! ये केवल विदुरजी नहीं जा रहे हैं। '**निर्गतः कौरवपुण्यलब्धो**' मानो

आज कौरवों का समस्त पुण्य ही उन्हें छोड़कर जा रहा हो। जबतक निशाचरों में, राक्षसों में श्रीविभीषणजी लंका में रहे तबतक उन राक्षसों का हित रहा। और जैसे-ही श्रीविभीषणजी ने राक्षसों का परित्याग किया, श्रीगोस्वामीजी ने संकेत दिया कि

अस कहि चला विभीषनु जबहिं।
आयुहीन भए सब तबहिं ॥ (मानस 5/42/1)

विभीषण ने लंका को त्यागा कि निशाचर आयुहीन हो गये। विदुरजी ने कौरवों का परित्याग किया, तो आज कौरव भी पुण्यहीन हो गये। विदुरजी ने गृहत्याग किया और तीर्थयात्रा के लिये निकल पड़े। तीर्थाटन करते-करते बहुत समय बाद यमुना के तट पर जा रहे थे कि अचानक उद्धवजी से भेंट हो गई।

कालेन तावद्यमुनामुपेत्य तत्रोद्धवं भागवतं ददर्श 3/1/24

भगवान् के परमप्रिय महाभागवत सखा श्रीउद्धवजी से भेंट हुई, अरे! भैया उद्धव बताओ कैसे हो? अनेकानेक प्रश्न कर दिये, भैया! उस महाभारत का क्या हुआ? ये तो बताओ! मैं तो छोड़कर ही चला गया था। और द्वारिका में कौन-कौन हैं? कैसे हैं? हमारे प्यारे प्रभु तो आनन्द के साथ हैं न? जब सभी की कुशलता के अनेक प्रश्न कर डाले, तो उद्धवजी के नेत्र बंद हो गये। विदुरजी बोले, क्या हुआ भैया? भगवान् के प्रेम में उद्धवजी की तो समाधि लगी जा रही है। जैसे-तैसे विदुरजी ने उन्हें सावधान किया, तब उद्धवजी होश में आये।

शनकैर्भगवल्लोकान्नृलोकंपुनरागत:

भगवान् के ध्यान में उनके धाम को चले गये थे। लौटकर उद्धवजी पुन: अपने होश में आये और तब उद्धवजी ने पूरा समाचार विस्तार से विदुरजी को सुनाया, महाराज विदुर! आपको कुछ नहीं मालूम? अरे! महाभारत कब का सम्पन्न हो गया? पाण्डव विजयी हो गये और गोविन्द भी अपनी सम्पूर्ण लीला का संवरण करके परमधाम को प्रस्थान कर गये। धिक्कार है! जबतक प्रभु धराधाम पर रहे, कोई उनके स्वरूप को समझ नहीं पाया। और सबसे अधिक धिक्कार तो हम यदुवंशियों के लिये है, जिनके साथ इतने निकट रहे। परन्तु जैसे-मछलियों के बीच में चन्द्रमा रहे, तो चंद्रमा को भी ये मछलियां चमकीली मछली मानती रही। चन्द्रमा आज जब आकाश में चमका, तब अपने चंद्र से मिलने के लिये मछलियां उछलती हैं कि ये तो बड़ा महत्वपूर्ण है। हमारे बीच रहा हम उसकी महत्ता को ही नहीं समझ पायीं। समुद्र भी उमड़ता है, जब पूर्ण चन्द्रमा को देखता है, तो सागर में हिलोरें उठती हैं। आज उसका महत्व समझ में आ रहा है।

उद्धवजी कहते हैं, विदुरजी! जाते समय भगवान् ने हमें दिव्य ज्ञान प्रदान किया था और हमसे कहा था कि जब मैं हस्तिनापुर आया था, तो विदुर-विदुरानी ने कितना प्रीतिपूर्वक मेरा सम्मान-स्वागत किया था। पर आज तक मैं विदुरजी को कुछ नहीं दे पाया। इसलिये मेरा ये तत्त्वज्ञान जो तुम्हारे पास है, जब भी तुम्हारी विदुरजी से भेंट हो, तो ये ज्ञान उन्हें अवश्य प्रदान कर देना। इतना सुनते ही विदुरजी के नेत्र भर आये। गद्गद् होकर बोले कि, वाह! प्रभु हमारे घर में पवाने के लिये था ही क्या? सूखा बथुआ का साग खिला दिया, विदुरानी ने भावुकता में छिलके ही खिला दिये और भगवान् उसके ही ऋणियां बन गये? परन्तु विदुरजी का कण्ठ गद्गद् है। सारा जगत् जिसे याद करता है, वह जाते-जाते मुझ विदुर को याद करके गये।

विदुरजी उद्धवजी से बोले, जल्दी बताओ! मुझे मैत्रेय कहाँ मिलेंगे? मैं जानना चाहता हूँ, वह कौन-सा ज्ञान प्रभु ने दिया है? मैं मैत्रेयजी से श्रवण करूँगा। श्रीउद्धवजी बोले, तुम्हें हरिद्वार में गंगा के किनारे कहीं-न-कहीं

मैत्रेयजी से भेंट हो जायेगी। बस! इतना कहकर उद्धवजी तो बद्रीविशाल की ओर चले और विदुरजी सीधे हरिद्वार पहुँचे। हरिद्वार में गंगातट पर भ्रमण करते-करते मैत्रेय मुनि से भेंट हो गई। जो मैत्रेय मुनि ने विदुरजी को देखा, उठकर खड़े हो गये और कहा, आओ विदुरजी महाराज! मैं तो कब से तुम्हारी राह देख रहा हूँ, क्योंकि बड़ा भारी दायित्व प्रभु मेरे कंधों पर डाल गये हैं। विदुरजी तुरन्त आये, मैत्रेय मुनि से भेंट की और कहा कि भगवन्! मैं अब आप के सामने अपने कुछ प्रश्न रखना चाहता हूँ, मेरी जिज्ञासा का समाधान करें।

सुखाय कर्माणि करोति लोको न तैः सुखं वान्यदुपारमं वा ।
विन्देत भूयस्तत एव दुःखं यदत्र युक्तं भगवान् वदेन्नः ॥ (भा.मा. 2/5/3)

विदुरजी महाराज पूछते हैं, महाराज! कृपा करके ये बताइये कि संसार का प्रत्येक प्राणी सुखी होना चाहता है। ऐसा कोई नहीं जिसे सुख की लालसा न हो। कोई भोजन चाहता है, पर जरुरी नहीं कि सबको भोजन की इच्छा हो। कोई भोजन के नाम से भागता है। हर वस्तु कितनी भी प्रिय हो, कितनी भी अच्छी हो पर किसी को अच्छी लगेगी, किसी को नहीं। कोई चाहेगा, कोई नहीं। पर ऐसा विश्व में कोई नहीं जो ये कहे कि मुझे सुख की इच्छा नहीं है। मानवमात्र सुखी होना चाहता है, सुखी होने के लिये दिन-रात प्रयत्नशील भी है, मेहनत भी कर रहा है। हम जितनी भी भागम-भाग कर रहे हैं, एक ही उद्देश्य है कि हम सुखी हो जायें। पर हम देखते हैं कि जो सुखी होने का जितना प्रयत्न करता है, वह उतना ही दु:ख के दलदल में फंसता चला जाता है, सुखी कोई नहीं हो पा रहा। प्रश्न है कि ये जीव सुखी कैसे हो?

कोई दलदल में गिर जाये तो, ज्यों-ज्यों निकलने के लिये हाथ पैर फटकारेगा, त्यों-त्यों भीतर घुसता चला जायेगा। यही हालत हम लोगों की है। ये दु:ख के दलदल से सब सुखी होने के लिये निकलना चाहते हैं। परन्तु ज्यों-ज्यों निकलना चाहते हैं, त्यों-त्यों घुसते जा रहे हैं। पहले केवल झोपड़ी थी, तब चाहते थे कि एक कोठी हो जाये। कोठी बनी, तो चाहने लगे कि गाड़ी हो जाये। गाड़ी हो गई, तो चाहते हैं कि अपने नाम की एक बढ़िया फैक्ट्री लग जाये ... ऐसे करते-करते हमारा राजाओं-जैसा वैभव हो गया। पर जब किसी ने पूछा कि कितने सुखी हो पाये? तो जहाँ-का-तहाँ, महाराज! पहले तो कम-से-कम सवेरे-सवेरे भोजन में दस रोटी खाते थे। खूब खुराक थी, मस्ती से पड़े रहते थे। अब तो नींद की गोली खाते हैं, तब भी रात में नींद नहीं आती है। और खाने के नाम पर डॉक्टरों ने कह दिया कि दाल का पानी पियो। भोजन भी गया, नींद भी गई। जो सुख था, वह और चला गया। सुखी कहाँ हो पाये? दिन-रात चिन्ताओं के मारे नींद हराम हो गई।

श्रीमैत्रेय मुनि कहते हैं, विदुरजी महाराज! आप साक्षात् धर्म के अवतार हैं। बहुत बढ़िया प्रश्न किया है, विदुरजी! जगत् में सुख है ही नहीं। जहाँ हम सुख ढूँढ़ रहे हैं, वहाँ है ही नहीं। सुख तो हमारे भीतर है। जैसे एक प्यासा व्यक्ति पानी की खोज में निकला। लोग बताते गये, आगे चले जाओ, सरोवर है। चलते-चलते सरोवर के तट भी पहुँच गया। सरोवर में पानी भी बहुत था, पर विडम्बना ये कि उसमें काई जम गई। कभी-कभी आपने स्थिर जल में काई जमते देखा होगा। इतनी काई की परत लग गई कि पानी दिखाई ही नहीं पड़ता, ढंक गया पूरा जल। अब प्यासा चारों तरफ देखता है, पानी की तो कहीं बूंद भी नहीं है! दूर-दूर तक दृष्टि घुमाई, तो सरोवर के चारों तरफ रेगिस्तान था। सरोवर में पानी है, पर काई से ढंका है। रेगिस्तान पर दृष्टि डाली, तो रेतीली भूमि पर उसे जल की तरंगे नजर आयीं। इसी को कहते हैं **'मृगमरिचिका'** अथवा **'मृगतृष्णा'**।

कभी-कभी सड़क पर गाड़ी से चलते गर्मियों में देखियेगा, सूर्य की रश्मियों के पड़ने से ऐसा लगता है कि

जैसे जल सड़क पर पड़ा हो। पर पानी एक बूँद भी नहीं होता। और दूर से देखो, तो स्पष्ट जल ही नजर आयेगा। वही मृगतृष्णा कहलाती है। प्यासा सरोवर के तट पर खड़ा है। जहाँ पानी भरा है, वहाँ पानी दिख नहीं रहा। और जहाँ पानी दिख रहा है, वहाँ पानी की बूंद नहीं है। तो भ्रम में पड़ गया। पानी जहाँ दिख रहा था, वहाँ दौड़ पड़ा तो रेगिस्तान में भटकता-भटकता मर गया। पानी का तट छोड़कर रेगिस्तान में पानी पीने गया। यही हालत हम लोगों की है। भीतर हमारे प्रभु ने आनन्द का सागर भर रखा है, पर उस आनन्द के सागर में अज्ञानता की काई लगी हुई है इसलिए दिख नहीं रहा, समझ में नहीं आ रहा। और बाहर के विषयों में आनन्द का भ्रम है, सुख का भ्रम है।

ईस्वर अंस जीव अबिनासी ।
चेतन अमल सहज सुखरासी ॥ (मानस 7/117/1)

जीव जो सहज ही सुखराशि था, जिसके भीतर आनन्द-ही-आनन्द और सुख सब भरा हुआ था पर अज्ञा की परत के कारण दिखा नहीं। बाहर के विषयों में सुख का भ्रम हो गया, सो बाहर ढूँढने लगे। ये मिल जाये तो सुखी हो जाऊँ वह आ जाये, तो सुखी हो जाऊँ सुख के साधन स्वरूप उन तमाम वस्तुओं को जुटाता रहा. पर जीवन में सुखी कभी नहीं हो पाया क्योंकि बाहर जो सुख दिखाई पड़ रहा है, वह नकली है। जैसे एक श्रीमानजी ने कहा, भाई! गर्मी आ गई है। आम का मौसम आ गया। चलो, आम खाये जायें। बेटे को बुलाया बेटा! जाओ बाजार से बढ़िया आम लेकर आओ। रूपये दिये, बेटा गया। एक दुकान पर बहुत सारे फल सजे हुए थे। रूपये देकर आम मांगे, दुकानदार ने आम दे दिये, बालक लेकर घर आ गया। पिताजी! मैं आम ले आया। पिताजी ने कहा, अच्छा बेटा! एक काम करो। आम ठंडे पानी की बाल्टी में डाल दो ताकि खूब ठंडे हो जायें, तब खाने में आनन्द आयेगा। जाकर पानी में डाल दिये। थोड़ी देर बाद बोले, चलो! अब तो खूब ठंडे हो गये होंगे, चलो पाते हैं। जैसे ही बाल्टी देखी गई, उसमें एक भी आम नहीं, सब मिट्टी-मिट्टी ही नजर आई। बेटा! ये आम तू कहाँ से लाया? बालक बोला, दुकान से। तो चल-चल! मेरे साथ दुकान पर।

दुकान पर गया। अब फल वाली दुकान पर श्रीमानजी ने लडना-झगडना प्रारम्भ कर दिया, क्यों रे मूर्ख! हमारे नन्हे-से बच्चे को धोखा दिया? तूने ठग लिया? कैसे आम पकड़ा दिये? एक भी खाने का नहीं? दुकानदार बोला, श्रीमानजी! नाराज बाद में होइये। पहले दुकान का बोर्ड तो पढ़ लीजिये। स्पष्ट लिखा है नकली फलों की दुकान। मेरे यहाँ फल बेचे जाते हैं, पर वह दिखावटी हैं। सजानें के लिये लोग खरीद के ले जाते हैं, घरों में खाने के लिये नहीं। आपके बेटे ने आम मांगे, मैंने दे दिये। अब मुझे क्या मालूम खाने को ले जा रहा है कि सजाने को? गलती तुम्हारी है, तुमने बोर्ड क्यों नहीं पढ़ा? उसी प्रकार भगवान् ने तो संसार के ऊपर एक बोर्ड लगा दिया, '**दुःखालयमशाश्वतं**' (भगवद्गीता 8/15) - ये संसार दुःख का घर है। दुःखालय में एक ही दुःख थोड़े ही होता है? अनेक प्रकार के दुःख।

कोई तन दुःखी, कोई मन दुःखी, कोई धन बिन रहत उदास ।
थोड़े-थोड़े सब दुःखी, पर सुखी राम के दास ॥

इस दुःखालय में तो सब दुःखी हैं। अब तुम भोजनालय में जाकर भंडारीजी से कहो कि हमें लघुसिद्धान्तकौमुदी हमें पढ़ना है। वह कहाँ से दे देंगे। यदि तुम्हें पुस्तक चाहिये तो पुस्तकालय में जाइये। और पुस्तकालय में जाकर कहो कि जरा गरमा-गरम चार समोसे दीजिये, हमें भूख लगी है। वह कहाँ से देगा? सबके अलग-अलग

आलय (स्थान) हैं। दुःखालय में दुःख ही मिलेगा, सुख कहाँ से मिलेगा? पर हम तो दुःखालय में सुख ढूँढ़ रहे हैं, जो किसी काल में सम्भव नहीं है। तो जो आनन्दसिंधु सुखराशि हैं, उनसे दुःख मांगोगे भी तो भी नहीं मिलने वाला क्योंकि उनके खजाने में है ही नहीं। पूर्व प्रकरण में आपने पढ़ा होगा कि कुन्तीमैया ने दुःख माँगा तो क्या भगवान् ने दे दिया? कहाँ से देते, था ही नहीं। पर जगत् के दुःखालय में यदि सुख मांगो, तो कहाँ से मिलेगा? वहाँ है ही नहीं। इसीलिये सच्चिदानन्द के चरणों से जुड़े बिना सुख नहीं है। सुख-शान्ति का साम्राज्य तो भगवान् के श्रीचरणों में है, इसलिये वहाँ से जुड़े बिना किसी को जीवन में न सुख मिल सकता है, न शान्ति मिल सकती है।

आपके घर में बिजली जरूर होगी, पर आपका घर बिजली घर तो नहीं होगा? अरे! बिजली घर तो कहीं और है। वहाँ से कनेक्शन आपके घर तक लगा हुआ है, इसलिये आपके घर में बिजली है। पावरहाउस से लाइन काट दी गई, तो लटके रह जायेंगे सब उपकरण। पंखा हो, वल्ब हो, ... कुछ भी हो, सब लटके रह जायेंगे। पर साहब! पावरहाउस से तो लाइन चालू है, हमारे ही घर में अंधेरा है, पड़ौसी के घर मे तो खूब उजाला हो रहा है। इसका मतलब है कि उधर से कमी नहीं है, कमी तुम्हारे ही घर के बल्ब में है। या तो बल्ब फ्यूज है अथवा लाइन खराब है, तार खराब है, तो उसे सुधरवाइये। उसके लिये जगह-जगह पर बिजली के विशेषज्ञ लोग घूमते हैं, किसी बुद्धिमान को पकड़िये जो तुम्हारा तार ठीक कर दे। उसी प्रकार एक संत हमें आनन्द में झूमता नजर आ रहा है, मस्ती में डूब रहा है और हम चौबीसों घंटे रोते ही रहते हैं, क्या चक्कर है? हमारी लाइट क्यों चली गई? हमारा आनन्द कहाँ चला गया? तो ऐसे किसी सद्गुरु के पास जाओ जो तुम्हारी लाइन फिर से फिट कर दे, जो पावरहाउस से तुम्हारा कनेक्शन ठीक जोड़ दे तो तम्हारे घर में भी आनन्द का प्रकाश प्रकट हो जायेगा।

दूरदर्शन से प्रसारण हो रहा है, आपके पास टेलीविजन भी है फिर चित्र क्यों नहीं आ रहा? पहले तो टेलीविजन को ऑन करो, उसके बाद में वही चैनल लगाओ जहाँ से भजन का प्रसारण हो रहा है। ऊटपटांग चैनल है, तुमने उल्टा-सीधा चैनल लगा दिया। तो टी.वी. ऑन तो है, पर ऊटपटांग दृश्य आयेंगे। जहाँ से संस्कार का प्रसारण हो रहा है, वहीं पर आपको भी अपना चैनल फिट करना पड़ेगा, तब जाकर आपको वह सुन्दर दृश्य दिखाई पड़ेंगे। उसी प्रकार आनन्द तो सर्वत्र है, भगवान् ने सबके भीतर भर दिया है। पर जबतक हम अपना भीतर का टेलीविजन ऑन न करें और कनेक्शन वहाँ से ठीक से फिट न करें, वही चैनल न जोड़ें तबतक ये दृश्य कैसे आवें? हनुमन्तलालजी ने देखो अपना चैनल जोड़ दिया,

जासु हृदय आगार बसहि राम सरचाप धर (रामचरितमानस 1/17)
ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति (भगवद्गीता 18/61)

सबके भीतर वह बैठा है, पर दिखाई कहाँ पड़ रहा है? उसका दृश्य नहीं दिखाई पड़ रहा। हनुमन्तलालजी ने देखो, वह दृश्य प्रकट कर दिया। छाती चीरकर भी दिखा दिया।

इस प्रकार से श्रीविदुरजी महाराज को मैत्रेय मुनि ने बड़ा सुन्दर उपदेश दिया। सृष्टि के बारे में प्रश्न किया, तो विस्तार से सृष्टि-प्रक्रिया का वर्णन किया। भगवान् नारायण के नाभिकमल से ब्रह्माजी प्रकट हुए। ब्रह्माजी ने सृष्टि की इच्छा प्रकट की, तो भगवान् के ज्ञान को आत्मसात करके सबसे पहले ब्रह्माजी ने अपने संकल्प से सृष्टि में चार कुमारों को जन्म दिया, 1. सनक, 2. सनन्दन, 3. सनातन और 4. सनत्कुमार। चारों से ब्रह्माजी ने कहा कि बच्चों! तुम भी सृष्टि करो। चारों ने कहा, हम बिल्कुल चक्कर में नहीं पड़ेंगे। हम तो केवल हरि का

भजन करेंगे। ब्रह्माजी को क्रोध आ गया कि हमारे पुत्र हमारी आज्ञा नहीं मान रहे। इतना क्रोध आया कि उनका क्रोध ही भृकुटी का भेदन करके भगवान् रुद्र (शंकर) के रूप में प्रकट हो गया।

शिवजी को देखकर ब्रह्माजी ने कहा, अरे भाई! तुम्हारा नाम रुद्र होगा और काम तुम्हारा यही है कि तुम सृष्टि का विस्तार करने में हमें सहयोग दो। तो भोले-बाबा ने भूत, प्रेत, डाकिनी, पिशाचिनी, आदि की सृष्टि प्रारम्भ कर दी। ब्रह्माजी बोले, बस करो महाराज! इतनी खतरनाक सृष्टि हमें नहीं करवानी, आप तो बैठकर भजन करो। भोलेबाबा भजन में बैठ गये। अबकी बार ब्रह्माजी ने मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु वसिष्ठ, दक्ष और देवर्षि नारद - इन दस ऋषियों को प्रकट किया। अपनी वाणी से ब्रह्माजी ने परमसुन्दरी कन्या सरस्वती को प्रकट किया तथा अपनी छाया से महामुनि कर्दमजी को प्रकट किया। ये सब ब्रह्माजी की मानसी सृष्टि हैं। और उसके बाद विधाता ब्रह्माजी ने अपने वामांग से कन्या और दक्षिणांग से पुरुष को जन्म दिया, जिनका नाम हुआ मनु और शतरूपा।

मनु-शतरूपा से ही मानवी-सृष्टि का विस्तार हुआ। इसलिये मनुपुत्र होने के नाते ही हम लोग मानव कहलाते हैं। जो लोग हमें मनुवादी कहकर पुकारते हैं, इसका मतलब वह अपने को मनुपुत्र नहीं मानते। तो वह अपना स्वयं हिसाब लगावें कि वह अपने को किसकी सन्तान मानते हैं। अरे! मानवमात्र मनु के पुत्र हैं। मनु-शतरूपा से पाँच सन्तानें हुई, उनमें दो बेटा और तीन बेटी हैं। बेटियों के नाम है - आकूति, देवहूति और प्रसूति तथा बेटों के नाम हैं - प्रियव्रत और उत्तानपाद। पर एक दिन मनु महाराज ने ब्रह्माजी से प्रार्थना की भगवन्! सृष्टि का मैं विस्तार तो करना चाहता हूँ, पर कैसे करूँ? महाराज! हिरण्याक्ष राक्षस पृथ्वी का ही हरण करके ले गयां। तब ब्रह्माजी ध्यान लगाया, ध्यान लगाते ही उन्हें बड़ी तेज छींक आई। छींकते ही उनकी नासिकारन्ध्र से भगवान् का वाराह रूप में प्राकट्य हो गया। देखते-देखते वाराह भगवान् का पर्वताकार देह हो गया। देवताओं ने स्तवन किया, हिरण्याक्ष का वध करके भगवान् ने पृथ्वी का उद्धार किया।

विदुरजी ने मैत्रेयजी से पूछ दियाकि भगवन! कृपा करके ये तो बतलाइये कि ये हिरण्याक्ष कौन था, जो धरती को ही उठाकर ले गया? ये किसका बेटा था? मैत्रेय मुनि कहते हैं, विदुरजी! महामुनि कश्यपजी की दिति, अदिति, दनु, काष्ठा, सुरसा, आदि अनेक पत्नियां हैं। उनमें दिति नाम की जो पत्नी हैं, वह दैत्यों की माता है। एक बार कश्यपजी सूर्यास्त के समय सन्ध्यावन्दन, आदि अपना नित्यकर्म कर रहे थे कि सूर्यास्त के समय देवी दिति ने उनके पास आकर रतियाचना की। कश्यपजी ने कहा, देखो देवि! **'एषा घोरतमा वेला'** - ये शाम का समय है और भगवान् शंकर अपने गणों के साथ इस समय संसार में विचरण करते हैं। इसलिये भोलेबाबा की पूजा सायंकाल के समय अधिक पुण्यदायिनी मानी गई है। तो भगवान् शिव इस समय परिभ्रमण करते हैं। सूर्यास्त के समय जो स्त्री गर्भधारण करती है, उसके दुष्टसंतति पैदा होती है। पर दिति ने जब एक न मानी, तो भगवदिच्छा मानकर कश्यपजी ने दिति का मनोरथ पूर्ण किया। काम-ज्वर शान्त होने पर दिति को बड़ा पश्चाताप हुआ। श्रीमैत्रेय मुनि कहते हैं, विदुरजी! दिति देवी ने सौ वर्षो तक अपनी कोख से जन्म ही नहीं होने दिया। जिसके फलस्वरूप उनके शरीर से इतना तेज निकलने लगा कि स्वर्ग तक जलने लगा। देवताओं ने ब्रह्माजी से कारण पूछा कि कहाँ से यह तेज आ रहा है, हम तो जले जा रहे हैं। तब ब्रह्माजी ने ध्यान लगाकर कहा कि देवताओ! घबड़ाओ मत।

मानसा मे सुता युष्मत्पूर्वजा: सनकादय:

सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, आदि जो मेरे मानस पुत्र हैं, एक बार ये चारों भैया भगवान् नारायण का दर्शन करने वैकुण्ठ में गये। वैकुण्ठ में जैसे ही प्रविष्ट होने लगे कि भगवान् के पार्षदों ने दरवाजे पर रोक दिया, लाठी दिखा दी। क्योंकि ये तो पाँच साल के वालक हैं?

पञ्चहायन संयुक्ता: पूर्वेषामपिपूर्वजा:

पाँच वर्ष के वालक होकर भी ये पूर्वजों के भी पूर्वज हैं। इनकी प्रतिभा का क्या कहना कि भगवान् के जय-विजय नामक पार्षदों ने जब इन्हें रोका, तो इन्हें क्रोध आ गया। क्रोध में इन्होंने उन पार्षदों को तीन जन्म तक राक्षस बनने का शाप दिया। चरणों में गिरकर दोनों द्वारपाल रोने लगे, थर-थर काँपने लगे। भगवान् ने जब ये खटपट सुनी तो तुरन्त बाहर आ गये। चारों भैयाओं को भगवान् ने नमन करते हुए स्वागत किया। भगवान् की दिव्य-छटा का दर्शन करके, उनके चरणों में चढ़ी हुई दिव्यमंजरी की सुगन्ध ग्रहण करते ही सब कोप शान्त हो गया सनकादि आनन्द से मुग्ध हो गये। भगवान् हाथ जोड़कर कहते हैं,

एतौ तौ पार्षदौ मह्यं जयो विजय एव च ।
कदर्थीकृत्य मां यद्वो बह्वक्रातामतिक्रमम् ॥ (भा. 3/16/2)

अब ज़रा भगवान् की कुशलता देखिये! भगवान् ने एक बार भी ये नहीं कहा कि चलिये महाराज! भीतर घर को पवित्र कीजिये। क्योंकि महात्मालोग क्रोध के अधीन हो गये हैं। भगवान् ही दरवाजे पर आ गये और वहीं पर खूब प्रशंसा कहकर बाहर से ही विदा कर दिया। पर शब्द-शैली देखिये, **'एतौ तौ पार्षदौ मह्यम्'** ये दोनों मेरे पार्षद हैं। अब देखो! शब्दावली तो सनकादियों के प्रति ऐसी है कि भगवान् सनकादियों को महत्त्व दे रहे हैं और जय-विजय को डाँट रहे हैं। परन्तु अन्दर भगवान् का संकेत क्या है? पार्षदों को तो कहते हैं कि ये मेरे पार्षद हैं और इन्होंने आपका अपमान किया है। इसलिये आपने इन्हें दण्ड देकर बहुत उचित किया। मैं तो कहता हूँ कि मुझे भी दण्ड दीजिये। क्योंकि सेवक का अपराध स्वामी का ही अपराध माना जाता है। इसलिये यहाँ भगवान् कहते हैं, मेरे पार्षदो ने आपका अपराध किया, आपका अपमान किया इसलिये मैं भी अपराधी हूँ। क्योंकि सच कहता हूँ कि मेरी भुजा भी यदि किसी संत का अपमान कर दे, तो मैं इस भुजा को भी काटकर फेंक दूँगा।

छिन्द्यां स्वबाहुमपि व: प्रतिकूलवृत्तिम्

भगवान् कहते हैं कि मेरे दो मुख हैं - ब्राह्मण और अग्नि। वेद भगवान् कहते हैं, **ब्राह्मणोऽस्यमुखमासीद्** (यजुर्वेद 31/11) और दूसरी ओर **मुखादग्निरजायत** (यजुर्वेद 31/12) भगवान् के मुख से अग्नि का जन्म हुआ और भगवान् के मुख से ब्राह्मणों का जन्म हुआ। ये दोनों ही भगवान् के मुख हैं। और भगवान् कहते हैं कि इन दोनों में यदि तुलनात्मक रूप से पूछा जाये कि किस मुख से आप ज्यादा पाते हो? वैसे तो दोनों मुखों से भगवान् को पवाया जाता है, अग्नि में स्वाहा और ब्राह्मणों के मुख में आऽऽहाऽऽ करके ब्राह्मण पाते हैं, तो डकार ले के गद्‌गद् हो जाते हैं। और रबड़ी-मालपुआ हो तो फिर कहना ही क्या है? अन्तरात्मा प्रसन्न हो जाती है, गद्‌गद् हो जाते हैं। तो भगवान् से पूछा जाये कि इन दोनों मुखों से आपको सबसे ज्यादा किस मुख से पाना अच्छा लगता है, तो भगवान् कहते हैं -

नाहं तथादि्म यजमानहविर्विताने श्च्योतद्धृतप्लुतमदन्हुतभुङ्मुखेन ।
यद्ब्राह्मणस्य मुखतश्चरतोऽनुघासं तुष्टस्य मय्यवहितैर्निजकर्मपाकै: ॥ (भा. 3/16/8)

भगवान् कहते हैं, वैसे तो ये दोनों ही मुख मेरे हैं। परन्तु दोनों में जितना कि ब्राह्मण मुख से पाकर मैं तृप्त होता हूँ, इतना अग्नि के स्वाहाकार से प्रसन्न नहीं होता। स्पष्ट भगवान् ने कह दिया, घी से लबलबाया हुआ मालपुआ जब ब्राह्मण के मुख में जाता है, तो उसकी तृप्ति को देखकर मैं गद्गद् हो जाता हूँ, वह मेरा प्रत्यक्ष मुख है। बड़ी प्रशंसा भगवान् ने यहाँ पर ब्राह्मणों के लिये की। और सनकादियों को सम्मानपूर्वक नमन करके विदा किया। सनकादियों के शाप से वे ही भगवान् के पार्षद जय और विजय आज दिति माँ के गर्भ में आ चुके हैं। ये सारा रहस्य ब्रह्माजी ने देवताओं को बताते हुए कहा, आप लोग घबड़ाइयेगा नहीं, भगवान् नारायण कृपा करेंगे। समय आने पर उनका उद्धार करेंगे। बाकि उनका सामना और कोई नहीं करने वाला। देवता बेचारे काल-प्रतीक्षा करने लगे। सौ वर्षो बाद दिति ने दो पुत्रों को जन्म दिया, जिनके नाम हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु हुये। देखते-देखते दोनों भाइयों का शरीर पर्वताकार हो गया। मुकुट पहने तो आकाश में लहरावे।

दिविस्पृशौ हेमकिरीटकोटिभिः

एक दिन हिरण्याक्ष अपने बड़े भाई हिरण्यकशिपु से बोला, भैया! बल-पराक्रम तो बहुत मिला है, पर आज तक कोई लड़ने वाला नहीं मिला। इसलिये हम दिग्विजय करने जाते हैं, कहीं-न-कहीं दुनिया में कोई-न-कोई तो मिलेगा? और अकेला ही गदा लिये दिग्विजय करने निकला और सबसे पहले स्वर्ग पर हमला बोला। स्वर्ग में जाकर गदा उठाकर जो अट्टहास किया कि देवतालोग बिना युद्ध किये ही पूरा स्वर्ग खाली करके भाग गये, एक भी सामने नहीं टिका। देवताओं का अपमान करके वापिस लौट आया। जब कोई नहीं मिला तो समुद्र में घुस गया। समुद्र के भीतर प्रविष्ट होकर वरुणदेवता को ललकारने लगा, ऐ भैया! तेरा बहुत नाम सुना है। चल! दो-दो हाथ कर। वरुण ने सोचा कि इस दुष्ट से पिण्ड छुड़ाने में ही कल्याण है। हाथ जोड़कर बोले, भैया! जब तेरी उम्र के थे, तो हमारे हाथों में भी लड़ने को बहुत खुजली मचती थी। पर अब हम बुड्ढे हो गये हैं, आशीर्वाद देते हैं। भगवान् से प्रार्थना करते हैं कि तुम्हारी इच्छा जल्दी पूरी करें। और यों कह-सुनकर वरुणजी ने पिण्ड छुड़ाया, उन्हें भी अपमानित करके हिरण्याक्ष लौट आया।

अचानक! रास्ते में देवर्षि नारद से भेंट हो गई, सो पकड़ लिया, ऐ बाबा! ये क्या नारायण-नारायण रट लगाये घूमते रहते हो? कुछ लड़ना-भिड़ना भी आता है? नारदजी बोले, ना-ना भैया! लड़ना-भिड़ना तो कुछ नहीं आता, पर लड़ाना-भिड़ाना खूब आता है। अन्ततोगत्वा जब कहीं कोई नहीं टकराया, तो हिरण्याक्ष ने फिर एक ही उपाय निकाला कि पृथ्वी का ही हरण करके ले गया। और पृथ्वी का हरण करके जब जल में प्रविष्ट हो गया, तब इधर ब्रह्माजी ने प्रभु का ध्यान किया और ब्रह्माजी की छींक से नासिकारन्ध्र द्वारा भगवान् वाराह प्रकट हुए। अंगूठे-जैसा भगवान् का वराह रूप था और देखते-देखते पर्वताकार रूप हो गया। देवता हाथ जोड़कर महिमा का गान करने लगे। और गर्जना करते हुए वराह भगवान् तुरन्त जल में प्रविष्ट हुए और हिरण्याक्ष के चंगुल से पृथ्वी को मुक्त करवाकर मुख पर धारण करके, जैसे ही वापिस मुड़े कि हिरण्याक्ष ने खड़े होकर ललकारा, ऐ जंगली सूकर! कहाँ भागता है? खड़ा रह। पर भगवान् ने एक नहीं सुनी, भागते गये। और जब यथास्थान लाकर भूदेवी को स्थापित कर दिया। फिर भगवान् खड़े होकर बोले, आईये श्रीमान् जी! अब बताइये, आप क्या कह रहे थे? आपने हमें जंगली सूकर बोला? ठीक पहचाना! हम तो जंगल के ही सूकर

1. सन्ध्या कालेतु सम्प्राप्ते कर्म चत्वारि वर्जयेत् । आहारं मैथुनं निद्रां स्वाध्यायात् विशेषतः ॥ आहारं जायते व्याधी मैथुनं दुष्ट संसतिः । निद्रां छिद्यते लक्ष्मी स्वाध्याय विस्मरणं भवेत ॥

हैं, पर तेरे जैसे गाँव के कुत्तों के भौंकने का हमें कोई फर्क नहीं पड़ता। संस्कृत में किसी को गाली भी दो, तो सुनने वाला अपनी तारीफ समझेगा। संस्कृत की गालियाँ भी इतनी मीठी-मीठी हैं। अब किसी से कहो, आओ ग्रामसिंह! तो सुनने वाला क्या समझेगा कि हम अपने गाँव में शेर की तरह रहते हैं, इसलिये हमें ग्रामसिंह बोला। पर ग्रामसिंह नाम है कुत्ते का। जो अपने गाँव में तो सिंह की तरह भौंकता है और दूसरे के गाँव में दुम-दबाकर भागता है। भगवान् बोले,

सत्यं वयं भो वनगोचरा मृगा युष्मद्विधान्मृगये ग्रामसिंहान्

तुमने ठीक पहचाना कि हम तो वनगोचर हैं। पर तेरे जैसे गाँव के कुत्तों का कोई हमें भौंकने से फर्क नहीं पड़ता। तब तो लाल-पीला हो गया हिरण्याक्ष। गदा घुमाकर भगवान् पर प्रहार किया, उसके प्रहार से भगवान् की गदा हाथ से छूट गई। देवता लोग घबड़ा गये कि ये क्या हो रहा है? देवतालोग इशारा करने लगे कि प्रभु! जल्दी कीजिए क्योंकि सूर्यास्त के बाद राक्षसों का बल और बढ़ जाता है।

भगवान् को हंसी आने लगी, देखो! ये कितने डरे हुए हैं कि मेरी शक्ति में ही संदेह कर रहे हैं। भयंकर युद्ध हुआ। उस युद्ध में बहुत माया भी हिरण्याक्ष ने दिखाई। पर भगवान् मायापति के सामने एक माया न चली। अन्त में भगवान् ने एक थप्पड़ गाल पर मारा कि,

करेण कर्णमूलेऽहन् यथा त्वाष्ट्रं मरुत्पतिः

एक प्रहार जब गाल पर किया तो एक थप्पड़ में ही हिरण्याक्ष की आँखें बाहर निकली चली आई, रक्त-वमन करता हुआ धड़ाम से धरती पर गिरा। पर देवताओं ने जय-जयकार नहीं बोली, किसी को भी विश्वास नहीं कि एक थप्पड़ में ही मर जायेगा। पर जब बड़ी देर तक खड़ा नहीं हुआ, तो देवता कानाफूसी करने लगे, लगता है! गया काम से। अरे! चलो यदि मर गया तो भगवान् की स्तुति करें, उनकी महिमा का गान करें। इतना बड़ा कार्य किया है। दूसरा बोला, कहीं चले गये और वह जिंदा निकला तब? लेने के देने पड़ जायेंगे। अच्छा! ये बात ठीक है, तो फिर क्या किया जाये? तो देवता भी स्तुति इस ढंग से कर रहे हैं कि कदाचित जिंदा हो, तो इसे भी बुरा न लगना चाहिये। ऐसी स्तुति करो, जिसमें कि इसकी बुराई न हो। तो भगवान् की स्तुति कैसे कर रहे हैं,

अहो इमां को नु लभेत संस्थितिम्

प्रभो! इस महाभाग्यशाली को आपने कौन-सी गति प्रदान की है? क्योंकि इस जगत् में इसके समान भाग्यशाली हमें दूसरा कोई दिखाई ही नहीं पड़ता।

यं योगिनो योगसमाधिना रहो ध्यायन्ति लिंगादसतो मुमुक्षया ।
तस्यैष दैत्यऋषभः पदाहतो मुखं प्रपश्यंस्तनुमुत्ससर्ज ह ॥ (भा. 3/19/28)

देवता कहते हैं, प्रभो! बड़े-बड़े योगीन्द्र, मुनीन्द्र, संत निरन्तर योगाभ्यास करते हैं, तब कहीं जाकर समाधि में एक झलक आपकी मिल पाती है। कितनी साधना करने बाद आपका वह दिव्यदर्शन उन्हें प्राप्त होता है। पर इस भाग्यशाली को देखो! आपके मुखकमल की छटा का दर्शन करते-करते इसने प्राण त्यागे और मरने के बाद भी देखो! इसकी फटी-फटी आँखें अभी भी आपको ही निहार रही हैं, इतना बड़भागी है। भगवान् ने जब पादप्रहार किया और उसका शरीर जब दूसरी तरफ लुढक गया, तब देवताओं को पूर्ण विश्वास हो गया कि इसका तो हो गया कल्याण। तब देवताओं ने अब जरा खुलकर भगवान् की स्तुति की -

नमो नमस्तेऽखिलयज्ञतन्तवे स्थितौ गृहीतामलसत्त्वमूर्तये ।
दिष्ट्याहतोऽयं जगतामरुन्तुदस्त्वत्पादभक्त्या वयमीश निर्वृताः ॥ (भा. 3/19/30)

देवता कहते हैं, हे प्रभु! हम आपके श्रीचरणों में बारम्बार प्रणाम करते हैं। बड़े सौभाग्य की बात है, जो इस दुष्ट का आपने दमन कर दिया। इसके डर के मारे हम अपना घर-द्वार छोड़कर गिरि-कंदराओं में भागते फिर रहे थे। अत: इसे मारकर आपने हम देवताओं पर बड़ा भारी अनुग्रह किया है। आपकी जय हो! खूब प्रशंसा की देवता, बड़े होशियार हैं किसी मामले में जोखिम नहीं लेते हैं। भगवान् को प्रणाम किया, प्रभु अन्तर्धान हो गये। अब पृथ्वी पर सृष्टि का विस्तार मनु महाराज के द्वारा हुआ॥

कपिलोपाख्यान--

श्रीमद्भागवत में मनु-शतरूपा की तीन बेटियों का वंश पहले सुनाया गया, बेटों की बात बाद में की गई है। तीनों बेटियों में मझली बेटी देवहूति का विवाह कर्दमजी के साथ में हुआ। कर्दमजी ने विवाह के समय एक शर्त रखी कि एक संतान होते ही मैं विरक्त हो जाऊँगा। देवहूति ने इस शर्त को स्वीकार कर लिया। हर्षोल्लासपूर्वक विवाह सम्पन्न हुआ। पुत्री से विदा लेकर माता-पिता तो अपनी नगरी को लौट गये, पर शादी होते ही कर्दमजी समाधि लगाकर बैठ गये। कई वर्षो तक अखण्ड समाधि लगी रही, तो देवहूति अपना सारा श्रृंगार उतारकर पति की सेवा में समर्पित बनी रही। कई वर्षो के बाद जब समाधि खुली कर्दमजी ने देवहूति को देखा। देवहूतिजी को देखकर कर्दमजी तो गद्गद् हो गये।

तुष्टोऽहमद्य तव मानवि मानदायाः शुश्रूषया परमया परया च भक्त्या ।
यो देहिनामयमतीव सुहृत्स्वदेहो नावेक्षितः समुचितः क्षपितुं मदर्थे ॥ (भा. 3/23/6)

कर्दमजी बोले, हे मानवी! अरी मनुपुत्री! हम तेरी सेवा से बड़े प्रसन्न हुए। संसार में व्यक्ति को अपना शरीर सबसे ज्यादा प्यारा लगता है। पर तुमने तो मेरी सेवा के लिये अपने शरीर का भी कोई ध्यान नहीं रखा? देवी! बोलो क्या चाहती हो? देवहूति ने कहा, महाराज! आप मेरे पति-परमेश्वर हैं। आपको प्रसन्न रखना ही मेरा परमधर्म है। फिर भी आप कुछ देना चाहते हो, तो हम सद्गृहस्थ बने हैं हमारी एक संतान होनी चाहिये। और मुझे कुछ नहीं चाहिये। कर्दमजी प्रसन्न हो गये और तुरन्त हाथ में जल लिया। संकल्प करके जैसे-ही जल छोड़ा कि एक अद्भुत विमान बनकर तैयार हो गया। और विमान कैसा कि जो संकल्प के द्वारा ही चलता है, डीजल-पेट्रोल का कोई झंझट नहीं। कामना करो कि अमुक् स्थान चलो! बस संकल्प किया और विमान उड़कर चल दिया। ऐसा अद्भुत विमान आज तक तो कोई वैज्ञानिक बना नहीं सका, लेकिन एक महात्मा ने संकल्पमात्र से तैयार कर दिया। देवहूति को तो उस विमान में बैठने में घबड़ाहट हो गई। शरीर बहुत गंदा हो चुका था, महीनों से ठीक-से व्यवस्थित स्नान तक नहीं किया, शरीर पर कोई लेपन किया नहीं। कर्दमजी समझ गये,

निमज्ज्यास्मिन् ह्रदे भीरु विमानमिदमारुह

कर्दमजी बोले, जाओ देवी! पहले सरोवर में स्नान करो। और ज्यों ही सरोवर की ओर बढ़ी कि **'शतानि दश कन्यकाः'** एक हजार कन्याएं सरोवर में प्रकट हो गई, जिन्होंने उबटन लगा-लगाकर, देवहूति का स्नान करवाकर श्रृंगार किया। अप्सराओं-जैसा दिव्य देह चमकने लगा। दोनों दम्पति उस विमान में प्रविष्ट हुये। वर्षो तक विषयों को भोग करते हुए कालान्तर में नौ बेटियों को जन्म दिया। अब एक दिन कर्दमजी सोचने लगे, वाह

रे कर्दम! तुम तो फंस गये चक्कर में? शादी के पहले सोच रहे थे कि एक संतान होते ही बाबा बनेंगे और आज देखो! नौ संताने हो गई चलो। अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है। खिसक लो, नहीं तो दुनियादारी तो बढ़ती ही जायेगी। तुरन्त कर्दमजी खड़े होकर चल दिये। देवहूति ने चरण पकड़ लिये, कहाँ जा रहे हो महाराज? कर्दमजी बोले, वचन याद कर लो देवी! एक की जगह नौ संतान हो गई, अब मैं टिकने वाला नहीं। देवहूति ने कहा, महाराज! ये नौ बेटियाँ हैं। शादी के बाद जब ये सब ससुराल चली जायेंगी, तो बुढ़ापे में मेरा अवलम्ब क्या होगा? कर्दमजी को तुरन्त याद आ गया, अरे! मेरे प्रभु मुझसे बोले थे कि कर्दम! तुम विवाह करो तो मैं तुम्हारा बेटा बनूँगा। और प्रभु मेरे बेटे बनेंगे, इसी प्रलोभन में तो मैंने विवाह किया था।

सहाहं स्वांशकलया त्वद्वीर्येण महामुने ।
तव क्षेत्रे देवहूत्यां प्रणेष्ये तत्त्वसंहिताम् ॥ (भा. 3/21/32)

ये प्रभु ने मुझे वचन दिया है कि मैं तुम्हारा बेटा बनूँगा। भगवान् का वचन मिथ्या नहीं हो सकता। भगवान् घर में ही यदि बेटा बनकर आने वाले हैं, तो मैं जंगल में जाकर क्या करूँगा? कर्दमजी रुक गये और बोले,

मा खिदो राजपुत्रीत्थमात्मानं प्रत्यनिन्दिते ।
भगवांस्तेऽक्षरो गर्भमदूरात्सम्प्रपत्स्यते ॥ (भा. 3/24/2)

मैं तो भूल ही गया था। तू तो साक्षात् नारायण की जननी बनने वाली है, बिल्कुल खेद मत कर। कर्दमजी रुक गये और अबकी बार देवहूति गर्भवती हुई तो साक्षात् प्रभु ही गर्भ में पधारे। कालान्तर में देवहूति के गर्भ से भगवान् का कपिल रूप में प्राकट्य हुआ।

कपिल भगवान् के दिव्यदर्शनों के लिये स्वयं विधाता ब्रह्माजी अपने नौ ऋषिपुत्रों के साथ आये। कर्दमजी ने स्वागत करते हुए कहा, भगवन्! बड़ी कृपा की कि आपके दर्शन हुए। एक निवेदन करना चाहता हूँ। मेरे घर में नौ बेटियाँ और आपके साथ में नौ बेटा - बढ़िया जोड़ा बन जायेगा। न आपको भटकना पड़ेगा, न मुझे। ब्रह्माजी प्रसन्न हो गये। ब्रह्माजी तो सृष्टि के विस्तार के लिये वैसे-ही तैयार थे। तुरन्त नौ बेटियों का विवाह ऋषिपुत्रों से कर दिया। कला देवी का विवाह मरीचि से, अनसूया का विवाह अत्रि से, अरुन्धति का विवाह वसिष्ठ से, ख्याति का विवाह भृगुजी से, शान्ति का विवाह अथर्वण से, क्रिया का विवाह क्रतु से, तथा हविर्भू का विवाह पुलस्त्य से किया। नौ बेटियों का विवाह करके कर्दमजी ने विदा किया।

जब बेटियां ससुराल चली गई, तो कर्दमजी बोले, देवी! बेटियों का दायित्व पूरा हो गया, ससुराल चली गई। बेटा भी हो गया। अब मेरे सारे दायित्व पूरे हो गये, इसलिये अपने राम भी अब चलते हैं अब नहीं टिकेंगे। तो अबकी बार देवहूतिजी ने रोकने का दुराग्रह नहीं किया और कर्दमजी चले गये। घर में कितनी भी अनुकूलता हो, परन्तु चतुर्थ चरण में घर की आसक्ति छोड़ ही देना चाहिये। परिवार के लोग डाँटे-फटकारें, तब भागे तो, क्या भागे? अनुकूलता में भी विरक्ति हो, वह सच्चा वैराग्य है। परिस्थिति का वैराग्य ज्यादा टिकाऊ नहीं होता।

कर्दमजी की अनुकूलता तो देखिये कि जिसकी देवहूति-जैसी पत्नी, बेटियाँ अनसूया-जैसी, दामाद भृगु, वसिष्ठ, आदि जैसे; पुत्र कपिल जैसा - किसी मामले में कोई कमी नहीं? रहने के लिये सुविधा में कमी हो, खाने पीने में कमी हो, ऐसी भी कोई बात नहीं। कामद विमान, जो कामना करो, जहाँ जाना चाहो, वहीं उड़ाकर ले जाये। सब कुछ है, फिर भी कर्दमजी विरक्त होकर चल दिये। अब तो आश्रम में केवल दो सदस्य माता देवहूति और उनके पुत्र कपिल ही रह गये। एक दिन देवहूति माँ अपने पुत्र के पास आई और बोली, बेटा!

निर्विण्णा नितरां भूमन्नसदिन्द्रियतर्षणात् ।
येन सम्भाव्यमानेन प्रपन्नान्धं तमः प्रभो ॥ (भा. 3/25/7)

माता देवहूति पूछती हैं, हे प्रभो! संसार में जितना सुख मैंने भोगा, इतने सुख की कोई स्त्री कल्पना भी नहीं कर सकती भोगना तो दूर रहा। हर प्रकार की अनुकूलता, हर प्रकार का वैभव-मायके में मैं राजकुमारी बनकर ठाठ से रही। ससुराल में भी कर्दम-जैसे परमयोगी संत पति मिले, कामद विमान में दिव्य भोगों का सेवन कराया। परन्तु इतना सब पाने के बाद भी मेरी आत्मा अतृप्त है, मेरा मन अभी भी असंतुष्ट है। बेटा! आज मैं तुझे केवल अपना बेटा नहीं समझ रही। सुना है तू तो साक्षात् भगवान् है, ब्रह्मज्ञान सम्पन्न है। मैं चाहती हूँ कि अपने ज्ञान का खड्ग उठाकर मेरे अज्ञान के वृक्ष को जड़ सहित नष्ट कर दो। मैं तुम्हारी शरण में हूँ ।

तं त्वा गताहं शरणं शरण्यं स्वभृत्यसंसारतरोः कुठारम् ।
जिज्ञासयाहं प्रकृतेः पूरुषस्य नमामि सद्धर्मविदां वरिष्ठम् ॥ (भा. 3/25/11)

कपिल भगवान् ने आठ अध्यायों में बड़ा ही अद्भुत सांख्ययोग का उपदेश दिया। इन आठ अध्यायों को कपिलाष्टाध्यायी कहते हैं। कपिल भगवान् कहते हैं, माँ! संसार में चाहे जितने विषय जीव को प्राप्त हो जायें, कितना भी विषयों का भोग वह कर ले पर वास्तविक तृप्ति इसे नहीं मिल सकती। इन्द्रियों का तर्पण है विषय। आत्मा तो अतृप्त ही रह जाती है। और विषय तो स्वयं अपूर्ण है, उन्हें पाकर हम पूर्ण कैसे हो जायेंगे? जीवन में परिपूर्णता तो तभी आयेगी, जब परिपूर्ण से जुड़ोगे और परिपूर्ण तो केवल प्रभु है।

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

उस परिपूर्ण-प्रभु के पादपद्मों को पाये बिना जीवन में परिपूर्णता का आनन्द आ ही नहीं सकता। अपने मन को जगत से हटाकर जगदीश्वर में लगाओ।

गुणेषु सक्तं बन्धाय रतं वा पुंसि मुक्तये

ये मन ही बन्धन और मुक्ति का कारण है। माताजी! चाबी एक ही होती है और जिस चाबी से हमने ताला बन्द किया है, वही चाबी ताले को खोलेगी भी। मोड़ने का अन्तर है। इधर मोड़ दिया तो ताला बंद और उधर मोड़ दिया तो ताला खुल जायेगा। मन को हमने संसार की तरफ मोड़ दिया तो ये संसार में हमें बाँधने लगा। अब इसी मन को माधव के चरणों की तरफ मोड़ दो, तो यही मन तुम्हारी मुक्ति का हेतु बन जायेगा। देवहूतिजी प्रश्न करती हैं, तो बेटा! मन को कैसे मोड़ा जाये? कपिलजी कहते हैं, माँ! उसका सबसे सरल साधन है - संतों का संग। जिनका मन उसमें लगा हुआ है, ऐसे रसिक संतो का तुम संग करो। वह भगवान् के नाम-रूप-लीला-धाम की महिमा गा-गाकर, सुना-सुनाकर तुम्हारे मन को भी उधर ही मोड़ देंगे।

बीड़ी पीने वाले के संग में रहो, वह भी तुम्हें बीड़ी पीना सिखा ही देगा। तम्बाकू वाले के संग में ज्यादा रहो, तो किसी-न-किसी दिन आपको भी चस्का लगा ही देगा। अरे! जब ये दुर्व्यसनी लोग अपने-अपने संग वालों को उसी व्यसन का रसिक बना देते हैं तो जो भगवद्-रसिक हैं, उस दिव्यातिदिव्य रस में सर्वदा निमग्न रहने वाले रसिक हैं, उनका संग करोगे तो क्या वह तुम्हें उधर नहीं लगायेंगे? देवहूतिजी प्रश्न करती हैं, अच्छा बेटा! तो कैसे पता चले कि ये भगवद्-रसिक हैं? साधू की पहचान क्या है? किसका संग करें? कपिल भगवान् कहते हैं, साधुओं के पाँच लक्षण हैं,

तितिक्षवः कारुणिकाः सुहृदः सर्वदेहिनाम् ।
अजातशत्रवः शान्ताः साधवः साधुभूषणाः ॥ (भा. 3/25/21)

ये साधुओं के आभूषण हैं, '**तितिक्षवः**' - बड़े सहनशील होते हैं। द्वन्द्वों को सहन करना ही तितिक्षा है। माला पहना दो, तो बहुत ज्यादा गद्गद् नहीं। और धक्का मारकर भगा दो, तो मुँह लटकाकर बैठते नहीं उनके लिये दोनों बराबर हैं। क्योंकि वह आत्मस्थ हैं, अपने में स्थित है इसलिये स्वस्थ हैं। हम लोग अस्वस्थ हैं क्योंकि बाहर स्थित हैं, स्व में स्थित नहीं हैं। संत सारे द्वंदों को समान रूप से स्वीकार कर लेता है। संत यदि कदाचित् जीवन में दुखी होवे, तो अपने कारणों से नहीं अपितु दूसरों को दुखी देखकर दुखी होता है। क्योंकि उसमें करुणा बहुत होती है - '**कारुणिकाः**'। तीसरी बात, '**सुहृदः सर्वदेहिनाम्**' - जितने भी देहधारी हैं, सभी को अपना सुहृद मानता है। उसे संसार में कोई दूसरा नज़र ही नहीं आता। इसलिये '**अजातशत्रुः**' वह अजात शत्रु होता है।

निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध

जो सबमें अपने प्यारे का दर्शन करेगा, तो अब वैर करे तो किससे करे? ये सारा शरीर हमारा है, इस शरीर में अनेक अंग हैं - आँख है, नाक है, दाँत है, जीभ है, अधर है, ओष्ठ हैं, ... आदि-आदि। और इन सबको मिलाकर हमारा शरीर एक है। ये ज्ञान हमें सहज है कि सारे अंग हमारे हैं। अब इसी शरीर में कभी-कभी भोजन करते समय हमारे दाँतों से जीभ कट जाती है, तो क्या हम इन्हें अलग-अलग मानते हैं? यदि अलग-अलग मानते तो दाँतों पर क्रोध जरुर आता, क्यों रे दुष्टो! तुम इतने क्रूर हो? बत्तीस-बत्तीस मिलकर चारों तरफ से उस कोमल-सी जिह्वा को घेर के सताते रहते हो? इतना कष्ट उस बेचारी जिह्वा को दिया? अब तुम्हें हम देखते हैं। हथौड़ा लेकर दो-चार दाँत आज तक किसी ने टपकाये? उन्हें दण्ड क्यों नहीं दिया? अरे भाई! किसी निर्बल पर कोई अत्याचार करे और आप समर्थ हों, तो क्या उसे दण्ड नहीं दोगे? तो आप समर्थ हो दाँत तुम्हारे ही अधीन हैं। यदि उन्होंने जिह्वा को काट दिया, तो तुम दाँतों को दण्ड दो, तोड़ दो। क्यों नहीं तोड़े? क्योंकि सभी जानते हैं कि दाँत भी तो हमारे ही हैं। अब जिह्वा कट गई, उसका दर्द तो हो ही रहा है दाँत तोड़ देंगे तो दर्द और दुगुना हो जायेगा, क्योंकि दर्द तो हमें ही होगा - ये ज्ञान हमें ठीक से है, इसलिये हम दाँतों को दण्ड नहीं देते।

जिह्वां क्वचित् संदशति स्वदद्भिस्तद्वेदनायां कतमाय कुप्येत् । (भा.मा. 11/23/51)
यदङ्गमङ्गेन निहन्यते क्वचित् क्रुध्येत कस्मै पुरुषः स्वदेहे ॥ (भा.मा. 11/23/52)

किस पर क्रोध करें, ये ज्ञान हो जाने से संत अजातशत्रु हो जाता हैं। वह किसी से वैर नहीं करता। क्योंकि,

सीय राममय सब जग जानि । करहु प्रणाम जोरि जुग पानी ॥ (रामचरितमानस 1/8/1)

कपिल भगवान् कहते हैं, माँ! ऐसे संतों के संग में रहने से

सतां प्रसंगान्मम वीर्यसंविदो भवन्ति हृत्कर्णरसायनाः कथाः ।
तज्जोषणादाश्वपवर्गवर्त्मनि श्रद्धा रतिर्भक्तिरनुक्रमिष्यति ॥ (भा. 3/25/25)

उन संतों के बीच में बैठोगे, तो चौबीसों घंटे वह मेरी महिमा सुनायेंगे मेरी मधुर-मधुर कथा सुनायेंगे। नाम की महिमा, रूप की महिमा, स्वभाव की महिमा, प्रभाव की महिमा, भगवान् की कृपालुता की महिमा, भगवान् के करुणामय स्वभाव की महिमा, इतनी सुनायेंगे कि सुन-सुनकर आप अपने आप ही दीवाने हो जाओगे। '**श्रद्धा**

रति: भक्ति:' - अपने आप भगवान् की महिमा सुनकर श्रद्धा उत्पन्न होगी, फिर धीरे-धीरे प्रेम जागृत होगा और वही प्रेम बढ़ते-बढ़ते विशुद्ध भक्ति के रुप में स्थित हो जायेगा। इसलिये सबसे बढ़िया साधन है - संतों का संग। अब आगे भगवान् कपिल ने सृष्टि-प्रक्रिया भी बहुत विस्तार से बतलाई। कपिल भगवान् अष्टांग-योग का वर्णन करते हैं - यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। साधक को चाहिये कि सबसे पहले पावनभूमि का चयन करे क्योंकि भूमि का भी प्रभाव मन पर पड़ता है। इसलिये,

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य विजितासनआसनम्।

पावनभूमि पर बैठकर आसन को जीतकर, विशुद्धभाव से प्राणायम के द्वारा मन को शुद्ध करें और फिर भगवान् का ध्यान चरणों से प्रारम्भ करें। '**स्वनासाग्रावलोकन:**' नासिका के अग्रभाग का अवलोकन करते हुए भगवान् का ध्यान करें।

सञ्चिन्तयेद्भगवतश्चरणारविन्दं वज्राङ्कुशध्वजसरोरुहलाञ्छनाढ्यम् ।
उत्तुङ्गरक्तविलसन्नखचक्रवालज्योत्स्नाभिराहतमहद्धृदयान्धकारम् ॥ (भा. 3/28/21)

भगवान के श्रीचरण कैसे हैं? ऊपर को उभरे हुए बाहर को लाल-लाल तलुवे हैं, उन तलुवों में बढ़िया-बढ़िया चिह्न बने हुए हैं। वज्र, अंकुश, ध्वजा, जौ, आदि सब चिन्ह[1] हैं, उनका भगवान् के पदों में ध्यान करना चाहिये। तलुवे की लालिमा में जब खूब चित्त चिपक जावे, तब फिर भगवान् के चरणों के नखों का ध्यान करना चाहिये। भगवान् के पद नख पूर्णिमा के चन्द्रमा की तरह चमक रहे हैं। उसमें से प्रकाश निकल रहा है, ज्योत्स्ना निकल रही है। उन भगवान् के पद-नख-चंद्रिका की ज्योत्सना से साधक के हृदय का सारा अंधकार नष्ट हो जाता है। भगव[illegible] नख को चंद्रिका क्यों कहा? क्योंकि चन्द्र में प्रकाश भी होता है और शीतलता भी होती है। भक्त भगवान् के पद-नख-चंद्रिका की ज्योत्स्ना का ध्यान करेगा, तो परम-शीतलता भी मिलेगी और अज्ञान का अंधकार भी मिटेगा। पाद-तल के ऊपर का भाग जो है, वह श्याम-स्वरूप है।

अब देखिये! भगवान् के चरणकमलों में तीन रंग हो गये - 1. लाल-लाल हैं तलवे, श्वेत हैं नख और 3. ऊपर का भाग है श्याम। साक्षात् तीर्थराज प्रयाग प्रकट हो रहा है प्रभु के चरणों में। तीर्थराज प्रयाग में त्रिवेणी तीन धारा - गंगा, यमुना और सरस्वती। गंगा की धवल-धारा, यमुना की श्याम-आभा और सरस्वती की रक्त-कान्ति है परन्तु वह लुप्त है, दृष्टिगोचर नहीं होती। ऐसे ही हमारे प्रभु खड़े हुए हैं, इसलिये सरस्वती की जो लाल-कान्ति तलवों की है, वह ढंकी हुई है, छुपी हुई है। ये तो भगवान् के पाद-सेवक जो भक्त हैं, वह ही चरणों की सेवा करते-करते उस लालिमा की कान्ति का आनन्द ले लेते हैं, सबको थोड़े ही मिलती है? तो प्रभु के खड़े होने से पाद-तल की रक्त-आभा तो छुपी हुई है। पर नखों की श्वेत-कान्ति और ऊपर की श्याम-आभा चमक रही है, जैसे-तीर्थ[illegible] में गंगा और यमुना की धारा तो दृष्टिगोचर होती है, पर भगवती सरस्वती लुप्त है। इसलिये इसका नाम है - त्रिवे[illegible]। मातायें जो केश गूंथती हैं, उसे संस्कृत में वेणी कहते हैं। पर आपने देखा होगा कि मातायें जब केश सँवारती हैं, तो अपने केशों के तीन भाग करती हैं। और तीन भाग करके गूंथना जब प्रारम्भ करती हैं, तो आपको दो ही धारायें नजर आवेंगी तीसरी का पता नहीं चलेगा। केश तीन भागों में

1. अंकुस अंबर कुलिस कमल जव धुजा धेनुपद । संख चक्र स्वस्तिक जंबूफल कलस सुधाहृद ॥
अर्धचन्द्र षटकोन मीन बिन्दु ऊरधरेखा । अष्टकोन त्रैकोन इन्द्रधनु पुरुष विशेषा ॥
सीतापति पद निज बसत एते मंगलदायका । चरण चिन्ह रघुवीर के सन्तन सदा सहायका ॥ (भक्तमाल 3)

बांटे जाते हैं, पर गूंथते समय दो ही दिखते हैं तीसरा उसी में लुप्त है। इसलिये यह भी त्रिवेणी है। धारा तीन है, पर दिखेंगी दो तीसरी उसी में लुप्त है।

भगवान् के ऐसे सुन्दर चरणकमलों में चित्त लगाने के बाद फिर एक-एक करके ऊपर के अंगों का ध्यान करें। घुटनों का, जंघाओं का, कटि का, नाभि का, हृदय का, हृदय में श्रीवत्स के चिन्ह का, कण्ठ में कौस्तुभमणि का। चार भुजाओं में शंख, चक्र, गदा व पद्म का ध्यान करने के पश्चात् तब भगवान् के मुखकमल का ध्यान करें। भगवान् के प्रत्येक अंग प्राय: कमल से उपमा दिये जाते हैं।

शंका - भगवान् के प्रत्येक अंग को प्राय: कमल की उपमा क्यों दी जाती हैं? **समाधान** - इसलिए दी जाती है क्योंकि इस सृष्टि में सब पदार्थ ब्रह्माजी के बनाये हुए है, पर कमल ब्रह्माजी ने नहीं बनाया। ब्रह्माजी स्वयं कमल से ही पैदा हुए हैं। तो भगवान् के सभी अंगों की उपमा प्राय: कमल से ही की जाती है।

श्रीरामचन्द्र कृपालु भज मन हरण भव भय दारुणम् ।
नव कंज लोचन कंज मुख कर कंज पद कंजारुणम् ॥ (विनय पत्रिका 45)

सभी अंगों को कमल की उपमा दी गई है। भगवान् के मुखकमल की कान्ति का ध्यान करते समय विचार करें कि कितनी सुन्दर भगवान् के ललाट की आभा है। पुष्पधनु के समान सुन्दर भृकुटी है, मत्स्य के समान विशाल नेत्र हैं, शुकपिण्ड के समान सुन्दर नासिका है, बिम्बाफल के समान लाल-लाल अधर हैं, मन्द-मन्द मुस्कुराने से अन्दर की दन्तावली भी दमक रही है। लाल-लाल अधरों का प्रतिबिम्ब उस श्वेत-दन्तावली के ऊपर पड़ रहा है, इसलिये अनार के रस भरे दानों की तरह वह दन्तावली दमक रही है। माधव नैन मटकाकर और मुस्करा हमारे चित्त को चुरा रहे हैं, संकेत देकर हमें बुला रहे हैं - ऐसी दिव्यभावना ध्यान में करना चाहिये। कपिल भगवान् कहते हैं, माँ! एक बार ध्यान में जिसने भगवान् की मुस्कान का आनन्द ले लिया, तो उसके जीवन में शोकाश्रु सदा-सर्वदा के लिये सूख जाते हैं।

हासं हरेरवनताखिललोकतीव्रशोकाश्रुसागरविशोषणमत्युदारम् ।
सम्मोहनाय रचितं निजमाययास्य भ्रूमण्डलं मुनिकृते मकरध्वजस्य॥ (भा. 3/28/32)

आपके लोटे में खारा पानी भरा है। अब गंगाजल भरना चाहते हो तो पहले खारा पानी फेंकना पड़ेगा, तब उसमें गंगाजल भरेगा । उसी प्रकार हमारे भीतर अभी शोकसागर भरा है। पर जब जीव भगवान् की ओर अभिमुख होता है, तो पहले तो भगवान् के विरह में खूब अश्रुपात करता है। रोते-रोते जब खारा पानी पूरा निकल जाता है, पात्र खाली हो जाता है और जहाँ भगवान् की छटा का दर्शन किया, तो ऐसा आनन्द उमड़ता है, ऐसा रस भरता है कि ज्यादा पानी भर दो, तब भी तो छलकता है? तो भगवान् के प्रेम का सागर जब भक्त के हृदय में बहुत ज्यादा भर जाता है और वह उसे सँभाल नहीं पाता, तब नेत्रों के प्यालों से वह भी छलकने लगता है। भगवान् के विरह में यदि आँखों से अश्रुपात होता है, तो वह शोकाश्रु है। पर भगवान् की दिव्यानन्द की अनुभूति के बाद भी भक्तों को अश्रुपात होता है, वह प्रेमाश्रु है। परमशीतल होता है, परमानन्द प्रदान करने वाला होता है।

माता देवहूति प्रश्न करती हैं, बेटा! भक्त कितने प्रकार के होते हैं? कपिल भगवान् बोले, माँ! जो भगवान् को केवल मन्दिर की मूर्ति में ही सीमित रखता है वह प्राकृत-भक्त है, साधारण-भक्त है। पर जितना भगवान् का दर्शन मन्दिर की मूर्ति में कर रहा है, वैसे ही दर्शन चलते-फिरते संतों में भी होने लगे तो वह मध्यमकोटि का भक्त

है। परन्तु प्रत्येक शरीरधारी के अन्दर भी उसी शक्ति का दर्शन होने लगे, वह उत्तमकोटि का भक्त है जो सभी शरीरधारियों में उसी को देख रहा है।

अहं सर्वेषु भूतेषु भूतात्मावस्थितः सदा ।
तमवज्ञाय माँ मर्त्यः कुरुतेऽर्चाविडम्बनम् ॥ (भा. 3/29/21)

कपिल भगवान् कहते हैं, मैं समस्त देहधारियों के मध्य विराजमान हूँ। मुझ नारायण के किसी भी प्राणी से द्रोह करने का मतलब, मुझ परमात्मा से द्रोह करना। उसके मन को कैसे शान्ति मिल सकती है, जो किसी से द्रोह कर रहा है? **'न मनः शान्तिमृच्छति'** वह कभी शान्ति को प्राप्त नहीं कर पाता। पर एक चौथा भक्त भी बतलाया है, जो दिन-रात भगवान् को सबमें देखता हुआ प्रभु का चिन्तन तो करता है, उपासना भी खूब करता है परन्तु प्रभु से कभी कुछ माँगता नहीं, वह निष्काम भक्त है। अरे! माँगना तो फिर भी दूर? परमात्मा स्वयं प्रकट होकर कहें कि मेरी प्रसन्नता के लिये भी माँग! तेरी इच्छा यदि लेने की नहीं है, तो मेरी तरफ से मेरी इच्छा के लिये तू ले ले। पर,

दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः

पाँचों प्रकार की मुक्ति को भी जो ठुकरा देता है, जिसे कुछ नहीं चाहिये, केवल भगवच्चरणों की सेवा चाहते हैं। कपिल भगवान् कहते हैं, बस जो मेरी सेवा के अतिरिक्त मुक्ति को भी ठुकरा दे, वह मेरा सबसे प्यारा भक्त है। उसके समान मुझे जगत् में और कोई प्यारा नहीं। ऐसे भक्तों की महिमा में एकादशस्कन्ध में भगवान् उद्धव से कहते हैं,

न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिर्न शंकरः ।
न च सङ्कर्षणो न श्रीर्नैवात्मा च यथा भवान् ॥ (भा.मा. 11/14/15)

भगवान् उद्धव से कहते हैं, प्यारे उद्धव! तेरे-जैसे भक्त मुझे जितने प्यारे लगते हैं, उतने तो मेरे ही जो सगे बेटे ब्रह्माजी हैं, वह आत्मयोनि ब्रह्मा भी मुझे उतने प्यारे नहीं लगते न शंकर-बाबा इतने प्यारे लगते हैं बड़े भैया बलरामजी भी मुझे इतने प्यारे नहीं लगते। फिर भगवान् कहते हैं कि मेरी अर्धांगिनी लक्ष्मी भी मुझे उतनी प्यारी नहीं। और अन्त में कहते हैं कि न मुझे अपना ये कृष्ण रूप इतना प्रिय लगता है, जितना कि तुम-जैसे प्यारे भक्त मुझे प्रिय लगते हैं। इतनी प्रशंसा प्रभु ने भक्तों की।

नामदेवजी महाराज तो ठाकुरजी से बातें करते थे। तो नामदेवजी ने शिकायत की प्रभु से आप बड़े भारी भक्तवत्सल कहलाते हो, पर हम तो देखते हैं कि आपके भक्त बड़े परेशान घूमते हैं? भगवान् बोले, कौन हैं? नामदेव बोले, देखो! आपके ही अनन्य भक्त राँका और बाँका। दोनों पति-पत्नी हैं और बड़े अकिंचन भी। बेचारे जंगल में दिनभर लकड़ी काटते हैं, फिर बाजार में बेचते हैं। उससे जो धन मिलता है, तब सामान खरीदते हैं और घर में चूल्हा जलता है। और जो बनता है, उसका फिर आपको भोग लगाते हैं। उसी से आपकी सेवा करते हैं। एक दिन लकड़ी काटने न जायें? तो फिर भूखा सोना पड़ता है। प्रभु! आप कृपा क्यों नहीं करते? इन्हें कुछ तो दो। कम-से-कम एक दिन का भोजन तो ठीक से मिल जाया करे? भगवान् बोले, नामदेव! बहुत कोशिश करता हूँ, पर वह लेते ही नहीं? नामदेव बोले, वाह! आप देंगे, तो क्यों नहीं लेंगे? भगवान् बोले, चलो! तुम भी देख लो, भगवान् नामदेवजी के साथ गये।

दोनों दम्पति लकड़ी काटने जा रहे थे। ठाकुरजी ने रास्ते में स्वर्ण मुद्राओं से भरी हुई एक थैली डाल दी।

और दो-चार मुद्रायें बाहर निकालकर डाल दीं, ताकि दृष्टि पड़ जाये। अब पतिदेव आगे, पत्नी पीछे। जहाँ पतिदेव की दृष्टि स्वर्ण की उस थैली पर पड़ी कि सोने की मुद्रायें पड़ी हैं। पर लांघ के चले गये। फिर ध्यान आया कि देवीजी पीछे आ रही हैं, इस धन को देखकर कहीं उनका मन खराब न हो जाये। सो तुरन्त वापिस मुड़े और उन स्वर्ण मुद्राओं को ढकने के लिये ऊपर से मिट्टी डालने लगे। इतने में धर्मपत्नी पास में आ गई। जब उनकी दृष्टि पड़ी तो हंसकर बोली, महाराज! ये मिट्टी पर मिट्टी क्यों पटक रहे हो? पतिदेव के होश उड़ गये, वाह देवी! तुम तो मेरे से भी दो हाथ आगे निकल गई। मेरी दृष्टि में तो ये सोना और वह मिट्टी है, परन्तु तुम्हारी दृष्टि में तो दोनों ही मिट्टी है। बहुत प्रसन्न हो गये। फिर बोले, देवी! मैं तो सोच रहा था कि इन स्वर्णमुद्राओं को देखकर कहीं तुम्हारा मन चंचल न हो जाये, इसलिये ढक रहा था।

भगवान् सुन रहे थे और नामदेवजी को बता रहे थे, सुन लिया आपने? अब बताओ! इन्हें मैं क्या दूँ? ऐसे वीतराग, ऐसे अकिंचन। चलो यदि ये लकड़ी काटकर ही बेचते हैं, तो हम इनका इसी में सहयोग कर देते हैं। भगवान् गये सूखी-सूखी लकड़ियाँ जंगल से इकट्ठी करके रख दीं, ताकि ये आयेंगे तो काटना तो नहीं पड़ेगा आराम से उठाकर ले जायेंगे। परिश्रम तो इनका कुछ कम होगा? पर दोनों दम्पति ने चारों तरफ जंगल में देखा, लकड़ी कहीं नहीं? जितनी है सब एक जगह कटी हुई रखी है। तो पति बोले, देवीजी! लगता है कि कोई लकड़हारा हमसे पहले ही आकर, लकड़ी काटकर रख गया है। अब वाहन लेने गया होगा, बाद में आकर ले जायेगा। उसकी काटी हुई लकड़ी यदि हम उठाकर ले जायें, तो वह हमें गाली देगा; हमसे तो अपराध हो जायेगा। अब ये दूसरे की अमानत हो गई, हम तो इसे हाथ लगाने वाले नहीं और इसके अलावा सूखी लकड़ी कहीं जंगल में दिख नहीं रही लगता है। आज वैसे ही निराहार रहना पड़ेगा, ऐसे ही सोना पड़ेगा। पत्नी तुरन्त बोली, महाराज! वह धन देख लिया था आपने? उस दूषित धन का ही ये दुष्परिणाम है, जो आज भूखा सोना पड़ेगा। धन का दर्शन ही दूषित होता है। भगवान् ने कहा, नामदेव! सुन लिया तुमने? जो धन को इतना दूषित मानते हैं कि दर्शनमात्र से ही उन्हें लगता है कि हमें आज भूखा रहना पड़ेगा, तो मैं इन्हें कैसे दूँ? तुम्हीं बताओ? ये भगवान् के सबसे प्रिय अकिंचनभक्त हैं। भगवान् ऐसे भक्तों के पीछे-पीछे भागते हैं।[1]

निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शनम् ।
अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः ॥ (भा.मा. 11/14/16)

भगवान कहते हैं, जो निरपेक्ष है, किसी से कोई अपेक्षा नहीं रखता केवल मेरे भजन में ही मस्त रहता है, प्रारब्धानुसार जो मिल जाता है, उसी को स्वीकार करता है – मैं ऐसे भक्तों के पीछे-पीछे भागता हूँ, ताकि उसके चलने से जो धूल उड़े, उसी धूल में अभिषिक्त होकर अपने को पावन कर पाऊँ। उसके चरणों की रेणु से मैं अपने को पावन करता हूँ। इतनी महिमा भक्तों की भगवान् ने गाई। कपिल भगवान् कहते हैं, माताजी! जो हरि का भजन न करके संसार के विषयों में ही रंगे रहते हैं, ऐसे विषयासक्त संसारी जीव को लेने के लिये यमदूत आते हैं। ये संसार एक दुःखतन्त्र है।

गृहेषु कूटधर्मेषु दुःखतन्त्रेष्वतन्द्रितः ।
कुर्वन्दुःखप्रतीकारं सुखवन्मन्यते गृही ॥ (भा. 3/30/9)

---

1. श्रीनाभागोस्वामीकृत भक्तमाल की भक्तिरसबोधिनी टीका में श्रीप्रियादासजी ने भक्तमाल छप्पय 97 के अन्तर्गत अपनी टीका का कवित्त 401-403 में इस भक्त-दम्पत्ति की निस्स्पृहता का वर्णन किया गया है। पाठकगण वहाँ अवश्य देखें।

संसार का प्राणी जानता ही नहीं कि सुख किसे कहते हैं। वह दु:ख के निराकरण को ही सुख की संज्ञा दे देता है। कोई सिर पर भार लिये जा रहा है, बोझ से दबा जा रहा है। इतने में वृक्ष की छांह दिखाई पड़ी, तो भार उतारकर उसने रख दिया और ठण्डी हवा चली तो प्रसन्न होकर बोला, वाह! आनन्द आ गया। अरे! आनन्द तो था ही, तो आनन्द किसका आ गया? जो भार तुमने अपने कंधे पर रखा था, वह भार तुमने दूर कर दिया? तो दु:ख का निवारण हुआ कि नहीं? उस भार से निवृत्ति मिली कि नहीं? पर उस भार की मुक्ति को ही वह आनन्द का नाम देता है। भूख बहुत जोर से लग रही थी। किसी ने भोजन करा दिया तो भोजन पाते ही डकार लेकर बोले, वाह साहब! आनन्द आ गया। अरे! आनन्द क्या आ गया? भूख की जो पीड़ा सता रही थी, वह भोजन करने से दूर हो गयी। तो दु:ख का निराकरण ही तो हुआ? प्यास लग रही थी, पानी पिया तो प्यास बुझ गई। हम पानी पीकर बोले, आनन्द आ गया। अरे! आनन्द किस बात का आ गया? जो प्यास की पीड़ा थी, वह पानी से दूर हो गई।

तो हम पीड़ा की निवृत्ति को ही सुख संज्ञा दे देते हैं। सुख क्या होता है? ये हम लोग जानते तक नहीं, सारा जीवन हम इसी प्रकार दु:ख का प्रतिकार करते-करते, दु:ख के प्रतिकार को ही सुख समझते रहे। जब ये शरीर वृद्ध हो जाता है, तो कपिल भगवान् कहते हैं कि माँ! परिवार के लोग धक्का मारकर ऐसे निकाल देते हैं, जैसे-बुड्ढे बैल को किसान निकाल देता है। कृपण-किसान बैल को तब तक खिलायेगा, जब तक वह हल चलायेगा। मतलब का न रह जाये, तो घास भी देना बंद कर देता है।

नाद्रियन्ते यथा पूर्वं कीनाशा इव गोजरम्

फिर भी जीव की आसक्ति परिजनों से छूटती नहीं। दिन-रात गाली देने वालों में ही उसकी प्रीति और आसक्ति होती है। अन्त में जब यम के दूत आते हैं, सो जहाँ पकड़कर ले जाने लगे कि डर के मारे मल-मूत्र त्याग देता है। '**शकन्मूत्रं विमुंचति**' फिर भी बलात् पकडकर उसे 99000 योजन दूर घसीटकर नरकों में डाल देते हैं। वर्षो तक भयंकर नारकीय कष्ट भोगता है। फिर माँ के गर्भ में आ जाता है। नौ माह पर्यन्त माँ के गर्भ में भी भयंकर कष्ट भोगता है। एक-एक करके फिर दिन गिनता हुआ बाहर निकलने की प्रतीक्षा करता है। प्रभु से प्रार्थना करता है, प्रभो! इस बार इस नरक से बाहर निकाल लो। सौगन्ध खाता हूँ कि दुबारा संसार के चक्कर में नहीं पड़ूंगा। बस! एक बार छुटकारा मिल जाये।[1] भगवान् कहते हैं, बावरे! तू बार-बार ये ही कहकर जाता है, पर बाहर जाते ही सब भूल जाता है? जीव रोता हुआ कहता है, अरे प्रभु! भूल जाता हूँ तो आप ही थोड़ा याद दिला दिया करो? भगवान् कहते हैं, बेटा! हम तो खूब घंटी बजाते हैं, पर तुझे सुनाई ही नहीं पड़ती? भगवान् को दया आ गई। प्रसूति-वायु से बाहर कर दिया, सो बाहर आकर '**क्वाहम् क्वाहम्**' मैं कौन हूँ? मैं कौन हूँ? करके रोया। कहाँ आ गया भाई? कौन हैं ये लोग? सब अपरिचित सारा संसार उसके लिये अपरिचित है। सब नये लोग, कल तक जिनसे कोई लेना-देना नहीं था। पर धीरे-धीरे अब मायाजाल बढ़ा।

जन्म लेते ही बालक छींकता है, जन्म लेते ही रोता है और जन्म लेते ही लोग चारों तरफ से पूछते हैं, क्या हुआ? बेटा हुआ या बेटी? और यात्रा में ये तीनों ही अपशकुन माने जाते हैं। चलते समय छींक दे तो अपशकुन। चलते समय कोई टोक दे - ये टोकना भी अपशकुन। चलते समय रोना भी अपशकुन। पर हमारी जीवनयात्रा में ये सब एक साथ हो गये। ज्यों-ज्यों बड़े होते गये, बाल्यावस्था में भी बड़े कष्ट भोगे। मच्छर आकर काट गया, बच्चा रो पड़ा। न खुजला पा रहा है, न कह पा रहा है, न बता पा रहा है केवल रोता है। माँ

ने समझ लिया कि शायद भूखा है, जबरदस्ती दूध पिला रही है। दूध नहीं पीता? अरे! लगता है कान में दर्द हो रहा है, तो कान में तेल डाल दिया। माँ की जो सूझ-बूझ हो जैसी, वैसा ही इलाज करने लगती है। बालक तो बता नहीं सकता? इसलिये

रुदन्तं विगतज्ञानं कृमय: कृमिकं यथा

उसके रोने का ज्ञान तो किसी को नहीं है, इसलिये जिसकी जो समझ में आ जाये, वही करता है। दर्द हो रहा है कान में और देखा जा रहा है पेट दबा-दबाकर कि शायद इसका पेट खराब है। धीरे-धीरे और बड़ा हुआ। माँ ने फिर नई दुनिया से धीरे-धीरे परिचय कराया, ये पिताजी हैं, ये मामाजी हैं, ये फूफाजी हैं, ये काकाजी हैं, आदि। माँ ने जैसा-जैसा बता दिया, धीरे-धीरे उसने देख लिया, जान लिया। ये अपने हैं, ये पराये हैं। जब जन्म लिया था, तब वह बालक विशुद्ध ब्रह्मस्वरूप ही था। न अपने, न पराये, न राग, न द्वेष। पर अब? धीरे-धीरे,

अहं ममेत्यसद्ग्राह: करोति कुमतिर्मतिम्

ये मेरे हैं, वह पराये हैं, ये मित्र हैं, वह शत्रु हैं। मायाजाल में ऐसा फंस गया कि परमात्मा की सत्ता को भूल गया। भगवान् ने खूब यादें दिलाई, घण्टियां बजाई, पर एक न सुनी। भगवान् कहते हैं,

बलं मे पश्य मायाया: स्त्रीमय्या जयिनो दिशाम् ।
या करोति पदाक्रान्तान् भ्रूविजृम्भेण केवलम् ॥ (भा. 3/31/38)

कपिल भगवान् कहते हैं, माँ! मेरी माया का पराक्रम देखो कि बड़े-बड़े ज्ञानियों को, ध्यानियों को अपनी भृकुटी टेढ़ी करने मात्र से संसार में डाल देती है, यही माया का चमत्कार है। भगवान् नर-नारायण ऋषि के अतिरिक्त कोई इस माया से नहीं बचा। जानते हैं, समझते हैं, देख भी रहे हैं, अनुभव भी कर रहे हैं; इसके बाद भी माया की प्रबलता कितनी विचित्र है? कि फिर भी बच नहीं पा रहे हैं, फिर भी सँभल नहीं पा रहे हैं। चलचित्र देखते-देखते ये मालूम है कि हम चलचित्र देखने ही आये हैं, द्रष्टा को पता है। फिर भी उस में हम इतने तन्मय हो जाते हैं कि यदि अभिनेता पर संकट आ जाये, वह बेचारा वियोग की आग में जल रहा हो, रो रहा हो तो दर्शकों की आँखों में भी आंसू आ ही जाते हैं। जबकि ये भी मालूम है कि ये सब काल्पनिक है, सच्चाई नहीं है ये भी मालूम है कि ये चलचित्र है, सब अभिनय कर रहे हैं। और इसके बाद भी अभिनय विचित्र तो उसमें तादात्म्य स्थापित हो गया और हम भी वैसा ही अनुभव करने लगे। ये सारा संसार परमात्मा का ही विचित्र लीला मंच है, हम सब लोग अभिनेता हैं। जिसे जो अभिनय प्रभु ने दिया है, वह कर रहा है। बहुत बढ़िया अभिनेता जो मंच पर अभिनय करता है, उसे फिर सूत्रधार पुरस्कार भी देता है क्योंकि बहुत बढ़िया अभिनय किया। तो परमात्मा ने जिसे जो जिम्मेदारी दी है, जो दायित्व दिया है उस दायित्व का हम पूर्णत: पालन करें। अभिनय के साथ ऐसा जीवन्त अभिनय करें कि हमारे वह प्रभु हमारे वह सूत्रधार हमारे अभिनय से प्रसन्न हो जायें। क्योंकि सबको नचाने वाला सूत्रधार तो वही है, सबकी डोरी तो उसी के हाथ में है। उसने सबको भूमिका दे रखी है कि आपको बढ़िया नृत्य करना है, बढ़िया अभिनय करना है।

1. गरुडपुराण प्रेतकल्प 6/17-20 में इस प्रसंग का उल्लेख है। जीव भगवान् से प्रार्थना करता है, 'हे नाथ! आपकी माया से मोहित होकर मैं देह में अहंभाव तथा पुत्र-पत्नी, आदि में ममत्वभाव के अभिमान से जन्म-मरण के चक्कर में फंसा हूँ। मैंने अपने परिजनों के उद्देश्य से शुभ-अशुभ कर्म किये, किन्तु अब मैं उन कर्मों के कारण अकेला जा रहा हूँ। यदि मैं इस गर्भ से बाहर आऊँ, तो फिर आपके चरणों का स्मरण करूँगा और ऐसा उपाय करूँगा, जिससे मुक्ति प्राप्त कर लूँ।
यदि योन्या: प्रमुच्येऽहं तत् स्मरिष्ये पदं तव । तमुपायं करिष्यामि येन मुक्तिं व्रजाम्यहम् ॥

उमा दारु जोषित की नाईं ।
सबहि नचावत राम गोसाईं ॥ (रामचरितमानस 4/11/4)

एक भक्त भगवान् से बड़ी सुन्दर बात कहता है, प्रभु! आपके इस लीला-मंच पर मैं आया, आपने ही मुझे भेजा। मैं भी आपके इस लीला-मंच का एक पात्र हूँ। यदि आपको मेरा अभिनय पसन्द आ गया तो इनाम दीजिये। भगवान् ने पूछा, बेटा! क्या चाहते हो? भक्त बोले, मुझे इस जन्म-मरण से छुटकारा दे दो, ये इनाम चाहिये। और यदि आप ये कहते कि नहीं नहीं! तुमने अच्छा अभिनय नहीं किया, हमें पसंद नहीं आया। तो मुझे वचन दीजिये कि यदि मेरा अभिनय आपको पसंद नहीं है, तो इस रंग-मंच पर दुबारा कभी मत भेजना। अरे! मौका तो तब दिया जाता है कि जब अभिनेता बढ़िया होता है। मंच पर उसी को तो भेजा जाता है, जिसका अभिनय बहुत बढ़िया हो, जो बढ़िया कलाकार हो। और यदि कलाकारी पसंद नहीं? तो इस रंग-मंच पर मत भेजो। और यदि पसंद आ गई, तो वरदान दो कि दुबारा इस मंच पर न आना पड़े। भक्त भी बड़े बुद्धिमान होते हैं। तो कपिल भगवान् कहते हैं, माँ! ये जीव जन्म-मरण के चक्रव्यूह में ऐसे ही फंसा हुआ है, कि '**पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननि जठरे शयनम्**' - जब तक भगवान् के पादपद्मों का आश्रय नहीं लेगा, तब तक ये चक्र छूटने वाला नहीं है। कपिलजी के पावनोपदेश से माँ देवहूति प्रसन्न हो गई और बोलीं, बेटा! तेरे सारे उपदेश का तो सार मैंने एक ही निकाला है,

अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान् यज्जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यम् ।
तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते ॥ (भा. 3/33/7)

माता देवहूति कहती हैं, यदि कोई चाण्डाल भी हो, पर वह भी भगवान् के नाम का आश्रय लिये है, जिसकी वाणी में सतत् भगवान् का स्मरण होता रहता है तो मेरे लिये तो वह चाण्डाल भी श्रेष्ठ है, जो नाम का आश्रय लेकर अपना ही नहीं अपने कुटुम्ब का कल्याण करने में समर्थ हो जायेगा। दूसरी ओर, भले ही कितना भी तपस्वी हो, तेजस्वी हो, ब्राह्मण ही क्यों न हो? परन्तु भगवत्पादारविन्द से विमुख हो; तो केवल ब्राह्मणत्व का अभिमान लिये बैठा रहेगा, तपस्या का अभिमान लिये बैठा रहेगा, कल्याण करने में समर्थ नहीं हो पायेगा।

क्षेमं न विन्दन्ति विना यदर्पणं तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः

ऐसा कहकर के देवहूति ध्यानमग्न बैठ गई। माता देवहूति को प्रणाम करके कपिल भगवान् चल पड़े। देवहूति माँ का देह तो प्रेम में पुलकित होकर पिघल गया और माता देवहूति जलरूप में परिणत हो गई। और कपिल भगवान् आकर सागर में विराजमान हो गये, सागर ने स्वागत किया और सागर के बीच आसन लगाकर कपिल भगवान् बैठ गये, जिसे हम गंगासागर कहते हैं। आज भी मकरसक्रांति पर्व पर सभी भक्त कपिल भगवान् का दर्शन करने गंगासागर जाते हैं।

इस प्रकार से देवहूति माँ को श्रीमद्भागवतसंहिता के तृतीय स्कन्ध में भगवान् कपिल ने उपदेश दिया। नाम संकीर्तन ही कपिल भगवान् के द्वारा अपने उपदेश का सार निरूपित किया। इसलिये हम भी सब मिलकर भगवान् के नाम की नौका में बैठ जायें और इस भवसागर को सहजता से पार कर लें। तत्पश्चात् इस पावन संहिता के चतुर्थस्कन्ध में प्रवेश करेंगे।

अथ श्रीमद्भागवतपुराणस्य

॥ चतुर्थः स्कन्धः ॥

(विसर्गः)

मनोस्तु शतरूपायां तिस्रः कन्याश्च जज्ञिरे ।
आकूतिर्देवहूतिश्च प्रसूतिरिति विश्रुताः ॥ (भा. 4/1/1)

मनु कन्याओं का वर्णन—मनु महाराज की बड़ी बेटी आकूति का विवाह रुचि प्रजापति के साथ पुत्रिकाधर्म[1] का आश्रय लेकर हुआ। इनके घर साक्षात् भगवान् यज्ञनारायण प्रकट हुये। यज्ञनारायण भगवान् का विवाह दक्षिणा नाम की कन्या से हुआ। इसलिये बिना दक्षिणा के यज्ञ अपूर्ण माना जाता है।

शुकदेवजी कहते हैं, परीक्षित! मैत्रेय मुनि विदुरजी को ये प्रसंग सुनाते हुए बोले, विदुरजी! देवहूति माँ की जो नौ बेटियाँ हुई थीं, उनमें अनुसूया का विवाह अत्रि मुनि से हुआ। उनकी कोई सन्तान नहीं हुई, तो अत्रि ने तप किया। उस तपस्या से प्रसन्न होकर ब्रह्मा, विष्णु, महेश - ये तीनों देव प्रकट हो गये और बोले, '**वरं ब्रूयात्**'। अत्रि मुनि ने हाथ जोड़कर कहा, भगवन्! मैंने तो एक को पुकारा था, मेरे सामने तो तीन-तीन खड़े नज़र आ रहे हैं? भगवान् मुस्कुराकर बोले, हम देखने में ही तीन हैं, पर वस्तुतः तीन नहीं हैं एक ही समझिये। बोलो! तुम्हें क्या चाहिये? अत्रि बोले, महाराज! मैं तो सन्तान की कामना करता हूँ। तो तीनों ने ही 'तथास्तु' कह दिया। फलस्वरूप तीनों ही बेटे बनकर आये। ब्रह्माजी के अंश से चन्द्रमा का, भगवान् शिवजी के अंश से दुर्वासा मुनि और भगवान् नारायण के अंश से अनुसूया माँ के गर्भ से साक्षात् भगवान् दत्तात्रेय महाराज का प्राकट्य हुआ। दत्तात्रेय-मुनि भगवान् के अवतार हैं।

सोमोऽभूद्ब्रह्मणोंऽशेन दत्तो विष्णोस्तु योगवित् ।
दुर्वासाः शङ्करस्यांशो निबोधांगिरसः प्रजाः ॥ (भा. 4/1/33)

मैत्रेयजी कहते हैं, विदुरजी! मनु महाराज की सबसे छोटी बेटी प्रसूति देवी का विवाह दक्षप्रजापति के साथ हुआ, जिनके सोलह बेटियाँ हुईं। उन सोलह कन्याओं में तेरह कन्याएं धर्म की पत्नियां बनीं। उनमें धर्म की मूर्ति नामक पत्नी के गर्भ से भगवान् नर और नारायण ऋषिरूप में प्रकट हुये। ये आज भी बद्रीनाथ में विराजमान हैं। स्वाहा नामक एक बेटी अग्निदेव को ब्याही, स्वधा नामक बेटी पितरों को ब्याही और एक बेटी भगवान् शङ्कर को ब्याही जिनका नाम सती देवी है। शिवपत्नी सती देवी के कोई संतति नहीं हो सकी। क्योंकि एक बार दक्ष ने भोलेनाथ का अपमान किया, जिसे देवी सती सह न सकीं और माता सती ने अपना शरीर ही यज्ञ में त्याग दिया।

1. पुत्रिकाधर्म उसे कहते हैं कि हमारी बेटी का जो पहला पुत्र होगा, उसपर हमारा अधिकार होगा।
अपुत्रोऽनेन विधिना सुतां कुर्वीत पुत्रिकाम् । यदपत्यं भवेदस्यां तन्मम स्यात् स्वधाकरम् ॥ (मनुस्मृति 9/127)

विदुरजी ने चौंककर मैत्रेयजी से पूछा, भगवन् आश्चर्य होता है? भगवान् भोलेनाथ परमसुशील स्वभाव के हैं, साक्षात् करुणावतार हैं, दयामूर्ति हैं। शिव का अर्थ ही कल्याण है। ऐसे कल्याणस्वरूप भगवान् शिव से भला दक्ष ने द्वेष क्यों किया? और क्या इतना द्वेष किया कि जिसके फलस्9रूप माता सती को शरीर त्यागना पड़ा? कृपा करके इसका कारण बताइये।

मैत्रेयजी कहते हैं, सुनिये विदुरजी! एक बार पितामह ब्रह्मा ने समस्त देव-परिकर बीच अपने प्रिय पुत्र दक्ष को प्रजापति घोषित कर दिया। प्रजापति का पद पाते ही दक्ष को बहुत अहंकार आ गया, अभिमान ग्रसित हो गये।[1] जब इनका स्वागत समारोह आयोजित किया गया, जिसमें बड़े-बड़े देवता महात्मा सब इकट्ठे हुए। और अपनी उस स्वागत सभा में जब दक्षप्रजापति ने प्रवेश किया, तो सभी सभासदों ने खड़े होकर सम्मान दिया, स्वागत किया। दक्ष ने अहंकार में चारों तरफ दृष्टि घुमाते हुए सभा में प्रवेश किया और अपने स्वागत में खड़े हुए लोगों को देखकर गद्‌गद् हो गये। अचानक दृष्टि पड़ी कि तीन लोग खड़े नहीं हुए हैं, ब्रह्मा, विष्णु और महेश। तो ब्रह्मा और विष्णु को देखकर तो कुछ नहीं बोला, परन्तु भगवान् शिव को देखकर तो लाल-पीला हो गया, ये तो मेरा दामाद है? मैंने अपनी बेटी सती इसे ब्याही है? इसने मेरा सम्मान क्यों नहीं किया? बस अपनी गद्दी पर बैठते ही भाषण प्रारम्भ किया,

श्रूयतां ब्रह्मर्षयो मे सहदेवाः सहाग्नयः ।
साधूनां ब्रुवतो वृत्तं नाज्ञानान्न च मत्सरात् ॥ (भा. 4/2/9)

दक्ष ने कहा, सावधान होकर सब सुन लीजिये! केवल एक ही बात कहना चाहूँगा कि विशिष्ट लोगों में विशिष्ट लोगों का ही आगमन होना चाहिये। सभ्य समाज में एक भी असभ्य व्यक्ति आकर बैठ जाये, तो सभा का स्वरूप बिगड़ जाता है। सब एक-दूसरे का मुँह देखने लगे, यहाँ असभ्य कौन दिखाई पड़ रहा है? ये दक्ष ने किसको इशारा किया? किसके बारे में कह8रहे हैं? दक्ष ने कहा-इधर-उधर क्या देख रहे हो? तुम्हें ये शङ्कर दिखाई नहीं पड़ रहा? शिष्ट लोगों में बैठता, तो शिष्टाचार आता? चौबीसों घण्टे भूत-प्रेतों के संग में घूमते रहने वाला क्या शिष्टाचार और सभ्यता समझेगा? ये तो हमारे लिये कलंक है,

अयं तु लोकपालानां यशोघ्नो निरपत्रपः

लोकपालों में हमारी प्रतिष्ठा के यश को धूमिल करने वाला है, नष्ट करने वाला है। '**निरपत्रपः** - अर्थात् लज्जा तो इसमें बिल्कुल भी नहीं रही, ये निर्लज्ज है। बुरी तरह गालियां देना प्रारम्भ कर दिया।

एक संत तो कहते हैं कि ठीक ही कह रहा है। इसने क्या कहा? ये हम लोकपालों के यश को धूमिल कर देता है, तो ठीक बात तो है? मुख्यमन्त्रीजी की सभा हो, चारों तरफ से उनकी जय-जयकार जिन्दाबाद के नारे पड़ रहे हों और उसी समय अचानक प्रधानमन्त्रीजी आ जायें, तो सारी जनता मुख्यमन्त्री को छोड़कर भागेगी कि नहीं? तो उनके सामने अपने से बड़ा कोई महान् व्यक्तित्व आ जाये, तो छोटा व्यक्तित्व उनके सामने धूमिल हो जाता है। तो भगवान् शिव का ऐसा प्रभाव है, ऐसा तेज है, ऐसा वैभव है कि जहाँ भी जाते हैं, बड़े-बड़े लोकपालों का यश इनके सामने धूमिल हो जाता है। '**निरपत्रपः**' का एक अर्थ तो होता है निर्लज्ज। दूसरा अर्थ करते हैं, '**निर्गता अपसमन्ताद्त्रा त्राणं रक्षणं एषां ते निरपत्राः तान् रक्षकहीनान् पाति इति**' अर्थात् संसार

1. **बड़ अधिकार दच्छ जब पावा । अति अभिमान हृदयँ तब आवा ॥**
नहिं कोउ अस जनमा जग माहीं । प्रभुता पाइ जाहि मद नाहीं ॥ (रामचरितमानस 1/60/4)

में जिनका कोई त्राण करने वाला, रक्षा करने वाला नहीं। संसार में जिसका कोई भी रक्षक नहीं होता, ऐसे अनाश्रितों को रक्षा प्रदान करने वाले आश्रय प्रदान करने वाले भगवान् शङ्कर हैं।

एक बार भूत-प्रेत सब रोते-रोते आ गये, भोलेनाथ! कहाँ जायें? किसी के घर में जाने की कोशिश करते हैं, तो वहाँ के लोग छू-छू करके, मन्त्र पढ़वाकर, बोतल में बंद करवाकर, गड़वा देता है। कोई भी हमें अपने घर में घुसने ही नहीं देता? भोलेनाथ ने कहा, सबको छोड़ो! मेरे घर आ जाओ। सबको बुला-बुलाकर अपने घर का सदस्य बना लिया। और जब विवाह हो रहा था, तो देवताओं ने खूब हाथ जोड़कर कहा, महाराज! इन्हें बारात में मत ले जाना, नहीं तो विवाह होना मुश्किल हो जायेगा। भोलेनाथ ने कहा, विवाह होवे या न होवे, पर हमारे सदस्य हैं। हमारी शादी में जरूर जायेंगे। तो फिर भगवान् नारायण को कहना पड़ा, ठीक है! आप अपनी बारात लेकर बाद में ही आना, हम लोग अलग चलेंगे।[1] भोलेनाथ ने जिन्हें आश्रय दिया, उसे कभी नहीं त्यागा-ऐसे शरणदाता हैं, ऐसे परम अशरण-शरण हैं।

एक बार ऐसे ही साँप-बिच्छु रोते हुये आये कि महाराज! आपने हमें क्यों पैदा किया? शिवजी ने पूछा, तुम्हें क्या समस्या है? सर्प-बिच्छु सब बोले, महाराज! हमें जो देखता है, हमारा मुँह कुचलकर ही फेंक देता है। दुनिया वाले मार ही डालते हैं, जिंदा छोड़ते ही नहीं इतनी घृणा हमसे है। भोलेनाथ ने कहा, सबको छोड़ो! मेरे पास आ जाओ। और उठा-उठाकर उन साँप-बिच्छुओं को ही अपने हृदय का हार बनाकर धारण कर लिया, '**भुजगेन्द्रहारम्**' भुजंगों को ही जो अपना हार बना ले, साँप-बिच्छुओं को ही अपना कुण्डल बना लिए।[2] दुनिया जिनसे घृणा करती है, उन्हें आश्रय भोलेनाथ देते हैं। आक-धतूरा कोई पसंद नहीं करता। भोलेनाथ ने कहा, हमें चढ़ाओ। जिनका कोई रक्षक नहीं, उन्हें सुरक्षा व आश्रय प्रदान करने वाले भगवान् शिवशङ्कर हैं। तो महापुरुषल9ग तो निन्दा में भी स्तुति निकाल लेते हैं। चश्मा जिस रंग का होगा, वैसा ही संसार दिखेगा?

आज अभिमान के रंग में रंगा हुआ दक्ष जब भगवान् शङ्कर को देखता है, तो उसे दोष-ही-दोष नजर आ रहे हैं, ये शिव निर्लज्ज है। हमारे यश को धूमिल कर देने वाला है, इसके साथ बैठने का धर्म नहीं। एक ने दक्ष से पूछा, तुम्हें इतने दोष दिखाई पड़ रहे हैं, तो फिर बेटी क्यों ब्याह दी अपनी? जब बेटी का हाथ सौंपा, तब तुम्हें ये दोष दिखाई नहीं पड़े? तब तो दक्ष और गरम हो गया, ये मेरा दामाद बनेगा? मैं इसे अपनी बेटी कभी जीवन में ब्याहने वाला नहीं था। मैंने अपने पिता ब्रह्माजी का आदेश पालन करने के लिये अपनी बेटी इसे ब्याही थी। अन्यथा, कहाँ मेरी मृगलोचनी कन्या और कहाँ ये बन्दर-जैसी आँख वाला शङ्कर?

गृहीत्वा मृगशावाक्ष्याः पाणिं मर्कटलोचनः

दक्ष बोला, मैंने अपनी मृगलोचनी कन्या का विवाह इस मर्कटलोचन के साथ कर दिया। ऐसे-ऐसे कटु वाक्य बोले कि नन्दीश्वरजी से नहीं रहा गया। तमककर खड़े हुए कि अभी इसे जवाब देता हूँ। पर भोलेनाथ ने इशारा किया, चुप बैठो! नन्दीश्वर ने कहा, वाह महाराज! आपको कोई बंदर की आँख वाला बोले, आपके बारे में बुरा कहे और मैं चुपचाप बैठा रहूँ?

1. **बिष्नु कहा अस बिहसि तब बोलि सकल दिसिराज ।**
बिलग बिलग होइ चलहु सब निज निज सहित समाज ॥ (रामचरितमानस 1/92)
2. रामचरितमानस (1/91/1) में शिवजी के श्रृंगार का वर्णन है -
सिवहिं संभु गन करहिं सिंगारा । जटा मुकुट अहि मौरु सँवारा ॥
कुंडल कंकन पहिरे ब्याला । तन बिभूति पट केहरि छाला ॥

हरिहर निंदा सुनइ जो काना ।
होइ पाप गौ घात समाना ॥ (रामचरितमानस 6/31/1)

नन्दीश्वर बोले, स्वामी ! आपकी निन्दा सुनने वाले को गौघात का पाप लगता है। मैं आपका दोष न देख सकता हूँ, न सुन सकता हूँ। भोलेनाथ मुस्कुरा पड़े, अरे भाई! कोई बात नहीं गाली दे रहे हैं, तो क्या हुआ? हमारे ससुरजी ही तो हैं। बेटा ! ससुराल की गाली सबको सुननी पड़ती है। अन्तर इतना है कि और लोग शादी में गाली सुनते हैं, हम शादी के बाद सुन रहे हैं। तुम भी सुन लो! अनुमति नहीं मिली तो नन्दीश्वर बेचारे मन मारकर रह गये और शिवजी से बोले, ठीक है महाराज ! सुनो। और दक्ष का दुःसाहस बढ़ता ही चला गया। स्थिति ये आ गई कि क्रोध में भरे दक्ष ने अन्ततोगत्वा भगवान् शिव को शाप ही दे डाला, आज के बाद इस शङ्कर को किसी भी यज्ञ में कोई भाग न दिया जाये। जब शाप दिया तो नन्दीश्वर से अब रहा नहीं गया। और खड़े होकर बोले, ऐ प्रजापति दक्ष ! तुझे ये पद क्या मिल गया, तू इतना अभिमानी हो गया? अभिमान से भर गया? जब से आया है, तब से हमारे भोलेनाथ के अपमान में बड़बड़ाता जा रहा है? इसलिये मेरा शाप है कि तुझे बकरे का ही मुँह लग जाये। भृगुजी खड़े-खड़े दाढ़ी पर हाथ घुमाकर बोले, ऐ नन्दी ! ये ससुर-दामाद का आपसी झगड़ा है, तू बीच में क्यों बोला? मैं भी शाप देता हूँ कि शिवजी के गण पाखण्डी हो जायें। शिवजी के सारे गण खड़े हो गये, ऐ बुड्ढे बाबा ! तूने हमें पाखण्डी कैसे कहा? हम भी शाप देते हैं कि तेरे-जैसे चाटुकार ब्राह्मण भिखमंगा बन जायें - '**सर्वभक्षा द्विजातयः**'। भोलेनाथ ने कहा, अरे राम-राम ! ये स्वागत-समारोह हो रहा है या शाप-समारोह हो रहा है? सब एक-दूसरे को शाप दिये जा रहे हैं, आक्षेप लगाते जा रहे हैं। भोलेनाथ को लगा कि सब गड़बड़ हमारे कारण है। इसलिये हम ही यहाँ से खिसक जाते हैं। भोलेनाथ ने अपने सब गणों को शान्त किया, देखो भाई! सब शान्त हो जाओ और अपने घर वापिस चलो। समस्त गणों को शान्त करके भोलेनाथ तो कैलाश चले गये, परन्तु दक्ष के हृदय का क्रोध अभी शान्त नहीं हुआ, मन में एक गांठ लग गई।

रहिमन धागा प्रेम का मत तोड़ो चटकाय ।
टूटे से फिर न जुड़े जुड़े गांठ पड़ जाय ॥

एक बार धागा टूट गया, तो आप गांठ लगाकर जोड़ तो सकते हो पर वह गांठ अलग चमकती रहती है कि यहाँ से टूटा है। ऐसे ही प्रेमीजनों में लोगों के द्वारा सुलह तो कराया जा सकता है। परन्तु वह सामंजस्य चाहे जितना हो जाये, मन में एक गांठ तो लगी रहती है कि उस दिन ये मुझसे ऐसा बोला था।

शिवजी से द्वेष करके अबकी बार दक्ष ने हरिद्वार-कनखल में एक बड़े विराट यज्ञ का आयोजन किया। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड से सब देवी-देवता बुलाये गये, पर देवाधिदेव महादेव को कहीं-कोई चिट्ठी-पत्री नहीं, कोई निमन्त्रण नहीं भेजा गया। परन्तु भोलेनाथ तो अपने कैलाश में आनन्द कर रहे थे। यज्ञ की तिथि आई तो देवताओं के विमान उड़ने लगे। गडगड़ाते हुए जो देवताओं के विमान हैं, वह सब कैलाश पर्वत के ऊपर से निकले। अब देखिये! सब देवताओं को मालूम है कि भोलेनाथ इस यज्ञ में नहीं बुलाये गये, तब भी देवता अपने विमान भोले बाबा के ऊपर से ही निकाल रहे हैं। जब दो प्रेमियों में खटपट होती है तो तीसरे लोग बड़ा फायदा उठाते हैं। मामला शान्त भी हो रहा हो तो और तूल पकड़वाते हैं। क्रोध न आ रहा हो, तो और आ जाये कि देखो! हम अपने घर बैठे हैं और लोग हमारी ससुराल जा रहे हैं? पर भोलेनाथ को तो कुछ आपत्ति नहीं थी। अपनी आँख बंद करके अपने स्वरूप के आनन्द में मत्त हैं। पर देवी सतीजी का मन डगमगा रहा है कि आज

सवेरे से ही विमानों की झड़ी नहीं टूट रही? एक-के-पीछे-एक विमान गडगड़ाता चला जा रहा है। आखिर कुम्भ का पर्व तो इस वर्ष है नहीं। तो ये सब देवता हरिद्वार की तरफ क्यों भाग रहे हैं?

अब कुछ देवांगनाओं को जब विमान में जाते देखा, तो भगवती सती ने इशारे में पूछा बहिन! कहाँ जा रही हो? देवांगनाओं ने कहा कि अरी बहिन! तू अभी ससुराल में ही बैठी है क्या? तुझे नहीं मालूम कि तेरे मायके में तेरे पिता ने कितना बड़ा यज्ञ किया है। सारी दुनिया वहाँ भाग रही है और तू अपनी ससुराल में अभी तक बैठी है? सतीजी के तो होश उड़ गये, अरे राम-राम! मेरे मायके में यज्ञ है और मुझे ही नहीं मालूम? सतीजी मुस्कुराकर बोलीं, हाँ-हाँ बहिनों! तुम सब चलो, मैं बस अभी तैयार हो के आ रही हूँ। पर माता सती के मन में एक बड़ा ही द्वन्द्व खड़ा हो गया, ये कैसे हो गया? मैं तो अपने पिता की बड़ी लाड़ली हूँ। फिर पिताजी ने मुझे क्यों नहीं बुलाया? अब ये सब कारण तो वहाँ जाने के बाद ही पता चलेगा। पर बिना निमन्त्रण के मेरे भोलेबाबा तो सम्भवतः जाने वाले नहीं हैं। क्या करूँ? अच्छा! एक बार कोशिश तो करके देखती हूँ। माता सती ने आकर भोलेबाबा के चरण दबाना प्रारम्भ कर दिये। भोलेबाबा ने मुस्कुराते हुए पूछा, देवि! क्या बात है? सतीजी बोली, कुछ नहीं महाराज! हम पतिव्रताओं का धर्म ही है पति की सेवा करना। और मैं तो अपने धर्म का निर्वाह मात्र कर रही हूँ। भोलेनाथ हँसकर बोले, देवीजी! आज आप कुछ ज्यादा ही धर्म निभा रही हैं? निःसंकोच बताइये, आपके मन में आज क्या है? तब सतीजी ने अपनी बात जरा घुमाकर कही,

प्रजापतेस्ते श्वशुरस्य साम्प्रतं निर्यापितो यज्ञमहोत्सवः किल ।
वयं च तत्राभिसराम वाम ते यद्यर्थितामी विबुधा व्रजन्ति हि ॥ (भा. 4/3/8)

सतीजी बोलीं, हे भोलेनाथ! जरा दृष्टि उठाकर ऊपर तो देख लीजिये? भोलेनाथ ने कहा, वो तो मैं सवेरे से ही देख रहा हूँ। सतीजी ने पूछा, क्या देख रहे हैं? शिवजी बोले, इन विमानों को! सतीजी ने कहा, आप देख तो रहे हैं, पर आपको शायद ये नहीं मालूम कि ये सारे विमान आपकी ही ससुराल जा रहे हैं। वहाँ पर आपके ससुरजी ने बहुत विशाल यज्ञ का आयोजन किया है। इसीलिये तो ये सारे विमान उसी यज्ञ में सम्मिलित होने के लिये आपकी ससुराल की तरफ जा रहे हैं।

अब ज़रा माता सतीजी की शब्दशैली देखिये। मातायें जब अपने मायके की बात करती हैं, तो बड़ी अकड़कर बात करती हैं कि मेरे मायके में आपने कभी सुना नहीं होगा, ऐसा कभी देखा भी नहीं होगा मेरे पिताजी के द्वारा इतना बड़ा यज्ञ हो रहा है। तो मेरा-मेरा शब्द ज्यादा बोलती हैं। पर आज सतीजी ने एक बार भी नहीं कहा कि मेरे मायके में या मेरे पिता ने ऐसा कुछ भी नहीं कहा। सतीजी बोलीं, हे भोलेनाथ! आपके ससुरजी ने आपकी ससुराल में बहुत बड़ा यज्ञ किया है, ताकि भोलेनाथ को अपनत्व प्रतीत हो। भोलेनाथ हँसकर बोले, देवी! तो क्या ससुराल से हमारे लिये कोई निमन्त्रण आया था क्या? सतीजी ने कहा, महाराज! आया तो नहीं पर भेजा जरूर होगा। कभी-कभी डाक गड़बड़ा जाती है। चिट्ठी जरूर भेजी होगी, किसी कारण से पहुँच नहीं पाई। महाराज! मेरे मन में तो बस एक ही कामना है कि हम सोलह बहिनें हैं, विवाह के बाद से बहिनों से कभी मिलना ही नहीं हुआ। आज इस यज्ञ में सब बहिनें आयेंगी और वह सब बहिनोई भी आयेंगे। तो हम सबका एक साथ मिलना होगा, देखना होगा। कितना आनन्द आयेगा?

तस्मिन् भगिन्यो मम भर्तृभिः स्वकैर्ध्रुवं गमिष्यन्ति सुहृद्दिदृक्षवः

सबसे मिलने का सबको देखने का बहुत मन हो रहा है। आप भी सबसे मिलोगे तो कितना आनन्द

आयेगा ? भोलेनाथ देवी सती की उत्कट-उत्कण्ठा को जान गये कि इनके मन में मायके जाने की प्रबल इच्छा है। तो हंसकर बोले, देवी ! जाने-आने में तो हमें भी कोई आपत्ति नहीं, चले चलते। तुम्हारा कहना भी बिल्कुल उचित है कि ऐसे अवसरों पर ही स्नेहीजनों से भेंट होती है, सबसे मिलना-जुलना होता है। परन्तु जाने-आने में आनन्द तब आता है कि हम जायें और हमें देखते ही लोग गद्‌गद् हो जायें तथा उन्हें देखकर हम गद्‌गद् हो जायें। ऐसी जगह जाने से क्या फायदा कि हम बिना न्यौता के प्रेम के साथ प्रेमियों से मिलने जा रहे हैं और वह हमें देखकर मुँह लटकाकर बैठ जायें। हमें देखकर उन्हें आग लग जाये, उन्हें देखकर हमारा हृदय जल जाये - ऐसे स्थान पर सोना भी बरस रहा हो, तो भी नहीं जाना चाहिये।

आवत ही हरषे नहीं, नैनन नहीं सनेह ।
तुलसी तहां न जाइये, चाहे कंचन बरसे मेह॥

शिवजी कहते हैं, देवी ! वहाँ कुछ भी हो रहा हो, हम जाने वाले नहीं। सतीजी ने कहा, आपने यहाँ बैठे-बैठे कैसे सोच लिया कि हम जायेंगे और हमें देखकर वह प्रसन्न नहीं होंगे ? अरे ! यदि हम पहुँचे तो पिताजी तो कान पकड़कर माफी माँगने लगेंगे कि बेटी ! मैं पत्र देना भूल गया। क्या करें, बड़े-बड़े कार्यक्रमों में कभी-कभी बड़े खास-से-खास निकटतम लोग भी छूट जाते हैं। पर ये गलती अनजाने में हो जाती है, आप चलिये तो सही।

अब भोलेनाथ को आज वह प्रसंग सुनाना ही पड़ा, जो अब तक सतीजी से छुपाये बैठे थे। भोलेनाथ ने पूरा प्रसंग जब विस्तार से सुनाते हुये कहा, देवि ! उस दिन तुम्हारे पिता के स्वागत समारोह में हम तनिक खड़े नहीं हुये। इसमें हमारा उद्देश्य उनका कोई अपमान करने का नहीं था। हमनें तो सर्वभूतहृदय भगवान-वासुदेव के चरणों में प्रणाम करते हुए दक्ष को भी प्रणाम किया था, पर मेरी भावना को समझे बिना दक्ष ने अपना अपमान मान लिया। देहाभिमानी देह को महत्व देता है। मैं खड़ा नहीं हुआ - इस बात को लेकर वह अपना अपमान अनुभव करने लगे और पूरी सभा के बीच में हजारों गालियां मुझे सुनाई। एक बात कहूँ कि देवी सती ! कोई बाण मार दे। बाण का घाव होता है, पीड़ा भी बहुत होती है परन्तु औषधियों के बल से घाव भी ठीक हो जाता है, पीड़ा भी दर्द भी सब ठीक हो जाता है। परन्तु अपने स्नेहीजनों के द्वारा जो वाणी का घाव हृदय पर लगता है, तो वह घाव कभी जीवन में ठीक नहीं होता। जब-जब उस वचन को याद करो, उतनी ही पीड़ादायक होता है। वह घाव कभी ठीक नहीं होता।

स्वानां यथा वक्रधियां दुरुक्तिभिर्दिवानिशं तप्यति मर्मताडितः

वह घाव दिन-रात तपाते हैं। देवि ! मैं तो सह गया, पर मैं तुम्हारे स्वभाव को भी जानता हूँ कि तुम सह नहीं पाओगी। अपमान की पीड़ा मृत्यु से भी भयानक होती है, जो तुमसे नहीं सही जायेगी। इसलिये मेरी बात मानो, वहाँ बिल्कुल मत जाना। तुम्हारा किसी भी प्रकार भला नहीं होगा। स्पष्टरूप से श्रीभोलेनाथजी ने समझा दिया, पर सतीजी का आग्रह फिर भी शान्त नहीं हुआ। सतीजी बोलीं, देखिये महाराज ! अब जो होना था, सो हो गया। परन्तु सम्बन्ध कोई छोटी-छोटी बातों के ऊपर टूट थोड़े ही जाते हैं ? वे आपके ससुर हैं और रहेंगे। अब ख़टपट हो गई, तो एक काम कीजिये - मुझे आज्ञा दीजिये। मैं जाऊँगी और पिताजी को समझाऊँगी। वह मेरी बात मान लेंगे, आपसे भी क्षमा माँग लेंगे और आपको भी यहाँ से मनाकर ले जायेंगे। यदि आप भी नहीं गये और मैं भी नहीं गई, तो हम लोगों की ये घर की लड़ाई पूरे समाज में फैल जायेगी। जितने भी बड़े देवी-देवता वहाँ पहुँचेंगे, तो एक ही चर्चा करेंगे कि दक्ष के दामाद का झगड़ा, अभी भी ठीक नहीं हुआ। इसीलिये न बेटी आई और न

दामाद ? तो घर की बात घर की लड़ाई चारों तरफ चर्चा का विषय बने - ये कोई अच्छी बात है ? आप मुझे आज्ञा दें। भोलेनाथ समझ गये कि होनी बहुत बलवती मालूम पड़ती है। मेरा इतना समझाने पर भी सती मेरी बात नहीं मान रही। पुरुषार्थ करने में कोई कसर नहीं छोड़नी चाहिये और उसके बाद भी बात नहीं बने, तो परमात्मा के ऊपर छोड़ देना चाहिये।

होइहि सोइ जो राम रचि राखा ।
को करि तर्क बढ़ावहिं साखा ॥ (मानस 1/52/4)

भोलेनाथ ने बहुत प्रकार समझाकर भी जब देख लिया कि सती मान नहीं रही, तो भोलेनाथ ने कहा - देवी ! अब जो तुम्हें अच्छा लगता हो, सो करो। और भोलेनाथ तो आँख बंद करके बैठ गये। भगवती सती बोलीं, महाराज ! तो मैं जा रही हूँ। भोलेनाथ कुछ बोले ही नहीं। फिर भी नहीं बोले तो सतीजी प्रणाम करके चल पड़ीं। सतीजी चलते-चलते सोचती जा रही हैं, हे भगवान् ! कहीं भोलेनाथ नाराज तो नहीं हो जायेंगे ? कहीं असन्तुष्ट तो नहीं ? अच्छा दुबारा कोशिश करती हूँ। मेरे भोलेनाथ तो आशुतोष हैं, बहुत जल्दी खुश हो जाते हैं। दुबारा प्रयत्न किया तो शायद प्रसन्न हो जायें। तो बहुत दूर तक जाने के बाद फिर लौट पड़ती हैं, फिर चरण दबाने लगती हैं फिर अनुमति माँगने लगती हैं। पर कोई उत्तर जब भोलेनाथ की ओर से नहीं मिलता, तो फिर निकल जाती हैं। सतीजी जाने लगती हैं तो, भोलेबाबा धीरे-से आँख खोलकर देखने लगते हैं कि क्या सचमुच चलीं गई। और सतीजी को जब वापिस अपनी ओर आते देखते हैं, तो आँख बंद करके फिर बैठ जाते हैं। सतीजी दुविधा में फंसी है। पिताजी की याद आती है, यज्ञ-महोत्सव का दृश्य आँखों में नाचता है तो भागने लगती हैं। और भोलेबाबा का ध्यान आता है, तो लौट पड़ती हैं -

निष्क्रामती निर्विशती द्विधाऽऽस सा

कभी बाहर, कभी भीतर। निर्णय नहीं ले पा रहीं क्या करूँ ? अन्त में निर्णय ले ही लिया कि कुछ भी हो यज्ञ में जाऊँगी। ऐसे यज्ञ कोई नित्य थोड़े-ही होते हैं और सबसे मिल-जुलकर बाद में आकर अपने भोलेबाबा को भी मना लूंगी। ऐसा विचारकर सतीजी बहुत दूर तक चली गई। भोलेनाथ ने देखा कि ये तो बहुत दूर निकल गईं, अबकी बार लौटने वाली नहीं हैं। तब नन्दीश्वर, आदि गणों को बुलाकर कहा, जाओ ! इन्हें आदर के साथ पहुँचाकर आओ।

नन्दीश्वर, आदि गण दौड़े-दौड़े आये, माताजी ! हम सेवकों के रहते आप पैदल अकेली जावें ? हमारे लिये धिक्कार है। आज्ञा करो माँ ! कहाँ चलना है ? भगवती सती बोलीं, मेरे पिताजी के यहाँ बहुत बड़ा यज्ञ हो रहा है। चलना चाहो, तो तुम लोग भी चलो। सब भूत-प्रेतादि भी भगवती के साथ जय-जयकार बोलते हुए चलने के लिए तैयार हो गये और चल पड़े। गणों से घिरी हुई सती महारानी यज्ञस्थल में पहुँच गई। कलतक माँ के चरणों में जो देवता साष्टांग दण्डवत करते थे, आज उन्होंने जब देखा तो तुरन्त मुँह घुमा लिया और अनदेखा कर दिया। सतीजी को ये व्यवहार अटपटा लगने लगा। कोई भी ठीक से बात नहीं कर रहा है, कोई प्रणाम-दण्डवत नहीं कर रहा है ? दक्ष का सख्त आदेश था कि शिव-सम्बन्धी कोई भी हो, उससे जो भी सम्बन्ध रखेगा - वह मेरा दुश्मन। बहनों ने देखा अभिनन्दन किया, आओ-आओ बहन सती ! तेरे बिना तो हमारा मन ही नहीं लग रहा था, और हमनें सुना कि पिताजी ने तुम्हें निमन्त्रण ही नहीं दिया। अरे ! हमें तो बड़ा बुरा लगा, पर कोई बात नहीं। अपना तो घर है। घर में निमन्त्रण की क्या प्रतीक्षा करना ? बहिन ! तूने आकर बहुत अच्छा किया।

सती ने सोचा, मुझे इनसे क्या मतलब ? मायके में सबसे अधिक महत्व तो माता का होता है, अन्यथा कोई पूछने वाला नहीं होता; केवल औपचारिकता निभाई जाती है। इसलिये सती ने सबसे मन हटाया और सीधे माँ से मिलने के लिये चली गई। वास्तव में देवी सती के न आने की हार्दिक पीड़ा यदि थी, तो केवल उनकी माँ के हृदय में। इतना बड़ा उत्सव हो रहा है परन्तु माता प्रसूति अपने कक्ष में बड़ी दुःखी होकर बैठी हैं। बहुत दुःखी होकर बैठी कि अचानक अपने भवन में अपनी बेटी सती को प्रवेश करते हुए देखा। प्रसूति माता का हृदय तो वात्सल्य से भर गया। तुरन्त वेग से दौड़कर पुत्री को अंक में भरकर हृदय से लगा लिया।

सादर भलेहिं मिली एक माता ।
भगिनी मिली बहुत मुसुकाता ।। (मानस 1/63/1)

बड़े आदर के साथ भुजा-पसारकर जब देवी प्रसूति माँ ने पुत्री को हृदय से लगाया, तो सतीजी के मन को थोड़ी-सी शान्ति मिली। परन्तु जब उन देवताओं का उपेक्षित व्यवहार स्मरण आया, तो चित्त में फिर चुभने लगी बातें। विचार करने लगी कि पहले मुझे अपने पिताजी से मिलना चाहिए कि उन्होंने इतने प्रगाढ़-सम्बन्ध को इतनी सरलता से उपेक्षित कैसे कर दिया ? जैसे-ही अपने पिता से सतीजी मिलने गई और दक्ष ने देखा कि मेरी बेटी सती आ रही है, तो शिव-सम्बन्ध होने के कारण आँखें फेर लीं, मुँह घुमा लिया। न देखा, न मुस्कुराया। अपने पिता के द्वारा ये उपेक्षापूर्ण व्यवहार सतीजी के हृदय को और भी अत्यन्त पीड़ादायक बना गया। पर फिर भी इस अपमान के घूंट को पी गई, अपना अपमान सह गई। परन्तु जब यज्ञशाला पर दृष्टिपात किया, तो छोटे-से-छोटे देवताओं के भी हिस्से अलग-अलग व्यवस्थित रखे हुए हैं; पर देवाधिदेव महादेव शिवजी का पूरे यज्ञ में कोई स्थान नहीं। अब तो सती माँ से ये सहा नहीं गया। एक पतिव्रता अपना अपमान सह सकती है, परन्तु अपने पति-परमेश्वर का अपमान उससे कदापि सहा नहीं जा सकता। तुरन्त भगवती सती क्रोध में भर गई,

अरुद्रभागं तमवेक्ष्य चाध्वरं पित्रा च देवे कृतहेलनं विभौ ।
अनादृता यज्ञसदस्यधीश्वरी चुकोप लोकानिव धक्ष्यती रुषा ।। (भा. 4/4/9)

मैत्रेय मुनि कहते हैं, विदुरजी ! भगवती सती ने जब क्रोधपूर्वक चारों तरफ दृष्टि डालकर देखा, तो ऐसा लग रहा था कि जैसे-माता सती आज दसों-दिशाओं को दग्ध कर देंगी। माता सती के नेत्रों से अङ्गारे बरसने लगे। प्रजापति दक्ष को ललकारना प्रारम्भ किया, अरे प्रजापति ! तुझे ये पद क्या मिल गया कि तुम इतने मदान्ध हो गये ? तुमने उन भगवान् शिव का अपमान किया, जो साक्षात् कल्याण-स्वरूप ही हैं ? '**शं कल्याणं करोति इति शङ्करः**' जो मानवमात्र का कल्याण करने के लिए ही विराजमान है, वही शङ्कर है। शिव का तो अर्थ ही कल्याण होता है। एक बार भी जिसकी वाणी से शिव - ये दो अक्षर निकल गये तो उसके जीवनभर के पाप पलभर में भस्म हो जाते हैं।

यद् द्व्यक्षरं नाम गिरेरितं नृणां सकृत्प्रसङ्गादघमाशु हन्ति तत्

सतीजी कहती हैं, शिवनाम मुख से निकला कि जीवनभर के पाप शीघ्र ही समाप्त हो जाते हैं। शास्त्र कहते हैं, हमारे स्वामि शिवजी का अपमान करने वाले की जीभ काट लो और इतनी सामर्थ्य तुममें नहीं है, तो '**कर्णौपिधाय निर्यात**' कान में अङ्गुली डालो और चले जाओ वहाँ से। पर न तो मैं तुम्हारी जीभ ही काट पाऊँगी क्योंकि तुम मेरे पिता हो। और कान में अङ्गुली डालकर यदि घर लौटूँगी तो भोलेनाथ पहुँचते ही कहेंगे, आओ दक्षकुमारी ! आओ दाक्षायणी देवी ! मायके में क्या स्वागत हुआ, तो क्या कहूँगी ? क्या जवाब दूँगी ? मैं

भोलेनाथ को कितना विश्वास देकर आई थी, मुझे तुम्हारे प्रेम पर कितना विश्वास था ? मैं बिन बुलाये पागलों की तरह आ गई। और तुमने मेरे स्वामी का यहाँ पर ऐसा अपमान किया ? मुझे सबसे बड़ी पीड़ा इस बात की होगी, जब भोलेनाथ मुझे दक्षकुमारी कहकर पुकारेंगे। शिवद्रोही की बेटी मुझसे कोई कहे ? ये मैं कभी नहीं सह सकती। मुझे जीवन में आज पहली बार पता चला कि मेरा जन्म एक शिवद्रोही के द्वारा हुआ है। जो मेरे प्राणधन हैं, जीवनधन हैं, जीवन-सर्वस्व हैं; उनकी मैं अर्धांगिनी हूँ और मेरा जन्म उनके द्रोही के द्वारा हुआ ? इस शरीर में शिवद्रोही का रक्त है ? इसलिये अब ये शरीर मैं स्वीकार नहीं करूँगी। पर क्या करें ? जबतक शरीर है, तबतक ये सम्बन्ध तो स्वीकारना ही पड़ेगा। अतः इस सम्बन्ध को समाप्त करने के लिये आज मैं ये शरीर ही समाप्त कर दूँगी।

अतस्तवोत्पन्नमिदं कलेवरं न धारयिष्ये शितिकण्ठगर्हिणः ।
जग्धस्य मोहाद्धि विशुद्धिमन्धसो जुगुप्सितस्योद्धरणं प्रचक्षते ।। (भा. 4/4/18)

मेरा ये शरीर तेरे द्वारा उत्पन्न है, इसलिये अब इसे धारण नहीं करूँगी। और इतना कहकर माता भगवती ध्यानमग्न बैठ गईं। भोलेनाथ के श्रीचरणों का ध्यान करते-करते दिव्याग्नि देह से प्रकट हो गई और '**सद्यः प्रजज्वाल समाधिजाग्निना**' माता सती ने उस दिव्याग्नि में अपना पंचभौतिक देह को समाप्त कर दिया। जो भूत-प्रेतादिगण माता सती के साथ आये हुये थे, उन्होंने ये सब दृश्य देखा और सुना तो एकदम क्रोधित हो गये और 'मारो ! काटो !' चिल्लाते हुए यज्ञशाला के ऊपर टूट पड़े। जैसे-ही भूत-प्रेतों के आक्रमण को देखा, तो यज्ञाचार्य भृगु ने दिव्य शक्तियों को प्रकट कर दिया। इन शक्तियों ने भूत-प्रेतों को मार-पीटकर वहाँ से भगा दिया। उधर नारदजी ने भोलेनाथ को पूरा समाचार विस्तार से सुना दिया।

भवो भवान्या निधनं प्रजापतेरसत्कृताया अवगम्य नारदात्

नारदजी के द्वारा जब पूरा समाचार भगवान् शिव ने विस्तार से सुना तो क्रोध से भर गये भगवान् भोलेनाथ। क्रोध में आकर बोले, आज यदि दक्ष बच रहा था, तो केवल सती के नाते। हमारी पत्नी सती का वह पिता है, इसलिये दक्ष क्षमा का पात्र बन रहा था। अब जब सती ही नहीं रहीं, तो अब सम्बन्ध कैसा ? अब पात्रता समाप्त हो गई। भगवान् भोलेनाथ ने अपनी जटा उखाड़कर पटक दी। देखते-देखते भगवान् भोलेनाथ की जटा से बड़ा ही एक विकराल महापुरुष प्रकट हो गया

करालदंष्ट्रो ज्वलदग्निमूर्धजः कपालमाली विविधोद्यतायुधः

अनेक प्रकार के आयुध, चमचमाती आँखें और बड़े विशाल केश। लग रहा था जैसे-मूर्तिमान काल खड़ा हो गया हो। हाथ में एक बड़ा विशाल त्रिशूल धारण किये वह वीर पुरुष हाथ जोड़कर बोला, हे भालेनाथ ! मुझे आज्ञा क्या है ? भोलेनाथ ने कहा, '**भो वीर ते भद्रम्**' हे वीर ! तेरा कल्याण हो। उसी का नाम हो गया वीरभद्र। भोलेनाथ ने आदेश दिया '**दक्षं सयज्ञं जहि**' जाओ ! दक्ष को यज्ञ सहित समाप्त कर दो। अब तो वीरभद्र वेग से दौड़े। जो भूत-प्रेत आदि यज्ञ से पराजित होकर पिटकर आ रहे थे, उन्होंने जब वीरभद्र को देखा तो उन्हें भी बड़ा जोश आ गया। अब डरने की आवश्यकता नहीं। चलो ! जिन्होंने हमारी पिटाई की थी, चुन-चुन के बदला लेंगे। भूत-प्रेतों में जोश आ गया और भूत-प्रेतों का शरीर तो वायु प्रधान होता है। इतने वेग से दौड़े कि तूफान आ गया। और वह तूफान आकाश तक छा गया। यज्ञ के देवता उस तूफान को देखकर चक्कर में पड़ गये, देखो-देखो ! कितनी भयंकर आंधी आ रही है ? ऐसी आंधी-तूफान हमने कभी जीवन में नहीं देखा। भाई ! ये

कैसा तूफान है? जरा पता लगाओ! एक बोला, अरे! मुझे तो लगता है कहीं डकैती पड़ी है और डकैत सब भाग रहे होंगे। एक ने कहा, क्यों भाई? इस समय राजा प्राचीनबर्हि का राज्य है। राजा प्राचीनबर्हि के राज्य में भी भला कोई डकैत हो सकता है? वह बड़े उग्र शासक हैं।

वाता न वान्ति न हि सन्ति दस्यवः प्राचीनबर्हिर्जीवति होग्रदण्डः

दूसरा बोला, लगता है घास चरकर जब लाखों गायें एक साथ दौड़ती हैं, तो ऐसी ही धूल उड़ती है। एक ने कहा, '**गावो न काल्यन्त इदं कुतो रजो**' ये गायों के आने का समय नहीं है। तो इतनी धूल फिर कैसी है? एक तो बोला, मुझे लगता है कि प्रलय होने का समय आ गया है, ये प्रलयंकारी प्रभंजन है। एक ने कहा, प्रलय होने का समय तो अभी आया नहीं है? '**लोकोऽधुना किं प्रलयाय कल्पते**' अब जबतक देवता कुछ निर्णय ले पाते, तबतक तो शनैः-शनैः तूफान ने यज्ञशाला को ही घेरना प्रारम्भ कर दिया। और यज्ञ के चारों तरफ उस तूफान को आते देखा कि भूत-प्रेत दिखाई पड़े। देवता समझ गये, अब कुछ गड़बड़ होने वाला है भाग लो यहाँ से। जैसे-ही देवताओं में भगदड़ मची कि वीरभद्र ने आदेश दिया, सबको बंदी बना लो। एक भी भागने न पावे। दौड़-दौड़कर भूत-प्रेतों ने देवताओं को पकड़ना प्रारम्भ कर दिया।

भृगुं बबन्ध मणिमान् वीरभद्रः प्रजापतिम् ।
चण्डीशः पूषणं देवं भगं नन्दीश्वरोऽग्रहीत् ॥ (भा. 4/5/17)

जिसकी पकड़ में जो आ गया, उसी को धर पकड़ा। भृगुमुनि उठकर भागे, तो मणिमान नाम के गण भृगुजी को दबोचा। वीरभद्र ने दौड़कर प्रजापति दक्ष को पकड़ लिया। किसी ने पूषा को, किसी ने भग को। सबको पकड़कर कहा, भाई! कहाँ भाग रहे हो? यज्ञ में भाग लिया है, तो अपना भाग लेकर ही भागिये। खाली हाथ मत जाइये। सबको पकड़-पकड़कर बाँधना प्रारम्भ कर दिया। वीरभद्र ने आदेश दिया, पूरा यज्ञ तहस-नहस कर दो! सब बराबर हो जाये। सभी शिवगण यज्ञशाला पर टूट पड़े। बल्लियां उखाड़-उखाड़कर पटकने लगे। कुछ भण्डारे में घुस गये तो रायते के कुण्ड में 'हर हर महादेव' डुबकी मारके नहाने लगे; सब भण्डारा चौपट कर दिया। सारी बल्लियां उखाड़कर यज्ञ तहस-नहस कर दिया। अन्त में सबको बंदी बनाकर खड़े किये हुए उन भूतों से वीरभद्र ने पूछा, अब बताइये! इन्हें क्या दण्ड दिया जाये? भूत-प्रेतादि बोले, महाराज! ये सफेद दाढ़ी वाले बाबा भृगुमुनि जो खड़े हैं, इन्होंने हमारी बहुत पिटाई कराई। हम पिट रहे थे और ये बाबा दाढ़ी पर हाथ घुमा-घुमाकर बड़े प्रसन्न हो रहे थे। इतना सुनते ही वीरभद्र को क्रोध आया। भृगुमुनि की दाढ़ी-मूंछ दोनों पकड़कर एक झटके में सारे बाल नोंच डाले और दाढ़ी उखाड़कर भृगुजी को थमा दी। शिवगणों ने कहा, महाराज! ये जो पूषा देवता खड़े हैं, जब हम पिट रहे थे; तो हमारी तरफ ही-ही करके खूब बत्तीसी दिखा रहे थे। सुनते ही वीरभद्र ने एक मुक्का जोर-से मुँह में मारा कि सारी बत्तीसी टूटकर बाहर गिरे। पूरा बेदाँती हो गया बेचारा, एक भी दाँत मुँह में नहीं रहा। शिवगणों ने कहा, प्रभो! ये जो भग-देवता खड़े हैं, हम पिट रहे थे तो हमारी तरफ आँखे मटका-मटकाकर खूब हंस रहे थे। तो वीरभद्र ने भग-देवता की दोनों आँखे दोनो अङ्गुली डालकर बाहर निकाल लीं। इस प्रकार से जितने देवता सम्मिलित हुए, सबका अङ्ग-प्रत्यंग विहीन करके देवताओं को तो भगा दिया। परन्तु जब प्रजापति दक्ष की बारी आई, तो उठाकर पटका और भोलेबाबा का ध्यान करके दक्ष का सिर उखाड़ के हवनकुण्ड में स्वाहा कर दिया।

भोलेनाथ की जय-जयकार करते हए सब शिवगण लौट गये। परन्तु जो देवता खण्डित हो गये थे, वह

रोते-रोते ब्रह्माजी की शरण में गये। सबने अपनी-अपनी दुर्दशा सुनाई। ब्रह्माजी हंसने लगे, अरे देवताओ! '**बिना विचारे जो करे, सो पाछें पछताय**' उस यज्ञ में भाग तो हमें भी परोसा गया था, पर हम तो नहीं गये? जहाँ भगवान् शिव का अपमान होगा, वहाँ हम कैसे जा सकते हैं? भगवान् नारायण का भी भाग था, पर नारायण भी नहीं गये। तो जब हम तीनों ही नहीं गये, तो तुम क्यों चले गये? तुमने विचार क्यों नहीं किया? तुमने शिव का अपराध किया है। उन्हीं की शरण में जाओ, वह ही ठीक करेंगे। और घबड़ाओ मत! मैं तुम्हारे साथ चलता हूँ। भगवान् भोलेनाथ '**क्षणे रुष्टः क्षणे तुष्टः रुष्टः तुष्टः क्षणे क्षणे**' जितनी जल्दी नाराज होते हैं, उतनी जल्दी प्रसन्न भी हो जाते हैं। वे आशुतोष हैं।

सब देवताओं को लेकर ब्रह्माजी पधारे। जैसे-ही ब्रह्माजी कैलाशपर्वत पर आये तो देखा कि भोलेनाथ एक विशाल बरगद के नीचे विराजमान हैं। देवताओं ने दूर से भोलेनाथ के उस विचित्र वैराग्यस्वरूप का दर्शन किया। ब्रह्माजी से बोले, महाराज! आप ही वहाँ पधारिये और उचित लगे तो हमें इशारा कर देना, हम तुरन्त दौड़कर आ जायेंगे। उनके पास जाने का साहस नहीं होता। तो देवसमाज को वहीं बैठाकर ब्रह्माजी सबसे पहले शिवजी के पास पहुँचे। ब्रह्माजी को देखते ही भोलेनाथ खड़े हो गये और ब्रह्माजी को प्रणाम करके आदर के साथ आसन दिया। प्रणाम कैसे किया,

उत्थाय चक्रे शिरसाभिवन्दनमर्हत्तमः कस्य यथैव विष्णुः

जैसे वामन भगवान् कश्यपजी को पिता होने के नाते प्रणाम करते हैं। भगवान् वामन साक्षात् नारायण विष्णु हैं, पर व्यवहार जगत् में कश्यपजी उनके पिताजी बने हैं। इसलिए वामन भगवान् को प्रणाम करना पड़ता है। उसी प्रकार भगवान् भोलेनाथ तो समस्त देवताओं के परमपूज्य हैं। परन्तु व्यवहार में ब्रह्माजी की भृकुटी से प्रकट होने के नाते, उन्हें पिता मानकर प्रणाम कर रहे हैं।

ब्रह्माजी ने दूर खड़े देवताओं को इशारा किया, मौका बहुत अच्छा है जल्दी आओ! सभी देवता दौड़कर आये और सब भोलेनाथ के चरणों में साष्टांग दण्डवत् करने लगे। ब्रह्माजी ने थोड़ी सिफ़ारिश कर दी, महाराज! इन पर दया करो। भृगुजी ने अपने मन की बात कहनी चाही। कुछ पर इनका स्वभाव था कि बात करते समय दाढ़ी पर हाथ फेरते थे। तो स्वभावतः जैसे-ही दाढ़ी पर हाथ फेरने के लिये हाथ ऊपर उठा कि दाढ़ी में एक भी बाल नहीं। इतने बेचारे शर्मिंदा हुये कि मुँह लटकाकर ही रह गये, कुछ बोल ही नहीं पाये। ब्रह्माजी ने ही कहा, हे भोलेनाथ! अब इन पर दया करो। ये बिना दाढ़ी के रह नहीं पायेंगे, इनके स्वभाव में आ गया है। और इनकी दाढ़ी आपके विरोधी यज्ञ में स्वाहा हो गई।

भोलेनाथ भी मुस्कुरा पड़े, अच्छा ठीक है! पूरी दाढ़ी तो नहीं मिलेगी। परन्तु आगे-आगे थोड़ी-सी दाढ़ी आपको लग जायेगी। जाओ हमारा आशीर्वाद है। भृगुजी बोले, बस-बस महाराज! इतने में काम चल जायेगा, कुछ होना जरूर चाहिये। पूषा देवता तुरन्त आगे बढ़े, देखो महाराज! मुँह में एक भी दाँत नहीं बचा, सारी दन्तावली बाहर निकाल दी। कैसे भोजन करूँगा? भोलेनाथ ने कहा, सत्तू घोल-घोलकर पियो। दाँतों की कोई जरूरत नहीं पड़ेगी। '**पिष्टभुक्**' बन जाओ। भग देवता ने कहा, देखो आँखें फोड़ दी! मैं तो अन्धा ही हो गया। भोलेनाथ ने कहा, तुम मित्रदेवता की दृष्टि से देख सकोगे। इस प्रकार से समस्त देवताओं को स्वस्थ करते हुए जब भोलेनाथ थोड़े-से अनुकूल दिखाई पड़े, तब देवताओं ने कहा, सरकार! चलकर उस यज्ञ को भी सफल कर दीजिये। भोलेनाथ ने कहा, यज्ञ में भाग तो मिलने वाला नहीं है। हम जाकर क्या करेंगे? सारे देवता एक स्वर में बोले,

एष ते रुद्र भागोऽस्तु यदुच्छिष्टोऽध्वरस्य वै ।
यज्ञस्ते रुद्रभागेन कल्पतामद्य यज्ञहन् ॥ (भा. 4/6/53)

हे यज्ञहन्ता भोलेनाथ! आज से जो भी यज्ञ में सामग्री अवशेष बचेगी, वह अवशिष्ट सामग्री आपका ही भाग माना जायेगा। भोलेनाथ सन्तुष्ट हो गये, जो बच जाये बहुत है। सारे देवता भोलेनाथ को मनाकर ले आये। भोलेनाथ से कहा, महाराज! यज्ञ सफल करो। भोलेनाथ ने कहा, यजमान को बुलाओ! देवता बोले, सरकार! यजमान का धड़ तो ये पड़ा है और सिर स्वाहा हो गया। भोलेनाथ को ससुरजी की दुर्दशा देखकर दया आ गई। तुरन्त बकरे का सिर जोड़कर ससुरजी को पुनर्जीवित कर दिया। दक्ष के धड़ में जब बकरे का सिर लगाकर पुनर्जीवित हुए तो भोलेनाथ की महिमा को समझा, सतीजी के वियोग का स्मरण आया तो गद्‌गद् कण्ठ हो गया और नेत्र सजल हो गये। दक्ष ने भोलेनाथ के चरणों में प्रणाम करते हुए बड़ी सुन्दर स्तुति प्रारम्भ कर दी,

भूयाननुग्रह अहो भवता कृतो मे दण्डस्त्वया मयि भृतो यदपि प्रलब्धः ।
न ब्रह्मबन्धुषु च वां भगवन्नवज्ञा तुभ्यं हरेश्च कुत एव धृतव्रतेषु॥ (भा. 4/7/13)

हे भोलेनाथ! आपने मुझे दण्ड देकर मुझपर बड़ा भारी अनुग्रह किया था क्योंकि मैं बहुत उद्दण्ड हो गया था। और दण्ड किसलिये दिया जाता है कि सुधर जाये। और दण्ड उसी को दिया जाता है, जिसे हम अपना समझते हैं। कई बच्चे उत्पात मचा रहे हों, उद्दण्डता कर रहे हों; तो हम अनदेखा करके चले जायेंगे कि हमें क्या लेना-देना। पर उनमें-से अपना कोई बच्चा दिखाई पड़ जाये, जो उन उद्दण्डों के साथ स्वयं उद्दण्डता कर रहा है; तो हम उसे जरूर पकड़कर चपत लगा देंगे क्योंकि उसे हम अपना समझते हैं, उस पर हमारा अधिकार है। तो जिससे प्रेम किया जाता है, उसी को दण्ड देने का अधिकार भी रखा जाता है। तो हे भोलेनाथ! आपने मुझे अपना समझा और अपनत्व के नाते ही मेरी उद्दण्डता पर अंकुश लगाने के लिये आपने मुझे दण्ड दिया।

एक ग्वाला गायों को चराता है। पर अपनी गायों से बड़ा प्रेम करता है, इतना प्रेम करता है कि जंगल में कोई हिंसक जानवर कदाचित गाय के ऊपर आक्रमण कर दे, तो अपने प्राणों की बाजी लगाकर गौमाता की रक्षा करता है। और वही गाय यदि उत्पात करे? यहाँ-वहाँ नुकसान करे तो डण्डा भी मार देता है। तो जितना अपनी गायों से प्रेम करता है, उतना ही मारने का अधिकार भी रखता है।

तद्ब्राह्मणान् परम सर्वविपत्सु पासि पालः पशूनिव विभो प्रगृहीतदण्डः

प्रजापति दक्ष भोलेनाथ की मधुर-स्तुति कर रहे हैं। पर बकरे का मुँह है, तो बकरे की ही भाषा में बोल रहे हैं। सुन-सुनकर भोलेबाबा को बड़ी जोर-से हंसी आ गई। इसलिये आज भी भोलेनाथ के भक्त शिवजी की पूजा करने के समय 'बम-बम-बम-बम' बकरे की तरह बोलते हैं। क्योंकि बकरे की तरह बम-बम करते ही भोलेबाबा को ससुरजी याद आ जाते हैं और भोलेबाबा प्रसन्न हो जाते हैं। जहाँ भोलेबाबा प्रसन्न हुये, तत्क्षण उन सबके बीच में भगवान् लक्ष्मीनारायण प्रकट हो गये। समस्त देवताओं ने क्रमशः भगवान् नारायण की स्तुति की और सबसे अन्त में ब्राह्मणों ने मिलकर प्रभु की स्तुति करते हुए कहा,

त्वं क्रतुस्त्वं हविस्त्वं हुताशः स्वयं त्वं हि मन्त्रः समिद्दर्भपात्राणि च ।
त्वं सदस्यर्त्विजो दम्पती देवता अग्निहोत्रं स्वधा सोम आज्यं पशुः ॥
त्वं पुरा गां रसाया महासूकरो दंष्ट्रया पद्मिनीं वारणेन्द्रो यथा ।
स्तूयमानो नदँल्लीलया योगिभिर्व्युज्जहर्थ त्रयीगात्र यज्ञक्रतुः ॥ (भा. 4/7/45-46)

सभी ब्राह्मण मिलकर कहते हैं, हे नारायण! समस्त यज्ञ के अङ्ग आप के ही हैं। आप साक्षात् यज्ञरूप ही हो। आप ही हविष्यान्न हो, आप ही हविष्यान्न के भोक्ता हो, आप ही मन्त्र हो, आप ही समिधायें हो, आप ही कुशा हो। आपने ही पूर्व में जल में डूबी हुई पृथ्वी का ऐसे उद्धार किया, जैसे कोई गजराज सरोवर में प्रविष्ट होकर कमलिनी को उखाड़कर चला आता है। अब गजराज को कमलिनी को उखाड़ने में क्या कष्ट लगे? ऐसे ही आपने जल में डूबी हुई इस धरादेवी का आपने हिरण्याक्ष के चंगुल से उद्धार किया। आपने पशुओं को देखा होगा प्रायः जल में से जब बाहर निकलते हैं, तो अपने शरीर को बड़े जोर से झटकारते हैं। ऐसे ही भगवान् वाराहरूप में जब जल में प्रविष्ट हुए और पृथ्वी को बाहर लाकर यथास्थान विराजमान करके अपने शरीर को इतनी जोर से झटकाया कि भगवान् वाराहदेव के रोमकूप धरा पर गिर गये और वे ही कुश बनकर प्रकट हो गये, जो समस्त यज्ञों के शुभकार्यो को सम्पन्न करते हैं। प्रत्येक शुभकार्यो में कुश का प्रयोग सबसे पहले किया जाता है। क्योंकि ये कुश साक्षात् वाराह भगवान् के रोमकूप है। इस प्रकार भगवान् की सुन्दर स्तुति की। भगवान् ने सब को समझाया,

अहं ब्रह्मा च शर्वश्च जगतःकारणं परम्

श्रीभगवान् बोले, देखो भाई देवताओ! मुझमें, ब्रह्मा में और शिव में किसी भी प्रकार का भेदभाव न रखना। मैं ही ब्रह्मा बनकर सृजन करता हूँ, तो मैं ही विष्णु बनकर पालन करता हूँ तथा मैं ही रुद्र बनकर संहार करता हूँ। तीनों मेरे स्वरूप हैं। '**शिवस्य हृदयं विष्णुः विष्णोश्च हृदयं शिवः**' शिवजी के हृदय में विष्णु और विष्णु के हृदय में शिव। कौन पुजारी? कौन पूज्य? कौन प्रेमी? कौन प्रेमास्पद? कह पाना बहुत कठिन है। परस्पर दोऊ चकोर, दोऊ चंदा। भोलेनाथ रामजी को अपना इष्ट मानकर रामकथा भवानी को सुनाते हैं। रामकथा सुनने के लिये कभी हंस बनकर काकभुशुण्डिजी के पास आते हैं। तो कभी सतीजी को लेकर अगस्त्य महर्षि के पास जाते हैं। रामकथा के परम रसिक हैं भगवान् भोलेनाथ। '**रचि महेस निज मानस राखा**' सबसे पहले रामायण की रचना भोलेनाथ ने ही की।

परन्तु जब शिवभक्तों की बात आवे, तो सबसे पहले भगवान् नारायण। ऐसे शिवभक्त हैं कि एक हजार कमल नित्य चढ़ाते थे। पर एक दिन पूजन में एक कमल कम पड़ गया। विष्णुजी विचार करने लगे, कैसे पूर्ति की जाये? अरे! लोग कहते हैं कि मुझे लोग पुण्डरीकाक्ष कहते हैं। तो अपना नेत्र ही भगवान् ने निकालकर भोलेनाथ पर समर्पित कर दिया। ऐसे शिवभक्त हैं। तो वैष्णवों की बात आवे, तो भगवान् शिव सबसे आगे। और शैवों की बात आवे, तो भगवान् विष्णु सबसे आगे है। दोनों एक दूसरे के उपासक हैं। रामजी महाराज लंका पर विजय पाने के लिये भोलेनाथ को 'रामेश्वर' के रूप में प्रतिष्ठापित करके पूजन करते हैं। विधिवत् नाम देते हैं - 'रामेश्वर'। भक्तों ने पूछा, अर्थ भी कर दीजिये। रामजी ने अर्थ कर दिया, '**रामस्य ईश्वरः रामेश्वरः**' राम का जो ईश्वर है, वह रामेश्वर है। उस समाज में तुरन्त भगवान् भोलेनाथ प्रकट होकर बोले, नहीं-नहीं! ये अर्थ नहीं है। भक्तों ने पूछा, महाराज! तो क्या अर्थ है? भोलेनाथ ने समास बदल दिया, '**रामः ईश्वरो यस्य सः रामेश्वरः**' - राम हैं ईश्वर जिनके, उनका नाम है रामेश्वर। उन्होंने रामजी को अपना ईश्वर सिद्ध कर दिया। इसलिये दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। इसलिये इनमें किसी भी प्रकार का भेद न रखें।

रामस्तत्पुरुषं ब्रूते बहुव्रीहिं महेश्वरः ।
रामेश्वरपदे प्राप्ते मुनयः कर्मधारयम् ॥

भगवान् शिव संहारकदेव हैं। उनका स्वरूप तो सांवला होना चाहिये। और भगवान् नारायण पालनहार हैं। अतः सत्त्वप्रधान होने से भगवान् नारायण का स्वरूप गौरांग होना चाहिये। परन्तु बात बिल्कुल विपरीत है। शिवजी कर्पूर की तरह गोरे हैं,

कर्पूरगौरं करुणावतारं संसारसारं भुजगेंद्रहारम् ।
सदावसन्तं हृदयारविन्दे भवं भवानी सहितं नमामि ॥

और जब भगवान् नारायण पर दृष्टि डालते हैं तो,

नील सरोरुह नीलमणि नील नीलधर स्याम ।
लाजहिं तन सोभा निरखि कोटि कोटि सत काम ॥ (रामचरितमानस 1/146)

तो जिन्हें गोरा होना चाहिये, वह सांवले हैं और जिन्हें साँवला होना चाहिये, वह गोरे हैं। ये उल्टा इसलिए हो गया कि शिवजी का सतत् ध्यान करते-करते जो शिवजी की श्यामलता थी, वह नारायण में समा गई। और नारायण का सतत् ध्यान करते-करते नारायण का जो गौरांग रूप था, वह शिवजी में समा गया। इसलिये शिवजी कर्पूर के समान गौरवर्ण के हो गये और नारायण साँवले हो गये। विवाह के बाद कन्या का पति परमेश्वर हो जाता है। पर पति-परमेश्वर का ये अर्थ नहीं होना चाहिये कि सास, ससुर, देवर, जेठ, आदि को आँख दिखाने लगे? हमें तो केवल पतिदेव से मतलब है और किसी से कोई मतलब नहीं - ये भी तो उचित नहीं है। परिवार में सबका आदर रखते हुए समर्पण तो पति में होना चाहिये, पर सम्मान तो सबका करना चाहिये। उसी प्रकार इष्ट तो एक ही होना चाहिये, एक इष्ट में ही हमारा आत्मनिवेदन और समर्पण होना चाहिये पर सम्मान तो सभी को देना चाहिये - यही बात भगवान् ने सभी को समझायी।

श्रीमैत्रेय मुनि कहते हैं, विदुरजी! यही कारण था कि माता सती ने देहत्याग किया और अगले जन्म में हिमालय की पुत्री पार्वती रूप में प्रकट हुई। पुनः घोर तपस्या करके अन्त में भोलेबाबा को प्रसन्न कर ही लिया। धूमधाम से बारात लेकर भोलेबाबा आये और उन्हीं सती को पार्वती के रूप में पुनः प्राप्त कर लिया।

ध्रुव चरित्र—माता सती का पावन चरित्र श्रीमैत्रेयमुनि ने विदुरजी को श्रवण कराया। अब मैत्रेयजी कहते हैं- विदुरजी! मैंने आपको मनु महाराज की तीनों बेटियों के बारे में बतला दिया। अब जो दो बेटा हैं - प्रियव्रत और उत्तानपाद, उनमें से पहले उत्तानपाद का चरित्र और वंश श्रवण करो। महाराज उत्तानपाद की दो रानियां हैं। बड़ी का नाम सुनीति और छोटी का नाम सुरुचि था।

जाये उत्तानपादस्य सुनीतिः सुरुचिस्तयोः ।
सुरुचिः प्रेयसी पत्युर्नेतरा यत्सुतो ध्रुवः॥ (भा. 4/8/8)

दोनों रानियों से एक-एक सन्तान हुई। बड़ी रानी सुनीति का बेटा ध्रुव और छोटी रानी सुरुचि का बेटा उत्तम। विचार से हम ध्यान दें तो हम ही उत्तानपाद हैं। **'उत् ऊर्ध्वौ पादौ यस्य सः उत्तानपादः'** जिसके ऊपर पैर हों, नीचे सिर हो; वही उत्तानपाद है। तो हम सबके सब जब माँ के गर्भ में रहते थे, तब उत्तानपाद बनकर ही रहे इसलिये हम सभी उत्तानपाद हैं। हमारी भी दो रानियां हैं, सुनीति (बुद्धिमानी) और सुरुचि (मनमानी)। सुनीति (बुद्धिमत्ता) कहती है कि ऋषयों ने शास्त्रों में जो आज्ञा दी है, तदनुसार आचरण करो सुखी रहोगे। परन्तु सुरुचि (मनमानी बुद्धि) कहती है, भैया! शास्त्र पुराने पड़ गये। अब तो शास्त्र पर चलना सम्भव नहीं है।

इसलिये जो अच्छा लगे, जैसा उचित लगे वह करो।

उत्तानपाद ने सुनीति को निकालकर जैसे सुरुचि की दासता स्वीकार कर ली, आज हम भी वही कर रहे हैं। शास्त्रों में चाहे जितनी श्रद्धा रखें, पर अन्त में व्यवहार-जगत् में शास्त्रों को किनारे ही धर देते हैं और व्यवहार में मनमानी की ही ज्यादा मानते हैं। पर समझने वाली बात ये है कि सुनीति से क्या मिला? और सुरुचि ने क्या दिया? उत्तानपाद का कल्याण यदि हुआ तो सुनीति के पुत्र ध्रुव के द्वारा ही हुआ। तो सुनीति के मार्ग का आचरण करोगे, तो ध्रुव-तत्त्व की प्राप्ति होगी, जो तुम्हें अमरत्व प्रदान कर देगा आज भी चमक रहा है। अरे बेईमान लाखों हैं। उनमें तुमने भी बेइमानी करके उसी पंक्ति में अपने को खड़ाकर दिया तो हमारी-तुम्हारी क्या पहचान रही? ईमानदार व्यक्ति लाखों में भले ही एक हो, परन्तु उसकी प्रतिष्ठा होती है उसका एक अलग स्वरूप समझ में आता है। लोग वर्षों तक उस ईमानदार को याद रखते हैं। **'कीर्तियस्य स जीवितः'** - जबतक मानव की कीर्ति है, तबतक उसकी पहचान है, तबतक वह इस धरातल पर जीवित है। शरीर तो कुछ वर्षों का है, पर कीर्तिमान् लोग हमेशा के लिये अमरत्व को प्राप्त कर लेते हैं। जैसे सुनीति के पुत्र ध्रुव को आज भी लोग जानते हैं कि आकाश में चमक रहा है। ऐसे ही ध्रुव तारे की तरह चमकना चाहो, तो सुनीति का ही आश्रय लेना पड़ेगा।

एक बार ध्रुवजी महाराज अपने पिताश्री से मिलने गये। परिचय पाते ही पुत्र को अंक में हृदय से लगाकर गोद में बैठा लिया। परन्तु जब सौतेली माँ सुरुचि ने देखा तो ध्रुव का हाथ पकडकर नीचे उतार दिया, अरे बेटा ध्रुव! तू भले ही राजा का बेटा है, तो क्या हुआ? मेरी कुक्षी (कोख) से तो तेरा जन्म नहीं हुआ? इसलिये **'दुर्लभेऽर्थे मनोरथः'** ये तेरा मनोरथ दुर्लभ है। दुबारा कभी इस सिंहासन पर बैठने का साहस मत करना। ध्रुवजी बोले, माताजी! केवल मैं इसलिये नहीं बैठ सकता कि मैं तुम्हारा बेटा नहीं हूँ? तो अब ये बताइये इस सिंहासन पर बैठने के लिये क्या करूँ? सुरुचि बोली, एक ही उपाय है -

तपसाऽऽराध्य पुरुषं तस्यैवानुग्रहेण मे ।
गर्भे त्वं साधयात्मानं यदीच्छसि नृपासनम् ॥ (भा. 4/8/13)

सिंहासन पर तू बैठना ही चाहे, तो पहले तपस्या कर। प्रभु प्रसन्न होकर वर माँगने को कहें तब माँग लेना कि मेरा जन्म तो सुरुचि माँ के पेट से हो। फिर इस शरीर को त्यागकर, मेरा पुत्र बनकर पैदा होना; तब तुझे सिंहासन मिलेगा। इन वचनों ने भक्त और भगवान् दोनों का अपमान कर दिया। सुरुचि भक्त का तो अपमान कर हीं रही है, साथ-ही-साथ भगवान् का भी अपमान हो रहा है क्योंकि यहाँ सुरुचि अपने गर्भ को भगवान् से भी बड़ा बता रही है। पहले तपस्या करेगा, तब भगवान् मिलेंगे और जब भगवान् मिलेंगे, तब तुझे मेरे गर्भ में आने मिलेगा। इसका मतलब कि सुरुचि का गर्भ भगवान् से भी ऊपर है? ध्रुवजी महाराज तो इस अपमान का घूंट पीकर रोते-रोते घर को चल दिये। जैसे सर्प को किसी ने डंडा मार दिया हो, तो घायल सर्प जैसे फुंफकारता है, ऐसे फुसकारते लंबी श्वास लेते हुए ध्रुव घर को लौटे।

मातुः सपत्न्याः स दुरुक्तिविद्धः श्वसन् रुषा दण्डहतो यथाहिः ।
हित्वा मिषन्तं पितरं सन्नवाचं जगाम मातुः प्ररुदन् सकाशम् ॥ (भा. 4/8/14)

रोते हुए अपने बेटे को जब सुनीति माँ ने देखा, तो दौड़कर अंक में ले लिया, हृदय से लगा लिया। सुनीति ने पूछा, बेटा! क्या बात हो गई? किसने तुम्हारा अपमान किया? कण्ठावरुद्ध होने से ध्रुवजी कुछ कह नहीं पा रहे

थे, पर उनके साथियों ने पूरा वृतान्त अक्षरश: सुना दिया। बालकों का हृदय तो एकदम निष्कपट होता है। जैसा-देखा, वैसा ही सुना दिया। मैत्रेयजी कहते हैं, विदुरजी! जैसे खिलती हुई लता आग की ज्वालाओं से झुलसकर मुरझा जाती है, ऐसे ही सुनीति माँ का खिला हुआ वह मुस्कुराता मुखकमल इस बात को सुनकर झुलस गया। '**शोक दावाग्निना दावलतेव बाला**' इतना सब सुनकर भी हृदय तो शोक की आग में जल उठा। परन्तु फिर भी अपनी वाणी से एक भी शब्द सुरुचि के विरोध में नहीं बोला। उलटे सुरुचि के वचनों का अनुमोदन करने लगी, बेटा ध्रुव! माँ के प्रति ऐसी भावना मन में कुछ मत लाना। वह तेरी माँ है, और सौतेली माँ का अधिकार अपनी माँ से कहीं ज्यादा होता है।

मामङ्गलम् तात परेषु मंस्था भुंक्ते जनो यत्परदु:खदस्तत्

वह तेरी माँ है! डाँट दिया तो क्या हुआ? माँ का अधिकार होता है। और फिर उसने गलत भी तो नहीं कहा कुछ। ध्रुवजी चौंके, क्या गलत नहीं कहा? उन्होंने मुझे अभागिन का बेटा कहा, तुम्हें गाली दी है? और मेरी माँ को कोई गाली दे तो मैं कैसे सुन लूँ? सुनीति माँ समझाने लगी, देख बेटा!

सत्यं सुरुच्याभिहितं भवान्मे यद्दुर्भगाया उदरे गृहीत:

उसने कहा कि तू अभागिन का पुत्र है, दुर्भागिनी की सन्तान है तो क्या गलत कहा? मैं अपने को कब भाग्यशालिनी मानती हूँ? यदि मुझ अभागिन को उसने अभागिन कह दिया, तो क्या गलत कहा? देखो बेटा! एक बात जीवन में याद रखना। उसने तो तुझे वह बात बताई है, जो आज तक मैं भी नहीं बता पाई। उसने क्या कहा था? '**तपसाऽऽराध्य पुरुषम्**' तू हमेशा पिताजी के बारे में मुझसे पूछता था, मैं तो पिता का भी परिचय ठीक से तुझे नहीं करा सकी। पर उसने तो परमपिता के बारे में तुझे बता दिया। वह परमपिता को एक बार तूने पा लिया, तो वह ऐसी पदवी प्रदान करता है जिससे कभी उतरना ही नहीं पड़ता। उस परमपिता का परिचय तेरी सौतेली माँ ने कराया है। बेटा! चूकना मत। ध्रुवजी अवाक् रह गये, माँ! आप उनकी हर बात का अनुमोदन कर रही हैं। यदि उन्होंने उन परमपिता का परिचय दिया, तो वह परमपिता कौन है? कैसे उनसे भेंट होगी? सुनीति माँ ने समझाया, देख बेटा! उन परमपिता की कृपा से ही तो तुम्हारे पिता उस पदवी तक पहुँचे हैं। तू भी उनकी आराधना कर। वह किसी एक जगह नहीं रहते हैं, बल्कि कण-कण में सर्वत्र समानरूप से व्याप्त हैं।

हरि ब्यापक सर्बत्र समाना ।
प्रेम तें प्रकट होहिं मैं जाना ॥ (रामचरितमानस 1/185/3)

वेवेष्टि व्याप्नोति सकलं जगत् इति विष्णु:

ध्रुवजी ने पूछा, अच्छा माँ! सब जगह हैं, तो फिर दिखाई क्यों नहीं पड़ते? माता बोली, देख बेटा! हर वस्तु दिखाई नहीं पड़ती। पुष्प के कण-कण में सुगन्ध है, तो दिखाई कहाँ पड़ती है? दूध के कण-कण में घृत है, कहाँ दिखाई पड़ता है? पर उसी दूध को पहले जमाओ, दधि बन जाये तो मथो मन्थन करते ही घृत प्रकट हो जायेगा। जगत् के भी अणु-अणु में ईश्वर की सत्ता विराजमान है -

ईशावास्यमिदम् सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् (यजुर्वेद 40/1)

उनकी उपासना करो, साधना करो। सद्गुरु की अनुकम्पा से वह कहीं से भी प्रकट हो जायेगा, उसे कहीं आना-जाना थोड़े ही पड़ता है? जहाँ तुम्हारी निष्ठा परिपक्व हो जाये, परमात्मा वहीं से प्रकट हो जायेगा। ध्रुवजी महाराज के हृदय में एक-एक बात बैठ गई और चल पड़े। संस्कार जब जाग्रत् होते हैं, तो बहाना कई

बन जाते हैं। तुलसीदासजी महाराज का संस्कार तो पूर्व से ही पुष्ट था, बहाने की आवश्यकता थी। सो उनकी पत्नी के वाक्य ही बहाने बन गये। पत्नी के वचन ने संस्कार को जाग्रत् कर दिया। अरे! दीपक, बाती सब तैयार रखी है। अब तो चिंगारी की आवश्यकता थी, जहाँ चिंगारी जली दीपक जल उठा। कुछ लोग कहते हैं, अरे! गोस्वामीजी को इतना महान् संत यदि बनाया तो उनकी पत्नी ने। उनकी डाँट से वह संत बन गये। पत्नी के डाँटने से ही कोई संत बन जाता, तो आज घर-घर में संत बैठे नजर आवें।

अरे! वचन तो एक निमित्त बन गया, संस्कार उनके जाग्रत हो गये। दीपक तैयार था, इसलिये जल उठा। जब घी न हो, बाती भी न हो, तो चिंगारी क्या करे? ध्रुवजी की चिंगारी जाग्रत हो गई। घनघोर वन में जाकर चारों तरफ देख रहे हैं कि परमात्मा को कहाँ ढूंढे? और जब कोई सच्ची लगन के साथ निकलता है, तो परमात्मा उसका पथ-प्रशस्त करने के लिये स्वत: संतों का दर्शन उसे करवा देते हैं। संतो का ढूंढने से दर्शन प्राप्त नहीं होता? हरि की कृपा जब होती है, तो संत सहजता से प्राप्त हो जाते हैं। हरिकृपा न हो, तो प्रयत्न करने पर भी संत नहीं मिलते।

बिनु हरि कृपा मिलहि नहिं संता

ध्रुवजी महाराज तो परमात्मा को चारों ओर ढूंढ़ रहे थे कि अचानक देवर्षि नारद मिल गये, अरे बेटा! इस जंगल में तू कहाँ जा रहा है? ध्रुवजी ने नारदजी को प्रणाम करके अपनी व्यथा-कथा सुना दी। सारी घटना सुनकर नारदजी मन ही मन मुस्कुराये,

अहो तेज: क्षत्रियाणां मानभंगममृष्यताम्

अद्भुत तेज है इन क्षत्रियों का। पाँच साल का ये क्षत्रिय कुमार अपनी सौतेली माँ के वचनों से व्यथित होकर आज परमात्मा को पाने के लिये निकल पड़ा। थोड़ा इसका परीक्षण करके देखूं कि इसका वैराग्य किस स्तर का है? क्योंकि संसार में प्राय: मर्कट वैरागी ही ज्यादा होते हैं।

घर में भई खटपट कि चल बाबा के मठ पर

घर में लड़ाई-झगड़े होने पर प्राय: लोगों को वैराग्य का भूत चढ़ता है, अरे! कुछ नहीं धरा? पूरी दुनिया स्वार्थी है? आज से कोई मतलब नहीं। हम तो चले हरिद्वार में भजन करेंगे। तिलमिलाकर घर से निकल पड़े और रेलवे स्टेशन तक भी नहीं पहुँच पाये कि अपने पोते पप्पू की याद आ गई। वह मेरा पोता, कितना छोटा, मेरे साथ सोता, मेरे साथ खाता मैं उसे छोड़कर चला जाऊँगा तो बेचारा बीमार पड़ जायेगा, रो-रोकर घर भर देगा। अरे! दस बर्तन हैं, खटकते ही रहते हैं फिर कभी देखेंगे जरा समझदार वह हो जाये। ये बंदर-जैसा वैराग्य है जो कभी इस डाली पर तो कभी उस डाली पर। तो नारदजी को लगा कि ये पाँच साल का बच्चा ही तो है? जरा इसका वैराग्य किस स्तर का है देख लूं? समझाने लगे, देख बेटा! तुम्हारी उम्र बहुत छोटी है -

नाधुनाप्यवमानं ते सम्मानं वापि पुत्रक ।
लक्षयाम: कुमारस्य सक्तस्य क्रीडनादिषु ॥ (भा. 4/8/27)

बेटा! ये उम्र तुम्हारी अभी खेलने-कूदने की है। इस छोटी-सी अवस्था में मान-अपमान पर इतना ध्यान नहीं देना चाहिये। बच्चों को माता-पिता सहजता से ही डाँट देते हैं, इतना बुरा मान गये। जिस परमात्मा से मिलने की बात कर रहे हो, बेटा! उस परमात्मा को पाने के लिये तुम्हें वन-वन में सैकड़ों संत मिलेंगे, जिन्होंने सैकड़ों वर्षों से उपासना कर रखी है और आज तक एक झलक नहीं मिल पाई।

मुनय: पदवीं यस्य नि:संगेनोरुजन्मभि: ।

न विदुर्मृगयन्तोऽपि तीव्रयोगसमाधिना ॥ (भा. 4/8/31)

बड़े-बड़े अमलात्मा, विमलात्मा, महात्मा, योगीन्द्र, मुनीन्द्र, संत, संन्यासी लोग जन्म-जन्मान्तर साधना कर-कर परेशान हैं, फिर भी पाते नहीं तो तू पाँच साल का बालक कैसे पा सकेगा? और एक बात कहूँ? संसार में जो सुख-दुःख मिलते हैं, वह अपने प्रारब्धानुसार मिलते हैं। बुद्धिमान व्यक्ति को ये अनुभव करना चाहिए कि दुःख में पाप क्षीण हो रहे हैं और सुख में सुकृत समाप्त हो रहे हैं। ऐसा अनुभव करने से क्या होगा? दुःख में वह ज्यादा घबड़ायेगा नहीं और सुख में वह ज्यादा अभिमानी नहीं बनेगा।

यस्य यद्दैवविहितं स तेन सुखदुःखयोः ।
आत्मानं तोषयन्देही तमसः पारमृच्छति ॥ (भा. 4/8/33)

पर ये बात अबोध बालक नहीं समझेगा, बुद्धिमान विवेकी पुरुष ही समझ सकते हैं। इस प्रकार अज्ञानी जीव तो दुःख में एकदम दुःखी होकर डूब ही जाते हैं। पर विवेकी सत्पुरुष जो विवेकशील हैं, वह उस दुःख को पाप का नाश देखकर उसके परिणाम से सुखी होते हैं। बड़ा दिव्य उपदेश नारदजी ने दिया और कहा, देख बेटा! एक बात और सुन ले। बड़ों को देखकर सुखी होना सीखो, छोटों पर अनुग्रह करना सीखो और बराबर के लोगों से मैत्री करो तो जीवन में कभी दुःखी नहीं होगे। आजकल हम अपने दुःख में उतने दुःखी नहीं हैं, जितने कि पड़ौसी के सुख से दुःखी हैं। हमें चार साल हो गये, उसी गाड़ी को लिये घूम रहे हैं और हमारे पड़ोसी साथी ने चार गाड़ी खरीद लीं? इस बात का ज्यादा दुःख होता है। इसलिये –

गुणाधिकान्मुदं लिप्सेदनुक्रोशं गुणाधमात् ।
मैत्रीं समानादन्विच्छेन्न तापैरभिभूयते ॥ (भा. 4/8/34)

बहुत सुन्दर उपदेश नारदजी ने उस बालक को दिया। पर ध्रुवजी हाथ जोड़कर बोले, सरकार! कोई छलनी को लेकर गैया दुहने बैठ जाये तो, क्या दूध टिक पायेगा? उसी प्रकार आप अमृत जैसी वाणी बरसा रहे हैं, जो अद्भुत और दिव्य है पर मेरा हृदय सौतेली माँ के वचनों के वाणों से इतना छिन्न-भिन्न हो गया है, इतना छलनी हो गया है कि वह आपका अमृत मेरे हृदय में टिक नहीं पा रहा, '**सुरुच्या दुर्वचोबाणैर्न भिन्ने श्रयते हृदि**' मेरा हृदय इस समय बहुत से छिद्रों से भर गया है। इसलिये आपका वचन टिकेगा नहीं। मैंने एक ही लक्ष्य बनाया है उस परमपिता को पाना। आप तो उपाय बताईये। नारदजी समझ गये कि पक्का चेला है। ये लौटने वालों में नहीं है, परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया। नारदजी बोले, बेटा! अब मुझे विश्वास हो गया, तुझे प्रभु अवश्य दर्शन देंगे। द्वादशाक्षर मन्त्र (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) कान में फूंक दिया। '**मननात् त्रायतेइति मन्त्रः**' – जिसका मनन किया जाये, उसे मन्त्र कहते है। मन्त्रों का संकीर्तन नहीं होता। केवल एक ही मन्त्र ऐसा है, जिसका संकीर्तन भी होता है और जप भी होता है।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

द्वादशाक्षर मन्त्र नारदजी ने ध्रुवजी महाराज को प्रदान किया। ध्यान की पूरी पद्धति विधिवत् बतलाई और कहा कि बेटा! अब यहाँ से सीधे मथुरा चले जाओ।

तत्तात गच्छ भद्रं ते यमुनायास्तटं शुचि ।
पुण्यं मधुवनं यत्र सांनिध्यं नित्यदा हरेः ॥ (भा. 4/8/42)

परमपावन मोक्षदायिनी मथुरापुरी में जाकर यमुना में स्नान करके भजन करो। गुरु-आज्ञा स्वीकार करके ध्रुवजी महाराज चल पड़े और यमुना स्नान करके मधुवन में बैठ गये। नियम लिया – '**त्रिरात्रान्ते त्रिरात्रान्ते कपित्थबदराशनः**' तीन दिन में एक दिन फलाहार करना और तीन दिन तक बिल्कुल निराहार रहना। एक माह तक ये नियम चला। तपस्या का दूसरा महीना लगा तो नियम और कठोर कर दिया, '**द्वितीयं च तथा मासं षष्ठे षष्ठेऽर्भको दिने**' छह दिन में एक बार '**तृणपर्णादिभिः**' या तो वृक्षों के पत्ते खाते हैं या दूर्वा घास छह दिन में एक बार खाकर तप करते हैं। अगले छह दिन तक वह भी नहीं पाते। तीसरा माह लगा तो नियम और कठोर कर दिया, '**नवमे नवमेऽहनिः**' अब नौ दिन में एक बार '**अब्भक्ष**' केवल यमुनाजी का जल मात्र पीते हैं। घास पत्ते भी छोड़ गये। नौ दिन में एक बार यमुनाजी का जल पीते हैं। चौथा महीना लगा तो नियम और कठोर कर दिया,

चतुर्थमपि वै मासं द्वादशे द्वादशेऽहनि

अब बारह दिन में एक दिन केवल वायु का आहार करते हैं। एक यौगिक क्रिया है, जिससे वायु पीकर भी योगी लोग रह लेते हैं। तो बारह दिन में एक बार वायु-आहार करते हैं, पानी को भी छोड़ गये। देखिये जरा! तपश्चर्या कैसे की जाती है? कुछ लोग कभी-कभी कथा सत्संग सुनकर एकदम भावुक हो गये और निर्णय लिया कि अबकी बार हम नवदुर्गा बिल्कुल नौ दिन तक निराहार रखेंगे। आज तक एकादशी कभी ठीक से नहीं की और एकदम नौ दिन का व्रत लेने का संकल्प कर लिया। व्रत चला जैसे-तैसे छह दिन तक खिच गया, सातवें दिन अस्पताल में भर्ती हो गये बोतल चढ़ानी पड़ी। सारी तपस्या धरी रह गई। तो ऐसा दुराग्रह नहीं करना चाहिये, शरीर को कसौटी पर कसते हुए चलो। श्रीध्रुवजी महाराज वही कर रहे हैं, पहले तीन दिन में एक वार, फिर छह दिन में, फिर नौ दिन में, फिर बारह दिन में ... धीरे-धीरे तपस्या के द्वारा शरीर को कस रहे हैं। पाँचवा महिना लगा तब तो श्रीध्रुवजी महाराज ने ऐसा प्राणायाम चढ़ाया कि–

ध्यायन्भगवतो रूपं नाद्राक्षीत्किंचनापरम्

पैर के अङ्गूठे पर खड़े होकर प्राणायाम ऐसा चढ़ाया कि समस्त प्राणियों की प्राणवायु को अवरुद्ध कर दिया। त्रैलोक्य में हाहाकार मच गया, देवता श्रीहरि की शरण में –

नैवं विदामो भगवन् प्राणरोधं चराचरस्याखिलसत्त्वधाम्नः ।
विधेहि तन्नो वृजिनाद्विमोक्षं प्राप्ता वयं त्वां शरणं शरण्यम् ॥ (भा. 4/8/81)

हे प्रभो! हम आपकी शरण में हैं। रक्षा करो! भगवान् बोले, किससे रक्षा करें? देवगण बोले, ये ही तो नहीं जानते? हम आपको नहीं बता सकते कि किसने हमारा प्राणश्वास रोक लिया? ये तो आप ही जानो। भगवान् बोले, '**मा भैष्ट**' डरो मत। '**औत्तानपादिर्मयि संगतात्मा**' उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव की आत्मा मुझमें इतनी समर्पित हो गई है कि आज उसकी प्राणवायु के अवरुद्ध होने से उसकी प्राणवायु व्यष्टि से समष्टि में परिणत हो गई। घबड़ाओ मत। और यों कहकर भगवान् गरुड़ पर आरुढ़ होकर दौड़ पड़े। मैत्रेय मुनि कहते हैं, विदुरजी!

मधोर्वनं भृत्यदिदृक्षया गतः

आज ध्रुव को दर्शन देने के लिए प्रभु नहीं दौड़ रहे तो, वरन् अपने भक्त ध्रुव का दर्शन करने के लिये भगवान् मधुवन की ओर दौड़ पड़े। '**दृष्टुं इच्छा दिदृक्षातया**' आज ध्रुव के दर्शन की उत्कण्ठा प्रभु के मन में जागी। दौड़े-दौड़े गरुड़ पर आरूढ़ होकर, शंख-चक्र-गदा-पद्म लिए भगवान् नारायण प्रकट हो गये। ध्रुवजी आँख बंद किये खड़े हैं। प्रभु समझ गये कि ये आँख खोलने वाला नहीं क्योंकि भीतर मेरी छटा इसे दिख रही

है। सो भीतर का दृश्य प्रभु ने अन्तर्ध्यान कर दिया। तब ध्रुवजी ने हड़बड़ाकर नेत्र खोले, तो भीतर वाले ही आँखों के सामने खड़े नजर आये। भगवान् की वह अद्भुत छटा देखते ही ध्रुवजी ने प्रणाम किया और हाथ जोड़कर खड़े हो गये। अब मन ही मन सोचने लगे, हे भगवान! गुरुजी से, माताजी से, सैकड़ों बातें पूछी पर ये नही पूछ पाया कि जब प्रभु प्रकट हों तब क्या करना चाहिये? पूजा करूँ तो कैसे करूँ? सामान कुछ है नहीं। स्तुति करूँ तो कैसे करूँ? आता-जाता कुछ है नहीं। प्रभु समझ गये और तुरन्त ध्रुवजी के निकट आकर अपना दिव्य शंख ध्रुवजी के कपोल से स्पर्श करा दिया। **'पस्पर्श बालं कृपया कपोले'** जो प्रभु ने ध्रुवजी के गाल से अपना शंख स्पर्श कराया कि स्पर्श होते ही ध्रुवजी को सारा वेद-वेदान्त कंठस्थ हो गया। भगवत्कृपा गूंगे को भी वाचाल बना दे।

मूकं करोति वाचालं पंगुं लङ्घयते गिरिम् ।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम् ॥

पूज्यपाद स्वामी श्रीविष्णुआश्रमजी महाराज कहा करते थे, क्या भक्त को वाचाल बनायेंगे भगवान? वाचाल किसे कहते हैं? जो ऊट-पटांग बक-बक करते हैं, उन्हें वाचाल कहते हैं। पर भगवान् भक्त को वाचाल थोड़े ही बनायेंगे? तो **'वाचालम्'** का अर्थ क्या है? **'वाचा अलंकरोति इति वाचालम्'** भगवान् जिस भक्त पर अनुग्रह करते हैं, उसकी वाणी को अलंकृत कर देते हैं। वह जो बोलेगा, वह शास्त्र-वेदसम्मत ही बोलेगा। शास्त्रविरुद्ध उसकी वाणी निकलती ही नहीं है। आज नारदजी ने द्वादशाक्षरमन्त्र दिया, तो ध्रुव ने भगवान् की द्वादश श्लोकों में ही स्तुति की।

योऽन्तः प्रविश्य मम वाचमिमां प्रसुप्तां संजीवयत्यखिलशक्तिधरः स्वधाम्ना ।
अन्यांश्च हस्तचरणश्रवणत्वगादीन् प्राणान्नमो भगवते पुरुषाय तुभ्यम् ॥ (भा. 4/9/6)

हे प्रभो! आपने ही मेरे अन्तःकरण में प्रविष्ट होकर ही मेरी सोई हुई वाणी को जगा दिया है। केवल आप वाणी के ही शक्तिप्रदाता नहीं, अपितु अन्य इन्द्रियों में जो भी शक्तियाँ हैं उन समस्त शक्तियों के प्रदाता प्रभु आप ही हो। आपको मेरा शत-शत प्रणाम है। जो आपके श्रीचरणों को पाकर, आपके प्रेम को न माँगकर संसार की अनित्य वस्तुओं की याचना करते हैं मेरी दृष्टि में उनकी मति मारी गई है। आपकी माया ने उनकी बुद्धि को हर लिया जो कि कामधेनु गाय के सामने खड़े होकर बकरी की पूजा कर रहे हैं, कल्पवृक्ष के पास रहकर धतूरे की पूजा कर रहे हैं। मैं जान गया कि आप वही नारायण हो, **'कल्पान्त एतदखिलं जठरेण गृह्णन्'** जो कल्पान्त में सारे ब्रह्माण्ड के जीवों को अपने उदरस्थ करके विश्राम करते हैं। इसलिये हे प्रभो! आपके श्रीचरणों में शत-शत प्रणाम है। भगवान् बोले, बेटा! कुछ वर माँगो। ध्रुवजी कहते हैं, प्रभु! आपको देखने के बाद अब कोई भी माँगने की इच्छा शेष नहीं रही। भगवान् बोले, फिर भी तुम सिंहासन पर बैठने की इच्छा लेकर आये थे। इसलिये जाओ! पहले सिंहासन पर चलकर बैठो, छत्तीस हजार वर्ष राज्य करो। उसके बाद तुम दिव्य ध्रुवलोक को प्राप्त करोगे। ऐसा कह कर भगवान् अन्तर्ध्यान हो गये और ध्रुवजी को लगा जैसे हम ठग लिये गये। मेरी तो बुद्धि देवताओं ने ठग ली, **'मतिर्विदूषिता देवैः पतद्भिरसहिष्णुभिः'** देवताओं ने मेरी बुद्धि हर ली जो इस अनित्य-वस्तु राज्य को मैं पाकर संतुष्ट होकर आ गया। जब घर आये, तो राजा उत्तानपाद स्वागत में दौड़ पड़े। पूरी प्रजा आज ध्रुवजी के स्वागत में दौड़ रही है। और-तो-और सौतेली माँ भी आज अपने बेटा से मिलने के लिये दौड़ रही है।

जा पर कृपा राम की होई । ता पर कृपा करे सब कोई ॥
यस्य प्रसन्नो भगवान् गुणैर्मैत्र्यादिभिर्हरिः ।

तस्मै नमन्ति भूतानि निम्नमाप इव स्वयम् ॥ (भा. 4/9/47)

मैत्रेयमुनि कहते हैं, विदुरजी! जिस पर गोविन्द की कृपादृष्टि पड़ जाती है, सारा जगत् उसपर कृपा बरसाने लगता है। जिसे सौतेली माँ फूटी आँख नहीं देखना चाहती थी? आज वह भी स्वागत में ध्रुवजी के हाथ जोड़कर खड़ी है। ध्रुवजी ने दौड़कर पहले पिताजी को प्रणाम किया फिर सौतेली माँ को प्रणाम किया। ध्रुवजी के पिता महाराज उत्तानपाद ने अपने बेटे को हृदय से लगा लिया। सारा वैभव-साम्राज्य श्रीध्रुवजी को सौंपा और भजन करने को चले गये। ध्रुवजी महाराज के भ्रमी और इला नाम की दो कन्याओं से विवाह हुए और कालान्तर में उत्कल और वत्सर नामक दो बेटा हुए। एक दिन ध्रुवजी के छोटे भाई उत्तम का झगड़ा एक दिन यक्षों से हो गया और यक्षों के हाथों मारा गया। सुरुचि माँ अपने बेटे को ढूंढने निकली, सो जंगल की दावाग्नि में देह भस्म कर बैठी। ध्रुवजी को पता चला तो यक्षों पर आक्रमण करके सैकड़ों यक्षों का संहार कर डाला। मनु महाराज ने प्रकट होकर रोका **'अलं वत्सातिरोषेण'** क्या कर रहे हो बेटा? तुम्हारे एक भाई को यक्ष ने मारा और तुमने बदले में सैकड़ों यक्ष मार डाले?

नायं मार्गो हि साधूनां हृषीकेशानुवर्तिनाम्

मनुजी ने कहा, बेटा! भगवद्भक्तों का ये मार्ग नहीं है, जहाँ तुम चल पड़े। तब ध्रुवजी सावधान हुए। यक्षराज कुबेर से माफी माँगी और लौटकर सत्ता का भार बच्चों को सौंपकर संतों के साथ बैठकर भजन करने लगे। छत्तीस हजार वर्ष पूरे होने पर अलौकिक विमान प्रकट हुआ। पार्षदों ने कहा, भैया ध्रुव चलो! समय पूरा हो गया। ध्रुवजी महाराज अपने नित्यकर्म से निवृत्त होकर आये। जैसे-ही विमान की ओर बढ़े कि मृत्युदेव प्रकट हो गये। मृत्युदेव बोले, महाराज! कहाँ जा रहे हो? तनिक हमें भी देख लो। ये मृत्युलोक है, मुझे अपनाओ फिर प्रेम से जाओ। ध्रुवजी ने मृत्यु को बुलाकर विमान के निकट बैठा लिया और,

मृत्योर्मूर्ध्नि पदं दत्त्वा आरुरोहाद्भुतं गृहम्

मृत्यु के सिर पर पैर रखकर ध्रुवजी महाराज विमान में जा बैठे। भक्ति में वह शक्ति है कि मृत्यु को भी सिर झुकाकर प्रार्थना करनी पड़ती है। विमान उड़ गया। तुरन्त पार्षदों ने टोका, ध्रुव! तुम्हारा मुख थोड़ा-सा लटका दिख रहा है। क्या बात है? उदास क्यों हो? ध्रुवजी बोले, क्या करें! जल्दी-जल्दी में अपनी माताजी को छोड़ आये, जिस माँ के संस्कारों ने आज मुझे यहाँ तक पहुँचा दिया मैं उस माँ को अकेला ही धरातल पर छोड़े जा रहा हूँ। पार्षद मुस्कुरा पड़े, ध्रुव! जिस जननी ने तुम्हें जन्म दिया हो, वह पीछे कैसे रह सकती है? आगे देखो कौन-जा रहा है?

दर्शयामासतुर्देवीं पुरो यानेन गच्छतीम्

आगे-आगे जो विमान जा रहा है, वह आपकी माताजी को ही लेकर जा रहा है। गद्गद् हो गये ध्रुवजी महाराज अपनी माँ सुनीति के साथ भगवान् के परमपद को प्राप्त हो गये।

ध्रुव सगलानि जपेउ हरि नाऊँ ।
पायउ अचल अनूपम ठाऊँ ॥ (मानस 1/26/3)

इसलिये कहते हैं कि भगवान् का नाम कैसे भी जपो, फलदायक है। ध्रुवजी महाराज तो सौतेली माँ के वचनों से व्यथित होकर गये थे, पर हरिनाम का आश्रय लेकर आज कहाँ-से-कहाँ पहुँच गये। तो भगवान् का नाम कैसे भी जपो, नाम तो अपना चमत्कार दिखाये बिना रह नहीं सकता। पाँच वर्ष की अवस्था में देवर्षि

नारद-जैसे समर्थ सदगुरु का आश्रय लेकर ध्रुवजी महाराज ने परमगति को प्राप्त कर लिया।

पृथु चरित्र — इन्हीं ध्रुवजी महाराज के वंश में आगे चलकर परम धर्मात्मा महाराज अङ्ग का जन्म हुआ। अङ्ग तो बड़े ही धर्मात्मा थे, परन्तु उनका विवाह मृत्यु पुत्री सुनीथा देवी से हुआ। फलस्वरूप इनका बेटा वेन एकदम नास्तिक और अनीश्वरवादी हुआ। वेन से दुःखी होकर महाराज अङ्ग अपने राज्य की एक गुहा में प्रविष्ट हो गये। देश-विदेशों में सैनिकों ने घोड़े दौड़ाये, परन्तु महाराज का कोई पता नहीं चला। अब देखिये, स्वराज्य में कोई नहीं ढूँढ रहा है। जैसे-परमात्मा हमारे ही हृदयप्रदेश में विराजमान हैं और कुयोगीजन हृदय में हरि को न ढूँढकर, बाहर ढूँढा करते हैं। '**यथा निगूढं पुरुषं कुयोगिनाम्**' ठीक ऐसे ही स्वराज्य में न ढूँढकर विदेशों में ढूँढें, पर महाराज अङ्ग का कहीं पता नहीं चला। फलस्वरूप प्रजा ने मिलजुल कर वेन को ही राजा बना दिया। जहाँ वेन राजा बना, अधिकार उसे हाथ में आ गये तो उसने पहला प्रस्ताव पारित किया,

न यष्टव्यं न दातव्यं न होतव्यं द्विजाः क्वचित् ।
इति न्यवारयद्धर्मं भेरीघोषेण सर्वशः ॥ (भा. 4/14/6)

वेन ने उद्घोष कर दिया कि आज के बाद कोई यज्ञ न करे, हवन न करे, पूजन न करे, भजन न करे, ब्राह्मण भोजन न करावे, संतों के भण्डारे न करावे। यदि करना बहुत अनिवार्य हो तो जो कुछ करे, मेरे नाम से करे। '**वेनाय नमः**' - भजन करो, '**वेनाय स्वाहा**' - हवन करो क्योंकि वास्तविक परमात्मा मैं ही हूँ। सभी संत मिलकर समझाने आये और शान्तिपूर्वक उस राजा वेन को समझाया, देखो महाराज! आपको यज्ञपुरुष भगवान् का इस प्रकार से अनादर नहीं करना चाहिये। तो संतों को ही गालियाँ देने लगा,

बालिशा बत यूयं वा अधर्मे धर्ममानिनः ।
ये वृत्तिदं पतिं हित्वा जारं पतिमुपासते ॥ (भा. 4/14/23)

वेन बोला, तुम लोगों ने अधर्म को धर्म मान रखा है। तुम्हारी मूर्ख बुद्धि है। अरे महात्माओ! तुमने उस भगवान् को कभी देखा है क्या? शक्ल-सूरत जिसकी देखी नहीं, उसके पीछे दीवाने बने पागलों की तरह डोलते हो। और जो परमात्मा तुम्हारे सामने प्रत्यक्ष बैठा है उसका अनादर करते हो? ब्रह्माण्ड भर के जितने भी देवी-देवता कहे और सुने जाते हैं, वह सब चलते-फिरते राजा के रोम-रोम में विद्यमान रहते हैं। '**देहे भवन्ति नृपतेः सर्वदेवमयो नृपः**' राजा समस्त देवों का रूप होता है, इसलिये मेरी पूजा करो। महात्माओं को क्रोध आ गया, '**हन्यतां हन्यतामेष पापः प्रकृ तिदारुणः**' क्रोध में आकर संतों ने जो हुंकार ध्वनि की सो धड़ाम से प्राणहीन होकर वेन धरती पर गिर गया।

अब वेन का जब काम तमाम हो गया, तो संत बड़े चक्कर में पड़ गये कि अब राजा किसे बनावें? संतों को राजनीति से कोई मतलब नहीं होता पर जब राजनीतिधर्म पर कुठाराघात करने लग जाये, धर्म पर चोट पहुँचाने लगे तो संतों को भी फिर राजनीति का परिष्कार करने के लिये सामने आना पड़ता है। पर राजनीति का शोधन तो कर सकते हैं, लेकिन राजनीति थोड़े-ही करते हैं? संतों ने सोचा कि हम तो राजा का शोधन करना चाहते थे, उसे सुधारना चाहते थे। पर सुधारते-सुधारते हमने तो सिधार दिया? अब गद्दी पर कौन बैठे? तो सबने मिलकर मन्त्रों द्वारा वेन का मन्थन किया। फलस्वरूप उससे निषाद की उत्पत्ति हुई। बहुत ही काला-कलूटा-सा था। वह निषाद हाथ जोड़कर बोला, क्या करूँ? महात्मा बोले, '**निशीथ**' चुपचाप बैठ जा। इसलिये उसका नाम निषाद हो गया। पुनः मन्थन किया तो अबकी बार एक सुन्दर बालक और बालिका का प्राकट्य हुआ। बालक के हाथ में शंख-चक्र के चिन्ह देखकर महात्मा प्रसन्न हो गये, ओ हो! साक्षात् प्रभु पधारे हैं। हमारी समस्या का

समाधान लेकर स्वयं प्रभु प्रकट हुये हैं। मन्थन से प्रादुर्भूत हुए हैं, इसलिये नाम इनका पृथु रखा।

सबने मिल जुलकर महाराज पृथु को चक्रवर्ती की पदवी प्रदान की। गद्दी पर बैठाकर अभिषेक किया। सूत-मागध-बंदीजनों ने हाथ जोड़कर पृथु भगवान् की महिमा गानी प्रारम्भ कर दी। पृथु महाराज ने टोक दिया, सुनो-सुनो! अभी-अभी गद्दी पर बैठे हैं और तुमने प्रशंसा के पुल बांध दिये? राजा को झूठी प्रशंसा नहीं सुननी चाहिये। क्योंकि जो प्रशंसा में ही मुग्ध होकर बैठे रहते हैं, फिर वह करते-धरते कुछ नहीं। जब बिना किये ही जय-जयकार हो रही है, तो करने की आवश्यकता क्या? जहाँ चुनाव जीत के आये और हमने फूलों से लाद दिये और जिंदाबाद के नारों से हौसला बुलंद कर दिया, तो अब कुछ करने की क्या जरूरत? प्रशंसनीय कार्य करने वालों की ही प्रशंसा होनी चाहिये। इसलिये पृथु महाराज ने अपने प्रशंसकों को रोक दिया कि अभी हम गद्दी पर बैठे हैं। अभी हमने किया ही क्या है? प्रजाजनों ने हाथ जोड़कर कहा, तो कुछ कीजिये प्रभो! हम लोग भूखों मर रहे हैं। हे महाराज! पृथ्वी से अन्न पैदा ही नहीं हो रहा। पृथु महाराज ने तुरन्त पृथ्वी को आदेश दिया, हे वसुंधरा! तुम्हारा काम है एक दाना ले कर हजारों में परिवर्तित करके उसे प्रदान करना। मेरी प्रजा को अन्न प्रदान करो। पृथ्वी ने नहीं सुना तो पृथु महाराज को क्रोध आ गया,

वसुधे त्वां वधिष्यामि मच्छासनपराङ्मुखीम्

मेरी आज्ञा का अनादर करने वाली वसुधा, मैं तेरा भी वध कर दूँगा। पृथ्वी काँपती हुई गौमाता के रूप में प्रकट हो गई और हाथ जोड़कर पृथु महाराज की स्तुति करने लगी, भगवन! क्षमा करें। मैं आपके पराक्रम को समझ न सकी और मेरा तो स्वभाव है, जब मेरे ऊपर धर्म की ध्वजा लहराती है तो मैं प्रसन्नता के मारे अपने सारे रत्न प्रकट करती हूँ। और जब कोई अधर्म करने लगता है, तो सारे रत्नों को अपने गर्भ में छुपा लेती हूँ। आपके पिता वेन ने धर्म पर कुठाराघात करके जो प्रतिबन्ध लगाया, उससे मैंने सारे रत्न अपने में छुपा लिये जिससे प्रजा को भूखा मरना पड़ा। अब आप साक्षात् धर्मरक्षक प्रकट हुये हो, तो मैं भी गाय बनकर आपके सामने खड़ी हूँ। हे प्रभो! मेरा दोहन कीजिये। तब पृथु महाराज ने क्रमशः समस्त तत्त्वों का दोहन प्रजा में कराया और सुख-शान्ति की व्यवस्था की।

विधिवत् पृथ्वी पर नगर-ग्रामों की व्यवस्था बनाई। उत्तराखण्ड में पर्वत-श्रृंखलाओं को उठाकर एक किनारे रख दिया। पृथु महाराज के प्रताप से इस वसुंधरा को लोग पृथ्वी कहने लगे। प्रथम सम्राट् महाराज पृथु हैं, जिन्होंने सुन्दर सारी व्यवस्थायें नगर-ग्रामों की बनाई। बड़े-बड़े यज्ञ करने प्रारम्भ कर दिये तो इन्द्र की धड़कन तेज हो गई कि कहीं ये शतक्रतु न हो जाये? और जो सौ यज्ञ कर ले तो इसे सिंहासन देना पड़ेगा। जो विधानसभा में बहुमत सिद्ध कर दे, उसके लिये मुख्यमन्त्री की गद्दी छोड़नी पड़ेगी। तो मुख्यमन्त्री का-जैसे प्रयत्न होता कि विपक्ष कहीं बहुमत में न आ जाये, ऐसे ही इन्द्र का ये प्रयत्न रहता है कि कोई शतक्रतु न बन जाये। सौ यज्ञ के निकट पहुँचते ही वह उत्पात मचाने लगता है। तो इन्द्र ने अश्वमेधयज्ञ का घोड़ा चुरा लिया। पृथु महाराज के पुत्र ने इन्द्र को युद्ध में परास्त करके घोड़े को जीत लिया। इसलिये उसका नाम 'विजिताश्व' हो गया। इन्द्र पुनः पाखण्ड का आश्रय लेकर साधुवेष बनाकर घोड़ा ले भागा।

मैत्रेयजी कहते हैं, विदुरजी! यही से पाखण्ड की परम्परा का जन्म हुआ। '**पापस्य खण्डः इति पाखण्डः**' जो पाप का ही एक खण्ड है, वही पाखण्ड है। दिखने में धर्म का ध्वज लगता है, पर वस्तुतः होता एक पाप का ही खण्ड हैय उसका नाम पाखण्ड है। पृथु महाराज को पता लगा तो बड़ा क्रोध आया। ब्राह्मणों ने कहा, क्रोध न कीजिये महाराज! तो क्या करें? ऋषियों ने कहा, हमें आज्ञा दीजिये। हम एक क्षण में इन्द्र को ही

स्वाहा कर देंगे क्योंकि ये सारे देवता हम ब्राह्मणों के मन्त्र के आधीन हैं।

दैवाधीनं जगत्सर्वं मन्त्राधीनाश्च देवता: ।
ते मन्त्रा: ब्राह्मणाधीनास्तस्माद् ब्राह्मणदैवतम्॥

पृथु महाराज ने आज्ञा दी। जो ब्राह्मणों ने मन्त्रोचारण किया कि मन्त्रशक्ति से इन्द्र खिंचे चले आये। ब्राह्मण स्वाहा करने ही वाले थे कि विधाता ब्रह्मा प्रकट हो गये, अरे भाई ब्राह्मणदेवताओ! क्या कर रहे हो? '**इन्द्राय स्वाहा**' की जगह इन्द्र को ही स्वाहा करने लगे। रोको! हमारी सब व्यवस्था बिगड़ जायेगी। ब्रह्माजी ने सबको समझाया।

पृथु महाराज ने ब्रह्माजी के वचनों का आदर रखते हुए ब्राह्मणों को मना कर दिया। ब्राह्मण शान्त हो गये। पृथु महाराज का क्रोध शान्त हो गया, इन्द्र के प्राण बच गये; तब वहीं भगवान् नारायण प्रकट हो गये। भगवान् राजा पृथु से बोले, महाराज पृथु! आपने पितामह ब्रह्मा का आदर रखकर मुझे प्रसन्न कर दिया। जो बुजुर्गों का सम्मान करते हैं, बड़ों की आज्ञा का आदर करते हैं भगवान् उन पर प्रसन्न होते हैं। भगवान् बोले, क्या चाहते हो? पृथु महाराज भगवान् की दिव्य छटा को देखकर प्रसन्न हो गये और बोले, प्रभो! मुझे कुछ नहीं चाहिये। मैं कोई इन्द्र की पदवी पाने के लिये यज्ञ थोड़े-ही कर रहा था? आप प्रसन्न हैं, मुझे सर्वस्व मिल गया। फिर भी आप कुछ देना चाहते हैं, तो मुझे तो दस हजार कान दे दीजिये। आपकी कथा दो कानों से सुनकर मुझे तृप्ति नहीं मिली। मैं तो चाहता हूँ कि दस हजार कान होवें और कहीं भी आपके कथामृत का झरना झरे और मेरे इन कर्णविवरों में आपका कथामृत निरन्तर भरता रहे। इसलिये '**विधत्स्व कर्णायुतमेष मे वर:**'। पृथु महाराज ने कहा, सरकार! हमें विश्वास है। यदि लक्ष्मीजी से हमारा कदाचित् कलह हो भी गया, तो आप हमारे ही पक्ष में रहोगे। क्योंकि मैं आपके स्वभाव को खूब अच्छी तरह जानता हूँ। जितने प्यारे आपको अपने भक्त लगते हैं, उतनी भगवती लक्ष्मी भी नहीं। भले ही वह आपकी प्राणप्रिया होंगी।

जगज्जनन्यां जगदीश वैशसं स्यादेवं यत्कर्मणि नः संमीहितम् ।
करोषि फल्ग्वप्युरु दीनवत्सल: स्व एव धिष्ण्येऽभिरतस्य किं तया ॥ (भा. 4/20/28)

पृथु महाराज कहते हैं, आपकी सेवा के लिये कदाचित् जगज्जननी से हमारा कोई विरोध हो गया, तो आप अपने भक्तों के पक्ष में ही रहेंगे। पृथु महाराज की दिव्यभावना से सन्तुष्ट होकर प्रभु अन्तर्ध्यान हो गये। पृथु महाराज ने धर्म की ध्वजा चारों तरफ स्थापित की। एक बार सारी प्रजा को बुलाकर अपने पास बैठाया और प्रजाजनों को सम्बोधन करते हुए बोले, देखो भाई! '**सभ्या: शृणुत भद्रं व: साधवो य इहागता:**' अरे सज्जन पुरुषो! मैंने आप सबको इसलिये बुलाया है कि प्रजा का कर्त्तव्य है कि राजा को कर दे। राजा का कर्त्तव्य है कि प्रजा से कर लेकर प्रजा को सुरक्षा और धर्म की व्यवस्था प्रदान करे। जो राजा कर तो अनाप-शनाप लगाता है और कर बदले में धर्म की कोई शिक्षा और सुरक्षा किसी प्रकार की प्रजा को नहीं देता, वह राजा कर रूप में प्रजा का पापभक्षण करता है।

य उद्धरेत्करं राजा प्रजा धर्मेष्वशिक्षयन् ।
प्रजानां शमलं भुङ्क्ते भगं च स्वं जहाति स:॥ (भा. 4/21/24)

उस राजा का ऐश्वर्य क्षीण हो जाता है, जो प्रजा को धर्म का उपदेश नहीं देता प्रजा के धर्म की रक्षा नहीं करता। बड़ा सुन्दर उपदेश अपनी प्रजा को दे रहे हैं कि अचानक आकाशमण्डल में मानों चारों वेद मूर्तिमन्त

मानव के रूप में प्रकट हो गये हों, ऐसे सूर्य के समान तेजस्वी चार ऋषिकुमार सनक, सनन्दन, सनातन व सनत्कुमार सबके बीच प्रकट हो गये। तुरन्त महाराज पृथु ने उन्हें प्रणाम किया। सारी प्रजा ने उन चारों महापुरुषों का सम्मान किया। पूजनोपरान्त पृथु महाराज पूछने लगे, महाराज! क्या सेवा की जाये? मैं आपसे आपकी कुशलता का प्रश्न तो कर नहीं सकता कि महाराजजी आप कैसे हो? संतों से नहीं पूछना चाहिये क्योंकि कुशलता का प्रश्न वहाँ किया जाता है, जहाँ कभी अकुशल होने की सम्भावना हो। संसारियों में ये लगा रहता है कि आज वह बीमार है, आज ये घटना हो गई, आज उसमें फंस गये - चारों तरफ प्रपंचों में जूझते रहते हैं। पर जो हर समय ब्रह्मानन्द में मस्त है, ऐसे ब्रह्मज्ञानियों से क्या कुशलता का प्रश्न करना? क्योंकि उनके जीवन में अकुशलता कभी आती ही नहीं वह हमेशा कुशल ही रहते हैं। इसलिये '**भवत्सु कुशलप्रश्न आत्मारामेषु नेष्यते**' आप-जैसे आत्मारामों से कुशलता का प्रश्न करना उचित नहीं है। जिस गृहस्थ के घर में आप-जैसे संतों का पदार्पण हो जाये, तो वह अकिंचन का भी घर हो तब भी श्रेष्ठ है। और यदि घर में चाहे जितने रत्नों के भण्डार भरे पड़े हों, पर उस भवन में आप-जैसे संतों के चरणों का चरणोदक कभी नहीं पड़ा तो वह घर उसी प्रकार से है जैसे फलों से लदा हुआ वृक्ष तो है, पर बड़े-बड़े नागों से लिपटा हुआ है।

व्यालालयद्रुमा वै तेऽप्यरिक्ताखिलसम्पद: ।
यद्गृहास्तीर्थपादीयपादतीर्थविवर्जिता: ॥ (भा. 4/22/11)

संतों के चरणों का जल जो गिरता है, उसी को पादतीर्थ कहते हैं। जिस घर में संतों का चरणोदक नहीं गिरा, वह घर क्या है? जैसे सर्पो से लिपटा हुआ वृक्ष है। सर्पो के डर के मारे न तो उस वृक्ष के नीचे कोई छांव लेने जा सकता है, न निश्चिन्त होकर सो सकता है, न उस वृक्ष से फल ही खा सकता है तो किस मतलब का वह फलदार वृक्ष? उसी प्रकार धन-सम्पदा चाहे जितनी भरी पड़ी हो, पर संतों का चरणोदक नहीं तो सब व्यर्थ है। पृथु महाराज ने बड़ा अद्भुत स्वागत किया और कहा, महाराज! हमारे कल्याण का कोई मार्ग हमें बताइये। तब श्रीसनत्कुमारजी बोले, राजन्! जब सज्जन पुरुषों से भेंट होती है, तो समाज के कल्याण की ही चर्चा होती है। तुमने ये प्रश्न अपनी प्रजाजनों के कल्याणार्थ किया है, तो ध्यान से सुन लीजिये। हम समस्त शास्त्रों का सार निचोड़ तुम्हें एक शब्द में सुनाये देते हैं -

शास्त्रेष्वियानेव सुनिश्चितो नृणां क्षेमस्य सध्र्यग्विमृशेषु हेतु: ।
असंग आत्मव्यतिरिक्त आत्मनि दृढा रतिब्रह्मणि निर्गुणे च या ॥ (भा. 4/22/21)

समस्त शास्त्रों का अच्छी तरह से मन्थन करने के बाद प्राणीमात्र के कल्याण का एक ही उपाय सुनिश्चित किया गया है कि अनात्म वस्तुऐं जो हैं, उनसे असंग होना सीखो और अपने आत्मस्वरूप को पहचान कर, उसीमें अपनी स्थिति बनाओ उसी से प्रीति करो। अर्थात् अपने स्वरुप को पहचानकर उसी में स्थित रहो और जो अनात्म-वस्तुओं में अत्यन्त आसक्ति है, उस आसक्ति को त्याग करो, उनसे असंग हो जाओ। ये बात थोड़ी टेढ़ी है। तनिक और स्पष्ट रूप से देखो! हम और आप जब इस जगत् में आये तो जन्म लेने से पहले किसी को नहीं जानते थे। कोई हमारा नहीं था और हम किसी के नहीं थे। अनिच्छित गर्भ भी यदि कोई आये, तो माताऐं उसे भी परित्यक्त करा देती हैं। है तो वह भी अपना बच्चा? परन्तु अभी उसमें आसक्ति नहीं। परन्तु जहाँ जन्म लिया, तब धीरे-धीरे आसक्ति बढ़ी, ये शरीर मेरा है, ये परिवार मेरा है, ये मकान मेरा है, ये दुकान मेरी है, ये हमारे लोग हैं, ये पराये लोग हैं। अब एक क्षण पहले कोई किसी का नहीं था और अब जन्म लेते ही सब भेद उत्पन्न हो

गये। तो ये सब अनात्म-वस्तुयें हैं। अरे! जब शरीर ही हमारा नहीं? ये भी पंचायती-धर्मशाला के पाँच-पाँच पंचों का है। समय आने पर ये पंचायती-धर्मशाला से भी आपको निकालकर बाहर कर दिया जायेगा। तो ये ईट पत्थरों के मकान-दुकान तुम्हारे कैसे हो सकते हैं? तो ये जो अनात्म वस्तुओं में अत्यन्त आसक्ति है।

'मैं' के नाम पर इस शरीर को मान लिया, यथा - मैं मेरा हो गया, मैं कमजोर हो गया आदि ... तो मैं का मतलब? ये शरीर मान लिया। और मेरा? ये शरीर के नातों को मान लिया - ये माताजी, ये पिताजी, भैयाजी, बहिनजी, फूफाजी, मामाजी, आदि-आदि जो इस शरीर के नाते हैं, उन्हें हमने मेरा मान लिया।यही माया का बखेड़ा है। ये सब अनात्म-वस्तुओं में आसक्ति से बँधकर जो हम कर रहे हैं, बस! इन सबसे अनासक्त हो जाना ही जीव के कल्याण का साधन है। परन्तु ये जल्दी से होता नहीं। बालक जब जन्म लेता है तो साक्षात् परमात्म-स्वरूप होता है। उसकी किसी से कोई भी आसक्ति नहीं होती। माया-मोह से एकदम निवृत्त रहता है। पर धीरे-धीरे ये माया लपेटती है। जन्म लेने के बाद माता-पिता में आसक्ति, फिर धीरे-धीरे और बड़ा हुआ तो और परिजनों का विस्तार हुआ। और बड़ा होने पर जब विवाह हो गया, तो अब माता-पिता ढीले पड़ गये और पत्नी में आसक्ति बढ़ गई। तो ये जो आसक्ति अनावश्यक अनात्म वस्तुओं में फैलती है, यही जीव के बन्धन का कारण बनती है। इसलिये तुम्हारा जो वास्तविक स्वरूप है, उसे तुम पहचानो और उसी में दृढ़ रति करो।

इस प्रकार से बड़ा दिव्योपदेश पृथु महाराज को श्रीसनत्कुमारजी ने दिया। और उपदेश देकर जब चलने लगे, तो पृथु महाराज ने प्रणाम करते हुए कहा, महाराज! अब कुछ दक्षिणा भी तो लेते जाइये। जब किसी से कुछ मिले, तो आप भी अपनी सामर्थ्य से कुछ दीजिये। तो सनत्कुमारजी बोले, आप हमें इस प्रवचन के बदले में क्या देंगे? जब दे रहे हो, तो उसकी तुलना में दीजिये। अब पृथुजी को लगा कि क्या दिया जाये तों हाथ जोड़कर बोले,

प्राणा दाराः सुता ब्रह्मन् गृहाश्च सपरिच्छदाः ।
राज्यं बलं मही कोश इति सर्वं निवेदितम् ॥ (भा. 4/22/44)

पृथु महाराज कहते हैं, इस आत्मकल्याण के उपदेश के बदले में मैं आपको क्या दूँ? मैं अपने प्राण, अपनी पत्नी, अपने पुत्र, अपने परिजन, जहाँ तक मेरा सम्पूर्ण राज्य है, जितना मेरा कोष है, जितने मेरे सैनिक हैं - **'इति सर्वं निवेदितम्'** ये सर्वस्व आज से आपका है। आप इसे स्वीकार करें। महात्मा प्रसन्न हो गये और बोले, अच्छा! तो आज से हम सबके स्वामी? ये सारा सम्पत्ति-वैभव हमारा? तो ठीक है, ये सम्पत्ति सब हमारी है और इसकी व्यवस्था की जिम्मेदारी हम तुम्हें सौंप रहे हैं। अब हमारी सम्पत्ति का दायित्व तुम सँभालोगे। ध्यान रखना! सम्पत्ति हमारी है, व्यवस्था तुम्हें सँभालनी है। लो सँभालो और वहीं पर पृथु महाराज को सब सौंपकर महात्मा अन्तर्ध्यान हो गये। गुरु-शिष्य का स्वरूप ऐसा ही होना चाहिये। शिष्य ऐसा हो जो गुरुदेव को सर्वस्व समर्पण कर दे। पर सद्गुरु भी ऐसा होना चाहिये जो फूटी कौड़ी भी लेने की अपेक्षा न करे। जब शिष्य गुरु को सर्वस्व समर्पण कर देता है, तो उसे ये ज्ञान हो जाता है कि ये सम्पत्ति मेरी नहीं किसी और की है, मैं तो सेवक हूँ। उसकी आसक्ति छूट जाती है। फिर वह मुनीम बनकर व्यवस्था बनाता है, मालिक बनकर नहीं। बस यही तो विचारधारा बदलने की आवश्यकता है। व्यक्ति जब मालिक बन जाता है, तो सुख-दुःख, लाभ-हानि में फंस जाता है। और मुनीम बन जाओ, तो मालिक कोई और है? क्योंकि लाभ-हानि का प्रभाव मालिक पर पड़ता है, मुनीमजी पर नहीं। सद्गुरु को क्या चाहिये? गुरु का अर्थ बड़ा तथा लघु का अर्थ छोटा।

बड़ा छोटे को देता है, छोटा बड़े को क्या देगा? यदि गुरु शिष्य से कुछ पाने की अपेक्षा करता है, तो वह गुरु नहीं रह ग ा। वह तो लघु हो गया। शिष्य गुरु को दे रहा है, तो देने वाला बड़ा होता है लेने वाला तो छोटा हो गया। इसलिये ये सद्गुरु का जो स्वरूप है, वह सनत्कुमारजी ने यहाँ दिखाया और अन्तर्ध्यान हो गये।

मैत्रेयजी कहते हैं, विदुरजी! इन्हीं के वंश में महाराज प्राचीनबर्हि हुए। राजा प्राचीनबर्हि बड़े भारी कर्मकाण्डी थे। बड़े-बड़े यज्ञ कराते हैं, पर यज्ञों में पशु की बली खूब चढ़ाते हैं। हिंसात्मक यज्ञ करते हैं। तो नारदजी महाराज ने एक दिन आकर टोका, राजन्! जितने पशुओं का तुम बलिदान कर चुके हो, तो सब देखो ऊपर खड़े हैं। और जैसे-ही ऊपर दृष्टि डाली, तो सचमुच आँखें फाड़-फाड़कर वह सब जीव राजा की तरफ घूर रहे थे। राजा बोले, महाराज! ये मेरी तरफ क्यों देख रहे हैं? नारदजी बोले, ये इसलिये देख रहे हैं कि कब तुम मरो और कब तुमसे बदला लिया जाये। बेचारे महाराज तो घबड़ा गये, ये तो वैदिक विधान था और कर्मकाण्डी ब्राह्मणों ने ऐसा ही कहा था, हमने भी वैसा ही कर दिया।

नारदजी बोले, ये गलत है। अहिंसा को परमधर्म मानने वाला वेद कभी किसी की हिंसा का आदेश क्यों देगा? यदि शास्त्रों में हिंसा की बात लिखी है तो वह हिंसा निवृत्तिपरक है, प्रवृत्तिपरक नहीं। एक दृष्टान्त से समझिए - किसी को बीड़ी पीने की आदत पड़ गई तो गुरुदेव ने पकड़कर डाँटा, क्यों रे! बीड़ी पीता है? मालूम नहीं कि आश्रम में धूम्रपान निषिद्ध है? शिष्य बोला, गुरुजी! मालूम है। पर क्या करें, बचपन से आदत बिगड़ गई। अब रहा ही नहीं जाता। तो गुरुदेव ने सोचा, इसकी आदत कैसे रोकी जाये? तो बोले, अच्छा! तो एक काम कर बेटा। हमारी तरफ से तुझे रविवार की छूट है। तू रविवार के दिन बीड़ी पी लिया कर। अब गुरुदेव को छूट इसलिये देनी पड़ी कि ये कभी मानने वाला तो है नहीं? सप्ताह में जब एक ही दिन पीयेगा, तो इसकी ये आदत कम हो जायेगी और धीरे-धीरे वह आदत छूट जायेगी। पर चेला ने क्या किया? जो रविवार आया, सो स्वयं तो पीता ही था; दूसरों को भी पिलाने लगा। सुनो-सुनो! आज रविवार है। आज के दिन बीड़ी पीने का बड़ा महत्व है। किसी ने पूछा, ये कहाँ लिखा है? किसने कहा? चेला बोला, हमारे गुरुजी ने स्वयं कहा है, रविवार को बीड़ी पियो। अब गुरुजी ने तो आदत बंद करवाने के लिये कहा था और तुमने उसे प्रमाण बनाकर सबको ही पिलाना चालू कर दिया।

परोक्षवादो वेदोऽयं बालानामनुशासनम्

वेदभगवान् परोक्षवादी है। जब उन्होंने देखा कि जो हिंसा के बिना रह नहीं सकते, इन्हें कैसे रोका जाये? तो इन्हें रोकने के लिये नियम बनाया कि भाई! हिंसा करनी ही है, तो अमुक् यज्ञ के समय अमुक् पशु का बलिदान कर दो। तो कोई मांस खाने के लिये, अथवा पशु का बलिदान करने के लिये तो यज्ञ नहीं करवायेगा? जब इतना बड़ा यज्ञ होगा, तब कोई एक-आध पशु का बलिदान होगा? तो ये जो रोज-रोज की बलि चढ़ रही है, उसपर तो नियंत्रण हो जाएगा। परन्तु जो हिंसा के प्रेमी थे, उन्होंने उसी को प्रमाणपत्र बना लिया? इसलिये वेदों का अधिकार सबको नहीं दिया। अल्पज्ञ प्राणियों ने सांगोपांग वेद को न पढ़कर, कोई-एक शब्द पकड़ लिया और अपने मतलब की बात ढूंढ़ ली। बिना उसके तात्पयार्थ को समझे, अर्थ की जगह अनर्थ करना प्रारम्भ कर दिया।

एक जगह लिखा था **'वेद पढ़ना पाप है'**। एक सज्जन सबको दिखाने लगे, देखो-देखो! वेद की पुस्तक में लिखा है, **'वेद पढ़ना पाप है'** लोगों को पागल बना दिया। जब एक समझदार के पास आया, तो उस

समझदार व्यक्ति ने कहा, भैया! ऐसा लिखा हो तो नहीं सकता? दिखाया तो सचमुच लिखा था, परन्तु सबसे अंतिम पंक्ति में लिखा था। पन्ना पलट के जब देखा तो पीछे लिखा था, '**अशौच अवस्था में ...**' तो अशौच-अपवित्र अवस्था में वेद पढ़ना पाप है। तो वह पीछे की बात तो छिपा रखी है और आगे-आगे की पंक्ति सबको दिखा रहा है कि '**वेद पढ़ना पाप है - वेद पढ़ना पाप है**' तो ऐसे लोग अर्थ का अनर्थ कर डालते हैं, लोगों को दिग्भ्रमित कर देते हैं। इसलिये वेदपाठ का अधिकार सबको नहीं दिया, जिसका लोगों ने तमाम अर्थ लगा लिया।

पुरञ्जनोंपाख्यान—मैत्रेयमुनि कहते हैं, विदुरजी! जब प्राचीनबर्हि घबड़ाये कि अब क्या होगा? तब नारदजी ने कहा, ध्यान दीजिये! हम तुम्हें एक बहुत बढ़िया कहानी सुनाते हैं। इस कहानी को ठीक से समझ लो तो तुम्हारा कल्याण हो जायेगा। दो मित्र थे। एक का नाम अविज्ञात और दूसरे का नाम पुरञ्जन। दोनों ही घनिष्ट सखा हैं। एक दिन पुरञ्जन बोला, मित्र! चलो कहीं घूमने चला जाये। अविज्ञात ने कहा, तुम ही घूमो! हम तो अपने घर में ही भले हैं। पर घूमकर जल्दी आ जाना। पुरञ्जन बोला, ठीक है! मैं अकेला ही चला जाता हूँ। और जल्दी आऊँगा, चिंता न करना। ऐसा कहकर पुरञ्जन निकल पड़ा। पुरञ्जन ने लाखों शहर घूम डाले, परन्तु कहीं उसका मन नहीं लगा। कोई शहर उसे अच्छा नहीं लगा। अचानक एक नौ दरवाजे का नगर नजर आया। बड़ा सुन्दर शहर था, अतः भीतर घुस गया। शहर के भीतर प्रवेश करते ही एक सुन्दरी कन्या सामने से आ गई। पुरञ्जन उस कन्या के निकट जाकर बोला, देवीजी नमस्कार! क्या मैं आपका परिचय जान सकता हूँ? कन्या बोली, सुनो! मैं इस शहर की मालकिन हूँ। इस शहर में मेरी इच्छा के बिना पत्ता भी नहीं हिलता। ये मेरे दस सैनिक हैं, जो मेरी आज्ञानुसार काम करते हैं और ये मेरा सेनापति है, जो इन सैनिकों को सँभालता है। ये पाँच फण का नाग मेरे साथ रहता है, जो इस शहर की दिन-रात रखवाली करता है। अभी तक मेरा विवाह नहीं हुआ। इस शहर पर अकेली राज्य करती हूँ। और माता-पिता का मुझे पता नहीं कि मुझे जन्म किसने दिया।

पुरञ्जन को लगा कि ये तो बहुत बड़ी मालकिन है? पुरञ्जन बोला, देवी! विवाह तो हमारा भी नहीं हुआ। फिर तो दोनों ने ही एक-दूसरे को पसन्द किया और वरमाला पहनाकर विवाह कर लिया। अब तो पुरञ्जन अपनी पत्नी पुरञ्जनी में धीरे-धीरे इतना आसक्त होता चला गया कि पुरञ्जनी रोवे तो पुरञ्जन रोवे, पुरञ्जनी हंसे तो पुरञ्जन हंसे, पुरञ्जन गाये तो पुरञ्जन गावे, पुरञ्जनी नाचे तो पुरञ्जन भी नाचे।

क्वचिद्गायति गायन्त्यां रुदत्यां रुदति क्वचित् ।
क्वचिद्धसन्त्यां हसति जल्पन्त्यामनु जल्पति ॥ (भा. 4/25/58)

क्रीडा-मृग की तरह पुरञ्जन पुरञ्जनी के संकतों पर नाचने लगा। एक दिन की बात एक जरा नाम की कुरूप कन्या, जो जिस पुरुष से विवाह की बात करती वही भाग जाता एक दिन वह चण्डवेग नामक गन्धर्व राजा के पास जाकर बोली, महाराज! मैं संसार से बड़ी पीड़ित हूँ। कोई भी मुझे स्वीकार नहीं करता। चण्डवेग ने कहा, देवी! दुःखी मत हो। हम तुम्हारी सहायता करेंगे। मेरे पास तीन सौ साठ काली-काली गंधर्वियां हैं और तीन सौ साठ गोरे-गोरे गंधर्व हैं। और ये सारी सेना आज से तुम्हें सौंप दी। तुम्हें जो पसंद आवे, उसी के साथ विवाह रचाओ। यदि कोई भागे तो सैनिक उसे पकड़कर तुम्हारे हवाले कर देंगे। सब तुम्हारे सहायक हैं। ये मेरा छोटा भाई प्रज्वार है, इसे भी अपने साथ रखो। मैं तुम्हें अपनी बहिन बनाये लेता हूँ -

प्रज्वारोऽयं मम भ्राता त्वं च मे भगिनी भव

अब तो जरादेवी प्रसन्न हो गई और वह सारी सेना लेकर जब घूमने निकली, तो उसकी दृष्टि पुरञ्जन पर पड़ गई। तो पुरञ्जन को पाने के प्रयत्न में पुरी में प्रवेश करने लगी। पुरञ्जन की पुरी के जो दस-ग्यारह सैनिक थे, उन्होंने भी खूब विरोध किया। रोका तो, इसने सैनिकों से हमला बोल दिया। पुरञ्जन महलों में सोये पड़े हैं, उन्हें ये पता ही नहीं कि शहर पर हमला हो गया, कुछ भी पता नहीं। परन्तु इतना भयंकर युद्ध हुआ कि पुरञ्जन के जो दस-ग्यारह सैनिक थे, वह सब मर गये। पाँच फण का नाग भी घायल होकर भाग गया। और महलों में घुसकर जरादेवी ने पुरञ्जन को बंदी बना लिया। अब पुरञ्जन रोया, हाय-हाय! मेरे बिना मेरी पुरञ्जनी कैसे रहेगी? वह तो मेरे बिना पानी भी नहीं पीती? रोते-रोते पुरञ्जनी के प्रेम में दीवाना पुरञ्जन प्राण ही त्याग बैठा। शास्त्र का नियम है, '**अन्ते या मतिः सा गतिः**'। मरते समय जिसका चिन्तन करोगे, वही बनोगे। फोटो खिंच रहा हो, तो जरा शक्ल सँभाल लेनी चाहिये क्योंकि जैसी शक्ल होगी, वैसा ही फोटो आयेगा। उसी प्रकार जब जीवन का अंतिम क्षण आ जाये, तो चिन्तन सँभाल लेना चाहिये। क्योंकि जहाँ चिन्तन जायेगा, अगले जन्म का कारण वही बनेगा। वही शरीर मिलेगा, जिस शरीर का चिन्तन करोगे।

पुरञ्जन ने स्त्री का चिन्तन किया, तो अगले जन्म में स्त्री बनकर पैदा हुआ। बड़े होने पर मलयध्वज नाम के राजा से इसकी शादी हुई। सन्तानें भी हुई और एक दिन आया कि इसके पति मलयध्वज चल बसे। तो जो आज का पुरञ्जन था, वह कल का मलयध्वज की पतिव्रता-पत्नी बनकर सती होने की तैयारी करने लगी। जहाँ सती होने के लिये चिता पर बैठा कि उसका पुराना मित्र अविज्ञात को याद आई कि मेरा मित्र पुरञ्जन घूमने गया था, सो घूमता ही रह गया। चलो भाई! अब हम ही ढूँढते हैं कि ये कहाँ रह गया? तो वह ब्राह्मण वेष बनाकर अविज्ञात जब आया तो देखा कि हमारा मित्र तो सती हो रहा है। अविज्ञात ने तो पहचान लिया, पर पुरञ्जन नहीं पहचान पाया कि ये हमारा पुराना मित्र है। अविज्ञात ने आवाज लगाई, क्यों भैया! कैसे हो? किसके साथ सती हो रहे हो? स्त्रीरूप पुरञ्जन बोला, तुम कौन हो? तुम्हें शर्म नहीं आती, मुझे मित्र बोलते हो? अरे! एक पतिव्रता स्त्री पति को गोद लिये सती होने बैठी है और तू मुझको अपना मित्र कह रहा है? मैंने अपने पति के अतिरिक्त किसी को मित्र नहीं बनाया। कौन हो तुम?

ब्राह्मण बना अविज्ञात हंसने लगा, वाह भैया! तुम तो पूरे पतिव्रता बने बैठे हो। और मुझे बिल्कुल भूल गये? मैं तेरा पुराना मित्र अविज्ञात हूँ। याद कर हम और तुम कितने आनन्द के साथ मानसरोवर के हंस बनकर रहते थे? और तू घूमने क्या निकला कि बिल्कुल ही मुझे भूल गया? बचपन की कई घटनायें जब याद दिलायीं, बुद्धि पर जब जोर मारा तो पुरञ्जन को याद आ गया। जो स्मरण आया तो अविज्ञात को पहचान गया। दोनों मित्र गले मिले और आनन्द के साथ सारा प्रपंच छोड़कर पुनः अपने घर में जाकर विश्राम करने लगे।

देवर्षि नारद कहते हैं, महाराज प्राचीनबर्हि! कथा समझ में आ रही है कि नहीं? प्राचीनबर्हि बोले, महाराज! कथा अच्छी बहुत लगी पर समझ में नहीं आई। महाराज! तनिक समझाइये। तब नारदजी ने इस रहस्य को समझाया, देखो! जीवात्मा और परमात्मा दोनों शाश्वत सखा हैं। जीवात्मा का नाम है पुरञ्जन और परमात्मा का नाम है अविज्ञात। पुरञ्जन मतलब? '**पुरं जनयति इति पुरञ्जनः**' ये जीव कर्मानुसार अनेक पुरियों में जाता है। एक बार जीवात्मा परमात्मा से बोला कि मैं घूमना चाहता हूँ। भगवान् बोले, बेटा! प्रेम से घूमो पर हमें मत भूल जाना? नहीं तो घूमता ही रह जायेगा? जीव बड़े विश्वासपूर्वक वचन देता है, महाराज! आपको कैसे भूल सकता हूँ? आप तो मेरे अभिन्न-हृदय हो। भगवान् कहते हैं, तो जाओ! घूमो। हम सब जीव पुरञ्जन बने घूम रहे

हैं। घूमते-घूमते लाखों शहर घूम डाले। ये लाखों शहर हैं चौरासी लाख योनियाँ। चीटी बने, मच्छर बने, ये सब छोटे-छोटे शहर हैं। हाथी बने, घोड़े बने, ये बड़े-बड़े शहर हैं। और ये सब मिलाकर चौरासी लाख हैं। इन सब शहरों में घूमते-घूमते जहाँ नौ दरवाजे की नगरी मिली; तो ये शहर सबसे अच्छा लगा। ये नौ दरवाजों की पुरी ही मानव शरीर है। इस शहर को तो देखते ही मन खुश हो गया।

बड़े भाग मानुष तन पावा । सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा ॥
साधन धाम मोक्ष कर द्वारा । पाइ न जेहिं परलोक सँवारा ॥ (रामचरितमानस 7/43/4)

ये सबसे सुन्दर शहर है। ज्यों-ही नगर में प्रवेश किया, सबसे पहले सुन्दरी से परिचय हुआ। ये सुन्दरी है बुद्धि देवी। इस पूरे शहर में इसी देवी का चलावा चलता है। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँ ही इस नगरी के सैनिक हैं। ये दस इन्द्रियरूपी सैनिकों पर सेनापति मन है। कान आपके कथा सुन रहे हैं और मन हर की पौड़ी आरती करने चला गया। तो मन यदि आरती कर रहा है, तो सुनते रहो पर पल्ले कुछ नहीं पड़ेगा कि क्या कथा हो गई। सेनापति के बिना सैनिक काम नहीं करते। सेनापति की उपस्थिति बहुत आवश्यक है, तब सैनिक व्यवस्थित कार्य करते हैं। पंचप्राणवायु (प्राण, अपान, उदान, समान और व्यान) ही ये पाँच फन वाला रक्षक नाग है। वायु शरीर के भीतर है। आप सो रहे हों या जाग रहे हों, पर श्वास रूपी सर्प तो हमेशा सावधान रहता है। श्वास कभी थोड़े ही रुकती है। ये तो शहर की व्यवस्था हुई।

अब पुरञ्जनी रोवे, तो पुरञ्जन रोवे इसका क्या मतलब है? इस शरीर में बुद्धि से हमारा सम्बन्ध हो गया कि जो बुद्धि कहती है, हम वही करते हैं। हम भी उसी के दास बन गये। बुद्धि ने कह दिया, चलो! आज कथा सुन आवें तो चले आये। बुद्धि ने कह दिया, अरे! वही पण्डितजी, वही कथायें; छोड़ो झंझट और घर में ही सो गये। बुद्धि ने कह दिया, अरे! इतना बढ़िया भजन हो रहा है, चलो! ठुमका मारकर कुछ नाच लिया जाये सो नाचने लग गये। बुद्धि ने कहा, अरे भाई! कोई नहीं नाच रहा तो, यहाँ नाचना अच्छा नहीं लगेगाय चुपचाप बैठे रह गये। बुद्धि ने कहा, चलो! हम भी एक भजन सुना दें, तो गाने लग गये। तो

क्वचिद्गायति गायन्त्यां रुदत्यां रुदति क्वचित्

जैसा-जैसा बुद्धि (पुरञ्जनी) चाहती है, हम (पुरञ्जन) वैसा-ही-वैसा करते हैं। अब ये तो रही आंतरिक व्यवस्था। परन्तु ये जरादेवी कौन हैं? जिनसे कोई विवाह रचाना नहीं चाहता? जरादेवी है वृद्धावस्था। संसार में ऐसा कोई नहीं, जो वृद्ध होना पसंद करे। पर वृद्धावस्था ने चण्डवेग को अपना साथी बनाया और सैनिक ले लिये। ये चण्डवेग कौन है? **'संवत्सरश्चण्डवेगः'** ये कालचक्र-संवत्सर ही चण्डवेग है। इसने कहा, मेरे सैनिक तुम्हारे साथ हैं। तो तीन सौ साठ काले और तीन सौ साठ गोरे अर्थात् तीन सौ साठ दिन और तीन सौ साठ रात। गोरे-गोरे सैनिक दिन हैं और काली-काली गंधर्वियां रात्रियां हैं। और इन सब सैनिकों के सहयोग से वृद्धावस्था रूपी जरादेवी ने हम समस्त मानवों की पुरी पर आक्रमण बोल दिया। पुरञ्जन सोते रहे, पता ही नहीं चला कि कब आक्रमण हो गया। उसी प्रकार हम भी इस शहर में सोते रह जाते हैं, पता ही नहीं चलता कि कब बुड्ढे हो गये। आपको जीवन की बहुत-सी तारीखें याद होंगी, अमुक् तारीख में पैदा हुये, अमुक् तारीख में शादी हुई, अमुक् तारीख में बच्चा हुआ पर किसी बुड्ढे से पूछा जाये कि किस तारीख में बुड्ढे हुये? बुड्ढे तो सभी होते हैं, पर किस तारीख में हुए ये कोई नहीं बता सकता। पता ही नहीं चलता कि इस शहर में ये जरादेवी ने कब आक्रमण बोल दिया। जरादेवी पकड़कर इस जीव को काल के हवाले कर देती है और इसी प्रकार से **'पुनरपि जननं पुनरपि मरणं'** एक शहर से दूसरे शहर में हम सब जीवात्माओं का ये भ्रमण चल रहा है। अब ये भटकना कब बंद होगा, विश्राम कब मिलेगा? विश्राम तो अपने ही घर में मिलता है। परदेश में चाहे जितना घूमो। थोड़ी देर तो अच्छे लगते हैं, पर बाद में घर की ही याद आती है। और जबतक घर में न पहुँच जायें, तबतक विश्राम नहीं मिलता। उसी प्रकार हम भी सब परदेशी हैं, अपना घर छोड़कर घूमने आये हैं। जबतक घर वापिस नहीं पहुँचेंगे, ऐसे ही भटकते रहेंगे।

रुक्मिणीजी भगवान् को भोजन परोस रही थी, पर भगवान् भोजन करते-करते जोर से हंस पड़े। रुक्मिणीजी ने पूछा, महाराज! ये अचानक क्यों हंसे? भगवान् बोले, बस ऐसे ही हंसी आ गई। उस चीटे को देखो! वह गुड़ की तरफ भाग रहा है, तो एक चीटा गुड़ की तरफ बड़ी जोर से भाग रहा था। रुक्मिणीजी ने पूछा, कौन है महाराज! और इसमें हंसने की क्या बात है? भगवान् बोले, ये चौदह बार इन्द्र रह चुका है। जहाँ पर भोग का साम्राज्य था और सबका स्वामी बनकर ये रहता था। आज देखो! चीटा बना गुड़ की ढेली की ओर भाग रहा है। इसलिये हंसी आ गई! कैसा-कैसा ये जीव का प्रारब्ध है? कभी ऊपर ले जाये, कभी नीचे। गाड़ी के पहिये की तरह ऊपर-नीचे होता रहता है; ये जीव की स्थिति है। तो आखिर ये चक्र समाप्त कब होगा? कब अपने घर पहुँचेंगे? पुराना मित्र अविज्ञात ब्राह्मण बनकर आया और जब उसी ने हाथ पकड़कर समझाया कि मैं तेरा मित्र! मुझे पहचान। पुरञ्जन तो पहचानने से ही मना कर रहा था, परन्तु अविज्ञात ने पीछे पड़कर जान-पहचान निकाल ही ली और जहाँ पहचान हुई कि सारा प्रपंच छूट गया और अपने मित्र के साथ चला गया। ऐसे ही जिस जीव पर भगवान् खूब द्रवीभूत हो जाते हैं कि चलो! इसे अब अपने घर ले आयें। तब प्रभु ही प्रसन्नतापूर्वक उस जीव के सम्मुख सद्गुरु के रूप में प्रकट होते हैं। परमात्मा कभी प्रकट होकर ये नहीं कहेगा कि मैं भगवान् हूँ। वह परमात्मा स्वयं सद्गुरु के रूप में आकर जीव को आत्मबोध कराता है।

माया के ओ पुजारी आगे की कुछ खबर है ।
इस घर से और बढकर एक दूसरा भी घर है ॥

इन ईंट-पत्थरों के मकानों को ही घर बनायें क्यों बैठा है? और जिस घर से घूमने निकला था, उस घर को बिल्कुल भूल गया? जब सद्गुरु ने आत्मबोध कराया, तब जीवात्मा उस परमतत्त्व को समझ सका। इसलिये सद्गुरु भगवान् कौन? कृपा की मूर्ति परमात्मा ही आज हमारे सामने सगुण-विग्रह बने विराजमान हैं। वह साक्षात् परब्रह्म ही तो है, जिसे आत्मबोध है। ईश्वर के पुत्र तो हम भी हैं, परन्तु कमी कहाँ है? हैं तो हम भी शेर के बच्चे, पर बचपन से ही भेड़ों के संग में पड़ गये इसलिये अपना सिंह का बल-पराक्रम सब भूलकर भेड़ों की तरह मिमियाना प्रारम्भ कर दिया। एक किंविदन्ती प्रसिद्ध है - भेड़ों की संगत ने शेर को भी भेड़ बना दिया। ऐसे ही हम भी ईश्वर के पुत्र ही थे,

ईस्वर अंस जीव अविनासी ।
चेतन अमल सहज सुखरासी ॥ (रामचरितमानस 7/117/1)

तो फिर तुम्हारी ये सहज सुखराशि कहाँ चली गई? फिर क्यों रोते रहते हो? हाय-हाय क्यों चिल्लाते हो? भाई शेर के बच्चे तो थे, पर माया रूपी भेड़ के चक्कर में पड़ गये। इन भेड़ों के समुदाय ने हमें भी भेड़ बना दिया। बकरी जैसे मैं-मैं-करती रहती है, भेड़ भी करती है। ऐसे ही हम लोग भी मैं-मैं करने लगे। मैंने ये किया मैं वह करूँगा, मेरे ये लोग हैं मैं-मैं करके सारी जिंदगी ये असत् जगत में फंस गये पूरे भेड़ बन गये। अजा नाम

बकरी का भी होता है और अजा नाम माया का भी होता है। और दोनों के एक ही रूप होते हैं। बकरी का भी गला कटता है और ऐसे ही माया भी मृत्यु का ग्रास बनती है। सजातीय सिंह वन का राजा, जिसे बल-पराक्रम का भली-भान्ति बोध है ऐसा सिंह जब उस बकरी वाले सिंह को पकड़ लेता है और अपने साथ रखकर कहता है, देख मेरे साथ रह! तू मेरा बच्चा है और तू इस प्रकार बकरियों में घूम रहा है? अब जब सजातीय सिंह के बल-पराक्रम को देखा, तब अपने बल का बोध हुआ। तब हममें भी सिंहत्व जागृत हुआ और तब एक दिन वही बकरियों के बीच रहने वाला सिंह बड़े-बड़े हाथियों से टकराने वाला बन गया। तो बल कोई बाहर से नहीं रखा गया, बल तो उसमें पहले से ही था, बस! बल भूल गया था। उसे सजातीय वनराज सिंह ने याद दिला दिया। उसी प्रकार हम भी चेतन-अमल- सहज-सुखराशि हैं, पर संसार की माया में फंस के भूल गये हैं। सद्गुरु भगवान् वह हैं, जो अपने स्वरूप में स्थित है।

'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति' ब्रह्मतत्त्व का बोध जिसे हो जाये, तो वह भी साक्षात् ब्रह्मस्वरूप ही हो जाता है। जो परमात्मा को जान ले, वह परमात्मा के ही सदृश हो जाता है। तो ऐसा वह सामर्थ्यवान् सद्गुरु हमें जब जगाता है, स्वरूप का बोध कराता है तब ये प्रपंच हमसे छूटता है और तब अपने वास्तविक घर की याद आती है। फिर दुनियादारी का घूमना बंद करके हम अपने घर की राह चल पड़ते हैं। इस प्रकार से देवर्षि नारदजी ने 'पुरञ्जनोपाख्यान' के माध्यम से जीव का वास्तविक परिचय महाराज प्राचीनबर्हि को करा दिया। प्राचीनबर्हि तुरन्त अपने उस स्वरूप को पहचानकर हिंसामार्ग से निवृत्त हो गये और अन्त में परमपद के अधिकारी बन गये। इन्हीं के दस बेटा प्रचेतागण हुये, जिन्होंने तपस्या करके हरि और हर - दोनों को प्रसन्न किया। वृक्षों की कन्या वार्क्षी से इन्होंने विवाह किया और दक्ष-जैसे प्रतापी पुत्र को जन्म दिया। दक्ष को पद सौंपकर पुनः तपस्या करने चल पड़े। मार्ग में देवर्षि नारद से भेंट हो गई तो नारदजी से पूछ लिया, महाराजजी! ये बताइये कि भगवान् सबसे जल्दी कैसे प्रसन्न होते हैं? तब नारदजी ने तीन सूत्र दिये और कहा, इन तीन सूत्रों को जीवन में उतार लो, प्रभु बहुत जल्दी प्रसन्न हो जायेंगे।

दयया सर्वभूतेषु सन्तुष्टया येन केन वा ।
सर्वेन्द्रियोपशान्त्या च तुष्यत्याशु जनार्दनः ॥ (भा. 4/31/19)

'जनार्दनः आशु तुष्यति' भगवान् बहुत जल्दी प्रसन्न हो जायेंगे, जब **'सर्वभूतेषु दयया'**। पहला सूत्र है - जीवमात्र पर दया करना सीखो। दया किसे कहते हैं?

परस्मिन् बन्धुवर्गे वा मैत्रे द्वैष्ये रिपौ तथा ।
आपन्ने रक्षितव्यं तु दयैषा परिकीर्तिता ॥

कोई पराया हो या अपना हो, मित्र हो या प्रबल शत्रु हो; पर आपत्तिकाल में उसकी सहायता करना ही दया का विशुद्ध स्वरूप है। दुर्घटना (एक्सीडेंट) होते हमने देख लिया, पर कौन चक्कर में पड़े? सो चुपचाप उसे छटपटाता छोड़ कर चले गये। आगे बढ़े तब पता चला कि हमारा अमुक् मित्र था, तब भागा-दौड़ी प्रारम्भ की। ऐसी मोहग्रसित दया नहीं होना चाहिये।

दूसरा सूत्र कहा - **'सन्तुष्टया येन केन वा'**। भगवान् ने जो भी दिया है, उसमें हृदय से संतुष्ट रहे। भगवान् की कृपा की अनुभूति करता रहे कि प्रभो! जितना आपने दिया है, मैं तो उतने का भी पात्र नहीं था। जो दिया है, बहुत दिया है प्रभो आपकी बड़ी कृपा है। भगवान् की कृपा की अनुभूति कब होगी? जब नीचे वालों की ओर

दृष्टि जायेगी। यहाँ पर आप लाखों से नहीं, करोड़ों से ऊपर बैठे हैं। तो भगवान् ने आपको अपनी कृपा में करोड़ों के ऊपर बैठा रखा है तो इसका तो अनुभव करो। लाखों लोग अन्धे हैं, लाखों बहरे हैं, लाखों गूंगे हैं, लाखों लगड़े हैं पर भगवान् ने स्वस्थ शरीर भी दिया है, तो आप करोड़ों से ऊपर हैं। लाखों स्वस्थ शरीर वाले भी भूखों मर रहे हैं, लाखों स्वस्थ शरीर वालों के पास साइकिल भी नहीं है। पर हमें तो दोनों वक्त का भोजन भी प्रेम से मिल रहा है और गाड़ियों में घूमने को मिल रहा है। तो जो मिल रहा है, जो प्रभु ने दिया है इसका चिन्तन करो और अपनी ऊँचाई को समझो कि हमसे लाखों लोग नीचे हैं तब भगवान् की कृपा दिखाई पड़ेगी। कितना भी वैभव आपके पास हो जाये, परन्तु यदि आप संतुष्ट नहीं हैं तो आपके समान कोई दरिद्र नहीं है।

स तु भवति दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला

दरिद्र वह है, जिसकी तृष्णायें बहुत बड़ी हैं। और सम्पन्न वह है, जो हर प्रकार से संतुष्ट हो गया। **'जब आवै संतोष धन, सब धन धूरि समान'**। एक वह है, जिसके तन पर चार-अगुंल की लंगोटी भी नहीं फिर भी बड़ा मस्त है। और एक वह है, जिसके पास वैभव का पता नहीं कि मेरे पास कितनी सम्पत्ति है फिर भी बेचारे को नींद की गोली खाकर भी नींद नहीं आ रही। अतःसंतुष्टि सबसे बड़ी सम्पत्ति है। भगवान् का दिया बहुत है, जितना है उतने में प्रसन्न रहे। अब तीसरा सूत्र नारदजी बताते हैं - **'सर्वेन्द्रियोपशान्त्या च'** हमारे जीवनरथ में जो दस-दस इन्द्रियरूप घोड़े लगे हैं, इनका पूर्ण नियंत्रण हमारे हाथ में होना चाहिये। ऐसा न हो कि घोड़े स्वच्छंद होकर दौडने लग जायें। यदि ये तीन बातें व्यवहार में उतार लीं, तो **''जनार्दनः आशुतुष्यति''** भगवान् हमारे ऊपर बहुत शीघ्र प्रसन्न हो जायेंगे। श्रीविदुरजी महाराज मैत्रेयमुनि से इस अलौकिक उपदेश को श्रवण करके परमानन्द में मग्न होकर चल दिये।

अथ श्रीमद्भागवतपुराणस्य

॥ पञ्चमः स्कन्धः ॥

(स्थानः)

प्रियव्रत-चरित्र, भगवान् ऋषभदेवजी की कथा

अब मनु महाराज के दूसरे पुत्र प्रियव्रत की कथा प्रारम्भ करते हुए श्रीशुकदेवजी कहते हैं, परीक्षित! महाराज प्रियव्रत बड़े प्रतापी राजा थे। इतने तेजस्वी थे कि एक बार बैठे-बैठे सोचा, ये रात क्यों हो जाती है? सारा समय लोग इस अन्धेरे में सोकर बर्बाद कर देते हैं। इसलिये रात्रि होने ही नहीं दूँगा -

रथेन ज्योतिर्मयेन रजनीमपि दिनं करिष्यामि

इन्होंने ज्योतिर्मय-रथ का सृजन किया और पृथ्वी की सात प्रदक्षिणा करके सात दिन तक रात्रि होने ही नहीं दी। ब्रह्माजी घबड़ाये और आकर समझाया, बेटा! गड़बड़ न करो। प्रकृति की कोई भी वस्तु व्यर्थ नहीं है, सब का अपना-अपना उपयोग है।

अमन्त्रमक्षरं नास्ति नास्ति मूलमनौषधम् ।
अयोग्यः पुरुषो नास्ति योजकस्तत्र दुर्लभः ॥

रात्रि में जहाँ विषयी पुरुष विश्राम करते हैं, वहाँ योगी समाधि लगाकर अपना ध्यान करते हैं।

तस्यां जागर्ति संयमी

प्रकृति-प्रदत्त वस्तुओं को अच्छा या बुरा तो हम लोग बनाते हैं। सब्जी में नमक डालना आज भूल गये तो स्वाद बिल्कुल बिगड़ गया, भोजन खराब हो गया। सब लोगों ने टोका, नमक नहीं डाला? अब कल विशेष ध्यान रखा, सो इतना ध्यान रखा कि नमक दो बार गिर गया और सब्जी एकदम कड़वी कर दी, अरे राम-राम! तीसरे दिन बहुत सजग रहे तो धोखा हो गया नमक को सब्जी की जगह खीर में डाल दिया। और अन्त में नमक फेंककर बोले, नमक बहुत बुरी चीज है। अरे नमक बुरी चीज नहीं है। हम उसका प्रयोग नहीं कर पा रहे हैं और दोष नमक पर दे रहे हैं। ऐसे ही प्रकृति की कोई भी वस्तु व्यर्थ नहीं है। रात्रि की अपनी आवश्यकता है, दिन की अपनी उपयोगिता है। यहाँ तक कि काम-क्रोध आदि की उपयोगिता भी है। काम की मात्रा गलत हो जाये तो उसका दुरुपयोग होने लगता है और वह काम निंदनीय है। यदि धर्मानुकूल काम का प्रयोग किया जाये, तो वह तो परमात्मा की विभूति है।

धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ

गीता में भगवान् काम को भी अपनी विभूति बता रहे हैं। पर उसका ठीक से प्रयोग होना चाहिये। प्रियव्रत को जब ब्रह्माजी ने समझाया, तो उनकी समझ में आ गया और दुराग्रह त्याग दिया। फलस्वरूप महाराज प्रियव्रत के द्वारा पृथ्वी के सातद्वीप और सात सागरों की संरचना की गई। अन्त में प्रियव्रत को वैराग्य हुआ तो अपने एक-एक पुत्र को एक-एक द्वीप का अधिपति बनाकर विरक्त हो गये।

सबसे पहला द्वीप है जम्बूद्वीप, जिसके अधिपति बने महाराज आग्नीध। आग्नीध के नौ बेटा हुये, जिन्होंने पूर्वचित्ति अप्सरा से विवाह किया। इन्होंने जम्बूद्वीप में नौ खण्ड करके अपने नौ पुत्रों में बँटवारा कर दिया। सबसे पहला खण्ड है अजनाभ खण्ड, जिसके अधिपति बने महाराज नाभि। मेरुदेवी से विवाह करके जब इनके कोई सन्तान नहीं हुई, तो पुत्रेष्टि यज्ञ किया। यज्ञ से भगवान् प्रसन्न हुए और पूछा, बोलो! क्या चाहते हो? इतने गद्गद् हो गये कि कुछ माँग ही नहीं पाये। भगवान् ने ब्राह्मणों से कहा, भाई! आप लोग बताओ, ये क्या चाह रहे हैं? ब्राह्मणों ने कहा, भगवन्! अब हम क्या बतायें?

किञ्चायं राजर्षिरपत्यकामः प्रजां भवादृशीमाशासान

ये आप-जैसी सन्तान माँग रहे हैं, पर कहने की हिम्मत नहीं पड़ रही है। भगवान् हंसकर बोले, ओ हो! आप ब्राह्मणों ने वचन देकर यज्ञ किया है, तो ब्राह्मणों का वचन निभाने के लिये मैं स्वयं ही बेटा बनने को तैयार हूँ। भगवान् स्वयं नाभिपुत्र ऋषभदेव के रुप में प्रकट हुए। ऋषभ भगवान् के तेज-ओज से इन्द्र को भी स्पृहा होने लगी और इन्द्र ने वर्षा करना बन्द कर दिया। पानी बरसाना बन्द कर दिया, तो ऋषभ भगवान् ने अपने राज्य में अपने आप ही पानी बरसा लिया। इन्द्र लज्जित हुए और अपनी बेटी जयन्ती का विवाह ऋषभ भगवान् से कर दिया। इन्द्रपुत्री जयन्ती से विवाह करके ऋषभ भगवान् ने सौ पुत्रों को जन्म दिया, जिनमें सबसे बड़े बेटे का नाम था भरत। जिनके प्रताप से इस अजनाभ खण्ड का नाम भारतवर्ष पड़ गया।

आसीद्येनेदं वर्षं भारतमिति व्यपदिशन्ति

शुकदेवजी महाराज कहते हैं, परीक्षित! ऋषभ भगवान् ने एक दिन सभी बच्चों को अपने पास बुलाया और अपने पास बैठाकर बड़ा सुन्दर उपदेश दिया, बच्चो! जगत् में दो ही आनन्द हैं - विषयानन्द और ब्रह्मानन्द। विषयानन्द आपको हर शरीर में, हर योनि में प्राप्त होगा। पर ब्रह्मानन्द प्राप्त करने के लिये केवल मनुष्य शरीर है।

नायं देहो देहभाजां नृलोके कष्टान् कामानर्हते विड्भुजां ये ।
तपो दिव्यं पुत्रका येन सत्त्वं शुद्ध्येद्यस्माद् ब्रह्मसौख्यं त्वनन्तम् ॥ (भा. 5/5/1)

ऋषभ भगवान् कहते हैं, अरे बच्चो! ध्यान से सुन लो। विषयों तक जिनकी बुद्धि सीमित है, वह तो पशु है। मानव वह है, जो ब्रह्मानन्द की अनुभूति प्राप्त करे। मोक्षमार्ग को प्रशस्त करना हो, तो उसकी चाबी है - संत। इसके विपरीत यदि नरकमार्ग को प्रशस्त करना हो, तो उसकी चाबी है लम्पट पुरुष।

महत्सेवां द्वारमाहुर्विमुक्तेस्तमोद्वारं योषितां संगिसंगम् (भा. 5/5/2)
संत संग अपबर्ग कर कामी भव कर पंथ (रामचरितमानस 7/33)

क्योंकि स्त्रैण पुरुष की संगति से विषयानुराग जागता है और भगवद्-रसिकों की संगति से भग्वत्प्रेम जागता है।

प्रीतिर्न यावन्मयि वासुदेवे न मुच्यते देहयोगेन तावत्

जबतक भगवान् वासुदेव में प्रीति तुम्हारी नहीं होगी, तबतक ये जन्म-मरण का प्रपंच छूटने वाला नहीं है। इसलिये जो तुम्हें मृत्युभय से मुक्ति दिलाने में सहयोग प्रदान करे तथा भगवान् की ओर हमें ले जावे, उसी को सम्बन्धी मानो चाहे वह कोई भी हो। और जो भगवत्प्रेम में और हमारी साधना-भक्ति में बाधक बनता है, वह कितना भी हमारा निकटतम हो उसे वैरी समझ के त्याग दो।

गुरुर्न स स्यात्स्वजनो न स स्यात्पिता न स स्याज्जननी न सा स्यात् ।
दैवं न तत्स्यान्न पतिश्च स स्यान्न मोचयेद्यः समुपेतमृत्युम् ॥ (भा. 5/5/18)

इस प्रकार का दिव्योपदेश देकर ऋषभ भगवान् ने परमहंस वृत्ति को धारण कर लिया। पागलों की तरह जगत् में भ्रमण करने लगे। 'जडान्धमूकबधिरपिशाचोन्मादकवत्' कभी अपने को पागल सिद्ध कर रहे हैं, कभी मुँह में पत्थर लिये घूम रहे हैं, नग्नावस्था में विचरण कर रहे हैं। अन्त में ये मल-मूत्र त्यागकर वहीं पर लेट जाते हैं। तब संसारी लोग इनसे घृणा करते हुए दूर-दूर रहने लगे। शुकदेवजी कहते हैं, राजन्! इनके शरीर में ऐसी दिव्यता आ गई कि,

पुरीषसुरभिसौगन्ध्यवायुस्तं देशं दशयोजनं समन्तात् सुरभिं चकार

इनके देह में इतनी दिव्य सुगन्ध निकलती है कि चालीस कोस तक का वातावरण सुगंधित रहता है। इनमें ऐसी दिव्यता आ गई कि आठों सिद्धियाँ प्रकट होकर प्रार्थना करने लगी, महाराज! हमें चरणों की दासी बना लीजिये, कुछ सेवा दीजिये। परन्तु 'हृदयेन-नाभ्यनन्दत्' ऋषभदेव ने एक भी सिद्धि को अपने पास नहीं फटकने दिया। परीक्षित ने पूछा, गुरुदेव! सिद्धियों के लिये तो लोग पागल बने घूमते हैं। कुछ लोग तो भूत-प्रेतों की सिद्धि में ही जिंदगी बर्बाद कर लेते हैं? पर अणिमादि-सिद्धियाँ तो बड़ी दुर्लभ होती हैं। फिर उन सिद्धियों को ठुकरा क्यों दिया? शुकदेव बाबा कहते हैं, राजन्! '**न कुर्यात्कर्हिचित्सख्यं मनसि ह्यनवस्थिते**'' किसी भी महापुरुष को अपने मन पर कभी भी विश्वास नहीं करना चाहिये। ये मन बड़ा धोखेबाज है। अभी मन में कोई इच्छा नहीं है क्योंकि हमारे पास ही कुछ नहीं है, फक्कड़ हैं। आज मन कहेगा, अरे! सिद्धियाँ हैं, सेवा करना चाहती हैं स्वीकार करने में क्या हर्ज है? उनका दुरुपयोग नहीं करेंगे, जब जरूरत पड़ेगी तब देखेंगे! तो पहले तो मन सिद्धियों को स्वीकार करवायेगा। फिर कहेगा, अरे! बेचारा देखो! ये व्यक्ति इतना परेशान है, अपनी सिद्धि का प्रयोग करके इसका कल्याण करो। ये मन बड़ा धोखेबाज है, देखने में क्या बुराई है? देख लो तो फिर कहेगा कि पास जाने में क्या बुराई है? फिर कहेगा कि बात करने में क्या बुराई है? फिर कहेगा कि थोड़ा छूने में क्या बुराई है? ऐसे-ऐसे कह-कहकर तुम्हें गर्त में डाल देता है। इसलिये मन पर कभी विश्वास न करें - यही शिक्षा देने के लिये ऋषभ भगवान् ने सिद्धियों को ठुकरा दिया। सिद्धि आयेगी, तो मन में प्रसिद्धि की कामना भी आयेगी और जब प्रसिद्धि की कामना से आपने चमत्कार किये और नमस्कार हुई जय-जयकार हुई। बस! सो ही अहंकार घेर लेता है।

मान बढ़ाई जब से आई तब से किस्मत फूटी ।
स्वामी स्वामी बजने लागे लगन राम से छूटी ॥

इसलिये जो सच्चे सत्पुरुष होते हैं, वह इन चक्करों में नहीं पड़ते। माँ अपने बच्चे को बार-बार देखती है, जो अबोध बच्चा होता है क्या कर रहा है? जब देखती है कि खेल रहा है तो निश्चिन्त हो जाती है। कभी बीच-बीच में पुकार देती है, बेटा! आओ बड़ी देर से कुछ खाया नहीं? पर खेल में बच्चा इतना मस्त हो जाता है कि माँ की भी नहीं सुनता। तो माँ कहती है, चलो! थोड़ी देर और खेलने दो। माँ का वात्सल्य तो पुत्र के लिये तत्पर लेने को। पर बेटा खेलने में मस्त है, सो माँ भी सोच लेती है कि चलो! खेल रहा है। पर माँ कभी-कभी बहुत व्यस्त रहती है और उस समय बच्चा जब गोद में आने के लिये माँ को छेड़ता है, तो माँ फिर खिलौने देती है। देख बेटा! थोड़ी देर खेल ले, मैं थोड़ा ये काम और निपटा लूँ फिर तुझे सँभालूंगी। इसी प्रकार भगवान् का

स्वभाव है। जीव जहाँ भगवान् की ओर अभिमुख हुआ कि भगवान् ने ये मान-बढ़ाई के खिलौने उसे थमाये। प्रायः बड़े-बड़े महापुरुष इन खुनखुनों में ही खेलते रह जाते हैं, इन ऋद्धि-सिद्धियों के चमत्कार में ही फंसकर रह जाते हैं। परन्तु जो इन समस्त प्रलोभनों का परित्याग कर देते हैं, वह प्रभु का सामीप्य और अनुग्रह प्राप्त करते हैं। ये शिक्षा देने के लिये ही ऋषभदेवजी ने सिद्धियों को ठुकराया। अन्त में ऋषभदेव परमगति को प्राप्त हुए। पर ऋषभ भगवान् की इस बाह्य क्रिया का अनुकरण अर्हन नाम के राजा ने किया और वहीं से जैनमत का शुभारम्भ हो गया।

महाराज भरत का चरित्र—ऋषभनन्दन भरत सम्राट बने और इनके पाँच पुत्र हुए। बड़े पुत्र सुमति को सत्ता का भार सौंपकर भरतजी पुलहाश्रम (शालिग्रामक्षेत्र, मुक्तिनाथ, नेपाल) में भजन करने चले गये। पर एक दिन गण्डकी नदी में स्नान करने के बाद भगवान् सूर्यनारायण को जल दे रहे थे कि गर्भवती मृगी पानी पीने पहुँची और उसी क्षण किसी सिंह की गर्जना सुनाई पड़ी, तो गर्भवती मृगी ने नदी पार करने के लिए छलांग लगा दी और उसी पल उसके गर्भ का बालक पैदा हो गया। मृगी का प्राणान्त हो गया। बच्चा पैदा होते ही पानी में गिरा। भरतजी ये दृश्य देखकर सोचने लगे, मैंने तुरन्त कुछ नहीं किया तो बच्चा भी मर जायेगा। तुरन्त छलांग मारी और बच्चे को बचा लिया।

जीवमात्र पर दया करो। दया ही धर्म का मूल है, यह ठीक बात है। परन्तु कभी-कभी सात्विक वृत्तियां भी जीव के बंधन का कारण बन जाती हैं। दया का काम यहीं पूरा हो गया कि आपने बच्चे को पानी से बाहर निकाल लिया। अब! घर ले आये, घर ले जाकर दूध पिलाया, कोमल-कोमल घास तोड़-तोड़कर खिलाई। अब! भरतजी का चित्त उस मृगशावक में चिपकने लगा। वही दया धीरे-धीरे मोह में बदलती चली गई। कितना प्यारा है, अकेला रहता था अब इससे थोड़ा मन लग गया। आश्रम में चहल-पहल हो गई, मृग उछल-कूद करने लगा। भजन करने के स्थान में कभी बैठते हैं तो मृग आकर चाटने लगता है, सूंघने लगता है। डाँट देते हैं तो भोला बनकर सामने बैठ जाता है, तो दया आ जाती है। धीरे-धीरे मोह प्रबल होता चला गया। अब एक दिन वह आया कि मृग सजातीय मृगों के झुंड के साथ चला गया। अब भरतजी ने चारों तरफ खूब ढूँढा कहीं नहीं मिला। उसके प्रेम में इतने पागल हो गये कि सूर्यभगवान् से पूछ रहे हैं, चन्द्रदेव से पूछ रहे हैं। प्रेम दीवाने भरतजी उसी के प्रेम में शरीर त्याग बैठे। '**अन्ते या मतिः सा गति**' चिन्तन मृग का हुआ, तो अगले जन्म में मृगयोनि प्राप्त हो गई।

एक मृगा के संग ते भरत धरि मृग देह ।
तुलसी उनकी कौन गति जो घर घर करत सनेह ॥

परन्तु कोई भी किया हुआ शुभकर्म कभी व्यर्थ तो जाता नहीं। तप का फल था कि मृगयोनि में पूर्वजन्म की स्मृति बनी रही, जिसके कारण मृगदेह भी शनैः-शनैः प्रारब्ध-भोग समझकर अन्त में त्याग दिया। कालान्तर में तीसरा जन्म एक अङ्गिरा-गोत्रीय ब्राह्मण परिवार में हो गया। नौ भाई थे। सब पढ़-लिखकर वेदपाठी विद्वान् बन गये, पर पिताजी इन्हें पढ़ा-पढ़ाकर परेशान हो गये। वेदमन्त्र तो याद करना दूर रहा, कभी गायत्रीमन्त्र याद करके नहीं सुनाया। पिताजी ने इनका नाम रख दिया, जडभरत (जड़ अर्थात् मूर्ख)। भरतजी भी यही चाहते थे कि पागलपन की मुहर लग जाये, तो दुनियादारी से बच जायें। संसार से बचने का एक ही उपाय है कि पागल हो जाओ। क्योंकि जबतक संसार में संसारियों को ये लगेगा कि इससे कुछ हमारा कार्य

सिद्ध हो सकता है, तबतक दुनिया पीछे ही पड़ी रहेगी। और दुनिया के मतलब के जब नहीं रहोगे, तो दुनिया अपने आप ही छोड़ देगी। स्वार्थी दुनिया बड़ी विचित्र है।

एक बार एक बालक घर छोड़कर एक महात्मा की शरण में पहुँच गया। घर वालों को पता चला कि हमारा बेटा अमुक जगह बाबा बना बैठा है, तो सब पहुँच गये। महात्माजी से बोले, महाराज! हमारा बच्चा है। चार भाइयों में सबसे छोटा यही है। कृपा करो, इसे हमारे घर लौटा दो। गुरुजी ने चेला को बुलाया, बेटा! तेरे परिवार वाले इतना प्रेम कर रहे हैं तुझसे? तू घर चला जा। चेला बोला, नहीं गुरुजी! हमें न छोड़ो। हम तो आपकी शरण में आ गये हैं। गुरुजी ने कहा, तुझे भजन ही तो करना है। मन्त्र दे दिया, वेश दे दिया; अब तू घर में ही जाकर भजन कर लेना। चेला बोला, जो आज्ञा गुरुदेव! बेचारा घर चला आया। घर वाले बड़े प्रसन्न हो गये कि हमारा बेटा लौटकर आ गया। अब घर में आकर उन्होंने नियम शुरू किया, वही चार बजे जागना, नहा-धोकर भजन में बैठ जाना, बारह बजे तक जप करना और फिर भोजन का समय हो गया सो पा लिया। पाकर फिर थोड़ी देर आराम करके फिर भजन में बैठ गये। दो-चार दिन तक कोई कुछ नहीं बोला। जब महीना-भर होने को आ गया, तो भैया बोले, क्यों भैया! हम तुझे इसीलिये लाये थे क्या? खेतों पर काम चल रहा है । सब इतने व्यस्त हैं और तू जब देखो तब माला ही जपता रहता है? भैया बोला, सुनो! रखना हो तो रखो। मैं भजन करने के लिये महात्मा बना था, सो चाहे यहाँ करूँ अथवा चाहे वहाँ करूँ। चाहो तो रखो, नहीं तो मैं अपने आश्रम में चला। घर वाले बोले, अच्छा ठीक है! तुझे भजन ही करना है, तो जा बाबा के पास। हमें तेरी कोई जरूरत नहीं। जब बोझ लगने लगा तो अपने-आप ही भगा दिया।

तो जडभरतजी को भी लगा कि दुनिया के मतलब के रहेंगे, तो दुनिया पीछे पड़ेगी। बचपन से ही अपने को पागल सिद्ध कर दिया। अद्भुत ज्ञान होने के बाद भी पागलों-जैसा व्यवहार जानबूझकर करते हैं। नाम ही जड़ भरत पड़ गया। अब विवाह कौन करता? जब माता-पिता पधार गये, तो भैया तो पागल समझकर कुछ नहीं बोले पर भाभियों को बड़ी जलन होने लगी। भाईयों ने यह समझकर कि ये तो बिल्कुल पागल है, इनकी कुटिया खेतों पर बना दी, वहीं रहने लगे। भरतजी को लगा कि भगवान् की बड़ी कृपा हुई जो प्रपंच से दूर कर दिया और यहाँ पर देहयात्रा के लिये भोजन तो मिल ही जाता है।

एक दिन एक डकैतों के सरदार ने मैया भद्रकाली से कहा, हे मातेश्वरि! मुझे एक बेटा दे दो, मैं नरबली चढ़ाऊँगा। अब उसके बेटा हो गया। सरदार खुश होकर बोला, किसी को पकड़कर लाओ! डकैतों को और तो कोई नहीं मिला, खेतों पर पड़े महाराज जड़ भरतजी मिल गये सो पकडकर ले गये। इन्होंने भी कोई विरोध नहीं किया, उन्हीं के साथ चल पड़े। डकैतलोग भद्रकाली के मन्दिर में ले गये। पहले तो खूब बढ़िया स्नान कराया, बढ़िया-बढ़िया वस्त्र धारण कराये, विविध प्रकार का भोजन कराया। मन्दिर में ले जाकर बोले, बाबा! दण्डवत करो। और जो दण्डवत् करने लगे, तभी डकैत ने तलवार निकाली। जडभरतजी बोले, ये क्यों दिखा रहे हो भैया? सरदार बोला, मालपुआ मुफ्त के नहीं थे महाराज! अभी तक जैसे आपने वह सब आनन्द से स्वीकार किया, अब ये भी स्वीकार करो! जडभरतजी बोले, हे भगवान! ये दुनिया तो बड़ी विचित्र है। चलो! जैसी भगवदेच्छा। जड़ भरतजी ब्रह्मज्ञानी हैं और जो सच्चे ब्रह्मज्ञानी होते हैं, उनके लिये तो शरीर एक पंचायती-धर्मशाला ही है। जीवनमुक्तों का शरीर तो प्रारब्धानुसार चलता है, वह तो भद्रकाली के चरणों में सिर झुकाकर बैठ गये। कोई भय नहीं, कोई आतंक नहीं। भद्रकाली ने देखा, ओ हो! ब्रह्मज्ञानी चरणों में सिर झुकाये बैठा है और ये अज्ञानीलोग इस ब्रह्मज्ञानी का बलिदान करने जा रहे हैं। सरदार ने जो तलवार का प्रहार करना चाहा कि

सहसोच्चचाट सैव देवी भद्रकाली

भद्रकाली प्रकट हो गई, तलवार को छीन लिया और जितने डकैत खड़े थे सबकी गर्दन को काट दिया। जडभरतजी ने जब दृष्टि उठाकर देखा तो मन्दिर का सारा दृश्य बदल गया। समझ गये कि मातेश्वरी ने हमें काल के गाल से निकाल लिया। अब स्वतंत्रता से विचरण करने लगे, घर लौटकर नहीं गये। पर एक दिन सिन्धु-सौवीर देश का राजा रहूगण सतसंग करने के लिये पालकी में बैठकर कपिल-आश्रम की ओर जा रहा था। अचानक एक कहार बीमार हो गया। कहारों ने निवेदन किया, सरकार! एक साथी अचानक बीमार पड़ गया है। अब क्या करें? राजा ने कहा, जो मिल जाये, उसे पकड़कर लगाओ। कोई और तो मिला नहीं सामने जडभरत आ गये। जडभरतजी को देखकर कहारों ने समझा कि मोटा-ताजा व्यक्ति है, बढ़िया भार ढोवेगा। इसी को पकड़ो, ऐ बाबा! इधर आओ! सिंधु-सौवीर देश के राजा विराजमान हैं। महाराज की पालकी में लग जाओ। ठीक है भैया! धर दो कंधे पर सो बीमार को हटा के महाराज को लगा दिया।

अब कहारों की चलने की गति तो बड़ी तीव्र होती है। और महाराजजी जीवन में पहली बार पालकी में लगे। वह अपनी मस्ती में चल रहे थे, 'दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं' महापुरुष तो नीचे दृष्टि डालकर ही चरण रखते हैं ताकि कोई चींटा-चींटी न मरने पावे। अब कहार खूब जल्दी चलने का प्रयास करें, पर ये टस-से-मस नहीं। जैसे चलना है, वैसे ही चलें कि अचानक पैर के नीचे चींटा दिख गया तो उसे बचाने के लिये छलांग और लगा दी। अब पालकी में लगा व्यक्ति छलांग मारे तो पालकी का क्या हाल होगा? पालकी डगमगाई और महाराज की खोपड़ी ऊपर लगी। राजा तो लाल-पीले हो गये,

हे वोढारः साध्वतिक्रमत किमिति विषममुह्यते यानमिति 2/10/05

हे भारवाहको! ठीक से पालकी चलाना नहीं आता, मर-मरकर चल रहे होय फिर भी सिर फोड़ रहे हो? अब कहारों ने हाथ जोड़कर कहा, सरकार! '**अयमधुनैव नियुक्तोऽपि न द्रुतं व्रजति**' हमने देखिये! इस रंगरूट को अभी-अभी लगाया है और फिर भी ये बिल्कुल मर-मरकर चल रहा है, जैसे इसने भोजन ही न किया हो और इसके चक्कर में आप हम पर नाराज़ न होइये महाराज! आप इसी को समझाइये। राजा ने नीचे झुककर देखा तो जडभरतजी का हृष्ट-पुष्ट शरीर दिखाई पड़ा। तो राजा व्यंग्य के बाण चलाने लगे, ओ हो! देखो-देखो!! बेचारा कितना पतला-दुबला डेढ़-हड्डी का आदमी है। उसके कंधों पर इतना बोझा तुमने मेरी पालकी का लाद रखा है। तुम लोग अभी-अभी लगे हो, ये बेचारा कब से पालकी ढो रहा है? इसलिये, बेचारे को बड़ा भार है, कष्ट है।

अहो कष्टं भ्रातर्व्यक्तमुरु परिश्रान्तो दीर्घमध्वानमेकः

जडभरतजी सब समझ रहे हैं, फिर भी चुपचाप चले जा रहे हैं। फिर कोई चींटा-चींटी नजर आई तो फिर उछल बैठे। अब तो राजा का क्रोध ज्यादा ही बढ़ गया,

प्रमत्तस्य च ते करोमि चिकित्सां दण्डपाणिरिव

ऐ मतवाले! तू जान-बूझकर नाटक इसलिये कर रहा है, ताकि तुझे मैं भारमुक्त कर दूँ? बहुत अच्छी तरह जानता हूँ, मैं वह दण्ड दूँगा! जैसे-यमराज पापियों को शुद्ध करते हैं। अब जडभरतजी को लगा कि यदि अब मैं नहीं बोला! तो ये ऐसे ही बोलता रहेगा। बोलने से मुझपर तो कोई फर्क नहीं पड़ने वाला, परन्तु मेरा अपमान करने से ये जरूर नरक में गिरेगा। तो आज जीवन में पहली बार बोले और ऐसा बोले कि कल्याण ही कर दिया।

संत जल्दी से बोलते नहीं और संत की कृपामयी वाणी जब प्रकट होती है, तो निश्चित ही जीव का कल्याण कर देती है। आज ही क्यों बोले ? क्योंकि संत तब बोलते हैं, जब उन्हें कोई पात्र दिखाई पड़ता है। जडभरतजी समझ गये कि रहूगण पात्र है। संतों में श्रद्धा भी रखता है और सत्संग में भी जाता है। थोड़ी-सी कसर ये है कि ये रजोगुणी है। राजा है, तो राजसी अभिमान है। यदि इसका ये राजसी अहंकार निकल जाये तो ये योग्यपात्र है। और मेरा अपमान करता रहेगा, तो ये नरक में गिरेगा। और ये नरक में गिरेगा, तो संतों की बदनामी होगी, लो! संतों में नित्यश्रद्धा रखने वाला, सत्संग सुनने वाला भी नरक में गया। इसलिये बोलना पड़ गया। इसलिये भी बोले कि जाने-अनजाने में ही सही, आखिर इसका भार तो मेरे कंधे पर है। और संत जिसका भार अपने कंधे पर ले लें, फिर तो उसका कल्याण करके ही छोड़ते हैं। इसलिये जडभरतजी बोले,

त्वयोदितं व्यक्तमविप्रलब्धं भर्तुः स मे स्याद्यदि वीर भारः ।
गन्तुर्यदि स्यादधिगम्यमध्वा पीवेति राशौ न विदां प्रवादः ॥ (भा. 5/10/9)

अरे राजन्! तुम किसे दण्ड देने की बात कर रहे हो ? तुम मुझे क्या दण्ड दोगे ? क्योंकि न तो मैं पतला हूँ, न मैं मोटा हूँ, न मैं पैदा होता हूँ, न मरता हूँ। ये मोटा होना, पतला होना, पैदा होना और मरना - ये सब देह के धर्म हैं। मुझ आत्मा में ये कोई भी द्वंद्व घटित नहीं हैं।

जायते अस्ति विपरिणमते वर्धतेप अपक्षीयते विनश्यति

जो शरीर क्रियायें हैं, वह देह में होती है आत्मा में थोड़े ही होती हैं? जडभरतजी के वचनों से रहूगण आश्चर्यचकित हो गया और सोचने लगा, जिसे मैं पागल बावा समझकर ऊटपटांग बातें कर रहा था; ये तो कोई सिद्ध-महात्मा नजर आ रहे हैं। इनकी वाणी में तो वेदान्त की भाषा झलक रही है? पुनः गौर से जब देखा तो जडभरतजी के कंधे पर मोटा-सा यज्ञोपवीत दिखाई पड़ गया। जो यज्ञोपवीत देखा, तुरन्त पालकी से नीचे कूद पड़े रहूगण और सीधे श्रीजडभरत के चरणों में साष्टाङ्ग प्रणाम किया।

कस्त्वं निगूढश्चरसि द्विजानां बिभर्षि सूत्रं कतमोऽवधूतः

रहूगण ने पूछा, महाराज! आप कौन हैं? आप अपने आपको इतना गुप्त रूप में छुपाकर विचरण कर रहे हो ? मैं तो आपको पहचान ही नहीं पाया, आपका यज्ञोपवीत बता रहा है कि आप सच्चे कोई ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मण हैं। मैं संसार में किसी से नहीं डरता, पर यदि डर लगता है तो केवल ब्राह्मण के क्रोध का।

नाहं विशंके सुरराजवज्रान्न त्र्यक्षशूलान्न यमस्य दण्डात् ।
नाग्न्यर्कसोमानिलवित्तपास्त्राच्छङ्के भृशं ब्रह्मकुलावमानात् ॥ (भा. 5/10/17)
इन्द्र कुलिस मम सूल बिसाला । काल दण्ड हरि चक्र कराला ॥
जो इनकर मारा नहि मरई। बिप्र द्रोह पावक सो जरई।

महाराज! मुझे ब्राह्मणकुल के अपमान का डर लगता है। क्योंकि ब्राह्मण यदि कुपित हो जाये, तो वह केवल उस व्यक्ति को ही नहीं, वरन् उसके पूरे वंश का विनाश कर देता है। इसलिये महाराज! आप कौन हैं? जडभरतजी मुस्कुरा पड़े और बोले, राजन्! हैं तो हम भी ब्राह्मण! पर खतरनाक ब्राह्मण नहीं, कोई डरने की आवश्यकता नहीं। जो कुछ कहना है, निर्भीक होकर कहो। रहूगण ने कहा, महाराज! बस मेरे मन में आपके शब्दों के प्रति एक जिज्ञासा है। आपने अभी-अभी कहा कि न मैं मोटा हूँ, न पतला हूँ, न छोटा हूँ, न बड़ा हूँ, न मरता हूँ, न जन्म लेता हूँ - ये सब ठीक है। पर आपने कहा कि मुझे सुख-दुःख, आदि द्वन्द्व प्रभावित नहीं करता। ये बात तो कुछ समझ में नहीं आई ? देखिये महाराज! किसी ने चूल्हा जलाकर उस पर बटलोई रखी। बटलोई में पानी भरकर चावल डाल दिये तो अग्नि का ताप बटलोई को गर्म करेगा, फिर बटलोई का ताप पानी

को गर्म करेगा और फिर पानी का ताप चावल को भात बना देगा। उसी प्रकार शरीर में पीड़ा होगी, तो इंद्रियों को कष्ट होगा। इन्द्रियों को कष्ट होगा तो मन को भी कष्ट होगा। मन को कष्ट होगा तो शरीर में स्थित क्या आत्मा को कष्ट नहीं होगा ? फिर आपने ये कैसे कह दिया कि मुझ आत्मा को कोई सुख-दुःख प्रभावित नहीं करता ? कोई द्वंद्व प्रभावित नहीं करता ?

स्थाल्यग्नितापात्पयसोऽभितापस्तत्तापतस्तण्डुलगर्भरन्धिः ।
देहेन्द्रियस्वाशयसन्निकर्षात् तत्संसृतिः पुरुषस्यानुरोधात् ॥ (भा. 5/10/22)

लौकिक दृष्टान्त देकर जब अपनी बात रहूगण ने रखी तो जड़ भरतजी खूब हंसते हुए बोले, राजन्! हो तो तुम महामूर्ख, पर विद्वानों के संग में बैठकर आत्मा की बातें करना सीख लिया। आत्मतत्त्व को जानते कुछ भी नहीं। '**अकोविदः कोदिवादवादान्**' मूर्ख होकर ज्ञानियों जैसी बातें कर रहे हो ? अरे राजन्! जो तुमने दृष्टान्त दिये वह सावयव पदार्थों के दृष्टान्त हैं। जल है, बटलोई है, चावल है, आग है - ये सब सावयव हैं, इन्हें देखा जा सकता है, इन्हें छुआ जा सकता है। पर जिस आत्मा के साथ तुम घटा रहे हो, उस आत्मा को देखा है तुमने ? आत्मा को कोई छू सकता है? आत्मा का कोई रूप बता सकता है कि वह काली-पीली-गोरी-भूरी-मोटी-पतली कैसी है आत्मा ? आत्मा का स्वरूप आकाशवत् है, जो निरवयव है। जो भी शून्य दिखाई पड़ रहा है, ये सब आकाश है। अब कोई कहे कि मैंने आकाश को मुट्ठी में कैदकर लिया तो क्या आकाश मुट्ठी में कैद हो सकता है? कोई चाहे कि मैंने तलवार से आकाश के दो टुकड़े कर दिये, तो क्या आकाश तलवार से दो टुकड़ों में कट सकता है? कोई आग से आकाश को जला सकता है? कोई पानी फेंककर आकाश को गीला कर सकता है? जैसे आकाश का कुछ नहीं बिगाड़ सकते, ऐसे ही आत्मा जो है वह आकाश की भाँति निरवयव तत्त्व है। इसलिये उसका कुछ भी नहीं बिगड़ता।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः

राजा ने प्रश्न किया, तो ये सुख-दुःख का भोक्ता कौन है? जडभरतजी बोले, भाई! ये जो मन हैं, ये सुख-दुःख के मूल कारण हैं। मन की अनुकूलता में सुख, मन की प्रतिकूलता में दुःख की प्रतीति होती है। जिससे हम अतिशय प्रेम करते हों, वह रात के बारह बजे भी हमारे घर आ जाये; तो बढ़िया मालपुआ बनाकर खिलायेंगे। वह जो चाहेगा, सो खिलायेंगे। और जिससे देना-लेना नहीं, मन से जिसका कोई सम्बन्ध नहीं; उसके लिये भोजन कराना तो दूर रहा यदि भीतर जाकर पानी भी लाकर पिलाना पड़े, तो विक्षेप हो जाता है। स्फटिकमणि में तो कोई रंग नहीं है। पर लाल-पुष्प के पास रख दो तो वह लाल दिखने लगती है, श्वेत-पुष्प के पास रख दो, तो वह श्वेत दिखने लगती है। ये सब पुष्पों के रंग मणि में आपको प्रतिबिम्बित हो रहे हैं। ऐसे ही ये द्वंद्व जो मन के हैं, उसे हम आत्मा के ऊपर अध्यारोपित कर रहे हैं। इस प्रकार से राजा रहूगण को श्रीजड़ भरतजी ने आत्मतत्त्व का उपदेश दिया और अन्त में भवाटवी का बड़ा अद्भुत वर्णन किया - ये संसार एक बड़ा भयंकर बीहड़ जंगल है। और इस जंगल से कोई सद्गुरु ही हमें बाहर निकाल सकता है, जिसे गली-गली का ज्ञान हो।

रहूगण का कल्याण हो गया। चरणों में गिरकर बोले, महाराज! आपके वचन सचमुच अमृत-औषधि हैं। श्रीजड़ भरतजी बोले, राजन्! तपस्या चाहे जितनी कर लो, चाहे जितने बड़े-बड़े यज्ञ कर लो, चाहे जितना सत्संग सुन लोय पर जबतक इन महापुरुषों की चरण-रज में अभिषेक नहीं करोगे, तबतक कल्याण होने वाला नहीं है।

रहूगणैतत्तपसा न याति न चेज्यया निर्वपणाद् गृहाद्वा ।
न च्छन्दसा नैव जलाग्निसूर्यैर्विना महात्पादरजोऽभिषेकम् ॥ (भा. 5/12/12)

'विना महत् पादरजोऽभिषेकम्' इसलिये संतो की चरणरज में स्नान करो। अरे! तुम तो सिंधुसौवीर देश के राजा हो। मैं तो पूर्व में चक्रवर्ती सम्राट रह चुका हूँ। समस्त भूमण्डल का राजा बन चुका हूँ। इसलिये राजन्! ये सब अनित्य-सम्बन्ध हैं। यदि अपना वास्तविक कल्याण चाहो, तो ये सारा अहंकार त्यागकर संतों के चरणों में प्रणाम करना सीखो। पानी खूब बरस रहा है, पर जो ऊंचे-ऊंचे पहाड़ हैं उन पर बरसता तो है पर? टिकता नहीं। पानी टिकता वहाँ है, जहाँ गहराई होती हैय वहीं पर पानी ठहरता है। उसी प्रकार सत्संग और संतों की कृपा की बरसात सबके ऊपर हो रही है पर जो अहंकार में पर्वत बने बैठे हैं, वह पानी को झड़ाकर चले जाते है। पर जिनके पास नम्रता का पात्र है, ये सत्संग का जल उन्हीं के हृदय में ठहरता है। इस प्रकार श्रीजड़ भरतजी महाराज ने राजा रहूगण का सारा अहंकार तोड़ दिया, उसका कल्याण कर दिया।

श्रीशुकदेवजी महाराज कहते हैं, परीक्षित! इसी प्रियव्रत वंश के अन्तिम राजा महाराज विरज हुये। जिस प्रकार समस्त देवताओं की शोभा भगवान् विष्णु की आभा-प्रभा से है, उसी प्रकार इस प्रियव्रत वंश में उत्पन्न राजा विरज ने अपने सुयश से इस वंश को विभूषित किया।

द्वीपों का वर्णन — परीक्षित ने पूछा, गुरुदेव! अब जरा हमें भूगोल-खगोल के बारे में कुछ बताइये। तब शुकदेवजी महाराज ने कहा, राजन्! इस भूमण्डल पर जम्बूद्वीप, आदि सात द्वीप हैं, जो एक-एक सागर से समावृत हैं। जम्बूद्वीप के कमलकर्णिका की भान्ति नौ खण्ड हैं। इलावृत, किम्पुरुष, रम्य, हरिनवन, केतुमाल, हरिवर्ष, उत्तरकुरु, भद्राश्व तथा अजनाभ नामक इन नौ खण्डों में भगवान् का नित्य निवास है। अजनाभखण्ड ही श्रीभारतवर्ष है। इस भारतभूमि में भगवान् नर-नारायण के रूप में बद्रीविशाल में विराजमान हैं और देवर्षि नारद के साथ समस्त भारतीय उनकी आराधना करते हैं। भारतभूमि ही कर्म भूमि है, अन्य सब भोग भूमि है।

इसलिये धर्म की स्थापना हेतु भगवान् के जितने अवतार हुए, सब भारतभूमि में हुये। **शंका** - जब भगवान् विश्व का कल्याण करने के लिये आते हैं, तो सारा ब्रह्माण्ड तो भगवान् का है? तो फिर भारतभूमि में ही जन्म क्यों लेते हैं? भगवान् के अवतार जापान में, अमेरिका में, इंग्लैण्ड में क्यों नहीं होते? **समाधान** - ये पूरा शरीर हमारा है। पर इस शरीर के किसी कारणवश पाँव काटना पड़े, तो हम पाँव काटकर बिना पाँव के जीवन चला लेंगे। हाथ काटना पड़े तो काट देंगे, हमारा जीवन चल जायेगा। पर यदि पूरा शरीर स्वस्थ व सुरक्षित हो, लेकिन हृदय की धड़कन यदि समाप्त हो गई तो शरीर व्यर्थ हो जाएगा। उसी प्रकार समस्त विश्व परमात्मा का विराट-वपु है, परन्तु भारतभूमि भगवान् का हृदय स्थल है। और इस भारतभूमि में धर्म की धड़कन जबतक चल रही है, तबतक विश्व में धर्म का साम्राज्य है। और भारतभूमि के हृदय स्थल से यदि धर्म की धड़कन रुक गई तो सारे विश्व में धर्म की हानि हो जायेगी। इसलिये भगवान् के जितने भी अवतार हुए,

धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे

धर्म की स्थापना के लिये भारत भूमि में ही भगवान् पधारे। बड़े-बड़े देवता इसीलिये भारत भूमि में जन्म लेने को तरसते हैं।

अहो अमीषां किमकारि शोभनं प्रसन्न एषां स्विदुत स्वयं हरिः।
यैर्जन्म लब्धं नृषु भारताजिरे मुकुन्दसेवौपयिकं स्पृहा हि नः॥ (भा. 5/19/21)

स्वर्ग के देवता जब भारतीयों को भगवान् की सेवा में रत देखते हैं, तो उनके मन में जलन होती है, ये मानव! जो आज तक हमारी पूजा कर रहा था, यदि इसी प्रकार से परब्रह्म की आराधना करता रहा; तो कल इसकी पूजा हमें करनी पड़ेगी। यदि कोई आपका ही कर्मचारी आपका अधिकारी बनकर आ जाये, तो क्या आपको जलन नहीं होगी? उसी प्रकार मानवों को ही प्रभु के द्वारा ये आरक्षण प्राप्त है कि इस कर्मभूमि में जैसा कर्म करोगे, तद्नुसार आपको फल मिलेगा। पर देवताओं की कर्मभूमि नहीं है, वह भोग भूमि है। जिसने अभी तक जितने पुण्य किये हैं, उन पुण्यों का फल भोगो; उसके बाद लौट आओ। तो मानव जब शुभकर्मो में प्रवृत्त होता है, तो देवताओं को डर लगने लगता है कि यदि ये ऐसे ही करता रहाय तो कल इसकी पूजा हमें करनी पड़ेगी। इसलिये उन्हें स्पृहा होती है। जो आनन्द धरा पर है वह स्वर्ग में भी नहीं है।

न यत्र वैकुण्ठकथासुधापगा न साधवो भागवतास्तदाश्रयाः

जहाँ पर न तो भगवान् के भक्तों का दर्शन है, जहाँ पर न यज्ञों के स्वाहा-स्वधाकार सुनाई पड़ते हैं **'सुरेशलोकाऽपि न वै स सेव्यताम्'** ऐसे स्वर्ग में हम जाकर क्या करेंगे? ये सारे आनन्द इसी धरातल पर हैं। आज जन्माष्टमी का उत्सव मन रहा है, आज रामनवमी का उत्सव मन रहा है, आज विवाहपंचमी का उत्सव मन रहा है, आज झूला महोत्सव मन रहा है, आज भगवान् का रंगपंचमी का उत्सव मन रहा है ... नित्य आये दिन कोई-न-कोई उत्सव भक्तों के बीच मनते रहते हैं। ये आनन्द तो वैकुण्ठ में भी नहीं है। वैकुण्ठ में भगवान् के दर्शन तो मिल जायेंगे, पर भगवान् का जन्मोत्सव वहाँ पर थोड़े-ही मिलेगा? वहाँ तो जन्म होता ही नहीं? इसलिये बड़े बड़े रसिक संत इस आनन्द के लिए मोक्ष-अपवर्ग सुख को भी तिलांजलि दे देते हैं।

अब अन्य लोकों का वर्णन करते हुए शुकदेवजी बताते हैं कि अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल और पाताल, आदि सात लोक पृथ्वी से नीचे हैं। इसके विपरीत भू, भुवः, स्वः, मह, जनः, तपः और सत्य, आदि सात लोक ऊपर हैं। नीचे से ऊपर तक इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की दूरी पचास करोड़ योजन की है। परीक्षित के प्रश्न करने पर फिर आगे नरक का वर्णन विस्तार से कहते हैं। पृथ्वी से 99 हजार यौजन नीचे यमराज की संयमनी पुरी है। तामिस्त्र, अन्धतामिस्त्र, रौरव, महारौरव, कुम्भीपाक, कालसूत्र, असिपयवन, सूकरमुख, अन्धकूप, कृमिभोजन, सन्दंश, तप्तसूर्मि, वज्रकण्टकशाल्मली, वैतरणी, पूयोद्, प्राणरोध, विशसन, लालाभक्ष, सारमेयादन, अवीचि, अयःपान, अवटनिरोधन, पर्यावर्तन, क्षारकर्दम, रक्षोगणभोजन, शूलप्रोत, दन्दशूक और सूचीमुख, आदि-आदि प्रधानरूप से अट्ठाइस नरकों का वर्णन किया। तो किस पापकर्म से किस नरक में कौन-सी यातना जीव को भोगनी पड़ती है, उसका भी एक-एक करके बहुत विस्तार किया।

तत्र यस्तु परवित्तापत्यकलत्राण्यपहरति स हि कालपाशबद्धो।
यमपुरुषैरतिभयानकैस्तामिस्रे नरके बलान्निपात्यते ।। (भा. 5/27/8)

जो प्राणी परसम्पदा का हरण कर लेता है, परस्त्री का हरण कर लेता है, बच्चों का हरण कर लेता है; यमदूत उसे तामिस्त्र नरक में ले जाकर पटक देते हैं। इस नरक की भूमि ताम्र के समान आग में तपी हुई लाल रहती है। उस अग्नि-संतप्त भूमि पर जीव भयंकर कष्ट पाता है। जो जीवों को काटकर उनका मांस भक्षण करते हैं, उन्हें कुम्भीपाक नामक नरक में खौलते हुए तेल की कढ़ाई में झोंक दिया जाता है। जो घर में आये हुए अतिथियों को क्रोध की निगाह से देखता है, वह वज्रतुण्ड नरक में जाकर पड़ता है तथा उस जीव की आँखों को गीध निकालकर खा जाते हैं।

अथ श्रीमद्भागवतपुराणस्य

॥ षष्ठः स्कन्धः ॥

(पोषणः)

अजामिलोपाख्यान— नरक का इतना भयंकर वर्णन किया कि परीक्षित रोमांचित होकर बोले, बस करो महाराज! मुझे तो बड़ा डर लगता है। शुकदेवजी हंसकर बोले डरने की कोई बात नहीं, नरको को तो जीवों के कल्याण के लिये ही बनाया है। भगवान् ने सुन्दर तन दिया और हमने क्या किया? इस कपड़े की सफाई कभी नहीं की और दाग पर दाग लगा लिये। जब जीव अपने जीवन में अनेक प्रकार के पाप के दाग लगा लेता है और प्रायश्चित के साबुन से कभी उसकी सफाई नहीं करता। तो फिर भगवान् ने धोबी घाट बनाकर तैयार कर दिया है। धोबी घाट पर वही कपड़ा जाता है, जो गंदा तो हो गया। उस विडम्वना से बचना चाहो, तो बढ़िया साबुन लेकर अपने हाथ से ही रगड़कर साफ करो।

परीक्षित ने कहा, वह सफाई हो जाये, यह तो अच्छी बात है। परन्तु ये तो सफाई का बहुत ही विचित्र तरीका है। और यदि साबुन ढूँढा जाये, तो कौन-सा साबुन सबसे बढ़िया है? आप तो कोई ऐसा साबुन बता दो, महाराज! जो सस्ता-सा हो और एक बार रगड़ने से सारा मैल धुल जाता हो। शुकदेवजी प्रसन्न होकर बोले, अच्छा! तो नोट करो। इतना बढ़िया और इतना सस्ता साबुन है कि एक बार रगड़कर कहीं धो दिया, तो बड़े-बड़े दाग ढूंढ़ते ही रह जाओगे;

केचित्केवलया भक्त्या वासुदेवपरायणाः ।
अघं धुन्वन्ति कार्त्स्न्येन नीहारमिव भास्करः ॥ (भा. 6/1/15)

शुकदेव भगवान् कहते हैं, परीक्षित! जैसे भुवन-भास्कर सूर्यनारायण के उदय होने पर सम्पूर्ण त्रिभुवन का अन्धकार समाप्त हो जाता है, ऐसे ही भगवान् के मंगलमय नाम का मुख से गान करते ही जीव के जन्म-जन्मान्तरों के पापपुञ्ज भस्मीभूत हो जाते हैं। परीक्षित ने कहा, महाराज! ऐसा कभी हुआ भी है? कोई प्रमाण दीजिये। तब शुकदेवजी अजामिलोपाख्यान सुनाते हैं। कन्नौज में रहने वाला अजामिल ब्राह्मण बहुत बड़ा वेदपाठी तथा मातृ-पितृ भक्त था। पतिव्रता पत्नी भी थी, आज्ञाकारी बेटे भी थेय सब कुछ था। पर दुर्दैव से एक दिन समिधा बीनने गया और जंगल में किसी शूद्र को वेश्या में रत देख लिया, तो मति मलीन हो गई और उसी वेश्या के साथ हमेशा को चला गया। दस सन्तानें हुई। सबसे छोटे बेटे का नाम संतों के कहने से इसने नारायण रख लिया। बात-बात पर उसी को बुलाता था। एक बार जब मृत्यु का क्षण निकट आया, तो काले-काले यमदूत अपनी ओर दिखाई पड़े। डर के मारे इसने अपने बेटे नारायण को बुला दिया, 'बेटा नारायण! बचाओ!!' बेटा नारायण! इधर आओ॥ जहाँ ये शब्द भगवान् के पार्षदों के कान में पड़ा कि,

दूरे क्रीडनकासक्तं पुत्रं नारायणाह्वयम् ।
प्लावितेन स्वरेणोच्चैराजुहावाकुलेन्द्रियः ॥ (भा. 6/1/29)

पूरे बल के साथ जब पुकारा, नारायण! बचाओ॥ तत्क्षण भगवान् के चार पार्षद प्रकट हो गये और दूतों को धक्का मारकर यमपाश से मुक्त कर दिया। यम के दूत तुरन्त उठकर खड़े हो गये, क्यों भैया? तुम चार-चार चमकीले-चमकीले कहाँ से चले आये? विष्णुदूतों ने कहा, तुम बताओ! तुम काले-कलूटे कहाँ से आ गये? यमदूतों ने कहा हमें नहीं जानते? हम यमराज के दूत हैं, पापियों को पकड़ने का ही काम करते हैं। आपका परिचय क्या है? विष्णुदूतों ने कहा, हम भगवान् श्रीमन्नारायण के दूत हैं। नारायण को पुकारने वालों को लेने हम आ जाते हैं। तुमने सुना नहीं, ये कितनी जोर से चिल्लाया, 'नारायण! बचाओ' और फिर भी तुम उसे पकड़ने का दुःसाहस कर रहे हो? यमदूतों ने कहा, किसी और को पागल बनाओ। तुम्हें मालूम नहीं, इसके बेटे का नाम नारायण है। ये तुम्हारे मालिक को नहीं, अपितु अपने पुत्र को पुकार रहा है। विष्णुदूतों ने कहा, हमें इससे कोई प्रयोजन नहीं। नारायण नाम हमारे मालिक का है और आज से नहीं अनादिकाल से है। अरे! इसके बेटे का नाम नारायण तो दो चार साल पहले ही तो रखा होगा? पर हमारे स्वामी का नाम नारायण तो अनादिकाल से है। तो बोलो, नाम किसका मानेंगे?

साङ्केत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा ।
वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः ॥ (भा. 6/2/14)

भगवान् के मंगलमय नाम का एक बार गान करके ही जीव के समस्त पाप तत्क्षण भस्मीभूत हो जाते हैं। चाहे वह कैसे भी लें।

भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ ।
नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ ॥ (मानस 1/28/1)

वस्तु शक्ति ज्ञान की अपेक्षा नहीं रखती। अग्नि में दाह तत्त्व की शक्ति है। अब हमें ज्ञान हो, या न होय पर आग को छू लेंगे, तो वह जलाये बिना नहीं मानेगी। इसी प्रकार विष में मारक शक्ति है। हमें ज्ञान हो, या न हो; पर विष पी लिया तो कहीं से बचने वाले नहीं। वैसे ही अनजाने में प्रभु का कोई नाम ले लेवे, तो क्या उसे तरना नहीं पड़ेगा; क्योंकि नाम में जो तारक शक्ति है, वह तारक शक्ति तो अपना काम करेगी। तुमने श्रद्धा से लिया या अश्रद्धा से - उसे कोई प्रयोजन नहीं है। इसलिये कहीं भी कैसे भी जपो। भगवत्पार्षदों और यमदूतों के बीच बहुत बहस हुई। फिर भी जब नहीं माने, तो भगवत्पार्षदों और यम के दूतों की खूब पिटाई की।

यम के दूत अन्त में अजामिल को छोड़कर भाग गये। विष्णुदूत भी अन्तर्ध्यान हो गये। दोनों के संवाद को अजामिल ने ठीक-से सुना था, आँखों से दोनों को देखा था; इसलिये तुरन्त वैराग्य हो गया। विचार करने लगा, जब धोखे से नाम लिया, तब ये चमत्कार हो गया। कहीं सचमुच मैंने प्रभु को ही पुकारा होता; तब क्या हो जाता? सबको छोड़कर अजामिल हरिद्वार आया और यहाँ पर खूब भजन करके '**गंगाद्वारमुपेपाय मुक्तसर्वानुबन्धनः**' समस्त बंधनों से मुक्त होकर, अन्त में परमपद को प्राप्त किया।

और उधर यमदूतों ने यमराज के सामने कालदण्ड फेंक दिया, आज से तुम्हारी ऐसी नौकरी हमें नहीं करनी। यमराज ने पूछा, क्या हो गया भाई? यमदूत बोले, आपके भेजे हम गये और चार लोगों ने हमें ही मार-पीटकर भगा दिया। कारण सिर्फ इतना था कि वह जीव अपने बेटे नारायण को पुकार रहा था और वह कह रहे थे कि हमारे स्वामी का नाम नारायण है। दौड़कर यमराज ने उनके मुँह पर हाथ रख दिया, अरे! धीरे से बोलो। यमदूतों ने पूछा, क्यों महाराज? यमराज बोले, अभी मंगलमय नाम जो तुमने लिया है, कहीं चिल्ला-चिल्लाकर दो-चार

बार ले दिया और इन पापियों के कान में पड़ गया, तो नरक में जो पड़े हैं; सबको विदाई देनी पड़ेगी। मेरा तो सारा व्यापार ही ठप्प हो जायेगा? यमदूतों ने पूछा, अच्छा महाराज! ऐसा चमत्कार है, तो बताइये इस नाम की महिमा क्या है? धर्मराज बोले, भैया! हम क्या बतायेंगे तुम्हें नाम की महिमा? भगवान् से पूछो तो भगवान् भी न बता पावें,

कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई।
राम न सकहिं नाम गुण गाई॥ (मानस 1/26/4)

यमदूत बोले, अच्छा महाराज! तो जिसकी महिमा कोई बता ही नहीं सकता, जिस तत्त्व का प्रतिपादन कोई कर ही नहीं सकता, वह कपोल-कल्पना भी तो हो सकती है? धर्मराज बोले, नहीं! ऐसी बात नहीं है। हम बारह लोग हैं, जो थोड़ा बहुत तो जानते हैं।

स्वयम्भूर्नारदः शम्भुः कुमारः कपिलो मनुः।
प्रह्लादो जनको भीष्मो बलिर्वैयासकिर्वयम्॥
द्वादशैते विजानीमो धर्मं भागवतं भटाः। (भा. 6/3/20-21)

ये द्वादश परम भागवत माने जाते हैं। इसलिये वैष्णवलोग द्वादश-तिलक धारण करते हैं। श्रीमद्भागवत में भी द्वादश स्कन्ध है, द्वादशाक्षर मन्त्र का भी बड़ा महत्व है। और इस प्रकार से जब नाम की गरिमा का निरुपण किया, तो यम के दूत बोले अब हमें ज्यादा झंझट में नहीं पड़ना। हमें तो सीधी-सीधी बात बता दो कि हम किसे पकड़ने जायें? धर्मराज ने कहा,

जिह्वा न वक्ति भगवद्गुणनामधेयं चेतश्च न स्मरति तच्चरणारविन्दम्।
कृष्णाय नो नमति यच्छिर एकदापि तानानयध्वमसतोऽकृतविष्णुकृत्यान्॥ (भा. 6/3/29)

यमराज कहते हैं, जिनकी जिह्वा से हरि का नाम न निकले, जिनका सिर हरि के चरणों में न झुके, जिनका चित्त हरि के चरणकमलों का चिन्तन न करे; बस ऐसे लोगों को लाया करो। बाकि किसी को हाथ मत लगाना। शुकदेवजी कहते हैं, परीक्षित! ये कथा मुझे कुम्भज (अगस्त्य) महर्षि ने मलयपर्वत पर भगवत्सेवा में सुनाई थी; जो आज प्रसंगानुसार मैंने तुम्हें सुना दिया। अब तुम ही बताओ, इससे ज्यादा नाम की महिमा और क्या हो सकती है?

भागवतसंहिता के छठ्वें स्कन्ध का नाम है **'पोषण'**। पोषण का तात्पर्य है - **'पोषणंतदनुग्रहः'**। भगवान् का जीवों पर किस प्रकार से कैसे अनुग्रह होता है। जीव कर्म करता जाये, कर्मानुसार फल भोगता जाये; तो फिर भगवान् की आवश्यकता कहाँ रह जायेगी? इसलिये इसी आधार पर महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यजी ने पुष्टिमार्ग की स्थापना की क्योंकि भगवान् की कृपादृष्टि की परम आवश्यकता है। जीव कर्म करता जाये, फल भोगता जाये; तो कल्प-कल्पान्तरों में भी कभी कल्याण होने वाला नहीं है। पर भगवान् की कृपादृष्टि सब कुछ कर सकती है। आपने किसी की हत्या कर दी, अपराध सिद्ध हो गया तो न्यायाधीश तो आपको फांसी की सज़ा सुनायेगा - ये रहा कानून। अब राष्ट्रपतिजी का स्वतंत्र अधिकार है कि वह आपको अपनी कृपा से फांसी से बचा सकता है। ऐसे ही ठाकुरजी के सारे अधिकार स्वतंत्र हैं, वह जो चाहें सो कर सकते हैं। इसलिये जीव को सर्वथा उनकी कृपा का आश्रय गृहण करना चाहिये। अजामिल-जैसा पापी धोखे से पुत्र के माध्यम से प्रभु का नाम लिया और भगवान् का कृपापात्र बन गया। ये नाम की महिमा नहीं है, ये नामाभास की महिमा है। भ्रमवशात् लिया हुआ प्रभु का नाम कितना चमत्कारी है। प्रभु के नाम की महिमा कौन गा सकता है?

अब परीक्षित ने प्रश्न किया, भगवन्! आपने मुझे जो ध्रुवजी का चरित्र और वंश सुनाया। वह वंश आपने केवल प्राचीनबर्हि के पुत्र प्रचेताओं तक सुनाया। उसके बाद आपने उनका वंश आगे नहीं बताया। आगे क्या हुआ? तब शुकदेवजी महाराज उस अध्याय को पुनः प्रारम्भ करते हुये कहते हैं, परीक्षित! प्रचेतागणों का विवाह वृक्षों की कन्या वार्क्षी से हुआ और उन्होंने दक्ष नामक पुत्र को जन्म दिया और तपस्या करने चले गये। दक्ष ने तपस्या करके असक्नि कन्या से विवाह करने के बाद दस हज़ार पुत्रों को जन्म दिया। पर नारदजी ने उन समस्त बालकों को कूट प्रश्नों में उलझाकर ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी बना दिया। नारदजी ने उन बच्चों से बड़े विचित्र प्रश्न किये, बच्चो! बताओ दोनों ओर बहने वाली नदी को देखा है? बच्चे चक्कर में पड़ गये, ऐसी नदी तो हमने आज तक सुनी भी नहीं। हम नहीं बता सकते महाराज! हमने नहीं देखा। पुनः नारदजी ने पूछा, अच्छा! तो बताओ ऐसा कोई बिल देखा है, जिसमें घुसने के बाद कोई निकलता ही नहीं? बालक बोले, नहीं देखा महाराज। पुनः नारदजी ने पूछा, अच्छा! तो विचित्र भाषा बोलने वाले हंस को देखा है? बालकों ने कहा, नहीं देखा महाराज। नारदजी ने पुनः प्रश्न किया, अच्छा! तो पुंश्चली के पति को जानते हो? बालकों ने उत्तर दिया, नहीं जानते महाराज! नारदजी बोले, तो तुम कुछ नहीं कर सकते।

बालकों के जिज्ञासा करने पर नारदजी ने सबको चेला बना दिया और समझा दिया, देखो बच्चो! दोनों ओर बहने वाली नदी का नाम है 'माया', जो सृजन भी कर रही है और संहार भी कर रही है। जिस बिल में जाने के बाद कोई नहीं निकलता, उसका नाम है 'मोक्ष'। मोक्ष पद पाने के बाद कोई लौटकर थोड़े ही आता है, **'यदगत्वा न निवर्तन्ते'** और विचित्र भाषा बोलने वाले हंस का नाम है 'शास्त्र'। शास्त्र कहते कुछ हैं, मतलब कुछ और ही निकलता है। पुंश्चली माया के पति हैं 'माधव'। ऐसा सब रहस्य बताने के बाद नारदजी ने सब बालकों को विरक्त कर दिया।

दक्ष को पता चला कि मेरे दस हज़ार बेटा नारदजी की शिक्षा से बाबा बन गये, तो नारदजी पर बड़ा क्रोध आया। पर अपना क्रोध पीकर रह गये और अबकी बार दक्ष ने एक हजार बच्चों को जन्म दिया। नारदजी ने उन्हें भी कूट प्रश्नों में उलझाकर महात्मा बना दिया। अब तो दक्ष के क्रोध का पारा हद-से-ज्यादा बढ़ गया और स्थिति ये आई कि सामने से ही नारदजी आ गये। फिर क्या था? नारदजी को दक्ष ने हजारों गालियाँ सुना डालीं।

अहो असाधो साधूनां साधुलिंगेन नस्त्वया।
असाध्वकार्यर्भकाणां भिक्षोर्मार्गः प्रदर्शितः॥ (भा. 6/5/36)

दक्ष ने कहा है, अरे! भिखमंगो का रास्ता दिखाने वाले पाखण्डी नारद! तूने मेरे नन्हें-नन्हें बच्चों को, जिन्होंने अभी दुनिया भी नहीं देखी उन्हें तूने बाबा-वैरागी बना दिया? जा मेरा शाप है,

तस्माल्लोकेषु ते मूढ न भवेद् भ्रमतः पदम्

तेरा पैर कभी एक जगह पर टिकेगा नहीं। तू जगत् में ऐसे ही घूमता रहेगा! नारदजी चुपचाप मौन होकर वहाँ से चले गये। कोई जवाब नहीं दिया और मन में सोचा, अच्छा ही रहा! बाबा को एक जगह टिकना भी नहीं चाहिये। ऐसा विचार करके नारदजी चुपचाप चले गये। दक्ष नारदजी की इस सहनशीलता से प्रसन्न हुआ, क्योंकि नारदजी चाहते तो बदले में चाहे जितने शाप दे सकते थे, पर उन्होंने ऐसा नहीं किया।

अबकी बार दक्ष ने साठ कन्याओं को जन्म दिया और दक्ष की इन्हीं साठ कन्याओं से संसार का विस्तार

हुआ। इन साठ कन्याओं में तेरह कश्यपजी को ब्याहीं गई। दिति, अदिति, दनू, काष्ठा, सुरसा, इला, ताम्रवती, कद्रू, विनिता, आदि ये सब कश्यपजी की पत्नियाँ हैं। अश्विनी, भरणी, कृतिका, रोहणी, आदि सत्ताईस कन्या चन्द्रमा को ब्याहीं। कश्यपजी की दिति नामक पत्नी से दैत्यों का जन्म हुआ। दिति की रचना नामक एक बेटी थी, जिसका विवाह त्वष्टा मुनि के साथ हुआ। इनके दो बेटा हुए विश्वरूप और सन्निवेश। विश्वरुप ब्रह्मज्ञानी था और इतना अद्भुत ब्रह्मज्ञानी था कि देवताओं का पुरोहित भी बना।

परीक्षितजी ने पूछा महाराज! देवताओं के पुरोहित जब बृहस्पतिजी हैं, तब भला विश्वरुप क्यों बने? शुकदेवजी बोले, राजन्! एक बार इन्द्र अपने दरबार में अप्सराओं का नाच-गाना देख रहे थे। इतने में उनके गुरु बृहस्पतिजी आ गये। तो इन्द्र ने गुरुजी को देखते हुए भी अनदेखा कर दिया। उसे लगा कि स्वागत के चक्कर में नाच-गाने का आनन्द किरकिरा हो जायेगा। गुरुजी समझ गये, वाह चेला! हमें देखकर मुँह घुमा रहा है? गुरुजी नाराज होकर अन्तर्ध्यान हो गये। अब इन्द्र ने चारों तरफ बहुत ढूँढा, पर गुरुजी का कोई पता नहीं? देवराज इन्द्र ब्रह्माजी के पास आकर बोले, पितामह! हमारे गुरुजी नाराज होकर चले गये। अब हम क्या करें? ब्रह्माजी ने कहा, एक काम करो। जबतक गुरुजी प्रसन्न न हो जायें, तबतक विश्वरूप से मार्गदर्शन प्राप्त करो। सारे देवता विश्वरूप के पास आये और प्रार्थना की। विश्वरूप ने पहले तो मना किया, अरे भाई! पुरोहित कर्म करने से ब्रह्मतेज क्षीण होता है।

हम लोगों का तो एकमात्र धन है **'शिलोञ्छवृत्ति - अकिञ्चिनानां हि धनं शिलोञ्छनम्'** अर्थात् खेतों से जब पकी हुई फसल काट ली जाये, तो जो दो-चार दाने पड़े रहते हैं उन्हें बीनकर ले आना, उसे कहते हैं शिला। और जहाँ अनाज का व्यापार चलता हो, व्यापार जब सम्पन्न हो जाये, शाम को दुकानें बंद हो जायें; तो व्यापार से गिरे हुए इधर उधर बिखरे हुए जो दो-चार दाने पड़े हों उन्हें उठा लिया जावे तो उसे कहते हैं ओञ्छ। तो खेतों से शिला बीन लाना और दुकानों से बिखरे हुए अनाज के दानों को बीन लाना और उसी के द्वारा उदर भरकर अपना जीवनयापन करना; ये सबसे सर्वोत्तम पावन-पवित्र वृत्ति मानी जाती है। जो वीतराग महापुरुष होते हैं, वह इसी से ही अपनी जीविका चलाते हैं। अरे! जीवन निर्वाह के लिये भी तो कुछ चाहिये? और इतने में जीवन निर्वाह हो जाता है, तो ये विशुद्ध वृत्ति मानी जाती है। विश्वरूप बोले, हमें कुछ कामनायें हैं नहीं, इसलिये हम पौरोहित्यकर्म ही नहीं करेंगे। देवताओं ने जब ज्यादा ही अनुनय-विनय की; तो फिर स्वीकार करना पड़ा। विश्वरूप पुरोहित बने और इन्द्र को सर्वप्रथम नारायणकवच का उपदेश दिया। ये नारायणकवच का बड़ा महत्व है। जो भी द्विजातीय इस नारायणकवच का नित्य पाठ करे, उसके ऊपर कोई भी विघ्न-बाधा, किसी भी प्रकार का तन्त्र-मन्त्र का प्रयोग कामयाब नहीं होता। कोई उसका अहित नहीं कर सकता।

एक बार कौशिक नाम के मुनि इस नारायणकवच का नित्य पाठ किया करते थे। जब उनका शरीर छूट गया, तो चित्ररथ गन्धर्व उधर से अपने विमान पर बैठकर जा रहा था कि अचानक उस स्थान पर उसका विमान टपककर नीचे गिर गया। उसने बालखिल्य ऋषियों से पूछा, महाराज! मेरा विमान तो बिल्कुल ठीक है, तो गिर कैसे पड़ा? बालखिल्य ऋषियों ने कहा, इस महात्मा के नारायणकवच का पाठ करने से हड्डियों में चुम्बकीय शक्ति आ गई है। इसलिये जबतक इस महात्मा की अस्थियों को जल में प्रवाहित नहीं करोगे, तबतक तुम्हारा विमान उड़ने वाला नहीं है। चित्ररथ आश्चर्यचकित रह गया कि मरने के बाद महात्मा की हड्डियाँ ही नीचे टपका लेती हैं?

बालखिल्यवचनादस्थीन्यादाय विस्मितः

अब विश्वरूप ने देवताओं की शक्ति बढ़ाने के लिये बड़ा भारी यज्ञ करवाया। परन्तु जोर-जोर से नाम तो देवताओं का लेकर आहुति देते हैं और धीरे-से दैत्यों के नाम की भी आहुति डालते हैं, क्योंकि दैत्य इनके मामाजी लगते हैं। इन्द्र को क्रोध आ गया कि गुरुजी गड़बड़ कर रहे हैं। विश्वरूप के तीन सिर थे, तो इन्द्र ने तलवार उठाई और गुरुजी के तीनों सिर काट दिये। अब इन्द्र को तो ब्रह्महत्या लग गई। तब इन्द्र ने उस ब्रह्महत्या को चार भागों में बाँट दिया। पहला भाग पृथ्वी को दिया, जो ऊसर भूमि के रूप में है। दूसरा भाग जल को दिया, जो झाग के रूप में है। तीसरा भाग वृक्षों को दिया, जो गोंद के रूप में है। चौथा भाग स्त्रियों को दिया, जो रज के रूप में है। चार लोगों में ब्रह्महत्या बाँटकर इन्द्र तो बच गये, परन्तु त्वष्टा को क्रोध आ गया कि मेरे पुत्र विश्वरूप को पहले तो गुरु बना लिया और बाद में अपना कार्यसिद्ध करके उसकी हत्या कर दी। इन्द्र को छोड़ूँगा नहीं,

इन्द्रशत्रो विवर्धस्व मा चिरं जहि विद्विषम्

इन्द्र को मारने की भावना से बड़ा भारी यज्ञ किया गया। परन्तु यज्ञ में थोड़ी-सी मन्त्र त्रुटि हो गई, जिसके फलस्वरूप उस यज्ञकुण्ड से वृत्रासुर नामक एक बड़ा भारी असुर पैदा हो गया। त्वष्टा से इन्द्रवध का आदेश पाकर वृत्रासुर चल पड़ा। वृत्रासुर का भीमकाय शरीर देखकर सारे देवता घबड़ा गये। भागते-भागते भगवान् की शरण में पहुँचे तो प्रभु ने कहा, भाई! एक ही उपाय है। दधीचि मुनि की हड्डियों से वज्र का निर्माण होवे, तो उस वज्र से ये असुर मरेगा। तब तो सारे देवता महर्षि दधीचि की शरण में आ गये। दधीचि मुनि ने देखा तो पूछ लिया, अरे भाई देवताओं! कैसे आना हुआ? सभी देवता हाथ जोड़कर बोले, महाराज! आप-जैसे संतों का तो जीवन ही परमार्थ के लिये होता है। हम आपसे आपकी हड्डियाँ माँगते हैं, हमें अपनी अस्थियाँ दान करो।

दधीचि मुनि पहले तो खूब हंसे और फिर बोले, अरे देवताओ! तुमने माँगते समय कुछ भी विचार नहीं किया? तुम क्या माँग रहे हो, अरे! सबसे अधिक प्रेम तो अपने शरीर से ही होता है, कितना देवदुर्लभ है ये शरीर? और तुमने ऐसे ही माँग लिया, जैसे कोई साधारण-सी बात हो। देवताओं ने कहा, महाराज! हमें भगवान् विष्णु ने भेजा था। दधीचि मुनि बोले, तो साक्षात् विष्णु ही आकर माँगते? देवता बोले, भगवन्! यदि माँगने वाला देने वाले की पीड़ा पर ध्यान देता, तो फिर माँगने की हिम्मत ही नहीं पड़ेगी। पर देने वाला भी माँगने वाले की परिस्थिति पर विचार करे, तो वह मना भी नहीं करेगा।

दधीचि मुनि प्रसन्न हो गये, अरे देवताओ! मैं तो थोड़ा तुमसे परमार्थ का उपदेश सुनना चाहता था, इसलिये मैंने मना किया था। मैं अच्छी तरह से जानता हूँ कि ये अनित्य शरीर है। शरीर तो छोड़ना ही पड़ता है क्योंकि ये मरणधर्मा है। मेरा शरीर तुम्हारे काम आवे, उससे समाज का देश का हित होवे; इससे बढ़िया और क्या बात होगी? इतना कहकर महात्मा ध्यानमग्न बैठ गये। उनके शरीर में खाद्य-पदार्थ लगा दिया गया। गायों ने चाटते-चाटते हड्डियों के अतिरिक्त सब कुछ चाट लिया। तब विश्वकर्मा ने उन हड्डियों से बड़े सुन्दर वज्र का निर्माण किया और वह वज्र लेकर जैसे-ही वृत्रासुर से युद्ध करने इन्द्र सामने आये, तो वृत्रासुर को उस वज्र में साक्षात् भगवान् हरि का दर्शन होने लगा। इन्द्र को वज्र हाथ में लिये देखकर वृत्रासुर बोला, आज मेरा बड़ा सौभाग्य है, जो कम-से-कम तू मेरे सामने आकर टिका तो सही? तू तो भाग ही रहा था।

दिष्टया भवान् मे समवस्थितो रिपुर्यो ब्रह्महा गुरुहा भ्रातृहा च

तू ब्रह्महत्यारा है, गुरुहत्यारा है, मेरे भाई का हत्यारा है। आज तुझे मारकर मैं सबकी तरफ से दण्ड दूँगा। पर

वज्र की ओर देखा, तो अचानक वृत्रासुर की भावना वदल गई। वज्र में बिहारीजी नजर आने लगे। प्रत्यक्ष हरि का दर्शन करके चार श्लोकों में वृत्रासुर ने बड़ी भावपूर्ण स्तुति की। और इन चार श्लोकों में धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष चारों पुरुषार्थ माँगे। और वैष्णवों का धर्म भी तो यही है क्या?

अहं हरे तव पादैकमूलदासानुदासो भवितास्मि भूयः ।
मनः स्मरेतासुपतेर्गुणांस्ते गृणीत वाक् कर्म करोतु कायः ॥ (भा. 6/11/24)

वृत्रासुर बोला, हे प्रभो! मैं आपका दास भले ही न बन सकूँ, इतनी पात्रता मुझमें नहीं है। पर जिन महापुरुषों को आपके चरण ही एकमात्र मूलाधार बन गये, आपके चरणों के अलावा जिनकी कोई गति और रति नहीं ऐसे उन संतों का दास बनकर रहूँ। अपना दास न बनाइये, पर अपना दासानुदास तो बना लीजिये। आप बिजली का तार पकड़ लीजिये तो भयंकर करंट लगेगा। और जिसे वह भयंकर करंट लगा हो, उसका कोई पैर पकड़ ले या उसे कोई छू ले, तो उसे पकड़ने वाले को और भी जबरदस्त करंट लगता है। उसी प्रकार परमात्मा तो हमें दिख नहीं रहे हैं, परमात्मा तक पहुँचने की हमारी गति भी नहीं। तो जो परमात्मा को पकड़े बैठे हैं, उन संतों को पकड़ लो तुम्हें भी उनकी कृपा प्राप्त होगी।

इसीलिये वृत्रासुर कहता है, महाराज! मुझे तो दासानुदास बना लो। हे प्राणनाथ! मेरी तो एक ही प्रार्थना है कि मेरा मन सदा आपका स्मरण करे, मेरी ये वाणी सदा आपकी महिमामण्डित गुणगणों का गायन करती रहे; और इस शरीर से सदा आपकी सेवा का कर्म करता रहूँ। वैष्णवों का चारों पुरुषार्थों में से एक यही परमधर्म है। अब अर्थ-अर्थ कौन-सा चाहिये?

न नाकपृष्ठं न च पारमेष्ठ्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम् ।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा समञ्जस त्वा विरहय्य काङ्क्षे ॥ (भा.मा 6/11/25)

वृत्रासुर ने कहा, हे निखिल सौभाग्यनिधे प्रभो! मुझे न स्वर्ग चाहिये, न मोक्ष चाहिये, न सार्वभौम पदवी चाहिये, न योगसिद्धि चाहिये। **शंका** - जब स्वर्ग, मोक्ष, सार्वभौमपद, योगसिद्धि, आदि कुछ नहीं चाहिए, तो फिर क्या चाहिये? **समाधान** - वृत्रासुर ने कहा, हे प्रभो! आपका विरह चाहिये, आपका स्मरण चाहिये, आपकी स्मृतियों के खजाने में ही मैं मस्त रहना चाहता हूँ सदा आपको याद करता रहूँ। और वैष्णवों का धन तो एक ही है - भगवान् की स्मृति।

विपद्विस्मरणं विष्णोः संपन्नारायणस्मृतिः

भगवान् की स्मृति ही वैष्णवों की परम सम्पत्ति है। वृत्रासुर स्तुति करते हुए बोला, हे प्रभो! आपको मैं ऐसे याद करूँ, जैसे -

अजातपक्षा इव मातरं खगाः स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः ।
प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम् ॥ (भा. 6/11/26)

वृत्रासुर यहाँ तीन दृष्टान्त देते हुए भगवान् हरि की स्तुति करने लगा। कितने सुन्दर-सुन्दर सम्बोधन कर रहा है - हे अरविन्दाक्ष! हे कमलनयन प्रभो! जैसे पक्षी का नन्हा-सा बच्चा, जिसके अभी पंख निकले ही नहीं और वह घोंसले में बैठा-बैठा जैसे उल्लू-बिल्ली, आदि के भय से अपनी माँ को याद करता रहता है। चिड़िया उड़ जाये तो बच्चा अपने को असुरक्षित अनुभव करता है। और जहाँ माँ के आने की आहट सुनता है, तो माँ के आगमन पर बड़ी जोर से चिल्लाने लगता है। तो जैसे वह निरंतर अपनी माँ का चिन्तन करता है, ऐसे ही मैं आपका चिन्तन करूँ!

ये स्वार्थ का चिन्तन है। डर लग रहा है, इसलिये माँ को याद कर रहा है? आगे श्रीवृत्रासुर स्तुति में दूसरा दृष्टान्त देते हैं, यथा - '**स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः**' जब वन में घास चरने के लिये गयी गौ माता का जैसे घर में नन्हा-सा बछड़ा स्मरण करता रहता है। जो माँ के दूध पर ही निर्भर है, अभी बाहर की वस्तुओं को नहीं खाता वह क्षुधातुर नन्हा-सा बछड़ा भूख में विकल जहाँ सूर्यास्त होते देखता है कि माँ के आगमन का समय हो गया। ये जानकर रंभाने लगता है, माँ से मिलने के लिये रस्सी तोड़ने की चेष्टा करता हैय छटपटाने लगता है। हे प्रभो! ऐसे ही आपसे मिलने को मैं छटपटाऊँ!

अब यहाँ पर भी स्वार्थ है। यहाँ भूख का भजन हो रहा है। गौमाता आकर जब चकाचक दूध पिला देती है, फिर बछड़े में वह तड़प नहीं रह जाती? वृत्रासुर आगे तीसरा दृष्टान्त देते हुए कहते हैं, यथा - '**प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा**' जैसे परदेश गये हुये प्रियतम का उसकी प्रिया घर में बैठी-बैठी प्रतिपल स्मरण करती है, ध्यान करती है हे प्रभो! मैं उस प्रकार आपका भजन करूँ।

एक कन्या का विवाह हुआ। वह बिल्कुल भी पढ़ी लिखी नहीं थी। कुछ ही दिनों में उसकी अत्यन्त प्रीति अपने पति से हो गई। पर जब कुछ दिनों के बाद पति परदेश जाने लगे, तो बेचारी रोने लगी घबड़ाने लगी। पतिदेव ने कहा, देवी! चिन्ता न करो। मैं मात्र दस दिन के लिये ही तो जा रहा हूँ, फिर लौट आऊँगा। तो देवी बोली, महाराज! ये दस दिन कितने होते हैं? वह बिल्कुल भी पढ़ी लिखी नहीं थी, तो पतिदेव को लगा कि अब इसे कैसे समझाऊँ? तो उसने दीवार पर दस रेखाएँ खींच दीं और समझाने लगा, देखो देवि! सबेरे उठते ही एक रेखा मिटा दिया करो और जिस दिन ये सारी रेखाएँ मिट जायेंगी, उसी दिन मैं आ जाऊँगा। उस भोली भाली को ये बात समझ में आ गई। अब बेचारी जागते ही सबसे पहले दौड़कर वह रेखा मिटाती है और प्रसन्न हो जाती कि इतनी रेखाएँ कम हो गई, आज ये रेखा कम हो गई, बस अब दो रेखा और बची हैं ... तो ज्यों-ज्यों रेखाएँ कम होती जाती हैं, त्यों-त्यों उसकी मिलने की उमंग बढ़ती जाती है। और जब एक रेखा बची, तब तो उसका धैर्य ही खोने लगा। और जिस दिन उसने अन्तिम रेखा को मिटाया, उस दिन तो उसका एक-एक पल काटना मुश्किल हो गया। जहाँ आहट होती है कि दरवाजे की ओर भागती है। तो जैसे प्रिया की अपने प्रियतम से मिलने की विकलता प्रतिपल बढ़ती जाती है, (वृत्रासुर कहते हैं, हे प्रभो!) ऐसे ही प्रतिक्षण मैं आपसे मिलने के लिये लालायित रहूँ। ऐसे ही आपसे मिलने आपको देखने की उत्कण्ठा मेरे मन में जगे। वैष्णवों की भी यही कामनायें और इच्छाएँ तो होती हैं। अब अन्तिम पुरुषार्थ मोक्ष विषयक चर्चा वृत्रासुर स्तुति करते हुए करने लगे। वृत्रासुर कहता है, मेरा जन्म-मरण छूट जाये, ऐसा मोक्ष मुझे नहीं चाहिये। मैं तो कहता हूँ कि कर्मानुसार चाहे जितने मेरे जन्म होंय चाहे जितनी बार मरूँ, उसकी चिन्ता मुझे नहीं है; लेकिन -

ममोत्तमश्लोकजनेषु सख्यं संसारचक्रे भ्रमतः स्वकर्मभिः ।
त्वन्मायया ऽऽत्मात्मजदारगेहेष्वासक्तचित्तस्य न नाथ भूयात् ॥ (भा. 6/11/27)

वृत्रासुर स्तुति करते हुए बोले, जन्म-मरण चाहे जितने भी हों, पर हर जन्म में आपके रसिक भक्तों का (जिनकी आपके चरणों में अत्यन्त रति-प्रीति है) हर जन्म में संग मिलता रहे; उन्हीं का सान्निध्य मिलता रहे और आपकी माया में मोहित चित्त वाले संसारियों का संग कभी न मिले - बस यही मेरी मुक्ति है। वृत्रासुर ने जब इस प्रकार बड़ा भावपूर्ण स्तवन किया, तो इन्द्र तो सुनकर गद्गद् हो गये -

अहो दानव सिद्धोऽसि यस्य ते मतिरीदृशी

इन्द्र बोले, हे दानवराज! तुम तो सचमुच धन्य हो, जो रणभूमि में भी तुम्हारे ऐसे पावन विचार बने हुए हैं? और अचानक वृत्रासुर का आसुरी भाव जाग्रत हो गया। तुरन्त वृत्रासुर इन्द्र से बोले, इन्द्र सावधान! मेरे प्रहार को स्वीकार करो। इन्द्र को सावधान करके एक मुक्का घुमाकर इन्द्र के वाहन ऐरावत हाथी के माथे पर मार दिया। हाथी मूर्छित होकर गिर पड़ा, इन्द्र के हाथ का वज्र छूट गया। अब गिरा हुआ वज्र उठाने में इन्द्र को शर्म आने लगी, तो वृत्रासुर खड़े होकर कहता है, अरे इन्द्र! चुपचाप वज्र उठा लो; क्योंकि इसके बिना मैं मरने वाला नहीं हूँ। ऐसी धर्मनिष्ठा देखकर इन्द्र तो बड़े लज्जित हुये और अंत में वज्र उठा ही लिया।

हाथी पर हाथ फेरकर स्वस्थ किया और इन्द्र पुनः युद्ध करने के लिये सावधान हो गये। दुबारा प्रहार करने के लिये वृत्रासुर बढ़ा, तो इन्द्र ने तुरन्त अपने वज्र से वृत्रासुर का हाथ काट लिया। दूसरी भुजा से मुष्टिका प्रहार करने लगा, तो दूसरी भुजा को भी काट दिया। अब तो दोनों हाथों से रहित बड़ा विकराल लगने लगा। अबकी बार वृत्रासुर मुँह फाड़कर पूरे वेग से दौड़ा और जबतक इन्द्र कुछ कर पाते, तबतक इन्द्र को ही मुँह में रखकर निगल गया। देवताओं में हाहाकार मच गया, अरे! ये तो इन्द्र को ही निगल गया? पर इन्द्र के हाथ में चूंकि वज्र था और इन्द्र के पास नारायणकवच का बल था, इसलिये इन्द्र मरे नहीं और पेट में बैठ-बैठे वज्र से उसका पेट फाड़ने लगे। वृत्रासुर का पेट फाड़ते-फाड़ते एक साल बाद इन्द्र वृत्रासुर का पेट फाड़कर बाहर निकल पाये, तब वृत्रासुर का अन्त हुआ।

परीक्षित ने पूछा, भगवन! आखिर वृत्रासुर में ये जो भगवद्भक्ति का संस्कार था, भगवान् की स्तुति उसने रणभूमि में की; ये संस्कार इसमें कहाँ से आ गया? शुकदेवजी कहते हैं, सुनो राजन्! ये वृत्रासुर पूर्वजन्म का चित्रकेतु नाम का राजा था। इसकी लाखों रानियाँ थीं, पर सन्तान एक भी नहीं थी। अङ्गिरा मुनि ने अपने आशीर्वाद स्वरूप कृपामय फल दिया और वह फल बड़ी रानी को खिला दिया, जिससे एक बेटा हो गया। अन्य रानियों को सौतिया-डाह हो गया कि बड़ी रानी को बेटा हो गया, तो महाराज अब हमारी तरफ दृष्टि ही नहीं डालते? उन सबने मिलकर दासी के माध्यम से उस पुत्र को विषपान करा दिया। बालक सोया और सोता ही रह गया। रानी को पता चला तो चीत्कार करके रोने लगी, राजा भी छाती पीट-पीटकर रोने लगे।

उसी क्षण देवर्षि नारद अङ्गिरा मुनि के साथ प्रकट हो गये। अङ्गिरा मुनि ने कहा, राजन्! तुम क्यों रोते हो? मैंने पहले संकेत दिया था कि तुम्हारे भाग्य में पुत्र सुख नहीं है, पर तुम नहीं माने? तो अब रोना पड़ रहा है। राजा ने कहा, मैं कुछ नहीं सुनने वाला हूँ। प्रभो! आप मुझे बेटा दो। मेरा बेटा स्वस्थ्य कर दो, नहीं तो मैं भी मर जाऊँगा। देवर्षि नारदजी बोले, अङ्गिराजी! तुम पीछे हटो, हम इन्हें समझाते हैं। नारदजी ने राजा से पूछा, बोलो राजन्! तुम्हें क्या चाहिये? राजा बोले, हमें तो बेटा चाहिये। नारदजी बोले, तो ये रोना-धोना बंद करो, हम अभी तुम्हारे बेटे को ठीक करते हैं। राजा तुरन्त आँसू पोंछकर बैठ गये और नारदजी ने मन्त्र पढ़कर तुरन्त उस मृतात्मा का आह्वान किया। नारदजी के बुलाते ही वह जीवात्मा प्रकट हो गया। देवर्षि नारद बोले,

जीवात्मन्पश्य भद्रं ते मातरं पितरं च ते

नारदजी ने कहा, अरे जीवात्मा! तेरा कल्याण हो। ये तेरे माता-पिता तेरे लिये कितने आँसू बहा रहे हैं? अब तुम इस कलेवर में प्रविष्ट होकर शेष आयु का भोग करो और माता-पिता को सुखी करो। 'बेटा-बेटा' कहकर माता-पिता उस पुत्र को छाती से लगाने के लिये दौड़ पड़े। उसी क्षण वह बालक बोल पड़ा,

कस्मिञ्जन्मन्यमी मह्यं पितरो मातरोऽभवन् ।
कर्मभिर्भ्राम्यमाणस्य देवतिर्यङ्नृयोनिषु ॥ (भा. 6/16/4)

जीवात्मा बोला, कृपा करके आप अपना परिचय तो दीजिये? चित्रकेतु बोला, बेटा! नहीं पहचाना? मैं तेरा

पिता हूँ। जीवात्मा बोला, किस जन्म के? मैं तो अपने कर्मानुसार कितने ही शरीर ग्रहण कर चुका हूँ? मुझे स्वयं गिनती नहीं मालूम। कूकर, सूकर, बिल्ली, चूहा, आदि भी बना; मानव भी बना; बड़े-बड़े देवलोकों में भी गया। तो नीचे से ऊपर तक मैंने लाखों शरीर धारण किये हैं। जब भी शरीर मिलता था, तब ही उस शरीर के कोई-न-कोई माँ-बाप भी मिलते थे। इसलिये आप कौन-से जन्म के माँ बाप हो?

नारदजी बोले, राजन्! जल्दी परिचय दो। राजा ने कहा, बस हो गया परिचय! हम रोते-रोते आँख फोड़ बैठे और ये देखो हमसे परिचय पूछ रहा है? हमें पहचानता तक नहीं? अब मैं समझ गया, ये सब नकली सम्बन्ध हैं। शरीर के साथ बनते हैं और शरीर के साथ छूट जाते हैं। अब तो मैं अपना शाश्वत सम्बन्ध प्राप्त करना चाहता हूँ, जो कभी हमसे अलग नहीं हो सकता। हे देवर्षि नारदजी! आप यह बताइयें कि वह नित्य सम्बन्धी कौन है? तब नारदजी ने उपदेश दिया और चित्रकेतु ने सङ्कर्षण भगवान् की उपासना करके अन्त में विद्याधर लोक को प्राप्त कर लिया।

अब चित्रकेतु विद्याधर बनकर विमान में बैठा विचरण करता हुआ एक बार कैलाश पर्वत पहुँच गया। वहाँ जाकर उसने देखा कि भगवान् शङ्कर माता भवानी को अपनी गोद में बैठाकर संतों को ब्रह्मज्ञान का उपदेश दे रहे हैं। चित्रकेतु चक्कर में पड़ गया। सबके बीच में आकर वह भगवान् भोलेनाथ को उल्टा-सीधा बोलने लगा, ये धर्माचार्य बने फिरते हैं, इन्हें शर्म भी नहीं आती; इन्हें पता ही नहीं कि समाज में ऐसा बैठा जाता है?

एष लोकगुरुः साक्षाद्धर्मं वक्ता शरीरिणाम् ।
आस्ते मुख्यः सभायां वै मिथुनीभूय भार्यया ॥ (भा. 6/17/6)

इस प्रकार चित्रकेतु अनर्गल प्रलाप करने लगा। भोलेनाथ तो हंसते रह गये, पर भवानी को बड़ा क्रोध आ गया, ऐ मूर्ख! तू यह शिष्टाचार हमें सिखाने कहाँ से आ गया? हमपर तूने पाप दृष्टि डाली है, इसलिये हे दुर्मति! जा तू पापमति असुर हो जा। तब चरणों में गिरकर भवानी को प्रणाम किया, **'प्रतिगृह्णामि ते शापम्'** हे माते! आपका शाप मुझे स्वीकार है। मैं इसलिये क्षमा नहीं माँग रहा कि आप मुझे शाप मुक्त कर दें, आपका शाप मुझे स्वीकार है। प्रार्थना इसलिये कर रहा हूँ कि आप जगन्माता हो, आपको मेरे व्यवहार से कष्ट हुआ; उसका मुझे बड़ा दुःख है। मुझे जो अनुचित लगा, वह मैंने कह दिया; पर मेरी वाणी से आपको कष्ट पहुँचा इसलिये क्षमा चाहता हूँ। पार्वतीजी चित्रकेतु के स्वभाव से प्रसन्न होकर बोलीं, भैया! मेरा शाप तो मिथ्या हो नहीं सकता। तू असुर जरूर बनेगा, पर असुरदेह में भी तेरी भगवद्भक्ति बनी रहेगी, यह मेरा आशीर्वाद है। शुकदेव भगवान् कहते हैं, परीक्षित! वही चित्रकेतु माता भवानी के शाप से वृत्रासुर बना। भगवद्भक्ति के संस्कार के कारण रणभूमि में भी इसने भगवान् की दिव्य स्तुति की और आज वज्र के द्वारा इसका उद्धार हो गया।

दिति के मरुद्गण नामक उनचास बेटे ऐसे भी हुये, जो असुरों के भ्राता होने पर भी देवताओं में गिने गये। यह वायु के ही विविध रुप हैं। पुंसवनव्रत के प्रभाव से दिति माँ के गर्भ में इनके उनचास टुकड़े होने पर भी यह बालक मरे नहीं और अन्त में देवताओं के बन्धु बनने के कारण इनकी गणना भी देवताओं में ही की गई। रामचरितमानस में भी इन्हीं उनचास मरुतदेवताओं का उल्लेख आता है -

हरि प्रेरित तेहि अवसर चले मरुत उनचास

यह वही मरुद्गण हैं, जो दिति पुत्र होकर भी देवताओं में गिने जाते हैं। पुंसवनव्रत की विधि षष्ठस्कन्ध के अन्तिम अध्याय में महामुनि शुकदेवजी ने महाराज परीक्षित को बड़े विस्तार से श्रवण कराई।

अथ श्रीमद्भागवतपुराणस्य

॥ सप्तमः स्कन्धः ॥

(ऊति)

प्रह्लाद चरित्र—अब महाराज परीक्षित ने महामुनि शुकदेवजी से एक बड़ा ही सुन्दर प्रश्न किया, गुरुदेव! एक ओर तो भगवान् को सब समदर्शी कहते हैं? और जब भगवान् की लीलायें हम सुनते हैं, तो भगवान् सरासर पक्षपात करते दिखते हैं? हमेशा प्रभु दैत्यों को ही मारते रहते हैं और देवताओं का खुलकर पक्ष लेते हैं। यदि भगवान् सरासर पक्षपाती हैं, तो समदर्शी क्यों कहे जाते हैं? और यदि सचमुच समदर्शी हैं, तो फिर पक्षपात क्यों करते हैं? दैत्यों को ही क्यों मारते हैं? शुकदेवजी प्रसन्न होकर बोले, बहुत बढ़िया प्रश्न कर रहे हो परीक्षित! अब ध्यान से सुनो। यही प्रश्न तुम्हारे दादा धर्मराज युधिष्ठिर ने भी देवर्षि नारद से किया था। जिस समय तुम्हारे दादा युधिष्ठिर राजसूययज्ञ कर रहे थे, तब प्रथम पूजन के अवसर पर भगवान् श्रीद्वारकाधीश का नाम सामने आया। जब पूजन प्रारम्भ होने लगा, तो शिशुपाल ने गालियों की बौछार प्रारम्भ कर दी। और एक-सौ-एक गाली पूर्ण होते ही भगवान् ने अपने सुदर्शन चक्र से उसका सिर काट दिया। सबकी आँखों के सामने शिशुपाल के शरीर का तेज भगवान् में विलीन हो गया, तो तुरन्त युधिष्ठिरजी महाराज ने नारदजी से पूछ लिया, महाराज! मरने के बाद जिसका तेज् श्रीमन्नारायण में समा जाये, वह तो कोई महान् कोटि का सिद्ध महापुरुष होता है। फिर इस दुष्ट शिशुपाल का तेज भगवान् में कैसे समा गया? यह तो भगवान् को सरेआम गालियाँ दे रहा था, फिर इसकी इतनी ऊँची गति कैसे हो गई? तब नारदजी ने कहा, धर्मराज युधिष्ठिर! ध्यान से सुनिये। भगवान् **की घोषणा है:**

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यऽहम्

जो भगवान् को जिस भावना से भजता है, भगवान् उसे उसी भाव से स्वीकार करते हैं। जो मित्र बनाते हैं, उनके लिये भगवान् मित्र बन जाते हैं। जो शत्रु बनाते हैं, उनके लिये भगवान् शत्रु बन जाते हैं। अब यह तो उपासनाओं का भेद है, भगवान् में भेद थोड़े-ही है। भगवान् ने तो छूट दे रखी है, जो चाहो सो बना लो; पर शर्त एक है कि मेरा चिन्तन करो। जो सतत मेरा चिन्तन करेगा, उसे मेरी प्राप्ति निश्चित होगी। चाहे वह वैर से करे, चाहे प्रेम से करे;

तस्मात् केनाप्युपायेन मनः कृष्णे निवेशयेत्

मित्र से ज्यादा चिन्तन शत्रु का होता है। मित्र की तो जब चर्चा करोगे तब याद आयेगी; और शत्रु को भुलाना भी चाहोगे, तब भी बार-बार याद आयेगा। इसलिये जहाँ भगवान् के भक्त माला लेकर भगवान् को याद करते हैं, वहाँ दुष्ट भी भगवान् को कम याद नहीं करते? वह भी दिन-रात भगवान् को याद करते हैं, भले ही वैर-भावना से ही सही। एक बार दुष्टों ने भगवान् से कहा, सरकार! हम न होते, तो आज आप भी न होते।

भगवान् बोले, क्या मतलब? दुष्टों ने कहा, महाराज! जब हम बहुत ज्यादा दुष्टता करते हैं, चारों तरफ खूब आतंक फैलाते हैं; तभी तो आपका अवतार होता है। रावण ने आतंक मचाया, तो श्रीराम को आना पड़ा? कंस ने आतंक मचाया, तो श्रीकृष्णकन्हैया को आना पड़ा? तो आपको हमारी ही वजह से आना पड़ता है। अतः आपके आने का फायदा भी हमें मिलना चाहिये। भगवान् ने पूछा, क्या फायदा चाहते हो? दुष्टलोग बोले, महाराज! हमारा भी उद्धार करो। भगवान् बोले, तुम हमारा भजन करो। दुष्टों ने कहा, भजन ही करने लग गये तो दुष्ट ही किस मतलब के रह गये? यह भजन-पूजन हमारे वश की बात नहीं है।

होहि भजनु नहिं तामस देहा

हम तामसी लोगों से भजन नहीं होगा। भगवान् ने कहा, तो तुम क्या कर सकते हो? दुष्ट बोले, महाराज! आपको गाली दे सकते हैं, आपसे झगड़ा कर सकते हैं। हम असुर अपनी प्रवृत्ति के अनुरूप आपसे सम्बन्ध जोड़ सकते हैं। आप चाहो कि माला लेकर भजन करें, तो यह हमारे वश की बात नहीं। भगवान् बोले, चलो! कोई बात नहीं। भजन नहीं कर सकते, तो वैर करो! कुछ तो नाता जोड़ो हमसे? और भगवान् ने वैर का सम्बन्ध स्वीकार करके असुरों को भी वही गति दी, जो अपने प्यारे भक्तों को प्रदान करते हैं। भगवान् का धाम कितनी साधना करके भक्तों को प्राप्त होता है। पर जो राक्षस लड़ने आते हैं, उन्हें भगवान् मारकर अपने धाम में भेज देते हैं।

एकहि बाण प्राण हर लीन्हा ।
दीन जान तेहि निज पद दीन्हा ॥ (मानस 1/209/3)

प्राण तो हर लिया और बाद में अपना परमपद प्रदान कर दिया। जो दिन रात गाली दे रहे थे, भगवान् को मारने-खाने के लिये दौड़ रहे थे; ऐसे दुष्टों को भी भगवान् ने एक बाण मारकर अपने घर भेज दिया। तो कल्याण तो उनका भी हुआ कि नहीं? इसलिये भगवान् कहते हैं कि कैसे भी मुझमें मन लगाओ, चाहे प्रेम से या वैर से।

भृंगीकीट न्याय से वैरियों का भी उद्धार हो जाता है। एक भृंगी होता है, जो किसी कीड़ों को पकड़कर मिट्टी में कैदकर देता है, और उस मिट्टी के ढेर के ऊपर गुनगुनाता रहता है। अब मिट्टी के भीतर कैद वह कीट निरन्तर भयाक्रांत हुआ, उस भृंगी का चिन्तन करते-करते एक दिन स्वयं भृंगी बनकर मिट्टी के बाहर निकल पड़ता है। तो वह साधारण-सा कीड़ा था, परन्तु भयाक्रांत होकर भृंगी का चिन्तन करते-करते स्वयं भृंगी बन गया। इसी प्रकार से भले ही कोई भय से भजन करे अथवा वैर से भजन करे, उसे प्राप्ति तो परमात्मा की ही होगी।

काम, क्रोध, भय, आदि यह अच्छी वृत्तियां नहीं है। परन्तु यह वृत्ति भी यदि परमात्मा से जुड़ जाये, तो कल्याण का साधन बन जाती है। इसलिये नारदजी ने कहा है,

तदर्पितताखिलाचारः सन् कामक्रोधाभिमानादिकं तस्मिन्नेव करणीयम्

काम, क्रोध, आदि वृत्तियों को मारना बड़ा कठिन है। मार नहीं सकते तो मोड़कर भगवान् से ही जोड़ दो; तो कल्याण हो जायेगा।क्या ऐसा करने से आज तक किसी का कल्याण हुआ है? यह सब नरक के पंथ शास्त्रों ने बतलाये हैं। रजोगुण तो इनका बाप है, इनसे जीव का कल्याण कैसे होगा? प्रमाण दीजिये!

गोप्यः कामाद्भयात्कंसो द्वेषाच्चैद्यादयो नृपाः ।
सम्बन्धाद् वृष्णयः स्नेहाद्यूयं भक्त्या वयं विभो ॥ (भा. 7/1/30)

अब देखिये - काम की वृत्ति को संसार से हटाकर गोपियों ने श्रीकृष्ण में जो लगाया, तो गोपियों का कल्याण हो गया। **'प्रेमैव गोपरामाणां कामैत्यगमत्प्रथाम्'** गोपियों के पावन प्रेम को ही यहाँ काम की संज्ञा मिली है, ये ध्यान रखिये। अपने पति को छोड़कर पर-पति से प्रीति सांसारिक दृष्टि से तो पतन का कारण है, पर गोपियों ने वह वृत्ति परमात्मा से जोड़ ली, तो उसी वृत्ति से गोपियों का कल्याण हो गया।

'भयात् कंसः' कंस ने भय के द्वारा भजन किया। नारदजी से पूछा, बाबा! यह बताओ मेरा काल कैसा होगा? नारदजी ने बता दिया, काला-काला, मुरली वाला, घुंघराले बाल वाला, पीताम्बरधारी होगा। और जब से नारदजी बताकर चले गये, तब से कंस का यह हाल हो गया कि उसे हर काली वस्तु से डर लगने लगा। भोजन में दाल में कहीं काला जीरा भी दिख जाये तो थाली फेंक देता है, आ गया कृष्ण! पानी पीते समय जल में काली छाया दिखे, तो बर्तन फेंक दे; सामने वाले से बात करते समय उसकी काली पुतली में काला कन्हैया नजर आता है। बताओ! ऐसे भजन कौन कर सकता है? भय की वृत्ति ही भगवान् से जुड़ी है। इसलिये उस भयाक्रांत कंस को भी भगवान् मिल गये।

'द्वेषाच्चैद्यादयो नृपाः' शिशुपाल का तो नियम था कि जबतक भगवान् को सौ गाली न सुना दे, तबतक उसका भोजन ही हजम नहीं होता। भगवान् को चुन-चुनकर गाली देता था। पर उसका द्वेष-सम्बन्ध परमात्मा से था, इसलिये उसका भी कल्याण हो गया।

कुछ लोग पैदल जा रहे थे और जंगल की झाड़ी में कुछ प्रकाश दिखाई पड़ा। एक ने समझा कि कोई दीपक जल रहा है। दूसरे ने समझा कि शायद आग लग रही है। तीसरे ने समझा कि शायद कोई मणि है। अब वस्तुतः वह थी तो मणि ही। पर यदि उस मणि के प्रकाश को कोई दीपक का प्रकाश समझकर उधर बढ़े तो क्या मणि की कीमत कम हो जायेगी? अथवा जो वस्तुतः उस मणि के स्वरूप को समझकर उसकी ओर बढ़ा, तो क्या उसके लिये मणि अधिक कीमती हो जायगी? अरे! मणि की कीमत तो जितनी है, उतनी ही रहेगी; चाहे कोई दीपक समझे, अथवा अंगारा समझे। उसी प्रकार भगवान् तो भगवान् ही हैं। चाहे भगवान् को कोई शत्रु समझकर दौड़े, चाहे मित्र समझकर, चाहे पुत्र समझकर ... जो भी समझना चाहे, समझ ले। पर भगवान् के निकट जो पहुँचेगा, उसे प्राप्ति तो भगवान् की ही होगी। भगवान् की प्राप्ति में कहीं कोई कमी नहीं आयेगी। इसलिये कैसे भी दौड़े, कैसा भी भगवान् से सम्बन्ध जोड़े; पर भगवान् से सम्बन्ध अवश्य होना चाहिये। राजा वेन की तरह नास्तिक मत बनो।

परीक्षित ने श्रीशुकदेवजी से प्रश्न किया, भगवन्! आपने कहा कि भगवान् समदर्शी हैं, सबको समानरूप से स्वीकार करते हैं। तो प्रायः दैत्यों को ही मारते हुए क्यों दिखाई पड़ते हैं, क्या दैत्य ही भगवान् के वैरी हैं? शुकदेवजी बोले, नहीं! द्वादश महाभागवतों में दो नाम तो दैत्यों के हैं - प्रह्लाद और महाराज बलि। यह दोनों ही तो दैत्यवंश के हैं? और भगवान् के परमभक्तों में गिने जाते हैं। तो ऐसा न समझो कि दैत्यजाति के ही भगवान् दुश्मन हैं। अब हिरण्यकशिपु तो भगवान् का कट्टर वैरी था और उसी का बेटा प्रह्लाद भगवान् के अनन्य उपासक था। तो भगवान् हिरण्यकशिपु का उदर विदीर्ण कर रहे हैं और प्रह्लाद को परमभागवत मानकर हृदय से लगा रहे हैं। तो दैत्यजाति से दुश्मनी कहाँ रही?

परीक्षित बोले, तो महाराज! प्रह्लाद पर कैसे अनुग्रह किया? जरा विस्तार से सुनाईये! तब शुकदेवजी महाराज ने सुनाया, परीक्षित! जिस समय भगवान् ने वाराहरूप धारण करके जब हिरण्याक्ष का उद्धार किया,

तब से उसका भाई हिरण्यकशिपु भगवान् का कट्टर वैरी बन गया और इसने मंदराचल पर्वत पर जाकर घोर तपस्या की। इतनी तपस्या की कि पूरे शरीर में दीमक लग गई। ब्रह्माजी प्रकट होकर बोले, बेटा! **'वरं ब्रूयात्'**। तो हाथ जोड़कर वरदान माँगता है, मुझे अमर बना दो महाराज! ब्रह्माजी बोले, अमर तो हम भी नहीं हैं, तुम्हें कहाँ से बना दें? अरे! इसके अतिरिक्त कुछ और माँगो। तब तो इसने वरदानों की झड़ी लगा दी, न भीतर मरूँ, न बाहर मरूँ, न ऊपर मरूँ, न नीचे मरूँ, न दिन में मरूँ, न रात में मरूँ, न अस्त्र से मरूँ, न शस्त्र से मरूँ, न मनुष्य से मरूँ, न जानवर से मरूँ, आपकी बनाई हुई सृष्टि में किसी प्राणी से न मरूँ, बारह महीने के किसी महीने में न मरूँ। ब्रह्माजी बोले, बस कर वत्स! तू कितना माँगेगा? बड़े-बड़े वरदान माँगने वाले देखे, पर तेरे-जैसा माँगने वाला पहली बार मिला है।

तातेमे दुर्लभाः पुंसां यान् वृणीषे वरान् मम ।
तथापि वितराम्यंग वरान् यदपि दुर्लभान् ॥ (भा. 7/4/2)

ब्रह्माजी बोले, अरे हिरण्यकश्यपु! यद्यपि तेरे द्वारा माँगे वरदान यह बड़े दुर्लभ हैं, आज तक हमने किसी को नहीं दिये पर तेरे-जैसी तपस्या भी बड़ी दुर्लभ है। अतः मैं तुझे यह समस्त वरदान प्रदान करता हूँ। अब हिरण्यकशिपु प्रसन्न हो गया कि अब तो मैं अमर हो ही गया। अब मुझे भला कौन मारेगा? और अपने को अमर मानकर चल पड़ा। दिग्विजय करते हुए सब देवी-देवताओं को बंदी बनाकर घर ले आया। इन्द्र से झाड़ू लगवाये, वरुण से पानी भरवाये, सब देवता इसकी दासता करने लगे। भगवान् से रोते हुए प्रार्थना करने लगे, प्रभु! कब इस दुष्ट से पिण्ड छूटेगा? भगवान् बोले,

मा भैष्ट विबुधश्रेष्ठाः सर्वेषां भद्रमस्तु वः

देवताओं! आपलोग घबड़ाओ नहीं। हम आपका कल्याण करेंगे, समय की प्रतीक्षा करो। हिरण्यकशिपु के चार बेटा हुए - आह्लाद, अनुह्लाद, संह्लाद और प्रह्लाद। प्रह्लादजी बचपन से ही अद्भुत प्रतिभा सम्पन्न थे।

ब्रह्मण्यः शीलसम्पन्नः सत्यसन्धो जितेन्द्रियः

प्रह्लादजी बचपन से ही ब्राह्मणों के अनन्य भक्त, परम सुशील स्वभाव, सत्यप्रतिज्ञ और परम जितेन्द्रिय थे। **'नोद्विग्नचित्तो व्यसनेषु निःस्पृहः'** इनका चित्त कभी भी उद्विग्न नहीं होता है। संसार के व्यसनों में तनिक भी इनकी अभिरुचि नहीं है। एक सम्राट के पुत्र होकर भी परम जितेन्द्रिय हैं। प्रह्लाद को बचपन से ही कृष्ण नामक एक ग्रह लग गया था,

कृष्णग्रहगृहीतात्मा न वेद जगदीदृशम्

प्रह्लादजी को बचपन से ही टेढ़ी-टांग वाले कृष्णरूपी ग्रह ने ग्रस लिया था और यह ग्रह बहुत खतरनाक है। दूसरे ग्रह चाहे जितना अपना प्रभाव दिखावें, पर विद्वानों से बैठाकर जप अनुष्ठान करवाकर ग्रहशान्ति करा दो; तो ग्रह शान्त हो जाता है। पर यह ग्रह इतना खतरनाक है कि जल्दी से तो यह लगता नहीं और जिसे लग जाये? तो चाहे जितनी कोई ग्रहशान्ति करवा ले, इसके उतारने का कोई उपाय नहीं। बड़ा जबरदस्त ग्रह है। **शंका** - इस कृष्णरूपी ग्रह के लक्षण क्या हैं? कैसे पता चले कि हमें कृष्ण ग्रह लग गया? **समाधान** - इसके प्रभाव का लक्षण बताते हैं, यथा -

क्वचिद्रुदति वैकुण्ठचिन्ताशबलचेतनः ।
क्वचिद्धसति तच्चिन्ताह्लाद उद्गायति क्वचित् ॥ (भा. 7/4/39)

कृष्णग्रह गृहीतात्मा के लक्षण हैं कि प्रायः वह रोता बहुत है। जब भी बैठेगा आँखों से आँसू बहाता रहेगा, कभी-कभी उच्च स्वर से हंसने लगता है, तो कभी मुक्त कण्ठ गाने लगता है, तो कभी खड़े होकर नाचने लगता है। जगत् से अलग ही निराला होता है। दुनिया की दृष्टि में वह पागल ही होता है। प्रह्लादजी की भी बचपन से यही स्थिति थी। जब थोड़े बड़े हुए तो राजकुमार प्रह्लाद को पढ़ने के लिये, श्रीषण्ड-अमर्कजी महाराज जहाँ के प्राचार्य हैं, ऐसे 'हिरण्यकश्यपु दानव विश्वविद्यालय' में, जहाँ दैत्यपुत्रों को ही छल कपट की विद्यायें सिखाई जाती हैं; वहाँ भेजा गया। प्रह्लादजी भी भर्ती हो गये, पर इनपर तो कुछ दूसरा ही रंग चढ़ा हुआ है। गुरुजी पढ़ाते कुछ हैं, तो यह पढ़ भी लेते हैं और उसे गुरुजी को सुना भी देते हैं; पर हृदयंगम नहीं करते। यह छल-कपट की नीतियां उन्हें सुहाती नहीं हैं। गुरुकुल में रहे, पर एक दिन हिरण्यकशिपु आ ही गया।

एकदासुरराट् पुत्रमङ्कमारोप्य पाण्डव ।
पप्रच्छ कथ्यतां वत्स मन्यते साधु यद्भवान् ॥ (भा. 7/5/4)

बड़े प्यार से अपने पुत्र को हृदय से लगाकर प्रीतिपूर्वक हिरण्यकश्यपु ने प्रश्न किया, बेटा! तुमने अब तक के स्वाध्यायकाल में उत्तम बात क्या जानी है? सबसे बढ़िया पाठ कौन-सा सीखा है? वह जरा हमें भी बताओ। प्रह्लादजी तुरन्त बोले, पिताजी! बढ़िया पाठ तो जीवन में एक ही सीखा है।

तत्साधु मन्येऽसुरवर्य देहिनां सदा समुद्विग्नधियामसद्ग्रहात् ।
हित्वाऽऽत्मपातं गृहमन्धकूपं वनं गतो यद्धरिमाश्रयेत ॥ (भा. 7/5/5)

पिताजी! गृहस्थ जीवन एक अन्धकूप के समान है। कुआँ में कोई गिर जाये तो बच भी जायेगा। क्योंकि कुएँ में यदि पानी हो, तो पनघट पर कोई भी पनिहारी पानी लेने के लिये आवे तो वह देखेगी तो चिल्लायेगी। कैसे-न-कैसे लोग मिलकर रस्सी के सहारे निकाल लेंगे। पर अन्धकूप में कोई गिर जाये, तो उसके बचने का कोई उपाय नहीं। अन्धकूप किसे कहते हैं? जो जंगलों में कुएँ हैं, जहाँ पर कोई आता-जाता नहीं। जहाँ पर जंगल की झाडियों की जड़ें नीचे लटकी पड़ी हैं। उधर को कोई रुख नहीं करता, उधर से कोई निकलता तक नहीं उसे अन्धकुआ कहते हैं। ऐसे अन्धकूप में कोई गिर जाये, तो जब कोई वहाँ आने-जाने वाला नहीं है, तो निकालेगा कौन? तो गृहस्थ जीवन को केवल कुआँ नहीं कहा बल्कि बताया कि यह तो अन्धकुआँ है। कोई निकलने की चेष्टा भी करे, तो अन्य जीव उसका पैर पकड़कर गिरा लेते हैं।

अरे! घर में पहले तो वैराग्य होता नहीं और कदाचित किसी को वैराग्य चढ़ भी जाए, तो घर-गृहस्थी वाले ही उसे घेर लेते हैं। इसलिये इस अन्धकूयें से जितना हो सके, अपने को बचा ले - यही बुद्धिमान है। **शंका** - बचने के बाद कहाँ जाये? **समाधान - 'वनं गतो यद्धरिमाश्रयेत - वनं वृन्दावनं गतः यतः श्रीहरिं श्रीकृष्णं आश्रयेत'** वृन्दावन में जाकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के पादपद्मों का आश्रय ग्रहण कर ले, बस यही जीवन का सार है। जो यह शब्द सुना कि हिरण्यकशिपु की आँखें लाल हो गई। मेरा यह नन्हा-सा बच्चा मुझे ही प्रवचन सुना रहा है? फिर मन में सोचा बच्चों की तो भोली-भाली बुद्धि होती है। उन्हें तो जो सिखा दो, वह ही बोलने लगते हैं। उन्हें कोई ज्ञान तो होता नहीं? तो मेरा बच्चा तो अभी नन्हा-सा है, ये तो वही सीख रहा होगा; जो इसको बताया गया होगा। सो बच्चे को गोद से उतारकर कहा, बेटा जाओ! जरा अपने गुरुजी को हमारे पास भेजो। प्रह्लादजी गये, गुरुजी! आपको पिताजी याद कर रहे हैं। षण्ड-अमर्कजी आये, कहो सरकार! अचानक कैसे आना हुआ? हिरण्यकश्यपु बोले, वह तो मैं बाद में बताऊँगा, पहले यह बताओ कि मेरे

बेटे को आजकल तुम पढ़ाते क्या हो? पुरोहित बोले, सरकार! आपने जो शिक्षानीति निर्धारित की है, हमारे यहाँ वही सब पढ़ाई होती है।

हिरण्यकश्यपु लाल-पीला होकर बोला, मूर्खो! मेरा बच्चा मेरी गोद में मुझे समझा रहा था कि वन में जाओ और हरि भजन करो। यही सब सिखाने के लिये तुम्हारे यहाँ भेजा है क्या? षण्ड-आमर्कजी थर-थर काँप गये, महाराज! आपकी सौगंध खाते हैं। ऐसा हमारे विद्यालय में एक भी कोर्स नहीं है। ऐसी कोई पुस्तक नहीं पढ़ाई जाती। अब भगवान् जाने आपके बेटे ने किससे सुन लिया? किसने इसको सिखा दिया? हिरण्यकश्यपु ने कहा, यदि तुमने नहीं सिखाया तो इसका मतलब यह हुआ कि कोई विष्णु का गुप्तचर तुम्हारे यहाँ घुसा बैठा है, तुमको कुछ नहीं मालूम? और वह मेरे बेटे को ऊटपटाँग भड़का रहा है? उल्टी-सीधी बातें सिखा रहा है? और मैं तुम्हारे भरोसे पर अपने बच्चे को तुम्हारे विद्यालय में छोड़े बैठा हूँ? खबरदार! आज के बाद मेरे बेटे ने दुबारा कोई ऊटपटाँग बात की, तो दण्ड तुम्हें मिलेगा; इतना याद रखना। यों डाँट-फटकारकर हिरण्यकश्यपु तो चला गया पर गुरुजी की धड़कन तेज हो गई, चलो! पता लगाते हैं। प्रह्लाद से ही पूछते हैं। फिर सोचा कि बच्चों को एकदम डाँटना नहीं चाहिये इसलिये प्यार से पूछते हैं। तो प्रह्लाद को बुलाकर बड़े प्यार से पूछा,

वत्स प्रह्लाद भद्रं ते सत्यं कथय मा मृषा

बेटा! तेरा खूब कल्याण होवे। तू सच-सच बता, तेरी किसने बुद्धि खराब की? यह ऊटपटांग बातें अपने पिताजी को जो तूने सुनाई, यह सब तुझे किसने सिखाई? प्रह्लादजी हंसकर बोले, जय हो प्रभो! मैं उस परमात्मा की माया को प्रणाम करता हूँ कि जो जीवों को कल्याण की बात कहे तो उसे संसार में लोग उल्टी खोपड़ी वाला बताते हैं? धन्य है! भगवान् की माया का चमत्कार। जिसे सर्प काट ले, न उसे कड़वा नीम भी मीठा लगने लगता है। भिन्न स्वाद वस्तुतः वस्तु जिस स्वाद की है, उसमें भिन्न स्वाद आता है। इसका मतलब? तुम्हारे अन्दर बीमारी है। कड़वा नीम आपको मीठा लग रहा है और मीठी मिश्री कड़वी मालूम पड़ रही है, इसका मतलब कि तुम बीमार हो। संसार के विषयरूपी विष में जो संलग्न हैं, उन्हें भी वह रसमय परमात्मा कड़वे मालूम पड़ते हैं। इसके विरुद्ध संसार के जो विषतुल्य विषय है, वह मीठे नजर आने लगते हैं। उनके लिये जीव निरंतर भाग रहा है, यह भगवान् की माया के रोग का ही तो लक्षण है। भगवान् की माया का रोग जिसे लगा है, उसकी यही हालत होती है। अब तो गुरुजी की आँखें और लाल हो गई, ऐ मूर्ख! तू हमसे पढ़ने आया है कि हमें पढ़ाने आया है? मेरा डण्डा लाओ। मैं इसकी अक्ल ठीक करूँ। देखो! यह चन्दन जैसे वन में यह कांटे का पौधा कहाँ से पैदा हो गया?

दैतेयचन्दनवने जातोऽयं कण्टकद्रुमः

षण्ड-आमर्कजी ने प्रह्लादजी को बहुत डाँटा। शुकदेव बाबा कहते हैं, परीक्षित! यह गुरुजी नहीं डाँट रहे हैं, वरन् राजा हिरण्यकशिपु के सेवक डाँट रहे हैं। मास्टरजी में और गुरुजी में बहुत अंतर होता है। गुरु वह है, जो उचित हो, उसे निर्भीक होकर शिष्य को समझावे और पढ़ावे। और मास्टरजी वह है कि भले ही वह गलत है, पर सरकार ने जो शिक्षानीति निर्धारित की है; वही हमें पढ़ाना है। 'ग' माने 'गणेश' पढ़ाना बंद करो, सांप्रदायिकता फैल सकती है। 'ग' माने 'गधा' पढ़ाओ। अब गधा पर किसी को आपत्ति नहीं है, गणेशजी से आपत्ति हो जाती है। तो सरकार का रुख देखकर उचित-अनुचित कुछ भी जो सरकार कहे, वही सिखाया जावे वे मास्टरजी हैं। तो यह लोग तो राजसेवक हैं, हिरण्यकश्यपु के कर्मचारी हैं। जो राजा का आदेश है वही पढ़ाना पड़ रहा है।

समय बीता और एक बार षण्डामर्कजी प्रह्लादजी को घर छोड़ने आये। प्रह्लाद को देखकर माता कयाधु ने बड़ा सुन्दर स्नानादि से निवृत्त कराकर प्रह्लादजी का श्रृंगार किया। माँ कयाधु के द्वारा समलंकृत होकर प्रह्लादजी पिताजी से मिलने गये। अपने बेटे को देखते ही हिरण्यकश्यपु ने तुरन्त पुत्र प्रह्लाद को उठाकर अंक में भरकर हृदय से लगा लिया।

प्रह्लादजी चूंकि परमभागवत हैं, इसलिये उनके स्पर्शमात्र से हिरण्यकश्यपु रोमांचित हो जाता है। प्रह्लादजी को हृदय से लगाकर बड़े प्रेम से फिर वही प्रश्न कर दिया, बेटा! जरा बताओ तो। अब तक तुम्हारे गुरुजी ने सबसे बढ़िया पाठ कौन-सा याद कराया? प्रह्लादजी गुरुजी की तरफ देखने लगे, सुन रहे हो गुरुजी। पिताजी हमेशा बढ़िया बात पूछते हैं और हमेशा घटिया बात सुनना चाहते हैं। अब बढ़िया पूछ रहे हैं, तो बढ़िया ही बोलूंगा पिताजी! अब तो मैंने बढ़िया बढ़िया नौ बातें सीख ली। हिरण्यकशिपु ने सोचा, अच्छा! नौ प्रकार की कोई नई-नई नीतियाँ सीखकर आया होगा। पर प्रह्लादजी सुना बैठे भगवान् की नवधा भक्ति।

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥[1]
इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा ।
क्रियते भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम् ॥ (भा. 7/5/23)

जो नवधाभक्ति का क्रमशः व्याख्यान किया कि सुनकर हिरण्यकश्यपु की आँखें लाल हो गई। हिरण्यकशिपु ने तलवार निकाल ली और गुरुजी के गर्दन पर धर दी, अरे अधम ब्राह्मणो! लगता है, तुम मेरे विपक्ष से मिले हुए हो। तुमने जान-बूझकर मेरे बेटे की बुद्धि खराब की है। कल इसने हमसे एक बात बोली थी, आज नौ बातें सिखा रहा है। इसका मतलब उत्तरोत्तर इसकी विद्या का विकास हुआ है। तुमने कोई ध्यान नहीं दिया, अब तुम जीवित नहीं बचोगे। अब तो षण्ड-अमर्कजी थर-थर कांपे, सरकार! हमारी केवल एक बात सुनें! हम आपकी सौगंध खाकर कहते हैं कि इस बालक को न तो हमने पढ़ाया, न किसी और ने पढ़ाया। यह तो पढ़ा-पढ़ाया ही आया है। इसे कोई नहीं पढ़ा सकता।

न मत्प्रणीतं न परप्रणीतं सुतो वदत्येषतवेन्द्रशत्रो ।
नैसर्गिकीयं मतिरस्य राजन् नियच्छ मन्युं कददाः स्म मा नः ॥ (भा. 7/5/28)

षण्ड-अमर्कजी बोले, महाराज! हम पर नाराज न होईये। हम तो इतना जानते हैं कि इसकी स्वाभाविक मति भगवान् ने ऐसी ही बनाई है। इसकी बुद्धि ही ऐसी है, अब इसमें हमारा क्या दोष है? महाराज! आप शान्त चित्त होकर विचार कीजिये। इस क्रोध को त्यागिये और शान्त मन से सोचिये कि इसकी बुद्धि ऐसी कैसे हो गई? हिरण्यकश्यपु ने अब अपने बेटे से ही पूछ लिया, प्रह्लाद! सत्य बताओ। यह तुम्हारी बुद्धि विकृत किसने की? किसने यह ऊटपटांग बातें तुम्हें सिखाई हैं? प्रह्लादजी बोले, पिताजी!

---

1. श्रीबिष्णोः श्रवणे परीक्षितद्भवद्वैयासकिः कीतने । प्रह्लादः स्मरणे तदघ्रिंभजने लक्ष्मीः प्रभुः पूजने ॥
अक्रूरस्त्वभिवन्दने कपिपतिर्दास्येऽथसख्येऽर्जुनः। सर्वस्वात्मनिवेदने वलिरभूत्कृष्णाप्तरेषां परम् ॥
इसी बात को भक्तमाल (छप्पय 10) में श्रीनाभादासजी ने भी कहा है :
श्रवण परीक्षित सुमति व्यास सावक सुकीर्तन । सुठि सुमिरन प्रह्लाद पृथु पूजा कमला चरनन मन ।
बंदन सुफलक भुवन दास्य दीपत्ति कपिस्वर । सख्यत्वे पारत्थ समर्पण आतम बलि धर ।

मतिर्न कृष्णे परतः स्वतो वा मिथोऽभिपद्येत गृहव्रतानाम्

देखो! गृहस्थ नहीं कहा, घर में ही रहने का जिन्होंने व्रत ले रखा है, घर से जो निकलना ही नहीं चाहते, छोड़ना ही नहीं चाहते। घर को ही जो सब कुछ समझकर पकड़े बैठे हैं, उनकी बुद्धि बड़े भाग्य से भगवान् की तरफ अभिमुख होती है। अन्यथा इस गृहस्थ जीवन में सब अन्ध-परम्परा से एक दूसरे को गर्त में गिराने का ही प्रयत्न करते जा रहे हैं। जैसे एक बड़ी लम्बी अन्धों की रेखा जा रही थी। सब अन्धे ही अन्धे थे। अब सबसे आगे वाला अन्धा गड्ढे में गिर गया, धम्म की आवाज हुई। अब सब अन्धे जहाँ के तहाँ खड़े, भाई! खतरा मालूम चलता है। यह आवाज कैसी हुई? पता लगाओ। पीछे वालों ने पूछा, भाई! रास्ता तो ठीक है? तो गड्ढे में गिरे अन्धे ने सोचा, हम तो गिर ही पड़े, अब इन्हें क्यों छोड़ें? तो बोला नहीं-नहीं रास्ता तो बहुत सुन्दर है, डरने की कोई बात नहीं है; आराम से आओ। साथी पर भरोसा करके चल पड़े। जैसे ही आगे चले तो दूसरा हुआ 'धम्म' अरे! फिर आवाज आई? यह रास्ता तो ठीक है? दूसरे ने कहा, इस दुष्ट ने हमें नहीं बताया, तो हम किसी को क्यों बतायें? हाँ! बहुत बढ़िया रास्ता है, चले आओ। परिणाम यह हुआ कि रेखा में जितने थे, सब धमाधम गिरते चले गये।

प्रह्लाद कहते हैं, पिताजी! इसी प्रकार से सब लोग संसार के गर्त में अन्ध परम्परा से गिर रहे हैं। जीवनभर घर- गृहस्थी के क्लेश भोगने के बाद भी कोई अपनी सन्तान को इससे बचाने का प्रयत्न करता है क्या? उसी नमक-तेल-लकड़ी के गोरख धंधे में हर व्यक्ति अपनी सन्तान को झौंकता जा रहा है। इस संसाररूपी चक्रव्यूह से बचाने का कोई प्रयत्न नहीं करता सब अन्ध-परम्परा से गिर रहे हैं। इसलिये वह भाग्यशाली ही हैं, जिसकी मति रति प्रभु के चरण कमलों में हो। अब तो हिरण्यकशिपु के क्रोध का पारावार नहीं रहा, अरे असुरवीरो! मैं समझ गया। इस दुष्ट बालक को नारायण भक्ति का भयंकर रोग लग चुका है और यह रोग बहुत संक्रामक है। एक से सब में फैल जाती है। नगर-ग्रामों में कोई सच्चा भक्त यदि पैदा हो जाये, तो देखते-देखते तिलकधारी झांझ -मंजीरा वाले हजारों नाचते नज़र आने लगते हैं। इसलिये अब तक तो यह प्रह्लाद अकेला है, ऐसा न हो कि इसे देख-देखकर और बीमार पैदा हो जायें? और रोग जब ऐसा लगे कि यह ठीक नहीं हो सकता, तो उपाय फिर एक ही है कि उस रोगी को ही ठिकाने लगा दोय ताकि और तो रोगी न बनें? अरे! हमारा शरीर हमें कितना प्यारा लगता है? पर इसी हाथ में कोई घातक रोग हो जाये, डॉक्टर साहब कहें कि कटवा दो, नहीं तो रोग का प्रभाव पूरे शरीर में फैल जायेगा। तो अन्य शरीर की रक्षा के लिये हाथ कटवाना ही पड़ता है।

छिन्द्यात्तदंगं यदुतात्मनोऽहितं शेषं सुखं जीवति यद्विवर्जनात्

तो जैसे हम अपने अन्य शरीर की सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए अपने प्यारे अङ्ग को कटवा ही देते हैं, ऐसे ही प्रह्लाद मेरा पुत्र हैय पर इसको बहुत खतरनाक रोग लग गया है। इसलिये ठिकाने लगा दो। प्रह्लादजी के ऊपर अनेक असुर टूट पड़े और उठाकर ले गये।

दिग्गजैर्दन्दशूकैश्च अभिचारावपातनैः ।
मायाभिः संनिरोधैश्च गरदानैरभोजनैः ॥ (भा. 7/5/43)

बड़े-बड़े पर्वत शिखरों से गिराया, पानी में डुबाया, अग्नि में जलाया, विषपान कराया, भोजन पर प्रतिबन्ध लगाया; सारे प्रयत्न कर लिये पर सब विफल हुए। होलिका देवी स्वयं जलाने आई पर खुद ही जलकर राख की ढेर हो गईं। अग्नि शीतल हुई, तो प्रह्लादजी की इस प्रतिभा से प्रसन्न होकर प्रह्लादजी के जितने मित्र थे;

उस अग्नि की राख को ही एक दूसरे के ऊपर उड़ा उड़ाकर उत्सव मनाने लगे। तो होलिकादहन जिस दिन होता है, उसके दूसरे दिन उस धूल से ही लोग एक दूसरे से खेलते हैं। परन्तु कुछ हिरण्यकश्यपु के भी समर्थक लोग थे, वह लोगों को उठा-उठाकर नालियों में पटकने लगे। दोनों ही प्रकार के दृश्य होली में देखने को मिलते हैं। हिरण्यकश्यपु अब चिन्ता में पड़ गया। **'चिन्तां दीर्घतमां प्राप्तः'** सिर पकड़कर बैठ गया, क्या बात है? छोटा-सा बच्चा इतना चमत्कारी? अब इसे मैंने कदाचित नहीं मारा तो यह मेरी मौत का कारण बन सकता है। यह चमत्कार बालक में नहीं हैं, इसके ऊपर किसी का हाथ है। मुझे लगता है कि मेरे बेटे के माध्यम से नारायण मेरे ऊपर कोई षडयंत्र रचा रहा है। इतने में षण्ड-अमर्कजी आ गये, अरे महाराज! आपकी टेड़ी भृकुटी होने पर त्रैलोक्य काँप उठता है और आप अपने बच्चे को लेकर इतने परेशान हो रहे हैं? महाराज! हमें एक मौका और दीजिये। षण्ड-अमर्कजी प्रह्लादजी को पकड़कर फिर ले आये, बहुत समझाये पर इन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा; तो बाँधकर प्रह्लादजी को गिरा दिया। प्रह्लादजी पड़े हैं।

अब एक दिन षण्ड-अमर्कजी तो कहीं बाजार घूमने चले गये। विद्यार्थी खेलने-कूदने निकल पड़े, तो प्रह्लादजी को अवसर मिल गया, इधर आओ मित्रो! एक नया खेल सिखाऊँ। आँख मिचौनी सीखी है? सहपाठी बोले, हाँ! यह तो पुराना खेल है। प्रह्लादजी बोले, हमारा जीवन भी तो एक आँखमिचौनी का ही खेल है। जीवात्मा और परमात्मा दोनों शाश्वत सखा हैं। एक बार दोनों बोले, चलो! आँख मिचौनी खेलते हैं। भगवान् बोले, पहले तुम छुप जाओ, फिर बाद में हम छुपेंगे। तो समस्त जीव प्रलय के समय परमात्मा के उदर में ही विलीन हो गये और परमात्मा ने जब सृष्टि का शुभारम्भ किया, तो एक-एक जीव को कर्मानुसार ढूँढ-ढूँढकर जगत् में कर्मानुसार जन्म दे दिया। फिर भगवान् बोले, देखो बच्चो! हमनें तुम सबको ढूँढ लिया। अब इसी जगत् के कण-कण में हम भी छुपे बैठे हैं। अब तुम्हारी बारी है, हमें ढूँढकर बताओ। जिस दिन तुम हमें ढूंढ़ लोगे, उस दिन तुम्हारा खेल खत्म और जबतक उस जगत में छुपे जगदीश्वर को जान नहीं लेंगे, तबतक यह जन्म-मरण का खेल खत्म होने वाला नहीं है चलता ही रहेगा बड़ा लम्बा खेल है। इसलिये श्रुति भगवती कहते हैं,

तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय

प्रह्लादजी कहते हैं, उस परमात्मा को जाने बिना जन्म-मरणरूपी इस भयंकर पीड़ा से बचने का दूसरा कोई रास्ता नहीं है। इसलिये मित्रो! बुद्धिमान् वही है, जो कुमारावस्था से होश सँभालते ही जगत् में छुपे जगदीश्वर को जानने में जुट जाये।

कौमार आचरेत्प्राज्ञो धर्मान् भागवतानिह ।
दुर्लभं मानुषं जन्म तदप्यध्रुवमर्थदम् ॥ (भा. 7/6/1)

प्रह्लादजी कहते हैं, मित्रों! उस परमात्मा को इस शरीर से ही जानना सम्भव है। अन्य योनियों के शरीर उसे जानने में समर्थ नहीं हैं। इसलिये अवसर मिला है, उस परमतत्त्व को जान लो। आज प्रह्लादजी खुद अपने साथियों को पढ़ा रहे हैं। और जब अपना समकक्ष कोई पढ़ावे, तो उससे प्रश्न करने में कोई संकोच नहीं होता, गुरुजी से पूछने में डर लगता है। इसलिये आज सारे विद्यार्थी प्रह्लादजी से खुलकर प्रश्न कर रहे हैं और प्रह्लादजी सब का समाधान करते हुए अध्ययन करा रहे हैं। एक विद्यार्थी बोला, प्रह्लाद! हमनें तो सुना है कि यह उम्र कमाने की है, इसलिये पहले तो खूब कमाओ। अरे! भजन-पूजन करना तो सब बुड्ढों का काम है। प्रह्लादजी बोले, सुनो मित्रों! जीवन में जो सुख और दुःख है, वह दैवाधीन है, प्रारब्धानुसार मिलता है। जितना प्रारब्ध में लिखा है, उतना

सुनिश्चितरूप से प्राप्त होगा। उसके लिये तुम जितना उद्यम करो या मत करो। दुःखी होने के लिये तुम कभी प्रयत्न करते हो? क्या किसी ने भगवान् से यह माँगा है कि हे प्रभु! हम दुःखी रहें? न तो कोई माँगता है, न कोई चाहता है; फिर भी दुःखी होते हैं कि नहीं? क्योंकि सब दैवाधीन हैं। हमारे प्रारब्ध में यदि दुःख लिखा है, तो हम न भी चाहें तो भी मिलेगा। ठीक इसी प्रकार से सुख भी यदि प्रारब्ध में है, तो भले ही मत चाहो; तब भी मिलेगा।

सुखमैन्द्रियकं दैत्या देहयोगेन देहिनाम् ।
सर्वत्र लभ्यते दैवाद्यथा दुःखमयत्नतः ॥ (भा. 7/6/3)

दुःख का कोई प्रयत्न नहीं किया, फिर भी दुःखी हुये। ऐसे ही सुख का भी प्रयत्न न करो, तो भी यदि प्रारब्ध में है तो घर बैठे ही सुखी हो जाओगे। कई लोग दिन रात मेहनत कर रहे हैं, पसीना बहा रहे हैं, फिर भी कुछ भी प्राप्त नहीं कर पा रहे हैं। और एक वह हैं, जिनको कुछ भी नहीं करना पड़ रहा; फिर भी मालामाल हो रहे हैं। प्रारब्ध जब जागृत होता है, तो धन की बरसात होने लग जाती है। इसलिये जंगल में भी जाकर बैठ जाओगे, तब भी तुम्हारा प्रारब्ध तुम्हारी भोगसामग्री को वहीं पहुँचा देगा। तो जो प्रारब्ध में मिलना सुनिश्चित है, उसके लिये प्रयत्न करना भी मूर्खता है। अरे! प्रयत्न उसके लिये किया जाता है, जो अनुपलब्ध हो।

मित्र बोले, तो प्रयत्न किसलिये करें? प्रह्लादजी बोले, प्रयत्न किया जाता है आत्मकल्याण के लिये। अब रही बात बुढ़ापे की? तुम लोग कहते हो कि बुढ़ापे में भजन करो। अरे मित्रो! पहले तो यह बताओ तुम अपनी आयु कितनी समझते हो? मित्र बोले, सौ साल! प्रह्लादजी ने कहा, तुम्हारे पास कोई गारंटी-कार्ड है कि सौ साल तक जिंदा रहोगे? मित्र बोले, वह तो नहीं है!

प्रह्लादजी बोले, फिर भी हम मान लेते हैं कि तुम सौ साल की उम्र के हो। तो रात्रि का समय सोने में ही गंवाया कि नहीं? तो इसका मतलब पचास साल सोते-सोते चले गये, अब पचास वर्ष बचे? सो प्रारम्भ के बीस वर्ष तुमने खेलने-कूंदने मौज-मस्ती में गवां दिये? अब बचे तीस वर्ष। तो तीस में से अस्सी वर्ष के बाद के जो बीस वर्ष हैं, उन्हें हिसाब से पहले ही निकाल देना चाहिये क्योंकि उस अवस्था में पहुँचने के बाद तुम चाहोगे भी कि उपासना कर लें साधना कर लें, तो शरीर ही काम नहीं करेगा। ध्यान लगाने बैठे कि खांसी ने परेशान कर दिया, घुटने दर्द करने लगे, कहीं-न-कहीं कोई-न-कोई शारीरिक व्याधि आपको इतनी प्रभावित करेगी कि आप चाहकर भी कुछ नहीं कर सकोगे। तो बताओ! अब सौ साल की उम्र में तुम्हारे पास भजन का कौन-सा समय है?

जिंदगी जबतक रहेगी फुरसत न होगी काम से।
कुछ समय ऐसा निकालो प्रेम कर लो राम से॥

कथं प्रियाया अनुकम्पितायाः सङ्गं रहस्यं रुचिरांश्च मन्त्रान्

दस वर्ष जो युवावस्था के बचते भी हैं तो, जहाँ विवाह हुआ नहीं कि देवीजी के मन्त्र नित्य कान में सुनाई पड़ेंगे कि आज नमक खत्म हो गया, आज बच्चों की फीस जमा करनी है, आज यह काम करना है, आदि-आदि। उन्हीं प्रपंचों में एक मिनट की भी फुर्सत नहीं मिलेगी। युवावस्था में मित्रों! धन की तृष्णा अत्यधिक बलवती हो जाती है। क्या एक चोर नहीं जानता कि पकड़ा गया, तो क्या दुर्दशा होगी? जेबकतरों को नहीं मालूम कि जेब काट रहा हूँ, यदि पकड़ा गया तो क्या विडम्बना होगी? तस्करों को, डकैतों को; क्या नहीं मालूम कि कोई भी गोली हमारे जीवन की अन्तिम श्वांस ले सकती है? पर इसके बाद भी धन के पीछे भाग रहे हैं। क्योंकि,

प्राणेभ्योऽपि य ईप्सितः

वह धन प्राणों से भी अधिक प्यारा लगने लगता है। हालांकि प्राण सबसे प्यारे होते हैं। पर धन की तृष्णा इतनी होती है कि प्राणों की बाजी लगाकर धन के पीछे भागता है। इसलिये मित्रो! जीवन कितना भी बड़ा हो फुर्सत का क्षण कभी नहीं होता। एक ने कहा, प्रह्लाद! यह बातें हमारे गुरुजी तो हमें कभी नहीं सिखाते, पर तू कहाँ से सीख जाता है? तुझे यह सब बातें किसने सिखाई? प्रह्लादजी कहते हैं, मित्रो! मेरी मनमुखी बातें नहीं हैं। मुझे भी अपने गुरुदेव से प्राप्त हुई हैं। सखाओं ने पूछा, भैया तेरे कौन-से गुरुदेव हैं? हमारे गुरुजी तो कभी नहीं पढ़ाते? देख प्रह्लाद! हमारी-तुम्हारी उम्र एक, हमारा-तुम्हारा विद्यालय एक, हमारे तुम्हारे गुरुजी भी एक; फिर यह बातें कौन-से गुरुजी ने तुझे सिखा दीं?

प्रह्लादजी बोले, जब मैं माँ के पेट में था, उस समय इन्द्र ने आक्रमण करके मेरी माँ का हरण कर लिया। मेरी माँ चिल्ला रही थी, रो रही थी। इतने में देवर्षि नारद ने इन्द्र को डांटकर भगाया और मेरी माँ को बचा लिया। मेरी माँ ने नारदजी के चरण पकड़ लिये, तब नारदजी ने कहा, बेटी! जबतक तेरे पति तपस्या करके नहीं आते, तबतक तू निश्चिन्त् होकर मेरे आश्रम में रह और हम तुझे आशीर्वाद देते हैं, जबतक तेरी इच्छा नहीं होगी, तबतक तेरा बालक जन्म ही नहीं लेगा। 'क्षेमायेच्छाप्रसूतये' तू जब चाहेगी, तभी पुत्र जन्म लेगा। मेरी माँ ने मुझे गर्भ में ही धारण करके रखा। नारदजी महाराज मेरी माँ को बड़े सुन्दर-सुन्दर उपदेश दिया करते थे और मातृगर्भ में मैं भी सब सुनता रहता था। इसलिये माँ के गर्भ में ही मैंने नारदजी को अपना गुरु मान लिया और यह सारा ज्ञान उन्हीं का दिया हुआ है।

विद्यार्थी बोले, गज़ब हो गया। इसका मतलब हमारे गुरुजी ठीक ही कहते हैं कि यह पढ़ा-पढ़ाया ही पैदा हुआ है। माँ के गर्भ में तू सब सीख आया। कुछ भी हो, तेरी बातें हमारे मन को बहुत प्रभावित करती हैं। अरे! कभी-कभी तो तेरी भक्ति को देखकर तेरे साथ खूब नाचने-गाने का मन होता है, पर जब तेरे पिताजी की सूरत याद आती है; तो हिम्मत टूट जाती है। वह बड़े क्रोधी हैं भैया! हमें जिंदा नहीं छोड़ेंगे। प्रह्लादजी बोले, एक बात बताओ! भगवान् कोई मेरे घर के हैं क्या? तुमने नहीं देखा प्रभु के प्रेम में जब मैंने प्रभु का स्मरण किया, तो क्या कोई मेरा कुछ विगाड़ सका? तो जब वे प्रभु मेरी रक्षा करते हैं, तो क्या तुम्हारी रक्षा नहीं करेंगे? अरे मित्रों!

देवोऽसुरो मनुष्यो वा यक्षो गन्धर्व एव च।
भजन् मुकुन्दचरणं स्वस्तिमान् स्याद् यथा वयम् ॥ (भा. 7/7/50)

कोई देवता हो, यक्ष हो, गन्धर्व हो, मानव हो, दानव हो, कोई भी हो, कैसा भी होय पर जैसे प्रभु ने मुझ दैत्यकुल में उत्पन्न प्रह्लाद पर अनुग्रह किया, ऐसे ही भगवान् का जो भजन करे - **'हरि को भजे सो हरि का होई'** वह भगवान् का हो जाता है, भगवान् उसकी रक्षा करते हैं। विद्यार्थियों के मन में महाभागवत प्रह्लादजी की बात मन में जंच गई और बोले, प्रह्लाद! कुछ भी हो। यदि तू हमें विश्वास दिलाता है, तो हम भी तेरे साथ नाम संकीर्तन करेंगे। क्योंकि गुरुजी विद्यालय में हैं नहीं, आज ही मौका बढ़िया है। प्रह्लादजी बोले, तो हो जाओ तैयार! चिन्ता मत करना सब संभाल लूंगा। सारे विद्यार्थी आज प्रह्लादजी के साथ झूम उठे और झूम-झूमकर भगवान् की मस्ती में नाचना-गाना प्रारम्भ कर दिया।

सारे विद्यार्थी झूम-झूमकर नाच रहे थे कि इतने में गुरुजी आ गये। गुरुजी ने देखा तो घबड़ा गये, हे भगवान्! लगता है बीमारी फैल गई। कहीं इसको छूकर मैं भी रोगी न बन बैठूं? दौड़े-दौड़े गुरुजी हिरण्यकश्यपु के पास पहुँचे और बोले, महाराज! गजब हो गया। अभी तक तो वह प्रह्लाद अकेला था, अब तो उसने सारे विद्यार्थियों को रोगी बना दिया? आप चलकर अपनी आँखों से देखिये! सुनते ही आँखें लाल हो गई

कोपावेशचलद्गात्रः पुत्रं हन्तुं मनो दधे

कोप के कारण शरीर कांपने लगा। विचार करने लगा, मैं आज अपने पुत्र को मार ही डालूंगा! ऐसा संकल्प लेकर गदा उठाकर चल पड़ा और जो विद्यालय में जाकर देखा होश उड़ गये। और किसी विद्यार्थियों को होश नहीं, वह अपनी मस्ती में नाच रहे हैं और गा रहे हैं। हिरण्यकशिपु ने अट्टहास किया और कीर्तन सन्नाटे में बदल गया। जो जहाँ खड़ा था, बेचारे सब विद्यार्थी जहाँ-के-तहाँ खड़े रहे गये। कोई नाचते समय एक हाथ कमर पर, एक हाथ माथे पर रखकर जोर का ठुमका मार रहा था और जहाँ उसकी दृष्टि हिरण्यकश्यपु के मुख पर पड़ी, सो बेचारा मूर्ति बना ज्यों-का-त्यों खड़ा हो गया। यह भी हिम्मत नहीं कि सीधा भी हो जाये। थर-थर कांप रहे हैं। छोटे-छोटे विद्यार्थी प्रह्लादजी को इशारा कर रहे हैं, उधर देख! प्रह्लादजी ने जब पीछे मुड़कर हिरण्यकश्यपु की लाल-लाल आँखें देखीं, तो विद्यार्थियों को मुस्करा के इशारा किया, घबड़ाना मत, मैं हूँ। हिरण्यकश्यपु ने तो प्रह्लाद पर हजारों गालियों की बौछार कर दी।

हे दुर्विनीत मन्दात्मन्कुलभेदकराधम ।
स्तब्धं मच्छासनोद्धूतं नेष्ये त्वाद्य यमक्षयम् ॥
क्रुद्धस्य यस्य कम्पन्ते त्रयो लोकाः सहेश्वराः ।
तस्य मेऽभीतवन्मूढ शासनं किम्बलोऽत्यगाः॥ (भा. 7/8/6-7)

अरे दुर्विनीत-कुलभेदी-नराधम प्रह्लाद! आज तुझे मेरे कोप से कोई नहीं बचा सकता। मैं क्रोध करता हूँ, तो त्रैलोक्य कांप जाता है। ऐसा कोई शक्तिशाली नहीं, जो मेरा सामना कर सके। ब्रह्माजी के वरदानों ने मुझे अमृत्व प्रदान किया है, पर तूने किसके बल पर मुझे चुनौती देने का दुःसाहस किया? प्रह्लादजी ने भी निर्भीक होकर जवाब दिया,

न केवलं मे भवतश्च राजन् स वै बलं बलिनां चापरेषाम् ।
परेऽवरेऽमी स्थिरजङ्गमा ये ब्रह्मादयो येन वशं प्रणीताः ॥ (भा. 7/8/8)

पिताजी! आपको ब्रह्माजी के वरदानों का बल है और मेरे प्रभु तो ब्रह्माजी को भी बल देने वाले हैं। चराचर जगत् के जीवों में जो कुछ भी बल पराक्रम है, वह मेरे प्रभु का ही तो दिया हुआ है! भगवान् यदि अपना बल खींच लें, तो बड़े-बड़े देवता एक सूखे तिनके को हिला नहीं सकते, जला नहीं सकते, उड़ा नहीं सकते। परशुरामजी महाराज रामजी को बार-बार फरसा दिखा रहे थे, लक्ष्मणजी महाराज और ज्यादा छेड़ रहे थे। परशुरामजी की आँखें लाल हो गई, संकल्प सुदृढ़ हो गया कि अब मैं इस बच्चे को मार ही डालूँगा। पर जब-जब फरसा उठाने का प्रयास किया, तब-तब हाथ ने काम करना छोड़ दिया। परशुरामजी बड़े चक्कर में पड़ गये, चाह भी रहा हूँ, फरसा भी मेरे हाथ में हैय फिर भी यह उठ क्यों नहीं रहा? हाथ काम क्यों नहीं कर रहा? लक्ष्मणजी बोले, महाराज! हाथ ने पहचान लिया, पर आप नहीं पहचान पाये। अब परशुरामजी विचार करने लगे, ये कौन हैं? कहीं सबको बल शक्ति देने वाले यही तो नहीं? संदेह हो गया, तो अपना संदेह दूर करने के लिये परशुरामजी ने कहा, महाराज!

राम रमापति कर धनु लेहू ।
खैंचहु मिटइ मोर संदेहु ॥ (रामचरितमानस 1/284/4)

इस धनुष पर आप प्रत्यंचा चढ़ा दो, तो मेरा संदेह समाप्त हो जायेगा मैं आपको पहचान जाऊँगा। और

जैसे-ही धनुष देने के लिये परशुरामजी आगे बढ़े ही थे कि परशुरामजी के हाथ से धनुष अपने आप ही छूट गया और रामजी के हाथ में जाकर पहुँच गया।

देत चाप आपुहिं चलि गयऊ ।
परसुराम मन बिस्मय भयऊ ॥ (रामचरितमानस 1/284/4)

परशुरामजी के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा, गजब हो गया। मेरा हाथ चैतन्य था, वह एकदम जड़ बन गया और मेरा धनुष एकदम जड़, वह आज चैतन्य बन गया? स्वयं मेरे हाथ से चलकर रामजी के हाथ में पहुँच गया? इसका मतलब रामजी कौन हैं?

जो चेतन कहँ जड़ करइ जड़हिं करइ चैतन्य

रामजी चाहें तो जड़ को चैतन्य बना दें और रामजी चाहें तो चैतन्य को जड़ बना दें। प्रह्लादजी महाराज कहते हैं, '**स वै बलं बलिनां चापरेषाम्**' पिताजी! वह बलवान् के भी बलवान् हैं। आप अपने को त्रिलोकी का विजेता मानते हैं? पर सबसे पहले अपने घर को तो जीतिये? तुम्हारे भीतर के जो शत्रु घुसे बैठे हैं,

दस्यून्पुरा षण्ण विजित्य लुम्पतो मन्यन्त एके स्वजिता दिशो दश

काम-क्रोधादि जो शत्रु हमारे भीतर घुसे बैठे हैं, उन्होंने आज आपको अपने अधीन कर रखा है। आपका शरीर क्रोध के अधीन होकर कांप रहा है। पहले इन शत्रुओं को जीत लीजिये, तब आप विजेता कहलायेंगे। परन्तु क्रोध में बुद्धि क्षीण हो जाती है,

क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात् स्मृति विभ्रमः ।
स्मृति भ्रन्शाद् बुद्धिनाशः बुद्धिनाशात् प्रणश्यति ॥ (भगवद्गीता 2/63)

क्रोध में अन्धा हुआ हिरण्यकशिपु चिल्ला पड़ा, ऐ मूर्ख! तेरा भगवान् यदि सबको बल पराक्रम प्रदान करता है, तो बोल कहाँ रहता है? पहले तेरे भगवान् को देखूं। प्रह्लादजी बोले, यह पूछिये पिताजी! कि वह कहाँ नहीं रहते? '**ईशावास्यमिदं सर्वम्**' वह तो कण-कण में, अणु-अणु में सर्वत्र हैं। हिरण्यकश्यपु ने कहा यदि सर्वत्र है तो '**क्वासौ यदि स सर्वत्र कस्मात् स्तम्भे न दृश्यते**' यदि तेरा भगवान् सर्वत्र है, तो इस खम्बे में मुझे क्यों नहीं दिख रहा? क्या तेरा भगवान् इस खम्बे में है? प्रह्लादजी बोले, हाँ! प्रह्लादजी ने हाँ किया और हिरण्यकश्यपु ने घुमाकर गदा का प्रहार किया कि खम्बा फट गया और भगवान् नृसिंह रूप में प्रकट हो गये।

गगड़ गडगड़ानो खम्भफाटो चर चरानो, निकसो नर नाहर को रूप अति भयानक है।
गगड़ गडगड़ावे दसत जीभ लप लपावे, चितवत सरोज मानो अङ्ग जात खानो है॥

नृसिंहभगवान् ने इतना भयंकर अट्टहास किया कि सारे दैत्य मूर्छित होकर गिर पड़े। हिरण्यकश्यपु भी घबड़ा गया और मन में सोचने लगा, मैं तो वरदान प्राप्त हूँ! ब्रह्माजी के वरदान जब मेरी रक्षा करेंगे, तो मैं क्यों डरूँ? तो वरदानों का स्मरण करके साहस आ गया। ढाल-तलवार संभालने लगा और भगवान् के ऊपर झपट पड़ा। मध्याह्न बारह बजे नृसिंहभगवान् प्रकट हुये और युद्ध छिड़ गया। भगवान् उससे ऐसे खेलने लगे, जैसे पक्षीराज गरुड़ छोटे-मोटे सर्प के साथ क्रीडा कर रहे हों। ब्रह्माजी ऊपर से देवताओं के साथ मिलकर यह युद्ध देख रहे हैं। ऊपर से ही इशारा कर रहे हैं, सरकार! जल्दी करो सूर्यास्त हो गया, तो असुरों का बल पराक्रम बढ़ जायेगा। भगवान् ने हुंकार ध्वनि करके ऊपर देखा, सो ब्रह्माजी सकपकाकर गये। भगवान् कहना चाहते हैं कि पहले तो वरदान देकर बल पराक्रम देते हो, फिर डरते भी हो? बेचारे ब्रह्माजी कुछ न बोले। जहाँ सूर्यास्त पूर्ण

हुआ, भगवान् ने तुरन्त हिरण्यकश्यपु को पकड़कर गोदी में पटका और बीच देहरी में जाकर बैठ गये। हिरण्यकशिपु के हाथ पैरों को इतनी जोर से जकड़ा कि उसके ढाल-तलवार अपने आप हाथ से नीचे खिसक गये।

हिरण्यकश्यपु कहने लगा, अरे महाराज! गिर पड़ा तो क्या हुआ? मरने वाला तो नहीं। मैंने वरदान लिये हैं! न भीतर मरूँगा, न बाहर मरूँगा। भगवान् बोले, इसीलिये बीच देहरी में बैठा हूँ। हिरण्यकश्यपु बोला, तो न ऊपर मरूँगा न नीचे। भगवान् बोले, तू तो मेरी गोद में है। हिरण्यकश्यपु बोला, मैं न अस्त्र से मरूँगा, न शस्त्र से। भगवान् बोले, यह लम्बे-लम्बे नाखून देख रहे हो? यह न अस्त्र हैं, न शस्त्र हैं; पर तेरे लिये पर्याप्त हैं। इसी से तेरा उदर विदीर्ण करूँगा। अब तो कांपते हुए बोला, तो न दिन में मरूँगा, न रात में। भगवान् बोले, संध्या का समय हो रहा है। न दिन है, न रात्रि। तो हिरण्यकश्यपु बोला, महाराज! न मनुष्य से मरूँगा, न जानवर से। भगवान् बोले, मैं कौन हूँ? नर भी हूँ और सिंह भी हूँ। अब घबड़ाया मैंने वरदान माँगा था महाराज! कि ब्रह्मा की सृष्टि में किसी से नहीं मर सकता। भगवान् बोले, सुन! ब्रह्मा को मैं बनाता हूँ, ब्रह्मा ने मुझे नहीं बनाया। अब तो बेचारा बुरी तरह घबड़ा गया। अरे! तो एक वरदान और है, मैं बारह महीने से किसी महीने में नहीं मरूँगा। भगवान् बोले, यह अधिकमास चल रहा है, यह तेरहवां महीना स्पेशल तेरे लिये ही बनवा रखा है।

सत्यं विधातुं निजभृत्यभाषितं व्याप्तिं च भूतेष्वखिलेषु चात्मनः ।
अदृश्यतात्यद्भुतरूपमुद्वहन् स्तम्भे सभायां न मृगं न मानुषम् ॥ (भा. 7/8/18)

ब्रह्माजी के समस्त वरदानों की प्रभु ने रक्षा की। सनकादियों के शाप की रक्षा करने के लिये ही भगवान् इस रूप में आये हैं और अपने भक्त प्रह्लाद के वचन को ही सत्य करने के लिये इस अद्भुत रूप में भगवान् प्रकट हुये। अंततोगत्वा वरदानों की रक्षा करके अपने विशाल नखों को हिरण्यकश्यपु के उदर में घोंपकर उसकी आंतों को चीरकर बाहर निकाल लिया और उन आंतों को बाहर निकालकर उसकी माला धारण कर ली। अब तो भगवान् के रक्तरंजित करकमल और बड़ा भयंकर मुख देखकर देवता भी थर-थर कांप गये। एक ओर जहाँ असुर हिरण्यकश्यपु के वध की प्रसन्नता हो रही है, दूसरी ओर भगवान् का इतना उग्ररूप देखकर देवताओं का साहस नहीं होता कि सामने जाकर दण्डवत् कर आवें। परन्तु भगवान् ने इतना महान् कार्य किया है, तो स्तुति तो करना ही चाहिये! ब्रह्मा बाबा आये हाथ जोड़कर स्तुति गाने लगे।

नतोऽस्म्यनन्ताय दुरन्तशक्तये विचित्रवीर्याय पवित्रकर्मणे ।
विश्वस्य सर्गस्थितिसंयमान् गुणैः स्वलीलया संदधतेऽव्ययात्मने॥ (भा. 7/8/40)

हे प्रभो! आपकी अनन्त शक्ति को प्रणाम है, आपके इन पवित्र कार्यों को प्रणाम है। इस प्रकार ब्रह्मा बाबा भगवान् की स्तुति करने लगे। पर जो अट्टहास किया कि बेचारे भागते नजर आये। उनका तो हंस ही उड़ता चला गया। भोलेबाबा नन्दी पर बैठकर स्तुति करने आये। भगवान् ने टेढ़ी निगाह से नन्दी को देखा, तो नन्दी बेचारा पूंछ उठाकर भागता नजर आया। एक-एक करके सब देवगण आये, पर कोई सामने टिक नहीं पाये। पर जब मनु लोग आये तो भगवान् ने पूछ लिया कौन हो तुम? डरकर बोले, महाराज! '**मनवो वयं तव निदेशकारिणः**' 'हम तो आपकी आज्ञा का पालन करने वाले मनुलोग हैं महाराज। अब तो जो भी आता है, तो पहले ही अपना परिचय दे देता है, बाद में स्तुति करता है। प्रजापतियों ने कहा, प्रभो! '**प्रजेशा वयं ते परेशाभिसृष्टा**' गन्धर्वों ने कहा, '**वयं विभो ते नटनाट्यगायका**' सब अपना-अपना परिचय देते हुए भगवान्

का स्तवन कर रहे हैं। परन्तु सब स्तुति करके चले गये भगवान् के कोप में तनिक भी न्यूनता न दिखी, तब सब देवता सिर पकड़कर बैठ गये कि अब क्या करें? देवताओं ने अंत में निर्णय लिया, भाई! पतिदेव कितने भी महाक्रोधी हों, पर उनकी धर्मपत्नीजी उन्हें मनाना बहुत अच्छी तरह जानती हैं। अतः हमें माता लक्ष्मीजी की शरण में चलना चाहिये, वह ही संभालेंगी। सब दौड़कर माता लक्ष्मीजी के पास पहुंच गये, माताजी प्रणाम! आज आपके स्वामीजी क्रोध में भरे इतने लाल-पीले बने बैठे हैं। हमने तो आज तक इतना भयानकरूप कभी नहीं देखा। आप जल्दी से कैसे भी बनें, उनके कोप को शान्त कीजिये। लक्ष्मीजी तो हंसने लगीं, मेरे स्वामीजी को क्रोध हो ही नहीं सकता। वह तो परमशान्त हैं।

देवताओं ने लक्ष्मीजी से कहा, माताजी! चलकर देखिये तो सही? तब सोलह श्रृंगार किये भगवती लक्ष्मी ने स्वर्ण थाल में आरती सजाई छम-छम करती पधारीं। नारायण के चरणों की आरती करते-करते जैसे-ही मुख पर आरती घुमाई कि भगवान् ने मुँह फाड़कर ऐसी जोर से दहाड़ लगाई कि दैया-मैया करके थाली फेंककर लक्ष्मीजी भागती नजर आयीं।

अदृष्टाश्रुतपूर्वत्वात् सा नोपेयाय शङ्किता

सशंकित भगवती लक्ष्मी तो थाली फेंककर भाग गई। अब तो देवताओं के होश उड़ गये, हे भगवान! अब किसके पास जायें? अन्त में सबका ध्यान परमभागवत प्रह्लादजी के ऊपर पड़ा, जो भगवान् की यह सारी विचित्रलीला को शान्त भाव से खड़े देख रहे हैं। सारे देवता आकर बोले, भैया! तेरे कारण ही प्रभु इस रूप में आये हैं। अब तू ही इनके कोप को शान्त कर सकता है और तो कोई दूसरा उपाय रहा नहीं। बस संकेत मिलते ही प्रह्लादजी चल पड़े और भगवान् के सन्मुख आते ही प्रह्लादजी ने प्रभु के चरणों में साष्टांग दण्डवत् किया। उन्होंने मुखकमल पर दृष्टि डाली ही नहीं, भगवान् की कृपाशक्ति तो चरणों में विद्यमान है। जहाँ चरण का स्पर्श हुआ कि कृपाशक्ति जागृत हो गई।

स्वपादमूले पतितं तमर्भकं विलोक्य देवः कृपया परिप्लुतः ।
उत्थाप्य तच्छीर्ष्ण्यदधात् कराम्बुजं कालाहिवित्रस्तधियां कृताभयम् ॥ (भा. 7/9/5)

प्रभु ने जहाँ अपने चरणों में पड़े हुए पुत्र प्रह्लाद को देखा कि तुरन्त खड़े हो गये और अपनी दोनों भुजाओं से प्रह्लाद को उठाकर गोद में बैठा लिया। ऐसा वात्सल्य प्रभु का उमड़ा कि एक हाथ से बार-बार सिर सहलाते हैं और अपनी जिह्वा से चाटने लगे, जैसे सद्योजात बछड़े को गौमाता वात्सल्य के वशीभूत चाटती हैं। ऐसे ही भगवान् का वात्सल्य उमड़ पड़ा। भगवान् कहते हैं, प्रह्लाद! तेरे अङ्ग-प्रत्यंग इतने सुकुमार हैं कि जो छूने में भी डर लगता है। ऐसे सुकुमार शरीर पर उस क्रूर दैत्य ने कितना अत्याचार किया? यह अभूतपूर्व घटना है किसी ने मेरा नाम लेने के कारण इतना भयंकर कष्ट उठाया हो। ऐसा आज तक कभी नहीं हुआ, तेरी रक्षा में आते हुए मुझे ही विलम्ब हुआ है और मेरे विलम्ब से आने के कारण तुझे इतना कष्ट उठाना पड़ा है। इसलिये बेटा! मेरे अपराध को क्षमा करना।

जो हाथ-जोड़कर प्रभु ने क्षमा माँगी कि सारे देवता यह दृश्य देखकर अचम्भित हो गये कि भक्तों को भगवान् से क्षमा माँगते तो बहुत बार देखा, पर किसी भक्त से भगवान् को क्षमा माँगते आज पहली बार देख रहे हैं। प्रह्लादजी ने जब प्रभु की इस दिव्य करूणा को देखा तो प्रह्लादजी का कण्ठ अवरूद्ध हो गया। प्रेम में नेत्र सजल हो गये और तुरन्त प्रभु के चरणों में दण्डवत करके प्रह्लादजी ने 42 श्लोकों में भगवान् की दिव्य स्तुति गाई।

ब्रह्मादयः सुरगणा मुनयोऽथ सिद्धाः सत्त्वैकतानमतयो वचसां प्रवाहैः ।
नाराधितुं पुरुगुणैरधुनापि पिप्रुः किं तोष्टुमर्हति स मे हरिरुग्रजातेः ॥ (भा. 7/9/8)

हे प्रभो! समस्त ब्रह्मादिक देवता, बड़े-बड़े सिद्ध मुनि, गन्धर्व, आदि जो परम सात्विक देव हैं, वह धाराप्रवाह वैदिक मन्त्रों से, छन्दों से आपकी स्तुति गाते हुये चले गये, पर आपके क्रोध में न्यूनता नहीं आई। तो मैं असुर जाति में उत्पन्न तमोगुणी-रजोगुणी प्रह्लाद आपको कैसे प्रसन्न कर सकता है? पर एक ही मन में आशा है कि '**भक्त्या तुतोष भगवानगजयूथपाय**' अरे! गजेन्द्र में कौन-सी विद्या, कौन-सी योग्यता, कौन-सा उच्चजाति का संस्कार था? पर प्रीतिपूर्वक एक पुष्पदल प्रदान किया तो आप दौड़े दौड़े चले आये। इसी आशा में मैं भी आपका स्तवन कर रहा हूँ क्योंकि आपको कोई गुण से प्रभावित नहीं कर सकता, आप भक्ति के द्वारा ही प्रसन्न होते हैं। प्रभो! भक्त जो आपको समर्पित करता है, वह वस्तु भक्त को ही प्राप्त होती है।

जैसे कोई अपने प्रतिबिम्ब को सजाना चाहे तो क्या करे? आपने अपना प्रतिबिम्ब देखा, उसमें माथा सूना दिखाई पड़ा तो अच्छा नहीं लगा। अब आप चाहते हैं कि हमारे माथे पर तिलक लग जाये तो क्या करोगे? बिम्ब पर तिलक लगा दो, तो प्रतिबिम्ब पर अपने आप ही लग जायेगा। बिम्ब सजाये बिना प्रतिबिम्ब सज नहीं सकता। उसी प्रकार जीव है प्रतिबिम्ब और परमात्मा है बिम्ब। परमात्मा को जो वस्तु दी जायेगी, वह प्रतिबिम्ब रूपी जीवात्मा को स्वतः प्राप्त हो जायेगी।

'**प्रतिमुखस्य यथा मुखश्रीः**' प्रभो! आप कितने भी भयानक बन जाइये, पर '**अहं न बिभेमि**' मैं आपकी इस भयानकता से बिल्कुल नहीं डरता - '**नाहं बिभेम्यजित तेऽतिभयानकास्य**'। भगवान् बोले, क्यों! डर नहीं लग रहा? प्रह्लादजी बोले, सरकार! जब सिंह दहाड़ता है, तो सारे जानवर उसके डर से भाग जाते हैं। पर सिंह चाहे जितना दहाड़े, उसका बच्चा थोड़े-ही भागता है? सिंह दहाड़ता है और सिंह-शावक उसके कंधों पर जाकर बैठ जाता है, उसे तनिक भी भय नहीं लगता। उसी प्रकार जब आपने मेरे लिये ही यह विचित्ररूप बनाया है, मेरे लिये ही आये हो; तो चाहे जितने भयानक बनकर आ जाओ, मैं आपसे क्यों डरूँ? अरे! डर तो लगता है आपकी इस विचित्र माया से, जो जन्म-मरण की चक्की में सारे जगत् को पीस रही है। प्रभो! मुझे तो एक आश्चर्य होता है कि कहाँ तो मैं रजोगुणी-तमोगुणी असुर? और कहाँ आपकी कृपा? भले ही ब्रह्माजी आपके बेटा हैं, पर क्या आपने अपने बेटा ब्रह्मा को गोद में लेकर इतना प्यार दिया? क्या यह सौभाग्य आपकी पत्नी लक्ष्मी अथवा शिवजी को प्राप्त हुआ? जो किसी को प्राप्त नहीं हुआ, वह इस असुर को आपने प्रदान कर दिया;

क्वाहं रजःप्रभव ईश तमोऽधिकेऽस्मिन् जातः सुरेतरकुले क्व तवानुकम्पा ।
न ब्रह्मणो न तु भवस्य न वै रमाया यन्मेऽर्पितः शिरसि पद्मकरः प्रसादः ॥ (भा. 7/9/26)

प्रभो! एक ही आशीर्वाद दीजिये कि जो इन इंद्रियों के दास हम बने बैठे हैं, यह इंद्रियां हमारे वश में रहें। बहुपत्नियों के बीच में जैसे पति की विडम्बना होती है, ऐसे ही इंद्रियों के बीच में हम जीव की विडम्बना हो रही है। '**बह्व्यः सपत्न्य इव गेहपतिं लुनन्ति**' यह जितने भी इंद्रियजन्य सुख है,यह खुजली के समान होते हैं,

यन्मैथुनादिगृहमेधिसुखं हि तुच्छं कण्डूयनेन करयोरिव दुःखदुःखम्

खुजली को खुजलाने में जितना सुख मिलता है, परिणाम में उतनी ही पीड़ा होती है। यह संसार के समस्त विषय इसी प्रकार से हैं। रसगुल्ला खाने में बहुत अच्छा लगा, स्वाद में दो-चार ज्यादा डकार गये; सो अब खट्टी

डकारें आ रही हैं, पेट खराब हो रहा है। रसगुल्ला के नाम से नफरत हो रही है। यही स्थिति विषयों की है। प्रभो! जो अजितेन्द्रिय पुरुष हैं, (जिनकी इन्द्रियां वश में नहीं हैं) उनके लिये तो मौन व्रत, स्वाध्याय, तप, संयम, जप, आदि जितने भी मोक्ष के साधन हैं; वह पेट के साधन बनकर रह जाते हैं। पेट के साधन भी हमेशा के लिये नहीं बनते, जबतक पोल नहीं खुली तभी तक। दम्भ प्रकट हो जाने के बाद पेट के साधन भी नहीं रह जाते।

इस प्रकार से प्रह्लादजी ने बड़ी अद्भुत स्तुति की। भगवान् प्रसन्न होकर बोले, बेटा! कुछ वर माँग। प्रह्लादजी बोले, '**मा मां प्रलोभयत्**' यह लेने-देने के प्रलोभन न दीजिये। अरे! लेना-देना तो व्यापारियों में होता है, भक्त भगवान् के बीच में लेना देना कहाँ से आ गया? भगवान् बोले, बेटा! तू माँगेगा तो मुझे बड़ी खुशी होगी। प्रह्लादजी बोले, सरकार! जो भक्ति इसलिये कर रहे हैं कि प्रभु से कुछ मिलेगा, मेरी दृष्टि में वह भक्त नहीं।

न स भृत्यः स वै वणिक्

वह तो व्यापारी है, जो फायदे के लिये व्यापार कर रहा है। भगवान् बोले, बेटा! तू माँगेगा तो मुझे खुशी होगी। तेरी इच्छा नहीं है, तो भी मेरी खुशी के लिये तो माँग। प्रह्लादजी को लगा कि निष्काम तो होना चाहिये, पर निष्कामता का भी अभिमान नहीं रखना चाहिये। कोई महापुरुष आपको कुछ देवे और आप बार-बार मना कर दो, यह भी ठीक नहीं है। प्रह्लादजी बोले, यदि माँगने से आप प्रसन्न हैं, तो एक वरदान दीजिये। यही वरदान माँगता हूँ कि जीवन में कभी कुछ न माँगू। मेरे जीवन में कभी माँगने की इच्छा ही पैदा न होवे।

यदि रासीश मे कामान् वरांस्त्वं वरदर्षभ ।
कामानां हृद्यसंरोहं भवतस्तु वृणे वरम् ॥ (भा. 7/10/7)

प्रभु गद्गद् हो गये, प्रह्लाद! तेरे-जैसा निष्काम भक्त होना बहुत कठिन है। पर तू माँग नहीं सकता तो मैं भी दिये बिना रह नहीं सकता। चल बैठ पिता के सिंहासन पर और एक मन्वन्तर पर्यन्त राज्य कर और शुभाशुभ कर्मों को भोगने के बाद मेरा नित्य पार्षद बन जा। प्रह्लादजी बोले, प्रभु! यदि पद दे ही रहे हैं, तो फिर एक वर भी देना पड़ेगा? मेरे पिता जो मरे पड़े हैं, उनका शव सामने पड़ा है इनकी अधोगति नहीं होनी चाहिये। मेरे पिता को भी परमगति प्राप्त हो, इन पर भी आपकी दिव्य कृपा हो। भगवान् गद्गद् होकर बोले, पुत्र प्रह्लाद! जिस कुल में तेरे-जैसा भागवत जन्म लेता है, उसकी तो इक्कीस पीढियां तर जाती हैं। फिर जो मेरी गोद में शरीर त्याग रहा है, उसकी अधोगति कैसे हो सकती है? जा!! अपने पिता का अन्तिम संस्कार कर,

कुरु त्वं प्रेतकार्याणि पितुः पूतस्य सर्वशः

जैसे ही प्रह्लादजी अपने पिताजी का प्रेतकर्म करने के लिये बढ़े कि ब्रह्माजी ने प्रकट होकर प्रणाम करके भगवान् की दिव्य स्तुति की, प्रभो! '**दिष्ट्या ते निहतः पापो लोकसन्तापनोऽसुरः**' यह सारे लोक को संताप देने वाले असुर को मारकर आपने हम देवताओं पर बड़ा भारी अनुग्रह किया। भगवान् ब्रह्माजी को देखते ही भगवान् एकदम टेढ़े हो गये और डाँटते हुए बोले, ब्रह्माजी! खबरदार!! जो आज के बाद किसी दुष्ट को इतने वरदान दिये, '**अहीनाममृतं यथा**' सर्पों को अमृत पिलाते हो? ब्रह्माजी ने तुरन्त कान पकड़े, सरकार! अब यह भूल दुबारा नहीं होगी। श्रीशुकाचार्यजी कहते हैं, परीक्षित! तुम ही बताओ। कौन कहेगा कि भगवान् पक्षपाती हैं? दैत्यवंश का यदि वध करते तो क्या प्रह्लाद के ऊपर इतना बड़ा अनुग्रह करते? भगवान् तो समदर्शी ही हैं। जो जिस भाव से भजता है, भगवान् उसी भाव से स्वीकार करते हैं।

समदरसी मोहि कह सब कोऊ ।
सेवक प्रिय अनन्यगति सोऊ ॥ (मानस 4/3/4)

पिता के लिये तो सभी पुत्र बराबर होते हैं। पर जो दिन-रात सेवा में जुटा हुआ है, उस पुत्र के प्रति विशेष प्रीति पिता को हो ही जाती है। ऐसे ही '**अमृतस्य पुत्राः**' हम सब परमपिता की सन्तान तो हैं। पर जो दिन-रात भगवत्सेवा में समर्पित भक्त है, उनके प्रति भगवान् विशेष कृपामय हो जाते हैं, जैसे प्रह्लादजी के ऊपर हो गये।

वर्णाश्रम धर्म—श्रीशुकदेवजी कहते हैं, परीक्षित! युधिष्ठिरजी के पूछने पर देवर्षि नारद ने वर्णव्यवस्था बहुत विस्तार से बतलाई। चार वर्ण और चार आश्रम होते हैं। वर्ण हैं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। चारों को उपदेश दिया '**सदाचरणेनिरताः**'। ब्राह्मणों ने अपने स्वभाव प्रकृति के अनुसार अर्थ निकाल लिया, '**सद् आचरणे निरताः**' सत्-आचरण में ही निरत रहना चाहिये। हम ब्राह्मणों को सदाचारी होना चाहिये।

ब्राह्मणस्य हि देहोऽयं क्षुद्रकामाय नेष्यते ।
कृच्छ्राय तपसे चेह प्रेत्यानन्तसुखाय च ॥ (भा.मा. 11/17/42)

यही सूत्र जब क्षत्रियों ने सुना कि तो उन्होंने अर्थ लगाया, '**सदा च रणे निरताः**' धर्म की रक्षा के लिये हमेशा रणभूमि में तैयार रहो क्योंकि क्षत्रिय समाज की भुजा हैं। धर्म की रक्षा देश की रक्षा इन क्षत्रियों के बाहुबल से ही हो सकती है। इसी सूत्र को वैश्यों ने सुना तो अपनी प्रकृति के अनुसार अर्थ किया, '**सदा चरणे निरताः - सदा चरणे विचरणे**' व्यापार के लिये। अर्थात् एक जगह से व्यापार नहीं चलता इधर से उधर परिभ्रमण करते रहो। दूर दूर तक अपने व्यापार का विस्तार करो। शूद्रों ने इसी सूत्र का अपनी प्रकृति के अनुसार अर्थ किया, '**सदा चरणे निरता**' द्विजातियों के चरणों की सेवा करके अपनी जीविका निर्वहन करते हुए जीवनयापन करो।

इसी प्रकार से वर्णव्यवस्था का निरूपण करते हुए भगवान् गीता में कहते हैं,

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्म विभागशः

अब आश्रम भी चार हैं - ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास। पच्चीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन करके गुरुदेव की आज्ञा लेकर गृहस्थ मार्ग का चयन करे। ऊपर से नीचे की ओर कभी न आवे अर्थात् नीचे से ऊपर की ओर बढ़ता जावे। ब्रह्मचारी गृहस्थ बन सकता है, किन्तु गृहस्थ ब्रह्मचारी नहीं बन सकता। पचास वर्ष तक गृहस्थ जीवन में धर्मपूर्वक अर्थ का संचय करते हुए जीवनयापन करे। गृहस्थ जीवन का एक नियम है कि धन कितना भी हो, पर जितना अपने उपयोग में आवे उतने को ही अपना समझे। बाकी तो भगवान् की सम्पत्ति है, वह जहाँ-जहाँ लगाना चाहे लगावे।

यावद् भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम् ।
अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति ॥ (भा. 7/14/8)

अपने उपयोग से ज्यादा धन को जो अपना मानता है, जो उस पर अपना अधिकार समझता है, वह तो चोर है, दण्ड का भागी है। वह भगवान् की सम्पत्ति पर अपना अधिकार मान रहा है। सबको खिलाकर खावे, यह गृहस्थ का धर्म है। और पचास वर्ष के बाद इक्यावन, बावन, आदि में 'वन' के संकेत मिलने लगते हैं। अब वानप्रस्थ बन जाओ। घर गृहस्थी से आसक्ति को निकालो, जितने में बुद्धि शुद्ध रहे उतना ही तप करें। ज्यादा तपस्या और शरीर को कष्ट देने से भी बुद्धि बिगड़ सकती है। इसलिये वानप्रस्थ में संयम-नियम सब करे, ताकि बुद्धि शुद्ध बनी रहे। जब अच्छी तरह से अपने स्वरूप का बोध हो जाये, तब संन्यास आश्रम को ग्रहण कर ले। संन्यास का मतलब है, '**शरीरमात्र परिगृह**' यह शरीर भी पंचायती धर्मशाला है। यह भी अपना नहीं है यह

मकान खाली करके इस पंचतत्त्वात्मक शरीर को छोड़कर अपने घर जाना है, यह ज्ञान जिसे ठीक से हो जाये, वह ही सच्चा संन्यासी है।

दत्तात्रेय मुनि के दो गुरु विशेष हैं - अजगर और मधुमक्खी। थोड़ा-थोड़ा कण सबसे ग्रहण करके मधुमक्खी कितना शहद इकट्ठा कर लेती है? परिणाम क्या होता है? जहाँ शहद का संग्रह देखा कि लोग शहद तोड़कर ले गये, तमाम मधुमक्खियां मर गई। ऐसे ही संत यदि ज्यादा संग्रह करेगा, तो कोई हाथ-पैर तोड़ जायेगा और सारा माल भी ले जायेगा। इसलिये संन्यासी को संग्रह नहीं करना चाहिये। तो फिर खायेगा क्या? उसके लिये अजगर को गुरु बनाया। कोई खाने-पीने की चिन्ता नहीं करता। पर सबसे ज्यादा मोटा-तगड़ा अजगर ही होता है।

अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम

जब भूख लगती है तो श्वास खींचता है और जो मुँह में आ जाता है, वही खा लेता है। कभी कभी तो बकरा (अज) को भी साबुत निगल जाता है, इसीलिये उसका नाम अजगर पड़ा। दत्तात्रेय मुनि कहते हैं, मैंने भी यही सीखा! कभी-कभी तो पूर्णमासी का भंडारा है, कभी वैशाखी का भंडारा है। ऐसे भंडारे कई जगह आश्रमों में चल रहे हैं। सो कभी तो एक दिन में पाँच-पाँच बार खीर मालपुआ के खूब सटाकर लगाये। और फिर पता चला पाँच दिन तक कहीं अन्न के दर्शन ही नहीं हुये, तो कभी दस दिन के बाद में सूखे टिक्कड़ मिले; वह भी दस दिन पुराने, सो गंगाजी में गीले करके खाये; पर केवल जीने के लिये जीवनधारण के लिये भोजन चाहिये, स्वाद के लिये भोजन आवश्यक नहीं है। कभी श्रद्धा से मिलता है, तो कभी अश्रद्धा से।

श्रद्धयापहृतम् क्वापि कदाचिन्मानवर्जितम्

कभी चुपचाप पंगत में बैठ गये क्योंकि भूख लगी है इसलिये। तबतक किसी ने आकर पूछा, ऐ बाबा! पर्ची है? किस आश्रम से आया है? सो चुपचाप हाथ पकड़कर उठा दिया, चल भाग यहाँ से! कहाँ का पागल आकर महात्माओं के बीच में बैठ गया है? सो उठकर चुपचाप चल दिये। फिर उसी को दया आ गई, तो हाथ पकड़कर कहता है, चल! इधर बैठ। तो चुपचाप बैठ गये और जो खिलाया सो खाकर चुपचाप चले गये। ऐसे भी भोजन मिलता है। तो कभी-कभी भंडारे में भोजन पाने चुपचाप बैठे थे कि पड़ौसी ने घूरकर देखा और पहचान लिया, अरे! यह तो महामुनि दत्तात्रेय हैं, सो-ही हल्ला मच गया, महामुनि दत्तात्रेय पधारे हैं! और फिर क्या था? बड़े बड़े सेठ-साहूकार राजा-महाराजा आरती उतारने लगे, चरण धोकर चरणामृत पीने लगे, महलों में ले गये, चकाचक मालपुआ खिलाये, सोने की थाली में भोजन आया और फिर बढ़िया पलंग पर खर्राटे बजाये, चरण दबाये जा रहे हैं। इस प्रकार से कभी बड़े ठाठ के साथ भोजन मिलता है, तो कभी अपमानपूर्वक भी मिलता है, और दोनों में हम समान रहते हैं। हमारी इच्छा यह कभी नहीं रहना चाहिये कि कोई हमारी जय-जयकार ही बोले। इस प्रकार से जो अपने को हर हाल में मस्त रखे वह संन्यासी है।

दत्तात्रेय मुनि के माध्यम से श्रीनारदजी ने महाराज युधिष्ठिर को जो संन्यासधर्म की शिक्षा का जो उपदेश दिया था, वही श्रीशुकाचार्यजी महाराज परीक्षित को सुना रहे हैं। श्रीशुकदेवजी महाराज कहते हैं, परीक्षित! इस प्रकार मैंने तुम्हें दक्षपुत्रियों के वंशों का अलग अलग वर्णन सुनाया। उन्हीं के वंश में देवता, असुर, मनुष्य, आदि सम्पूर्ण चराचर की सृष्टि हुई है।

इति दाक्षायणीनां ते पृथग्वंशाः प्रकीर्तिताः ।
देवासुरमनुष्याद्या लोका यत्र चराचराः ॥ (भा. 7/15/80)

अथ श्रीमद्भागवतपुराणस्य

॥ अष्टमः स्कन्धः ॥

(मन्वन्तरः)

परममंगलमय भगवत्स्वरूप श्रीमद्भागवतमहापुराणान्तर्गत अष्टमस्कन्ध में मन्वन्तरों का निरूपण किया गया है। सत, त्रेता, द्वापर, कलि, आदि चारों युग जब एक-एक हज़ार बार व्यतीत होते हैं, तब ब्रह्माजी का एक दिन होता है। ब्रह्माजी के एक दिन में चौदह मन्वन्तर होते हैं। वे चौदह मन्वन्तर हैं - 1. स्वायंभुव, 2. स्वारोचिष, 3. औत्तम, 4. तामस, 5. रैवत, 6. चाक्षुष, 7. वैवस्वत, 8. सावर्णि, 9. दक्ष सावर्णि, 10. ब्रह्म सावर्णि, 11. धर्म सावर्णि, 12. रुद्र सावर्णि, 13 देव सावर्णि, तथा 14. इन्द्र सावर्णि। एक मन्वन्तर लगभग 72 चतुर्युगी के लगभग होता है। प्रत्येक मन्वन्तरों में भगवान् के अवतार हुआ करते हैं। एक बार चाक्षुष मन्वन्तर में प्रभु ने गज का ग्राह से उद्धार करने के लिये हरि अवतार धारण किया।

आसीद् गिरिवरो राजंस्त्रिकूट इति विश्रुतः ।
क्षीरोदेनावृतः श्रीमान्योजनायुतमुच्छ्रितः ॥ (भा. 8/2/1)

शुकदेव भगवान् कहते हैं, हे राजन्! त्रिकूट नामक पर्वत पर एक गजराज अपनी अनेक हथिनियों में झुण्ड के साथ विहार किया करता था। इतना बलशाली था कि सिंह भी इससे भय खाते थे - **यद्गन्धमात्राद्धरयो गजेन्द्रा'**। पर एक दिन भीषण गर्मी से संतप्त गजराज सरोवर में जल पीने अपने परिकर के साथ गया। पानी पीकर प्यास तो बुझाई और उसी जल में प्रविष्ट होकर जलक्रीडा करने लगा। पानी जब बहुत ज्यादा मैला होता चला गया, तो जल में बैठे हुए एक ग्राह को क्रोध आ गया। उसने आकर गजराज का पैर पकड़ लिया। पहले तो गजराज ने विचार किया कि नन्हा-सा जीव मेरा क्या बिगाड़ सकता है? मेरे डर से तो बड़े-बड़े सिंह पलायन कर जाते हैं? पर जब अपना बल-पराक्रम पूरा लगाने पर भी अपना पैर छुड़ा नहीं पाया, सो समझ गया कि ये साधारण नहीं है। हथिनियों की ओर इशारा किया कि आप ही बचा लो! पूरे परिवार ने मिलकर पूरा बल दिखाया, फिर भी ग्राह ने पैर नहीं छोड़ा। बहुत समय तक युद्ध चला। अंततोगत्वा इसका सारा परिवार शनैः-शनैः खिसकने लगा।

अब गजराज पुकारने लगा, देवियों! मुझे इस संकट में अकेला छोड़कर कहाँ जा रही हो? हथिनियों ने कहा, महाराज! अब तुम्हारे कारण कोई पूरा परिवार यहाँ बैठा-बैठा भूखा तो नहीं मर सकता? ऐसा सुनते ही हाथी को वैराग्य हो गया और संसार का वास्तविक स्वरूप सामने आ गया। सोचने लगा, जब तक मुझमें बल था पराक्रम था, सो सब झुण्ड मेरे साथ चलता था और आज एक छोटे-से मगर ने पैर पकड़ा, तो सब मेरा साथ छोड़कर भाग गये? अब पता चला कि ये तो सब मेरे सुख के साथी थे। श्रीनानकजी महाराज कहते हैं,

प्रीतम जान लियो मन माही ।
अपने सुख से ही जग बांध्यो, कोउ काहू को नाहीं ॥

सुख में आन सबहिं मिल बैठत रहत चहुं दिस घेरे ।
विपत पड़ी सबहि संग छांड़त कोऊ न आवत नेरे ॥

हाथी को बात समझ में आ गई, पर ये बात हमारी समझ में नहीं आती। देहाभिमान लिये हम भी हाथी की तरह उन्मत्त होकर विचरण करते हैं। परन्तु जब मृत्युरूपी मगर पैर पकड़ता है, तो जकड़ता ही चला जाता है। परिजनों के सेवा की भी एक सीमा है। अंततोगत्वा वे भी भगवान् से प्रार्थना ही करने लगते हैं, महाराज! अब इनकी जल्दी सुनो। पर इसके बाद भी आसक्ति नहीं छूटती। गजेन्द्र ने जब समझ लिया, तो तुरन्त सबसे चित्त हटाकर गोविन्द के चरणकमलों में ध्यान लगाया और बड़ी अद्‌भुत स्तुति की। परन्तु इसकी स्तुति में एक बार भी किसी देवता का नाम नहीं आया है।

ॐ नमो भगवते तस्मै यत एतच्चिदात्मकम् ।
पुरुषायादिबीजाय परेशायाभिधीमहि ॥ (भा. 8/3/2)

गजराज बोला, जो इस समस्त जगत् का मूल कारण है, जो समस्त जगत् का सृजन पालन और संहरण करने का जो मूल हेतु है; उस परमतत्त्व को मेरा प्रणाम है! पर वह है कौन? नाम किसी का नहीं लिया।

एवं गजेन्द्रमुपवर्णितनिर्विशेषं ब्रह्मादयो विविधलिङ्गभिदाभिमानाः ।
नैते यदोपससृपुर्निखिलात्मकत्वात् तत्राखिलामरमयो हरिराविरासीत् ॥ (भा. 8/3/30)

ब्रह्मादि देवता सब देख रहे हैं, परन्तु विचार कर रहे हैं कि जब हमें पुकारता नहीं, तो हम क्यों दौड़ें? प्रभु ने विचार किया कि इतनी सुन्दर स्तुति है, पर नाम किसी का नहीं? तो ये स्तुति किसकी मानी जाये? अन्त में प्रभु ने निर्णय लिया कि जो किसी की स्तुति नहीं, सो हमारी! और भगवान् अपना नाम सुने बिना ही गरुड़ारूढ़ होकर दौड़ पड़े। जब गजेन्द्र ने देख लिया कि गरुड़ पर चढ़कर गोविन्द आ रहे हैं, तब इसने नाम लिया।

सोऽन्तःसरस्युरुबलेन गृहीत आर्तो दृष्ट्वा गरुत्मति हरिं ख उपात्तचक्रम् ।
उत्क्षिप्य साम्बुजकरं गिरमाह कृच्छ्रान्नारायणाखिलगुरो भगवन् नमस्ते ॥ (भा. 8/3/32)

जब उसने देख लिया कि गरुड़ पर चढ़कर नारायण मेरी रक्षा के लिये आ रहे हैं, तो डूबते-डूबते सरोवर से अपनी सूंड़ के द्वारा एक कमल उखाड़ लिया और वही कमल भगवान् कमलाकान्त के चरणों में चढ़ा दिया। भगवान् ने देखा, ये तो बिल्कुल डूबा जा रहा है, तो तुरन्त भगवान् ने उसकी सूंड़ को पकड़ा और बाहर खींच लिया। जैसे-ही प्रभु ने हाथी को बाहर निकाला, तो मगर भी पैर से खिंचा चला आया। भगवान् ने अपने दिव्य सुदर्शनचक्र से उस ग्राह का मुख फाड़ दिया और गजराज का उद्धार कर दिया।

ग्राहाद्विपाटितमुखादरिणा गजेन्द्रम्

शंका - संकट में गजराज था। उसी ने गोविन्द को पुकारा। पर गोविन्द ने आते ही सबसे पहले ग्राह को उबारा। ग्राह का उद्धार पहले, गजराज का बाद में हुआ क्यों? **समाधान** - मानो प्रभु कहना चाहते हैं कि जिसने मेरे चरण पकड़ लिये, उसका उद्धार तो होना-ही-होना है पर जो मेरे भक्त के चरण पकड़े बैठा है, पहले मैं उसका उद्धार करता हूँ। भगवान् ने दोनों का ही उद्धार किया।

शुकदेव भगवान् कहते हैं, हे राजन्! ये गज और ग्राह - दोनों ही पूर्वजन्म में शापित थे। ये जो ग्राह था, वह पूर्वजन्म का हूहू' नाम का गन्धर्व था, जो हमेशा परिहास करता रहता था। लोक-मनोरंजन करना ही इसका कार्य था। देवताओं में कुछ गन्धर्व हैं, जो सबको प्रसन्न रखने के लिये ही विविध चेष्टायें करते हैं। इनका (भा.

7/हाहा, हूहू, आदि क्योंकि सबको हंसाते रहते हैं। तो पूर्वजन्म में ये हूहू गन्धर्व एक सरोवर में स्नान करने आया। वहीं महर्षि देवल स्नान करके सूर्यनारायण को अर्घ्य दे रहे थे। इसे परिहास सूझा और इसने पानी में डूबकर उन ऋषि का पैर पकड़ लिया। महात्मा घबड़ा गये, बचाओ बचाओ ... ! चिल्लाकर भागे। उन्होंने सोचा, न जाने किस जीव ने पकड़ लिया? तो ये बाहर निकलकर हंसने लगा, कहो महाराजजी! डर गये? महाराजजी के तो पसीना छूट गये, अरे! मूर्ख कहीं के!! हम अच्छे भले भजन कर रहे थे, हमारे भजन में विक्षेप कर दिया। तुझे पैर पकड़ने का ज्यादा-ही शौक है, तो जा मेरा शाप है, मूर्ख! तू मगर ही बन जा। तब चरणों में गिरकर गिड़गिड़ाने लगा, महाराज! मेरा तो उद्देश्य मनोरंजन करने का था। और फिर मैंने कोई बुरा काम नहीं किया, आपके चरण ही तो पकड़े थे? महात्मा प्रसन्न होकर बोले, बेटे! ऐसे ही चरण पकड़ते रहना, तो कल्याण भी हो जायेगा। आज इसने हाथी का पैर पकड़ा तो उद्धार हो गया। पूर्वजन्म में ये हाथी इन्द्रद्युम्न नाम का राजा था। इसने अगस्त्य मुनि को देखकर अनदेखा कर दिया और प्रणाम नहीं किया। अगस्त्यजी ने क्रोधित होकर उसे शाप दिया,

विप्रावमन्ता विशतां तमोऽन्धं यथा गजः स्तब्धमतिः स एव

गजराज की तरह अभिमान में भरे बैठे हो, तो जाओ हाथी ही बन जाओ। जब राजा ने अनुनय-विनय की तो अगस्त्यजी ने क्षमा कर दिया और कहा, अच्छा जाओ! हाथी बनोगे, पर तुम्हारे भक्ति-भजन के संस्कार बने रहेंगे। **प्राक्जन्मन्युनशिक्षितम्' तो** ये पूर्वजन्म की शिक्षा और संस्कार का ही प्रभाव था, जो कुंजर देह से भगवान् की स्तुति करके इस गजराज का उद्धार हुआ। इस प्रकार से भगवान् मन्वन्तरों में विविध रूप से अवतार लेते हैं।

भजन - हे गोविन्द हे गोपाल, राखो शरण हमारे । अब तो जीवन हारे ॥

दुर्वासाजी द्वारा इन्द्र को शाप, देवताओं का श्रीहीन होना, देवताओं का भगवान् के पास जाना, समुद्रमन्थन का वर्णन, मोहिनी भगवान् का अवतार

एक बार दुर्वासा मुनि द्वारा आशीर्वादरूप में प्रदत्त माला की इन्द्र ने अवज्ञा कर दी। इस अवज्ञा से क्रुद्ध हुए दुर्वासा मुनि ने इन्द्र को शाप दे दिया, जा! तू श्रीहीन हो जा। शुक्राचार्यजी को पता चला कि इन्द श्री से हीन हो गये हैं, सो दैत्यों से कहा कि स्वर्ग पर आक्रमण कर दो। दैत्यों ने मिलकर आक्रमण किया और सारा स्वर्ग देवताओं से छीन लिया। देवता बेचारे गिड़गिड़ाते गोविन्द की शरण में गये। भगवान् बोले, भाई! तुम्हारा श्री-वैभव समुद्र में समा गया है। समुद्रमन्थन करो, तभी तुम्हें बल-पराक्रम प्राप्त होगा। देवताओं ने पूछा, महाराज! हम समुद्रमन्थन कैसे करें? भगवान् बोले, तुम अकेले नहीं कर सकोगे। अतः, दैत्यों से सहयोग लो। **अहिमूषकवत्'** जैसे परिस्थिति विपरीत आई तो सर्प ने भी चूहे से मित्रता करके अपना काम चलाया। उसी प्रकार कूटनीति कहती है,

अरयोऽपि हि सन्धेयाः सति कार्यार्थगौरवे ।
अहिमूषकवद् देवा ह्यर्थस्य पदवीं गतैः ॥ (भा. 8/6/20)

सर्प के सामने चूहा कुछ भी नहीं है। पर जहाँ काम आवे, तो विवेकपूर्वक अपना कार्यसिद्ध करने के लिये शत्रु को भी 'राम-राम' कहकर कार्य बना लेना चाहिये। देवताओं को बात समझ में आ गई और देवताओं ने दैत्यों के सामने समुद्रमन्थन का प्रस्ताव रखकर कहा, भाई! जो अमृत निकलेगा, वह हम सब भाई मिलकर पी

लेंगे। अमृत पीकर अमरत्व की प्राप्ति हो जायेगी, तो फिर चाहे जितना झगड़ा होवे; पर मरने वाला कोई नहीं होगा। दैत्यों ने कहा, वाह! ये बात तो पसन्द आई। भाई! चलो चलते हैं।

देवता और असुर मिलकर गये। समुद्रमन्थन हेतु सबसे पहले मन्दराचल पर्वत को उठाया। पर्वत उठाकर चल दिये, पर गणेशजी का पूजन तक नहीं किया, तो विघ्नेश्वर गणेशजी महाराज नाराज हो गये। एक कदम ही चल पाये थे कि हाथ से छूटकर धड़ाम से पहाड़ गिर गया। सब देवता और दैत्यों के हाथ-पैर टूट गये। दैत्य तो हाथ जोड़कर दूर खड़े हो गये, भैया! हमें अमृत नहीं पीना। देवताओं ने प्रभु का ध्यान किया तो भगवान् नारायण प्रकट होकर बोले, भाई! घबड़ाओ मत। इस पर्वत को मैं लिये चलता हूँ।

गिरिं चारोप्य गरुडे हस्तेनैकेन लीलया

प्रभु ने एक हाथ से ही पर्वत को उठाकर गरुड पर रखकर समुद्रतट पर पहुँचा दिया। अब भगवान् ने सबसे कहा, कि अब जाओ! रस्सी का प्रवन्ध करो। तो सब मिलकर वासुकिनाग के पास गये। समुद्रमन्थन कार्य में रस्सी बनने हेतु प्रार्थना की। वासुकिनाग ने कहा, भाई! अमृत में हमारा हिस्सा होवे, तब तो हम सहयोग कर सकते हैं। सबने एक स्वर में स्वीकार किया। वासुकिनाग को लाकर मन्दराचल पर्वत(भा. 7/या। प्रभु ने सोचा, जिसने मुँह पकड़ लिया उसकी विडम्बना हो जाएगी। सो भगवान् जान-बूझकर बोले, भाई देवताओ! आप उच्चकुल में जन्म लिये श्रोत्रिय-ब्रह्मनिष्ठ हो। इसलिये आप लोगों को आगे लगना चाहिये। और दैत्यों से कहा, जाओ! जाकर पूँछ की तरफ लग जाओ। दैत्यों ने कहा, आपने क्या हमें ही गिरे खानदान का समझ रखा है? महाराज! मन्थन होवे या न होवे पर आगे लगेंगे, तो केवल हम ही लगेंगे।

न गृह्णीमो वयं पुच्छमहेरङ्गममङ्गलम्

भगवान् बोले, नाराज मत हो भाई! तुम ही बड़े बाप के बेटे हो, आगे तुम ही लगोगे। देवताओं से कहा, अच्छा भैया जाओ! तुम ही पीछे लग जाओ। प्रभु तो चाहते ही यही थे। देवताओं ने पूंछ और दैत्यों ने मुख पकड़ लिया। जो पर्वत लाकर समुद्र में रखा कि वह डूबता ही चला गया। उस विघ्न को दूर करने के लिये विशाल कछुए का रूप बनाकर भगवान् ने मन्दराचल पर्वत को पीठ पर उठा लिया। ये भगवान् का कच्छप अवतार हुआ।

कृत्वा वपुः काच्छपमद्भुतं महत् प्रविश्य तोयं गिरिमुज्जहार

अब जैसे-ही मन्थन प्रारम्भ हुआ तो वासुकिनाग की फुंफकारों से सब दैत्य जलने लगे। और पूंछ की ओर लगे देवताओं पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। असुर अब मन ही मन पछताने लगे, हे भगवान्! अच्छे बड़े बाप के बेटा बने, बहुत पछताये। बड़े बनने में बड़े झंझट हैं। अस्तु! मन्थन प्रारम्भ हुआ तो कुछ ही समय बाद कालकूट विषाग्नि प्रकट हो गई। सब जलचर उस विषाग्नि से छटपटाने लगे। देवता घबड़ा गये, ये क्या हुआ? भगवान् बोले, मत घबड़ाओ! सभी लोग विष को एकत्र करके भगवान् भोलेनाथ की शरण में पहुँचे।

देवदेव महादेव भूतात्मन् भूतभावन ।
त्राहि नः शरणापन्नांस्त्रैलोक्यदहनाद् विषात् ॥ (भा. 8/7/21)

हे देवाधिदेव भूतभावन भोलेनाथ! त्रैलोक्य को दग्ध करने वाले इस भयंकर विष से हमारी रक्षा करो! भगवान् शिव मुस्कुराते हुए भवानी से बोले, देवि! ये सब मुझे विष पिलाने के लिये हाथ-पैर जोड़ रहे हैं। बोलो तुम्हारी क्या इच्छा है? भवानी दुविधा में पड़ गई, मैं क्या बताऊँ? पर विवेक से [(भा. 7/ बाद माता भवानी ने

कहा, भगवन्! आप वही कीजिये, जिससे सबका कल्याण हो। भोलेनाथ ने कहा, क्या मतलब? विष हम पी जायें? भवानी ने कहा, ये मैं नहीं कहती महाराज! कौन पतिव्रता अपने पति से कहेगी कि तुम विष पी लो? भले ही वह सामर्थ्यवान हो। तो माता भवानी सब समझ रही हैं, इसलिये **प्रभावज्ञान्वमोदत**' भोलेनाथ के प्रभाव से परिचित होने के नाते परोक्ष अनुमोदन कर रही हैं। भोलेनाथ समझ गये बोले, भैया! ले आओ कहाँ है विष?

ततः करतलीकृत्य व्यापि हालाहलं विषम् । 8/7/42
अभक्षयन्महादेवः कृपया भूतभावनः ॥ (भा. 8/7/42)

अंजलि बाँधकर भोलेनाथ ने तुरन्त प्रभु का नाम लेकर विष पीना प्रारम्भ कर दिया। शिवजी जानते हैं कि विष भीतर गया तो मेरे हृदय में श्रीरामभद्र का जो नित्य निवास है, कहीं उन्हें कष्ट न पहुँचे? और वमन किया तो सारा विश्व समाप्त हो जायेगा। क्या करें? तो राम नाम का आश्रय लिया। रा' कहने से मुँह खुल जाता है तथा म' कहने से मुँह बन्द हो जाता है। तो रा 'कहा और मुँह खोलकर सारा [(भा. 7/ डालने के बाद म' कहकर मुँह बन्द कर लिया। और रामनाम के बीच में सारा विष गले में अटका लिया। न भीतर उतारा, न बाहर छोड़ा।

नाम प्रभाउ जान शिव नीको ।
कालकूट फलु दीन्ह अमी को ॥ (रामचरितमानस 1/19/4)

नाम के प्रताप से विष को ही भगवान् शंकर ने अमृत तुल्य बना लिया। भोलेनाथ का कण्ठ एकदम नीला हो गया, भोलेनाथ का नाम नीलकण्ठ हो गया।

यच्चकार गले नीलं तच्च साधोर्विभूषणम्(भा. 7/जी कहते हैं, परीक्षित! साधुओं का आभूषण है परमार्थ। भगवान् शम्भु ने समाज के संकट को दूर करने के लिये विष पीना स्वीकार कर लिया। और वह कण्ठ पर जो नीला चिह्न बन गया, वह उनके परमार्थ का एक दिव्य आभूषण उन्हें प्राप्त हो गया। समस्त देववृन्द भोलेनाथ की जय-जयकार बोलते हुए पुनः समुद्रमन्थन करने आये। और अब की बार जब मन्थन किया तो '**हविर्धानी ततोऽभवत्**' कामधेनु गाय प्रकट हुई, जो ऋषियों को दान कर दी। पुनः मन्थन करने पर चन्द्रमा प्रकट हुआ, तो भोलेनाथ के मस्तिष्क पर विराजमान किया, जिससे भोलेनाथ चन्द्रमौलि बन गये। पुनः मन्थन हुआ तो उच्चैःश्रवा घोड़ा निकला, जो बलि ने लिया। फिर ऐरावत हाथी निकला, जो इन्द्र ने लिया। पुनः मन्थन हुआ तो कौस्तुभमणि निकली जो नारायण के कण्ठ में स्थापित हुई। रम्भादिक अप्सरायें निकलीं, जिन्हें स्वर्गलोक भेज दिया गया। पारिजातवृक्ष निकला तो उसे स्वर्ग में स्थापित किया। और अब की बार मन्थन करते ही, जैसे नीले आकाश में अचानक बिजली चमक पड़ती हैय ऐसे ही सागर की जलराशि के मध्य भगवती श्रीलक्ष्मीजी का प्रादुर्भाव हो गया।

ततश्चाविरभूत् साक्षाच्छ्री रमा भगवत्परा ।
रंजयन्ती दिशः कान्त्या विद्युत्सौदामिनी यथा ॥ (भा. 8/8/8)

माता लक्ष्मी के दिव्य सौंदर्य-माधुर्य को देखकर देवता और दैत्य - दोनों विमुग्ध हो गये। भगवान् बोले, एक काम करो! सब पंक्तिबद्ध होकर बैठ जाओ और वरमाला इनके हाथ में है। जिसे चाहेंगी, उसे पहना देंगी। एक पंक्ति में दैत्य, एक पंक्ति में देवता और एक पंक्ति में बड़े-बड़े महात्माजी चमीटा गाड़कर बैठ गये। लक्ष्मी मैया ने वरमाला लेकर संतों की पंक्ति में प्रथम प्रवेश किया। तो सबसे आगे बैठे थे महात्मा दुर्वासा मुनि।

दुर्वासाजी को देखकर भगवती लक्ष्मी विचार करने लगीं,

नूनं तपो यस्य न मन्युनिर्जयः

निश्चितरूप से ये तपस्वी हैं, पर क्रोध पर इन्होंने विजय प्राप्त नहीं की। इनकी नाक पर ही गुस्सा रखा रहता है। इसलिए प्रणाम करके आगे बढ़ गई। इस प्रकार एक-एक करके सबका कोई-न-कोई दोष दिखाती हुई लक्ष्मीजी आगे बढ़ती गई। भगवान् शम्भु का दर्शन किया तो विचार करने लगीं, तपस्वी-तेजस्वी भी हैं और भोले-भाले भी हैं, पर इनका वेष बड़ा अमंगल है।

यत्रोभयं कुत्र च सोऽप्यमङ्गलः

इसलिये प्रणाम करके आगे बढ़ गई। भगवान् नारायण सबसे अलग-थलग बैठे हैं। तो नारायण प्रभु को देखते ही लक्ष्मीजी मुग्ध हो गई। सोचने लगी, स्वभाव से भी सुन्दर हैं और स्वरूप के भी सुन्दर हैं।

मङ्गलम् भगवान् विष्णु र्मङ्गलम् गरुड़ध्वजः।
मङ्गलम् पुण्डरीकाक्षः मङ्गलायतनो हरिः॥

सब कुछ मंगलरूप है, बस थोड़ी-सी कसर यहाँ भी है। '**सुमङ्गलः कश्च न काङ्क्षते हि माम**' सुमंगल तो हैं, पर और सब जिस प्रकार से टुकुर-टुकुर मुझे देख रहे हैं और इनके सामने घंटे भर से खड़ी हूँ, एक निगाह उठाकर भी हमें नहीं देखा? मुझे पाने की आकांक्षा इनमें नहीं है। पर ये दूषण नहीं, भूषण ही है। ऐसा विचार करके भगवान् श्रीमन्नारायण के कण्ठ में वरमाला डाल ही दी।

लक्ष्मीजी का स्वभाव है, जो हाथ धोकर उनके पीछे पड़ जाता है, उसे खूब नचाती हैं। पर जो लक्ष्मीजी की उपेक्षा करके बैठ जाता है, लक्ष्मीजी उसके पीछे पड़ जाती हैं। लक्ष्मीजी ने नारायण प्रभु को ही चुना। वह तो साक्षात् उनकी वामा हैं। शुकदेवजी कहते हैं, परीक्षित! अब समुद्रमन्थन जब आगे हुआ तो वारुणी प्रकट हुई, जो दानवों ने ग्रहण की। अब पुनः मन्थन होते ही साक्षात् भगवान् धन्वन्तरि अमृत का कलश लेकर प्रकट हो गये।

अमृत का कलश देखते ही दैत्यों ने इशारा किया, देर करने की आवश्यकता नहीं और मार झपट्टा अमृत का कलश छीनकर नौ-दो-ग्यारह हो गये। देवता बेचारे, लै गयो ... लै गयो ...!! करते रह गये। भगवान् मुस्कुराकर बोले,

मा खिद्यत मिथोऽर्थं वः साधयिष्ये स्वमायया

आप लोग खेद न कीजिये! मेरे आश्रित जो रहते हैं, उनके गये हुये पदार्थ भी उनके पास आ जाते हैं। और जो मेरे चरणों से दूर चले जाते हैं, उनके आये हुये पदार्थ भी उन्हें छोड़कर चले जाते हैं। भगवान् अर्न्तध्यान हुये। दैत्यलोग अमृत कुम्भ तो लेकर भाग गये, पर आपस में ही झगड़ा करने लगे,

अहं पूर्वमहं पूर्वं न त्वं न त्वमिति प्रभो

मैं बड़ा हूँ, पहले मैं पियूँगा! दूसरा कहता है, मैं सबसे ज्यादा बलवान् हूँ, इसलिये पहले मैं पियूँगा। तू-तू मैं-मैं होने लगी। भगवान् को अवसर मिला और इसका लाभ उठाते हुये भगवान् तुरन्त एक परम सुन्दरी मोहिनी के रूप में प्रकट होकर, कमल का पुष्प घुमाते हुये, सबके चित्त को चुराते हुये पहुँच गये। भगवान् के उस दिव्यरूप का दर्शन करते ही सब दैत्यगण विमुग्ध हो गये।

अहो रूपमहो धाम अहो अस्या नवं वयः

रूप सौंदर्य की महिमा गाते हुए दैत्यगण मोहिनी भगवान् के सामने आकर बोले,

का त्वं कंजपलाशाक्षि कुतो वा किं चिकीर्षसि

हे कमलनयनी! आप कौन हैं? कहाँ से आई हो? कहाँ जा रही हो? अकेली-अकेली घूम रही हो, क्या तुम्हारा विवाह नहीं हुआ? मोहिनी भगवान् मुस्कुराकर बोले, तुम हमारी जन्मपत्री लेने वाले कौन हो? दैत्यों ने कहा, हम भी कोई ऐसे-वैसे नहीं हैं?

वयं कश्यपदायादा भ्रातरः कृतपौरुषाः

हम सब कश्यप ऋषि के पुत्र तथा सभी लोग भाई हैं। और हम भाईयों ने समुद्रमन्थन किया है, जिससे अमृत को प्राप्त कर लिया। मोहिनी भगवान् ने पूछा, अच्छा! तो फिर अब इसका क्या कर रहे हो? दैत्य बोले, देवीजी! इसके बँटवारे को लेकर हम आपस में झगड़ रहे हैं। निर्णय नहीं कर पा रहे कि कैसे वितरण किया जाये? भगवान् की कृपा से आप ठीक अवसर पर आई हो। बँटवारा आपके हाथों से हो जायेगा, तो हमारा तो झगड़ा ही मिट जायेगा। क्या ये अमृत आप अपने हाथों से पिलायेंगी?

भगवान् ने पहले थोड़ा-सा त्याग दिखाया। मोहिनी भगवान् बोले, राम राम! कश्यप बाबा का तो मैंने बहुत नाम सुना है। और ऐसे महात्मा कश्यप के तुम-जैसे मूर्ख बेटा। दैत्यों ने कहा, ऐ देवी! हम तुम्हें मूर्ख कहाँ से नज़र आते हैं? मोहिनी भगवान् बोले, ये मूर्खता नहीं तो और क्या है? मेरे बारे में कुछ ज्ञान नहीं, कुछ पता नहीं, जान नहीं, पहचान नहीं और एक अपरिचित स्त्री पर इतना बड़ा भरोसा? कि अमृत जैसी बहुमूल्य वस्तु बँटवारे के लिये मुझे सौंप रहे हो? ये कोई बुद्धिमानी की बात है?

कथं कश्यपदायादाः पुंश्चल्यां मयि सङ्गताः।
विश्वासं पण्डितो जातु कामिनीषु न याति हि॥ (भा. 8/9/9)

कोई भी बुद्धिमान पुरुष अपरिचित स्त्री पर कभी विश्वास नहीं करता, जैसा तुम लोग कर रहे हो। अब तो दैत्यों में देवीजी के प्रति और ज्यादा श्रद्धा उत्पन्न हो गई। एक बोला मुझे तो लगता है कि ये बहुत पढ़ी लिखी है। दूसरा बोला, मुझे तो लगता है कि बहुत ऊँचे खानदान की है। इतनी बढ़िया ज्ञान की बात इसने की। ये ठीक कह रही है, हमें विश्वास नहीं करना चाहिये। परन्तु इसके वचनों से ऐसा सिद्ध हो रहा है कि ये कुलीन स्त्री है, अतः विश्वास करने योग्य है। तब विचार करके सभी दैत्य बोले, देवीजी! कुछ भी हो। अब तो हम ये अमृत आपके हाथ से ही पियेंगें।

भगवान् बोल(भा. 7/है! पर मेरी भी एक शर्त है। बँटवारे के समय हो सकता है कम ज्यादा मात्रा हो जाये? तो मुझसे झगड़ा मत कर बैठना? दैत्यों ने कहा, अरे कैसी बात करती हो देवी! तुम अच्छे खानदान की हो, तो हम भी कोई गिरे खानदान के नहीं हैं। कैसे भी चाहो बाँटो! हम वचन देते हैं, आपसे कोई भी झगड़ा नहीं करेगा। मोहिनी भगवान् बोले, तब ठीक है लाओ! अमृत कलश अपने हाथ में ले लिया और तब तक देवता लोग आ गये।

भगवान् बोले, एक काम करो! इस घड़े में मैं देख रही हूँ कि गाढ़ा-गाढ़ा अमृत सब नीचे रखा है और ऊपर खाली पानी-पानी दिख रहा है। तो क्यों न पहले एक-एक बूंद इन देवताओं को पिला दिया जाये? ऊपर का पानी-पानी ठिकाने लग जायेगा। फिर गाढ़ा-गाढ़ा बाद में आपको पिलाऊँगी! दैत्य खुश हो गये, जैसा अच्छा लगे, वैसा करो। भगवान् ने अमृत देवताओं को (भा. 7/भ कर दिया और दैत्यों की तरफ मुस्कुराते ही रहे। दैत्य

रूपसुधा का पान करते रहे, उधर देवता अमृतसुधा पान करते रहे। अब दैत्यों में स्वर्भानु नामक दैत्य बड़ा बुद्धिमान था। उसे शंका हो गई तो तुरन्त देवता का वेष बनाकर सूर्य और चन्द्र के बीच में अंजलि बाँधकर बैठ गया। भगवान् ने उसे भी पिला दिया। सूर्य और चन्द्र ने तुरन्त इशारा किया, भगवन्! ये नकली है। प्रभु ने तुरन्त उसका सुदर्शनचक्र से सिर काट दिया। वह असुर दो भागों में विभक्त होकर राहु और केतु के रूप में परिणित हो गया। तभी भगवान् अन्तर्ध्यान हो गये।

देवासुर-संग्राम, बलि की स्वर्ग पर विजय, वामनावतार एवं मत्स्यावतार की कथा

अब दैत्यों को होश आया, भैया! वह देवीजी कहाँ चली गई? अब देवीजी का तो कहीं अता-पता नहीं। देवता सब डकारें ले रहे हैं, पेट पर हाथ घुमा रहे हैं। दैत्यों को लगा, ओ हो! लगता है हमारे साथ धोखा हुआ। वह धोखा देने वाली कौन थी? पता लगाओ! एक बोला, मुझे तो लगता है वह 'थी' नहीं :था'। निश्चितरूप से वह बहुरूपिया विष्णु ही होगा। उसी ने हमें ठगा है, छला है। हम इन देवताओं को छोड़ेंगे नहीं, ये धोखेबाज हैं। सब दैत्य टूट पड़े और उसी समय बड़ा भयंकर देवासुर संग्राम छिड़ गया।

तत्र दैवासुरो नाम रणः परमदारुणः

श्रीशुकदेवजी कहते हैं, परीक्षित! देवता अमृत पान कर चुके थे, अतः बलशाली थे। इसलिये सारे दैत्यों को चुन-चुनकर समाप्त कर दिया। दैत्यराज बलि भी मारे गये। स्वर्ग पर देवताओं का पुनः अधिपत्य हो गया। परन्तु शुक्राचार्यजी महाराज ने मृतसंजीवनी विद्या के चमत्कार से समस्त दैत्यों को पुनर्जीवित कर दिया। दैत्यों के राजा बलि शुक्राचार्यजी के चरण पकड़कर बोले, गुरुदेव! आपने बचा लिया, नहीं तो हम तो मर ही चुके थे। अब कुछ ऐसी कृपादृष्टि करो कि इन देवताओं को इसका फल दिया जाये। शुक्राचार्यजी बोले, देखो! उनके पक्ष में नारायण हैं, तो तुम्हारे पक्ष में गुरुजी हैं। चिंता मत करना! यदि मेरी बात ठीक-ठीक मानते रहे, तो अब भी मैं तुम्हें स्वर्ग के सिंहासन पर बैठा सकता हूँ। मेरे पास सब देवताओं की काट है, पर इस नारायण की कोई काट नहीं है। और उसका एक ही समाधान है कि नारायण ब्रह्मण्य है, ब्राह्मणों का अनन्य भक्त है। यदि तुमने भी ब्राह्मणों की भक्ति स्वीकार कर ली, तो फिर नारायण तुम्हारा कुछ भी अहित नहीं करेगा। बलि बोला, अच्छा! तब ठीक है महाराज। अब तो ब्राह्मणों की बड़ी-बड़ी दण्डवत् होने लगी। ब्राह्मण भोले-भाले गद्‌गद् होकर बोले, बोलो महाराज बलि! क्या चाहते हो? बलि ने ब्राह्मणों से कहा, महाराज! बस आपका आशीर्वाद चाहिये। तो ब्राह्मणों ने अपने-अपने तपोबल के प्रताप से एक तेजोमय रथ का निर्माण क्रिया और आशीर्वाद स्वरूप दैत्यराज बलि को प्रदान कर दिया। ब्राह्मण बोले, बलि! यदि तुम्हारे सामने इन्द्र भी आ जाये, तो उसे भी पराजित ही होना पड़ेगा - ये हम ब्राह्मणों का आशीर्वाद है। अब तो बलि गद्‌गद् हो गये और उस तेजोमय रथ में बैठकर स्वर्ग पर आक्रमण बोल दिया।

उस रथ से इतना दिव्य तेज निकल रहा था कि देवता तो उसे देखने में भी समर्थ नहीं हो सके। अपने गुरुदेव बृहस्पतिजी से कहा, गुरुदेव! इतना तेज बलि में? बृहस्पतिजी ने ध्यान लगाकर कहा, देवताओं! इस समय बलि का सामना त्रिभुवन में कोई नहीं कर सकता, क्योंकि ब्राह्मणों का तप इसके साथ है। भलाई इसी में है कि भाग जाओ! तब तो सब देवता स्वर्ग छोड़कर भाग गये और स्वर्ग पर बलि का अधिपत्य हो गया। शुक्राचार्यजी ने कहा, देख बलि! अब शीघ्रता से एक काम और करो! अपना बहुमत सिद्ध कर लो, फिर तुम्हें इस गद्दी से कोई हटा नहीं सकता। इस इन्द्र की गद्दी पर वही बैठता है, जो सौ यज्ञ पूर्ण कर लेता है। वही शतक्रतु बनता है। तुम

(भा. 7/पूर्ण कर लो। बलि ने नर्मदा नदी के तट पर एक-के-बाद-एक यज्ञ प्रारम्भ कर दिये। उधर देवमाता अदिति बेचारी दुखी है, मेरे बच्चे दर-दर भटक रहे हैं। कश्यपजी ने कहा, देवी! तुम्हें एक व्रत करना होगा,

फाल्गुनस्यामले पक्षे द्वादशाहं पयोव्रतः

यह व्रत फाल्गुन मास में शुक्लपक्ष में किया जाता है। बारह दिन तक मात्र दुग्धाहार करके नारायण की उपासना की जाती है। इस पयोव्रत का तुमने ठीक से पालन किया, तो तुम्हारा मनोरथ सिद्ध होगा। तब तो अदिति मैया ने पयोव्रत का पालन प्रारम्भ किया। पयोव्रत के प्रभाव से प्रभु प्रसन्न हुए और अदिति माँ के गर्भ में पधारे। कालान्तर में भाद्रपद शुक्ल द्वादशी के दिन, अभिजित् मुहूर्त (मध्यान्ह बारह बजे) अदिति के गर्भ से भगवान् वामन का प्रादुर्भाव हुआ।[1]

तं वटुं वामनं दृष्ट्वा मोदमाना महर्षयः।
कर्माणि कारयामासुः पुरस्कृत्य प्रजापतिम् ॥ (भा. 8/18/13)

भगवान् के मात्र बावन अंगुल के बटुक वामन रूप को जो देखे, वही मुग्ध हो जाये। देवताओं में आनन्द का पारावार नहीं और ब्राह्मण अति प्रसन्न हो ग ये। ऋषिकुल में प्रभु का प्राकट्य हुआ है। सभी ने मिलकर वामन भगवान् का बहुत सुन्दर यज्ञोपवीत सम्पन्न किया। ब्राह्मणों का सर्वश्रेष्ठ संस्कार है यज्ञोपवीत। जिसका यज्ञोपवीत संस्कार विधिवत् नहीं हुआ, वह द्विज कहलाने का अधिकारी नहीं होता। दूसरा जन्म जिसका हुआ हो, वही द्विज। तो वामन भगवान् का जब यज्ञोपवीत संस्कार हुआ, स्वयं विधाता ब्रह्माजी ने प्रकट होकर अपना कमण्डलु वामन भगवान् को दिया। अदिति मैया ने लंगोटी पहनाई, कश्यपजी ने मेखला पहनाई, सरस्वती मैया ने रुद्राक्ष की माला भेंट की, भूदेवी ने चरण पादुका भेंट की, आकाश ने छत्र भेंट किया, कुबेर ने भिक्षा का पात्र दिया, अन्नूपूर्णा मैया ने भिक्षा प्रदान की। बृहस्पतिजी ने गायत्री मंत्र फूंककर यज्ञोपवीत धारण कराया। भिक्षा में जो भी कुछ मिला, वह वामन भगवान् ने गुरुदेव श्रीबृहस्पतिजी को दिया।

बृहस्पतिजी मुस्कुराये बोले, वामनजी! हमें तो आपसे भिक्षा में त्रैलोक्य की सम्पदा चाहिये। वामन भगवान् बोले, गुरुदेव! ये त्रिलोकी का वैभव मुझे दान कौन करेगा? गुरुजी बोले, बलि के पास जाइये। इस समय तीनों लोकों का राजा वही है। नर्मदा तट पर यज्ञ कर रहा है। वामन भगवान् चल पड़े। छोटे-छोटे चरणों में छोटी-छोटी पादुका। चटपट करते चले जा रहे हैं। एक हाथ में कमण्डलु और एक हाथ में छाता है। जब बलि के यज्ञस्थल में पहुँचे तो यज्ञ करते बलि ने दूर से नन्हे-से बावन अंगुल के बौने-से भगवान् को आते देखा। देखकर बलि तो स्तब्ध रह गया। ऐसे लगा जैसे साक्षात् भगवान् सूर्य बालरूप में प्रकट हो गये हों, प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका। तुरन्त खड़ा हो गया और यज्ञ में समस्त ऋत्विज् ब्राह्मणों को साथ में लेकर स्वागत में आगे बढ़ गया। भगवान् को प्रणाम करने लगा।

स्वागतं ते नमस्तुभ्यं ब्रह्मन्किं करवाम ते ।

1. हरि ने वामन रूप बनायो ।
दर्शन दीने मात अदिति को, कश्यप मन अति भायो ॥1॥
परमानन्द भयो संतन मन, अति उत्साह दिखायो ।
भयो उपवती उपेन्द्र प्रभु को, यज्ञोपवीत पहिरायो ॥2॥
निज-निज भेंट लगे देव सब, देवन मन हर्षायो ।
वामन विप्र ब्रह्मचारी को, देख सबन सुखपायो ॥3॥
माता अदिति को दिव्य पयोव्रत, पूर्ण परम फल पायो ।
'श्याम दास' वामन छवि ऊपर, मन मधुकर मडराया ॥4॥

ब्रह्मर्षीणां तपः साक्षान्मन्ये त्वाऽऽर्यवपुर्धरम् ॥ (भा. 8/18/29)

स्वागत है महाराज आपका, आपको प्रणाम करता हूँ। आपको देखकर लगता है, जैसे ब्रह्मर्षियों का मूर्तिमंत तेज मेरे सामने खड़ा है। '**अद्य नः पितरस्तृप्ता अद्य** (भा. 7/लम' मेरे तो पितर तृप्त हो गये, आज मेरा तो कुल पावन हो गया, आज '**यद्भवानागतो गृहान्**' जो आप स्वयं चलकर मेरे घर पधारे। कहिये! मैं आपकी क्या सेवा करूँ? जो भी इच्छा लेकर आये हों, निःसंकोच बताइयेगा महाराज। गाय चाहिये तो गाय ले जाओ, स्वर्णाभूषण चाहिये तो खजाने में खड़ा कर देता हूँ, जो अच्छा लगे ले जाओ; यदि विवाह न हुआ हो और आपकी इच्छा हो, तो आदेश दो महाराज! ब्राह्मण कन्या ढूँढूगा, वह भी आप-जैसी बौनी ही होगी। ऐसी सुन्दर विप्रकन्या से विवाह करा दूँगा। जो भी इच्छाऐं हैं निःसंकोच कहो,

यद्यद्वटो वाञ्छसि तत्प्रतीच्छ मे त्वामर्थिनं विप्रसुतानुतर्कये ।
गां कांचनं गुणवद्धाम मृष्टं तथान्नपेयमुत वा विप्रकन्याम् ॥ (भा. 8/18/32)

वामन भगवान् पहले तो मुस्कुराये और बलि महाराज की प्रशंसा के पुल बाँध दिये, वाह महाराज! क्या बात है। आपके बारे में जैसा सुना था, आपको तो उससे भी ज्यादा देख रहा हूँ।

वचस्तवैतज्जनदेव सूनृतं कुलोचितं धर्मयुतं यशस्करम्

आपके वचन आपके ही कुल के अनुरूप हैं। आपका कुल कितना महान है,

यतो जातो हिरण्याक्षश्चरन्नेक इमां महीम्

आपके पूर्वजों में महाराज हिरण्याक्ष और हिरण्यकश्यपु हुए। उनके बल पराक्रम को कौन नहीं जानता? उनके बेटा प्रह्लाद ने तो चमत्कार कर दिया, खम्भे से ही नारायण को प्रकट करके दिखा दिया। प्रह्लाद के बेटा विरोचन का भी क्या कहने महाराज! सर्वस्व धन अपना ब्राह्मणों को लुटा दिया। परन्तु ए(भा. 7/ में बलि तुमने भी कोई कसर नहीं छोड़ी। इतनी ब्राह्मण भक्ति? बलि ने हाथ जोड़कर कहा, महाराज! अब रहने दीजिये। सब आप ब्राह्मणों का ही आशीर्वाद है। अब तो आप आदेश दीजिये, मेरे लिये क्या आज्ञा है? भगवान् बोले, राजन यदि तुम जैसा उदार कोई दानी नहीं, तो मेरे जैसा संतोषी कोई ब्राह्मण नहीं। अपने राम को कुछ नहीं चाहिये, पर मैं जानता हूँ तुम दिये बिना मानने वाले नहीं। इसलिये,

पदानि त्रीणि दैत्येन्द्र संमितानि पदा मम

आप तो मात्र मेरे इन छोटे-छोटे पैरों से तीन चरण भूमि नापकर दे दीजिये। बस! संतोषी ब्राह्मण इतने में प्रसन्न हो जाएगा। बलि अट्टाहास करके हंसा, अरे ब्राह्मण! तूने कैसी-कैसी बातें बनाई कि मेरा तो मन ही मोह लिया? हमारे पूर्वजों की इतनी लम्बी चौड़ी महिमा गाई और माँगने के नाम पर बच्चों जैसी बात कर रहा है?

अहो ब्राह्मणदायाद वाचस्ते वृद्धसंमताः ।
त्वं बालो बालिशमतिः स्वार्थं प्रत्यबुधो यथा ॥ (भा. 8/19/18)

तू बातें तो बुड्ढों जैसी करता है, पर माँगते समय तूने बिल्कुल जैसी काया बौनी, वैसी अक्ल भी तेरी बौनी मालूम पड़ती है। ये बचकानी बातें करते हो? अरे! इस बलि के सामने जिसने माँगने को हाथ पसारा, जीवनभर कभी हाथ दुबारा नहीं पसारना पड़ा। दुबारा माँगो! और सोच विचारकर माँगो। भगवान् बोले, देखो! असंतोषी ब्राह्मण का पतन हो जाता है। जब हमारा इतने धन से निर्वाह हो सकता है, तो अनावश्यक दान लेकर क्या करेंगे

हम? मालूम है दान लेने से ब्रह्मतेज क्षीण होता है। इसलिये जितने में निर्वाह हो सके, उतना ही लेना चाहिये।

यदृच्छयोपपन्नेन संतुष्टो वर्तते सुखम्

जितना मिल जाये, उतने से ब्राह्मण प्रसन्न रहे। उससे उसे परमशान्ति और सुख की प्राप्त होती है।

यदृच्छालाभतुष्टस्य तेजो विप्रस्य वर्धते

प्रसन्नतापूर्वक कोई जो जितना दे, उतने को प्रसन्नतापूर्वक जो ब्राह्मण ग्रहण करके स्वीकार कर लेय ऐसे ब्राह्मण का ब्रह्मतेज प्रखर होता है। इसलिये जो हमें आवश्यक लगा, माँग लिया। और,

एतावतैव सिद्धोऽहं वित्तं यावत्प्रयोजनम्

आवश्यकतानुसार ही हम लेते हैं। फालतू दान लेकर हमें क्या करना है? बलि ने कहा भाई! मान गया। बहुत ब्राह्मण देखे, पर आप जैसा संतोषी तो सचमुच आजतक तो मेरी दृष्टि में आया नहीं। ठीक है महाराज! मैं आपको वचन देता हूँ। आपको जो भी स्थान उत्तम दिखाई पड़ता हो, जाकर नाप लीजिये। भगवान् बोले, ऐसे कैसे नाप दें? अरे! आप हमारे हाथ में दान का संकल्प तो कीजिये। बलि हंसने लगा, महाराज! अब तीन चरण भूमि के लिये मैं संकल्प भी दूँ? लोग मेरा उपहास करेंगे। भगवान् बोले, देखो! नियम तो नियम होता है। संकल्प तो करना पड़ेगा। शुक्राचार्यजी टुकर-टुकर देखने लगे, बड़ी देर का बातें बना रहा है। देखने में नेक-सा है और बातें बहुत ऊँची-ऊँची कर रहा है? पता लगाऊँ ये आया कहाँ से है? शुक्राचार्यजी ने तुरन्त ध्यान लगाया, सो ध्यान में भगवान् का वह दिव्य स्वरूप समझ में आ गया। बलि ने जल का पात्र हाथ में उठाया ही था कि शुक्राचार्यजी ने दौड़कर हाथ पकड़ लिया। महाराज बलि! सावधान!! पता है ये कौन है? बलि बोले, गुरुदेव! ये वामन है। गुरुजी बोले, अरे ना ना! न ये वामन है, न तिरेपन है। मैं सब समझ गया,

एष वैरोचने साक्षाद् भगवान्विष्णुरव्ययः ।
कश्यपाददितेर्जातो देवानां कार्यसाधकः ॥ (भा. 8/19/30)

हे विरोचननन्दन बलि! ये कोई और नहीं देवताओं का कार्य सिद्ध करने वाला बौना बनकर विष्णु ही तुम्हारे सामने खड़ा है। इस समय कश्यपजी के द्वारा अदिति के गर्भ से बौना बनकर प्रकट हुआ है। बातों में मत आ जाना, मैंने अपनी दिव्य दृष्टि से इसके ज्यि हाथ पैर सब देख लिये हैं। ये चाहेगा, तो एक चरण में ही सारा ब्रह्माण्ड नाप सकता है। तुम्हारे पास तो तीन चरण भूमि के लिये जगह भी नहीं बचेगी। ऐसे दान की कोई प्रशंसा नहीं है, जिसमें सब कुछ लुटाकर खुद भिखारी बन जाओ। और तुमने यदि इसे दान दिया, तो तुम भिखारी ही बनोगे। इसलिये अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है, संकल्प अभी हुआ नहीं है। मना कर दो, मैंने कुछ नहीं दिया।

हाथ जोड़कर बलि ने कहा, गुरुदेव! क्या हाथ में जल लेना ही संकल्प है? अरे! मेरी वाणी से जब मैंने कह दिया कि मैंने तुम्हें दिया तो मेरा वचन तो है, अब वचन देने के बाद मैं मना कर दूँ - ऐसा तो आज तक मेरे कुल में कभी नहीं हुआ। मैं वचन विमुख नहीं हो सकता, भले ही सर्वस्व चला जाये। और इससे बढ़िया बात क्या होगी, यदि मात्र ये बटुक है तो तीन चरण भूमि लेकर चलता बनेगा। और यदि सचमुच ये विष्णु है, तो ये मुझ बलि का गौरव सौभाग्य है कि जगत् का दाता आज मेरे सामने हाथ पसारेगा और मेरा हाथ उसके हाथ के ऊपर होगा। मेरे तो दोनों हाथों में मोदक है। इसलिये मना नहीं करने वाला महाराज! वाणी को मिथ्या नहीं होने दूँगा।

शुक्राचार्यजी की आँख टेढ़ी होने लगी, ऐ बलि! मैंने तुम्हें सावधान किया था! मेरी आज्ञानुसार चलता रहेगा तो ठीक रहेगा। और आज तू बनी बनाई बात पर पानी फेरना चाहता है? बलि बोला, गुरुदेव! मैं झूठ कैसे

बोलूं? शुक्राचार्यजी बोले, कुछ स्थान ऐसे भी होते हैं, जहाँ झूठ बोलना निन्दनीय नहीं होता।

स्त्रीषु नर्मविवाहे च वृत्त्यर्थे प्राणसंकटे ।
गोब्राह्मणार्थे हिंसायां नानृतं स्याज्जुगुप्सितम् ॥ (भा. 8/19/43)

बहुत प्रकार से नीति का प्रयोग किया, परन्तु हाथ जोड़कर बलि ने दो टूक जबाव दे दिया,

न ह्यसत्यात् परोऽधर्म इति होवाच भूरियम्

ये भूदेवी कहती है कि मुझे इन पर्वत श्रृंख(भा. 7/झ नहीं लगता, जितना एक झूठे व्यक्ति का बोझ लगता है। तो मैं झूठ बोलकर इस पृथ्वी पर भार बनकर जीना नहीं चाहता। अब तो शुक्राचार्यजी की आँखें लाल हो गई, ऐ मूर्ख! अपने को बहुत पण्डित समझने लगा है? अपने गुरुदेव से कितनी देर से खड़ा-खड़ा बहस कर रहा है? '**दृढं पण्डितमान्यज्ञ:**' जा मेरा शाप है - '**अचिराद् भ्रश्यसे श्रिय:**' तू श्रीहीन हो जायेगा, पदहीन हो जायेगा। ऐसा शाप देकर शुक्राचार्यजी चले गये। वामन भगवान् बोल पड़े, अरे भैया! नाराज मत हो। देना हो तो हाँ करो, नहीं तो हम भी खिसक लेते हैं। बलि ने कहा, नहीं-नहीं महाराज! आप तो अपना संकल्प कीजिये। तो ठीक है हाथ में जल लीजिये। पुराणान्तर प्रसंग ये भी आता है कि बलि ने ज्यों-ही जल का पात्र उठाया, तो पात्र में जिस छिद्र से जल निकलने वाला था, उसमें शुक्राचार्यजी घुसकर बैठ गये कि पानी की एक बूंद नहीं टपकने दूँगाय तो संकल्प कैसे होगा?

अब बहुत प्रयत्न करने पर भी जब पानी नहीं निकला, तब वामन भगवान् बोले क्या हो रहा है भाई? बलि बोला, महाराज! न जाने क्या अटक गया? वामन भगवान् बोले, ओ हो! हम समझ गये, ये पात्र हमें दो। पुराना बर्तन है, रखा-रखा जंग खा गया होगा। हम ठीक कर देते हैं। और ऐसा कहकर एक पैनी कुशा ज्यों-ही छिद्र में फेंककर मारी, सो ही शुक्राचार्यजी की एक आँख फूट गई '**गोविन्दाय नमो नम:**'। मानो भगवान् कहना चाहते हैं, शुक्राचार्यजी! सबको एक दृष्टि से देखो। सबके अन्दर मुझ एक नारायण की ही सत्ता का दर्शन करो। और सुनो ये आँख क्यों फोड़ी? मानो नेत्र कौन हैं?

ज्ञान विराग नयन उरगारी

भगवान् कहते हैं, तुम्हारी एक आँख (ज्ञान की) तो बहुत बढ़िया है। क्योंकि मैंने अपने आपको कितना छुपाने का प्रयास किया? फिर भी बाबा! तुम्हारी आँख से हम छुप नहीं सके। इसका मतलब है कि तुम्हारी आँख बड़ी पैनी है। तो धन्य है वह दृष्टि जो नारायण को जान ले। तो ज्ञान की दृष्टि तो तुम्हारी बड़ी पारखी है, बड़ी पैनी हैय पर वैराग्य की आँख में जरा मोह का मोतियाबिंद चढ़ रहा है। इसलिये लाओ! हम ऑप्रिशन कर देते हैं। तो वैराग्य की आँख जो कमजोर थी, उसे भगवान् ने मानो ठीक कर दिया। अब ज्यों-ही जल हाथ में आया, भगवान् ने संकल्प पढ़ा और संकल्प पूर्ण होते ही भगवान् का तुरन्त विराट् रूप प्रकट हो गया।

भगवान् के उस दिव्य विराट रूप को देखकर महाराज बलि स्तब्ध रह गये। भगवान् बोले, बलि! अब हमारा नापना देखो। सो एक चरण नीचे को बढ़ाते हुए अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल और प(भा. 7/ लोक नाप डाले। दूसरा चरण ऊपर को उठाया तो, भू:, भुव:, स्व: मह:, जन: तप: और सत्यलोक ... बल्कि सत्यलोक को पार करके ब्रह्माण्ड कटाह में छिद्रकर दिया। ब्रह्माण्ड फूट गया और ब्रह्माण्ड के बाहर की चिन्मयी धारा उस ब्रह्माण्ड छिद्र से विवर में प्रविष्ट हो गई। और जैसे-ही वह जलधारा भगवान् के चरणों को धोती हुई नीचे गिरी, तो ब्रह्मलोक में ब्रह्माजी ने अपने कमण्डलु में भगवान् का वह चरणोदक धारण कर

लिया। वही चरणोदक ब्रह्माजी के कमण्डलु से फिर नीच(भा. 7/ढ़ा तो ध्रुव लोक में, सप्तऋषि मण्डल में, चन्द्र मण्डल में होता हुआ स्वर्ग मण्डल में आ गया। स्वर्गलोक में आकर उस जलधारा के चार विभाग हुए - सीता, अलकनन्दा, चक्षु और भद्रा। उसमें अलकनन्दा नाम की जो जलधारा थी, वही गन्धमादन पर्वत पर आकर गिरी और गोमुख से आती हुई गंगा के रूप में पूरे भारतवर्ष को परिप्लावित करती हुई सागर में विलीन हो गई।

वही भगवान् नारायण के चरणों से निकली विष्णुपदी को भागीरथ लेकर आये। इसलिये भागीरथी समस्त जगत् को पावन कर रही है। शुकदेवजी कहते हैं, राजन! जामवंतजी उस समय नवयुवक थे। उन्होंने दुंदभी बजाते हुए आनन्द में झूमकर भगवान् वामन के उस विराट् रूप की प्रदक्षिणा की।

बलि बाँधत प्रभु बाढ़ेउ सो तनु बरनि न जाइ ।
उभय घरी महँ दीनि सात प्रदच्छिन धाइ ॥ (रामचरितमानस 4/29)

भगवान् ने कहा, बलि! अब बोलिये संकल्प तीन चरण भूमि का है और अभी मैंने दो चरण नापे हैं। तीसरा चरण अब कहाँ रखूं? अब तो बलि की बोलती बन्द हो गई। भगवान् ने गरुड़ को प्रकट करके आदेश दिया, जल्दी इसे बन्दी बनाओ। गरुड़ ने वरुणपाश में बलि को बाँध दिया। भगवान् बोले, बलि! अब तो या तो वचन पूरा करो अथवा नरक में गिरने की तैयारी करो। बलि को जब बाँध दिया, तो बलि के समर्थक दैत्य भगवान् को मारने के लिये दौड़ पड़े,

ते सर्वे वामनं हन्तुं शूलपट्टिशपाणय:

पर बलि ने सबको रोक दिया, सावधान! इस समय हमारा विपरीत काल है। गुरुदेव शाप देकर चले गये हैं और यदि तुमने इस प्रकार की युद्ध की कोई चेष्टा की, तो सबके सब मारे जाओगे। ऐसा सुनते ही सब शान्त हो गये। भगवान् फिर डाँटने लगे, जल्दी बोलो! क्या निर्णय किया? बलि ने कहा, महाराज! एक बात कहूँ? भगवान् बोले, कहो क्या कहना है? बलि बोले, प्रभो! ये बताओ, धन बड़ा होता है कि धनवान्? भगवान् बोले, बड़ा तो धनवान् होता है। बलि ने कहा, सरकार! दो चरणों में अभी मेरा धन-ही-धन तो आपने नापा है, मैं धनवान् तो अभी अलग खड़ा हूँ। इसलिये अब कृपा करके ये तीसरा चरण मेरे माथे पर रखकर मुझ दाता को भी स्वीकार कर लीजिये।

पदं तृतीयं कुरु शीर्ष्णि मे निजम्

वामन भगवान् प्रसन्न हो गये और अपना दिव्य पादारविन्द बलि के मस्तिष्क पर रख दिया और बोले, बलि! तुम धन्य हो। मैंने तुम्हारा सर्वस्व छीन लिया, तुम्हें बाँध भी दिया, तुम्हें डाँट भी दिया और इसके बाद भी तुमने अपने धैर्य और धर्म को नहीं छोड़ा? बलि ने कहा, सरकार! मुझे पद छिन जाने का तनिक भी कोई कष्ट नहीं है। मुझे आपने जो बाँध दिया, इस पाश बंधन का कोई भय नहीं है। बस एक बात का डर है,

बिभेमि नाहं निरयात् पदच्युतो न पाशबन्धाद् व्यसनाद् दुरत्ययात् ।
नैवार्थकृच्छ्राद् भवतो विनिग्रहादसाधुवादाद् भृशमुद्विजे यथा ॥ (भा. 8/22/3)

मुझे यदि भय लगता है, तो केवल असाधुवाद से। दुनिया में कोई ये न कहे कि बलि के पूर्वजों की कीर्ति पताका कैसी लहरा रही थी, पर बलि ने आकर उसमें कलंक लगा दिया। एक ब्राह्मण को तीन चरण भूमि का दान भी नहीं कर सका? इस अपकीर्ति की कालिमा के कलंक से मुझे बहुत डर लगता है। तब तो प्रह्लादजी

प्रकट हो गये और भगवान् की स्तुति करके बोले, प्रभु! आप ही देते हो और आप ही ले लेते हो। आपका देना भी निराला और लेना भी विचित्र है। कब किसको कहाँ से कहाँ पहुँचा दें?

मसकहिं करइ बिरंचि प्रभु अजहि मसक ते हीन

कभी ब्रह्मा तक बनाकर बैठा दें और कभी मच्छर से भी गया-बीता बना दें। आप सर्वसमर्थ हैं। बलि की पत्नी ने भी भगवान् की स्तुति करते हुए कहा, प्रभु! ये सारा संसार आपका क्रीडास्थल है।

क्रीडार्थमात्मन इदं त्रिजगत् कृतं ते स्वाम्यं तु तत्र कुधियोऽपर ईश कुर्युः ।
कर्तुः प्रभोस्तव किमस्यत आवहन्ति त्यक्तह्रियस्त्वदवरोपितकर्तृवादाः ॥ (भा. 8/22/20)

पर आपकी इस क्रीडा के मैदान पर हमारे स्वामीजी ने कब्जा कर लिया। वह अपने को त्रिलोकी का नाथ समझ बैठे। आपने तो केवल मेरे स्वामीजी की उसी कुबुद्धि का हरण किया है, अन्यथा इस जगत् के मालिक तो पहले भी आप ही थे और आज भी आप ही हो। इसमें आपने हमारा क्या ले लिया। भगवान् बड़े प्रसन्न हुये। ब्रह्माजी प्रकट हो गये और ब्रह्माजी ने कहा, भगवन्! एक बात समझ में नहीं आ रही। जो आपको तुलसी दल चढ़ा दे, कमल दल चढ़ा दे, उसे तो आप सर्वस्व दे डालते हो। और जिस बेचारे बलि ने आपको अपना सर्वस्व दे डाला, उसे आपने उल्टे बाँधकर पटक दिया? ये क्या मतलब हुआ? भगवान् हंसकर बोले,

ब्रह्मन् यमनुगृह्णामि तद्विशो विधुनोम्यहम् ।
यन्मदः पुरुषः स्तब्धो लोकं मां चावमन्यते॥ (भा. 8/22/24)

ब्रह्माजी! ये मेरा स्वभाव है। जिस पर मैं हृदय से अनुग्रह करना चाहता हूँ, पहले उसका अभिमान तोड़ता हूँ। यदि वह धनाभिमानी है, तो धन छीन लूं। पदाभिमानी है, तो पद छीन लूं। उसकी जहाँ जहाँ आसक्ति बढ़ेगी, मैं वही वस्तु उससे छीनता जाऊँगा। जब उसकी आसक्ति के सारे पात्र छन जाते हैं, तब वह विकल हो जाता है, परेशान हो जाता है। संतों की शरण में आता है, महाराज! जहाँ हाथ डालता हूँ, वहीं घाटा हो जाता है। बड़ा तंग हूँ, न जाने कैसे ग्रह चल रहे हैं? बड़ा परेशान हूँ। सो ही महात्मा मेरा भजन और मेरा नाम उसे बता देते हैं। तब उसे बाध्य होकर मेरी शरण में आना ही पड़ता। क्योंकि उत्तम कुल में जन्म हो जाने से किसी को अपने उत्तम कुल का अभिमान होता है, किसी को अवस्था का किसी को अपने कर्मो का अभिमान होता है तो किसी को अपनी विद्या का अभिमान होता है –

जन्मकर्मवयोरूपविद्यैश्वर्यधनादिभिः ।
यद्यस्य न भवेत् स्तम्भस्तत्रायं मदनुग्रहः ॥ (भा. 8/22/26)

ब्रह्माजी! ये सब अभिमान को देने वाले हैं। परन्तु जिसका जन्म उत्तम हो, कर्म उत्तम हो, विचार श्रेष्ठ हो, ऐश्वर्य भी हो और फिर भी यदि उसमें अभिमान नजर न आवे, तो भगवान् कहते हैं **'तत्रायं मदनुग्रहः'** मेरे अनुग्रह से ही वह बचा हुआ है। अन्यथा ये वस्तुऐं तो उसे अभिमान से भर ही देती हैं। बलि! अब बोलो, तुम क्या चाहते हो? बलि ने कहा, प्रभु! आपकी यह दिव्य बाँकी-झाँकी हमें इतनी प्यारी लग रही है कि मैं तो चाहता हूँ कि जीवनभर आपकी यही छटा देखता रहूँ। भगवान् बोले, ये तो (भा. 7/लगाई हमारी। तो क्या हम तुम्हारे सामने ऐसे ही खड़े रहें? बलि बोले, महाराज! अब जो इच्छा थी, वह कह दी। अब करना-कराना क्या है, ये तो आप जानिये। भगवान् बोले, तो ठीक है! वैसे तो हम तुमसे इन्द्रासन छीनने ही आये थे, पर तुम्हारी इस धर्मनिष्ठा को देखकर हम बड़े प्रसन्न हुये। बलि! आज से हम तुम्हें वचन देते हैं कि आगामी मन्वन्तर के तुम ही इन्द्र

बनोगे। और जब तक तुम्हें इन्द्र की पदवी प्राप्त नहीं होती, तब तक इन्द्र के समान ही वैभव सुतल लोक में भोगोगे और मैं तुम्हारे दरवाजे का द्वारपाल बना खड़ा रहूँगा।

सदा सन्निहितं वीर तत्र मां द्रक्ष्यते भवान्

वहाँ पर आते-जाते हमेशा तू मेरे इसी रूप का दर्शन करना। तब तो सब गद्‌गद् हो गये। प्रह्लादजी तो ख़ुशी में नाचने लगे, जय हो प्रभु!

नेमं विरिंचो लभते प्रसादं न श्रीर्न शर्वः किमुतापरे ते ।
यन्नोऽसुराणामसि दुर्गपालो विश्वाभिवन्द्यैरपि वन्दिताङ्घ्रिः ॥ (भा. 8/23/6)

अरे! जिन प्रभु के ध्यान में ब्रह्मादिक देवता बैठे रहते हैं, वह परमपिता प्रभु जगा(भा. 7/रायण हम दैत्यों के दरवाजे का द्वारपाल बना खड़ा होगा? कितने गौरव की बात है। भगवान् बोले, भक्त प्रह्लाद!

वत्स प्रह्लाद भद्रं ते प्रयाहि सुतलालयम्

बेटा प्रह्लाद! तुम्हारा कल्याण हो! अब अपने परिवार को लेकर जल्दी से सुतललोक जाओ। सब चलने की तैयारी करने लगे। सो ही शुक्राचार्यजी ने आकर प्रणाम किया। शुक्राचार्यजी को लगा कि हम क्यों बेकार में ही बुरे बन गये? प्रणाम करके कहा, महाराज! मुझे क्षमा कीजिये।

भगवान् बोले, आचार्यजी! आप तो यज्ञ की अवशेष विधि की परिपूर्णता कीजिये। यज्ञ में कोई कार्य शेष रह गया हो, तो ये 100वाँ यज्ञ भी पूर्णतः सम्पन्न हो जाये, उस विधि का निर्वाह कीजिये। शुक्राचार्यजी बोले, भगवन! क्यों लज्जित करते हो? जिस यज्ञ में साक्षात् नारायण प्रकट होकर विराजमान हों, वह यज्ञ अब अधूरा माना जायेगा? अरे! यज्ञ में कितने भी दोष रह जायें, कितनी भी कोई सावधानी से यज्ञ करे, कहीं-न-कहीं या तो मंत्र में दोष, या विधि में दोष, या सामग्री में दोष कहीं-न-कहीं तो दोष हो ही जाता है। पर आपके मंगलमय नाम का गान जब किया जाता है, तब सारे दोष दूर हो जाते हैं।

मन्त्रतस्तन्त्रतश्छिद्रं देशकालार्हवस्तुतः।
सर्वं करोति निश्छिद्रं नामसंकीर्तनं तव ॥ (भा. 8/23/16)

यहाँ तो आप प्रत्यक्ष विराजमान हैं। इस प्रकार से भगवान् समस्त परिकर साथ सुतल लोक में प्रविष्ट हो गये। नारदजी ने जब ये समाचार लक्ष्मी मैया को सुनाया तब लक्ष्मीजी राजा बलि की बहिन बन के आई और बलि के हाथ पर राखी बाँधकर अपने स्वामीजी को पुनः वापिस ले गईं। वामन भगवान् इन्द्र के छोटे भाई बनकर आये थे, इसलिये इनका दूसरा नाम उपेन्द्र भी है।

शुकदेवजी कहते हैं, परीक्षित! इस प्रकार भगवान् अपने भक्तों के लिए बड़े विचित्र अवतार धारण करते हैं। एक बार तो भगवान् मछली के रूप में प्रकट हुए। सत्यव्रत नाम के एक राजा थे, जो नित्यस्नानादि करके सूर्यभगवान् को अर्घ्य दिया करते थे। एक बार स्नानोपरान्त जैसे-ही हाथ में जल लेकर सूर्यभगवान् को अर्घ्य देने लगे, तो उनके हाथ के जल में एक छोटी-सी मछली आ गई। तो उन्होंने जल को फेंक दिया और दुबारा जल लिया। पुनः जल लेने पर फिर मछली आ गई और बोल पड़ी,

कथं विसृजसे राजन्भीतामस्मिन्सरिज्जले

महाराज! मुझे क्यों फेंक रहे हो? मैं बहुत भयभीत रहता हूँ। इस जल में बड़े-बड़े जीव मुझे पकड़कर खा जायेंगे। राजा को बड़ा कौतुहल लगा कि ये मछली हम से बात कर रही है, कोई अद्‌भुत मछली है। तो जल

सहित उस मछली को अपने कमण्डलु में डाल लिया। सन्ध्यावन्दन, आदि से निवृत्त होकर घर आये और घर आते ही क्या देखा कि वह मझली इतनी बड़ी हो गई कि कमण्डलु में बनती नहीं, फंस गई। मछली बोल पड़ी, महाराज! इसमें तो मुझे कष्ट हो रहा है। कोई बड़ी-सी जगह मुझे दीजिये। तो एक पात्र था, उसमें वह डाल दी गई। थोड़ी-ही देर बाद मछली कहती है, महाराज! इसमें भी मुझे कष्ट हो रहा है। देखा, तो इतनी बड़ी हो गई कि पात्र में भी नहीं समा रही है। तो उन्होंने उसे एक जलाशय में ड(भा. 7/)ड़ी-ही देर में वह इतनी बड़ी हो गई कि जलाशय में भी नहीं बन पा रही है। इतनी बड़ी हो गई।

मछली कहने लगी कि कोई और प्रबन्ध करो। अब हाथ जोड़कर सत्यव्रत मनु बोले, महाराज! आप कौन हैं? मछलियाँ तो बहुत देखीं, पर इतनी जल्दी बढ़ने वाली मछली पहली बार देखी। थोड़ी देर में आप इतना शरीर बढ़ा लेते हो कि जितना बड़ा पात्र हो। आप कृपा करके अपना परिचय दीजिए कि आप कौन हैं?

तब मछली के स्वरूप से सहसा भगवान् चतुर्भुज स्वरूप में प्रकट हो गए और बोले, राजन्! मैं इस रूप में इसलिए तुम्हें दर्शन देने आया हूँ कि आज से सातवें दिन प्रलय होने वाला है। समुद्र अपनी मर्यादाओं का उल्लंघन कर देंगे। सारा संसार जल मग्न हो जाएगा। उस समय पृथ्वी दिव्य नौका का स्वरूप बनाकर आयेगी, सप्तर्षि भी उसमें बैठे होंगे। तुम भी जड़ी-बूटियों को लेकर उस नौका में बैठ जाना और मुझ मत्स्य के सींग, से वासुकि नाग को रस्सी बनाकर, उस नौका को बाँध लेना।

ऐसा कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये। और वही हुआ, नौका बनी पृथ्वी आई। सत्यव्रत मनु उसमें बैठ गये। भगवान् ने बड़ा दिव्य उपदेश किया। वही मनुस्मृति के रूप में हमारे बीच उपस्थित हुआ। शुकदेवजी कहते हैं, राजन्! इस प्रकार से प्रत्येक मन्वन्तरों में भगवान् के विविध अवतार हुआ करते हैं।

अथ श्रीमद्भागवतपुराणस्य

॥ नवमः स्कन्धः ॥

(ईशानु कथा)

वैवस्वत मनु के पुत्रों का चरित्र, महर्षि च्यवन एवं सुकन्या का चरित्र, नाभाग-अम्बरीश-सगर-भगीरथ-आदि अन्य सूर्यवंशियों का चरित्र, गंगावतरण की कथा, चन्द्रवंश का वर्णन

नवम स्कन्ध के चौबीस अध्यायों में से बारह अध्यायों में सूर्यवंश का वर्णन है, जिसमें आये हमारे श्रीरामजी और बाद में बारह अध्यायों में चन्द्रवंश का वर्णन है, जिसमें आये हमारे श्रीश्यामजी।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं, परीक्षित! अब हम तुम्हें सूर्यवंश का वर्णन सुनाते हैं। परन्तु बहुत विस्तार से सुनाना सम्भव नहीं है क्योंकि विस्तारपूर्वक सूर्यवंश की चर्चा सौ वर्षों में भी पूरी नहीं हो सकती।

न शक्यते विस्तरतो वक्तुं वर्षशतैरपि

इसलिये अति संक्षेप में श्रवण करो। भगवान् श्रीमन्नारायण प्रभु के दिव्य नाभिकमल से ब्रह्माजी का जन्म हुआ। ब्रह्माजी के बेटा मरीचि मुनि हुए, मरीचि के बेटा कश्यप मुनि, कश्यपजी के बेटा विवस्वान् सूर्य। इन्हीं से चला सूर्यवंश। विवस्वान् सूर्य के पुत्र हुये श्रद्धादेव मनु, जिनकी श्रद्धा नामक पत्नी से कोई संतान नहीं हुई। सूर्यवंश में सभी राजाओं को संतान की समस्या प्राय: रही है। प्रारम्भ से ही यह समस्या बनी रही, मनु महाराज के ही कोई संतान नहीं होती। तो सूर्यवंश के आदिगुरु श्रीवसिष्ठजी हैं। राजा ने उनसे प्रार्थना की तो वसिष्ठजी ने पुत्रेष्टि यज्ञ करवाया। राजा चाहते हैं कि पुत्र हो, पर रानी चाहती हैं कि पुत्री हो। महारानीजी ने हवन में नियुक्त ब्राह्मणों से कहा, हे ब्राह्मणदेवताओं ! ऐसा मंत्र पढ़ना कि पुत्री हो जाए। यदि पुत्री हो गई तो आप सबको मालामाल कर दूँगी, बहुत दक्षिणा दिलवाऊँगी और यदि बेटा हो गया तो सब पण्डितों की दक्षिणा कटेगा, याद रखना। ब्राह्मणों ने मंत्र पलट दिये। महारानी श्रद्धा सूर्यवंश की प्रथम देवी है, जो बेटी के लिए संघर्ष कर रही है अन्यथा बेटी के नाम पर सबसे ज्यादा मुँह बिगड़ता है, तो माताओं का।

परिणाम यह हुआ कि महारानीजी की इच्छानुसार उनके गर्भ से एक बालिका का जन्म हो गया। पुत्री को पाकर रानी तो गद्गद् हो गई, लेकिन राजा उदास हो गये। उदास राजा वसिष्ठजी के पास जाकर बोले, गुरुजी! सब गड़बड़ हो गई। मैंने तो पुत्र चाहा था, पर मेरे यहाँ तो पुत्री हो गई। गुरुजी को भी बड़ा आश्चर्य हुआ। हवन करने वाले होता ब्राह्मणों से जब गुरुजी ने पूछा, अरे ब्राह्मणों! सचसच बताओ, क्या तुमने कुछ गड़बड़ किया है? ब्राह्मणों ने सारा हाल गुरुजी को सुनाया। सारा हाल जानकर वसिष्ठजी राजा से बोले, क्यों भाई? तुम दोनों पति-पत्नी एकमत नहीं हो और ब्राह्मणों को बीच में फंसा दिया? अब हम लोग क्या करें? यदि बेटा होता, तो रानी उदास होती और बेटी हुई तो तुम उदास हो गये। अब जो हो गया, सो हो गया! राजा बोले, नहीं महाराज!

मुझे बेटा ही चाहिये। गुरुजी बोले, अब चाहने से क्या होता है? अब तो बेटी हो ही गई। राजा ने कहा, नहीं गुरुदेव! यदि आप चाहें तो अब भी कुछ भी हो सकता है। यदि आप चाहें तो ये बेटी ही बेटा बन सकती है। इस प्रकार जब खूब अनुनय-विनय राजा ने किया तो गुरुजी को भी दया आ गई और फिर गुरु वसिष्ठजी ने उस बालिका को ही बालक बना दिया।

बाद में मनु महाराज के इक्ष्वाकु, नृग, शर्याति, दिष्ट, घृट, करूष, नरिष्यन्त, पृषध्र, नभग, कवि, आदि दस पुत्र हुये। इन दस पुत्रों से ही सूर्यवंश का विस्तार हुआ। इनमें शर्याति नामक जो पुत्र थे, उनकी एक बेटी हुई सुकन्या। उस सुकन्या ने ही धोखे से अनजाने में च्यवन मुनि के नेत्र फोड़ दिये। तो च्यवन मुनि के साथ ही उसका विवाह हुआ। बाद में च्यवन मुनि ने अश्विनी कुमारों के प्रभाव से नवयौवन प्राप्त कर लिया था। इन्ही शर्यातिजी के वंश में महाराज रेवत हुये। इनके सौ पुत्रों में सबसे बड़ा था ककुद्मी, जिसकी उसकी बेटी थी रेवंती। इन्हीं रेवतीजी का विवाह बलरामजी के साथ सम्पन्न हुआ। शुकदेवजी कहते हैं, परीक्षित! मनु महाराज के जो दूसरे बेटा थे नभग, आगे उनके बेटा हुये नाभाग। और नाभाग के बेटा हुये परम भागवत श्रीअम्बरीषजी महाराज। परम वैष्णव अम्बरीषजी महाराज भगवान् के अनन्य भक्त सप्तद्वीप-वसुन्धरा के अधिपति होकर भी प्रभु की अष्टयाम सेवा करते हैं।

स वै मनः कृष्णपदारविन्दयोर्वचांसि वैकुण्ठगुणानुवर्णने ।
करौ हरेर्मन्दिरमार्जनादिषु श्रुतिं चकाराच्युतसत्कथोदये ॥ (भा. 9/4/18)

अम्बरीष महाराज का नियम था - अपने कानों से सदा भगवान् की कथा सुनना, वाणी से गोविन्द के सतत् गुणानुवाद गाते रहना। सम्राट होकर भी ठाकुरजी के मन्दिर की झाड़ू लगाने की सेवा भी स्वयं अपने हाथों से करते हैं। किसी दास-दासी का कोई सहयोग नहीं, ठाकुर सेवा में ऐसी अद्भुत सेवा। अरे! और तो और गेंहू भी अपने हाथ से पीसते हैं, जिससे ठाकुरजी का प्रसाद तैयार करना है। न जाने कोई कैसे बीनेगा, कैसे पीसेगा? तो अपने हाथ से ही चक्की चलाते हैं। एक बार तो चक्की चलाते-चलाते पसीना आ रहा था कि अचानक दिव्य सुगंध और दिव्य शीतल मन्द सुगन्धित हवा आई। पीछे मुड़कर देखा तो स्वयं ठाकुरजी अपने पीताम्बर से हवा कर रहे हैं। जो अम्बरीष महाराज ने देखा और चरणों में लिपट गये, जय हो प्रभु! आप ये क्या लीला कर रहे हैं? हम आपके दासानुदास हैं, हम किंकरों की आप इस प्रकार से सेवा करेंगे? भगवान् बोले, भैया! तू इतना बड़ा सम्राट होकर मेरे लिये चक्की चला सकता है, तो क्या मैं तेरे लिये हवा भी नहीं कर सकता? भगवान् बोले, अम्बरीष! आज से ये सुदर्शन चक्र, मेरा नहीं तेरा है। क्योंकि तू तो सतत् मेरे भजन-भक्ति में संलग्न है। तेरे ऊपर कोई आपत्ति-विपत्ति न आवे, इसके लिये मेरा सुदर्शनचक्र सदा तुम्हारे साथ है। देखो! भक्त जब अपना सर्वस्व आत्मनिवेदन प्रभु से कर देता है, तो उसकी सारी जिम्मेदारी भगवान् अपने हाथ में ले लेते हैं। **'योगक्षेमं वहाम्यहम्'** (भगवद्गीता 9/22) ये प्रभु की प्रतिज्ञा है।

एक बार अम्बरीष महाराज ने एकादशी का निर्जल व्रत किया। व्रत तो सफल हुआ पर द्वादशी में जब व्रत का पारायण करने लगे, तो उसी क्षण महात्मा दुर्वासा मुनि आ गये। अम्बरीषजी ने कहा, आइये महाराज! प्रसाद पाइये। दुर्वासाजी बोले, अवश्य पावेंगे पर इस समय संध्यावन्दन करने जा रहे हैं, लौटकर फिर आते हैं। यों कहकर चले गये। अब अम्बरीष महाराज दुविधा में पड़ गये क्योंकि तिथि क्षय है, तिथि निकल रही है। ब्राह्मणों से पूछा, क्या करें महाराज? ब्राह्मणों ने कहा, भगवान् का चरणामृत पी लो। व्रत भी खुल जायेगा और ब्राह्मण का सम्मान भी रह जायेगा। तो भगवान् का चरणामृत पीकर व्रत खोल लिया। पर दुर्वासाजी को पता चला, तो एकदम लाल पीले हो गये।

यो मामतिथिमायातमातिथ्येन निमन्त्र्य च ।
अदत्त्वा भुक्तवांस्तस्य सद्यस्ते दर्शये फलम् ॥ (भा. 9/4/45)

मेरे-जैसे अतिथि ब्राह्मण को निमंत्रित करके पहले ही तू पारायण करके बैठ गया? अभी इसका फल चखाता हूँ। क्रोध में भरे दुर्वासाजी ने जटा उखाड़कर पटक दी, जिससे एक भयंकर कृत्या पैदा हो गई। विकराल मुँह फाड़कर राजा को खा जाने के लिए दौड़ी। राजा तो हाथ जोड़कर खड़े हो गये। भगवान् के सुदर्शन चक्र ने सावधान होकर तुरन्त कृत्या को भस्म कर दिया और दुर्वासा मुनि के पीछे पड़ गये। जो भगवान् का अमोघ चक्र देखा कि दुर्वासाजी को भागते रास्ता नहीं मिला। अब आगे-आगे दुर्वासा, पीछे सुदर्शन।

दौड़े-दौड़े ब्रह्माजी की शरण में आये, प्रभो! इस सुदर्शन चक्र से रक्षा करो!! सुदर्शन का नाम सुनते ही ब्रह्माजी घबड़ाकर दुर्वासा को भगा दिया। भगवान् शम्भु की शरण में गये, हे भोलेनाथ! मैं तो आपका बच्चा हूँ। मेरी इस सुदर्शन चक्र से रक्षा करो! भोलेनाथ ने कहा, **'तमेव शरणं याहि'** जिनका सुदर्शन है, उन्हीं की शरण में जा। तब आकर दुर्वासाजी भगवान् नारायण के चरणों में जा गिरे, हे प्रभु! ये सुदर्शन आपका ही अमोघ अस्त्र है और आप अनन्य ब्राह्मण भक्त हैं। अपने सुदर्शन से मुझ ब्राह्मण की आप ही रक्षा करो। भगवान् बोले, मुझे भी स्वतंत्र न समझिये, मैं भी पराधीन हूँ। दुर्वासाजी के होश उड़ गये, आज नारायण कह रहे हैं कि मैं पराधीन हूँ? भगवान् अपना पारतन्त्र्य स्वीकार कर लेते हैं। रामचरितमानस में तो नारदजी ने खूब आरोप लगाया,

परम स्वतंत्र न सिर पर कोई

पर भगवान् भागवत में अपनी परतन्त्रता स्वीकार करते हैं,

अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज ।
साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः ॥ (भा. 9/4/63)

दुर्वासाजी! मैं अपने अम्बरीष-जैसे भक्तों के सर्वथा अधीन रहता हूँ।

वशीकुर्वन्ति मां भक्त्या सत्स्त्रियः सत्पतिं यथा

जैसे परमपतिव्रता स्त्री पतिपरायण होकर अपनी सेवा के बल पर पति को अपने अधीन कर लेती है, ऐसे ही इन भक्तों ने मेरे पारायण होकर मुझे अपने वश में कर लिया है। जो अपना सर्वस्व त्यागकर मेरी शरण में आ गये, उन भक्तों को मैं कैसे त्याग सकता हूँ?

हित्वा मां शरणं याताः कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे

ये भक्त सदा मुझे अपने हृदय में बाँधकर रखते हैं, तो मैं भी इन भक्तों को अपने हृदय में रखता हूँ। ये भक्त मेरे अतिरिक्त किसी को नहीं जानते, तो आज मैं भी कहता हूँ कि मैं भी इन भक्तों के अलावा किसी को नहीं जानता।

साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम् ।
मदन्यत् ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि ॥ (भा. 9/4/68)

दुर्वासाजी बोले, तो आज क्या भगवत् शरणागति व्यर्थ जायेगी? अरे! भगवान् की शरणागति से बढ़कर और कोई शरणागति हो नहीं सकती? मैं समर्थ नारायण की शरण में आया हूँ और प्रभु! आप भी हाथ उठाकर कह रहे हो कि मैं असमर्थ हूँ। आपकी शरणागति कलंकित हो जायेगी। भगवान् बोले, ना ना! मेरी शरणागति व्यर्थ नहीं जायेगी। **'उपायं कथयिष्यामि'** मेरी शरण में आये हो तो बचने का उपाय बता रहा हूँ। जिस वैष्णव का अपराध करके आये हो, उसी के पास चले जाओ बच जाओगे। तब बेचारे दुर्वासाजी को वापिस मुड़ना पड़ा और तब तक एक वर्ष बीत चुका था।

एक वर्ष के बाद दुर्वासाजी भाग करके वापिस अम्बरीषजी के चरणों में गिर पड़े। अम्बरीष ने उठाकर हृदय से लगा लिया, महाराज! उल्टी गंगा न बहाइये। ये दास आपका अपराधी है, मुझे क्षमा करें। दुर्वासाजी बोले, और सब बातें बाद में करते रहेंगे, पहले इस सुदर्शन को शान्त कर। एक वर्ष से लगातार मुझे भगा रहा है। तब अम्बरीष महाराज ने सुदर्शन चक्र की स्तुति की और प्रार्थनापूर्वक कहा कि यदि हमारे सूर्यवंश में हमारे पूर्वजों ने सदा ब्राह्मणों को अपना इष्ट मानकर पूजा हो, हमारे हृदय में सच्ची ब्राह्मणों के प्रति यदि निष्ठा और भक्ति है तो हे सुदर्शन! इस ब्राह्मण को आप अपने ताप से मुक्त कर दो। परन्तु सुदर्शन शान्त नहीं हुए। तब दूसरी सौगन्ध ली, मैंने समस्त प्राणियों में सचमुच अपने प्रभु का ही दर्शन किया हो, कभी किसी का अहित स्वप्न में भी न सोचा हो, सभी से उसी भावना से प्रीति की हो, जो नारायण से प्रीति होती है। नारायण का ही सबमें दर्शन कर सबसे मैंने समान प्रेम किया हो और यदि ये वाणी मेरी सत्य है; तो हे सुदर्शन! तुम शान्त हो जाओ।

यदि नो भगवान् प्रीत एकः सर्वगुणाश्रयः ।
सर्वभूतात्मभावेन द्विजो भवतु विज्वरः ॥ (भा. 9/5/11)

ये शपथ सुनी तो सुदर्शन चक्र शान्त हुये। दुर्वासाजी की सांस में सांस आयी। कान पकड़कर बोले, हे प्रभो!

अहो अनन्तदासानां महत्त्वं दृष्टमद्य मे ।
कृतागसोऽपि यद् राजन् मङ्गलानि समीहसे ॥ (भा. 9/5/14)

प्रभु! आपके चरणाश्रित भक्तों का महत्व आज मैंने बहुत अच्छी तरह देख लिया। अम्बरीष महाराज हाथ जोड़कर बोले, महाराज! अब चलकर प्रसाद तो पा लीजिये, ताकि हम भी आपका प्रसाद पावें। दुर्वासाजी बोले, तो आपने क्या अभी तक प्रसाद नहीं पाया? राजा बोले, अरे प्रभु! आपका निमंत्रण कर चुके थे। आपको पवाये बिना कैसे पा लेते? दुर्वासाजी बोले, राम राम! अनर्थ हो गया। हम तो सोच रहे थे कि तुम पाकर बैठे हो। एक वर्ष तक श्रीअम्बरीषजी महाराज ब्राह्मण का निमंत्रण कर चुके थे, इसलिये भोजन ही नहीं पाये। ऐसे परमभागवत श्रीअम्बरीष महाराज हुए।

इन्ही के पावन वंश में आगे चल के युवनाश्व हुए, जिन्होंने भ्रमवश अभिमंत्रित जल को पी लिया था। इसलिये युवनाश्व के ही उदर से मान्धाता का जन्म हुआ। मान्धाता के सत्यव्रत और इनके वंश में हरिश्चन्द्र हुए। हरिश्चन्द्र के रोहित, रोहित से बाहुक, बाहुक के सगर नामक पुत्र हुए। राजा सगर के साठ हज़ार पुत्र हुए। अश्वमेधयज्ञ का घोड़ा इन्द्र ने चुराकर भगवान् कपिलदेवजी के आश्रम में बाँध दिया, तो सगरपुत्रों ने कपिल भगवान् को ही चोर समझ लिया। अपशब्द बोलने लगे,

एष वाजिहरश्चौर आस्ते मीलितलोचनः

इस पाखण्डी को देखो! हमारा घोड़ा चुराकर कैसा आँख बंद किये बैठा है? कपिल भगवान् के नेत्र खुल गये और सगर के साठ हजार पुत्र जलकर राख के ढेर हो गये। अब कैसे उद्धार हो? तो कपिल भगवान् ने ही उपाय बताया कि माता गंगा के जल स्पर्श से उद्धार हो सकता है। तब सगरपुत्र असमंजस, असमंजसपुत्र अंशुमान, अंशुमानपुत्र दिलीप और दिलीप पुत्र भागीरथ - इन सबने क्रम से तपस्या की। तब भागीरथ के तप से गंगामैया प्रकट हुई। भगवान् शंकर ने जटाओं के बीच गंगाजी को स्थान दिया। आगे-आगे भागीरथ, पीछे पीछे भागीरथी चल पड़ीं। रास्ते में जह्नु नामक राजर्षि तप कर रहे थे। गंगाजी ने उनकी कुटिया को बहा दिया, तो जह्नु बाबा ने पूरी गंगाजी का पान कर लिया। भागीरथ ने प्रार्थना की तो अपने कान से गंगाजी को प्रकट

किया। इसलिये जह्नुपुत्री बनकर गंगाजी प्रकट हुई और उनका नाम जाह्नवी हो गया। अन्त में जहाँ सगरपुत्रों की भस्मी पड़ी थी, वहाँ जाकर गंगामैया ने जैसे-ही अपने पावन जल का स्पर्श किया,

यज्जलस्पर्शमात्रेण ब्रह्मदण्डहता अपि ।
सगरात्मजा दिवं जग्मुः केवलं देहभस्मभिः ॥ (भा. 9/9/12)

सभी सगरपुत्रों का उद्धार हो गया। श्रीशुकाचार्यजी कहते हैं, परीक्षित! इन्हीं भागीरथ के वंश में राजा ऋतुपर्ण हुये। ऋतुपर्ण के सौदास, सौदास के अस्मत, अस्मत के नारीकवच, नारीकवच के खट्वाङ्ग, खट्वाङ्ग के दिलीप, दिलीप के रघु (जिनके नाम से रघुवंश चला), रघु महाराज के अज, अज के बेटा दशरथ और दशरथजी के पुत्र श्रीराम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्नलालजी हुए। श्रीशुकदेवजी महाराज ने एक श्लोक में ही पूरी रामकथा सुना दी।

गुर्वर्थे त्यक्तराज्यो व्यचरदनुवनं पद्मपद्भ्यां प्रियायाः
पाणिस्पर्शाक्षमाभ्यां मृजितपथरुजो यो हरीन्द्रानुजाभ्याम्।
वैरूप्याच्छूर्पणख्याः प्रियविरहरुषाऽऽरोपितभ्रूविजृम्भ
त्रस्ताब्धिर्बद्धसेतुः खलदवदहनः कोसलेन्द्रोऽवतान्नः॥ (भा. 9/10/4)

आईये! हम भी संतों का ही अनुकरण करते हुये प्रभु श्रीराम का चिन्तन अपने हृदयस्थल में प्रतीकात्मक-स्वरुप में स्मरण करें।

श्रीरामजी का चतुर्व्यूह में अवतार हुआ - श्रीराम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न और उनकी शक्तियों का प्राकट्य, मिथिला नगरी में एक-ही साथ एक-ही परिवार में हुआ। हम भी अपने हृदयभवन को अवध और मिथिला बनाकर शक्तियों के साथ चारों शक्तिमानों को अपने हृदय में विराजमान करें और अपन हृदय में रामराज्य की प्रतिष्ठा करें। और वह कैसे सम्भव है? आइये! इस सूक्ष्म-भाव की चर्चा करके रामकथा मन्दाकिनी में आचमन करते हुए आगे बढ़ें।

रघुकुलनन्दन चारों भाईयों में नीचे से ऊपर की तरफ हम बढ़ेंगे। श्रीरामतत्त्व को पाने के लिये सबसे पहले हमें सबसे छोटे अनुज श्रीशत्रुघ्नलालजी का आश्रय लेना पड़ेगा। जिनका स्मरण करने मात्र से समस्त शत्रुओं का पराभव हो जाये, उनका नाम शत्रुघ्न। नामकरण करते समय गुरुजी ने यही कहा था,

जाके सुमिरन तें रिपु नासा। नाम सत्रुहन बेद प्रकासा ॥
(रामचरितमानस 1.197.4)

जिनका स्मरण करने मात्र से शत्रुओं का नाश हो जाये, वे शत्रुघ्न। पर बिना शक्ति के शक्तिमान् काम नहीं करते। तो शत्रुघ्नलालजी की शक्ति का नाम है - श्रुतकीर्ति। श्रुतकीर्ति अर्थात् भगवान् की मंगलमयी-कीर्ति। उसको इन कर्णपुटों से श्रवण करो। भगवान् की महिमा-कीर्ति जो शास्त्रों में भरी पड़ी है तथा जो सुनते ही जीवन का मंगल कर देती है, ऐसी उस कीर्ति-कथा को कर्णपुटों से हम श्रवण करेंगे, तो श्रुतकीर्ति का आश्रय लेते ही हमें शत्रुघ्न-तत्त्व प्राप्त होगा। भगवान् की वही कीर्ति जब हमारे हृदय में पहुँचेगी, तो हृदय में जो छुपे हुये शत्रु बैठे हैं - काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य ... उन समस्त हृदयस्थ शत्रुओं का विनाश होता चला जायेगा।

प्रथम भगति संतन कर संगा । दूसर गति मम कथा प्रसंगा ॥
(रामचरितमानस 3.35.4)

संतों के सान्निध्य में कथाप्रसंग श्रवण करो - ये पहली सीढ़ी है। उससे ये काम, क्रोधादि भीतर के शत्रु समाप्त हो जायेंगे। देखो भाई! मकान में कब्जा तब होता है, जब वह खाली हो। तो ठाकुरजी हमारे हृदयभवन पर कब्जा कब करेंगे? जब उन्हें खाली नजर आवे। जब देखते हैं कि काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, ईर्ष्या, द्वेष, छल, कपट ... तो भगवान् देखते ही समझ जाते हैं - 'हाउसफुल' अर्थात् यहाँ हमारे लिये कोई जगह नहीं है। तो श्रुतकीर्ति का आश्रय लेते ही शत्रुघ्नलालजी भीतर के सारे शत्रुओं को समाप्त कर देंगे और भवन खाली हो गया।

अब दूसरी सीढ़ी पर चलें। शत्रुघ्नलालजी से बड़े भैया श्रीलक्ष्मणजी हैं। जिसके जीवन का एक ही लक्ष्य हो, वह लक्ष्मण है। और लक्ष्मणजी का लक्ष्य एक ही है - उन्हें रामजी के अतिरिक्त किसी से कोई मतलब ही नहीं। शास्त्र कहते हैं -

मातृदेवो भवः पितृदेवो भवः आचार्य देवो भवः

(तैत्तरीयोपनिषद् शिक्षावल्ली 1/20)

और यही शिक्षा रामजी ने भी लक्ष्मणजी को दी, भैया लक्ष्मण! भरत-शत्रुघ्न मामाजी के यहाँ गये हैं और माता-पिता से हमें वन जाने की आज्ञा मिल चुकी है। अब सारी अयोध्या का दायित्व तुम्हारे कन्धे पर है। इसलिये लक्ष्मण! अब यहीं रहकर के अयोध्या में माता-पिता की सेवा करो। इसपर लक्ष्मणजी ने तो सीधा जवाब दिया, मुझे किसी से कोई मतलब नहीं।

गुरु पितु मातु न जानहुं काऊ। करहूं स्वभाव नाथ पति जाऊ ॥

(रामचरितमानस 3.35.4)

अब तुलना करें, यहाँ तीनों का नाम ले दिया - **'मातृदेवो भवः पितृदेवो भवः आचार्य देवो भवः'** और लक्ष्मणजी कह रहे हैं - **'गुरु पितु मातु न जानहुं काऊ'** रामजी बोले, ये तुम बोल रहे हो? अरे भाई! जब माता-पिता-गुरु को नहीं मानते, तो फिर संसार में किसे मानते हो तुम? लक्ष्मणजी बोले, संसार के जितने नाते हैं, उन समस्त नातों को मैंने आप में देखा है।

मोरे सबहिं एक तुम स्वामी। दीनबन्धु उर अंतरयामी ॥
माता रामो मत्पिता रामचन्द्रः स्वामी रामो मत्सखा रामचन्द्रः।
सर्वस्वं मे रामचन्द्रो दयालुर्नान्यं जाने नैव जाने न जानेः ॥

अन्य किसी को मैं जानता ही नहीं। भगवान् बोले, तुम सही कह रहे हो क्योंकि रोज़ सभी लोग मुझे प्रणाम करते समय यही कहते हैं 'त्वमेव माता च पिता त्वमेव' पर वे केवल कहते ही कहते हैं। तुम कहाँ से कह रहे हो? लक्ष्मणजी बोले, हे दीनबन्धु! क्या तुमसे कोई झूठ भी कह सकता है? और मैं झूठ कह रहा हूँ या केवल वाणी से कह रहा हूँ या हृदय से कह रहा हूँ - ये मुझसे ज्यादा आप समझ सकते हो। आप तो सबके अन्तर्यामी हो, भीतर ही छुपे बैठे हो। आप ही भीतर झांक कर जरा... देखिये! मैं कहाँ से कह रहा हूँ ... और लक्ष्मणजी के इस हृदय की भावना को जब भगवान् जान गये, तो प्रसन्न होकर बोले, अच्छा! तो कोई बात नहीं माताजी से आज्ञा लो और चलो हमारे साथ।

ऐसा ही लक्ष्य जब हमारे जीवन में सुदृढ़ जो जाये, भगवान् ही हमारे सर्वस्व जीवनधन बन जायें, तो समझ लो कि हमारे जीवन में श्रीलखनलालजी प्रकट हो गये। अब लक्ष्मणजी अकेले थोड़े ही आयेंगे, उनकी शक्ति उर्मिला देवी भी प्रगट होगी। अर्थात् जब लक्ष्य लक्ष्मणजी की तरह सुदृढ़ और सुनिश्चित् एक हो जायेगा, तो

हमारे हृदय में प्रभु से मिलने की उत्कण्ठा का उदय होना प्रारम्भ हो जायेगा। यही समझ लो कि उर्मिला प्रगट हो गई। उर में प्रभु से मिलने की उत्कण्ठा का उदय होना ही उर्मिलाशक्ति की जागृति है। प्रभु कहाँ मिलेंगे, कैसे मिलेंगें, कब मिलेंगे ... इसकी निरन्तर उत्कण्ठा बढ़ती चली जावे, तो समझ लो कि लक्ष्य सुदृढ़ है और हमारी उत्कण्ठा बढ़ रही है और लक्ष्मण और उर्मिला का जोड़ा जहाँ प्रगट हुआ हृदय-भवन में ... तब हमने दो सीढ़ी पार कर ली।

अब तीसरे भाई हैं भरत। भरत का अर्थ है भर देने वाला। भरतजी साक्षात् श्रीरामचन्द्रजी के प्रेमविग्रह हैं। इनके भीतर श्रीरामचन्द्र का प्रेम इतना लबालब भरा है कि जो इनका स्मरण करता है, उसके हृदय को भी रामप्रेम से परिपूर्ण भर देते हैं। विषयरस जो जीव में भरा है, उसे निकालकर बाहर करते हैं और उसके भीतर रामरस भर देते हैं। यही भरने का काम भरतजी करते हैं। गोस्वामीजी ने संकेत दिया,

भरत चरित करि नेमु तुलसी जो सादर सुनहिं ।
सीय राम पद प्रेमु अवसि होई भव रस बिरति ॥

(रामचरितमानस 2.326)

अब हमारा हृदय रामजी के प्रेम से परिपूर्ण हो गया, तब भरतजी की शक्ति माण्डवी प्रकट होंगी। हम रामप्रेम से भर गये हैं, इसकी पहचान यही है कि ब्रह्माण्ड में चराचर प्राणियों के प्रति हमारे हृदय में ऐसा प्रेम जागे, जैसा माँ का पुत्र के प्रति होता है। तब समझ लो कि माण्डवीशक्ति जागृत हो गई।

अब ये तीन सोपान जब पार करोगे, तब रामलला हमारे हृदय में गमन करने के लिये प्रकट होंगे। **'रम क्रीडायाम्'** धातु से राम शब्द बनता है। जो योगियों के हृदय में रमण करे या योगी जिस तत्व में रमण करें, वो श्रीराम हैं। हमारे हृदय में इस प्रकार से जब तीन सोपान हम पार कर लेंगे, तो श्रीराम भी हृदयभवन में अवधपुरी बनाकर प्रकट हो जायेंगे। और रामजी कौन हैं? रामजी का स्वरूप क्या है?

जो आनंद सिंधु सुखरासी । सीकर तें त्रैलोक सुपासी ॥
सो सुख धाम राम अस नामा । अखिल लोक दायक बिश्रामा ॥

(रामचरितमानस 1.197.3)

श्रीरामजी तो साक्षात् आनन्द के सागर हैं। जब हृदय में रामराज्य स्थापित होगा, तो भीतर हमारे आनन्द का ही साम्राज्य होगा। सारे अमंगल दूर हो जायेंगे और हमारा हृदयभवन मंगल का भवन बन जायेगा। जबतक शरीर है, तबतक प्रारब्ध के अनुसार दैहिक-दैविक-भौतिक ताप जीव को प्रभावित करते रहते हैं। परन्तु यदि भीतर रामजी का आनन्द विराजमान है, तो जो दैहिक-दैविक-भौतिक ताप की आग में हम जो तप रहे हैं, उस संताप को दूर करने के लिये सीताजी शीतल छांव बनकर सिर पर अपना कृपामय वरदहस्त रख देंगी। ऊपर से किशोरीजी का कृपामय वरदहस्त होगा, तो त्रिताप की ज्वाला भी शान्त हो जायेगी। भाई! धूप पड़ रही है, तो धूप को तो हम शान्त नहीं कर सकते पर छाता तो लगा सकते हैं? और छाता लग गया, तो धूप शान्त या कम तो हो सकती है। तो त्रिताप जो जीव को सता रहे हैं, उसको शीतल करने के लिये किशोरीजी की कृपा की छांव होगी और भीतर हमारे रामजी आनन्दसिन्धु बनकर रमण करेंगे, तो भीतर का आनन्द और भीतर ही शीतलता प्राप्त हो जायेगी और जीव शाश्वत-शान्ति और शाश्वत-सुख को प्राप्त करने में आज भी समर्थ हो सकता है।

अब शुकदेवजी कहते हैं, राजन्! अब चन्द्रवंश की परमपुण्यमयी कथा का श्रवण करें।

अथातः श्रूयतां राजन् वंशः सोमस्य पावनः ।

यस्मिन्नैलादयो भूपाः कीर्त्यन्ते पुण्यकीर्तयः ॥ (भा. 9/14/1)

शुकदेवजी कहते हैं, राजन्! अब चन्द्रवंश की परमपुण्यमयी कथा का श्रवण करें। भगवान् नारायण के नाभिकमल से ब्रह्मा, ब्रह्मा के बेटा अत्रि मुनि, अत्रि के बेटा चन्द्रमा, जिनसे चला चन्द्रवंश। चन्द्रमा के बेटा बुध, बुध के बेटा पुरुरवा हुए। इन्हीं पुरुरवा का दूसरा नाम ऐल था। राजा ऐल का विवाह उर्वशी अप्सरा से हुआ तथा इनके आयु, श्रुतायु, सत्यायु, रय, जय, विजय, आदि छः बेटा हुए। इन्हीं के प्रतापी वंश में आगे चलकर महाराज नहुष का जन्म हुआ। नहुष के भी यति, ययाति, संयाति, आयति, वियति, कृति, आदि छः बेटा हुए। उनमें सबसे बड़ा बेटा यति संन्यासी ही हो गया। दूसरे बेटा के दो विवाह हुए। पहला विवाह शुक्राचार्यजी की बेटी देवयानी से और दूसरा विवाह वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा से। ययाति की यदु, तुर्वसु, द्रुह्यु, अनुपुरु, आदि पाँच संतानें हुई। इन पाँच संतानों में सबसे छोटे बेटे का नाम पुरु, जो पिता का अनन्य भक्त था। शुक्राचार्यजी के शाप से जब ययाति बुड्ढे हो गये, तो वह वृद्धावस्था पुरु ने अपने ऊपर धारण कर ली और अपनी युवावस्था पिता को प्रदान कर दी। इसलिये ययाति ने पुरु को ही चक्रवर्ती सम्राट् घोषित किया और बड़े पुत्रों को शापित किया, तुम्हारे वंश में कोई चक्रवर्ती नहीं होगा।

शुकदेवजी कहते हैं, परीक्षित! पुरुवंश में ही राजा दुष्यन्त का जन्म हुआ। इनके बड़े ही प्रतापी पुत्र भरत हुए, जो बचपन से ही सिंहों से क्रीडा किया करते थे। इसी प्रतापी वंश के राजा रन्तिदेव हुए, जिन्होंने सूखा पड़ जाने पर प्रजा में अपना सर्वस्व खजाना लुटा दिया और उनचास दिन तक स्वयं भूखे बैठे रहे। ऐसे प्रतापी पुरुवंश में परीक्षित! तुम्हारा भी जन्म हुआ है। तुम पुरुवंशी हो और पुरु महाराज के जो सबसे बड़े भाई थे, यदु उनसे चला यदुवंश। यदुवंश में भी अजमीढ़, देवमीढ़, शूरसेन, प्रभति, आदि बड़े-बड़े प्रतापी राजा हुए। महाराज शूरसेन के बेटा हुए आनकदुन्दभि, इन्हीं का नाम वसुदेव है। वसुदेव की सात पत्नियां थीं। उनकी सप्तम पत्नी देवकी के गर्भ से आठ सन्तानें हुईं।

अथ श्रीमद्भागवतपुराणस्य

॥ दशमः स्कन्धः ॥

(निरोधः)

कथितो वंशविस्तारो भवता सोमसूर्ययोः ।
राज्ञां चोभयवंश्यानां चरितं परमाद्भुतम् ॥
यदोश्च धर्मशीलस्य नितरां मुनिसत्तम ।
तत्रांशेनावतीर्णस्य विष्णोर्वीर्याणि शंस नः ॥ (भा. 10/1/1-2)

परीक्षित ने तुरन्त प्रश्न किया, भगवन्! आपने मुझे सूर्यवंश की वंशावली और चन्द्रवंश के राजाओं की गाथा तो बहुत लंबी चौड़ी सुनाई। परन्तु जब मेरे प्यारे प्रभु की चर्चा आयी, तब इतनी जल्दी चटपट कैसे कर गये, जिनके लिये मैं कितना उतावला बैठा हूँ? मैं जानना चाहता हूँ कि परमधर्मशील महाराज यदु के वंश में मेरे प्रभु का प्राकट्य अपने अंशों के साथ कैसे हुआ? महाराज! जिज्ञासायें तो बहुत हैं। मैं जानता हूँ कि श्रीकृष्णकथा भवरोग की मीठी दवा है। दवाइयां कई प्रकार की होती हैं। ऐलोपेथी का भरोसा नहीं, कब कौन-सी दूसरी बीमारी पैदा कर दे? आयुर्वेदिक है तो बहुत बढ़िया, पर मुँह बहुत कड़वा कर देती है। पर सबसे बढ़िया मीठी दवा है होम्योपैथिक। दो-दो गोली दो-दो घंटे में चूसते जाओ, मुँह मीठा होता जाये और बीमारी जड़ से मिटती जाये। तो ऐसे ही कृष्णकथा की जो औषधि है, वह भवरोग की मीठी दवा है। योगाभ्यास करते-करते थोड़ी गड़बड़ हो गई, तो गिर भी सकते हैं। ज्ञान में ज्ञानाभिमान का डर है। पर भक्तिरस बिल्कुल मीठा है। गोविन्द के चरणकमलों का ध्यान करते जाओ। उनकी रूपसुधा का पान करते जाओ और जन्म-मरण की बीमारी जड़ से मिटाते जाओ।

निवृत्ततर्षैरुपगीयमानाद् भवौषधाच्छ्रोत्रमनोऽभिरामात् ।
क उत्तमश्लोकगुणानुवादात् पुमान् विरज्येत विना पशुघ्नात् ॥ (भा. 10/1/4)

ये दवा भी कोई ऐसे-वैसे वैद्य ने नहीं बनाई। परमनिवृत्तिपरायण परमहंसाचार्य शुकदेवजी के द्वारा बनी ये मीठी दवा है। सुनने में बड़ी मीठी और जन्म-मरणरूपी भव रोग को मिटाने की बहुत मीठी दवा है। ऐसी मीठी दवा को भला कौन पीना नहीं चाहेगा? जन्म-मरण का भयंकर रोग सता रहा है, मीठी दवा भी संतों ने बना दी और फिर भी जीव उस औषधि का पान न करे? मेरी दृष्टि में तो वह सबसे बड़ा आत्मघाती है।

परीक्षित कहते हैं, भगवान् केवल भवरोग की मीठी दवामात्र है, मात्र इसीलिए मैं कृष्णकथा नहीं सुन रहा हूँ। मेरे पूर्वजों को मेरे प्रभु ने अपनी कृपामयी नौका में बैठाकर कौरवसैन्यसागर से पार लगाया था। कौरवों की सेना का इतना विशाल समुद्र था, जिसमें पितामह भीष्म और द्रोणाचार्य जैसे मगरमच्छ, मछलियां घूम रही थी।

ऐसे मगरमच्छों से भरा हुआ कौरव सैन्य सागर मेरे प्रभु ने अपनी कृपामयी नौका में मेरे पितामहों को बैठाकर ऐसे पार लगा दिया, जैसे बछड़े के खुर से बने गड्ढे को पार करने में कोई कठिनाई नहीं होती।

पितामहा मे समरेऽमरञ्जयैर्देवव्रताद्यातिरथैस्तिमिङ्गिलैः ।
दुरत्ययं कौरवसैन्यसागरं कृत्वातरन् वत्सपदं स्म यत्प्लवाः ॥ (भा. 10/1/5)

श्रीशुकदेवजी बोले, परीक्षित! ये तो तुम्हारे दादाजी का सम्बन्ध है, तुम्हारा क्या सम्बन्ध है? परीक्षित बोले, महाराज! उनकी ही कृपा से आज आपके सामने बैठा हूँ। नहीं तो जन्म लेने से पहले ही मैं तो मर चुका था। द्रोणाचार्यजी के पुत्र अश्वत्थामा ने ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करके मुझे तो मातृगर्भ में ही नष्ट कर दिया था, पर मेरे प्रभु सुदर्शनचक्र लेकर दौड़े-दौड़े आये, माँ के गर्भ में मुझे दर्शन दिये और ब्रह्मास्त्र को शान्त कर दिया।

द्रौण्यस्त्रविप्लुष्टमिदं मदङ्गं सन्तानबीजं कुरुपाण्डवानाम् ।
जुगोप कुक्षिं गत आत्तचक्रो मातुश्च मे यः शरणं गतायाः ॥ (भा. 10/1/6)

ध्यान दें, प्रथम स्कन्ध में जब चर्चा कर रहे थे। श्रीसूतजी महाराज परीक्षित के जन्म की तो उन्होंने कहा, गदा लेकर भगवान् गये। और परीक्षित कह रहे हैं कि भगवान् सुदर्शन चक्र लेकर आये। तो गदा लेकर आये अथवा सुदर्शन? संत समाधान करते हैं कि लेकर तो गदा ही गये थे, पर भगवान् ने अपनी गदा को इतनी तीव्रगति से घुमाया कि भोले-भाले परीक्षित को लगा, जैसे सुदर्शनचक्र नाच रहा है।

परीक्षित कहते हैं, भगवन! वह मेरे जीवनदाता हैं और जीवनदाता से बड़ा सम्बन्ध और क्या हो सकता है? बहुत सारी जिज्ञासायें मेरे मन में हैं, कहाँ तक आपसे पूछूं? महाराज! मैं जानना चाहता हूँ कि माँ' शब्द में कितना ममत्व होता है। पर जिसके नाम में ही दो 'मा' हों, ऐसे मामा तो बहुत प्यारे होते हैं। फिर भगवान् ने अपने मामाजी को क्यों मार डाला? मैं ये भी जानना चाहता हूँ कि श्रीदाऊजी महाराज देवकी माँ के सप्तम पुत्र थे और रोहिणी मैया के भी बेटा थे तो एक दाऊजी दो-दो माताओं के बेटा कैसे हो गये? देखिये महाराज! आप मेरे भूख-प्यास की बिल्कुल चिंता न करना। चार दिन हो गये, पर मुझे पता नहीं चला कि कितना समय बीत गया। क्योंकि आपके श्रीमुख से जो भगवच्चरित्र प्रवाहित हो रहे हैं, इस चरितामृत को पान करने के बाद भूखप्यास का पता ही नहीं चलता।

नैषातिदुःसहा क्षुन्मां त्यक्तोदमपि बाधते ।
पिबन्तं त्वन्मुखाम्भोजच्युतं हरिकथामृतम् ॥ (भा. 10/1/13)

भगवान् की मंगलमयी कथा से तीन का कल्याण होता है - **'वक्तारं पृच्छकं श्रोतृंस्तत्पादसलिलं यथा'** 1. जो भगवान् की मधुर कथा का गान करता है, 2. भगवान् के चरित्रों के बारे में जो प्रश्न करता है, उस प्रश्नकर्ता का तथा ३. एक पूछ रहा है, दूसरा बता रहा है इन दोनों के संवाद को जितने लोग सुनते हैं, उन समस्त श्रोताओं का परम कल्याण होता है। जैसे भगवान् शालिग्राम का अभिषेक करे, जो भगवान् का चरणामृत लेकर वितरण करे तथा चरणामृत जितने लोग पियें - उन सबका कल्याण। अभिषेक करने वाला एक, बाँटने वाला एक, पर पीने वाले अनेक। ऐसे ही पूछने वाला एक, कहने वाला एक, पर सुनने वाले अनेक - भगवान् के कथामृत से सबका कल्याण होता है। इसलिये परीक्षित! ये प्रश्न करके तुमने अपना ही नहीं, हमारा भी कल्याण कर दिया। शुकदेवजी अब गद्गद् होकर सुना रहे हैं, परीक्षित! ध्यान से सुनो। जब इस धरातल पर कंस और जरासंध-जैसे राजा पापाचरण करने लगे, तो पृथ्वी पापियों से पीड़ित होकर समस्त देवताओं के साथ

मिलकर ब्रह्माजी के संग भगवान् की आराधना करने लगे। सबने प्रभु की आराधना की तो ब्रह्माजी के हृदय में प्रभु का आदेश हुआ। वह आदेश ब्रह्माजी ने सब देवताओं को सुना दिया, सुनो सुनो! प्रभु की आज्ञा हो गई,

वसुदेवगृहे साक्षाद् भगवान् पुरुषः परः ।
जनिष्यते तत्प्रियार्थं सम्भवन्तु सुरस्त्रियः ॥ (भा. 10/1/23)

भगवान् वासुदेव का प्राकट्य वसुदेव के घर में बहुत जल्दी होने वाला है। **शंका** - भगवान् तो मामा कंस के जेलखाने में आये, वसुदेवजी के घर में नहीं, फिर गृहे' का मतलब? **समाधान** - **'न गृहं गृहमित्याहुः गृहिणी गृहमुच्यते'** अरे! ईट-पत्थरों के मकान को घर नहीं कहते, गृहिणी को घर कहते हैं। **'वसुदेव गृहे'** अर्थात् वसुदेव पत्न्याम' वसुदेव की पत्नी देवकी के गर्भ में प्रभु का प्राकट्य होने वाला है। इसलिये तुम लोग भी जल्दी मथुरा चलो। मथुरा में प्रभु आयेंगे, तो हम अकेले ही चलें? ब्रह्माजी बोले, नहीं! अकेले नहीं। **'सम्भवन्तु सुरस्त्रियः'** अपनी-अपनी देवियों को भी साथ में लेकर जाओ। क्योंकि भगवान् भी अकेले नहीं आ रहे, **'जनिष्यते तत्प्रियार्थं'**। 'तत्प्रिया' अर्थात् श्रीराधारानी। भगवान् की आह्लादिनी शक्ति राधारानी भी वृषभानुनन्दनी बनकर बरसाने में आ रही हैं। इसलिये तुम भी अपनी देवियों को लेकर, उनकी रक्षा करने के लिये चलो। तब तो देवी-देवता विमुग्ध हो गये और विविधरूपों में मथुरामण्डल में देवी-देवताओं का अवतार होने लगा।

मोक्षदायिनी परमपावन पुरी मथुरा में भगवान् का नित्य निवास है - **'यत्र नित्यं संनिहितो हरिः'**। यहाँ के राजा महाराज उग्रसेन बहुत ही धर्मात्मा हैं, पर इनका बेटा हो गया कंस। **'कसि हिंसायाम्'** धातु से कंस शब्द बना। अर्थात् हिंसा में ही जिसकी स्वाभाविक अभिरुचि हो, वह कंस। मार-काट, लड़ाई-झगड़ा, जिसे बेहद पसंद हो, वह कंस। इतना क्रूर प्रवृत्ति का कि एक बार तो अपने पिताजी को ही उठाकर जेल में पटक आया और मथुरा की गद्दी हठात् अपने वश में कर ली। एक बार इस कंस की दृष्टि अपने चाचा देवक महाराज की बेटी देवकी के ऊपर पड़ी। उसने देखा कि हमारी बहिन सयानी हो गई है, तो चलो इसका सम्बन्ध किया जाये। तो वसुदेवजी महाराज से सम्बन्ध पक्का कर आया। गाजे-बाजे के साथ धूमधाम से बारात लेकर वसुदेवजी आये, हर्षोल्लासपूर्वक विवाह भी कर दिया। पर कंस ने विचार किया आजकल हमारी कुछ छवि बिगड़ रही है, लोग हमें बड़ा क्रूर-निर्दयी समझते हैं। इसलिये कुछ ऐसा नाटक किया जाये कि लोग हमें दयालु समझें। सो इसने नाटक रचाया, अपनी बहिन के विवाह में विदाई करते समय आँखों से आंसू टपकाने लगा। मैं अपनी बहिन का रथ स्वयं अपने हाथों से ही हाँकूँगा।

प्रजा देख-देखकर गद्गद् हो गई, अरे! महाराज को हम जितना क्रूर समझते थे, ऐसे नहीं हैं। हृदय के बड़े कोमल हैं। देखो-देखो! कितने भावुक हो रहे हैं? पर देवताओं की धड़कन तेज हो गई, ये तो बड़ा नाटकी है? प्रजा पर इसने देखो! अपना प्रभाव छोड़ ही दिया। लोग इसे सज्जन समझने लगे? और देवकी माँ तो इससे कितनी भावुक होकर मिल रही हैं? यदि माँ देवकी भी इसके रहस्य को नहीं समझ पायीं, तो देवकीनन्दन प्रभु फिर इसे मारेंगे कैसे? यदि कंस देवकी माँ का कृपापात्र बना रहा, तो देवकीनन्दन कैसे मार पायेंगे? इसलिये इसका असली चेहरा समाज के सामने प्रकट करना चाहिये। इसलिये देवताओं ने आकाशवाणी कर दी,

अस्यास्त्वामष्टमो गर्भो हन्ता यां वहसेऽबुध

हे अबुध कंस! हे अज्ञानी कंस! जिस बहिन के विवाह में तू इतना भावुक हो रहा है, इसी देवकी का आठवाँ

गर्भ तेरा काल बनेगा। जो ये शब्द सुना कि सारा प्रेम गायब हो गया। एक क्षण में तलवार खींच ली, देवकी के केश पकड़कर रथ से नीचे पटक दिया।

भगिनीं हन्तुमारब्धः खड्गपाणिः कचेऽग्रहीत्

सारी प्रजा समझ गयी अरे राम राम! ये तो सचमुच बड़ा दुष्ट है? एक मिनट में ही इसकी सारी क्रियायें बदल गई? दुष्टों की प्रीति पानी की लकीर है। बनते भी देर नहीं, तो मिटते भी देर नहीं। पग-पग पर रूप बदलते हैं। जो देवकी को मारने के लिये प्रयत्नशील हुआ कि वसुदेवजी ने दौड़कर हाथ पकड़ लिया। वह पति हैं। पति का अर्थ है – **'पाति रक्षति'** जो अपनी पत्नी की हर प्रकार से रक्षा करें, वह पति। तो हाथ पकड़कर महाराज वसुदेवजी ने विवेक से काम लिया। कंस को समझाया, महाराज! चारों तरफ आज आपकी वीरता का डंका बज रहा है। **'सा कथं भगिनीं हन्यात्'** पर ऐसे वीर होकर आप अपनी बहिन को मार रहे हो? अरे! वीर पुरुषों को स्त्रीजाति पर तो हाथ ही नहीं उठाना चाहिये? तुम कैसे वीर हो? ये केवल स्त्री नहीं, तुम्हारी छोटी बहिन है। छोटी बहिन बेटी के बराबर होती है। और इस समय सुहागिन नववधु बनकर विराजमान है और उसे सौभाग्य का आशीर्वाद दिये बिना आप उसपर खड्ग प्रहार करेंगे? कितना बड़ा नाम कलंकित हो जायेगा? जरा सोचिये।

एषा तवानुजा बाला कृपणा पुत्रिकोपमा ।
हन्तुं नार्हसि कल्याणीमिमां त्वं दीनवत्सलः ॥ (भा. 10/1/45)

आप तो दयालु हो महाराज! कुछ तो इस बेचारी पर दया करो। देखो! तुम्हारे क्रोध को देखकर कितनी कातर हो रही है, कांप रही है। क्या अपराध किया है इस बेचारी ने? कंस ने कहा, वह तो सब ठीक है वसुदेव! पर मेरे काल को जन्म देगी, उसका मैं क्या करूँ? वसुदेवजी ने कहा, मृत्यु प्राणी की वह सगी बहिन है। जीव जन्म लेता है, तो साथ ही मृत्यु का जन्म भी होता है। कब, कहाँ, कैसे मरना है? सब सुनिश्चित् है महाराज!

मृत्युर्जन्मवतां वीर देहेन सह जायते ।
अद्य वाब्दशतान्ते वा मृत्युर्वै प्राणिनां ध्रुवः ॥ (भा. 10/1/38)

महाराज! प्रत्येक प्राणी की मृत्यु अटल है, इसे कोई नहीं टाल सकता। बहुतों ने प्रयत्न किया, पर कोई टाल नहीं सका। अतः आप अपनी बहिन की मृत्यु का कलंक न लीजिये। कंस ने कहा, ये सब बकवास मुझे पसंद नहीं। वसुदेवजी ने अब विवेक से काम लिया कि कुछ करना पड़ेगा और इस समय जितना हो सके, काल को टालने का प्रयत्न करो। तुरंत बोले, अच्छा ठीक है। तुम्हें यदि देवकी के पुत्रों से भय लग रहा है, तो मैं (वसुदेव) आपको वचन देता हूँ,

पुत्रान् समर्पयिष्येऽस्या यतस्ते भयमुत्थितम्

देवकी के समस्त पुत्र मैं तुम्हें सौंप दूँगा। तुम्हें पुत्रों से भय है, तो तुम्हें जो दिखावे, सो करना। कंस को ये बात कुछ समझ में आ गई, मेरी बहिन है। विवाह वेला में सभी लोगों के बीच मारना उचित नहीं होगा। चलो ठीक है वसुदेव! तुम्हारा वचन है तो मैं भी छोड़ रहा हूँ। पर जितने भी बालक हों, मुझे सौंपने होंगे। मुझे स्वीकार है, महाराज! दोनों दम्पति को बंदीगृह में डाल दिया। मृत्यु जब सामने उपस्थित हो, तो विवेकशील पुरुष को चाहिये कि जितना हो सके, उसे टालने का प्रयास करे। उस वक्त वसुदेवजी ने वही किया। अरे! आठ बच्चे होंगे तब होंगे, होंगे भी कि नहीं होंगे, हो भी गये तो आठ बच्चों के होने तक ये जिंदा रहेगा भी कि नहीं रहेगा; सब

भविष्य के गर्त में है। तो वर्तमान मृत्यु को तो टालो। इसलिये वसुदेवजी ने विवेकपूर्वक कंस को समझाकर उस समय देवकी की मृत्यु को टाल दिया। विवेक से काम लेकर बंदी गृह स्वीकार कर लिया।

कालान्तर में वसुदेवजी के यहाँ कीर्तिमान् नामक प्रथम पुत्र हुआ, जिसे लाकर वसुदेवजी ने अपने हाथों से कंस को दिया। कंस खुश हो गया, भाई! तुम वचन के धनी हो, हम मान गये। वसुदेव! इसे वापिस ले जाओ। **'प्रतियातु कुमारोऽयं'** इससे मुझे कोई डर नहीं है, इसलिये इसे वापिस ले जा सकते हो। वसुदेवजी वापिस लौटे ही थे कि नारदजी पहुँच गये और कमल का पुष्प दिखाकर बोले, राजन्! जरा बताइये इसमें आठवीं पंखुड़ी कौन-सी है? अब एक-एक करके अलग-अलग गिनवाई, तो आठों ही आठवीं होती गई। तब कंस समझ गया, पहला भी आठवाँ हो सकता है और आठवाँ भी पहला हो सकता है। खतरा नहीं लेना चाहिये। बुलाओ बुलाओ वसुदेवजी को।

मूर्ख और शंख दूसरों के फूंकने से ही बजते हैं। एक क्षण में वसुदेवजी को दुबारा बुला लिया और बालक का पैर पकड़कर घुमाकर पटक दिया। इसी प्रकार से कंस के हाथों देवकी के छः पुत्रों की हत्या हुई। अब सप्तम गर्भ में साक्षात् संकर्षण भगवान् (शेषजी) पधारे। भगवान् ने योगमाया को बुलाकर कहा, देवी! एक काम करो। संकर्षण का आकर्षण करके देवकी के गर्भ से रोहिणी के गर्भ में पहुँचा दो और तुम यशोदा की पुत्री बनकर पहुँचो। मैं देवकी का अष्टम पुत्र बनकर आ रहा हूँ। कंस तुम्हें साधारण कन्या समझकर मारने का उद्यम करेगा तो तुम अष्टभुजी बनकर प्रकट हो जाना। फिर देखो! तुम्हारी कितनी पूजा होती है? दुर्गा मैया, चण्डिका मैया, शारदा मैया, अम्बिका मैया, कात्यायिनी मैया, ... अनेक मैया बनकर घरों में पुजोगी। वर्ष में दो-दो बार नवदुर्गाओं में तुम्हारी जय-जयकार होगी। भगवान् का यह वचन पाकर योगमाया प्रसन्न हो गई। योगमाया ने वही किया, जो प्रभु ने आदेश दिया।

कंस को भ्रांति हो गई कि देवकी के सप्तम गर्भ का पतन हो गया। अब अष्टम गर्भ में भगवान् पधारे तो देवकी माँ का मुखकमल बड़ा ही जगमगाने लगा। इतना तेज मुखमण्डल पर आ गया कि बंदीगृह का अंधेरा ही दूर हो गया। कंस सोचने लगा, पहले मैंने देवकी को इतना तेजयुक्त कभी नहीं देखा। क्यों न इसे मार दूं? मैं समझ गया कि देवकी के गर्भ में मेरा शत्रु प्रविष्ट हो चुका है।

आहैष मे प्राणहरो हरिर्गुहां ध्रुवं श्रितो यन्न पुरेयमीदृशी

कंस ने भी देखा तो सोचने लगा, ये देवकी पहले मैंने इतनी सुन्दरी और इतनी तेजस्विनी कभी नहीं देखी। इसका मतलब कि मेरा जो प्राणहर्ता हरि है, वह देवकी के गर्भगुहा में आ चुका है। **'किमद्य तस्मिन् करणीयम्'** अब ऐसी स्थिति में मुझे क्या करना चाहिये? एक ही उपाय समझ में आता है, इसे मार देना चाहिये। कंस फिर सावधान होता है, नहीं नहीं! **'स्त्रियाः स्वसु गुरुमत्या वधोऽयम्'** ये केवल स्त्री मात्र थोड़े ही है, मेरी बहिन भी तो है! मेरी बहिन है, गर्भवती है इसके मारने से स्त्रीवध होगा और बालवध भी होगा। कितना बड़ा कलंक मेरे जीवन में लगेगा? अरे! मरना तो एक दिन पड़ता ही है, पर मरने के बाद मेरे-जैसे पापियों को दुनिया वर्षो तक गाली देती है। अब देखिये ये कैसे विचार कंस के मन में आ रहे हैं? क्योंकि देवकी के सम्मुख खड़ा है, तो हरि का सामना हो रहा है, गर्भस्थ गोविन्द के सम्मुख खड़ा है; इसलिये इसके भाव में बड़ी सात्विकता आने लगी। पाप से डरने लगा। बहिन की हत्या नहीं करना चाहिये, बालहत्या नहीं करना चाहिये, जीवन में इतना कलंक लगेगा कि धोते नहीं बनेगा। अरे छोड़ो! इतने मर गये, इसे भी ठिकाने लगा ही

दूँगा। सोचकर चला जाता है और जब घर पहुँचता है, तो माथा गर्म हो जाता है, खतरा नहीं लेना चाहिये। और जब देवकी के सामने आता है, तो विचार बदल जाता है। स्थिति ये हो गई परीक्षित! कि

आसीनः संविशंस्तिष्ठन् भुञ्जानः पर्यटन् महीम् ।
चिन्तयानो हृषीकेशमपश्यत् तन्मयं जगत् ॥ (भा. 10/2/24)

बैठते, उठते, चलते, फिरते, खाते, पीते, सोते, जागते चौबीसों घंटे काला-काला मुरली वाला इसकी आँखों में नाचने लगा। हर तरफ उसे वही नजर आता है। पर देवताओं ने जब देखा कि देवकी माँ के गर्भ में गोविन्द आ गये हैं, तो सोचने लगे, चलो स्वागत गान करें, भगवान् का सम्मान करें। सारे देवता आ गये और ब्रह्माजी व शिवजी को आगे करके उस बंदीगृह में पहुँचकर गर्भस्थ गोविन्द की स्तुति प्रारम्भ कर दी। इसे गर्भस्तुति कहते हैं। सारी प्रकृति आज प्रभु के स्वागत में सुसज्जित है। आईये, हम भी स्वागत करें -

कीर्तन - स्वागतं कृष्णा शरणागतं कृष्णा ...

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये ।
सत्यस्य सत्यमृतसत्यनेत्रं सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः ॥
श्रृण्वन् गृणन् संस्मरयंश्च चिन्तयन् नामानि रूपाणि च मंगलानि ते।
क्रियासु यस्त्वच्चरणारविन्दयोराविष्टचेता न भवाय कल्पते ॥ (भा. 10/2/26.37)

सब देवताओं ने मिलकर गर्भगत हरि की गर्भस्तुति की। हे प्रभु! आप ही त्रिकालाबाधित सत्य होय भूत-वर्तमान-भविष्य में शाश्वत सत्य आप ही हैं। ऐसे हे प्रभु! आपको हम बारम्बार प्रणाम करते हैं।

त्वत्पादपोतेन महत्कृतेन कुर्वन्ति गोवत्सपदं भवाब्धिम्

आपकी कृपामयी चरणकमलों की नौका का जो आश्रय ले लेते हैं, वह इस भवसागर को बछड़े के पैरे के गड्ढे के समान बड़ी सहजता से पार कर जाते हैं। प्रभो!

येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्तमानिनस्त्वय्यस्तभावादविशुद्धबुद्धयः

हे प्रभो! हे अरविन्दाक्ष! जो प्राणी अभी मुक्त तो हुए नहीं पर, अपने को मुक्त मान बैठे हैं ... **विमुक्तमानिनः** अर्थात् मन के लड्डू खा रहे हैं। अभी मुक्ति की स्थिति आई नहीं, पर अपने को मुक्त मान बैठे हैं और फिर अपने को ही ब्रह्म कहकर आपके चरणकमलों से अपने भावों को समाप्त कर देते हैं, उनकी बुद्धि बिगड़ जाती है। परिणाम होता है कि '**आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः पतन्त्यधोऽनादृतयुष्मदङ्घ्रयः**' बड़ी कठिनाई से, बड़ी साधना करते-करते साधना की बहुत ऊँचाइयों तक पहुँच तो जाते हैं, पर थोड़ी-सी असावधानी से धड़ाम-से नीचे गिरते हैं और बेचारे धूल चाट जाते हैं। पर दूसरी ओर '**तथा न ते क्वचिद्**' हे माधव! '**तावकाः त्वदीयः**' जो आपको ही अपना जीवनधन सर्वस्व मान चुके हैं, ऐसे आपके चरणाश्रित जो भक्त है, वह बड़े बड़े विघ्नों के सिर पर पैर रखते हुए, धाराप्रवाह गति से दौड़ते चले जाते हैं। क्योंकि '**त्वयाभिगुप्ता विचरन्ति निर्भया**' आप उन्हें चारों तरफ से इस प्रकार से संभालकर ले जाते हो कि उन्हें कभी गिरने नहीं देते, फिसलने नहीं देते।

कुछ लोग गोवर्धन की परिक्रमा लगाने आये। व्रज में सात कोस की परिक्रमा लगाई, सुबह से शाम तक। बाद में बेचारे हारे-थके कमर पकड़े बैठे हैं, हे भगवान! अब तो एक कदम भी नहीं चला जाता। पाँच साल का एक बच्चा भी उनके साथ आया था, वह उछल-कूद कर रहा था। किसी ने पूछा बेटा! तू भी गया था परिक्रमा

देने, तूने भी परिक्रमा की फिर तू क्यों नहीं थका? बच्चा बोला, हम तो पिताजी के कन्धे पर बैठकर गये थे। तो यात्रा तो उसकी भी हुई, पर थकान कहीं भी नहीं; क्योंकि अपने पैरों पर हम चले ही नहीं। तो जो अपने बल का गर्व लेकर चलेगा, वह गिरेगा भी, थकेगा भी, फिसलेगा भी; अनेक प्रकार से समस्यायें आयेंगी। और जो गोविन्द की दया के बल पर चलेगा, वह बड़े-बड़े विघ्नों के ऊपर पैर रखता हुआ, दौड़ता चला जाये उसे कुछ भी पता नहीं चलेगा। इसलिये प्रभु! आपके भक्तों का कभी पतन नहीं होता। इसी बात का मानो अनुवाद ही गोस्वामीजी ने रामचरितमानस में किया,

जे ग्यान मान बिमत्त तव भव हरनि भक्ति न आदरी ।
ते पाइ सुर दुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरि ॥ (मानस ७/१३/३)

हे हरि! जो ज्ञान के अभिमान में उन्मत्त होकर भव का हरण करने वाली भक्ति का आदर करना छोड़ देते हैं, उन ज्ञानाभिमानियों को ब्रह्मलोक के पदों को प्राप्त करने के बाद भी गिरते हुए हमने देखा है। ये वेद भगवान् प्रभु की स्तुति करते हुए रामचरितमानस के उत्तरकाण्ड में कहते हैं। इसलिये भगवान् के चरणकमलों का आश्रय लो। भगवान् के चरणकमल का आश्रय कैसे लें? भगवान् की लीलाओं को पहले खूब सुनो और कोई सुनाने वाला न मिले, तो तुम ही सुनाना प्रारम्भ कर दो। पर कोई सुनने वाला न मिले और न ही सुनाने वाला, तब क्या करें? भगवान् की लीलाओं का स्मरण करो, चिन्तन करो। स्मरण और चिन्तन में क्या भेद हैं? **अप्रयत्नश्चित्त व्यापारः स्मरणम्, स प्रयत्नश्चित्त व्यापारो चिन्तनम्।** जिसको याद करने के लिये चित्त पर जोर लगाना पड़े, उसका नाम चिन्तन। और जो बिना चित्त पर जोर दिये ही आ जाये, उसका नाम स्मरण तो भगवान् की लीलाओं का स्मरण करो। कदाचित विस्मरण हो रहा हो, तो चिन्तन करो। चित्त पर जोर देकर उसे याद करो और इस प्रकार से जिसने अपने चित्त को गोविन्द के चरणकमलों में चिपका लिया, वह फिर भवाटवी में कभी नहीं भटकता।

बड़ी सुन्दर स्तुति करने के बाद अन्तिम श्लोक में देवताओं ने देवकी माँ की भी स्तुति गाई, '**दिष्ट्याम्ब ते कुक्षिगतः परः पुमान्**' हे माँ! आप कितनी भाग्यशालिनी हैं कि जो अनन्तकोटि ब्रह्माण्डों का अधिनायक नारायण है, प्रलय के समय जो सबको पेट में रखकर सो जाता है वह परमात्मा तेरे पेट में समा गया। इसलिये अब तुम्हें कंस से डरने की आवश्यकता नहीं। '**मा भूद् भयं भोजपतेर्मुमूर्षो**' अब भोजपति कंस को तुम मरा ही समझो और निश्चिन्त रहना। इस प्रकार समझा-बुझाकर ब्रह्मा, शिव, आदि सभी देवता अन्तर्ध्यान हो गये।

श्रीकृष्ण जन्म :-

अथ सर्वगुणोपेतः कालः परमशोभनः

अब भगवान् के प्राकट्य का शुभ समय आ गया। काल के नाम से हृदय कांप जाता है, बहुत खतरनाक होता है। पर आज भगवान् के जन्म के अवसर पर '**कालः परमशोभनः**' काल भी परम सुन्दर बनकर आया है। भादों का महिना आ गया, कृष्ण पक्ष आ गया, अष्टमी तिथि आ गई, बुधवार आ गया, रोहणी नक्षत्र आ गया, हर्षण योग आ गया, बवकरण आ गया, मध्यरात्रि बारह बजे का समय हो गया। उस समय भगवान् अचानक देवकी-वसुदेवजी के सम्मुख चतुर्भुज दिव्य नारायणरूप में प्रकट हो गये। उस अद्भुत बाल छवि को देखकर सबने हाथ जोड़े। देवकी-वसुदेव स्तुति करने लगे।

तमद्भुतं बालकमम्बुजेक्षणं चतुर्भुजं शंखगदार्युदायुधम्

इस अद्भुत बालक को देखा। **शंका** - अद्भुत क्यों? **समाधान** - बच्चे दो हाथ वाले होते हैं, ये चार हाथ

वाला है; अद्भुत तो है ही। बालक जन्म लेते समय आँख बंद किये रहते हैं, ये कमल-जैसी आँख वाला है। बालक नग्न पैदा होते हैं, पर ये तो पीताम्बर पहने आया है। बालक निहत्थे होते हैं, पर ये तो शंख-चक्र-गदा-पद्म लिये खड़ा है। हर प्रकार से अद्भुत बालक है। ऐसे अद्भुत दिव्य छवि को देखकर वसुदेवजी ने प्रणाम किया,

विदितोऽसि भवान् साक्षात् पुरुषः प्रकृतेः परः

मैं पहचान गया कि आप प्रकृति से परे साक्षात् परमपुरुष श्रीमन्नारायण हो। '**केवलानुभवानन्दस्वरूपः सर्वबुद्धिदृक्**' प्रभो! आप तो साक्षात् आनन्दस्वरूप हो। देवकी मैया डर रही हैं। मन में वसुदेवजी को बार-बार संकेत कर रही हैं कि जल्दी कीजिये महाराज! मेरा भैया न आ जाये। तो भगवान् हंसकर बोले, माताजी! मामाजी की चिंता मत करो, मेरे हाथ में सुदर्शन चक्र है। अभी जो करना है, आप ही करो। जब बालरूप में आ जाऊँ, तब मेरा ध्यान रखना। तब तो देवकी माँ का भी साहस बढ़ गया। '**कंसाद् भीता शुचिस्मिता**' कंस का भय भाग गया, मुख पर मुस्कान आ गई और हाथ जोड़कर मैया ने भी स्तुति की, प्रभो! मृत्युरूपी नागिन प्रत्येक प्राणी के पीछे पड़ी है। जब तक जीव भागता-भागता आपके चरणकमलों की सुखद छाया का आश्रय ग्रहण न कर ले, तब तक मृत्युरूपी नागिन उसका पीछा नहीं छोड़ती।

मर्त्यो मृत्युव्यालभीतः पलायन् लोकान् सर्वान्निर्भयं नाध्यगच्छत् ।
त्वत्पादाब्जं प्राप्य यदृच्छयाद्य स्वस्थः शेते मृत्युरस्मादपैति ॥ (भा. 10/3/27)

मृत्युरूपी भयंकर रोग सबको भयाक्रान्त करता है। तो भवरोग से कैसे बचें? धनवन्तरि भगवान् की शरण में जाओ, सारा इलाज कर देंगे। धनवन्तरि भगवान् कौन हैं? भगवान् के जो चरणकमल हैं, वह धनवन्तरि भगवान् हैं। (अब्ज अर्थात् जल से जिसका जन्म हुआ)। तो धन्वन्तरि भगवान् का जन्म भी जलधसमुद्र में हुआ था। तो जैसे जल से धनवन्तरि भगवान् प्रकट हुए, ऐसे ही आपके चरणरूपी धनवन्तरि भगवान् का जो आश्रय ले लेगा, वह जन्म-मरण रूपी भयंकर भवरोग की पीड़ा से सर्वदा के लिये मुक्त होकर '**स्वस्थः शेते**' सर्वदा के लिये स्वस्थ होकर विश्राम करेगा। मुझे तो एक ही आश्चर्य होता है अनन्त ब्रह्माण्ड जिसके रोम-रोम में विचरते हैं, वह इतना बड़ा परमात्मा मेरे पेट में कैसे समा गया?

ब्रह्मांड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रतिवेद कहें।
सो मम उर वासी यह उपहासी सुनत धीर मति थिर न रहे॥ (रामचरितमानस 1/192)

बड़ी सुन्दर स्तुति की। अन्त में भगवान् बोले, माँ! पूर्वकाल में आपने बहुत तप किया था, सो मैंने बेटा बनने का वचन दिया। आप पहले अदिति-कश्यप बने, तो मैं वामन बनकर आया। आज मैं तुम्हारा बेटा बनकर पुनः प्रकट होने वाला हूँ। जैसे-ही बेटा बनूँ मुझे गोकुल में छोड़ आना। और वहाँ एक कन्या का जन्म हुआ है, उसे उठा लाना। सारी बातें समझाकर '**बभूव प्राकृतः शिशुः**' एक नन्हे-से बालक बनकर देवकी मैया की गोदी में प्रभु प्रकट हो गये।

पर रोये बिल्कुल नहीं क्यों? बोले रामावतार में रोये तो दास-दासियां बधाईयाँ लेकर दौड़ीं। और यहाँ कहीं रो बैठे, तो चारों तरफ से मामाजी लाठी लेकर दौड़ पड़ेंगे। इसलिये '**तूष्णी बभूव**' भगवान् बिल्कुल चुपचाप देवकी माँ की गोदी में बालरूप में प्रकट हैं। वसुदेवजी ने तुरन्त उठाकर हृदय से लगा लिये। सूप में लिटाकर भगवान् को अपने सिर पर धारण कर लिये। जैसे-ही सिर पर भगवान् को आसीन किया कि हथकड़ी-बेड़ी अपने आप खुल गई, किवाड़ अपने आप खुलते चले गये। जब बाहर निकले, तो पहरेदार भी सब खर्राटे मारकर सो गये। इस प्रसंग का आध्यात्मिक अर्थ यही है कि जीव जैसे-ही ब्रह्म सम्बन्ध को प्राप्त करता है

(ब्रह्मसाक्षात्कार करता है), तो उसके सारे भवबन्धन अपने आप खुल जाते हैं। जितने भी अज्ञान के कपाट लगे हैं, वह सब हट जाते हैं। जितने भी काम, क्रोध, आदि शत्रु घेरे पड़े हैं, वह सब सो जाते हैं और जीव वसुदेव की तरह शुद्ध-बुद्ध-मुक्त हो जाता है। परन्तु ब्रह्म से सम्बन्ध छोड़कर जब मायारूपी कन्या से सम्बन्ध जोड़ता है, तो फिर बँध जाता है। वसुदेवजी जैसे-ही लाला को लेकर चले, तो आकाश के मेघमण्डलों ने देखा, वाह! हम भी साँवले, हमारे प्रभु भी साँवले! हम भी घनश्याम और ये भी घनश्याम! तो चलो इनका स्वागत करें। पर कैसे? भगवान् ने छूट दे रखी है, जो तुम्हारे पास हो, वही दो। मेघों ने कहा, हमारे पास तो जल है तो चलो जल ही देते हैं। तो, '**ववर्ष पर्जन्य उपांशुगर्जितः**' मेघ मण्डलों ने ठाकुर के स्वागत में पानी की मंद-मंद फुहारें छोड़नी प्रारम्भ कर दीं। शेष भगवान् को लगा, सरकार छोटे-से हैं और ये पानी बरसा रहे हैं। तो '**शेषोऽन्वगाद् वारि निवारयन् फणैः**' अपने हजार फणों का छत्र तानकर जलवृष्टि को रोकते हुये वसुदेव के पीछे-पीछे चल पड़े। जैसे-ही यमुना महारानी ने देखा कि मेरे प्राणधन-प्रियतम पधार रहे हैं, तो बिना पाद-प्रक्षालन किये नहीं जाने दूँगी। उमड़-घुमड़कर यमुनाजी का जल वसुदेवजी के कण्ठ तक आ गया। प्रभु जान गये कि देवीजी को चरण छूने की पड़ी है और पिताजी डूबे जा रहे हैं। सो तुरन्त अपना श्रीचरण नीचे को लटका लिया और जैसे-ही चरणकमलों का स्पर्श जल से हुआ कि पाद-प्रक्षालन करके यमुना वसुदेवजी के घुटनों के बराबर हो गईं।

इस प्रकार से यमुना पार करके वसुदेवजी नन्दभवन में पहुँच गये। यहाँ योगमाया के प्रताप से सारे व्रजवासी खर्राटे बजाकर सो रहे हैं। धीरे-से प्रसूतिका भवन में जाकर लाला को सुला दिया और लाली को उठा लिया। जैसे ही लपेटकर बंदीगृह में वापिस आये कि कन्या गला फाड़कर रो पड़ी। हथकड़ी-बेड़ी फिर बंद हो गई और किवाड़ अपने आप फिर बंद हो गये। कन्या का रुदन सुनकर पहरेदार जग गये और उन्होंने कंस को सूचना दी। कंस दौड़ा-दौड़ा आया, पर देवकी की गोद में लाला की जगह लाली को पाया तो बड़ा घबड़ाया, लगता है! देवताओं की इसमें भी कोई गहरी चाल है, पर मैं छोड़ने वाला नहीं। कन्या का पैर पकड़कर घुमा ही रहा था कि कन्या हाथ छुड़ाकर भाग गई और अष्टभुजी बनकर प्रकट हो गई।

किं मया हतया मन्द जातः खलु तवान्तकृत् ।
यत्र क्व वा पूर्वशत्रुर्मा हिंसीः कृपणान् वृथा ॥ (भा. 10/4/12)

हे मूर्ख! तू मुझे क्या मारना चाहता है? तुझे मारने वाला तो पैदा हो गया। कंस कांपते हुए बोला, बहिनजी! कहाँ पैदा हो गया? किस घर में? कन्या बोली, पूरी जन्मपत्री नहीं बताऊँगी, तेरा शत्रु तेरे ही आसपास है; अपने आप ढूँढ़ निकाल। यों कहकर देवी अन्तर्ध्यान हो गई। कंस बुरी तरह घबड़ाकर अपनी बहिन देवकी के ही चरणों में गिर पड़ा, बहिनजी! जीवन में पहली बार पता चला कि आजकल देवता भी झूठ बोलना सीख गये।

दैवमप्यनृतं वक्ति न मर्त्या एव केवलम्

पहले आकाशवाणी हुई थी कि तेरा लाल ही मेरा काल होगा? अब ये देवी कहकर गई है, तेरा काल कहीं पैदा हो गया। इन दोनों में से कोई तो एक झूठा है कि नहीं? हे भगवान्! मैंने देवताओं के वचनों पर भरोसा करके तेरे बच्चों को मार डाला! बहिन मेरे अपराध को क्षमा करना। बार-बार गिड़गिड़ाकर क्षमा माँगी। बेचारी देवकी क्या कह पाती? क्षमा करके विदा किया। देवकी-वसुदेव को भी कंस ने मुक्त कर दिया। तुरन्त राक्षसों को बुलाकर कहा, सुनो! एक महीने में जितने बच्चे पैदा हुये हैं, सबको मार डालो। चारों ओर कंस के राक्षस फैल गये। शुकदेवजी कहते हैं, परीक्षित्!

विप्रा गावश्च वेदाश्च तपः सत्यं दमः शमः।
श्रद्धा दया तितिक्षा च क्रतवश्च हरेस्तनूः॥ (भा. 10/4/41)

जो वेदों पर प्रहार करते हैं, गायों पर अत्याचार करते हैं, तपस्वियों को सताते हैं, सत्य का आचरण नहीं करते, जिनके हृदय में श्रद्धा और दया समाप्त हो गई वह साक्षात् नारायण के अपराधी हैं। वह अपनी मौत अपने हाथों ही पाप कर्मों से बोते हैं। कंस का अत्याचार चारों तरफ बढ़ गया। पर उधर नन्दभवन में क्या हुआ?

नन्द महोत्सव :-

नन्दस्त्वात्मज उत्पन्ने जाताह्लादो महामनाः ।
आहूय विप्रान् वेदज्ञान् स्नातः शुचिरलङ्कृतः ॥ (भा. 10/5/1)

अब नन्दभवन/व्रजमण्डल की कथा आपको व्रजभाषा में ही सुनाते हैं। नन्दबाबा नब्बे साल के डोकरा ह्वै गये पर छोरा-छापरो कोई न भयो। एक दिन संत ब्राह्मणन की मण्डली आई। नन्दबाबा ने चकाचक खीर-मालपुआ की पंगत करवाई। जैसे-ही महन्तजी ने डकार लै के पेट पे हाथ घुमायो कि नन्दबाबा ने दण्डवत् कियो। जैसे-ही दण्डवत् नन्दबाबा ने करी कि इन महन्तजी के मुँह सें आशीर्वाद निकर गयो, नन्दबाबा!! 'पुत्रवान् भव' नन्दबाबा हाथ जोड़कर बोले, महाराज! नब्बे साल के डोकरा, ए बुढ़ापे में का आशीर्वाद दे रय हो? अब तक तो कोई भयो नाय? अब बुढ़ापे में मोकूं का ह्वै जाएगो? महन्तजी बोले, बाबा! तो जब तक मेरो आशीर्वाद सफल ना ह्वै जाएगो, तब तक मैं तेरो घर छोड़वे वारो नाय। संतान गोपाल मंत्र को जाप करिंगे। देखें! छोरा कैसे नाय होय? तू तो चकाचक माल घुटायें जा! तू भोजन कराएंजा हम भजन करेजावें; फिर देखें छोरा कैसे नाय होय? तब तो महाराज! रोज रबड़ी घुटन देओ। नन्दबाबा ने भण्डारे खोल दिये, आपके आशीर्वाद सें नौ लाख गैयां हैं। दूध-दही के भण्डारे भरे पड़े हैं, महाराज! प्रेम से पाओ!

चकाचक भण्डारे छनवे लगे, भजन-कीर्तन होवे लगे, अनुष्ठान जप प्रारम्भ ह्वै गये। उन संत महात्मन के आशीर्वाद का चमत्कार भयो, यशोदारानी को अस्सी बरस की अवस्था में परमलाभ प्राप्त ह्वै गयो। जो नन्दबाबा को भनक पड़ी, खुशी का पारावार नहीं रहा। पूरे व्रजमण्डल में खबर फैल गई। खुशी के मारे गोपियन ने तो चौरासी-चौरासी गज के लहंगा सिलवाय कें तैयार कर लिये। ये ही लहंगा चुनरी में बधाई लेके जाइंगी। नन्दबाबा बेचारे अपनी बहिन कूं लेवे पहुँच गये, अरी बहिन सुनन्दा!! जल्दी चल तू बुआ बनवे वारी है। खुशी के मारे सुनन्दाजी भी दौड़कर चल पड़ीं और दो महीना पहले से ही मायके में आकर डेरा जमाय लिये। यशोदा भाभी की दौड़ भाग करती, खूब सेवा करने लगी। पर आज कब कौन आयो? कौन चलो गयो? काऊ ए भनक न चली, खर्राटे बजाकर सब सोते रहे। सुनन्दाजी की नींद खुली तो सुनन्दाजी ने देखा कि आज घर के दरवाजे कैसे खुले पड़े हैं? भाभीजी अब तक कैसे नाय जगीं? जो भाभी के कक्ष में झरोखे से झाँककर देखा तो क्या दिखाई पड़ा? यशोदा भाभी तो गहरी नींद में सोई पड़ी हैं, उने होसई नाय? और एक नीलकमल-जैसा नन्हा-सा लाला यशोदाजी के पास में किलकारियां भर रहा है? सुनन्दाजी ने दौडकर भीतर प्रवेश किया और लाला की आभा-प्रभा-शोभा को निकट जाकर निहारा। खुशी के मारे उछल पड़ीं, ह्वै गओ! ह्वै गओ! ह्वै गओ! करके चिल्लाती भई दौड़ीं। ग्वाला सबरे दौड़े-दौड़े आ गये, का भयो? का भयो? मुँह पर हाथ धर के बोलीं, कछु न भयो। अरे! तो फिर काय कूं चिल्लाई? सुनन्दाजी बोलीं, मैं बाद में बताऊँगी। पहले ये बताओ मेरे भैया कहाँ हैं? अरे! नन्दबाबा तो अथाई पर बैठे ग्वालन के संग माला सटकाय रए होंगे। सुनन्दाजी ने दौड़ लगाई, तो क्या देखती हैं? नन्दबाबा बैठे-बैठे माला सटकाय रए हैं और माला में मंत्र कौन-सो जप रए हैं,

अबै तो भयो नाय, आगे पतो नाय ... अबै तो भयो नाय, आगे पतो नाय

सबरे मंत्र बिचारे नन्दबाबा भूले भये हैं। जैसे-ही सुनन्दाजी आई, अरे भैयाऽऽ! तुम माला सटकाय रए हो?

मैं कहाँ-कहाँ भागती तुम्हें ढूँढ़ती डोल रई हूँ? अब तो नन्दबाबा सावधान होके बोले, जल्दी बता बात का है? बोली भैया! आप बताओ, मेरी इनाम कहा है? अब तो नन्दबाबा की धड़कन और तेज हो गई, अरी बहनऽऽ!! ले ये रख दई तेरे हाथ में तिजोरी की चाबी। जो अच्छा लगे, तू सब ले ले। अब देर मत लगा, जल्दी बता! सुनन्दाजी समझ गई, भैया सुनने के लिये आतुर हैं। तब कान में आकर कहा, भैया! तेरे घर में लाला को जन्म ह्वै गयो। खुशी के मारे नन्दबाबा इतनी जोर-से उछल पड़े, जैसे सोलह साल के छोरा होंय? अपनो बुढ़ापो बिल्कुल भूल गये। उपनन्द बोले, भैया! अब बोलो उत्सव कैसे मनें? नन्दबाबा बोले, पहिले पण्डितजी कूं बुला के लाओ।

आहूय विप्रान् वेदज्ञान् स्नातः शुचिरलङ्कृतः

दौड़कर उपनन्द ने ब्राह्मणों को संकेत दिया, महाराजजी! जल्दी चलो आपको आशीर्वाद सफल ह्वै गयो। अब तो ब्राह्मण बड़े प्रसन्न तुरन्त दौड़कर यमुनाजी में सबने स्नान कियो। भस्म-चंदन लगाय के, पोथी-पत्रा दबाय के, दौड़े-दौड़े सब ब्राह्मण आये और सब ब्राह्मणों ने आकर उच्चस्वर से स्वस्तिवाचन बोलना प्रारम्भ कर दिया,

वाचयित्वा स्वस्त्ययनं जातकर्मात्मजस्य वै ।
कारयामास विधिवत् पितृदेवार्चनं तथा ॥ (भा. 10/5/2)

सभी ब्राह्मणों ने नन्दबाबा से बोले, तूं भी नहा धो के आ जा! नन्दबाबा ने यमुनाजी में दौड़ लगाई और एक सौ आठ डुबकी लगाई। आकर बोले, नहा लियो। सबरे ब्राह्मण बोले, अब जल्दी ते नये कपड़ा पहिन के आ जा। नन्दबाबा जैसे-ही भीतर घुसे कि एक छोरा बोलो, बाबा! सजनो-धजनो पड़ेगो। नन्दबाबा बोले, अरे! ई नब्बे साल के डोकराएं तू बुढ़ापे में का सजायेगो? छोरा बोलो, बाबा! नेक देख तो सही। नन्दबाबा बोले, अच्छा ठीक है! तो बोल का पहनूं? वा छोरा ने बढ़िया रेशमी धोती निकार कें नन्दबाबा कूं पहनाई, बढ़िया रेशमी चमचमाती बगलबंदी पहनाई, बाबा के माथे पर बढ़िया पगड़ी बाँधी, थापक थौआ चन्दन माथे पर पोत दियो, मोटो-मोटो काजर बाबा की आँखन में लगाय दियो, बाबा की मूंछन में इत्र लगाय दियो, मुँह में पान दबाय दियो, गले में माला डार दई। दर्पण लेके खड़ो ह्वै गयो, देख ले बाबा! कैसो सजाये दियो? नन्दबाबा कभी पगड़ी सँभालें, कभी माला। हंसकर बोले, सच्ची बता कैसो लग रओ हूँ? छोरा हंसकर बोलो, बाबा! ऐसे लग रये हो कि जैसे आजई तेरो ब्याह भयो होय। अब कोन कहेगो के तूं नब्बे बरस को ह्वै गयो है? **'स्नातः शुचिरलङ्कृतः'** नहा-धोकर परमपवित्र और सुसज्जित होकर नन्दबाबा बड़े सुन्दर लग रहे हैं। ब्राह्मणलोग जातकर्म संस्कार कराने लगे, हाँ बाबा! अब बैठ जा! मंत्र पढ़कर ब्राह्मण बोले, ठाकुरजी पर अक्षत चढ़ाओ! बाबा ने लै के शक्कर चढ़ाय दई। ब्राह्मण हाथ जोड़कर बोले, बाबा! अक्षत की कह रहे हैंऽऽ शक्कर की नाय!! तब बाबा सावधान हो गये और ठाकुरजी पर अक्षत चढ़ाये। मंत्र पढ़कर ब्राह्मण बोले, बाबा! ठाकुरजी पर जल चढ़ाओ!! बाबा ने लै के दूध चढ़ाय दियो। ब्राह्मण नाराज ह्वै गये, ऐ बाबा! तेरो मन कहाँ है? हम कछु मंत्र बोल रये हैं, तू अपने मन सें जो हाथ लगे, सो चढ़ाय देय? नन्दबाबा हाथ जोड़कर बोले, नाराज मत होइयो महाराज! मेरो मन तो छोरा में चलो गयो। जब तक अपने लाला को मोहड़ो नाय देखूंगो, तब तक या में या समय पूजापाठ कछु न होवे।

सबरे ब्राह्मण हंस पड़े और बोले, बाबा! तो चल ठीक है तू तो संकल्प करवाय दे। तेरी जगह पर हमई कर्मकाण्ड सब निपटाय लिंगे। तू जाके लाला को मुँह देख! **'कारयामास विधिवत् पितृदेवार्चनं तथा'** तुरन्त

नन्दबाबा ने हाथ में जल लेकर दो लाख गायों के दान का संकल्प ब्राह्मणों को दिया और अन्न के सात विशाल पर्वत बनाकर ब्राह्मणों को भेंट कर दिये।

धेनूनां नियुते प्रादाद् विप्रेभ्यः समलङ्कृते ।
तिलाद्रीन् सप्त रत्नौघशातकौम्भाम्बरावृतान् ॥ (भा. 10/5/3)

नाई ने पूरे व्रज में दुहाई लगाई और जहाँ गोपी-ग्वालन कूं खबर लगी कि सब गोपियां सुन्दर-सुन्दर श्रृंगार किये, दौड़ती-भागतीं यशोदा मैया को बधाई देने जा रही हैं। ग्वाला भी पगड़ी बाँध-बाँधकर खूब दही-माखन-मिश्री के मटका बधाई में ला-लाकर नन्दबाबा को बधाइं दे रहे हैं। अरे बाबा! नेक जल्दी से लाला को मोहड़ो तो दिखा! नन्दबाबा बोले, एक घंटा तें हमऊं ऐई ताक में हैं, पे कोऊ भीतरई न घुसन देय! सब गोपियां गाने-बजाने में लगी हैं और जब मैं घुसवे जाऊं, सोई कहती हैं, बाबा! बाद में अइयो। अब जब मैंनेई मोहड़ो नाय देखो, तो तुमे कैसे दिखाऊं?

तब तो एक छोरा बोलो, बाबा! तोय पतो नाय जब लाला को पहली बार मोहड़ो देखो जाय, तो नाच-नाच के भीतर जानो चहिये। अच्छा! तो का नाचनो पड़ेगो? बोले, हाँ बाबा! लाला को मोहड़ो देखनो है, तो नाचनो तो पड़ेगो? नन्दबाबा बोले, भैया! आज तक तो हम कबहूँ नाय नाचे? बोले, बाबा! तो मोहड़ो देखबे के काजें तो आज नाचनेई पड़ेगो। ठीक है भैया! एक हाथ कमर पे और एक हाथ माथे पे रखकें जो ठुमका लगायो नन्दबाबा ने। चारों तरफ से घेर के ग्वाला भी नाचवे लगे और नन्दबाबा को नचायवे लगे। इतने में एक नन्दबाबा को मित्र दही को भरो मटका लैकें आयो। नाचते नन्दबाबा को देखकर गद्‌गद् ह्वै गयो कि याकूं नजर न लग जाये हमारी? सो वा ने लैके दही को मटका सबरो नन्दबाबा के सिर पर उड़ेल दियो। नीचे सें ऊपर दही में सराबोर होय गये नन्दबाबा। अपनो मोहड़ो पोंछकें बोले, च्यों रे दारी के! करौ धरौ इतनी मेहनत को श्रृंगार तूने दही में सब बराबर कर दियो? सबरे ताली बजाके हंसके बोले, बाबा! दही में नहा केंई छोरा को पहली बार मोहड़ो देखो जाय! ओऽऽरे! तब तो तूने बड़ी कृपा करी भैया!

नन्दजू ग्वालन आ पकड़े कहीं लोगन नाचन को विवसाये।
गोद भरे कसि फेंट चले तब नन्दबाबा सबके मन भाये॥
नाचत देख के नन्दबाबा सब नाचत नाच उमंगन छाये ।
काहू ने ला दधि नन्द के ऊपर डार दियो सब लोग हंसाये॥

'दधिक्षीरघृताम्बुभिः' दूध दही की बरसात के मारे नन्दभवन भरता चला जा रहा है। ऐसा लग रहा है, मानो नन्दभवन नन्दभवन नहीं रहा, बल्कि क्षीरसागर बन गया और क्षीरशायी नारायण आज श्रीकृष्ण के रूप में नन्दभवन के क्षीरसागर में विहार कर रहे हैं। सब गोपी-ग्वाल बड़े भाव के साथ लाला को धीरे धीरे पालना झुलाते जा रहे हैं और मधुर मंगलमय गीत गाते जा रहे हैं। आइये हम सब भी मिलकर हृदय के पालने में ही हरि को झुलायेंगे।

भजन - कन्हैया झूलें पालना नेक धीरें झोटा दीजौ ..

सूत-मागध-बंदीजनों की विशाल भीड़ नन्दबाबा के घर आ गई। नन्दबाबा उदारमना होकर सब लुटा रहे हैं और व्रजवासी सब लूटते हुये ठुमका मार-मारकर नाचते हुये गा रहे हैं।

भजन - नन्द के आनन्द भयो जय कन्हैया लाल की

भजन - आज नन्द द्वारे बधैया बाजे

नन्द महोत्सव :- नन्दस्त्वात्मज उत्पन्ने जाताह्लादो महामनाः ।
आहूय विप्रान् वेदज्ञान् स्नातः शुचिरलंकृतः ॥
वाचयित्वा स्वस्त्ययनं जातकर्मात्मजस्य वै ।
कारयामास विधिवत् पितृदेवार्चनं तथा ॥
धेनूनां नियुते प्रादाद् विप्रेभ्यः समलंकृते ।
तिलाद्रीन् सप्त रत्नौघशातकौम्भाम्बरावृतान्॥ (भा. 10/5/1-3)

श्रीशुकाचार्यजी महाराज नन्दमहोत्सव का अट्ठारह श्लोकों में गायन करते हैं और ऐसा लगता है कि जैसे अट्ठारह हजार श्लोकों का आनन्द नन्दमहोत्सव में प्रकट कर दिया हो। शुकदेवजी कहते हैं, परीक्षित! नन्दभवन में लाला का जन्म नहीं हुआ, बल्कि मूर्तिमान आह्लाद (आनन्द) ही आज मानो बालरूप में प्रकट होकर सबका साक्षी हो रहा हो। सबसे पहले विद्वान् वेदपाठी ब्राह्मणों को बुलाकर नन्दबाबा ने स्वस्तिवाचन, जातकर्म-संस्कार, आदि सब विधिवत् सम्पन्न करवाये। दो लाख गाय और अन्न के सात बड़े विशाल पर्वत बनाकर ब्राह्मणों को भेंट किया। गोपी-ग्वाल चौरासी-कोस के व्रजप्रदेश से भागते-दौड़ते चले आ रहे हैं। गोपियाँ लाला को आशीर्वाद दे रही हैं,

ता आशिषः प्रयुञ्जानाश्चिरं पाहीति बालके

'अरी मैया! तेरो लाला हजार वर्ष तक हम व्रजवासियन की रक्षा करे' - ये आशीर्वाद गोपियों ने लाला को दिया। ग्वाल-बाल एक-दूसरे पर दधि-क्षीर की बरसात कर रहे हैं। नन्दभवन क्षीरसागर की तरह दृष्टिगोचर हो रहा है। उदारमना होकर नन्दबाबा आज जो हाथ लगता है, वही लुटा डालते हैं।

नन्दो महामनास्तेभ्यो वासोऽलङ्कारगोधनम् ।
सूतमागधवन्दिभ्यो येऽन्ये विद्योपजीविनः ॥ (भा. 10/5/15)

नन्दबाबा का मन आज इतना विशाल हो गया कि आज लाला के जन्मोत्सव में अपना सर्वस्व लुटाये जा रहे हैं। याचकों को अयाचक कर दिया। सूत-मागध-बंदीजन इतने बहुमूल्य रत्नाभूषणों को नन्दबाबा के घर से भर-भरकर ले जा रहे हैं। रास्ते में जब बातें करते, च्यों रे! तू का लायो है? दूसरा कहता, भैया! मैं तो चाँदी के बर्तन लैकें आयो हूँ! देख! चाँदी को लोटा, चाँदी की थारी। दूसरो बोलो, दारी के! तू चाँदी लेवे गयो? देख! मेरे पास सोने की थारी है, सोने को कटोरा। अरे राम-राम! ये सोने के बर्तन तोकूं कहाँ से मिले? बोले, पाँच-नम्बर के दरवाज़े से सोने के बर्तन बँट रए थे। पहला बोला, अरे राम-राम! मैं तो दो-नम्बर सेई भग आयो? वा ने सबरे चाँदी के बर्तन रास्ते में फेंक दिये और वापिस पाँच-नम्बर दरवाजे पर गयो। सोने के दिव्य उन बर्तनों को लेकर दौड़ा-दौड़ा आया। देख मैं भी सोने के लै आयो हूँ! तबतकदूसरो मिल गयो, च्यों रे! का लायो है? बोलो, सोने के बर्तन लायो हूँ! अरे दारी के! तू सोनो लैवे गयो? देख मैं हीरे की अंगूठी, हीरे के हार लेकर आयो हूँ! च्यों रे, ये हीरे के हार कहाँ बट रये थे? बोले, एक-नम्बर के दरवाजे पे। अरे राम-राम! वा ने सोने के बर्तन सब फेंक दिये, फिर भागो-भागो गयो ... इस प्रकार से जगह-जगह पर वह दिव्य वस्त्राभूषण, अलंकार, आदि व्रजवीथियों में ऐसे लग रहे हैं, जैसे-भगवती लक्ष्मी स्वयं नृत्य करती हुईं अपने प्रियतम के जन्ममहोत्सव में उत्सव मना रही हों। **'रमाक्रीडमभून्नृप'** मानो भगवतीश्री स्वयं नृत्य कर रही हों, विहार कर रही हों। रोहणी मैया भी **'प्रोत्सितभर्तका'**[1] होकर भी आज सब कुछ भुलाकर भावनृत्य कर रही हैं।

1. क्रीड़ा शरीर संस्कारं समाजोत्सव दर्शनम्।
हास्यं परगृहेयानं त्यजेत् प्रोत्सित भर्तका।।

रोहिणी च महाभागा नन्दगोपाभिनन्दिता।
व्यचरद् दिव्यवासःस्रक्कण्ठाभरणभूषिता ॥ (भा. 10/5/17)

आज नन्दबाबा के आंगन में मानों चारों ओर से आनन्द की बाढ़ आ गई। पर अचानक नन्दबाबा को स्मरण आयो, भैया! हम जो प्रतिवर्ष कंस को कर दिया करते हैं, वा कर देने की तो तारीख निकल गई। समय पर कंस कों कर नहीं पहुँचा तो न जाने, का उपद्रव खड़ो कर देय? इसलिये तुरन्त कुछ ग्वाल-बालों को गोकुल की रक्षा का भार सौंपकर नन्दबाबा मथुरा चल पड़े।

गोपान् गोकुलरक्षायां निरूप्य मथुरां गतः ।
नन्दः कंसस्य वार्षिक्यं करं दातुं कुरूद्वह ॥ (भा. 10/5/19)

नन्दबाबा ने मथुरा पहुँचकर कंस को कर दिया, पर कर देते हुए श्रीवसुदेवजी ने देख लिया। वसुदेवजी नन्दबाबा को देखते ही चिन्तित हो गये, मैं तो अपनो लाला को सुरक्षा की दृष्टि से इनके घर छोड़कर आयो हूँ और नन्दबाबा मथुरा में डोल रहे हैं? अरे! मेरे लाला पर कोई संकट न आ जाये। कर देकर नन्दबाबा जैसे-ही भवन से बाहर निकले कि रास्ते में ही वसुदेवजी मिल गये। अरे! नन्दबाबा... राम-राम! नन्दबाबा बोले, भैया वसुदेव राम-राम! कहो... कैसे हो? वसुदेवजी बोले, हम तो बिल्कुल ठीक हैं, पर बाबा! तुम कैसे हो? अरे! तुम भलेई न बताओ, पर मोकूं सब खबर लग गई कि तेरे या बुढ़ापे में नब्बे-साल की उमर में छोरा भयो और तूने मोकूं खबर तक नांय दई? तू कैसो मेरो मित्र है? नन्दबाबा हाथ जोड़कर बोले, वसुदेव भैया! तू बुरो मत मानियो, छोरा तो मेरें निश्चित् भयो, पर जब तेरे बारे में मैंने सुनी कि तेरे आठ-आठ छोरा भये और या पापी कंस ने सबरे मार दिये; और एक छोरी भई, वह आकाश में उड़कर चली गई - ये सब बातें सुनवे के बाद मेरी हिम्मत नांय परी, जो एक लाला की खुशी तेरे सामने प्रकट करूँ।

अहो ते देवकी पुत्राः कंसेन बहवो हताः ।
एकावशिष्टावरजा कन्या सापि दिवं गता ॥ (भा. 10/5/29)

अब देखिये वसुदेवजी के हृदय में पुत्र के वियोग का शोक है, परन्तु वह नन्दबाबा के आनन्द की चर्चा कर रहे हैं। नन्दबाबा के हृदय में पुत्र-जन्म का आनन्द है, पर वह वसुदेवजी के शोक में सम्मिलित हो रहे हैं। मैत्री यही होती है।

जे न मित्र दुख होहिं दुखारी । तिन्हहि बिलोकत पातक भारी ॥
निज दुख गिरि सम रज करि जाना । मित्रक दुख रज मेरु समाना ॥ (रामचरितमानस 4/7/1)

मित्र को चाहिये कि अपना दुःख पहाड़-जैसा भी हो, तो मित्र से छुपाकर रखे और मित्र का दुःख यदि कण के बराबर भी दिख रहा हो, तो उसे पर्वत मानकर उसका निदान करे। तो दोनों अपने सुख-दुःख की चर्चा एक-दूसरे को बाँट रहे हैं। पर वसुदेवजी को तो लाला की चिन्ता पड़ी है, इसलिये तुरन्त बोले, बाबा! मैं ज्योतिष को पण्डित हूँ और मेरी ज्योतिषविद्या बता रही है, आजकल तेरे ग्रह ठीक नांय। तेरे ग्रह तो ये कह रहे कि तेरे गोकुल में कोई उत्पात होवे वारो है, सो तू इधर-उधर मत डोलियो! तू जल्दी जाकर अपनो गोकुल सँभाल।

नेह स्थेयं बहुतिथं सन्त्युत्पाताश्च गोकुले

जो गोकुल में उत्पात होने की बात करी, सुनते ही नन्दबाबा की धड़कन तेज भई। तुरन्त माला सटकाते घर कूं भागे, हे नारायण! मेरे छोरा की रक्षा करियो, हे भगवान्! मेरे लाला की रक्षा करियो।

नन्दः पथि वचः शौरेर्न मृषेति विचिन्तयन् ।
हरिं जगाम शरणमुत्पातागमशङ्कितः ॥ (भा. 10/6/1)

रास्ते में नन्दबाबा विचार करते जा रहे हैं कि वसुदेव जीवन में कबऊं झूंठ नांय बोले! यदि वा ने आशंका व्यक्त करी है, तो निश्चित् कोई-न-कोई उत्पात होवे वारो होयगो। हे नारायण! मेरे छोरा की रक्षा करियो। भजन करते-करते नन्दबाबा तो घर कूं भागे और नन्दबाबा घर पहुँचई न पाये, तबतक कन्हैया की मौसीजी पहुँच गई।

पूतना मोक्ष :-

कंसेन प्रहिता घोरा पूतना बालघातिनी ।
शिशूंश्चार निघ्नन्ती पुरग्रामव्रजादिषु ॥ (भा. 10/6/2)

नगर-ग्रामों में भ्रमण करती बालघातिनी पूतना बड़ा दिव्य-सौन्दर्य बनाकर गोकुलधाम में पहुँच गई। शुकदेव बाबा कहते हैं, परीक्षित! ऐसी लग रही थी, जैसे वैकुण्ठ से भगवती लक्ष्मी नारायण का दर्शन करने व्रज में आ गई हों। पूतना के इस सौन्दर्य को जो देखे, वह देखता ही रह जाये। **'गोप्यः श्रियं द्रष्टुमिवागतां पतिम्'** गोपियों का झुण्ड बधाई लिये जा रहा था। पूतना समझ गई, काऊ पूत के जनम की बधाई जा रई है और मेरो नाम 'पूत-ना'। देखूं तो कौन को पूत भयो है? सो माया के द्वारा बड़ा दिव्य-मनोहररूप बनाकर गोपियों के झुण्ड में मिलकर नन्दभवन पहुँच गई। अन्य गोपियाँ मैया को बधाई दे रही थीं, तो इसने भी नाटक करना प्रारम्भ किया, अरी यशोदा बहिन! बधाई हो, बधाई हो!! अरे! मैंने जैसई सुनी कि तोंय बुढ़ापे में छोरा भयो है? मैं खुशी के मारें बावरी है गई। घर के सब काम छोड़े और दौड़ी-दौड़ी तेरे लाला को मुँह देखबे चली आई। अब तू ऐसे आँखें फाड़-फाडकर का देख रई है? मोये ना पहिचानो?

यशोदा मैया बड़े चक्कर में पड़ गयी, हे भगवान्! ये मेरी बहिना कहाँ सें आय गई? आज सें पहिले याकि कबऊं सूरत नाय देखी मैंने? पर जब इतने प्यार से बधाई लेकर आई है, तो होगी कोई जान-पहचान की? खास बहिन नांय, तो चचेरी-ममेरी-फुफेरी कोई और होगी दूर के नाते की? अब मैं एकदम प्रश्न कर दऊं कि तू कौन है? मैंने नांय पहिचानो! तो बुरो मान जायेंगी बेचारी। तो सबको यश देने वाली 'यशोदा' मन में शंकित हो रही है और ऊपर से स्वागत कर रही है, अरे! आओ-आओ बहिन! तुम सबन के आशीर्वाद को चमत्कार है, नहीं तो मैंने तो आशा ही छोड़ राखी! अब तू बहिन! जल्दी से जाकर मेरे लाला कूं आशीर्वाद देकर आ, फिर बाद में मैं तोसें बात करूँगी! पूतना ने पूछा, कहाँ है तेरो लाला? मैया ने इशारो कर दियो, देख! वह पालने में अब हालई सुवायो है। तू जगईयो मत! पूतना पालने की ओर चल पड़ी। प्रभु ने पालने में लेटे-लेटे जो तिरछी निगाह से देखा, ओ हो! मौसीजी आय रही हैं। तो पूतना को देखते ही भगवान् ने तुरन्त अपनी दोनों आँखें बंद कर लीं।

विबुध्य तां बालकमारिकाग्रहं चराचरात्माऽऽसनिमीलितेक्षणः

भगवान् तो चराचर-जगत की आत्मा हैं। कौन किस भाव से आया है, भगवान् तो सब जानते हैं। परन्तु पूतना को देखते ही नेत्र बंद क्यों कर लिये, इस पर संतों ने बड़े सुन्दर-सुन्दर भाव दिये हैं। एक संत कहते हैं, भगवान् ने इसलिये नेत्र बंद किये कि उन्होंने सोचा, हम आये हैं दुष्टों का विनाश करने और लगता है ये काम पूतना-मौसी से ही प्रारम्भ करना पड़ेगा। तो इतने बड़े कार्य का शुभारम्भ होने जा रहा है, तो पहले आँख बंद करके मंगलाचरण कर लें, तब श्रीगणेश करेंगे। इसलिये नेत्र बंद कर लिये। अथवा प्रभु ने सोचा, हम आये थे

ब्रजमण्डल में माखन-मिश्री खावे। तो माखन-मिश्री का स्वाद चख भी नहीं पायो और पूतनामौसी आ गई जहर पिवावे। तो जे काम मेरो नांय, ये तो मेरे भोलेबाबा को अभ्यास है। सो आँख बंदकर भोले-बाबा को ध्यान करवे लगे इसलिये नेत्र बंद कर लिये।[1] अस्तु, बहुत सारे सुन्दर-सुन्दर भाव संतों ने दिये। पर नेत्र बंद किये हुये जब प्रभु को पूतना ने देखा तो समझ बैठी, बालक सो रहा है। शुकदेव बाबा कहते हैं, परीक्षित! जैसे कोई साधारण रस्सी समझकर कोई बड़े-भारी विषधर को उठा ले, ऐसे ही साधारण शिशु मानकर पूतना ने भगवान् को उठा लिया। अपनी गोद में लेकर विषयुक्त स्तन प्रभु के मुख में ज्यों ही दिया कि,

गाढं कराभ्यां भगवान् प्रपीड्य तत् प्राणैः समं रोषसमन्वितोऽपिबत्

भगवान् ने उसका स्तनपान करना प्रारम्भ किया तो सबसे पहले उसका विष पिया, दूध पिया और दुग्ध समाप्त होने लगे। तो प्राणों को ही पीना प्रारम्भ कर दिया। जो प्राण खिंचने लगे, पूतना के मर्मस्थलों में भयंकर वेदना होने लगी। बड़ी भयंकर चीत्कार करती हुई चिल्लाई, 'मुञ्च-मुञ्च' अरे बेटा! छोड़ दे!!

सा मुञ्च मुञ्चालमिति प्रभाषिणीनिष्पीड्यमानाखिलजीवमर्मणि

भगवान् बोले, मौसीजी! अब न करने से काम नहीं चलेगा! अपने राम जल्दी से किसी को पकड़ते नहीं और एक बार जिसे पकड़ लें, उसे जीवन में कभी छोड़ते नहीं। अब तो पूतना भगवान् को गोद में लिये भागी। ज्यों ही प्रभु ने उसके सम्पूर्ण प्राणों का हरण किया, विकराल-विशाल-देह बनाकर धम्म-से धरती पर गिर पड़ी। पूतना के गिरने से धरती हिल गई, दसों-दिशायें उसकी चीत्कार से गूंज गई। शुकदेव बाबा कहते हैं, परीक्षित! पूतना ने इतना विशाल शरीर बनाया कि छः कोस तक के जितने भी वृक्ष थे, सब टूटकर चकनाचूर हो गये।

पतमानोऽपि तद्देहस्त्रिगव्यूत्यन्तरद्रुमान् ।
चूर्णयामास राजेन्द्र महदासीत्तदद्भुतम् ॥ (भा. 10/6/14)

गव्यूती कहते हैं दो कोस को और तीन गव्यूती अर्थात् छः कोस। इतना भयंकर शब्द हुआ कि मैया तो घबड़ा गई, अरे! इतनी तेज आवाज़ कहां ते आई? देखूं तो! मेरो लाला तो नांय डर गयो? दौड़ी-दौड़ी मैया पालने के पास पहुँची, तो देख्यो के पालना सूनो? अरे!! मेरो छोरा कहाँ चलो गयो? कौन लै के भाग गयो? गोपी-ग्वाल सब घबड़ाय गये, बाबा हमारे भरोसे घर छोड़कर गये थे, अरे भाई! ढूँढ़ो पतो लगाओ! सब इधर-से-उधर भागने लगे। बाहर जाकर थोड़ी दूर पर क्या देखते हैं कि पूतना का पर्वताकार देह पड़ा है और प्रभु उदर पर बैठे प्रेम से क्रीडा कर रहे हैं।

जैसे-तैसे सब व्रजवासियों ने मिलकर लाला को पूतना के उदर से नीचे उतारा और मैया की गोदी में लाकर दिया। मैया ने अपना स्तन लाला को पान कराया। मैया का दुग्ध जब कन्हैया पीने लगे, तब मैया की सांस-में-सांस आई, हे नारायण! तेरी कृपा से छोरा तो मेरो ठीक-ठाक मालूम पड़े, पर ये पूतना के पेट तक पहुँच कैसे गयो? और ये पहुँचो सो पहुँचो पूतना कैसे मर गई? सब अपनी-अपनी बुद्धि लगा रहे हैं। काऊ की

1. पापिनी का दुग्ध प्रथम बार पी रहे हैं, अतः कड़वा घूंट समझकर नेत्र बंद किये। मेरे ब्रजवासियों के अनिष्ट का विचार करे ऐसी हत्यारिन का मुख भी देखना नहीं चाहता। मायापती के सन्मुख माया टिक नहीं सकेगी, कहीं असली रूप प्रकट न हो जाय। **'प्रीतिनयनयोगतः'** नेत्र से नेत्र मिलने पर प्रीति हो जाती है, फिर प्रेमी का वध उचित नहीं होगा। दृष्टि का जो पात्र हो उसी पर दृष्टिपात करो - **'भद्रं कर्णेभिः श्रृणुयाम देवाः'**। श्रीरामावतार में शूर्पनखा आई, तब श्रीजी साथ में थी। किन्तु अभी साथ नहीं है, इसलिए नेत्र बंद किये ... इत्यादि

समझ में न आय रही। एक छोरा बोलो, मैया! तेरे लाला को लै कें बड़ी तेज भाग रई होगी? तो लगी ठोकर और धम्म् सें गिरकर मर गई! दूसरो बोलो, च्यों रे! ठोकर खाकें मरती तो मुँह के भार न गिरती? देख! बिल्कुल सीधी पड़ी है। तो फिर कैसे मरी होयगी? सब अपनी-अपनी बुद्धि लगा रहे हैं, पर काऊ की समझ में कछु नांय आवे। मैया तो लाला कूं लै कें घर आई और सबसे पैलें कन्हैया कूं गैया के गोबर में नहवायो, फिर गोमूत्र में स्नान करवायो। फिर गैया की चरणरज लाला के पूरे अंग में लगाई,

गोमूत्रेण स्नापयित्वा पुनर्गोरजसार्भकम्

लाला पर जब भी कोई संकट पड़े, मैया पंचगव्य में स्नान करावे। गौमाता के पंचगव्य में अपूर्व शक्ति है। बालकों के ऊपर कोई अला-बला नज़र आवे, तो पंचगव्य में स्नान करवाकर गैया की पूंछ का झाड़ा मार दो, सारे विघ्न दूर हो जायेंगे। मैया लाला कूं पंचगव्य में नहवाय के गैया की पूंछ सें झाड़ो मारवे लगी,

इन्द्रियाणि हृषीकेशः प्राणान् नारायणोऽवतु ।
श्वेतद्वीपपतिश्चित्तं मनो योगेश्वरोऽवतु ॥ (भा. 10/6/24)

अब देखिये! भगवान् के नाम से आज भगवान् को ही झाड़ा मारा जा रहा है। भगवान् हृषिकेश मेरे लाला के इन्द्रियन की रक्षा करें, नारायण प्रभु मेरे लाला के प्राणन की रक्षा करें लो! भगवान् का नाम भगवान् का भी रक्षक बन रहा है। आठ श्लोकों में मैया ने बालरक्षाकवच पढ़कर झाड़ा मारा है, तो इन्हीं आठ-श्लोकों को पढकर गाय की पूंछ से बच्चों को झाड़ देना चाहिये। मैया तो इधर झाड़ा-फूंकी कर रही हैं, उधर नन्दबाबा आय गये। ग्वाला दौड़कर बोले, अरे बाबा! तुम मथुरा चले गये, पर गोकुल में तो गजब है गयो। बाबा! तेरे घर में पूतना आय गई और भगवान् जाने कब छोरा कूं लैकें भाग गई? काऊ ए भनकई ना परी? भगवान् जाने का भयो, पूतना तो वह मर गई; लाला तेरो बिल्कुल सुरक्षित है।

नन्दबाबा बोले, भैया! अब मैं समझ गयो, वसुदेव नम्बर एक को ज्योतिषी है। देख तो! मथुरा मेंई मेरे वसुदेव ने कहीं, बाबा! तू जल्दी भाग!! तेरे घर में कछु संकट आयवे वारो है। वा वसुदेव की बात कितनी पक्की निकरी? मैं घर आ ना पायो, तबतक तो आफत आय गई? पर जब तें वा ने ये संकट की बात कही, तब तें मैंने पूरे दिन माला सटकाई, हे नारायण! मेरे छोरा की रक्षा करियो। देख ले! मेरे भजन को चमत्कार, जो साक्षात्-नारायण ने एक धमूकरा धर दियो; सो मर गई पूतना! और मेरे लाला की तो साक्षात् मेरे नारायण ने रक्षा कर दई। मेरे भजन सें नारायण प्रसन्न है गये। व्रजवासी बोले, बाबा! तब तो ये तेरे भजन को चमत्कार है! बड़ी देर सें हम येई तो हिसाब लगा रये? एक बोलो, बाबा! मरी-सो-मरी पर गोकुल और मथुरा को पूरो रस्ता जाम कर गई! देख तो! या को पहाड़ जैसो शरीर अब कितकूं फेंकिंगे? का करिंगे?

नन्दबाबा बोले, एक काम करो! सब लै-लै कुल्हाड़ी आ जाओ और या के जो लम्बे-लम्बे योजनभर के हाथ हैं, वह सब काट-काटकर एक जगह पर ढेर कर देओ। और जितने वृक्ष टूट गये हैं, वह सब या के ऊपर पटक देओ और या में आग लगा देओ। सो लै-लै फरसा-कुल्हाड़ी सब व्रजवासी आ गये और वा के लम्बे-चौड़े हाथ-पैर काटकें एक जगह किये। जो वृक्ष टूट गये थे, वह या के ऊपर पटक दिये और जैसई आग लगाई, तो पूतना का देह जब दग्ध होने लगा, तो ऐसी दिव्य सुगंध निकली कि पूरा व्रजमण्डल सुवाषित हो गया।

दह्यमानस्य देहस्य धूमश्चागुरुसौरभः

परीक्षित चौंके, महाराज! पूतना-जैसी पापिनी के दग्ध होने पर सुगन्ध कहाँ से आ गई? शुकदेवजी कहते हैं, परीक्षित! अब इस पूतना को भला पापिनी कौन कहेगा? अरे! साक्षात् परमात्मा ने पुत्र के रूप में जिसकी गोद में जाकर स्तनपान किया हो, वह भला पापिनी कहने योग्य है? पर धन्य है प्रभु की लीला! जिस पूतना में एक भी सद्गुण नहीं था। इसका पूरा परिचय सुनो परीक्षित!

पूतना लोकबालघ्नी राक्षसी रुधिराशना ।
जिघांसयापि हरये स्तनं दत्वाऽऽप सद्गतिम् ॥ (भा. 10/6/35)

नाम ही कितना बुरा - '**पूतना**'। पूतना का मतलब '**पूतान्नयति**' जो बच्चों को ही उठाकर ले जाये, वह पूतना। अथवा '**पूत**' अर्थात् पवित्र पवित्रता भी जिसमें तनिक न हो वह पूतना, नाम ही बुरा। काम अच्छा नहीं करती - पहले बच्चों को उठा ले जाती है, बाद में मार डालती है। खानदान भी अच्छा नहीं, राक्षसकुल में पैदा हुई। आहार भी अच्छा नहीं, रक्तपान करने वाली है। भगवान् से प्रेम भी नहीं करती, बल्कि भगवान् को मारने की दुर्भावना से प्रेरित होकर आई है। बताओ एक भी अच्छाई नज़र आती है? न नाम अच्छा, न काम अच्छा, न कुल अच्छा, न आहार अच्छा, न व्यवहार अच्छा। किन्तु,

न जाने कौन से गुण पर दयानिधि रीझ जाते हैं

पूतना में तो एक भी सद्गुण नहीं था, पर गोविन्द को जब कृपा करनी है, तो कोई भी बहाना ढूँढ़ लेते हैं। जैसे-क्रोधी के स्वभाव में क्रोध भरा है। बात-बात पर आँखें लाल हो जाती हैं, ऐसे ही भगवान् का श्रीविग्रह ही कृपामय है। कोई बहाना भर मिल जाये, कृपा बरस पड़ती है। भगवान् कहते हैं, बुरी-भली जैसी भी सही, पर काम तो मेरी मैया यशोदा जैसा किया है। माँ की तरह हृदय से लगाकर अपना स्तनपान कराया है, इसलिये मैं तो माँ की गति ही प्रदान करूँगा। और मैया यशोदा के समान गति इस पापिनी-पूतना को भी प्रभु ने प्रदान कर दी। अब भला कौन अभागा होगा? जो ऐसे दयालु-कपालु की शरण में आना न चाहे? जो पूतना में दोष न देख सके, वह भला कभी अपने भक्तों का दोष देख सकते है?

जन अवगुन प्रभु मान न काऊ ।
दीन बन्धु अति मृदुल सुभाऊ ॥ (रामचरितमानस 7/1/3)

भगवान् का ऐसा कृपामय-स्वभाव न हो, तो जीव का कल्याण कैसे होगा? जीव को कर्मो का ही फल देते रहे, तो कल्प-कल्पान्तरों में किसी जीव का कदापि कल्याण होने वाला नहीं है। भगवान् तो बस निमित्त ढूँढ़ते रहते हैं और तुरन्त कृपा बरसा देते हैं। प्रभु का कृपामय-स्वभाव न होता, तो भगवान् को कौन पूछता? बिन्दुजी के पद में कितना बढ़िया भाव है, हे प्रभु! आपका कृपामय-स्वभाव न होवे, तो आपकी अदालत में कौन आवे?

भजन - कृपा की न होती जो आदत तुम्हारी, तो सूनी ही रहती अदालत तुम्हारी

तो जो प्रभु पूतना-जैसी पापिनी में भी दोषदर्शन न कर सके, वह अपने शरणागतों का दोष भला कैसे देख सकते हैं? जो भी पूतना-वध की कथा प्रेम से कहेगा या सुनेगा, उसके मन में भगवत्प्रेम जागृत होता है।

संकट भजन :—

य एतत् पूतनामोक्षं कृष्णस्यार्भकमद्भुतम् ।
श्रृणुयाच्छ्रद्धया मर्त्यो गोविन्दे लभते रतिम् ॥ (भा. 10/6/44)

पूतना का उद्धार हुआ। एक दिन प्रभु का जन्मनक्षत्र आया। मैया तो किसी-न-किसी बहाने उत्सव मनाती है। अब कन्हैया के जन्मनक्षत्र के दिन मैया ने लाला का बड़ा सुन्दर श्रृंगार किया और सजा-धजाकर मैया ने पालना में पौढ़ाय दिये, थप्पी मारके सुवाय दिये। प्रभु लेटे-लेटे अचानक एकदम करवट बदल लिये। करवट बदलते गोविन्द को देखते ही मैया खुशी में उछल पड़ीं, अरे!! मेरो लाला तो आज तनिक बड़ो ह्वै गयो! अपने आपई याने करवट बदल लई? तुरन्त मैया ने नाई बुलवायो, ऐ नाई! पूरे व्रज में लगा दे दुहाई! कह दीजो - करवट बदलवे को बिलौआ है! नाई ने दुहाई दई, गोपियाँ दौड़ी-दौड़ी आईं - मैया! करवट बदले की बधाई होय। मैया बोलीं, बहिनाओ! बार-बार सबन कूं बधाई है, पर ज्यादा हल्ला मत मचाओ। छोरा अब हालई सोयो है, जग जायगो! गोपियाँ बोलीं, जब तोय छोरा ही सुवानो है, तो फिर हमें काय ?ुबउलायो है? अरे! जब हम आई हैं, तो गीत गाँइगी, बधाईयां गवेंगी, तो शोर तो मचेगो ही? मैया बोली, बहिन! तो एक क्षण रुक जा। मैया ने तुरन्त लाला को सोते-सोते पालनो उठायो और थोड़ी दूर पर बैलगाड़ी के नीचे लटकाय दियो। आंगन के माट-मटका उठाए, वह सब गाड़ी के ऊपर धर दिये। आंगन खाली कर दियो और मैया बोलीं, अब प्रेम तें गाओ, बजाओ, नाचो कोनऊ चिंता की बात नहीं। गोपियाँ सब ठुमुक-ठुमुककर नाचवे-गावे लगीं, सोई लाला की नींद खुल गई। नींद खुलते ही भगवान् ने चारों तरफ देखा, वाह! गीत आंगन में गव रये हैं और जाके गीत गव रये हैं, वह गाड़ी के नीचे बाहर लटक रये हैं? क्या करें? एक ही उपाय है '**बालानां रोदनं बलम्**' - बच्चा रोवै, तब मैया ध्यान देवै; तो चलो रोनो प्रारम्भ कर दें। ऐसा सोचकर प्रभु उच्चस्वर में रोवै लगे, पर बड़ी देर तक गला फाड़कर रोते रहे, काऊ ने नांय सुनी।

नैवाशृणोद् वै रुदितं सुतस्य सा रुदन् स्तनार्थी चरणावुदक्षिपत्

हाथ-पैर फटकारे प्रभु को रोते बहुत देर हो गई। जब काऊ ने नांय सुनी, तो भगवान् ने रोते-रोते वा गाड़ी में इतनी ज़ोर की लात मारी कि गाड़ी आकाश में उड़ गई और धम्म् से नीचे आते ही चकनाचूर हो गई। जितने मटका थे, सब धड़ाधड़ फूट गये। मैया दौड़ी-भागी बाहर आई तो देखें, टूटी गाड़ी और फूटे मटका!! मेरो लाला कहाँ गयो? देखें तो पालने में लाला दिखे। मैया ने लपककर लाला हृदय से लगाय लिये, हे भगवान्! लाला तो मेरो ठीक-ठाक सो मालूम चले! परन्तु आंधी चली नांय? तूफान आयो नांय? बैल-सांड कोई निकरो नाय? सो धरी-धरी गाड़ी कैसें टूट गई? तबतक दो छोरा भागे-भागे आये, अरे मैया! हम बतावें? मैया! तुम गावे-बजावें में लगीं, हम छोरा सब यहाँ खेल रए और तेरे लाल ने अचानक रोनो प्रारम्भ कियो, तो सबसे पहिले मैंने देख्यो! बस! मैं ये सोच ही रयो कि मैया की गोद में लाला कूं दे आऊँ! पर जैसे-ही हम तेरे लाल के पास में आये, तबतकतो तेरे या लाला ने गाड़ी में घुमाकर ऐसी लात मारी कि धम्म् से आकाश में उड़ी चली गई। मैया बोली, दारी के! कईं भांग पीकें तो नाय आय गये तुम सब? कल को छोरा पैदा होवे की देर न भई? वा ने लात मारी सो गाड़ी आकाश में उड़ाय दई? चल भाग यां ते! मैया ने डाँट-फटकार सबरे छोरा भगाय दिये और छोरा सौगन्ध खाय-खायकर परेशान, पर काऊ व्रजवासी ने ये बात नांय मानी।

ऊचुरव्यवसितमतीन् गोपान् गोपीश्च बालकाः ।
रुदतानेन पादेन क्षिप्तमेतन्न संशयः ॥ (भा. 10/7/9)

मैया ने तो तुरन्त बड़े-बड़े विद्वान् ब्राह्मणन कूं बुलाकर ग्रहशान्ति करवाई, दान-दक्षिणा देकर ब्राह्मणन कूं विदा कियो। पण्डितजी बोले, घबड़इयो मत मैया! तेरे लाला के ऊपर हमारो आशीर्वाद है। तेरो लाला स्वयं

सबकी बला वनकर आयो है, या पर कोऊ अलाय-बलाय न आय सकै! और सव ब्राह्मण आशीर्वाद दैके चले गये। इस प्रकार प्रभु ने शकटभंजन किया।

तृणावर्त उद्धार—

एक दिन मैया लाला कूं खूब उछाल-उछालकर खिला रही थी, कन्हैया किलकारी मारकर हंस रये थे। पर उछालवो बंद कर दें, सो ही रोवे लग जायें। मैया के तो हाथ दूखन लागे, कबतक उछालूं? सो मैया गोद में लाला कूं लैके अपना स्तनपान करायवे लगीं। मुग्ध हुये माधव मैया का दुग्धपान कर रहे थे। स्तनपान कर रहे थे कि तिरछी निगाह से देखा कि तृणावर्त नाम का एक दैत्य चक्रवात का रूप धारण किये चला आ रहा है। भगवान् मन में मुस्कुराये, मैया तो ज्यादा दूर न उछाल सकीं, सो मामाजी ने उड़न-खटोला भेज दियो। अब मैया गोद से नीचे उतार दें, तो नेक हमऊं घूम आवें! पर मैया उतारती ही नहीं। सो धीरे-धीरे प्रभु ने अपना वजन बढ़ाना प्रारम्भ कर दिया। प्रभु इतने भारी हो गये कि मैया को गोदी में रखना मुश्किल पड़ गया।

गरिमाणं शिशोर्वोढुं न सेहे गिरिकूटवत्
भूमौ निधाय तं गोपी विस्मिता भारपीडिता (भा. 10/7/18-19)

लाला कूं उठाकर धरती में बिठाय के मैया आँखें फाड़कर देखवे लगीं, हे भगवान्! मेरे हलको-फुलको नेक-सो छोरा अचानक इतनो वजनदार कैसें है गओ? अब हालई तो मैं या कूं उछाल-उछालकर खिला रही? अब तो मेरी गोदी में ही न बनें ये? माधव ने मैया के मन को मोहित कर दिया। यशोदा माँ को भ्रम हो गया, अरे राम-राम! दो घंटा सें बैठी-बैठी या कूं दूध जो पिवाय रही हूँ, मालूम पड़े कि ज्यादा दूध पी गयो सो ज्यादा भारी ह्वै गयो। सो आंगन में उतारकर मैया बोलीं, बेटा! खेलकूद कें दूध हज़म कर ले। जब हलको है जायगो, तब गोदी लेउंगी! और आंगन में ही छोड़कर मैया भीतर गृहकार्यों में चली गई। तृणावर्त को अवसर मिल गया। वेग-से आया भगवान् को उड़ाकर कंधे पर बैठाकर आकाश में ले गया। भगवान् भी उड़े चले गये। तृणावर्त के कंधे पर बैठे-बैठे पूरा व्रजप्रदेश देखने लगे, ये ललिता को घर, ये मधुमंगल को घर, ये छीपी-गली, ये प्रेम-गली ... सबरी गली और सबरे मोहल्ले भगवान् ने तृणावर्त के कंधे पर9घूम लिये। पर जैसे-ही मथुरा की ओर भागने लगा, सो ही भगवान् ने गर्दन दबाई और वज़न बढ़ाया। भगवान् इतने वज़नदार हो गये कि तृणावर्त घबड़ा गया, मन में शंकित होने लगा कि जल्दी-जल्दी में कहीं बालक के धोखे में कोई काला-पत्थर तो नहीं उठा लाया? ये बालक है कि पहाड़? बार-बार पीछे मुड़कर देखता है।

भगवान् को हंसी आने लगी, मेरे भक्त पत्थर में भी मुझे देखते हैं और ये मूर्ख मुझमें पत्थर देख रहा है? चलो इसकी खोपड़ी पत्थर पर ही पटकूं। प्रभु ने तृणावर्त की इतनी ज़ोर से गर्दन दबाई कि,

तमन्तरिक्षात् पतितं शिलायां विशीर्णसर्वावयवं करालम्

छटपटाता हुआ धम्म् से तृणावर्त का पत्थर पर आकर सिर पड़ा और गिरते ही **'गोविन्दाय नमो नमः'**। तृणावर्त का अंत हुआ, तूफान शान्त हुआ। मैया दौड़कर बाहर आई और बाहर आकर जब मरा हुआ तृणावर्त देखा, लाला को देखा तो मैया ने लपककर लाला को गोद में उठा लिया। मैया विचार करने लगी, हे भगवान्! अब मोकूं पक्को विश्वास ह्वै गयो, कोऊ काऊ ऐ न मारे। पापी अपने पाप सें स्वयं मर जावें! मैंने काऊ को का बिगाड़ दियो? जो रोज़ के रोज़, कोई न कोई चले आवें और अपने आप ही मर जावें?

हिंस्रः स्वपापेन विहिंसितः खलः साधुः समत्वेन भयाद् विमुच्यते

ऐसे अपने मन को समझाती हुई मैया लाला को घर लाई।

इसी प्रकार एक दिन मैया लाला को प्रेम से स्तनपान करा रही थी। बड़ी देर हो गई, मैया जब लाला को स्तन पिलाना बंद करती हैं, तो लाला रोने लगते हैं। मैया फिर पिलावे लग जाती हैं। अब मैया दूध भी पिला रही हैं और घबड़ा भी रही हैं कि लाला ज्यादा दूध पियेगो तो पेट खराव ह्वै जायगो। तो मैया ने का कियो कि दूध पिलाती-पिलाती लाला के पांव के तलुवे में धीरे-धीरे उंगली फेरवे लगीं। लाला को गुलगुली लगी और हंसी आ गई। हंसी आ गई तो स्तन अपने आप ही मुँह से छूट गयो। मैया प्रसन्न ह्वै गई कि लाल हंसते रहे और दूध पीना भी छोड़ दिये। पर हंसते हुए लाला का मुखमण्डल जब मैया ने ध्यान से देखा, तो खिलखिलाते लाल के मुख के भीतर सारा ब्रह्माण्ड दिखायी पड़ गया। मैया घबड़ा गई कि हे भगवान्! ये नदी-पहाड़ कैसे दीखे? डर के मारे मैया ने तुरन्त आँखें बंद कर लीं, तो भगवान् ने भी मुख बंद कर लिया। एक झलक दिखाकर मानो भगवान् कहना चाहते हों, मैया! तू मेरे पेट खराब होवे की चिंता मत कर! देख मेरो पेट कितनो बड़ो है? तेरे इस स्तन के पान करने से मैं ही तृप्त नहीं हो रहा, वरन् विश्व-ब्रह्माण्ड के अनन्त-जीव तृप्त हो रहे हैं। प्रभु ने मैया को अपने श्रीमुख में दो बार विश्वदर्शन कराया है। एक बार यहाँ दूध पीते-पीते, दूसरी बार मिट्टी खाने के बाद।

नामकरण —

पर इधर मथुरा में वसुदेवजी एक-एक दिन गिनते हुए विचार करते हैं, आज मेरो लाला पूरो एक वर्ष को ह्वै गयो होयगो। अब भगवान् जाने, वाको का नाम धरयो होयगो? सो अपने कुलपुरोहित श्रीगर्गाचार्यजी के पास जाकर बोले, गुरुजी! आप तो सब जानो, आप तो त्रिकालज्ञ हो। बड़ी कृपा होगी, यदि आप व्रज में चले जाओ और गोकुल में नन्दबाबा के घर जाकर मेरे छोरा को नामकरण कर आओ! गर्गाचार्यजी बोले, ठीक है चले जाइंगे! गर्गाचार्यजी वसुदेव से प्रेरित होकर नन्दभवन आये। गोकुल में जैसे-ही नन्दभवन पहुँचे कि नन्दबाबा ने गर्गाचार्यजी को बड़ो भारी स्वागत कियो। नन्दबाबा तो संत-ब्राह्मणन् के अनन्य-भक्त हैं। बोले, आओ-आओ महाराज! बड़ी कृपा करी, खूब दर्शन दिये महाराज! अहो भाग्य हमारे, जो आप पधारे। विधिवत् पूजन कियो और आसन पर बिठायो।

नन्दबाबा बोले, महाराज! आपके आशीर्वाद सें मेरे घर में दो छोरा भए हैं। नेक उनके ग्रह तो बताओ! कैसे का चल रये हैं? जब तें आये हैं, तब तें कोई न कोई उत्पात होतो ही रहे महाराज? बाबा बोले, का नाम रख्यो है अपने छोरा को? कौन राशि है? नन्दबाबा बोले, अरे नाम धरवे को ध्यान ही नांय धरो? गर्गाचार्यजी खूब हंसे, जय हो नन्दबाबा! एक साल को छोरा ह्वै गयो, अबतक नाम ही नांय वाको? नन्दबाबा बोले, महाराज! अब आप-जैसे संत पधारे हो, तो हम तो प्रार्थना करिंगे के आप ही आज नाम धरें जाओ! गर्गाचार्यजी बोले, वह तो हम रख दिंगे, परन्तु हमारी एक शर्त है? तुम जानो, हम यदुवंशियन के आचार्य हैं।

यदूनामहमाचार्यः ख्यातश्च भुवि सर्वतः।
सुतं मया संस्कृतं ते मन्यते देवकीसुतम्॥ (भा. 10/8/7)

भाई! हम यदुवंश के आचार्य हैं। तेरे छोरा को नाम कैसे रख दिंगे? और तेरे लाला को संस्कार करिंगे, तो कंस कूं शंका ह्वै जायेगी कि गर्गाचार्यजी यदुवंशियन के आचार्य होकर नन्द के छोरा का नाम रखवे कैसे चले गये? तो तेरे लाला कूं कंस वसुदेव को लाला समझ बैठो, तो तेरे ऊपर आफत आय जायेगी। इसलिये एक ही

शर्त है कि काऊ ऐ भनक न परे, चुपचाप नाम रखवाय ले, तो रख दिंगे! नन्दबाबा बोले, जे बात है तो महाराज! काऊ भैया कूं भी खबर नांय पड़ेगी! आप तो चुपचाप जायकें गौशाला में बैठ जाओ, मैं लाला कूं लै कें वहीं आ जाऊँ। गर्गाचार्यजी गौशाला में आसन लगाय कें जम गये। नन्दबाबा ने भीतर खबर करी, अरी मेहर!! सिद्धबाबा आये हैं!! जल्दी लाला कूं लैकें आजा! लाला को नाम रखवाइंगे। दोनों मातायें अपने-अपने छोरा को श्रृंगार करके, मोटो-मोटो काज़र और डिठोना लगाय करके ।

आपस में बातें करवे लगीं, बहिना! या बाबा को बड़ो नाम सुन राख्यो है! चलो आज या बाबा की कछु परीक्षा लई जाये! मेरे लाला ऐं तूं लैले और तेरे लाला ऐं मैं लैलउं। पक्को पण्डित होयगो, तो बताय देगो, कौन को लाला कौन-सो है और न बताय पायो तो समझ लिंगे कि खड़िया-पल्टन बाबा है। तो दोनों मातायें अपने-अपने छोरा की अदला-बदली करकें बाबा के सामने आय गई।

माताओं ने प्रणाम किया। बाबा ने नेत्र खोलकर सामने देखा तो रोहिणी मैया की गोदी में यशोदानन्दन और यशोदा मैया की गोदी में रोहिणीनन्दन को देखा। तो जैसे-ही गर्गाचार्यजी ने यशोदानन्दन का दर्शन किया, तो बाबा की दृष्टि पड़ी और नेत्र खुले-के-खुले ही रह गये। बाबा एक दृष्टि में पहचान गये, ये तो साक्षात् निर्गुण-निराकार-निरीह-निर्विशेष-निरूपाधिक-परब्रह्म-परमात्मा ही सगुण-साकार बना मेरे सम्मुख समुपस्थित हुआ है। उस दिव्य छटा को निर्निमेष नयनों से निरन्तर निहारते ही रह गये। बाबा की तो आनन्द की समाधि लग गई। आँखें खुली की खुली रह गईं, ध्याता-ध्यान-ध्येय तीनों एक हो गये। मैया तो प्रणाम करके सामने बैठ गईं। मैया बैठी-बैठी सोच रही हैं, महाराजजी आँखें फाड़कर मेरे लाला की एक-एक रेखा देख रये होइंगे, या के भविष्य के बारे में कछु दिव्य दृष्टि से निहार रये होइंगे सो मैया चुपचाप बैठी रही। पर मैया कूं बैठे-बैठे पूरे घंटा भर बीत गयो और बाबा कछु बोलें चाले नांय? तो मैया हाथ जोड़कर बोली, महाराज! अब कछु मुँह तें तो बोलो? का नाम धर रये हो? अब बाबा होंय, तो नाम धरें? बाबा तो आनन्द की समाधि लगाये बैठे हैं। तऊं नांय बोले। अब मैया घबड़ा गई इशारे में रोहिणी से बोलीं, बहिन! नेक तू तो देख, का ह्वै गयो या बाबा ऐं? न हिले, न डुले, न मटके, न आँख हिले, न पलक गिरे। रोहिणीजी धीरे से कान में बोलीं, मैया! मोय तो मालूम चले, बाबा की सांसऊ न चले। हे भगवान्! तो या बाबा ऐं मेरो ही घर कलंक लगायवे कूं मिलो? अच्छे भले बैठे-बैठे या बाबा ऐं का ह्वै गयो? मैया तो डर गई। बेचारी हाथ पकड़कर हिलाये, ऐ महाराज! तब बाबा की समाधि खुली।

सावधान होकर बाबा मुस्कुराकर बोले, हाँ-हाँ मैया! मैंने तेरे छोरा को नाम सोच लियो! मैया बोली, जय हो महाराज! ऐसे नाम सोचो कि मैं ही सोच में पड़ गई? बाबा! अब कृपा करकें जल्दी बताओ, का नाम विचार कियो है आपने? बाबा मन-ही-मन सोचने लगे, आया था नाम देवे कूं, पर या कूं देखकर तो मैं अपनो ही नाम भूल गयो?

धैर्यं धिनोति मम कम्पयते शरीरं रोमाञ्चयत्यति विलोपयते मतिं च ।
हन्तास्य नामकरणाय समागतोऽहमालोपितं पुनरनेन ममैव नाम॥

जैसे-तैसे गर्गाचार्यजी अपने आप कूं सँभालकर पुनः दोनों बालकों को निहारने लगे और देखते ही मन-ही-मन मुस्कुराये, ये अदला-बदली कैसी दिख रही है? कहीं हमारी परीक्षा तो नहीं हो रही यहाँ? तो तुरन्त यशोदा मैया से बोले,

अयं हि रोहिणीपुत्रो रमयन् सुहृदो गुणैः ।
आख्यास्यते राम इति बलाधिक्याद् बलं विदुः ॥ (भा. 10/8/12)

अरी मैया! तेरी गोदी में जो लाला है, जे निश्चितरूप सें रोहिणी को लाला है। जो इतना सुना, मैया मुस्कुरा कें रोहिणी की तरफ देखवे लगीं, बहिना! पक्को पण्डित निकरो, खड़िया-पल्टन नांय। देख ले! एक दृष्टि में ही कितनी जल्दी या ने पहचान लियो, के ये तेरो छोरा ऐ! और मैया हंसकर बोलीं, हां बाबा! आपने बिल्कुल ठीक कही। जे है तो रोहिणी को छोरा, पर हम दोनों बहना अपने छोरन में नेकउ अन्तर ना समझें। अब तो जे बताओ, या को नाम का रख रये हो? बाबा बोले, मैया! ये छोरा आगे चलकें बहुत बलवान् निकसेगो। हम या को नाम 'बलराम' रख रये हैं, और कछु या तें 'सङ्कर्षण' भी कहो करेंगे। मैया बोली, अच्छा महाराज! अब जल्दी सें या छोटे छोरा को नाम और बताय देओ। बाबा बोले, मैया! बस या के नामन की मत पूछे,

बहूनि सन्ति नामानि रूपाणि च सुतस्य ते ।
गुणकर्मानुरूपाणि तान्यहं वेद नो जनाः ॥ (भा. 10/8/15)

मैया! ये तेरो छोटो छोरो है न! या के तो हजारन नाम पड़िंगे '**इन्ह के नाम अनेक अनूपा**' कहाँ तक गिनाऊँ मैया! गोपालसहस्रनाम, विष्णुसहस्रनाम ... सब येई के नामन तें भरे पड़े हैं। मैया हाथ जोड़कर बोली, बाबा! मोय हजार नामन की कोनऊ जरूरत नांय, मोय तो चोखो-सो, अच्छो-सो एक नाम बढ़िया बताय देओ। बाबा बोले, तो या समय हम या को नाम रख रये '**कृष्ण**'[1]। मैया बोलीं, हे भगवान्! ये कृष्ण केवे में मेरी तो जीभ ही पल्टा खाय जायेगी? का मतलब होय महाराज कृष्ण को? बाबा बोले, मैया! कृष्ण को मतलब होय '**कर्षं इति कृष्णः**' जो देखतई सबको मन अपनी ओर आकर्षित कर लेवे, वा को नाम कृष्ण। और सुन मैया! ये तेरे लाला को हर युग में जनम होयो करे। सतयुग, द्वापर, त्रेता ... हर युग में आयो करे। और बाबा के अचानक मुँह से निकल गया कि ये तो वसुदेव को लाला ... तबतक भगवान् बोले, ऊंऽहूँ। सो-ही बाबा सँभल गये और बात घुमाकर बोले, सुन-सुन मैया! ये तेरो लाला काऊ जनम में वसुदेव को छोरा भयो होयगो,

प्रागयं वसुदेवस्य क्वचिज्जातस्तवात्मजः ।
वासुदेव इति श्रीमानभिज्ञाः सम्प्रचक्षते ॥ (भा. 10/8/14)

मैया काऊ जनम में जे छोरा वसुदेव को लाला भयो होयगो, सो या को नाम आज भी 'वासुदेव कृष्ण' पड़ेगो। मैया बोली, काऊ जनम सें मोए का मतलब। या समय तो मेरो ही है न? बस अब ज्यादा भविष्यवाणी मोए न सुननी महाराज! मैया तो दण्डवत्-प्रणाम करकें भीतर आई और रोहणी सें बोली, बहना! ये बाबा है तो महान् पण्डित, ये तो माननो ही पड़ेगो! कौन को लाला कौन-सो है? एक निगाह में या ने बताय दियो। नाम जरूर टेड़े-मेड़े से धर दिये, पर मैंने भी दो नाम सोच लिये हैं। वाने नाम धरे हैं, कृष्ण और बलराम! मैंने नाम धरे हैं, 'कनुआं' और "बलुआ"। बिल्कुल सीधे-सीधे नाम, बोलवे में नेकऊ परेशानी ना पड़े। तो मैया 'कृष्ण-बलराम' की जगह 'कनुआ-बलुआ' कहवे लगीं। छोरा को चाए जितनो बढ़िया नाम सोच कें धर लेओ, पर मैया को घर को लाड़ को नाम अलग ही होवे। कृष्ण की जगह कनुआं, कन्हैया, कान्हा ... ये सब मैया के लाड़ के नाम हैं। इस प्रकार से नामकरण करके उस दिव्यछटा को हृदयंगम किये श्रीगर्गाचार्यजी चले गये।

1. कृषिर्भूवाचकः शब्दः णश्चनिर्वृतिवाचकः। तयोरैक्यं परब्रह्म कृष्णरित्यभिधीयते ॥

अब दोनों भैयाओं ने धीरे-धीरे घुटनों के बल मैया के आंगन में चलना प्रारम्भ कर दिये। कभी-कभी दोनों की अंगुली पकड़कर मैया धीरे-धीरे पैंया-पैंया चलाने का प्रयास करती हैं। मोटा-मोटा जब काजर लगाती हैं, डिठोना लगाती हैं, मोरपंखी पहना देती हैं। कमर में करधनी और चरणों में नन्हे-नन्हे नूपुर जब बाँध देती हैं और फिर जब हाथ पकड़कर या अंगुली पकड़कर मैया चलना सिखाती है, तो दोनों लालाओं की सुन्दर पैजनियों की झंकार से पूरा आंगन झंकृत हो जाता है। सारे देवता ये दृश्य देख-देखकर निहाल हो जाते हैं, वाह! जो सारे जगत् को अपने इशारों पर नचाता है, आज मैया उसे चलना सिखा रही हैं।

कालेन व्रजताल्पेन गोकुले रामकेशवौ ।
जानुभ्यां सह पाणिभ्यां रिङ्गमाणौ विजह्रतुः ॥ (भा. 10/8/21)

दोनों भैया मैया की अंगुली पकड़कर चलना सीख रहे हैं। कैसी अद्भुत छटा हो रही है आंगन में, दोनों भाइयों की। सूरदासजी के शब्दों में इस दिव्य झांकी का हम सब मिलकर दर्शन करें।

भजन - रुन झुन रुन झुन झनन झनन झन बाजत है पैजनियां ...

दोनों भैयाओं ने इस प्रकार मैया की अंगुली पकड़कर आंगन में चलना प्रारम्भ कर दिया। कभी मैया दोनों का दिव्य-श्रृंगार करती हैं और दोनों भैया घुटनों के बल चलते-चलते गौशाला में घुस जाते हैं। गौशाला में पड़ा हुआ बहुत सारा जब गोबर दिखाई पड़ता है, तो गोविन्द उस गोबर को लेकर सारे शरीर की मालिश करने लग जाते हैं। जब भी संकट आवे, मैया गोबर में नहवावे, अरे! आज अपने मन से ही नहाय लेओ!! और मैया जब आकर गोबर में सने गोविन्द को देखती हैं, तो कान पकड़कर डाँटवे लग जायें, क्यों रे कनुआं! पूर्वजन्म को सूकर है क्या? जब देखो तब कीचड़-गोबर में भागतो ही डोले? मैया डाँटकर कह रही हैं और कन्हैया हंसकर दाऊजी को इशारा कर रहे हैं, दाऊ दादा! देख रहे हो? मैया ने मोकूं बिल्कुल ठीक पहचान लियो। मैं पूर्वजन्म को शूकर (वाराह) ही तो हूँ।

पंकाभिषिक्त सकलावयवं विलोक्यं दामोदरं वदति कोपवशात् यशोदा ।
त्वं सूकरोऽसि गतजन्मनि पूतनारे इत्युक्तिसस्मितमुखोऽवतु नो मुरारे ॥

शुकदेवजी कहते हैं, परीक्षित! गोविन्द के अंग में पंक (कीचड़) भी अंगराग की तरह रुचिकर लगता है। हमलोग क्रीम-पाऊडर पोतकर अपने को सजाते हैं और भगवान् धूल-मिट्टी-कीचड़ जो लपेट लें, वही उनके श्रृंगार और उनके सौन्दर्य की वृद्धि करने वाला बन जाता है। '**सुन्दरे किं न सुन्दरम्**' सुन्दर को सब कुछ सुन्दर ही लगता है। धूल में लिपटे माधव कैसे लगते हैं? ये रसखानजी से पूछकर देखो। रसखानजी कहते हैं,

धूलि भरे अति शोभित श्याम जू तैसी बनी सिर सुन्दर चोटी।
खेलत खात फिरें अंगना पग पैजनि बाजत पीरी कछौटी॥
वा छवि को रसखानि विलोकत वारित काम कला निधि कोटि।
काग के भाग कहा कहिये हरि हाथ सों लै गयो माखन रोटी॥

माखन-रोटी खाते गोविन्द धूल में लिपटे आंगन में घूम रहे कैसे लग रहे हैं? केवल शोभित नहीं हैं, अतिशोभित श्यामजूं अत्यंत सुन्दर हैं। सौन्दर्य की पराकाष्ठा है। ये प्रभु के सौन्दर्य का चमत्कार है। क्रीडा करते-करते गोविन्द अब तनिक बड़े हो गये। कभी गायों के सींग से लटक जाते हैं, कभी बछड़ों के मुँह के दाँत गिनने लग जाते हैं, कभी जलती हुई लकड़ी को घुमाने लग जाते हैं, कभी चंदामामा के लिये रूठ जाते हैं, तो

कभी छुरा हाथ में लेकर वीर बालकों की तरह तलवार-जैसे घुमाने लग जाते हैं। ये सब क्रीडा करते-करते भगवान् अब अपने आंगन की देहरी के बाहर भी दौड़ने लगे। गोपियाँ उनकी एक छटा पाने के लिये लालायित रहती हैं।

माखन चोरी लीला :– प्रभु को लगा, चलो! इन व्रजवामाओं का भी मनोरथ पूरा किया जाये। हम इन्हीं के घर में जाकर इन्हें दर्शन देकर आवें! पर क्या बहाना? क्रीडा करते भगवान् ने एक दिन सबरे ग्वाला इकट्ठे किये और बोले, व्रजवासियों! चलो आज कछू नयो खेल खेलें! कौन सो भैया? प्रभु बोले, चलो! आज चोरी-चोरी खेलिंगे। व्रजवासी बोले, दारी के! चोरी करवे सिखावेगो? मैया सुनेगी, तो वह पिटाई करैगी कि छठी को दूध याद आय जावेगो। प्रभु बोले, हम कोई रुपया-पैसा चुरावे को नांय कह रहे हैं। ग्वाले बोले, भैया! तो और काए की चोरी होय? भगवान् बोले, माखन-मिसरी खावे की चोरी कियो करिंगे और खायवे-पीवे की चीज की चोरी नांय मानी जाय। वह तो खाय कूं होय? व्रजवासी बोले, तो तेरे घर में का भुखमरी पड़ गई? नौ-लाख गैयां तेरे बाबा के यहाँ हैं, दूध-दही के भण्डारे भरे पड़े हैं और तू चोरी करके खावैगो?

कन्हैया बोले, मेरे घर में तो कोई कमी नांय! पर या श्रीदामा कूं देख, डेढ़-हड्डी के होता जा रहा है। और जब मैं पूछूं, क्यों भैया! तुम इतने कमजोर कैसे ह्वै रए हो? तो सबरे ग्वाला एक ही बात करें, कन्हैया! माखन की कोई कमी नांय हमारे घर? पर मैया लै जाकें सब मथुरा बेंच आवै! और बच जाये तो खाय कूं मिल जाये! कन्हैया बोले, कितनो गलत बात है? अरे! गैयन की सेवा करवे कूं हम ग्वाला और गोरस खायवे कूं मथुरा के लाला? ऐसे ही बेचते रहिंगे, तो मथुरा के लोग तो पहलवान बन जाइगें और अपन सब बेंच-बेंच के डेढ़-हड्डी के कमजोर ह्वै। ये बात ठीक नांय! गौसेवा हम करिंगे, तो गोरस को आनन्द भी हम लैंगे। सब ग्वाल-बालन ने एक स्वर से कहा, ठीक है लाला! तेरी या बात में तो दम है! चल कौन के घर में चोरी करें? कन्हैया बोले, पैलें तो अपने-अपने ही घर में चोरी करवे को अभ्यास कर लेओ। घर में जब चोरी करवे में सफल ह्वै जाइंगे, तब पड़ौसी के घर की सोचिंगे। सब ग्वालन ने अपने-अपने घरन में चोरी करी। कछू सफल भये, कछू विफल भये, कछुअन की पिटाई भी भई। दूसरे दिन इकट्ठे होकर सब अपनी-अपनी सुनायवे लगे, आज मोपर ये बीती... मोपर ये बीती...। एक छोरा बोलो, कन्हैया! जन्म-कर्म में पहली बार तो चोरी करी, तो मैया ने पकड़कर वह पिटाई करी कि मेरी तो पीठ लाल कर दई। कन्हैया बोले, जा दारी के! पहली बार चोरी करी और पिटके चलो आयो? व्रजवासी बोले, लाला! हमारे बाप-दादन ने कबऊं चोरी करवह ना सिखाओ। कन्हैया बोले, तो ठीक है! आज से प्रशिक्षण चालू। हम सिखाइंगे सबकूं, चलो! मण्डली बनाओ, विद्यालय में भर्ती ह्वै जाओ। आज से या मण्डल को नाम पड़ गयो, "**बालगोपाल चौरविद्या प्रचारमण्डल**" चौरविद्या का प्रचार करिंगे, हम आपको चोरी करने में निपुण कर दिंगे। फिर क्या था महाराज! मण्डल के सदस्य बढ़ते चले गये और घर-घर में माखनचोरी-लीला प्रारम्भ हो गई।

भगवान् ने व्रजवामाओं का मनोरथ पूर्ण करने के लिये ही माखनचोरी-लीला करी। अब तो गोपियन कूं जब भी दर्शन की उत्कण्ठा जागे, सभी गोपियाँ इकट्ठी होकर शिकायत के बहाने दर्शन करवे घर मे ही आ जावें, अरी यशोदा रानी!! मैया दौड़ी आई, आओ बहन आओ! सब-की-सब आज कैसे दर्शन देवे आई? मैंने तो विलौआ भेजो नांय? गोपियाँ बोलीं, तेरे लाला के गीत गायवे ना आई, तेरे लाला की करामात सुनायवे आई हैं। सुन यशोदा! हम कोई चुगलखोर नांय, जो काऊ की पीठ पाछें चुप्पई चुगली करके भाग जायें। अरे! हम जो

भी शिकायत करिंगी, तेरे लाला के मुँह पर करिंगी! बोल कहाँ है तेरो छोरा? निकाल वा कूं बाहर!! सो ही मैया आवाज़ लगावें, ओ बेटा कनुआं!! कन्हैया दौड़े चले आये, हां मैया! का बात है? मैया बोली, लाला!! देख तो सही! सब-की-सब गोपियाँ आज तेरी शिकायत कर रही हैं? तूं इन गोपियन कूं तंग करे? शिकायत को नाम सुनत ही गाल-फुलायकें, मुँह-लटकायकें बैठ गये गोपाल। भगवान् की इस भोली-सूरत निहारकर गोपियों को बड़ा आनन्द आ गया।

अब सब गोपियाँ तो भगवान् की उस मधुर-झांकी का दर्शन करती हैं और एक गोपी मैया कूं बातों में उलझाय लेती है, यशोदा! तेरो लाला तेरे सामने ही भोलो-भालो बनकर रहे? या की पेट की डाड़ी हमने देखी है!

वत्सान् मुञ्चन् क्वचिदसमये क्रोशसंजातहासः
स्तेयं स्वाद्वत्त्यथ दधि पयः कल्पितैः स्तेययोगैः ।
मर्कान् भोक्ष्यन् विभजति स चेन्नात्ति भाण्डं भिनत्ति
द्रव्यालाभे स गृहकुपितो यात्युपक्रोश्य तोकान् ॥ (भा. 10/8/29)

एक-एक गोपी ने शिकायत की। प्रथम गोपी बोली, मैया! तेरो छोरा आयो और मेरे घर के सबरे बछड़ा खोलकर भाग गयो। मैया हंसकर बोली, तू गैया दुहवे कूं जाय रही होगी, सो मेरे छोरा ने बछड़ा खोल दिये होइंगे? या की आदत है! गोपी बोली, नांय मैया! अरे! दूध दुहवे को कोई समय ना होये, तब खोल कें भागे। और जब मैं गैया दुहवे जा रही, तब मैंने आवाज़ लगाई, लाला! नेक बछड़ा खोल दियो। तो आँख दिखायकर बोलो, तूने का मोकूं नौकर समझ राख्यो है अपनो? तेरे हाथ काम ना करें का? मैया! मैंने कही सो तमाम मोकूं बातें सुनाय दईं! और अपनी मर्जी सें जब चाहे, तब खोल कें भग जाये? मैया बोली, तो फिर एक काम कर बहना! या कूं एक दिन पकड़कर अच्छी तरह आँख दिखायकर डाँट दियो, तो या की हिम्मत ना परवे वारी।

दूसरी गोपी बोली, मैया! खूब डाँटकर देख लियो! जैस ही तेरे लाला कूं आँख दिखाकर डाँटवे लग जावें, सो ही खिलखिलायकें हंसवे लग जाये! अब भगवान् जाने या की हंसी में का जादू है कि मोइये हंसी आय जाय! सारी गुस्सा ठंडी ह्वै जाय। मैया बोलीं, तो एक काम कर! मेरो लाला तेरे घर में जैसे-ही घुसे, या कूं माखन परोसकें खवाय दियो कर, तब तो कूं परेशान नांय करिंगो। एक गोपी बोली, मैया! मैंने परोस कें भी खूब देख लियो! मैंने परोस कें एक दिन दियो और वा सें हाथ जोड़कर बोली, लाला! तू बैठ कें खाय ले! सो आँख दिखाय कें बोलो, ऐ गोपी! तेने का मोय भिखमंगा समझ राख्यो है? मैं का भूखन मरूं? तू आकें मेरे घर में खाय जइयो, मैं काऊ के घर नांय खाऊँ! मैं बोली, लाला! तू ऐसो इतने बड़े बाप को छोरा है, तो चोरी काय कूं करे? तो तुरन्त ही हंस कें बोल्यो, चोरी के माल में स्वाद ही कछु और होय!! अब बताओ मैया? परोस कें देओ तो मुँह फेरकें, बात बनाय कें चलो जाय और बाद में चोरी करकें खायबे में या कूं बड़ो आनन्द आयबे?

मैया बोली, तो अपने मांट-मटका कूं छींके पर च्यों ना लटकाय देओ? एक गोपी बोली, मैया! खूब छींके पर लटकाय कें देख लियो! तू ना जाने, तेरो छोरा ने एक मण्डली बनाय राखी है और सबरी मण्डली कूं लैकें जब हमारे घर में आवै और मटका छींके पर जब दिखाई पड़े? तो तगड़े छोरा कूं घोड़ा बनायवे, वा के ऊपर दूसरो खड़ो करो, वा के ऊपर तीसरो खड़ो करे और सबके ऊपर ये अध्यक्ष महोदय जाय कें खड़े हो जायें! सो ही या के हाथ में मटका आय जावे! खानो प्रारम्भ कर देय और टपका-टपका कें अपने मण्डल कूं खववावह

प्रारम्भ कर देय। एक गोपी बोली, मैया! तू मेरी और सुन! तेरो लाला एक दिन मेरे घर में आयो! मैं चुप्पईं सब छुपी-छुपी देखती रई और ये खातो रहो! मैं कछु नांय बोली, चलो खाय लेन देओ, बच्चे हैं। अपने हैं खायबे की चीज है, खाय लेन दो। तो मैया! खाते-खाते या को पेट भर गयो, सो या ने सबरे ग्वालमण्डली कूं खवायो। मैं फिर भी कछु नांय बोली! पर खाते-खाते सब व्रजवासियन को पेट भर गयो, सो ही या ने आवाज़ निकारी और मेरे घर पे हजारन-बंदर टपक परे! भगवान् जाने वा बंदरन सें या की का रिश्तेदारी है? मैया! तेरे लाला की एक आवाज़ पर सबरे बंदर इकट्ठे ह्वै गये? मैं फिर भी कछु नांय बोली, चलो! खाय लेन दो। पर बंदर भी जब खाय करके थक गये, पेट भर गयो; सो सूंघ-सूंघ करके मटका भागवे लगे! बंदर जब मटका सूंघ के भागवे लगे, सो ही तेरे लाला ने मटका उठायो और बंदर की तरह ये भी सूंघवे लगो? और मटका को सूंघते ही नाक-सिकोड़कें बोलो, राम-राम! इतना सड़ो-सड़ायो माखन घर में राख्यो है? या बंदरऊ ना खावें? और ऐसे सड़े माखन कूं कोई आदमी खावेगो, तो बीमार न पड़ेगो? का जरूरत है ऐसे सड़े-माखन कूं घर में धरवे की? सो धड़ाम् से मटका पटककर भाग गयो। अब बताओ यशोदा! स्वयं खावे, ग्वालन कूं खवावै, बंदरन कूं लुटावै और बाद में सड़ो माखन बतायकें मटका फोड़ कें भाग जावे?

एक गोपी बोली, मैया! मेरी और सुन ले!! मेरे घर में ना गैया है, ना गोरस है। दूध-दही को कोई काम नांय। मेरे घर में तेरो छोरा घुस आयो। अब या ने घर को कोनो-कोनो एक-एक छान मारो, पर खायबे कूं कछु नांय मिलो! जब बड़ी देर तक कछु नांय मिलो, अब या कूं बड़ी गुस्सा आया। अपने सखन तैं बोलो, राम-राम! ये घर है के मरघटा? दो घंटा हो गये घूमते-घूमते, एकउ खायबे की चीज ना मिलई? भूख लग रई है! ऐसे घर में तो आग लगाय देनो चइये। अब गुस्सा के मारे या कूं जब कछु नांय मिलो, सो एक कमरा में घुस गयो! संयोग सें वा कमरे में मेरी बड़ी छोरी गहरी नींद में सोई रही। वा की चुटिया नेक ज्यादा लंबी है। सो तेरे लाला ने धीरे सें वा छोरी की चुटिया पकरी और खटिया की पाटी से बाँध दई और छोरी तो गहरी नींद में सोती रही। अब छोरी की चुटिया खटिया की पटिया सें बाँध दई और जाते-जाते वा लाली के कान में आकें बोलो, 'हौऽआऽऽऽऽ' और हौआ कहकें भाग गयो।

छोरी एकदम हौआ के नाम सें डर गई और जैसई खड़ी भई, सो चुटिया तनी और बा छोरी ने समझी के हौआ ने पकर लियो! अब चिल्लायबे लगी, मैया दौरियो! मोकूं हौआ ने पकर लियो! मेरे तो पसीने छूट गये, हे भगवान्! कौन सो हौआ घर में घुस आओ? दौड़ी-दौड़ी मैं भागी-भागी आई, तबतक तेरो छोरा भागतो नज़र आय गयो। सो ही मैं सब समझ गई, मैंने दौडकर लाली की वह बँधी भई चुटिया खटिया से तुरन्त खोल दई और मैं बोली, लाली! कोई हौआ-वौआ नां है। ये नन्द को छोरा घर-घर हौआ बनो डोले। तेरी चुटिया या खटिया की पाटी सें बंधी है! जब बा छोरी ने पूरी बात समझ लई, तब छोरी की सांस में सांस आई। तो मैया! जा घर माखन होय, वह परेशान हैं और जा घर माखन ना होय, वा के छोरे-छापरन कूं रुआय कि भग जाये! तेरे लाला के काम कहाँ तक सहन करें?

मैया तिरछी-निगाह से लाला कूं देखबे लग जायें, च्यूं रे लाला? तो कन्हैया इतनी रोनी सूरत बनाय लेते हैं कि मैया कूं दया आ जावे। मैया विचार करवें लगी, राम-राम! मेरो भोलो-भालो नेक सो छोरा! और सब-की-सब मिलकें या की शिकायत कर रई ऐं? हाथ धोकें पीछे पड़ी ऐं? और मैं भी डाँटबे लग जाऊँगी, तो मेरो लाला कितनो घबड़ाय जायगो? डर जायगो? तो मैया फिर लाला की तरफ देखना छोड़ देती हैं। और बताओ! या ने

का कियो ? और जैस ही गोपियन की बात ध्यान सें सुनवे लग जावें, सोई कन्हैया धीरे सें मुँह उठाय कें मैया को मुहड़ो देखें और मैया को मुँह जब गोपियों की तरफ देखते हैं, तो सामने खड़ी गोपियों को भृकुटी से इशारा करके कन्हैया कहते हैं, ठीक है! कर लो सब शिकायत! तुम सबन की एक-एक करकें खबर नांय ल ही, तो मेरो नाम नन्द को लाला नांय।

गोपियाँ कहती हैं, देख मैया! अब या को चेहरा? सोई मुँह लटकाय कें कन्हैया फिर जैसे-के-तैसे हो जाएं। तो मैया जब भी देखें तो लटका हुआ चेहरा और मैया की निगाह नेक दांये-बांये होय सोई गोपियन कूं आँख मटकाय कें डाँटवें लग जावें। यही नटखट रूप निहारने के लिये गोपियाँ घंटों तक शिकायत करती थीं। उनमें से कुछ सही होती थीं, कुछ मन सें ही गढ़ लेती थीं। बाद में मैया समझावो करें, सुनो बहनाओं! मैंने तुम सबन की सुन लई ? अब मेरो छोरा यदि तुमें चोर मालूम चले, तो काऊ दिना या की चोरी पकड़कें च्यों ना दिखाओ ? गोपियाँ बोर्ली, हां-हां! काऊ दिना पकड़कें दिखाई दिंगे! मैया बोर्ली, पकड़कर दिखाओगी, तब ही मानूंगी मैं! मैया लाला को पक्ष लेकर सब गोपियाँ भगाय दें; और बाद में अकेले में समझावें, देख बेटा! ये चोरी करवो अच्छो काम ना होय! तेरे घर में कोई कमी है? जो चोरी करतो डोलो? कन्हैया कहते हैं, मैया तू बड़ी भोरी-भारी है। इन गोपियन की बातन में नेकऊ मत आयो कर? ये सबकी सब नम्बर-एक की झूठी हैं। मैया हंसकर कहतीं, हां बेटा! सो तो मोय पक्को भरोसो है कि तुअ ही व्रज में सत्यनारायण है, बाकि सब झूठे हैं? कान्हा सोचने लगे, वाह! मैया तो मोंकू पहचान गई। पुनः मैया ने समझाते हुए कहा, काऊ दिना तेरी चोरी पकड़ी गई, तो समझ लीजो? मैया अकेले में कवऊं डाँट देय, कवऊं समझाय देय और यही आनन्द लेने के लिये गोपियाँ आये दिन कोई-न-कोई बहाना बनाकर आती रहती हैं। इस प्रकार भगवान् सब व्रजवामाओं का मनोरथ पूर्ण करने के लिये घर-घर माखनचोरी लीला करने लगे।

भजन - चोरी करतो डोले श्याम मोसें सूधो ना बोले

मिट्टी खाकर विश्व दर्शन - एक दिन प्रभु ने सोचा, व्रज का माखन खूब खा लिया, अब ज़रा व्रज की रज का भी स्वाद लेकर देखें। व्रजरज की बड़ी महिमा है। क्रीडा करते हुए प्रभु एक दिन ब्रह्माण्ड-घाट पर गये और सबकी आँख से छुपकर मिट्टी का ढेला मुँह में धरकर गटक गये। दाऊ ने देख लिया, कन्हैया! तेरे मोहड़े में का है? कन्हैया मुँह बंद किये बोले, हूँ-हूँ! दाऊजी बोले, अच्छा! मो ते झूठी बोलवो सीख गयो? चल मैया तें तेरी शिकायत करूँ। पकड़कर दाऊजी सब ग्वालन के साथ मैया के पास लाये, मैया! **'कृष्णो मृदं भक्षितवान्'** मैया! तेरे कन्हैया ने आज मिट्टी खाय लई। मैया घबराय गई, हे भगवान्! कल तक तो या की माखन खायबे की शिकायत मिलै ती? तो मैंने सोची-माखन तो खायबे-पीवे की चीज है, खाय लियो तो खाय लियो? ध्यान नांय दियो! और ध्यान नांय दियो, या को मतलब ये भयो कि आज या ने मिट्टी खानी प्रारम्भ कर दई? और भी ध्यान नहीं दऊंगी! तो काल सें पुड़िया खायबे लग जायगो? ऊटपटांग न जाने कहाँ की आदत या की पड़ जाइंगी? अब आज न छोड़वे वारी मैं मैया ने उठाई सांटी और पकड़ लियो लाला का हाथ,

कस्मान्मृदमदान्तात्मन् भवान् भक्षितवान् रहः ।
वदन्ति तावका ह्येते कुमारास्तेऽग्रजोऽप्ययम् ॥ (भा. 10/8/34)

ऐ चटोरे! सच बोल कन्हैया तूने मिट्टी खाई? कन्हैया घबड़ाये कि आज भई पिटाई! हाथ जोड़कर बोले, मैया!

नाहं भक्षितवानम्ब सर्वे मिथ्याभिशंसिनः ।
यदि सत्यगिरस्तर्हि समक्षं पश्य मे मुखम् ॥ (भा. 10/8/35)

मैया! ये सब के सब ग्वाला नम्बर-एक के झूंठा हैं। मैंने मिट्टी नेकऊ न खाई और फिरऊ तोए विश्वास नांय होय, तो मेरा मुहड़ो खोलकर देख लै। मैया बोली, हां! ये बात तूने बिल्कुल सही कही! चल दिखा अपनो मोहड़ो? अब प्रभु ने सोचा कि मेरे मुख में माटी है और मैया के हाथ में सांटी है। माटी देखतई कहीं सांटी मारवे ना लग जायें? सो मुख खोलते ही भगवान् ने मैया को सारा ब्रह्माण्ड दिखा ही दिया। नदी, पर्वत, बाग-बगीचे, वन-वाटिका, सूर्य, चन्द्र, तारामण्डल, आदि सब देख-देखकर मैया तो थर-थर कांप गई।

किं स्वप्न एतदुत देवमाया किं वा मदीयो बत बुद्धि मोहः।
अथो अमुष्यैव मर्माभकस्य यः कश्चनौत्पत्तिक आत्मयोगः ॥ (भा. 10/8/40)

आँखें मीड़-मीड़कर देखवे लगी, हे भगवान्! ये नदी-पहाड़ मेरे लाला के मुँह में कैसे दीखवे लग गये? ओ हो! समझ गई! समझ गई!! मेरो लाला तो साक्षात्-नारायण है। वास्तव में ये भगवान् है कि मैं कोई स्वप्न देख रही हूँ? या काऊ देवता की माया है कि बुद्धि को भ्रम है? नहीं! नहीं! ये कुछ नहीं, ये निश्चित् नारायण् हैं।

अस्तुति करि न जाइ भय माना । जगत पिता मैं सुत करि जाना ॥

नारायण समझकर भगवान् को ज्यों-ही हाथ जोड़कर प्रणाम किया, तो भगवान् को लगा, ये माधुर्य-लीला में ऐश्वर्य कहाँ से आ गया? मुँह बंद करके भगवान् तुरन्त मैया से हंसकर बोले, मैया! अब सच्ची-सच्ची बोल मिट्टी दिखाई पड़ी? अब मैया तो मिट्टी की बात ही भूल गई। मैया तो थर-थर कांप रही है, हाथ जोड़कर बोली, लाला! मिट्टी की बात करें? तेरे मुँह में तो बड़े-बड़े पहाड़ भरे पड़े हैं? कन्हैया ताली बजाकर ज़ोर से हंसे, अरी मैया! तेरी बुढ़ापे की आँखें चकाचौंध खाय गई होंयगी? अच्छी तरह आँख साफ करकें देख! मेरे मुँह में पहाड़ कां तें आ जइंगे? मैया बोली, हां लाला! वह तो में ही सोच रही हूँ। मैया आँखें मीड़-मीड़कर साफ करवे लर्गी, बार-बार आँखें फाड़-फाडकर देखें, अरे लाला! तेरे मोंह में कछु नांय? ये सब बांवरी आँखन में ही कछु बीमारी है! और लपककें लाला कूं हृदय सें चिपकाय लियो, हे भगवान्! बुढ़ापे में कैसी-कैसी बीमारी लग जावें? नेक देर पैलई कैसी चकाचौंध मेरी आँखन में आई? मैं तो घबरा ही गई? सारी भगवत्ता को भुलाकर मैया फिर वही वात्सल्य प्रभु के ऊपर बरसाने लगी।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं, परीक्षित! नन्द और यशोदा पूर्वजन्म के द्रोण और धरा नाम के वसु थे, जिन्होंने घोर तपस्या करके भगवान् का ये दिव्य वात्सल्य-सुख प्राप्त किया। अब एक दिन की बात सुनो,

एकदा गृहदासीषु यशोदा नन्दगेहिनी ।
कर्मान्तरनियुक्तासु निर्ममन्थ स्वयं दधि ॥
यानि यानीह गीतानि तद्बालचरितानि च ।
दधिनिर्मन्थने काले स्मरन्ती तान्यगायत ॥ (भा. 10/9/1-2)

दामोदर लीला :— दीपावली का सुन्दर दिन था। मैया को घर में बहुत सारे काम करने थे। मैया ने दास-दासियों को बाहर के कामों में लगाकर, लाला को पालने में सुलाकर, लाला के लिये ताजा माखन निकालने के लिये दधिमन्थन प्रारम्भ कर दिया। दधिमन्थन करती जा रही हैं और कवियों ने जो लाला की बाललीलाओं के ऊपर सुन्दर-सुन्दर पदावलियां बना दी हैं, उन पदों को मैया गुनगुना रही हैं। लाला की छटा

मन-ही-मन निहारती हैं, लाला की उन लीलाओं का ध्यान कर रही हैं। तो मन से स्मरण कर रही हैं, वाणी से पद गा रही हैं और तन से दधिमन्थन कर रही हैं। मनसा-वाचा-कर्मणा भक्त भगवान् को याद करे, तो फिर भगवान् उसे छोड़कर सोते हुए कैसे रह सकते हैं? भगवान् की नींद खुली और दौडकर मैया की मथानी पकड़ लई,

गृहीत्वा दधिमन्थानं न्यषेधत् प्रीतिमावहन्

मथानी पकड़कर बोले, मैया! बस अब तेरी साधना सफल ह्वै गई! मैं आ गयो!! अब ये सब करने की जरूरत नांय मैया! ये सब छोड़ मोकूं भूख लगी है! मैया बोलीं, बेटा! तो कूं भूख लगी है और ताजे माखन में तो समय लगैगो? तो चल मेरो ही दूध पी ले! और गोद में बैठाकर मैया अपना स्तनपान करायबे लगीं।

माँ का दुग्ध माधव मुग्धभाव से पी रहे हैं। अचानक पीते-पीते बोले, मैया! एक बात पूछूं? मैया हंसकर बोलीं, बेटा! एक नांय, तू दस पूंछ! लाला बोले, मैया! या तो बता, तोकूं दूध ज्यादां प्यारो लगे कि पूत ज्यादां प्यारो लगे? मैया बोलीं, जा दारी के! जे भी कोई पूंछबे की बात है? अरे बेटा! मोय तो पूत प्यारो लागे! तेरे सामने ये दूध-दही का चीज है? कन्हैया बड़े प्रसन्न हुए, मैया मो तें बड़ो प्रेम करे। और इतने में मैया ने का देख्यो किं चूल्हे पर दूध उफण रओ है? जो दूध उफणतो देखो, सो मैया ने उठाकें लाला कूं जमीन में पटक दिये और मैया दूध उतारबे कूं भागी कन्हैया कूं गुस्सा आय गई। शुकदेव बाबा कहते हैं,

अतृप्तमुत्सृज्य जवेन सा ययावुत्सिच्यमाने पयसि त्वधिश्रिते

अतृप्त अवस्था में ही माधव को छोड़कर मैया भागी, तो '**सञ्जातकोपः स्फुरितारुणाधरम्**' लाल-लाल अरुण-अधर लाला के फड़कने लगे। गुस्सा आय गई, कि अब हालई कहती है, पूत बहुत प्यारो लगे और दूधे देखतई पूत की छुट्टी कर दई? लाला ने उठायो एक पत्थर और दूध-दही के जितने मटका दूध के, वह धमाधम सबरे फोड़ दिये। अब जब दूध-दही बिखर गया, कीच मच गई, सोई आँखें मींड़-मींड़ के रोने लगे, हे भगवान्! आज मैया बहुत मारेगी! गुस्सा में आकर इतनो नुकसान कर दियो? छोरन की आदत होय, पैलें जानबूझ कें नुकसान करें और मैया मारेगी ये सोच कें पैलं ही रोनो चालू कर देवें। तो '**भित्वा मृषाश्रुर्दृषदश्मना**' झूठमूठ के ही आंसू निकारवे लगे और बंदरों को बुलाय कें ऊखल पर खड़े होय करके माखन लुटायवे लगे। मैया ने उधर दूध उतारा। पर धम-धम की आवाज़ सुनकर मैया दौड़कर आई और जो देखा कि आज तो घर के ही मटका फूट गये? अरे राम-राम! अबतक मोय विश्वास न होतो! पर आज विश्वास ह्वै गयो। गोपियाँ बिल्कुल ठीक कहें! आज तो या ने मेरे ही घर में सबरे मटका ठिकाने लगाय दिये? तो मेऊं आज छोड़वे बारी नांय। मैया ने उठाई सांटी और जो लाला कूं पकरवे कूं भागी, सोई लाला ने दौड़ लगाई।

अब आगे-आगे कन्हैया, पीछे-पीछे मैया। परीक्षित! कर लेओ दर्शन! ऐसा भागता हुआ ब्रह्म कहीं नहीं मिलेगा! बहुत भागी मैया पर पकड़ में नहीं आये कन्हैया। मैया तो पसीना-पसीना होय गई। लाठी टेक कें बैठ गई, देख लाला! तू पकड़ में आजा, नहीं बहुत मारूंगी! कन्हैया बोले, मैया! तू मारेगी इसीलिये तो भाग रये हैं? मैया बोली, नांय बेटा! तू राजी-राजी मेरे पास आय जा, तो नांय मारूंगी! कन्हैया बोले, तो का करैगी? मैया बोली, बेटा! तेरी पूजा करूँगी। कन्हैया बोले, पूजा करेगी? तो हाथ में ये इतनी लम्बी-चौड़ी लाठी काय कूं ले राखी है? मैया बोली, बेटा! बुढ़ापे में सबन कूं लाठी पकड़ने पड़े। ये लाठी अपने सहारे के तांई है, तेरे तांई थोड़ई है? और तो कूं लाठी से डर लगे, तो लेय ये फैंक दई मैंने लाठी फेंक दई। कन्हैया बोले, देख मैया! पूजा करियो! हां बेटा जरूर करूँगी! कन्हैया पूजा को मतलब ही न समझे और पूजा करवाबे आय गये। जो मैया के

पास आये, तो मैया ने गप्प से हाथ पकड़ लियो, दारी के! तू तो घर चल ऐसी जम के पूजा करूँगी तेरी कि छटी को दूध याद आ जावे! मोय या बुढ़ापे में कहाँ-कहाँ भागतो डुलायो, मेरी सांस उखड़ गई, पसीना छूट गये मेरे। अब कन्हैया ने आँखें मींड़-मींड़कर ज़ोर-ज़ोर से रोनो प्रारम्भ कियो। मैया कूं दया आय गई, अब ज्यादां मारवो-पीटबो ठीक नांय! छोरन कूं डाँटनो भी चइये पर, इतनो भी न डाँटनो चइये कि डर के मारे घर छोड़कर भाग जायें और बाद में परचे छपवावे पड़ें?

सो मैया ने मारना-पीटना छोड़ दिया और पकड़कर घर में लै आई। फिर मन में सोचा, बिल्कुल दण्ड ना देऊंगी, तो उद्दण्ड भी तो ह्वै जायगो? कछु तो दण्ड देनो चइये? सो पकड़कर ऊखल में ही बाँधवे लगीं। चोर जा घर में पकड़ो जाय, वह भी चोर का साथी माना जाता है। तो ऊखल में खड़े होकर माखन लुटाय रए थे? चल ऊखल सें ही बाँधूं तेरे कूं! तो पकड़कर ऊखल सें बाँधवे लगी। जैसे-ही रस्सी बाँधती हैं कि दो अंगुल रस्सी कम पड़ जावें? मैया दूसरी रस्सी जोड़ दयें, फिर दो अंगुल कम? तीसरी रस्सी जोड़ दयें ... देख-देखकर घर में जितनी रस्सियां थीं, सब जुड़ गई पर

तदपि द्व्यङ्गुलं न्यूनं यद्यदादत्त बन्धनम्

सैकड़ों रस्सियां जुड़ गई, फिर भी दो-अंगुल रस्सी ही कम पड़ रही है। कैसा अद्भुत भगवान् का चमत्कार है? न तो अणिमा-महिमा के द्वारा भगवान् छोटे-बड़े हो रहे हैं, कोई सिद्धि का प्रयोग नहीं कर रहे। जितने हैं, उतने ही हैं। पर रस्सी बार-बार दो ही अंगुल कम पड़ रही है? कैसा विचित्र चमत्कार है? मैया जब पसीना-पसीना हो गई। केश बिखर गये, वस्त्र-अलंकार अस्त-व्यस्त हो गये, तो भगवान् को दया आ गई, मैया कितनी परेशान हो रही है? तो

स्वमातुः स्विन्नगात्राया विस्रस्तकबरस्रजः।
दृष्ट्वा परिश्रमं कृष्णः कृपयाऽऽसीत् स्वबन्धने॥ (भा. 10/9/18)

मैया को पसीना से लथपथ अत्यन्त परिश्रम करते देखा, तो भगवान् के हृदय में करुणा-कृपाशक्ति जागृत हो गई और दो अंगुल का अभाव तुरन्त पूर्ण हो गया। ये दो अंगुल कमी क्यों थी? भक्तजनों का परिश्रम और भगवत्कृपा - जबतक ये दोनों पुष्ट न हो जावें, तबतक भगवान् भक्त के बन्धन में नहीं आते। भक्त का परिश्रम प्रबल हो जाये और गोविन्द की कृपादृष्टि बरस जाये, सो ही काम बन गया। मैया बाँधने में सफल हो गई। दाम अर्थात् रस्सी और उदर अर्थात् पेट तो रस्सी पेट से बाँधी, इसलिये प्रभु का नाम दामोदर हो गया।

मैया तो बंधा हुआ कन्हैया को छोडकर भीतर चली गई, कन्हैया पुकारते ही रहे। जब काऊ ने नांय सुनी तो प्रभु ने सोचा, अब क्या करें? तो ऊखल में बंधे-बंधे ऊखल को घसीटते हुए चल पड़े। आगे दो अर्जुन के वृक्ष खड़े थे, बीच में से गोविन्द निकल पड़े। वृक्षों से ऊखल अटक गया, तो मारा झटका! सो धमाधम दोनों वृक्ष उखड़कर गिरे। दो महापुरुष प्रकट हो गये। शुकदेवजी कहते हैं, ये दोनों नलकूबर और मणिग्रीव नामक कुबेर के बेटे थे। सरोवर में नग्नस्नान कर रहे थे। नारदजी को देखकर भी वस्त्र धारण नहीं किये, तो नारदजी ने शाप दिया, जाओ मूर्खो! तुम जड़-वृक्ष बन जाओ। तब से वृक्ष बने पड़े थे। आज भगवान् ने स्वयं इन्हें इस वृक्षयोनि से मुक्ति दिलाई। दोनों ने भगवान् की स्तुति गाई।

वाणी गुणानुकथने श्रवणौ कथायां हस्तौ च कर्मसु मनस्तव पादयोर्नः।
स्मृत्यां शिरस्तव निवासजगत्प्रणामे दृष्टिः सतां दर्शनेऽस्तु भवत्तनूनाम्॥ (भा. 10/10/38)

हे प्रभो! ये वाणी सदा आपके गुण गाती रहे, ये दोनों कान आपके कथामृत का पान करते रहें, ये हाथ सदा आपकी सेवा का कर्म करते हैं, ये मन सदा आपका स्मरण करता रहे, ये सिर सदा आपके चरणकमलों में झुका रहे, ये आँखें सदा आपके रसिक-भक्तों का और सत्पुरुषों का दर्शन करती रहें अथवा मन्दिरों में आपके श्रीविग्रह का दर्शन करती रहें। ऐसी दिव्य-भक्ति का वरदान माँगा। भगवान् ने दोनों को मुक्त किया। वृक्षों के गिरने का शब्द सुनते ही नन्दबाबा दौड़े-दौड़े आये और ऊखल में बंधे कृष्ण को देखकर बंधन-मुक्त कर दिया। पर इस घटना से नन्दबाबा थोड़े-से चिंतित हो गये। व्रजवासियों से बोले, भैया! अबै हम या गोकुल में ना रैवे वारे! जब तें लाला भयो है, रोज-के-रोज उत्पात होय रये हैं। पर कहाँ जाऊँ? ये समझ में ना आवै? उपनन्द बोले, बाबा! एक जगह बड़ी प्यारी है! अपने व्रज में कई वन हैं। वृन्दावन, निधिवन, वेलवन, कामवन, तालवन, मधुवन, आदि। पर इन सबमें हमें सबसे सुन्दर वन एक ही लगे,

वनं वृन्दावनं नाम पशव्यं नवकाननम्।
गोपगोपीगवां सेव्यं पुण्याद्रितृणवीरुधम्॥ (भा. 10/11/28)

सबसें सुन्दर वन है वृन्दावन। तुलसी के ही सुन्दर-सुन्दर पौधों से पल्लवित विभूषित जो वन हैं, वह वृन्दावन है। अथवा जहाँ भक्तवृन्दों का सदा निवास है, उसका नाम है वृन्दावन। '**वृन्दानां भक्तसमूहानां वनम्**'[1] भगवद्भक्तों का रसिकों का निवास स्थान है, वह श्रीधाम वृन्दावन है।

प्रेम की पिपास देख देख निज प्रेमियों को, प्रेम का समुद्र सीमा तोड़ के बहाया है।
भावुक रसीले जन निराश ना होंगे अब, कामना की पूर्ति हेतु कल्पतरू लगाया है॥
चिन्तामणि जड़ित चारु चादर बिछा ही जहाँ, भान्ति प्रति भान्ति कुंज कुंज से सजाया है।
भारत का भूषण तिलक तीनों लोकों का, भक्तों के वास हेतु वृन्दावन बनाया है॥

वृन्दावन की महिमा[2] सुनते ही '**सर्वे साधु साध्विति वादिनः**' बहुत अच्छा! बहुत अच्छा!! हमें भी वृन्दावन बहुत पसन्द है! फिर क्या था? बैलगाड़ियों में सामान लादा और गोकुल छोडकर सबके सब व्रजवासी गाय-बछड़ों को हांककर वृन्दावन की ओर चल पड़े। हम ओर आप भी मीराजी के पद के साथ वृन्दावन चलें,

भजन - आली री मोहे लागे वृन्दावन नीको ...

वृन्दावनं गोवर्धनं यमुनापुलिनानि च।
वीक्ष्यासीदुत्तमा प्रीती राममाधवयोर्नृप॥ (भा. 10/11/36)

श्रीदाऊ भैया के साथ गोविन्द चार वर्ष की अवस्था में गोकुल छोडकर श्रीधाम वृन्दावन पधारे। वृन्दावन में आकर जब प्रभु ने उसकी दिव्यता का अवलोकन किया। जिस वृन्दावन में श्रीगोवर्धन का शिखर है, सुन्दर-सुन्दर विशाल वृक्षावली है, चारों तरफ खूब हरियाली-ही-हरियाली है। देख-देखकर भगवान् प्रसन्न हो रहे हैं, अरे! या हरियाली में तो गैयां खूब घास खाय के प्रसन्न होइंगी! तो आज हमारे गोविन्द गायों से इतना प्यार

---

1. वृन्दया राधिकया सेवितं वनं वृन्दावनम् अथवा वृन्दायाः तुलस्याः वनं वृन्दावनम्॥
2. इदं वृन्दावनं रम्यं मम धामैव केवलम्। अत्र ये पशवः पक्षि मृगाः कीटा नरामराः॥ वसन्ति मामधिष्ठाय मृता यान्ति ममालयम्। पंचयोजनमेवास्ति वनं मे देहरूपकम्। कालिन्दींय सुषुम्नाख्या परमामृतवाहिनी। अत्र देवाश्च भूतानि वर्तन्ते सूक्ष्म रूपतः॥ सर्वदेवमयश्चाहं न त्यजामि वनं क्वचित्। आविर्भावस्तिरोभावो भवेन्मेऽत्र युगे युगे॥ तेजोमयमिदं रम्यम् अदृश्यञ्चर्मचक्षुषा॥ (बृहद्-गौतमीयम्) भ्रातः तिष्ठ तले तले विटपिनां ग्रामेषु भिक्षामट स्वच्छन्दं पिब यामुनं जलमलं चीराणि कन्थां कुरु। सम्मानं कलयातिघोरगरलं नीचापमानं सुधा श्रीराधामुरलीधरौ भजसखे वृन्दावनं मा त्यज॥ (प्रबोधानन्दसरस्वती)

करते हैं कि वृन्दावन के तृण को देखा घास-पूस को देखा, तो हरियाली को देख-देखकर बड़े प्रसन्न हुए कि मेरी गैयां यां खूब प्रसन्न रहिंगी! खूब घास खाइंगी। यमुना का निर्मल जल-प्रवाह का जब दर्शन किया तो भगवान् का मन उस व्रजभूमि के प्रेम में भर गया। केवल अकेले श्रीकृष्ण का ही नहीं, '**राममाधवयोर्नृप**'। नृप संबोधन करके शुकदेवजी कह रहे हैं, परीक्षित! यदि दोनों भाईयों का मन किसी भूमि को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ, तो वह केवल श्रीधाम-वृन्दावन की भूमि को! इसलिये विशेष संबोधन यहाँ 'नृप' कर रहे हैं।

शुकदेवजी कहते हैं, दोनों भैया बड़े प्रसन्न हुए। कन्हैया तो दौड़े-दौड़े मैया के पास आये, अरी मैया! या वृन्दावन में तो हम गैयां चरायो करिंगे। मैया खूब हंसी, अरे लाला! तू चार-बरस को छोरा अपने आप कूं ठीक सें सँभाल नांय सकै, गैयन कूं का सँभाल लैगो? लाला! तनिक बड़ो ह्वै जाओ! फिर बड़े होयकें तो तोकूं गैयां चरानी-ही-चरानी हैं। ग्वालन को छोरा जो ठहरो? मैया ने बात टाल दई तो कन्हैया मुँह लटकाकर दूर बैठ गये। मैया समझ गई, पास में आकर बोलीं, देख बेटा! यदि तेरी वहुत ही इच्छा है, तो गैयां बाद में चरईयो! पहले छोटे-छोटे बछेड़ने चरावह तो सीख? अच्छा! ठीक है मैया!! कन्हैया भी राजी हो गये और मैया ने भी अनुमति दे दई। अब प्रभु ने छोटे-छोटे बछड़ों के साथ अपने ग्वालों को लेकर आसपास ही घूमना प्रारम्भ कर दिया। मैया की आज्ञा है, ज्यादां दूर मत जइयो! तो प्रभु आसपास ही 'वत्सचारण' करने लगे। एक दिन बछड़ा चराते हुए विचरण कर रहे थे कि वत्सासुर नाम का दैत्य बछड़ा बनकर बछड़ों में मिल गया। प्रभु पहचान गये। दौड़कर आये और उसका पैर पकड़कर घुमाकर दे मारा, सो ही वत्सासुर का उद्धार कर दिया।

ऐसे ही एक दिन भगवान् अपने बछड़ों को पानी पिलाने के लिये यमुना-पुलिन पधारे, तो वहाँ बैठा हुआ था 'वकासुर' - ये पूतना का बड़ा भाई है। जो इसने गोविन्द को देखा, अच्छा! ये ही है काला-काला मुरलीवाला! मेरी बहिन को मारने वाला! मैं इसका बदला लूंगा! सो बगुला बना बैठा रहा। जैसे ही प्रभु निकट आये, सोई एकदम पूरे वेग से दौड़ा और भगवान् को पकड़कर मुँह में धरकर निगल गया। व्रजवासी देखते ही चिल्लायवे लगे, अरे राम-राम! ये कितनो बड़ो बगला! कन्हैया को पकड़कर खाय गयो? बचाओ! बचाओ! सब ग्वाला बेचारे चिल्लायवे लगे, पर भगवान् ने वाके पेट में जायकें अपना श्रीविग्रह इतना गरम कर लिया कि उसे लगा जैसे आग का अंगारा खा लिया हो। जलने लगा, छटपटाने लगा सो तुरन्त इसने भगवान् कूं मुखद्वार से बाहर कर दिया। जैसे ही प्रभु बाहर आये, भगवान् ने उसकी चोंच पकड़कर बीच में से चीर दिया और वकासुर का भी उद्धार कर दिया। इसी प्रकार क्रीडा करते हुए प्रभु एक दिन आँखमिचौनी खेल रहे थे। व्रजवासियो! तुम छुप जाओ हम ढूढ़िंगे! ठीक है लाला! तो सब छुपने के लिये स्थान देख रहे थे। कहाँ छुपें? इतने में आ गया 'अघासुर'। उस अघासुर ने बड़े विशाल अजगर का रूप बनाया और मुँह फाड़कर जिह्वा धरती में सटाकर प्राणायाम चढ़ाकर बैठ गया। श्वांस रोक लीय न हिले, न डुले, बिल्कुल पाषाण-प्रतिमा बन गया।

व्रजवासी देखतईं बोले, अरे भैया! इतेक दिना ह्वै गये या वृन्दावन में घूमते? पर या गुफाऐं आज पैलई बार देख्यो। दूसरो बोलो, भैया! या गुफा तो ऐसी मालूम चल रही ऐ, जैसें कोई सर्प हमेंई खावे कूं बैठो होय। भई! गजब कोई कारीगर है, ऐसी सर्प के आकार की सजीव गुफा बनाय दई। भैया! कलाकारन की कैनो का, जीवन्त बनाय दई? एक बोलो, भैया! मैंने तो ऐंसी सुन राखी है कि वृन्दावन की गुफा में बड़े-बड़े महात्मा भजन कियो करें। तो या गुफा मेऊं बाबा-बैरागी सब बैठे होइंगे। चलो! देखकें तो आवें कौन-कौन हैं। कैसे-कैसे महात्मा हैं। चलो घुस बैठे सब। अब जैसे-ही वा के जिह्वा पर कदम रखकर व्रजवासी भीतर गये।

एक बोलो, भैया! वृन्दावन के महात्मन के बड़े ठाठ हैं। देख तो! सडक ऐसी बना राखी है, जैसें गद्दा बिछाय राखे होंय। ऐसी गजब की सडक कबऊं नांय देखी भैया? चलो और अंदर चलें! जब दरवाजे पे ही इतनी सुन्दर है, तो भीतर कितनी सुन्दर होयगी? और आगे बढ़े लम्बे-लम्बे वाके ये दाँत जो चारों तरफ थे। एक बोलो, च्यों रे! ये सफेद-सफेद खूंटा काय को ठोक राखे हैं? एक बोलो, ये वृन्दावन के महात्मन को नियम होयगो कि अपनो सामान खूंटी से टांग कें आवें, सामान लैकें भीतर ना घुसें। ठीक है भैया! सो जाके हाथ में जो होवे, वह टांगवे लगे और खूंटी से सारो सामान टांग दियो।

और आगे बढ़े। इतने में अघासुर, जो अबतक श्वांस रोके बैठा था, उसकी श्वांस धीरे-धीरे बाहर निकली। तो गरम-गरम दुर्गन्धिपूर्ण वायु जब अन्दर सें आई, तो व्रजवासी नाक पकड़कर बोले, हे भगवान्! ये दुर्गन्ध कैसी आय रही है या गुफा में सें? और इतनी गरम हवा? एक बोलो, तोय मालूम नांय! बड़े-बड़े योगी-महात्मा या में बैठकर एक साथ प्राणायाम चढ़ाते होइंगे और एकदम श्वांस खींच करके फिर एकदम श्वांस छोड़ते होइंगे; ता सें गरम-गरम हवा निकरी! तो दूसरो बोलो, च्यों रे! तो फिर दुर्गन्ध काय कूं आय र ही है? एक ने कही, अरे भैया! महात्मन कूं अपने शरीर कोई होस ना रये। समाधि में और या के कोई जीव-जन्तु जाकर हडबड़ाकर कई मर गयो होयगो! सो वा की दुर्गन्ध आयवे लग गई। अपन जाकर सफाई कर आइंगे और महाराज को दर्शनऊं कर आइंगे! इस प्रकार सब आपस में शंका कर लयें, आपस में ही समाधान कर लयें। एक बोलो, भैया! हमें तो नेक डर लग रयो हे। दूसरा बोला, भैया काय बात को? पहला बोला, तू भूल गयो, वा दिना कितनो बड़ो बगुला बनकें आयो राक्षस। अपने कन्हैया कूं पकड़कें खाय गयो। भगवान् न करे कि कोई या असुर हमें ही खायबे बैठो होय, तो अपन का कर लिंगे? सो सबरे ग्वाला एक स्वर में बोले, काय कूं घबड़ाय रये? अपनो कन्हैया भी तो पीछेई है? यदि ये भी कोई बगुला की तरह वकासुर भयो, ये भी कोई असुर भयो ता

अयं तथा चेद् बकवद् विनङ्क्ष्यति

जैसे बगुला मार दियो हमारे कन्हैया ने, वैस ही एऊए चीर कें फेंक देयगो। अपन कूं डरबे क्री जरूरत नांय। और इतना कहकर '**करताडनैर्ययुः**' ताली बजाकर शोर मचाते हुए, सब-के-सब भीतर भागे चले गये। अब भगवान् ने जब देखा, राम-राम! सबके सब ग्वाला घुसे जाय रये हैं? दूर से देखते ही भगवान् तो अघासुर को पहचान गये जान गये। आवाज़ लगाई, अरे! व्रजवासियो रुको-रुको! ये गुफा नहीं है। खूब चिल्लाये, पर काऊ ने नांय सुनी। इतना शोर कि किसी को सुनाई नहीं पड़ा। प्रभु को लगा कि अब तो इन्हें बचाने के लिये मुझे ही जाना पड़ेगा। मेरी प्रतिज्ञा है! मैं अपने भक्त का कभी पतन नहीं होने देता। व्रजवासियों से भूल तो हो गई, परन्तु उस भूल के साथ-साथ उनका एक विश्वास भी है कि हमारा कन्हैया हमारे साथ है। और इसी विश्वास पर कन्हैया उनकी रक्षा करते हैं। प्रभु के विश्वास के साथ वह जहाँ भी जाते हैं, तो भगवान् की प्रतिज्ञा है,

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम् ॥

अर्थात एक बार भी जिसने कह दिया, प्रभु! मैं तुम्हारा हूँ! तो फिर समस्त भूतों से उसे मैं अभय दे देता हूँ - ये मेरी प्रतिज्ञा है। श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण में भगवान् की इसी प्रकार की प्रतिज्ञा है और भागवत के एकादशस्कन्ध में भी भगवान् उद्धव से कहते हैं,

बाध्यमानोऽपि मद्भक्तो विषयैरजितेन्द्रियः ।
प्रायः प्रगल्भया भक्त्या विषयैर्नाभिभूयते ॥ (भा.मा. 11/14/18)

भगवान् कहते हैं, उद्धव! वैसे तो मेरा भक्त विषयों में भटकता नहीं; फिर भी इन्द्रियाँ बड़ी बलवती हैं। कदाचित् इन्द्रियों के वशीभूत होकर मेरा कोई भक्त विषयों में भटक जाये, तब भी मैं अपने भक्तों को वहाँ से भी सँभाल करके ले आता हूँ। पाप का भी पेट फाड़कर निकाल लाता हूँ, पर भक्त का पतन नहीं होने देता। अपना बच्चा कितना भी गंदा हो, मल लगा हो, गंदगी लगी हो, धूल-मिट्टी-कीचड़ से सना हो; तब भी माँ का दुलार उसके प्रति कम नहीं होता। और लोग देखेंगे तो इधर-उधर देखकर घृणा करके चले जायेंगे। पर माँ देखेगी, तो तुरन्त उसे नहलायेगी-धुलायेगी और साफ-सुथरा करके मोटा-मोटा काजल लगाकर सजा-सँवार देती है। तब पिताजी भी पीछे-पीछे भागने लगते हैं, अरे भाई! ज़रा हमें भी दो अपनी गोद में! हमारा भी अधिकार है भाई! हमारा बेटा है। ऐसे ही जीव कितना भी सावधानी से चले, फिर भी जन्म-जन्मान्तरों के अभ्यास-स्वरूप इन्द्रियों में विषयों के प्रति जो आकर्षण है, जल्दी से उसका निरोध नहीं होता, उसका निग्रह नहीं होता। इसलिये कभी-कभी बड़े-बड़े विद्वान् भी आकर्षित हो जाते हैं। बड़े-बड़े कोविद, जिन्हें आत्मस्वरूप का बोध हो चुका है; ऐसे ब्रह्मज्ञानी भी कभी-कभी फिसल जाते हैं। इसलिये भगवान् की प्रतिज्ञा है, जो मुझे मानकर मेरा आश्रय लेकर चलता है, उसे मैं भटकने नहीं देता क्योंकि वह मेरे भरोसे पर है और जो अपने बल पर चले, वह भटक सकता है।

मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते

जो मेरा प्रपन्न हो गया, वह माया से बच जाता है। मैं उसे बचा लेता हूँ, भटकने नहीं देता। ये अघासुर क्या है? अघ अर्थात् पाप। पाप की प्रवृत्ति ही तो अघासुर है। व्रजवासी उस पापमय अघासुर को एक पर्वत-गुहा समझकर धोखा खा गये और उसमें प्रविष्ट हो गये। इसी प्रकार भक्त भी कभी-कभी प्रमादवश पाप की प्रवृत्ति को पहचाने बिना, उधर प्रवृत्त हो जाते हैं। माया इतनी बलवती है कि धोखा दे देती है। परन्तु जब व्रजवासी घुसे तो भगवान् ने बहुत आवाज़ लगाई, रुको! रुको! खतरा है! ये गुफा नहीं है!! पर सुन नहीं पाये। उसी प्रकार भगवान् का शरणापन्न-भक्त जब किसी भी पापवृत्ति में प्रवेश करता है, तो भगवान् जो हृदयस्थ हैं, वह हरि रोकते हैं, बार-बार टोकते हैं, सावधान करते हैं, इधर मत जाओ! खतरा है! ऐसा मत करो! परन्तु हम लोग उस आवाज़ को दबा देते हैं। उस समय वह गुहा का आकर्षण इतना प्रबल होता है कि जीव उस अन्तरात्मा की आवाज़ को सुन नहीं पाता, समझ नहीं पाता और अनसुना करके घुस जाता है, जैसे व्रजवासी घुस गये। भगवान् के इतना पुकारने पर भी किसी ने नहीं सुना।

अब जब नहीं सुन पाये और अघासुर के मुख में चले गये, तो फिर भगवान् भी उनकी रक्षा करने के लिये तुरन्त भीतर गये। ज्यों-ही प्रभु ने अघासुर के मुख में प्रवेश किया कि अघासुर ने तुरन्त मुख बंद कर लिया। अब तो सब-के-सब अघासुर के मुख में बंदी हो गये। बड़े-बड़े देवता विमानों में बैठे ये दृश्य देख रहे थे, तो हा-हाकार करने लगे, अरे! अघासुर तो सबको खा गया? पर भगवान् ने उसके श्वास-छिद्र में बैठकर अपना शरीर बढ़ाकर उसके श्वास-छिद्र को पूर्णतः अवरुद्ध कर दिया। अघासुर बिना श्वास के छटपटाने लगा। थोड़ी देर तड़फा और फिर उसका ब्रह्मरन्ध्र फट गया और उसी छिद्र से भगवान् सारे व्रजवासियों को निकालकर बाहर ले आये। अमृतमयी-दृष्टि से देखा, सो सबके सब सोते हुये से जागकर खड़े हो गये। अघासुर के शरीर से एक तेज पुंज निकला, जो भगवान् के चरणकमलों में विलीन हो गया।

भगवान् ने व्रजवासियों की रक्षा करी अघासुर का उद्धार किया। परीक्षित बोले, अघासुर का भी उद्धार हो

गया ? शुकदेवजी कहते हैं, इसमें क्या संदेह है परीक्षित ? अरे ! जो भगवान् का नाम लेकर मरता है, वह तर जाता है और जो भगवान् को पेट में ही बैठा करके मरा हो, वह क्या नरक में जा सकता है ? आश्चर्य तो इस बात का हुआ परीक्षित ! कि आज अघासुर मरा है और व्रजवासियों ने ठीक उसके एक वर्ष बाद घर में आकर मैया से कहा, मैया ! तेरे कन्हैया ने आज अघासुर मार दियो। परीक्षित चौंके, ये घटना एक वर्ष के बाद व्रजवासियों ने क्यों सुनाई महाराज ? शुकदेवजी कहते हैं, सुनो परीक्षित ! तुम्हारे मन में अतिशय अनुराग देख-देखकर मुझे कोई भी रहस्य छुपाते नहीं बनता। सुनो ! ग्वाला जब गैयां चराने जाते हैं ना ! तो अपना कलेवा बाँधकर साथ में ले जाते हैं और जहाँ कोई अच्छा-सा स्थान देखा, गायों के चरने के लिये स्वतन्त्र छोड़ दिया और अपने कलेवा की पोटली को किसी वृक्ष की शाखाओं से लटका दिया और फिर आपस में वह खेलते हैं।

तो जब सब व्रजवासी अघासुर के मुख से बाहर निकले, तो बोले, कन्हैया ! आज तेरी कृपा तें बच गये। नहीं तो हमारो तो नाश्ता ह्वै गयो होतो ! पर लाला अब हम कूं बड़ी ज़ोर सें भूख लग रही है। भगवान् बोले, तो निकारो अपनो-अपनो कलेवा उतारो। यदि व्रजवासी अघासुर के मुख में कलेवा अपने साथ ही रखते, तो सारा कलेवा खराब हो जाता, विषैला हो जाता। परन्तु अघासुर के मुँह से बाहर आकर फिर वह कलेवा जो वृक्षों की शाखाओं में लटका रखा था, उसे सबने उतारा। कन्हैया बोले, चलो ! यमुनातट पर बैठकर भोजन करिंगे ! सबको लेकर यमुनातट पधारे। यमुनाजी की सुन्दर-सुन्दर कोमल-कोमल बालु के ऊपर भगवान् जाकर विराजमान हो गये और व्रजवासी चारों तरफ से गोल-चक्र बनाय करके बैठ गये। एक छोटा चक्र, फिर दूसरा बड़ा, उससे फिर तीसरा बड़ा ... ये सखाओं के बीच का रासमण्डल है। एक तरफ भगवान् मुख करते हैं, तो दूसरा पीछे से खींचता है, ऐ कन्हैया ! मेरी तरफ मुँह कर ! तो भगवान् चारों तरफ मुँह किये बैठे हैं और प्रत्येक ग्वाला को लगता है, कन्हैया मेरे साथ भोजन कर रहा है। सबको भगवान् के मुखकमल की शोभा का दर्शन हो रहा है। भगवान् किसी को भी विमुख होने नहीं देते क्योंकि जिस ओर पीठ होगी, वही व्रजवासी असंतुष्ट होइंगे। इसलिये सबको लग रहा है कि हमारी तरफ मुँह किये हैं। भोजन प्रारम्भ हो गया। कैसे भोजन हो रहा है ? श्रीशुकदेव बाबा के शब्दों में आईये हम सब दर्शन करें।

बिभ्रद् वेणुं जठरपटयोः श्रृङ्गवेत्रे च कक्षे
वामे पाणौ मसृणकवलं तत्फलान्यंगुलीषु ।
तिष्ठन् मध्ये स्वपरिसुहृदो हासयन् नर्मभिः स्वैः
स्वर्गे लोके मिषति बुभुजे यज्ञभुग् बालकेलिः ॥ (भा. 10/13/11)

भगवान् भोजन करते समय अपने पीताम्बर को उतारकर कमर में बाँध लेते हैं और कमर में बंधे हुये उस पीताम्बर में एक तरफ श्रृंगी और एक तरफ वंशी को डाल देते हैं। एक वेत्र (अर्थात् डंडा) भोजन करते समय अपने बगल में धर लेते हैं। बांये हाथ की हथेली पर दही-भात का मिश्रित कवल बना रखा है और कुछ व्रजवासी पत्ते तोड़ लाते हैं, पत्तों में परोसकर पा रहे हैं। पर हमारे गोविन्द तो करपात्री बनकर भोजन पा रहे हैं। अपने वाम कर को ही पात्र बना रखा है। तो बांये हाथ की हथेली पर दही-भात मिलाकर रख लिया और सब ग्वाल-बालों से एक-एक फल का अचार माँग लिया, तू कौन-सो अचार लायो है भैया ? निकाल ! सब फलों के अचारों की एक-एक कली माँग-माँगकर उंगलियों के बीच में दबा ली और सब खट्टे-मीठे अचारों के साथ दही-भात का भोग लगाय रये हैं। सब ग्वालों के बीचोंबीच गोविन्द विराजमान हैं और गोलचक्र बनाये, जो

लंबा-चौड़ा ग्वालों का समुदाय है, उनके बीच में बैठे-बैठे भोजन के साथ-साथ कभी ज़ोर से हंसते हैं, तो कभी कोई-न-कोई व्यंग्य करके परिहास करने लग जाते हैं।

स्वर्ग के सभी देवी-देवता विमान में छाये हुये इस वनभोज-लीला का दर्शन करते आपस में कानाफूसी कर रहे हैं, देखो-देखो ! वह बड़े-बड़े यज्ञों का भोक्ता नारायण आज कैसे भोजन कर रहा है ? अरे ! बड़े-बड़े वेदपाठी बड़े-बड़े कर्मकाण्डी विद्वान् लम्बे-लम्बे वेदपाठ करते हैं, फिर भी भोग लगाने नहीं आते। और यहाँ देखो ! उस ग्वाला ने आधा लड्डू खाय लिया, कन्हैया ! मेरो लड्डू बड़ो गजब को है; तू खायकें तो देख। अब आधो खाय लियो, तब कन्हैया कूं खवायो जूठे-मीठे को कोई विचार नहीं ? वह यज्ञभोक्ता नारायण की इस बाललीला को तो देखो ! इस भोजन की लीला को तो देखो। ब्रह्माजी इस विचित्र भोजनलीला को देखकर बार-बार सिर खुजलाने लगे, कभी नाक सिकोड़ने लगे, हे भगवान् ! ये नारायण है ? इसमें तो कहीं-से भी भगवत्ता के लक्षण नज़र नहीं आ रहे। देखो-देखो ! भोजन का नियम होता है, हाथ-पैर धोकर बैठना चाहिये, आसन पर बैठना चाहिये और मौन होकर भोजन करना चाहिये। पर यहाँ तो भोजन के लिये सीधे दौड़े आये और गप्प-से बैठ गये। न हाथ धोया, न पैर धोया, यमुनाजी के तट पर भोजन कर रहे हैं, आसन का कोई काम ही नहीं, जूठे-मीठे का कोई विचार ही नहीं। चाहे जिससे माँग रहे हैं, चाहे जिसका खा रहे हैं - ये कैसा नारायण है ? ये कैसा भगवान् है ? भोजन करते-करते कभी-कभी दौड़ पड़ते हैं। एक दूसरे पर अनेक प्रकार के कटाक्ष करके हास-परिहास भी कर रहे हैं, कहीं भी कोई मर्यादा दिखाई ही नहीं पड़ रही ? ब्रह्माजी को लगा, जब इतनी विचित्रता हो रहा है, तो क्यों ना परीक्षा ले ली जाये ?

ब्रह्माजी ने क्या लीला करी कि भगवान् तो इधर व्रजवासियों के साथ भोजन में मुग्ध हो रहे थे, उधर ब्रह्माजी धीरे से आये और सारे बछड़ों को चुराकर ब्रह्मलोक ले गये। व्रजवासी बोले, ऐ लाला ! खातो ही रहेगो कि बछड़न ने देखेगो ? भैया ! दूर-दूर तक एकऊ नांय दीखें ? कन्हैया बोले, तो तुम भोजन करो, मैं देखवे जाऊँ, कहाँ चले गये ? कहाँ भाग गये ? सो कुछ तो भोजन का ग्रास मुँह में भर लिया और कुछ हाथ में ले लिया और खाते-खाते दौड़ लगाय दी, '**सपाणिकवलो ययौ**' हाथ में भोजन का ग्रास लिये भागते चले गये। और जहाँ भगवान् बछड़ा देखने के लिये गये, तबतक ब्रह्माजी सारे व्रजवासियों को भी उठाकर ले गये।

अब भगवान् दूर-दूर तक जंगल में बछड़ों को देखते फिरें, एक भी नज़र नहीं आया ? प्रभु ने सोचा कि भाई ! कोई गायब होता, कोई छुपता तो एकाध जाता। यहाँ हजारों की संख्या में हमारे बछड़े थे, सब-के-सब कहाँ गायब हो गये ? लौटकर यमुनातट पर आये, तो अब एक भी व्रजवासी नहीं। प्रभु को लगा, कुछ गड़बड़ है भाई ! जो ध्यान लगाकर देखा, सो ध्यान में प्रभु सब समझ गये, अच्छा ! तो ये ब्रह्माजी की करामात है। ये हमारी ही परीक्षा ले रहे हैं। ठीक है ! तो हम भी इन्हें जवाब देते हैं।

तो जो जिस विषय का विद्वान् हो, उसे उसी विषय में प्रभावित किया जाये, तो वह पाण्डित्य है। व्याकरण का विद्वान् हो, उसे व्याकरण की व्युत्पत्तियों से ही प्रसन्न और प्रभावित किया जाये, तब वह आपकी योग्यता को मानेगा। वेदपाठी है, तो उसे वैदिकमन्त्रों से प्रभावित किया जाये; तो वह आपको मानेगा। तो भगवान् को लगा कि ब्रह्माजी सृष्टि करने के विशेषज्ञ हैं (सृष्टिकर्ता हैं), तो हम इन्हें नयी सृष्टि करके आज दिखाते हैं। इन्हीं के विषय में इन्हें प्रभावित करते हैं। भगवान् ने लीला रची। जितने व्रजवासी थे, भगवान् उतने ही बनकर तैयार हो गये। जितने बछड़े थे, भगवान् उतने ही बछड़े बनकर तैयार हो गये। ब्रह्माजी की सृष्टि बछड़ा और व्रजवासियों

की जैसी थी, भगवान् ने लगभग ज्यों-की-त्यों एक नयी सृष्टि अपने रूपों की प्रकट कर दी। भगवान् ने केवल शरीरमात्र नहीं बनाया। जो व्रजवासी जैसा कपड़ा पहनकर आया था, वही कपड़े भी भगवान् बन गये। जो व्रजवासी अपने हाथ में जैसा डण्डा लेकर आया था, वह डण्डा भी भगवान् बन गये। '**सर्वं विष्णुमयं** जगत्' आज ये महावाक्य भगवान् ने चरितार्थ कर दिया।

> यावद् वत्सपवत्सकाल्पकवपुर्यावत् कराङ्घ्र्यादिकं
> यावद् यष्टिविषाणवेणुदलशिग् यावद् विभूषाम्बरम् ।
> यावच्छीलगुणाभिधाकृतिवयो यावद् विहारादिकं
> सर्वं विष्णुमयं गिरोऽङ्गवदजः सर्वस्वरूपो बभौ ॥ (भा. 10/13/19)

केवल पाँचभौतिक शरीर बना लेते, कपड़े-मात्र बना लेते और कहीं स्वभाव वैसा-ना होता, तो पकड़े जाते। अरे! पहले तो हमारा बच्चा बड़ा सुशील था, पर आजकल बड़ा उद्दण्ड हो गया है? तो स्वभाव भी तो वही होना चाहिये। वही शील-स्वभाव, वही अवस्था, वही प्रकृति, वही विचारधारा ... अर्थात् सूक्ष्मातिसूक्ष्म ... कोई कितना भी चिन्तन करे। और-तो-और यदि अंगूठा भी लगावे, तो रेखा भी वही है। भगवान् ने इतनी बारीकी से व्रजवासियों की यथावत् बनाया कि स्वयं विधाता ब्रह्माजी भी चक्कर में पड़ गये कि असली कौन-से हैं? तो स्वयं विशेषज्ञ भी जब नहीं पकड़ पा रहा, तो सर्वसाधारण कोई क्या पकड़ पायेगा? दो-चार घण्टे के लिये नहीं बनें, वरन् एक वर्ष पर्यन्त भगवान् व्रजवासी और बछड़े बनें। अपने घर भी आ रहे हैं और वन भी जा रहे हैं। अरे! औरों की तो कहें क्या, स्वयं भगवान् के बड़े भाई सङ्कर्षण-बलरामजी भी नहीं समझ पाये।

एक साल के बाद बलरामजी की समझ में बात आई। वह भी कब? जब मैया का आदेश था, बछड़ा ज्यादा दूर तक चरावै मत जाना। पर आज बछड़े चराते भगवान् दूर निकल गये, तो गोवर्धन के शिखर पर जो गायें चर रई थीं, उन गायों ने जब अपने नन्हें-नन्हें से बछड़ों को अपने पास आते देखा, तो वात्सल्य की अधिकता में सब मुँह उठाकर दौड़ पड़ीं। अब जो बड़े-बड़े ग्वाला थे, सब लाल-पीले हो गये, इन बच्चों को कितना समझा के लाये थे कि बछड़े इतनी दूर तक मत लाना। अब सब गैयां जाकर चुखा जाइंगी? सो लाल-पीले हुये सबरे ग्वाला लै-लै डण्डा दौड़े, अब इन बच्चों की खबर अभी लेते हैं। गायें मुँह उठाकर भाग रई हैं, ग्वाला डण्डा लिये उन बच्चों को डाँटने के लिये दौड़ रहे हैं। पर जैस ही आये गायों ने बड़े-बड़े बछड़ों को भी दूध पिलाना प्रारम्भ कर दिया और जो ग्वाला मारने के लिये डण्डा लिये आ रहे थे, वह बच्चों को गोद में लेकर खिलायवे लग गये, सब क्रोध भूल गये। दाऊजी ने जब ये प्रेम की विचित्र स्थिति देखी कि भाई! गायों का बछड़ों में प्रेम होता खूब देखा है, पर इतना प्रेम हमने आजतक कभी नहीं देखा? गायों ने जहाँ एक झलक अपने बछड़ों की देखी, तो पहाड़ से बिना मार्ग देखे एकदम दौड़ पड़ीं। और जो व्रजवासी क्रोध में भरे कह रहे थे कि इन बच्चों को अभी देखते हैं और जब अपने बच्चों को देखा तो डण्डा फेंककर सबको गोद में खिलाने लगे, प्यार-दुलार देने लगे।

आजकल तो ऐसे लग रहा है, जैसे वृन्दावन में प्रेम की बाढ़ आ गई हो? तब दाऊजी ने अपनी दिव्यदृष्टि से ध्यान लगाकर देखा कि आजकल इतना प्रेम क्यों उमड़ रहा है? सो जिसका ध्यान करें, उसी में कन्हैया मुस्कुरावें। अपनी दिव्यदृष्टि से बछड़ों को देखें, तो बछड़ों में भी कन्हैया। ग्वालों को देखें, तो ग्वालों में भी कन्हैया। तब दाऊजी को शंका भई, अरे! पहले तो मैं अपनी दिव्यदृष्टि से देखता था, तो किसी-में-किसी संत

का दर्शन होता था। किसी-में-किसी देवता का दर्शन होता था। पर आज सबमें एक-ही-एक कन्हैया क्यों नज़र आ रये हैं? एकान्त में हाथ पकड़कर गोविन्द के पास दाऊजी आकर बोले, भैया कन्हैया! ये क्या लीला है?

नैते सुरेशा ऋषयो न चैते त्वमेव भासीश भिदाश्रयेऽपि

अरे! कन्हैया! इनमें न तो आज कोई देवता नज़र आता है? न कोई ऋषि-मुनि का दर्शन होता है? मुझे सब में तुम-ही-तुम दीख रहे हो। ये क्या चक्कर है? तब गोविन्द मुस्कुराकर बोले, दाऊ भैया! एक साल सें सब मैंई बनो घूम रह्यो हूँ। दाऊजी ने पूछा, का मतलब? तो वह सब व्रजवासी और बछड़े कहाँ हैं? भगवान् बोले, वह तो सब ब्रह्मलोक में आराम कर रहे हैं। तब पूरा रहस्य दाऊजी को प्रभु ने समझाया। दाऊजी ने कहा, गजब हो गया! साल भर होने को आ गया! हमें पता ही नहीं? तो सोचिये जब सङ्कर्षणप्रभु को पता नहीं चला, तो अन्य सर्वसाधारण क्या समझ पाते? जो बछड़े बड़े-बड़े हो गये थे, घास खाने लगे थे, भूसा खाने लगे थे; तो गायें प्रायः उनको फिर दूध पिलाना बंद कर देती हैं। पर आजकल गायों ने बड़े-बड़े बछड़ों को भी दूध पिलाना प्रारम्भ कर रखा है। प्रेम की ऐसी विचित्र स्थिति देखकर दाऊजी को आज बात समझ में आई।

उधर ब्रह्माजी को लगा, चलकर देखूं! क्या हाल हैं? ब्रह्माजी जो वृन्दावन में आये, तो वही व्रजवासी, वही बछड़े वही कन्हैया और वही खाने-पीने के ढंग। ब्रह्माजी के चारों सिर चक्कर खा गये, राम! राम! मैं तो इन सबको अभी-अभी ब्रह्मलोक में सुलाकर आया हूँ। ये नीचे कैसे आय गये? फिर दौड़कर ऊपर गये तो ऊपर सब सोते नज़र आये। फिर नीचे दौड़कर आये, तो नीचे भी सब खेलते नज़र आये? अब ब्रह्माजी के चारों सिर चक्कर खाय गये, इनमें असली कौन-से हैं? और नकली कौन-से हैं?

सत्याः के कतरे नेति ज्ञातुं नेष्टे कथञ्चन

ओ हो! समझ गया! समझ गया! ये चमत्कार प्रभु नारायण के अतिरिक्त कोई नहीं दिखा सकता। इसका मतलब है कि श्रीकृष्ण साक्षात्-परमात्मा हैं। अरे राम-राम! परमपिता-प्रभु की मैंने परीक्षा ली। अरे भाई! बड़े लोग छोटों की परीक्षा लेते हैं, गुरुदेव शिष्य की परीक्षा लेते हैं। शिष्य को क्या अधिकार है, जो गुरुजी की परीक्षा लें लेवे? मैंने प्रभु नारायण की परीक्षा ली। चलो! माफी माँगनी चाहिये! गलती बहुत बड़ी हो गई। परमात्मा जिज्ञासा के विषय हो सकते हैं, परीक्षा के नहीं। '**अथातो ब्रह्मजिज्ञासा**' जानने की इच्छा तो आप कर सकते हो, परमात्मा की परीक्षा की क्या योग्यता है हममें? भगवती सती ने परीक्षा ली, उसका क्या परिणाम हुआ? रावण ने परीक्षा ली, तो क्या परिणाम निकला? अरे! स्वयं परीक्षा लेने वाले ही चक्कर में पड़ जाते हैं। ब्रह्माजी तुरन्त वापिस पहुँचे।

तुरन्त सारे बछड़े व्रजवासियों को वापिस लेकर ब्रह्माजी वृन्दावनधाम पधारे और आते ही भगवान् के श्रीचरणों में साष्टाङ्ग-दण्डवत् किया। असली व्रजवासियों और बछड़ों को आता देख भगवान् ने अपने नकली रूप सब अदृश्य कर दिये। ब्रह्माजी को चरणों में पड़े जब व्रजवासियों ने देखा तो बोले, अरे कन्हैया! ये 'चौमुआं' कौन आय गयो? तब से उस क्षेत्र का नाम 'चौमुआं' हो गया। दिल्ली से मथुरा जाने से थोड़ा पहले चौमुआं कस्बा मिलता है। ब्रह्माजी ने आज चारों मुखों से प्रभु की स्तुति करते हुए चालीस-श्लोकों में महिमा गाई -

नौमीड्य तेऽभ्रवपुषे तडिदम्बराय गुञ्जावतंसपरिपिच्छलसन्मुखाय ।
वन्यस्रजे कवलवेत्रविषाणवेणुलक्ष्मश्रिये मृदुपदे पशुपाङ्गजाय'[1] ॥ (भा. 10/14/1)

हे स्तुति करने योग्य प्रभु! मैं आपको बारम्बार प्रणाम करता हूँ। आपका जो श्याम-वपु है, ये श्याम-रंग जो है, ये अनन्त का वाचक है। जल की अथाह राशि सागर देखो, नीला-नीला-सा नज़र आयेगा। आकाश की अनन्त गहराई को ध्यान से देखो, नीला-नीला नज़र आयेगा। तो जैसे आकाश अनन्त है, इसलिये नीला है। जल की राशि अनन्त है, इसलिये नीली है। ऐसे ही भगवान् सगुण-साकार-विग्रह धारण करके भी अनन्त हैं। इसलिये भगवान् का नीलवर्ण है।

नील सरोरुह नील मणि नील नीलधर स्याम

भगवान् की दिव्य नीलमणि की कान्ति के ऊपर पीत-पीताम्बर जो भगवान् का दमक रहा है, ऐसे लग रहा है कि जैसे नीले-नीले मेघ मण्डलों में बिजली चमक रही हो। प्रभु! आपके कण्ठ में ये गुंजा की माला, सिर पर मोर का पंख, आपकी चार-भुजाओं में एक हाथ में डंडा, एक हाथ में भोजन का ग्रास, एक हाथ में बंसी, एक हाथ में शृंगी - ये आपका गोपवेष कितना अद्भुत है। ऐसे हे नन्दनन्दन कृष्ण! आपके श्रीचरणों में मेरा बारम्बार प्रणाम है। इस प्रकार से ब्रह्माजी ने बड़ी प्यारी स्तुति की। एक बात तो अति-विनम्रता के साथ ब्रह्माजी ने यहाँ कही, सरकार! माँ के गर्भ में जब बालक होता है, तो उसके हिलने-डुलन से पाद-प्रहार करने से माँ को बड़ा कष्ट पहुँचता है। पर माँ क्या उस गर्भस्थ शिशु के पाद-प्रहार की पीड़ा का बुरा मानती है? क्या उससे बदला लेती है? कदापि नहीं!! उसी प्रकार ये अनन्तकोटि-ब्रह्माण्ड आपके ही उदरस्थ हैं, प्रभो! तो क्या मैं ब्रह्मा भी आपके पेट का बच्चा नहीं? यदि मैंने कोई अपराध कर दिया, तो अपना गर्भगत-शिशु मानकर ही क्षमादान दे दीजिये।

उत्क्षेपणं गर्भगतस्य पादयोः किं कल्पते मातुरधोक्षजागसे ।
किमस्तिनास्तिव्यपदेशभूषितं तवास्ति कुक्षेः कियदप्यनन्तः ॥ (भा. 10/14/12)

हे अनन्त प्रभो! मुझे क्षमा करें! इतनी नम्रतापूर्वक स्तुति करने पर भी भगवान् बात नहीं कर रहे, तो ब्रह्माजी को लगा, अपनी प्रशंसा से यदि प्रसन्न नहीं हो रहे, तो शायद व्रजवासियों की प्रशंसा से प्रसन्न हो जायें, क्योंकि भगवान् व्रजवासियों से बहुत प्यार करते हैं। जैसे-माँ अपने बच्चे से बहुत दुलार करती है। किसी बात पर माँ नाराज हो जाये, तो उसके बच्चे को बढ़िया-बढ़िया वस्तुऐं लाकर दे दो। बच्चा प्रसन्न हो जायेगा, तो माँ अपने आप प्रसन्न हो जायेगी। तो ब्रह्माजी अब भगवान् के भक्त व्रजवासियों की महिमा गाने लगे,

अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम् ।
यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम् ॥ (भा. 10/14/32)

चारों मुखों से व्रजवासियों के भाग्य की महिमा गा रहे हैं, कितने भाग्यशाली हैं! कितने भाग्यशाली हैं! कौन

---

1. 'पशुपाङ्गजाय' की बहुविध व्युत्पत्तियाँ प्रसिद्ध हैं, यथा - पशून् पातीति पशुपो नन्दः तस्याङ्गाज्जातः पशुपाङ्गजः तस्मै पशुपाङ्गजाय नन्दनन्दनाय। पशुपो नन्दः तस्य अङ्ग मित्रं वसुदेवं पशुपाङ्गात् वसुदेवात् जातः पशुपाङ्गजः तस्मै वसुदेवपुत्राय। पशुपानां गोपानां मध्ये गजाय मुख्याय तस्मै (विश्वपावत्)। पशुं नन्दिनं पातीति पशुपो महादेवः अंगजः हृदयजो यस्य तस्मै । (शिवस्य हृदयं विष्णुर्विष्णोश्च हृदयं शिवः)। पशून् पापिनः पाति पापात् रक्षतीति पशुपा गंगा अंगजा अंगुष्ठजा यस्य तस्मै। पशून् अज्ञानिनः पान्ति धर्मज्ञानोपदेशेन रक्षन्तीति पशुपा ब्राह्मणा अंगजा मुखजा यस्य तस्मै। इत्थं चन्द्र सूर्य ग्रह नक्षत्र समुद्र द्वीप नद नदी पर्वत पशु पक्षी कीट पतंगादीनां सर्वेषां वस्तुजातानां भगवतोऽङ्गजत्वात् सरस्वत्योद्भावितं पशुपांगजाय इति पदं अनन्तार्थबोधकम् ॥

इनके परमसौभाग्य की महिमा का वर्णन कर सकता है? अरे! स्वयं में विधाता और कई बड़े-बड़े देवता जिनकी एक कृपामयी-दृष्टि पाने के लिये तरसते रहते हैं, '**सेस महेस दिनेस गनेस सुरेसहु जाहि निरंतर ध्यावे**' और वही परमात्मा इस वृन्दावन में '**ताहि अहीर की छोहरियां छछिया भरि छांछ पर नाच नचावें**'। उसी परमतत्त्व को व्रज की ग्वालनियाँ कहती हैं, कन्हैया! नेक ठुमका मार के नाच दे। तेरो नाच नीको लग्यो तो ताजो-ताजो माखन खवाउंगी, छांछ पिवाउंगी! और तनिक गोपियों की छांछ के लिये कन्हैया ठुमुक-ठुमुककर नाचते हैं। मेरो नाच पसंद आयो, अब पिवायगी। देवता देख-देखकर निहाल हो रहे हैं, देखो! देखो! विश्वम्भर को छाछ के पीछे नाचना पड़ रहा है? इन जगन्नाथ प्रभु को देखो! किस प्रकार से व्रजवासियों के क्रीडामृग बनकर विहार कर रहे हैं?

एक बार एक गोपी लाला का दर्शन करने आई। अब कोई-न-कोई बहाना तो चाहिये? तो मैया के पास आकर लाला के दर्शन के लिये बहाना क्या ढूँढ़ा? मैया बोली, कैसे आई? अब सीधी-सीधी कह ना सके कि तेरे लाला कूं देखवे आई। तो बोली, मैया! बस नेक गोबर की जरूरत पड़ी, सो गोबर लैवे आय गई। मैया बोली, बावरी! या में पूछ्वे की का बात है? चली जा गौशाला में! तमाम गोबर पड्यो है। तुरन्त तिरछी निगाह सें लाला कूं निहारती गौशाला चली गई। टोकरी में गोबर भरती गई और गौशाला में कन्हैया भी पहुँच गये, ये का लै रही है? कितनो लै रही है? अब भगवान् भी तो सबकी भावना को समझते हैं, वह जिस उद्देश्य से आई है, उसकी पूर्ति के लिये प्रभु भी पहुँच जाते हैं। तो कन्हैया तिरछी निगाह से खड़े-खड़े सब देख रहे थे। गोपी गोबर भरती जा रही थी और लाला कूं निहारती जा रही थी। दृष्टि लाला के ऊपर और हाथ से टोकरी में गोबर देखते-देखते इतना गोबर भर लिया कि अब उठाना मुश्किल पड़ गया, सो धीरे से बोली, अरे लाला! नेक इत कूं अइयो! कन्हैया आ गये, का बात है? गोपी बोली, अरे लाला! तेरी बड़ी कृपा होयगी, नेक हाथ लगाय दे! ज्यादा वजन है गयो।

भगवान् बोले, वाह! हमई गोबर दें और हमई अपने हाथ खराब करायवें? गोपी बोली, अरे नांय कन्हैया! तो कूं माखन देउंगी मैं! कन्हैया बोले, अच्छा माखन देयगी, तो ठीक है। कन्हैया ने हाथ लगाय दियो और उठायकें सिर पै उचाय दियो। अब जब कन्हैया ने अपने करकमल से उठाकर उसके सिर पर रखा, तो कन्हैया को इतनी निकटता से उसने जीवन में पहली बार देखा। उस दिव्य माधुर्य-मूर्ति को हृदयंगम करके गोपी इतनी विमुग्ध हो गई, दौड़ी-दौड़ी घर गई और गोबर पटककर फिर आय गई, मैया! एक बार और लै जाऊँ? मैया बोली, बावरी! बार-बार मत पूछ? जितनो तोय जरूरत होय सब लै जा। या गोबर के बारे में का पूछनो? फिर भरवे लगी, लाला फिर खड़े होय गये। जब ज्यादा भर गई फिर बुलायो, अरे लाला! एक बार और उचाय दे। कन्हैया बोले, सुन! हिसाब पक्को-पक्को होनो चइये। जितनी बार उचाउगों, उतनें ही माखन के गोला खाउंगो। अरे! हां लाला पक्की रही। कन्हैया बोले! तो पतो कैसें चलैगो कि हमनें कितनी बार उचायो? तेरो का भरोसो कितने चक्कर लगावे? गोपी बोली, तो फिर एक उपाय है - तुम जितनी बार उचाओगे, उतनी बार गोबर के टीके लगाती जाऊँगी। बाद में गिनकर उतनो ही माखन दे दूंगी। कन्हैया बोले, हाँ! ये बात तूने ईमानदारी की कही। फिर क्या था, उचा दिया। गोपी फिर गई, खाली करके फिर आय गई। अब अनेकों बार उसका आना-जाना लगा रहा। ऐसी सुन्दर-छटा देखने को पहली बार मिल रही है और बार-बार आती है, उसका मन ही नहीं भरता। अब इतने गोबर की टीके लगे कि पूरा मुँह गोबर से भर गया, अब कोई जगह ही शेष नहीं बची, जहाँ टीका लगाया जा सके।

कन्हैया दौड़े-दौड़े भीतर आये, अरी मैया! देख! जो चेहरा दिखायो कि मैया को बड़ी हंसी आई, च्यों रे लाला! ये गोबर-गणेश कौने बनाय दियो तो कूं? अरे राम-राम! पूरो मुँह गोबर सें पोत राख्यो है? चल साफ कर! जैसे-ही कन्हैया के मुँह पर हाथ फेरयो, कन्हैया ने हाथ पकड़ लियो, अरीऽ मैया! गजब ह्वै जायगो, सारो हिसाब चौपट ह्वै जायगो। अरी मैया जितने टीके हैं ना, उतनें ही माखन के गोला मिलिंगे मोकूं। मैया बड़ी ज़ोर से हंसी, हे भगवान्! घर में लाखन गैयां हैं, दूध-दही के हज़ारन-मटका हैं; पर ये दारी को हमेशा माखन कोई लोभी बनो रये? गोपियाँ ये सब देख-देखकर विमुग्ध होती हैं। ब्रह्मादि देवता निहाल हो जाते हैं, जय हो प्रभु! परमात्मा का इतना सरलीकरण जो व्रज में हुआ है, वह कहीं भी सम्भव ही नहीं। इसलिये ब्रह्माजी आज खुलकर व्रजवासियों की सराहना करके अघाते नहीं।

ब्रह्माजी तो यहाँ तक बोल गये, प्रभो! भले ही आप सर्वसमर्थ हो, परन्तु मुझे लगता है कि आप भी इन व्रजवासियों के ऋण से उऋण नहीं हो सकते। भगवान् बोले, वह कैसे? ब्रह्माजी बोले, अच्छा बताओ कि आप कैसे उऋण होओगे? भगवान् बोले, मैं अनन्तकोटि-ब्रह्माण्ड का अधिनायक हूँ। मैं एक ब्रह्माण्ड का ऐश्वर्य इन्हें प्रदान करके उऋण हो जाऊँगा। ब्रह्माजी बोले, सरकार! जिसके आंगन में ब्रह्माण्डों का अधिनायक बालक्रीडा कर रहा हो, वह एक ब्रह्माण्ड के सुख के लिये क्यों माँगेंगे? भगवान् बोले, अच्छा! तो मैं अपना परमधाम इन्हें प्रदान कर दूँगा। ब्रह्माजी बोले, आपने परमधाम किस-किसको नहीं दिया? **'सद्वेषादिव पूतनापि'** जो आपको विष पिलाने आई थी (पूतना), उसे भी तो आपने अपने परमधाम में भेज दिया। और वही धाम आप इन व्रजवासियों को दे देंगे, तो क्या विशेषता होगी? भगवान् बोले, भाई! तो इनके सारे कुटुम्ब और सारे कुल को अपने धाम में बुला लूँगा। ब्रह्माजी बोले, तब भी उऋण नहीं हो सकते, क्योंकि पूतना के खानदान में भी आपने किसको छोड़ा है? उसे भी तो सपरिवार ही बुला रहे हो।

सद्वेषादिव पूतनापि सकुला त्वामेव देवापिता

भगवान् बोले, तो तुम ही बताओ मैं क्या करूँ? ब्रह्माजी बोले, सरकार! आपके पास एक ही उपाय है कि हाथ-जोड़कर आप इनसे प्रार्थना करें कि व्रजवासियों! आप अपने ऋण से मुझे उऋण कर दो। तो ये बड़े कृपालु हैं, बड़े दयालु हैं, बड़े सरल हैं। तुरन्त आपको अपने ऋण से उऋण कर देंगे। इसके अतिरिक्त आपके पास दूसरा कोई उपाय नहीं है। इस प्रकार श्रीब्रह्माजी ने भगवान् की बड़ी अद्भुत-स्तुति की, पर भगवान् ने कोई बात ठीक से नहीं की। अन्ततोगत्वा,

इत्यभिष्टूय भूमानं त्रिः परिक्रम्य पादयोः ।
नत्वाभीष्टं जगद्धाता स्वधाम प्रत्यपद्यत ॥ (भा. 10/14/41)

तीन बार ब्रह्माजी ने भगवान् को प्रणाम किया और फिर विधिवत् परिक्रमा देकर अपने धाम को प्रस्थान किया। ब्रह्माजी के जाते ही असली व्रजवासियों के साथ आज एक वर्ष बाद भगवान् घर लौटे, तो घर आते ही व्रजवासी बोले, अरी मैया! तेरे लाला ने आज अघासुर मार दियो। भगवान् दाऊजी की तरफ देखकर खूब हंसे, लो! एक साल पुरानी घटना ये बेचारे आज की ही समझ रहे हैं, क्योंकि **'क्षणार्धं मेनिरेऽर्भकाः'** वह एक वर्ष की अवधि व्रजवासियों को आधे क्षण के समान प्रतीत हुई। ब्रह्माजी के ब्रह्मलोक में तो एक दिन कितना बड़ा होता है, पूर्व में ही इस बात का उल्लेख हम इस ग्रन्थ में चुके हैं। आधे क्षण के समान वह एक वर्ष बीत गया।

अब मैया के पास कन्हैया आकर बोले, मैया! अब तो हम तनिक समझदार ह्वै गये, आप आज्ञा करो तो अब

गैयां चरानो प्रारम्भ कर दयें? मैया बोलीं, ठीक है लाला! नेक अच्छो सो मुहूर्त तो निकलवाय लऊं पण्डितजी सें? तब मैया मुहूर्त निकलवायवे गई। पण्डितजी ने मुहूर्त निकाल दियो, कार्तिक शुक्ल-अष्टमी बुधवार। मैया प्रसन्न हो गई, कन्हैया! कल अष्टमी है, कल से तू जा गैयां चरावे। इतने प्रसन्न भये प्रभु कि खुशी के मारे रात में ठीक सें नींद ना आई और सबेरे होतेई व्रजवासियों सें बोले, ऐ व्रजवासियों! चलो अब अपन गैया चरावे चलिंगे। ब्राह्मणन को बुलायकर स्वस्तिवाचन कराया, गौपूजन करवाकर फिर समस्त ब्राह्मणों का पूजन प्रभु ने विधिवत् किया और आज से गोपाल बनकर भगवान् ने गौचारण प्रारम्भ कर दिया। अपनी वंशी में प्रभु गायों का नाम पुकारने लगे।

आज गायों के पीछे-पीछे प्रभु गोपाल बने गौचारण हेतु वन-वन विचरण करना प्रारम्भ कर रहे हैं। एक दिन तो गौचारण करते-करते वृन्दावन से निकले, तालवन पहुँच गये। तालवन में जाकर जब फलों से लदे हुये वृक्षों को देखा, तो व्रजवासी मुग्ध हो गये, दाऊ भैया! कितने रस-भरे सुन्दर-सुन्दर फल लगे हैं, पर हमें मालूम है कि इस तालवन में एक राक्षस रहता है धेनुकासुर। उसके डर के मारे तालवन में कोई घुसता ही नहीं। दाऊजी बोले, तो तुम सब यहीं रहो, मैं अकेलो ही जाऊँ। अकेले दाऊभैया प्रविष्ट भये। फलों से लदे वृक्षों को देखकर, दोनों भुजाओं से पकड़कर वृक्ष हिला डाला, जितने भी फल थे टपक के नीचे गिरे। वृक्ष के हिलने का और फलों के गिरने का शब्द हुआ, तो धेनुकासुर गधा बनकर दौड़ता आया और घुमाकर पिछले दोनों पैरों की दुलत्ती दाऊजी को मारने की चेष्टा की।

स तं गृहीत्वा प्रपदोर्भ्रामयित्वैकपाणिना

उसके दोनों पिछले पैर पकड़कर दाऊजी महाराज ने आकाश में घुमाकर वृक्ष में दे मारा। वृक्ष भी टूट गया और धेनुकासुर भी ठिकाने लग गया। व्रजवासियों ने जय-जयकार बोलकर खूब चकाचक फल खाये, पोटरी बाँध-बाँधकर अपने घर भी लाये। प्रभु ने विचार किया, धेनुकासुर से फलों का दुरुपयोग हो रहा था, सो श्रीदाऊभैया ने उसे ठिकाने लगाकर सबके लिये फलों को मुक्त कर दिया। अब जल को दूषित कर रहा है कालियनाग। सो उसे मारकर भगाने का काम मुझे ही करना पड़ेगा, क्योंकि हमारे दाऊजी है शेषनाग और मुझे मारना है कालियनाग। इसलिये ये काम तभी किया जाये, जब दाऊजी मेरे संग न हों। अन्यथा हो सकता है, दाऊ भैया अपनी जाति का पक्ष ले बैठे? तो भगवान् ऐसे अवसर को ताकने लगे। और उन्हें अवसर मिल भी गया। मैया तो दाऊजी का जन्मदिन का उत्सव धूमधाम से घर में मना रहीं थीं और भगवान् बिना दाऊजी को लिये कुछ ग्वालों के साथ कालीदह पर क्रीडा करने पहुँच गये। गायों ने जैसे-ही विषाक्त जल पिया, सो सब मरणासन्न हो गईं, आँखें निकल आईं, मूर्च्छित होकर गिर पड़ीं। भगवान् को बड़ा कष्ट हुआ, मेरी गौमाता को कष्ट देने वाले इस दुष्ट कालियनाग को छोड़ूँगा नहीं। अपनी अमृतमयी-दृष्टि से भगवान् ने गायों को तो स्वस्थ्य कर दिया, उनका सब विष दूर कर दिया। परन्तु कालियनाग को दण्ड देने के लिये कदम्ब पर गोविन्द चढ़ गये।

विलोक्य दूषितां कृष्णां कृष्णः कृष्णाहिना विभुः ।
तस्या विशुद्धिमन्विच्छन् सर्पं तमुदवासयत् ॥ (भा. 10/16/1)

इस श्लोक में तीन बार कृष्ण शब्द आया है। भगवान् श्रीकृष्ण ने कालिन्दी कृष्णा में कालिय कृष्ण को देखा, तो आज उसे मारने का विचार पक्का बना लिया क्योंकि मैं कृष्ण! कृष्णा मेरी कालिन्दी! तो हम कृष्ण और कृष्णा के बीच में तीसरा कृष्ण (कालिय) कहाँ से घुस गया? पुराणान्तर प्रसंग ये भी है कि प्रभु ने

कंदुक-क्रीडा की और जानबूझकर श्रीदामा की गेंद कालीदह में फेंक दी। पर ये भागवत का प्रसंग नहीं है। भगवान् गेंद लेने के बहाने कदम्ब पर चढ़ गये। व्रजवासी घबड़ा गये, कन्हैया! गिर मत जइयो! भगवान् बोले, बिल्कुल मत घबड़इयो! मैं तो एक क्षण में अब हाल ही आऊँ। और कहते-कहते कन्हैया ने एकदम छलांग मार दई। बच्चों के साथ घटे घटनाक्रम का माँ को किसी-न-किसी रूप में संकेत मिल ही जाता है। मैया को अचानक अपशकुन होने लगा, व्रजवासी घबड़ाने लगे। उधर व्रजवासी रोते-रोते पहुँचे, मैया! तेरो कन्हैया कालीदह में गिर गयो और सब जानते थे कालीदह में गिरने वाला बचता नहीं। इसलिये अनिष्ट की आशंका में सारे व्रजवासी चीत्कार करते हुये पशुओं की तरह बिना मार्ग देखे कालीदह की ओर दौड़ते-भागते चले गये,

आबालवृद्धवनिताः सर्वेऽङ्ग पशुवृत्तयः ।
निर्जग्मुर्गोकुलाद् दीनाः कृष्णदर्शनलालसाः ॥ (भा. 10/16/15)

सब व्रजवासी गोविन्द के दर्शन की अभिलाषा में भागते चले जा रहे हैं। उधर जब नागपत्नियों ने भगवान् की दिव्य बाँकी-झाँकी को देखा तो विमुग्ध हो गईं, सखी! इतना सुन्दर बालक आजतक नहीं देखा। प्रकट होकर बोलीं, वत्स! तुम्हें मालूम है? जो यहाँ गिरता है, बचता नहीं। हमारे स्वामी अभी सो रहे हैं, ये तुम्हारा सौभाग्य है। वह जागें, उससे पहले भाग जाओ। भगवान् बोले, जगाय दे अपनो स्वामी को, हम तो वा तें ही मिलवे आये हैं। इतनी ज़ोर से बोले कि कालियनाग की नींद खुल गई। भगवान् को देखते ही क्रोध में भरा कालियनाग ने 101 फणों से जो फुंफकार मारी, कालीदह में ज्वारभाटा आ गया, पूरे हृद में हलचल मच गई। व्रजवासी और ज्यादा चीखने-चिल्लाने लगे, ये क्या हो गया? लगता है कालियनाग जग गया। परन्तु जबतक भगवान् सावधान होते, तबतक तो कालियनाग ने एक छलांग मारी और भगवान् को अपने शरीर में लपेट लिया। इसलिये सर्प का एक नाम है '**भोगी**', जिसके शरीर को लपेट ले, उसके प्राण लेकर ही छोड़ता है। नाग का पाश बड़ा प्रबल है। नागपाश से बचना बड़े-बड़े वीरों के लिये भी कठिन हो जाता है, इसलिये नागपाश बहुत प्रसिद्ध है। श्रीरामभद्र को मेघनाद ने नागपाश से ही बाँधा था, तब जाकर गरुडजी को खोलना पड़ा था। सो गरुडजी को मोह हो गया कि ये कैसे भगवान्? हमनें इन्हें मुक्त किया। परमात्मा दुनिया को मुक्ति देते हैं और हमने इन परमात्मा को मुक्ति दी। गरुडजी चक्कर में पड़ गये। भगवान् की लीला इतनी विचित्र होती है कि बड़े-बड़े प्रबुद्धजन भी व्यामोहित हो जाते हैं, विरले ही सँभल पाते हैं।

आज इस कालियनाग ने झपट्टा मारकर प्रभु को अपने शरीर से लपेट लिया। पर व्रजवासियों को रोते-चीखते जब प्रभु ने देखा, तो प्रभु को लगा कि अब ज्यादा लीला करना ठीक नहीं। मुझे ही ये व्रजवासी अपना जीवनधन मानते हैं। कहीं आवेश में ये छलांग न मार बैठें। भगवान् ने तुरन्त अपना शरीर बढ़ाया और जहाँ कालियनाग के बन्धनों में शैथिल्य आया कि भगवान् ने एक छलांग मारी और बन्धनमुक्त होकर कालियनाग के फण पर जाकर खड़े हो गये। पर एक फण पर खड़े होते हैं, तो कालियनाग दूसरे फण से काटने की चेष्टा करता है। भगवान् ने ता-ता-थैया करके नाचना प्रारम्भ कर दिया। ऐसा अद्भुत ताण्डवनृत्य किया कि देवता देख-देखकर निहाल हो गये। रस्सियों पर कलाबाजी खाते बड़े-बड़े नटों के नाटक देखे, पर ऐसा नटवर पहली बार देखा है, जो फण पर नृत्य कर रहा है। देवताओं ने दुंदुभियां बजानी प्रारम्भ की, गन्धर्व गाने लगे, अप्सरायें नाचनें लगीं, आकाश से सुमन-वृष्टि होने लगी और भगवान् तदनानुसार देवताओं के बजाये हुये वाद्ययंत्रों पर अपने श्रीचरणों से अद्भुत ताण्डवनृत्य करके दिखा रहे हैं। उस अलौकिक लीला का हमारे सूरदास-बाबा वर्णन करते हैं,

भजन - ताण्डव गति मुंडन पर नाचत गिरधारी

यद् यच्छिरो न नमतेऽङ्ग शतैकशीर्ष्णस्तत्तन् ममर्द खरदण्डधरोऽङ्घ्रिपातैः

कालियनाग ने काटने के लिये जितने फण ऊपर उठाये थे, वह 101 फण भगवान् ने सब रक्तरञ्जित कर दिये। कालियनाग समझ गया, जिसे मैं नन्हा-सा बच्चा समझ रहा था, इसके तो पेट में दाढ़ी निकल पड़ी है? थोड़ी देर तक और नाचते रहे तो हमारी तो हो गई छुट्टी? भगवान् की भगवत्ता को जानते ही कालियनाग मन-ही-मन प्रभु को प्रणाम करने लगा,

तच्चित्रताण्डवविरुग्णफणातपत्रो रक्तं मुखैरुरु वमन् नृप भग्नगात्रः ।
स्मृत्वा चराचरगुरुं पुरुषं पुराणं नारायणं तमरणं मनसा जगाम ॥ (भा. 10/16/30)

मन-ही-मन माधव की महिमा से परिचित होकर कालियनाग प्रभु को प्रणाम करने लगा। नागपत्नियों ने देखा, अरे राम-राम! देखने में कितना छोटा-सा नन्हा-सा बालक दिख रहा था, पर इसने तो गजब कर दिया? अब इसके नृत्य को जल्दी से कैसे शान्त करें? तब नागपत्नियाँ मिलकर भगवान् की इक्कीस श्लोकों में बड़ी सुन्दर स्तुति गानें लगीं,

न्याय्यो हि दण्डः कृतकिल्बिषेऽस्मिंस्तवावतारः खलनिग्रहाय ।
रिपोः सुतानामपि तुल्यदृष्टेर्धत्से दमं फलमेवानुशंसन् ॥ (भा. 10/16/33)

सभी नागपत्नियाँ कहती हैं, प्रभो! आपका अवतार ही दुष्टों का दमन करने के लिये हुआ है। हमारे स्वामीजी को भी बहुत अभिमान था, आज आपने उनका भी अभिमान तोड़ दिया। अरे! आप तो समदर्शी हो। आप तो सब पर एक समान दृष्टि रखते हो, आपके तो क्रोध में भी कृपा ही छुपी रहती है। न्यायाधीश के दण्ड में भी सुधार की भावना निहित रहती है। इसलिये आजकल जेलखाने को सुधारगृह कहा जाता है, लोगों को सुधारने के लिये यहाँ लाया जाता है। प्रभो! '**क्रोधोऽपि तेऽनुग्रह एव सम्मतः**' आपके क्रोध में भी बड़ा भारी अनुग्रह छुपा हुआ है - इसमें संदेह नहीं। भगवान् बोले, तुम्हें कहाँ से अनुग्रह दीख रहा है? नृत्य कर-करके तुम्हारे स्वामीजी के सभी फण फोड़ दिये और तुम कह रही हो कि हमने बड़ी भारी कृपा की। कौन सी कृपा तुम्हें दिखा ही पड़ी? नागपत्नियाँ बोलीं, सरकार! क्रोध में छुपी हुई कृपा जल्दी से समझ में नहीं आती। डॉक्टरसाहब आप्रेशन करते समय पूरा पेट फाड़कर रख देते हैं, पर उनका पेट फाड़ने में भी अनुग्रह हो रहा है, मरीज को विश्वास होना चाहिये। और कभी-कभी ऐसा भी होता है कि आप्रेशन पूरा हो गया और कैंची पेट में ही रह गई। अब दुबारा करना पड़ेगा, ऐसा भी हो जाता है। पर वह कुछ भी करे, मरीज को विश्वास करना पड़ता है। भैया! उसने जानबूझकर कुछ नहीं किया, अब गलती हो जाये या अनजाने में कुछ हो जाये, तो बात अलग है। हम जीवन में न जाने कितनों पर बार-बार विश्वास करते हैं, परन्तु जब भगवान् से विश्वास की बात आ जाये, सो ही तर्क-वितर्क-कुतर्कों की झड़ी लगा देते हैं। परदेश में जाते हैं, आज से पहले कभी नहीं गये। नया शहर, नये लोग स्टेशन पर उतरे। पते पर पहुँचने के लिये अब हमें टैक्सी करना है, क्यों भैया! ये जगह देखी है? वहाँ चलना है, ले चलोगे? उसने कहा, बिल्कुल! चलो बैठो! अब तुम्हें यदि विश्वास न हो कि भगवान् जाने कहाँ लेकर पहुँच जाये? तो बोलो? पहुँच सकते हो पते पर? पर क्या करें बाध्य होकर आपको विश्वास करना पड़ेगा। विश्वास करके बैठोगे, तभी लक्ष्य तक पहुँचोगे। नाई की दुकान पर आराम से कुर्सी पर टिककर बैठ जाते हैं, भैया! जरा फटाफट दाढी बना दो। अब पैना-सा उस्तरा गले पर घुमा रहा है और आप निश्चिन्त् होकर

आँख मूंदे बैठे हो। गले पर छुरा चल रहा है, परन्तु विश्वास है कि दाढ़ी ही बनायेगा, गला नहीं। समाज में सैकड़ों जगह पग-पग पर हम विश्वास करके जा रहे हैं, पर परमात्मा पर ही विश्वास करते समय हमारी बुद्धि खुराफात पैदा करती है।

आज नागपत्नियाँ विश्वासपूर्वक कहती हैं कि प्रभो! आपके क्रोध में भी अनुग्रह छुपा हुआ है। आपके श्रीचरण कोई साधारण नहीं हैं। ये वह चरणकमल हैं, जिससे भगवती-भागीरथी-गंगा प्रवाहित हो रही है, जो त्रिभुवन को पावन कर रही है। बड़े-बड़े पापियों का पाप धो रही है। भोलेबाबा ने कितनी आराधना-उपासना की आपकी, तब जाकर आपने उनके सिर पर अपना चरणोदक रखा; चरण नहीं रखा। बलि ने त्रैलोक्य की सम्पदा आपको न्यौछावर कर दी; तब जाकर एक चरण आपने बलि के माथे पर रख दिया। पर बड़भागी तो हमारे स्वामीजी हैं जिन्हें न यज्ञ करना पड़ा, न दान देना पड़ा, न तप करना पड़ा, न घर छोड़कर वन में जाना पड़ा। आप स्वयं चलकर हमारे घर में आ गये और एक नहीं, अपितु दोनों चरणकमलों को हमारे स्वामीजी के माथे पर लाकर रख दिया। अब बोलो महाराज! ये आपकी कृपा नहीं तो और क्या है? देखने में तो आप क्रोध करते नज़र आ रहे हो, पर बड़े-बड़े योगी जिन चरणकमलों की नखचन्द्रिका का ध्यान करते हैं और एक झलक मिल जाये, तो अपने को कृतार्थ मानते हैं; आज हमारे स्वामीजी के सिर पर तो आपके दोनों चरणकमल स्थापित हो रहे हैं। ये आपकी अपूर्व कृपा नहीं तो और क्या है?

भगवान् बोले, वाह! बड़ी गजब की बात कही? देवियों! हम तुम्हारी भावना से प्रसन्न हुए। बोलो! क्या चाहती हो? नागपत्नियाँ बोलीं, सरकार! हमें कुछ नहीं चाहिये। हमारे स्वामीजी को आपके दोनों चरण मिल गये, हम तो आपके चरणों की केवल रज चाहती हैं और हमें कुछ नहीं चाहिये।

न नाकपृष्ठं न च सार्वभौमं न पारमेष्ठ्यं न रसाधिपत्यम् ।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा वाञ्छन्ति यत्पादरजःप्रपन्नाः ॥ (भा. 10/16/37)

हम शरणागतों को तो चरणरज चाहिये। प्रभो! न स्वर्ग चाहिये, न मोक्ष चाहिये, न योगसिद्धि, न सार्वभौम पद, ... कुछ नहीं; केवल चरणों की रज दे दो। भगवान् समझ गये, ये देवियाँ तो बहुत बुद्धिमान हैं। अरे! गंगा में कोई स्नान कर रहा हो, तो गंगास्नान करने वाले से कोई कहे, भैया! ज़रा चरणों की धूल दे दो, तो गंगास्नान करते समय कोई चरणरज दे सकता है भला? पहले उसे जल से बाहर आना पड़ेगा, धूल में खड़ा होना पड़ेगा; तब चरणों की धूल मिलेगी। तो नागपत्नियों ने चरणरज क्यों माँगा? इसका समाधान यह है कि चरणरज की महिमा तो है ही। इस समय तो नागपत्नियों को अपने स्वामीजी के माथे से इनके चरणों को दूर करना है। यदि थोड़ी देर तक और नाचते रहे, तो हमारे कालिय की तो गारंटी खत्म हो जाएगी। इसलिये कहा, महाराज! चरणरज मिल जाये। प्रभु प्रसन्न हो गये और फिर नागपत्नियों ने स्पष्ट भी कह दिया, '**पतिः प्राणः प्रदीयताम्**' पतिदेव के प्राणों का दान कर दो। भगवान् उन नागपत्नियों की भावना से प्रसन्न होकर बोले, अच्छा जाओ! तुम्हारी प्रीति को देखकर इसे माफ कर देता हूँ। ऐसा कहकर ज्यों ही भगवान् फण से नीचे उतरे कि कालियनाग फण फुंफकारकर फिर खड़ा हो गया। भगवान् सावधान होकर बोले, देवियों! देख रही हो? तुम गिड़गिड़ा रही हो और ये अकड़ दिखा रहा है। नागपत्नियों ने इशारा किया, स्वामी! माथा झुकाओ जल्दी! बड़ी मुश्किल से राज़ीनामा हुआ है, अभी ठुमका मारना चालू कर देंगे, तो लेने-के-देने पड़ जायेंगे।

कालियनाग गरजता हुआ बोला, अरे! मैं कोई अपराधी हूँ, जो माफी माँगू? भगवान् बोले, क्यों रे! तू अपराधी नहीं है, तो और कौन है? कालियनाग बोला, तो बताइये! मैंने क्या अपराध किया है? भगवान् बोले, तूने विषवमन करके मेरे यमुनाह्रद को इतना विषाक्त कर दिया कि '**पतन्त्युपरिगाः खगाः**' ऊपर उड़ने वाला पक्षी भी छटपटाकर नीचे गिरकर मर जाता है - ये तेरा ही अपराध तो है। कालियनाग बोला, एक क्षण ज़रा मुझे भी तो कहने का कुछ अवसर मिले। सफाई देने का मौका अपराधी को मिलना चाहिये। सरकार! बस यही जानना चाहता हूँ कि ये दुनिया को बनाता कौन है? भगवान् बोले, हम!! कालिय ने पूछा, अच्छा तो फिर सर्पों को किसने बनाया? भगवान् बोले, हमने!! कालिय ने पूछा, तो सर्पों के मुख में ये ज़हर किसने भरा? भगवान् बोले, हमने!! कालिय ने पूछा, तो सर्पों को ये जन्मजात तामसी-क्रोधी स्वभाव किसने दिया? भगवान् बोले, हमने!! कालियनाग बोला, बस महाराज! हो गया फैसला!!

तन-मन-धन-सुख-सम्पत्ति सब कुछ है तेरा,
तेरा तुझको अर्पण क्या लागे मेरा ... जय जगदीश हरे

सरकार! अब निर्णय आप ईमानदारी से कीजिये, आप न्यायाधीश हो। जब आपने ही मुझे सर्पयोनि दी, मुख में ज़हर दिया, स्वभाव में क्रोधी बना दिया; तो जो आपने हमें दिया, वह हमने आपको दे दिया, तो मेरी गलती क्या रही? मेरा अपराध क्यों आपने सिद्ध कर दिया?

वयं खलाः सहोत्पत्त्या तामसा दीर्घमन्यवः ।
स्वभावो दुस्त्यजो नाथ लोकानां यदसद्ग्रहः ॥ (भा. 10/16/56)

कोई भी अपनी प्रकृति के द्वारा प्राप्त स्वभाव को कैसे बदल दे? मैं अपने स्वभाव को कैसे छोड़ दूँ? मेरे मुख में जब आपने ही ज़हर भर दिया, तो मैं मुख में अमृत कहाँ से ले आऊँ? आप चाहते तो आप भी तो विष की जगह अमृत की दो बूंदे डाल सकते थे कि नहीं? आप तो सर्वसमर्थ हो!! और हम सर्पों के मुख में अमृत की बूंदे डाल दी होतीं, तो आज हम भी तो घर-घर में पाले जाते। प्यार से लोग पुचकार कर दूध पिलाते, अनुराग करते, स्नेह की वर्षा करते। पर आपने ऐसा ज़हर भर दिया कि प्यार करना तो दूर रहा, जो देखे वह मुँह कुचलकर फेंक देता है; कोई जिंदा ही नहीं छोड़ता हमें? दिया आपने है विष और दुनिया क्रोध हम पर कर रही है? ऊपर से आप हमें अपराधी कह रहे हैं?

भवान् हि कारणं तत्र सर्वज्ञो जगदीश्वरः ।
अनुग्रहं निग्रहं वा मन्यसे तद् विधेहि नः ॥ (भा. 10/16/59)

आप सर्वसमर्थ हो महाराज! अनुग्रह करो या निग्रह करो। कालियनाग के इन तर्कों से भगवान् प्रसन्न हो गये और बोले, भाई कालियनाग! तेरी सारी बातें बिल्कुल सही हैं, परन्तु यदि हमने सर्पों को विषैला बनाया, तो उन्हें रहने के लिये '**रमणकद्वीप**' भी तो बनाया है। तुम्हारे लिये हमने जब विशेष द्वीप का निर्माण किया है, जहाँ सर्पजाति का ही नित्यनिवास है, तो तुम अपना वह घर छोड़कर यहाँ गंदगी फैलाने क्यों आये? कालियनाग बोला, ये बात ठीक कही सरकार! पर इसका भी कारण आपका वाहन गरुड है। गरुड जब रमणकद्वीप पहुँचता है, तो तमाम सर्पों को मारकर खा जाता है। मेरा उससे झगड़ा हो गया, सो मैं यहाँ आकर बस गया। भगवान् बोले, इतनी बड़ी दुनिया है, यहीं क्यों आये? कालिय बोला, यहाँ इसलिये आया महाराज क्योंकि सौभरि मुनि ने गरुड को शाप दिया है,

अत्र प्रविश्य गरुडो यदि मत्स्यान् स खादति ।
सद्यः प्राणैर्वियुज्येत सत्यमेतद् ब्रवीम्यहम् ॥ (भा. 10/17/11)

यहाँ यमुनातट पर आकर गरुड़ किसी भी प्रकार की हिंसा करेगा, तो निश्चित गरुड़ मारा जाएगा। तब से गरुड़ ने आना ही छोड़ दिया। **'इहाँ सापबस आवत नाहीं'** इसलिये महाराज! मैं यहाँ रहता हूँ कि गरुड मुझे यहाँ कभी मार नहीं सकेगा। भगवान् बोले, यदि यही कारण है, तो अब तुम जा सकते हो; अब गरुड़ नहीं मारेगा। क्योंकि तेरे माथे पर नाच-नाचकर अपने चरणों की मौहर लगा दी है। मेरी मौहर लगी है तो किसकी हिम्मत है, जो तुझे आँख उठाकर देख ले? कुत्ते दो प्रकार के होते हैं - पालतू और फालतू। जो फालतू कुत्ते घुमते रहते हैं, उनको आते-जाते कोई भी डण्डा मसक देता है। जूठी पत्तल खा रहे हैं, फिर भी बेचारे डण्डे खा रहे हैं। और जब वही पालतू बन जायें, तब देखो महाराज ठाठ!! और फिर जितने बड़े व्यक्ति का कुत्ता, उतने ही बड़े ठाठ। आपने खूब देखे होंगे एयरकंडीशन में घूमते हुए। परन्तु एक विशेषता है, उस कुत्ते में कि पहले तो मालिक के नाम का पट्टा पहने हुए है गले में - ये पहचान है पालतू कुत्ते की। दूसरी पहचान - अपने मालिक को छोड़कर कभी किसी दूसरे के दरवाजे नहीं जाता। किसी का मुँह नहीं ताकता। मालिक देगा तो खायेगा, जैसे रखेगा वैसे रहेगा; तब मालिक का स्नेहभाजक बनता है। उसी प्रकार आज यहाँ, कल वहां?

मन कुत्ता दर-दर फिरे दर-दर दुर-दुर होय ।
एकहि दर को ह्वै रहे तो दुर-दुर करै न कोय ॥

हरिनाम का आश्रय लेकर मालिक जितना बड़ा होता है, सेवक के उतने ही बड़े ठाठ होते हैं। प्रधानमन्त्री के चपरासी में भी वह गर्मी होती है कि बड़े-बड़े नेताओं को फटकार भगा देता है। कहने को चपरासी है, पर मालिक की अकड़ होती है। अभिमान भी करना है, तो अपने मालिक के नाम का करो।

अस अभिमान जाइ जनि भोरे ।
मैं सेवक रघुपति पति मोरे॥ (रामचरितमानस 3/11/11)

मालिक के नाम का गर्व होना चाहिये। वैसे तो अभिमान ठीक नहीं पर अपना अभिमान करना ठीक नहीं। मालिक का अभिमान अपना थोड़े ही हुआ? विदेहराज जनकजी के दरबार में लखनलालजी बरस पड़े और क्या-क्या नहीं कह दिया?

रघुबंसिन्ह महुँ जहं कोउ होई ।
तेहिं समाज अस कहइ न कोई॥ (रामचरितमानस 1/253/1)

'कही जनक' रामजी ने इशारा किया, ऐ भैया! कैसे बोल रहे हो? पिताजी के बराबर हैं, हमारे होने वाले ससुरजी भी हैं। तुमने न तो श्रीमहाराज कहा, न श्रीमान् कहा, न विदेहराज कहा, कोई भी माननीय सम्बोधन नहीं। सीधे पिता के बराबर महापुरुष का तुम नाम ले रहे हो समाज में? श्रीमान महाराज कुछ नहीं?

कही जनक जसि अनुचित बानी

लक्ष्मणजी ने इशारा किया, सरकार! जो न मेरे राम का, सो न मेरे काम का। जो आपका सम्मान नहीं कर सकता, ये लक्ष्मण उसका कभी सम्मान नहीं करेगा। आपकी उपस्थिति में इन्होंने क्या कहा कि पृथ्वी में कोई वीर नहीं बचा? अरे! मैं सारे ब्रह्माण्ड को कच्चे घड़े की तरह तोड़कर फेंक सकता हूँ। भगवान् ने इशारा किया, इतना बल है तुममें? लक्ष्मणजी को लगा, कहीं ज्यादा तो नहीं बोल गया? लक्ष्मणजी सावधान हो गये,

सरकार! बल तो बिल्कुल नहीं है। भगवान् बोले, वाह! बल बिल्कुल नहीं और बात कर रहे हो ब्रह्माण्डों को फोड़ने की? जब बल नहीं है, तो कैसे फोड़ोगे? लक्ष्मणजी बोले, हम अपने बल पर थोड़े ही गरज रहे हैं। हमने जो भी कुछ कहा, सब कर सकते हैं पर अपने बल पर कुछ नहीं कर पायेंगे -

तोरौं छत्रक दंड जिमि तव प्रताप बल नाथ

नाथ! इस दास को तो आपकी कृपा का बल है। हममें क्या औकात, जो कुछ कर सकें? हम तो आपके बल पर गरज रहे हैं। सोई भगवान् प्रसन्न हो गये। ये अभिमान भी सार्थक है कि अपने मालिक का गौरव है। तो भगवान् कहते हैं, कालियनाग! अबतक तू फालतू था, मेरे चरणकमलों की मौहर जब तेरे फण पर लग गई, तू तो अब मेरा हो गया। इसलिये अब निश्चिन्त् होकर जा। कालियनाग प्रभु को मस्तक पर बैठाये जब बाहर निकला, व्रजवासियों ने देखा। मैया तो डर के मारे चीख पड़ी। कन्हैया ज़ोर से हंसकर बोले, मैया! बिल्कुल मत घबड़ाय!! ये तो मेरो चेला बन गयो! अब हाल ही कण्ठी दई है। सब व्रजवासी हक्के-बक्के देखते रह गये, कालियनाग प्रणाम करके रमणकद्वीप को चला गया।

दाऊजी ने दौड़कर गोविन्द को हृदय से लगा लिया। व्रजवासियों को लगा जैसे-मृतदेह में पुनः मानो प्राणों का संचार हो गया हो। सब व्रजवासी इतने प्रसन्न कि अंधेरा हो गया, घर जाने का ध्यान हीं नहीं रहा। गोविन्द से मिलने में ही मुग्ध रहे, अंत में रात में सब वहीं सोय गए। कालीदह पर ही विश्राम करने लगे। भगवान् को लगा, अब सबेरा होते ही गैयां घास खाने लग जाइंगी, व्रजवासी फल खाने लग जाइंगे; जबकि कालीदह के आसपास की घास-फल सब विषैले हैं, क्या करें? तो भगवदेच्छा से ही रात में आग लग गई, धू-धूकरके अग्नि की ज्वालायें व्रजवासियों को घेरती हुई आई। व्रजवासी सब चीखने-चिल्लाने लगे, कन्हैया भैया!

एष घोरतमो वह्निस्तावकान् ग्रसते हि नः

ये अग्नि की ज्वालायें तो हमें ग्रसित करती जा रही हैं बचाओ भैया!! कन्हैया बोले, सब आँख बंद कर लेओ। जैस-हीं व्रजवासियों ने नेत्र बंद किये, भगवान् सम्पूर्ण अग्नि का पान कर लिये। कोई महान् आश्चर्य नहीं है क्योंकि भगवान् के मुख से ही तो अग्नि का जन्म होता है। **'मुखादग्निरजायत'** (पुरुषसूक्त) अग्नि और ब्राह्मण। दोनों ही भगवान् के मुख हैं। इसलिये दोनों ही मुखों से भगवान् पाते हैं। अग्नि में **'स्वाहा'** और ब्राह्मणों के मुख में 'आ-हा'। दोनों से भगवान् तृप्त होते हैं।

शुकदेवजी कहते हैं, राजन्! अब वर्षा ऋतु आई। गोचारण करते हुए गोपाल के सिर पर मेघमण्डल छाया करते जाते हैं। वृन्दावन की तो विशेषता है - **'सर्वकाल सुखावहं'** - वृन्दावन हर ऋतु में, हर मौसम में परम सुखदायी है। बारहों-मास कभी भी वृन्दावन चले जाओ। शायद ही कोई दिन हो, जिस दिन पर्व न हो, कोई उत्सव न होय बारहों मास उत्सव चलते हैं। **'जग होरी बृज होरा'**। तो अब वर्षा के बाद शरद ऋतु आई। शरद का सौन्दर्य बड़ा ही अद्भुत होता है।

बरषा बिगत सरद रितु आई

बरसात के बाद शरद ऋतु। बरसात में तो पानी गंदा हो जाता है और शरद के आते ही एकदम स्वच्छ व निर्मल। सरोवर के कमल पुष्पित होने लगते हैं, खिलने लगते हैं।

इत्थं शरत्स्वच्छजलं पद्माकरसुगन्धिना ।
न्यविशद् वायुना वातं सगोगोपालकोऽच्युतः ॥ (भा. 10/21/1)

जलाशय स्वच्छ हो गये, कमल खिल गये, हरी-भरी हरियाली सारे व्रजमण्डल में छा गई और हरे-भरे उस दिव्य वातावरण के ऊपर माधव का मन इतना मुग्ध हुआ कि मुरली पर ऐसी प्यारी तान छेड़ी कि त्रैलोक्य उस तान से मोहित हो गया। गोपियाँ घरों में बैठी अपना काम कर रही थीं, पर जहाँ गोपियों के कान में गोविन्द की वंशी की तान पड़ी कि समस्त भाव भूल गई और सारी गोपियाँ गा उठीं, उसी का नाम है - वेणुगीत। वेणु का वैशिष्ट्य व्रजांगनाओं ने इस गीत गाया है। वंशी बजाते हुए मुरलीधर माधव कैसे लग रहे हैं, आईये गोपियों की दृष्टि से दर्शन करें।

बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं
बिभ्रद्वासः कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम् ।
रन्ध्रान्वेणोरधरसुधयापूरयन्गोपवृन्दैः
वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद्गीतकीर्तिः ॥ (भा. 10/21/5)

वन में वंशी बज रही है, घर में गोपियाँ सुन रही हैं। परन्तु वंशी के स्वरों में, माधव के प्रति इतना तादात्म्य हो जाता है कि वंशी वाला गोपियों को सामने खड़ा नज़र आने लगता है। गोपियों ने उस वंशी वाले की झांकी खींच दी। **'बर्हापीडं नटवरवपुः'** - बर्ह अर्थात् मयूर। मोर के पंख का मुकुट बना लिया है। संस्कृत में पंख को पक्ष कहते हैं। वस्तुतः भगवान् निष्पक्ष हैं, किसी का पक्ष नहीं लेते। सब उनके लिए बराबर लाडले हैं, प्यारे हैं। पर भगवान् पक्ष धारण करके लोगों से कहना चाहते हैं कि सब मुझे भले ही निष्पक्ष कहें, पर क्या करूँ, मैं भक्तों का पक्ष लिए बिना नहीं रह पाता। मानो इस प्रसंग में भगवान् अपनी पक्षधर्ता स्वीकार करते हैं। हनुमानजी महाराज से रामजी इसी बात को कहते हैं,

समदरसी मोहि कह सब कोऊ ।
सेवक प्रिय अनन्यगति सोऊ॥ (रामचरितमानस 4/3/4)

रामजी हनुमानजी से कहते हैं, हनुमान! मुझे सभी लोग समदर्शी कहते हैं। तो हनुमानजी ने कहा, तो क्या आप समदर्शी नहीं हैं? श्रीरामजी बोले, नहीं! समदर्शी भी हूँ। परन्तु क्या करूँ, जब मुझे अपने शरणापन्न भक्त दिखाई पड़ते हैं, तो मैं उनका पक्ष लिये बिना रह नहीं पाता। मुझे सेवक बहुत प्यारे हैं और सेवकों में भी कौन-सा अनन्यगति मेरे अतिरिक्त जिसकी दूसरी कोई गति नहीं है। मुझे ही अपना सब कुछ माने बैठा है, मुझपर आत्मसमर्पण किये बैठा है, उसका पक्ष लिये बिना मैं रह नहीं पाता। राजा का कानून सख्त हो, पर जो बहुत ही उसके लाडले हैं, उनके मामले में राजा भी थोड़े-से ढीले पड़ जाते हैं। रामजी महाराज तो फिर सर्वसमर्थ हैं, सारे संसार के मालिक हैं जो चाहें, सो करें। उन्हीं के बनाये सब कानून हैं। जब चाहे कानून में संशोधन कर दें। भगवान् खुले-आम कहते है, मुझे सेवक बहुत प्रिय हैं। इसलिए मैं उनका पक्ष लिये बिना रह नहीं पाता। अच्छा देखो! देवता असुरों से पीड़ित होकर भगवान् को अवतार लेने की प्रार्थना करते हैं। अवतार हेतु प्रार्थना करते समय देवताओं ने भगवान् को अपने पक्ष में मिलाने की पूरी कोशिश करते हैं।

जय जय सुरनायक जन सुखदायक प्रनतपाल भगवंता

'जय जय सुरनायक' कौन है? तो देवता ब्रह्माण्डनायक तो नहीं कह रहे, क्योंकि यदि ब्रह्माण्डनायक कहेंगे, तो भगवान् देवताओं के साथ-साथ असुरों के भी नायक बन बैठेंगे। ब्रह्माण्ड में तो सब आ गये। और सभी के मालिक यदि बन गये, तो फिर समदर्शी होने पर फिर हमारा पक्ष क्यों लेंगे? इसलिए ब्रह्माण्डनायक

नहीं, अपितु **'जय जय सुरनायक'** आप हम देवताओं के अधिनायक बनें और असुरों के न बनें। भगवान् प्राणीमात्र को परमसुख प्रदान करने वाले हैं, पर देवता कहते हैं **'जनसुखदायक'** जो आपके प्रणतजन भक्तजन हैं, बस उन्हीं को सुखी बनाओ, दुश्मन को ना बनाओ। भगवान् सारे विश्व के विश्वम्भर हैं, सबका लालन-पालन करने वाले हैं। और देवता क्या कहते हैं? **'प्रनतपाल'** सबको मत पालिये। जो प्रणत हैं, उन्हीं को पालिये। जो आपकी शरण में आये हैं, उन्हीं की रक्षा कीजिए। आप सर्व-सुख-सम्पन्न भगवान् हैं। अतः हे भगवन्ता! **'जय जय सुरनायक जन सुखदायक प्रनतपाल'** - इन शब्दों से लगता है कि देवता भगवान् की स्तुति करके भगवान् को अपने पक्ष में लाने का प्रयास कर रहे हैं। तो पक्ष को धारण करके आज भगवान् पक्षधर्ता स्वीकार करते हैं, इसलिए पक्ष (पंख) धारण किये हैं।

अब प्रश्न उठता है कि पंख तो चाहे चिड़िया का हो, चाहे काग का हो, चाहे मयूर का हो सभी को पक्ष कहा जाता है। तो भगवान् किसी और का पक्ष धारण क्यों नहीं करते? केवल मयूर का पंख ही क्यों धारण करते हैं? मोर में ऐसी क्या विशेषता है? वह इसलिए क्योंकि मयूर परमयोगी पक्षी माना गया है। आपने जानते हैं, अन्य जीव-जन्तुओं की तरह मोर को कभी विषय भोग करते नहीं पायेंगे। मोर तो केवल प्रेम पुलकित होकर पंख फैलाकर नाचता है। उसी समय मयूरी उसके आगे-पीछे घूमती है। जब नाचते-नाचते मोर प्रेमोन्मत्त हो जाता है, तो उसकी आँखो से अश्रुपात हो जाता है तथा मयूरी उन्हीं अश्रु-बिन्दुओं का लपककर पान कर लेती है और गर्भवती हो जाती है। इसलिए मोर परमयोगी पक्षी कहा जाता है। और कन्हैया हमारे योगीराज है, योगेश्वरेश्वर हैं। इसलिए भगवान् उसी मोरपंख को धारण करके बताना चाहतें हैं कि मैं भी रासविहार खूब करूँगा, चीरहरण भी करूँगा, गोपियों के बीच रमण भी करूँगा; पर मुझे कोई भोगी न समझना। मैं भी मोर के समान परमयोगी हूँ - यह संकेत करने के लिए ही भगवान् ने मयूरपिच्छ धारण किया है।

'बर्हापीडं नटवरवपुः' भगवान् का नटवर वपु है। **'नटेषु वरः नटवरः'** - नृत्यकला में नट बड़े निपुण होते हैं। आपने कभी देखा होगा कि नाचने में कभी नटलोग बाँस गाड़कर तथा रस्सी बाँधकर कलाबाजी दिखातें हैं। परन्तु ऐसा कोई नट नहीं देखा होगा, जो सर्प के फण पर नाचकर ठुमका मारे। इसलिए भगवान् नटवर हैं, **'नटेषु वरः श्रेष्ठः'**, नटों में श्रेष्ठ। अथवा **'नटवर वपुः'** संसार में दो लोग बहुत सजते हैं - एक तो नट और दूसरे वर। नट जब अपना कौशल दिखाने आता है, तो बड़ा छैल-छबीला बनकर, सज-धजकर आता है। और एक वर (दूल्हे राजा)। पुरुषों को जीवन में एक ही दिन सजना मिलता है और वे एक ही दिन में पूरी कसर निकाल देते हैं। तो वर का सजना-सँवरना भी प्रसिद्ध है। लेकिन श्रीभगवान् का सौन्दर्य-माधुर्य तो इन दोनों से दिव्यातिदिव्य है, इसलिए **'नटवर वपुः'**। भगवान् का वपु नट और वर - दोनों से श्रेष्ठ परमचिन्मयस्वरूप है। **'कर्णयोः कर्णिकारं'** दोनों कानों में कनेर के पुष्प हैं। पीले-पीले कर्णिका के पुष्प हैं। **'बिभ्रद्वासः कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम्'** भगवान् के श्यामवर्ण पर पीत-परिधान-पीताम्बर जो है, वह बिजली के समान चमक रहा है। वैजन्ती माला कण्ठ में लहरा रही है, पीताम्बर फहरा रहा है।

'रन्ध्रान्वेणोरधरसुधयापूरयन्गोपवृन्दैः' कन्हैया इस सुन्दर गोपवेश में वंशी बजाते हुए, गौओं को चराते हुए वृन्दारण्य में प्रवेश कर रहे हैं। ग्वाले निरन्तर उनकी कीर्ति का गान-बखान करते हुए जा रहे हैं। वेणु का अर्थ क्या है? **'वः ब्रह्मानन्दः इः विषयानन्दः तौ अणू यस्मात् स वेणुः'** जिस वेणु के दिव्य स्वर को सुनकर ब्रह्मानन्द और विषयानन्द - दोनों अणु की तरह तुच्छ हो जायें, वही वेणु। और ये वेणु केवली बाँस की वंशी

मात्र नहीं है, ये तो **'वंशस्तु भगवान् रुद्रः'** (अथर्ववेदोक्त श्रीकृष्णोपनिषद्)। हमारे भूतभावन भगवान् साम्बसदाशिवजी ही गोविन्द की सेवा के लिए वंशी के रूप में अवतरित हुए हैं।

भगवान् ने इस वंशी को इतना सम्मान दिया कि गोपियों को सबसे ज्यादा जलन इस वंशी से ही होती है। जब देखो! तब गोपियाँ इस वंशी को अपनी सौत मानती हैं और कहती हैं कि इस बांवरी वंशी ने हमारा सुख-चैन छीन लिया। अरे! हम सुबह-शाम कन्हैया के दर्शन को तरसती रहती हैं। और इस बांवरी को तो देखो! चौबीसों घण्टे उनके अधर-सुधा का पान करती रहती है, प्रतिपल उनके संग ही रहती है।

तो शिवस्वरूप वंशी की भगवान् बहुत सेवा करते हैं कि सारी प्रकृति इस वंशी के स्वर से प्रभावित हो जाती है। वंशी की तान बज रही है, तो स्वर्ग में भी ध्वनि जा रही है। स्वर्ग में रम्भादि अप्सराएँ ता-ता-थैया करके नाच रही थी, सो वंशी का स्वर सुनते ही नृत्य भूल गई। वंशी की तान उनके मन को ऐसा खींचती है कि स्वर-ताल का ध्यान ही नहीं रहता। ताल-लय सब छूट जाती है। यमुनाजी की जो धारायें निरन्तर प्रवाहित होती हैं, वे भी वंशी के स्वरों को सुनकर ठहर जाती हैं। रुककर पाषाणवत् ठहरकर वंशी को सुनती हैं। और भगवान् की वंशी के प्रताप से गिरिराज गोवर्धननाथ के पाषाणखण्ड भी द्रवीभूत होने लगते हैं। आज जल का धर्म पाषाण में और पाषाण का धर्म जल में आता हुआ प्रतीत होता है। ये सब गोविन्द की वेणु का चमत्कार है।

भजन - बांसुरी बजाये आज रंग से मुरारी

इस प्रकार भगवान् ने वेणुवादन किया और त्रैलोक्य को व्यामोहित कर दिया। शुकदेव भगवान् कहते हैं,

इति वेणुरवं राजन् सर्वभूतमनोहरम्

गोपियाँ सब प्रकार से वेणु की बड़ी महिमा गा रही हैं। पुनः आगे की कथा का वर्णन करते हुए शुकदेवजी कहते हैं, परीक्षित! शरद के बाद हेमन्त ऋतु आयी। हेमन्त ऋतु के प्रथम मास अर्थात् मार्गशीर्ष में गोपियों ने ब्रह्ममुहूर्त में जागकर कात्यायनी माँ की पूजा प्रारम्भ कर दी। व्रज की छोटी-छोटी कन्यायें मिलकर सुबह 4 बजे यमुनाजी में नहाने आ जाती हैं और नहा-धोकर कात्यायनी माँ की पूजा करके मन्त्र जपती हैं।

कात्यायनि महामाये महायोगिन्यधीश्वरि।
नन्दगोपसुतं देवि पतिं मे कुरु ते नमः ॥ (भा. 10/22/4)

इस मन्त्र के द्वारा माँ कात्यायनी से बारम्बार यही प्रार्थना किया करती थी कि श्रीकृष्ण ही हमें पतिरूप में प्राप्त हों। पर इनमें कमी है, चूंकि 4 बजे यमुनाजी में नहाती थी, इसलिए सभी वस्त्र त्यागकर (निर्वस्त्र होकर) स्नान करती थी। तो भगवान् को लगा कि ये अनुचित हो रहा है। निर्वस्त्र होकर किसी नदी-जलाशय में स्नान करने से जल के देवता वरुण का अनादर होता है, अपमान होता है। इसलिए भगवान् ने यह लीला की।

एक दिन भगवान् गोपियों के पीछे-पीछे चले गये। ज्यों ही वस्त्र त्याग करके गोपियाँ यमुनाजी में प्रविष्ट हुई कि भगवान् सबके वस्त्र लेकर कदम्ब पर चढ़ गये। नहाने के बाद जब कपड़े देखे तो सब गायब। अरे! राम! राम! कहाँ गये? एक गोपी बोली, मुझे लगता है कि बन्दर ले गया। ऊपर झांकने लगी। वृक्ष पर देखा तो वानर तो कोई नहीं देखा, वरन् वानराधीश बैठे हुए देखे। अरे! ये कन्हैया की करतूत है। गोपियाँ सब समझ गई और हाथ जोड़कर पुकार उठीं।

श्यामसुन्दर ते दास्यः करवाम तवोदितम् ।
देहि वासांसि धर्मज्ञ नो चेद् राज्ञे ब्रुवामहे ॥ (भा. 10/22/15)

हे घनश्याम! हे प्रभो! हम सब आपकी दासी हैं। आप इतने बड़े धर्मात्मा हो, फिर भी ऐसा व्यवहार करते हो। हमारे वस्त्र तुरन्त वापस करो। ज्यादा तंग करोगे तो बाबा से शिकायत करेंगी, तुम्हारी खबर लेंगें। भगवान् बोले, एक तरफ हमारी दासी बन रही हो और दूसरी ओर बाबा की धौंस दे रही हो। अरे! एक बात करो। तुम्हें राजा से शिकायत करनी है, जाओ राजा से शिकायत कर आओ। जो होगा, सो देखा जाएगा। गोपियाँ आपस में बोली, अरे! बाबा से शिकायत करने जायेंगी कैसे? सब विचारकर बोली, नहीं कन्हैया! हमें कोई शिकायत नहीं करनी। तुम कृपा करके हमारे वस्त्र लौटा दो। भगवान् बोले, स्वयं आकर ले लो। गोपियों ने कहा कि इस अवस्था में स्वयं आकर वस्त्र कैसे ले लें? भगवान् ने कहा, क्यों क्या हो गया? जैसे गई थी, वैसे आ जाओ। गोपियों ने कहा कि उस समय आप नहीं थे। अब आप खड़े तो हम बाहर कैसे निकलें?

भगवान् बोले, यही तुम्हारा भ्रम है। मैं तो पहले भी था और अब भी हूँ। ऐसी कौन-सी जगह नहीं है, जहाँ मेरी सत्ता नही है। ये बोध होते ही गोपियाँ तुरन्त पुलकित होकर बाहर आयीं और भगवान् ने उनके वस्त्र लौटा दिये। वस्त्र लौटाकर भगवान् गोपियों से बोले, हम तुम्हारी आराधना का हेतु जानते हैं। चिन्ता न करना, आगामी शरदपूर्णिमा में तुम्हारे समस्त हेतु अवश्य पूर्ण होंगें। इसका नाम चीरहरण है। जीवात्मा और परमात्मा के बीच में जो माया का आवरण है, जबतक वह आवरणस्वरूप चीर उतरेगा नहीं तबतक जीव को भगवान् के वास्तविक स्वरूप का बोध नहीं होगा। और जबतक बोध नहीं होगा, तबतक महारास में प्रवेश नहीं होता। इसलिए चीरहरण पहले किया, तदनन्तर महारास में प्रवेश गोपियों को दिया।

गोवर्धन पूजा :—

अब मैया ने दीपावली के दिन प्रातःकाल उठते ही इन्द्रपूजा के लिये तरह-तरह के पकवान बनाने प्रारम्भ कर दिये। कन्हैया आय गए भोग लगायवे, मैया! या सामान कूं सब तें पैलां मैं खाऊँगो! मैया बोली, अरे लाला! जब जै-जै ह्वै जायगी, तब पावे कूं मिलेगो चल। थोड़ी देर और खेल!! कन्हैया बोले, मैया! ये जै-जै कौन-सी बलाय है? मैया बोली, बावरे! मो तें मत पूछ, जाकें अपने बाबा तें पूछ। कन्हैया मुँह लटकाये बाबा के पास आये, बाबा-बाबा!

कथ्यतां मे पितः कोऽयं सम्भ्रमो व उपागतः ।
किं फलं कस्य चोद्देशः केन वा साध्यते मखः ॥ (भा. 10/24/3)

बाबा! आज अपने घर में ये कौन की जय-जय होयगी? देख तो! मैया कितने पकवान बना रही है और चाखवे कूं नांय देय? बाबा समझाने लगे, देख बेटा!

पर्जन्यो भगवानिन्द्रो मेघास्तस्यात्ममूर्तयः ।
तेऽभिवर्षन्ति भूतानां प्रीणनं जीवनं पयः ॥ (भा. 10/24/8)

कन्हैया बेटा! हम हर वर्ष दीपावली के दिन इन्द्र की पूजा कियो करें क्योंकि इन्द्र प्रसन्न ह्वै जायें, तो पानी बरसावें। अब पानी बरसेगो, तब ही हरी घास होयगी। हरी-हरी घास होगी, तो गैयां खायके हमें खूब मनन दूध देइंगी। और कहुँ सूखा पड़ गयो, तो भूखन मरिंगे कि नांय? कन्हैया बोले, अच्छा! तो पूजा न होयगी, तो इन्द्र पानीऊं न बरसावेगो? अच्छा बाबा! तो आधे ग्वाला पूजा कर दें और आधे न करें, तो का पूजा करवे वारन के खेतन में ही इन्द्र पानी बरसावेगो? अब नन्दबाबा चक्कर में पड़ गये, कन्हैया! है तू सात-बरस को नेक-सो छोरा! पर बातें इतनी टेढ़ी-टेढ़ी करे कि मोय बुड्ढे की खोपड़ी गरम ह्वै जाय। अब मैं जे तर्क-वितर्क ज्यादा न करूँ, तू अपने मन की बोल तेरे मन में का है? कन्हैया बोले, तो सुनो बाबा! मैं बड़े-बड़े महात्मन को संग किया है, बड़े-बड़े महात्मा सब एक ही बात कहें -

कर्मणा जायते जन्तुः कर्मणैव विलीयते ।
सुखं दुःखं भयं क्षेमं कर्मणैवाभिपद्यते ॥ (भा. 10/24/13)

जो प्राणी जैसो कर्म करै, वा कर्म के अनुसार परमात्मा वा कूं वैसो फल देय। भगवान् को तूं भण्डारी की तरह समझ लेओ। जैसी सामग्री भण्डारीजी कूं देओगे, भण्डारीजी वैसो ही भंडारो बना के दै दिंगे। और देओ-लेओ कछु नांय। भंडारीजी सें कहो, आज खीर-मालपुआ को भंडारो पवाओय तो वह कहाँ ते पवाय दिंगे? ऐसे ही बाबा! जैसो जीव कर्म करकें परमात्मा कूं दैवे, परमात्मा वैसो ही वाकूं फल बनायकर कें देवे। जब करिंगे-धरिंगे कछु नांय, तो ईश्वर फल काय को दैवेगो? इसलिये बाबा! हमें श्रेष्ठ कर्म करनो चाहिये और हमारे प्रत्यक्ष देवता **'गोविप्रानलपर्वतान्'** हमारे प्रत्यक्ष देवता ये गाय हैं, ब्राह्मण हैं, अग्नि हैं और ये गिरिराज गोवर्धन महाराज हैं। देखो बाबा! एक बार मेरे गोवर्धननाथ की पूजा करकें देख लेओ, फ़ायदा होय तो दुबारा करियो। बाबा ने सोचा, बरसन बीत गये इन्द्र की पूजा करते-करते, या साल तेरे ही देवता की पूजा सही। बोल का खायगो तेरो देवता? कन्हैया बोले, और पूजा की सामग्री की उतनी आवश्यकता नांय पड़े, पर खायवे-पीवे में कौनऊ कसर नांय होनो चाइये। छप्पन-प्रकार के व्यंजन चाइये, मेरे देवता कूं खावे के तांई। नन्दबाबा ने आवाज़ लगाई, व्रजवासियों से कहा, भैया! अबकी बार गोवर्धन की पूजा होयगी। बढ़िया-बढ़िया पकवान बनाओ। लै-लै मिठाई यां सजा-सजाकर थाली सब आय गये। व्रजवासी पूड़ी, कचौरी, पकोड़ी, मंगोड़ी, रसगुल्ला, रसमलाई, लड्डू, जलेबी, कलाकन्द, बर्फी, इमरती, रबड़ी। ढेरों सारी मिठाईयां पकवानों के भर-भरकर थाल लेकर चल पड़े सब व्रजवासी।

गोवर्धन की तलहटी में जा पहुँचे। व्रजवासी बोले, भैया कन्हैया! कां हैं तेरो देवता? भगवान् बोले, इतने बड़े सात कोस के नांय दीख रए? व्रजवासी बोले, अरे भगवान्! इतनो बड़ो देवता? कैसे करिंगे या की पूजा? भगवान् बोले, हम खड़े तो हैं पुजारी! चलो जाओ, स्नान कराओ। भर-भरकर बड़े-बड़े मटका पानी के ला-लाकर गिरावे लगे गिरिराज बाबा के ऊपर, हज़ारन-कलश पानी पटक दियो। हांफते हुए बोले, लाला! तेरे देवता पर हज़ारन-कलश पानी पटक दियो, या की मूंछऊ गीली नांय भई? ऐसे कबतक नहवावें? अरे! हमारे शालिग्राम भगवान् तो सौ-ग्राम पानी में ही डुबकी लगाय लेत हैं। भगवान् बोले, अब घबड़ाओ मत! देवता तें प्रार्थना करो, तो वह कछु प्रबन्ध करैगोय ध्यान करो। सब आँख बंद करके बोले, गिरिराज बाबा! कछु प्रबन्ध करो, नहीं तो पानी लायवे तो बड़ो कठिन है। भगवान् ने मन-ही-मन गंगाजी का ध्यान किया, सो मानसीगंगा की धारा प्रकट ह्वै गई।

व्रजवासी देखतें ही हक्के-बक्के रए गये, कन्हैया! गजब ह्वै गयो भैया? ये तो कितनी निर्मल जलधारा प्रकट ह्वै गई? **'हर हर गंगे! हर हर गंगे!'** प्रेम तें स्नान करायवे लगे और बोले, कन्हैया! मान गए तेरो देवता बहुत चमत्कारी है। प्रेम तें स्नान करायो, गन्धक-अक्षत-पुष्प तें पूजन कियो, पकवान सब परोस कें धर दिये, भोग लगाओ भैया! परदा डारो। कन्हैया बोले, मेरे देवता कूं परदा की जरूरत नांय। वह चौरे में भोग लगाय लैगो। बस सब ध्यान करो! सब आँख बंद करकें ध्यान करवे लगे। अब एक रूप में भगवान् नन्दनन्दन बने खड़े रहे और दूसरे रूप में गोवर्धन के शिखर पर चार-भुजा पसारकर बोले, भोग लाओ व्रजवासियों! नेत्र खोलकर जो भगवान् के इस दिव्यरूप को देखा, तो होश उड़ गये व्रजवासियों के। भैया कन्हैया! येई है का देवता? भगवान् बोले, हाँ हाँ येई है मेरो देवता! व्रजवासियों ने कहा, भैया! गजब ह्वै गयो? वा इन्द्र की पूजा

करते-करते मेरी सफेद दाढ़ी ह्वै गई? दारी के ने आजतक सूरत तक नांय दिखाई? धन्य है जे देवता, जो एक दिना की पूजा में ही माँग-माँगकर पावे लग गयो। उठा-उठाकर थार देते गये व्रजवासी और गिरिराज-बाबा एक बार में सब **'गोविन्दाय नमो नमः'** पाते चले गये। मधुमंगल बोलो, भैया! ये देवता कितने दिना को भूखो बैठो ह्वै? हम कूं भी परसादी मिलैगी, के सबरो ही अकेलो डकार जायगो? कन्हैया बोले, सब कूं मिलैगो! ध्यान तें भोग लगाओ।

मैया देख-देखकर बोलीं, लाला! एक बात तो बता, बड़ी देर तें देख रही हूँ। मोकूं तेरी शकल और तेरे देवता की शकल एक-सी दीखे? कन्हैया हंसकर बोले, मैया! जा गैया को दूध मैं पिऊं, वाई गैया के दूध कूं देवता कूं पिवाऊँ। सो एक ही गैया को दूध पीते-पीते हम दोनों एक ही शकल के ह्वै गये। मैया बोली, अरे लाला! जैसोई तूं, बैसो ही तेरो देवता। और कोई कमी न रहनो चाइये लाला!। कन्हैया बोले, मैया! बस एक कमी रए गई, बाकी तो सब ठीक है। मेरे देवता की सात-कोस की परिक्रमा जरूर लगानी पड़े, तब मेरो देवता प्रसन्न होयगो। ठीक है लाला चलो! अब आगे कन्हैया, पीछे व्रजवासी झूमते हुए गाते-बजाते गोवर्धननाथ की परिक्रमा लगा रहे हैं। चलिये हम और आप भी चलते हैं।

भजन - अरे मैं तो गोवर्धन कूं जाऊँ मेरे वीर, नांय मानें मेरो मनुआं ...

भगवान् ने किसी भी देवता का अभिमान रहने नहीं दिया। भगवान् ने आज देवराज इन्द्र की पूजा का विरोध करते हुये, उसपर प्रतिबन्ध लगवाकर अपने गिरिराज गोवर्धन की पूजा करा दी। स्वयं पुजारी बने, पूजा करवा रहे हैं और स्वयं पूज्य बनकर पुज भी रहे हैं। सभी व्रजवासी भगवान् के इस अद्भुत-रूप को देखकर बड़े प्रसन्न-प्रमुदित हुये। पर इन्द्र ने जब अपने सेवक से पूछा, भाई! प्रतिवर्ष हमारी दीपावली को पूजा हुआ करती थी, तो दीपावली निकल गई, प्रतिपदा भी चली गई, द्वितीया जाने वाली है, अबतक हमारी पूजा कैसे नहीं हुई? पता लगाओ। सेवक ने आकर जब व्रज का वातावरण देखा और गोवर्धननाथ की जय-जयकार सुनी, तो दौड़कर इन्द्र से बोला, सरकार! आपका पत्ता साफ़। वहाँ व्रज में आपका नाम लेने वाला कोई नहीं बचा। सब गोवर्धननाथ की जय बोल रहे हैं और ये सब श्रीकृष्ण ने किया है। अब तो इन्द्र क्रोध में आगबबूला हो गया और इतना विवेकशून्य हो गया कि भगवान् को ही गालियाँ देने लगा,

वाचालं बालिशं स्तब्धमज्ञं पण्डितमानिनम् ।
कृष्णं मर्त्यमुपाश्रित्य गोपा मे चक्रुरप्रियम् ॥ (भा. 10/25/5)

इन गँवार ग्वालों ने उस वाचाल कृष्ण की बातों में आकर मुझ देवताओं के राजा का अपमान किया। इसका फल इन्हें भोगना पड़ेगा। सांवर्तक मेघों को बुलाकर आदेश दिया, जाओ! व्रजप्रदेश में प्रलय मचा दो! सब मेघमण्डल व्रजमण्डल के ऊपर गडगड़ाने लगे, भयंकर बरसात होने लगी। अतिवृष्टि से सब व्रजवासी कर्षित हो उठे। गोविन्द के पास दौड़े-दौड़े आये,

गोपा गोप्यश्च शीतार्ता गोविन्दं शरणं ययु

गोपी-ग्वाल शीत से पीड़ित होकर गोविन्द की शरण में आये, गोविन्द! हमारी रक्षा करो?

त्रातुमर्हसि देवान्नः कुपिताद् भक्तवत्सल

हे भक्तवत्सल प्रभो! हे गोकुलनाथ! हमें इन्द्र के कोप से बचाओ। देखो! देवताओं का राजा इन्द्र नाराज़ हो गया है। शरण में आये व्रजवासियों को देखकर भगवान् विचार करने लगे, मेरी प्रतिज्ञा है कि जो एक बार मेरी

शरण में आकर कह दे कि प्रभो! हम तुम्हारे हैं; तो मैं समस्त प्राणियों से उसे अभय प्रदान कर देता हूँ। ये व्रजवासी मेरे हैं, मेरी शरण में हैं, मुझे ही अपना नाथ मानते हैं; मैं ही एकमात्र इनका जीवनधन हूँ। इसलिये अब इनकी रक्षा में मुझे देर नहीं करना चाहिये।

तस्मान्मच्छरणं गोष्ठं मन्नाथं मत्परिग्रहम् ।
गोपाये स्वात्मयोगेन सोऽयं मे व्रत आहितः ॥ (भा. 10/25/18)

मुझे अपने व्रत का पालन करने के लिये आज इन व्रजवासियों की रक्षा करना परमावश्यक हो गया है। भगवान् बोले, व्रजवासियों! बिल्कुल मत घबड़ाओ! जा देवता ने अपनी पूजा करवाई है, वही देवता हमारी रक्षा भी करैगो। चलो सब मेरे साथ! सारे व्रजवासियों को साथ में लेकर भगवान् गोवर्धन की तलहटी पहुँच गये। व्रजवासी बोले, लाला! अब बोल का करें? भगवान् बोले, नामकीर्तन करो! बस देवता कूं प्रसन्न करो, सो देवता तुरन्त कछु उपाय बतावेगो। सब व्रजवासी हाथ जोड़कर कीर्तन करने लगे,

कीर्तन - गिरिराज धरण प्रभु तेरी शरण

भगवान् बोले, व्रजवासियों! नेक शान्त है जाओ। मेरे देवता ने मेरे कान में आकर कछु कह दियो। मेरो देवता मेरे कान में आकर कह गयो, भैया! ज्यादा पानी बरस रयो होय, तो सब मिलकर मोकूं उठाकर छाता बनाय लेओ। व्रजवासी बोले, हे भगवान्! ये सात कोस को इतनो लम्बो-चौड़ो देवता छाता कैसे बन जायगो? भगवान् बोले, जब मेरे देवता ने मेरे कान में कई है, तो बन ही जायगो। चलो! एक बार प्रयत्न करकें तो देखो। सबने मिलकर प्रयास किया और भगवान् ने तो बड़ी सहजता से,

इत्युक्त्वैकेन हस्तेन कृत्वा गोवर्धनाचलम् ।
दधार लीलया कृष्णश्छत्राकमिव बालकः ॥ (भा. 10/25/19)

जैसे बरसात में छोटे-छोटे बच्चे कुकरमुत्ता उखाड़कर छाता बनाकर खेलते हैं, ऐसे ही कन्हैया ने सात कोस के गोवर्धन को सात वर्ष की अवस्था में सात दिन और सात रात तक धारण करके रखा। गिरि को धारण करने से प्रभु का नाम आज 'गिरिधारी' हो गया।

सारे व्रजवासी भी अपनो-अपनो कंधा और डण्डा लगाय खड़े हैं और सबको यही प्रतीत हो रहा है कि हम सबने मिलकर उठा राख्यो है। व्रजवासी बोले, लाला! हमें अबतक खबर नांय थी कि आजकल हम इतने पहलवान है गये? नैकूं आशा न थी कि जो उठ जावेगो। पर गजब है गयो भैया! सात कोस को पहाड़ इतने आराम सें उठ गयो। कन्हैया बोले, हम तो पहले ही कहो करें ते, ये माखन बेंचवो बंद करो। गौसेवा करें और गोरस को आनन्द लैं, तब शक्ति आयगी। तो देखो व्रजवासियों! कितनो गोरस खवाय दियो मैंने कि आज ताकत काम में आय गई। व्रजवासी बोले, हाँ कन्हैया! है तो सब तेरे माखन को चमत्कार। तू माखन न खवातो, तो हमारे अन्दर बल कहाँ तें आतो? पर शनैः-शनैः सात-दिन जब पूरे होने को आये, तो व्रजवासी बोले, लाला! एक बात बता। हमारो तो या कंधा थक जाय, तो वा कंधा कूं लगाय लऊं? वा भी कंधा थक जाय, तो नेक सिर को सहारो लगाय कें खड़े है जायें और जब पूरेई थक जायें, तो नेक डण्डा के सहारे ही अपने हाथ-पैरऊ ठीक कर लयें। पर भैया! हम तो कूं देख रये हैं कि सात दिना को एक अंगुरिया लगायें खड़ो है। अबतक तेरे हाथ में या अंगुरिया में दर्द नांय भयो का? देख! ज्यादां मेहनत मत करियो, नहीं तो परेशान है जायगो। एक काम कर, तू थोड़ी देर आराम कर लै। चिंता मत करियो! हम इतने हैं, सब मिलकर सँभाल लेंगें।

भगवान् बोले, मेरे बिना अकेले सँभाल सकोगे? व्रजवासी बोले, दारी के! तू का सोचे कि तेरी अंगुरिया पेई सब धरो है का? अरे हम सब इतने डण्डा और कंधा लगाय खड़े हैं, वह सब बेकार है का? अरे जा! जाकर आराम कर। कन्हैया बोले, तो ठीक है! तो तुमई सँभालो अब ई कूं। तनिक अंगुरिया नीचें करी कि सबके डण्डा चटाचट उड़ गये, अरे कन्हैया! सँभालियो! सँभालियो! सबके पसीना छूट गये। भगवान् ने ज्यों-का-त्यों हांथ कर लिया। व्रजवासी बोले, गजब है गयो। या की अंगुरिया नेकई नीची भई कि सबके डण्डा चटाचट बोल गये? और तनिकऊ नीची और कर देतो, तो अपने तो कंधाई चटाचट बोल जाते आज। तो क्यों भैया या की अंगुरिया में इतनी ताकत है कि सबरो पहार यई ने उठा राख्यो है। अच्छा! तो एक-एक करके निकारो अपने-अपने कंधा बाहर। सबने कंधा निकाल दिये, पर जहाँ के तहाँ गोवर्धन भगवान् की मात्र एक कनिष्ठिका पर स्थिर रहा।

अब तो व्रजवासियन के होश उड़ गये, अरे भैया! हम तो सोच रहे थे कि सबने मिल-जुलकर उठा राख्यो है। पर अब बात समझ में आई। हम तो फालतू के ही माटी के मदूकरा बने लगे हैं। या छोरा ने तो अकेले ही सब उठा राख्यो है। नन्दबाबा तें बोले, बाबा बाबा!! तोए हमारी सौगन्ध है, सच्ची बोलियो। ये छोरा तेरोई है का? नन्दबाबा बोले, च्यों भैया! तुम कैसी बात करौ? मेरो छोरा नांय तो कौन को छोरा? व्रजवासी बोले, बाबा! बुरौ मत मानियो! हमारे खानदान में एक-तें-एक पहलवान भये, पर या छोरा जैसो आज तक नांय सुनो हमनें?

क्व सप्तहायनो बालः क्व महाद्रिविधारणम् ।
ततो नो जायते शङ्का व्रजनाथ तवात्मजे ॥ (भा. 10/26/14)

हे व्रजनाथ! हमें तो शंका है रही है, ये छोरा तेरो नांय। ये तो साक्षात्-भगवान् है या कोई बहुत बड़ो देवता है; ये साधारण मानव नांय। नन्दबाबा घबड़ाय गये, ये मेरे लाला कूं जबरजस्ती भगवान् बनाय रहे हैं। हाथ जोड़कर बोले, व्रजवासियों! एक रहस्य की बात आज बताऊँ। एक दिन गर्गाचार्यजी मेरे घर आये। मैंने उनसे प्रार्थना करी कि मेरे छोरा कूं नाम रख देओ, तो बड़ी कृपा होयगी। गर्गाचार्यजी ने मेरे लाला के बारे में बड़ी विचित्र-विचित्र बातें कहीं, हर युग में जन्म होयो करे। ये भगवान् के समान गुण वारो है। बड़े-बड़े संकट तें तेरो लाला तुम सबन की रक्षा करैगो। भैया! बाबा की एक-एक बात बिल्कुल पक्की निकरी। परन्तु मैंने बस एक ही बात समझी है कि मैं दिन-रात जो नारायण को भजन करूँ और भजन करकें हमेशा एक ही बात माँगू कि हे नारायण! मेरे छोरा की रक्षा करियो! मेरे लाला पर कृपा करियो। सो मेरे भजन के प्रताप से नारायण आजकल मेरे छोरा पर कछु ज्यादा ही प्रसन्न हैं। सो मेरे लाला के ऊपर नारायण की विशेष कृपा है। जे भगवान्-वगवान् नांय, भगवान् की कृपा या के ऊपर विशेष है। यों कहकर व्रजवासियन कूं नन्दबाबा समझाय दिये। पर व्रजवासियन के मन में तो जा बात बैठ गई कि नन्द को छोरा कोनऊ साधारण नांय।

इन्द्र ने आकर देखा कि व्रज का क्या हाल है? सात दिन मूसलाधार प्रलयंकारी मेघों ने बरसात की है। परन्तु जब व्रज में आकर देखा, गिरधारी बने गोविन्द का दर्शन किया, तो इन्द्र के होश उड़ गये। मेघों से कहा, भाई! पानी कहाँ गया? मेघ बोले, सरकार! जितना था, सब उड़ेल दिया। इन्द्र बोले, भाग जाओ यहाँ से! सब मेघमण्डल पलायन कर गये, आकाश साफ हो गया। भगवान् ने कहा, धूप निकल आई है व्रजवासियों! अब तुम भी सब बाहर निकलो। देखो-देखो! आकाश साफ हो गया, पानी बंद हो गया। सब व्रजवासी अपनी-अपनी सामग्री ले-लेंकर बाहर निकले।

भगवानपि तं शैलं स्वस्थाने पूर्ववत्प्रभुः ।
पश्यतां सर्वभूतानां स्थापयामास लीलया ॥ (भा. 10/25/28)

खेल-खेल में जैसे प्रभु ने गोवर्धन उठाया था, उसी प्रकार से बड़ी सहजता से यथास्थान भगवान् ने ज्यों-का-त्यों रख दिया। सब व्रजवासी अपने घर को लौटे। पर सबके मन में एक बात आती है कि कन्हैया म्हारो भगवान् है। बेचारे दूर-दूर हाथ जोड़कर जाय रहे हैं। कन्हैया ने मुड़कर देखा, क्यों भाई व्रजवासियों! सब-के-सब हाथ काय कूं जोड़ रहे हो? व्रजवासी कान पकड़वे लगे, कन्हैया भैया! आज तक तो कूं नन्द को छोरा समझकर तेरे साथ चाहे जैसे बोल रए, चाहे जैसे खेल रए, चाहे जैसो व्यवहार कर रहे हैं। हम तो सखा समझकर सब बातें कर रहे हैं, पर आज पतो चली कि तू तो भगवान् है। अब आज के बाद कबऊं नांय खेलवे बारे। ना जानें भगवान् को का अपराध बन जाये हम तें? अबतक की गलती माफ करियो भैया! आज के बाद कबऊं नांय खेलवे बारे। कन्हैया को लगा, ये तो सब गड़बड़ हो गया। मैं इन ग्वाल वालों में गुप्त रहकर खेलने आया था। इन्होंने भगवान् मान लिया तो सबय गड़बड़ हो जायेगा? हंसकर प्रभु बोले, ऐ व्रजवासियों! तुमने भगवान् कैसें समझ लियो? व्रजवासी बोले, भैया! भगवान् नांय तो कौन है? तूने पैदा होवे की देर ना भई कि पूतना मार डारी। हमने सोची, ऐसे ही तो कूं लैकें भाग रही होयगी, सो ठेकर खायकें मर गई। जैसें-तैसें मन को समझाय लियो। तैनें एक लात में गाड़ीयऊ उड़ाय दई? हमने सोची आंधी-तूफान में ऐंसे ही उड़ गई होयगी। तृणावर्त मारो, बड़े-बड़े असुर तैनें चुटकियन में मार दिये; हम बार-बार अपने मन कूं जैसें-तैसें समझाय लियो करते। पर आज जब तेरी एक अंगुरिया पर सात कोस को गोवर्धन देख्यो, तो लाला! अब तो मन में कऊं कसर नांय रई, तू निश्चित भगवान् है। जे काम भगवान् के अलावा कोई नांय कर सकै।

कन्हैया बोले, व्रजवासियों! बावरे मत बनो। तुम्हें एक बात को पतो ना हैं। मेरे गोवर्धन देवता ने मोकूं एक मन्त्र दियो है। वा मन्त्र को चमत्कार ऐसो है कि यदि मैं वा मन्त्र कूं जप लऊं, तो वा समय मोकूं जो भी देखेगो, वा की सबरी ताकत मो मेंई आ जाइगी। तो मैंने गोवर्धन उठाकर वह मन्त्र पढ़नो प्रारम्भ कियो और तुम सब-के-सब मोकूं टुकुर-टुकुर देखवे लग गये, सो तुम सबन की ताकत मो में आई और मैंने अकेले ने गोवर्धन उठाय लियो। भोले-भाले व्रजवासी सब कन्हैया की बात मान गये। लपक करके कन्हैया को हृदय से लगाय लिये, अरे कन्हैया भैया! तूने खूब बताई ये बात? नई तां आज तो हम सचमुच घबराय कि तो कूं भगवानई मान लए होते। इस प्रकार भगवान् अपनी गुणवत्ता कूं छुपाय लेते हैं। कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा के दिन गोवर्धननाथ की पूजा भई, द्वितीया कूं सबने भैयादूज को त्यौहार मनायो और तृतीया से नवमीं पर्यन्त (सात-दिन तक) इन्द्र ने पानी बरसायो। दशमी तिथि में एकान्त अवसर पाकर इन्द्र ने आकर भगवान् के चरणों में प्रणाम किया और दशमी तिथि के दिन दस श्लोकों से भगवान् की दिव्य स्तुति करी।

विशुद्धसत्त्वं तव धाम शान्तं तपोमयं ध्वस्तरजस्तमस्कम् ।
मायामयोऽयं गुणसम्प्रवाहो न विद्यते तेऽग्रहणानुबन्धः ॥ (भा. 10/27/4)

हे प्रभु! आप परमविशुद्ध-सत्त्व में स्थित परमपुरुष भगवान् नारायण हैं। तमोगुण, रजोगुण आपको छू भी नहीं सकते। ये सारा त्रिगुणात्मक प्रपंच आपकी माया के द्वारा प्रवाहित है। ऐसे हे प्रभु! हम आपको प्रणाम करते हैं। आप ही जगत के पिता हो, गुरु हो, सारे जगत के मालिक हो। मेरे-जैसे जगदीश-मानियों का मानभंग करने के लिये आप अपनी स्वेच्छा से वपु-धारण करके प्रकट भये हो। प्रभो! मेरे अपराध को क्षमा करें, मुझपर

ऐसा अनुग्रह करें कि मेरी बुद्धि दोबारा इस प्रकार की न हो। मैं आपकी भगवत्ता को भूल न जाऊँ और आपकी भगवत्ता को पहचानते हुये दोबारा अभिमानग्रस्त न होऊँ - ऐसा अनुग्रह करें। भगवान् हंसकर बोले, हे महेन्द्र! मैं जिससे बहुत प्रेम करता हूँ, उसी का अभिमान तोड़ता हूँ - ये मेरा स्वभाव है। जो अभिमान से ग्रसित होकर मुझ परमेश्वर के प्रभाव को पहचानते नहीं, उनके अभिमान को तोड़कर उन्हें शुद्ध मार्ग दिखाने के लिये ही मेरे क्रोध में भी उनपर कृपा छुपी रहती है।

मामैश्वर्यश्रीमदान्धो दण्डपाणिं न पश्यति ।
तं भ्रंशयामि सम्पद्भ्यो यस्य चेच्छाम्यनुग्रहम् ॥ (भा. 10/27/16)

जिसके ऊपर मैं अनुग्रह करना चाहता हूँ, उसी का अभिमान तोड़ता हूँ। जाओ देवराज! तुम्हारा कल्याण हो। अभिमान से रहित होकर अपने अधिकार को स्वीकार करो। सुरभि गाय ने भी दुग्धाभिषेक करके भगवान् की सुन्दर-मधुर स्तुति करी और कहा, प्रभो! हम गायों के नाथ तो आप ही हो। इन्द्र ने और गौमाता कामधेनु ने मिलकर आज भगवान् को 'गोविन्द' नाम दिया।

अहं इन्द्रो हि देवानां त्वं गवां इन्द्रतां गतः ।
गोविन्द इति लोके त्वां गास्यन्ति भुवि मानवाः ॥

इन्द्र क्षमायाचना करते हुए प्रस्थान कर गये। दशमी को इन्द्र गये और अब दूसरे दिन एकादशी आई। नन्दबाबा एकादशी का निर्जला व्रत रखते हैं,

एकादश्यां निराहारः समभ्यर्च्य जनार्दनम् ।
स्नातुं नन्दस्तु कालिन्द्या द्वादश्यां जलमाविशत् ॥ (भा. 10/28/1)

नन्दबाबा एकादशी के दिन बिल्कुल निराहार रहते हैं और उस दिन भगवान् की विशेष पूजा करते हैं। सहस्त्र तुलसीदल से अपने जनार्दनप्रभु की अर्चना कर रहे हैं। पूजा-पाठ करके एकादशी का व्रत तो आनन्द से किया, परन्तु रात के 12 बजे नन्दबाबा को भ्रम हो गया कि ब्रह्मवेला हो गई। सो अर्धरात्रि में ही स्नान करने पहुँच गये। अर्धरात्रि में जलाशयों में स्नान वर्जित है क्योंकि जलाधिदेव वरुण उस समय विश्राम करते हैं। पर जैसे ही जल में प्रवेश किया कि वरुण के दूत नन्दबाबा को पकड़कर वरुणलोक ले गये। एक-दो ग्वाला जो उनके संग में गये थे, उन्होंने बाबा को यमुनाजी में डुबकी मारते तो देखा; पर जब बड़ी देर तक बाहर नहीं निकले, तो बेचारे डर गये दौड़े-दौड़े आये, अरे कन्हैया! तेरे बाबा यमुनाजी में डूब गये। सुनते ही भगवान् दौड़े और यमुनाजी में मार डुबकी जब भगवान् यमुनाजी के रास्ते वरुणलोक पहुँचे, तो देखा कि वहाँ नन्दबाबा बंधे पड़े थे और वरुण सिंहासन पर डटे थे। जो वरुण ने प्रभु का दर्शन किया कि तुरन्त खड़े होकर स्वागत किया,

अद्य मे निभृतो देहोऽद्यैवार्थोऽधिगतः प्रभो ।
त्वत्पादभाजो भगवन्नवापुः पारमध्वनः ॥ (भा. 10/28/5)

महाराज! हम देहधारियों का जीवन धन्य हो गया, जो आपके पादपद्म हमारे इस लोक में पधारे। कहिये प्रभु! ये अचानक आपका आना कैसे हुआ? भगवान् बोले, वाह! हमारी महिमा गा रहे हो और हमारे पिताजी को ही बाँधकर घर में पटक रखा है? जो सुना कि नन्दबाबा श्रीकृष्ण के पिता है, वरुण तो बेचारे घबड़ा गये। माफी माँगने लगे, क्षमा करना सरकार! अनजाने में हमारे मूर्ख इन दूतों ने बड़ा-भारी अपराध कर दिया।

अजानता मामकेन मूढेनाकार्यवेदिना ।
आनीतोऽयं तव पिता तद् भवान् क्षन्तुमर्हति ॥ (भा. 10/28/7)

हमारे अपराध को क्षमा करें प्रभु! अनजाने में भूल हो गई। प्रभु बोले, कोई बात नहीं। जो होना था, हो गया; अब बाबा को मुक्त करो!! वरुण ने तुरन्त नन्दबाबा को बन्धनमुक्त किया। बार-बार माफी माँगते हुए विदा किया। भगवान् अपने बाबा को लेकर बाहर निकले। तबतक तो वृन्दावन में हल्ला मच चुका था, तमाम व्रजवासी आ गये। जैसे ही नन्दबाबा बाहर निकले कि सबरे ग्वाला घेरकर खड़े हो गये, अरे बाबा! डुबकी मारकर चले गये, इतनी लम्बी समाधि लगाय लई जल में। नन्दबाबा बोले, मत पूछो व्रजवासियों! आज तो गजब ह्वै गयो। भैया! हमें का खबर कि का समय है? हम तो आधी रात कोई चले आए देखो। परन्तु जैसे ही डुबकी मारी कि तमाम हट्टे-कट्टे छोरा आये और मोकूं दबोचकर लै गये। भीतर पकड़ के लै गये और न जाने कहाँ लै जाय कर मोकूं बाँधकर पटक दियो और उन्हें एक बड़ो भारी राजा। मैं कछू नांय बोल सकूं। पर ना जाने कहाँ तें घूमतो भयो मेरो कन्हैया पहुँच गयो। ना जाने, कन्हैया से वाकी का रिश्तेदारी निकर परी कि सबरे या के पांवन में लोट-पोट ह्वै गये। उन सबन को राजा मेरे कन्हैया कूं हाथ पकड़कर, सिंहासन पर बैठाकर बड़ी-बड़ी दण्डवत् करवे लग्यो, बड़ी-बड़ी महिमा गावे लग्यो। सबरे याकूं हाथ जोड़-जोड़कर दण्डवत् कर रहे थे और मेरो लाला नेक-नेक से हाथन तें सबन कूं आशीर्वाद देतो गयो। मैं देख-देख कें बावरो ह्वै गयो, हे भगवान्! मेरे कन्हैया की का रिश्तेदारी या तें? मोय तो बाँधकर पटक राख्यो, ऐ छोरा की देखें कैसी पूजा करें सब। पर मेरे कन्हैया ने जैसे ही परिचय दियो कि मैं या को पिता हूँ, सबके होश उड़ गये और सबरे मेरे पांवन में लोट-पोट ह्वै गये और बड़े आदर के साथ मोकूं विदा कियो। फिर सबने माफी माँगी मों तें।

अब तो सबरे ग्वाला फिर कानाफूसी करवे लगे, भैया! कछू ह्वै जाये!! अब हमें तो पक्को विश्वास ह्वै गयो कि अपनो कन्हैया साक्षात् भगवान् है। देख तो कैसे-कैसे देवता या के पांव में गिरें? एकान्त में सबरे ग्वाला आकर बोले, कन्हैया! तोय आज हमारी ही सौगन्ध है, तू झूठ मत बोलियो। तू सच्ची-सच्ची बोल, तू भगवान् है क्या? कन्हैया फिर बड़ी ज़ोर से हंसे, व्रजवासियों! तुम काय कूं मेरे हाथ धोकर पीछे पड़ गये हो? जबरदस्ती भगवान् बनाये डोल रए हो? व्रजवासी बोले, देख कन्हैया! तू भगवान् होय, तो चुपचाप हमें बताय दे, हम काऊ तें नांय कहिंगे। भगवान् बोले, अच्छा! एक बात बताओ व्रजवासियों! यदि मैं भगवान् भयो, तो तुम का करौगे? व्रजवासी बोले, हमें कछू नांय लैनो-दैनो! तू बनो रए भगवान। हमारी तो एकई छोटी-सी इच्छा है कि तू सचमुच भगवान् है, तो तेरो वैकुण्ठ कैसो है? बस एक बार अपनो वैकुण्ठ हमें दिखाय द्वे और हमें कछू नांय चाहिये। भगवान् बोले, तो सुनो! मैं भगवान् हूँ के नांय या झगड़ेई में मत पड़ो। तुम्हें वैकुण्ठ देखनो है, वह तो मैं दिखा सकूं। आओ! मेरे संग। सबन कूं लेकर भगवान् ब्रह्मकुण्ड आये और बोले, व्रजवासियों! जो वैकुण्ठ चलवो चाहे, वह या कुण्ड में डुबकी मारे। और इतना सुनते ही सबरे ग्वाला वा ब्रह्मकुण्ड में डुबकी लगाय गये और जो डुबकी मारी कि

ते तु ब्रह्महृदं नीता मग्नाः कृष्णेन चोद्धृताः ।
ददृशुर्ब्रह्मणो लोकं यत्राक्रूरोऽध्यगात् पुरा ॥ (भा. 10/28/16)

जहाँ डुबकी मारी कि सबके सब डुबकी लगाते ही दिव्य वैकुण्ठ में पहुँच गये। जहाँ पर सब-के-सब चतुर्भजरूपधारी नारायण के ही सदृश्य हैं। जो यमुना के भीतर अक्रूरजी को दिव्यलोक का दर्शन कराया था,

वही भगवान् ने सारे व्रजवासियों को आज करा दिया। व्रजवासी आपस में कानाफूसी करवे लगे, च्यौं रे! अपन कहाँ आय गये? यहाँ तो देखो! चारों तरफ सब चार-चार हाथों वाले डोल रए हैं? एक बोलो, मालूम पड़े कि वैकुण्ठ में खड़े हैं। अरे! तो येई वैकुण्ठ है? तो या वैकुण्ठ में अपनो कन्हैया कौन-सो है, ये तो पतो लगाओ? बोले, चलो! या तें पूछें!! एक भगवत्पार्षद के पास जाकर बोले, भैयाजी! राम-राम! उसने इशारा किया - **'मौनमास्ताम्'**।

व्रजवासी बोले, राम-राम! ये कैसो वैकुण्ठ है? कोऊ-काऊ तें 'राम-राम' ई ना करै। दूसरो बोलो, भैया! या अपनी भाषा न समझ पा रह्यो होयगो। हर क्षेत्र में अलग-अलग भाषा-व्यवहार, अलग-अलग शिष्टाचार के तरीके होइंगे। सब जगह 'राम-राम' थोड़े ही चले! कहीं 'राधे-राधे', तो कहीं 'बम-भोले', तो कहीं 'जय सियाराम', तो कहीं 'हाय-हाय', 'बाय-बाय' ... जैसा देश, वैसी परम्परा और भाषा। व्रजवासी बोले, तो अपनी भाषा यहाँ कौन समझैगो? भैया! जब अपनी भाषा ही कोई न समझेगो, तो अपन यहाँ कहाँ घूमें? अपने कन्हैया कूं कहाँ ढूँढ़ें? एक बोलो, वो देखो! वह सिंहासन पर बड़े भारी नाग के ऊपर कौन बैठ्यो है? या की शक्ल-सूरत तो बिल्कुल अपने कन्हैया से मिल रही है। दूसरो बोलो, मैं पक्को कह सकूं कि ये ही अपनो कन्हैया है, चलो चलकर बात करें। जैसे ही दौड़े कि आगे सैनिकों ने रोक दिये, सावधान! यहाँ से आगे कोई नहीं जा सकता। स्तुति-पूजन ... जो भी कुछ करना, यहीं से कीजिये। इस सीमा से आगे कोई नहीं जा सकता। व्रजवासी बिचारे दूर से ही हाथ जोड़कर दण्डवत् प्रणाम करवे लगे। तबतक आसपास का देखते हैं कि चतुरानन ब्रह्मा भी खड़े हैं, पंचानन त्रिपुरारि भी खड़े हैं, अनेकानेक देवता बड़े-बड़े छन्दों और वैदिक मन्त्रों से भगवान् का स्तुतिगान कर रहे हैं। व्रजवासी सुन-सुनकर देख-देखकर बांवरे ह्वै गये, हे भगवान्! ये तो बड़ो विचित्र वैकुण्ठ है? अबतक तो चार-हाथ वाले दीख रये थे, अब तो चार-चार, पाँच-पाँच मुख वाले दीखने लगे। बड़े ठाठ हैं अपने कन्हैया के। यहाँ तो देख-देखकर महान् आश्चर्य सबको हो रहा है।

नन्दादयस्तु तं दृष्ट्वा परमानन्दनिर्वृताः ।
कृष्णं च तत्रच्छन्दोभिः स्तूयमानं सुविस्मिताः ॥ (भा. 10/28/17)

भगवान् श्रीकृष्ण की इस वैदिक मन्त्रों से देवताओं के द्वारा की गई स्तुति को देख-सुनकर नन्दादि व्रजवासियों के आनन्द का पारावार नहीं रहा, आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। परन्तु प्रभु का ये दिव्य-भव्य-ऐश्वर्य देख-देखकर व्रजवासी थोड़ा घबड़ा गये कि ना जाने, कहाँ फंस गये भैया? कोऊ-काऊ तें बात ही ना कर सकै? या की भाषा हम समझ ही ना सकैं? ये का बोल रहे हैं, ना हमारे पल्ले पड़ रही है और हम जो पूछ्वो चाहें, वह इनके पल्ले नांय पड़ रही? आँख बंद करके बोले, कन्हैया! भैया! तेरे खूब ठाठ देख लिये, अब ना चइये तेरो बैकुण्ठ। तू तो वापिस हमें वृन्दावन बुलाय ले। जैसे ही वृन्दावन का स्मरण किया, तो जिस हद में डुबकी मारी थी; उसी में से तुरन्त उछलकर सब बाहर निकले और बाहर निकलकर देखा-हाथ में वंशी लिये कन्हैया मंद-मंद मुस्कराय रहे हैं।

सबरे ग्वाला दौड़कर कन्हैया से लिपट गये, भैया कन्हैया! तैने तो आज गजब कर दियो। लाला! आज जीवन में पहली बार ऐसो दिव्य वैकुण्ठ देख्यो, चार मुँह वाले, चार हाथ वाले, अरे! अबतक सुन राख्ये थे आज आँखन तें देखे। कन्हैया बोले, कैसो लगो वैकुण्ठ? व्रजवासी बोले, भैया! का कैवो वा वैकुण्ठ को? आनन्द-ही-आनन्द है। तेरे तो बड़े गजब के ठाठ हैं। जब हज़ार फन वाले के ऊपर सोवे, तो सौ फन वाले कूं

नाथवे में का देर लग्ये? पर एक बात जरूर करनी पड़ेगी, कन्हैया! तू बुरो मत मानियो। तेरो वैकुण्ठ चाए जितनो सुन्दर होय, पर हमारे वृन्दावन जैसो आनन्द नांय। सबसे बड़ी कसर तो ये है कि कोऊ काऊ तें 'राम-राम' ही नांय करे, तेरे बगल में कोई जा नांय सकै, तो से कोई ठीक से बात ही ना कर सकै, तेरे साथ बैठ ना सके, तेरे साथ खा नांय सकै ... वा वैकुण्ठ को हम का करिंगे। भैया! वा तें अच्छो तो वृन्दावन लाख-गुनो बढ़िया है। तेरे साथ खूब तो कबड्डी खेलें, खूब कुश्ती लड़ैं, प्रेम तें तेरे साथ खावें, तेरे साथ खेलें-कूदें और जो आनन्द तेरे साथ खेलवे-कूंदवे को या व्रज में मिलै, वह वैकुण्ठ में कहाँ धरो है? तू अपनो वैकुण्ठ अपने पास धर राख। हमारो तो वृन्दावन लाख-गुनो बढ़िया है।

महा रासलीला :-

भगवान् के उस दिव्य ऐश्वर्यपूर्णस्वरूप का दर्शन करने के बाद अब शुकदेवजी भगवान् के दिव्य महारास में प्रवेश करते हैं। आइये! हम और आप भी अपने मन को भगवान् के महारास में समर्पित करें।

भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः ।
वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः ॥ (भा. 10/29/1)

शरद्पूर्णिमा यह रात्रि की मल्लिकादिक पुष्पों से बड़ी विभूषित हो रही है, चाँदनी को शोभा चारों तरफ छिटक रही है, पूर्णिमा तो वैसे ही सुन्दर होती है। उस शारदीय सौन्दर्य को देखकर आज माधव के मन में व्रजवामाओं से विहार करने का संकल्प उठा। वैसे तो भगवती श्रुति ने परमात्मा को बिना मन का कहा है और जबतक मन नहीं, तबतक संकल्प-विकल्प नहीं। इच्छायें तो मन में ही होती हैं। आज भगवान् के भीतर मन जगा और मन में संकल्प उठा। संकल्प भी व्रजवामाओं से विहार करने का जागृत हो गया। अबतक तो गोपियाँ हीं गोविन्द से मिलने के लिये लालायित रहती थीं, पर आज तो चमत्कार हो गया। गोपियाँ अपने-अपने घर का काम कर रही हैं और गोविन्द के मन में उनसे मिलने की उत्कण्ठा जाग रही है। ये गोपियों के प्रेम की सफलता है। अपनी योगमाया कृपाशक्ति किशोरी श्रीराधारानीजी का स्मरण करके भगवान् ने आज बड़ी प्यारी वंशी बजाई। गोपियों की याद आई, तो गोपियों को बुलाने के लिये भगवान् ने वंशी बजाई। वंशी की तान जहाँ गोपियों के कान में पड़ी, सब देह-भान भूलकर सभी व्रजवामायें गोविन्द की वंशी के साथ खिंची चली आईं।

निशम्य गीतं तदनङ्गवर्धनं व्रजस्त्रियः कृष्णगृहीतमानसाः ।
आजग्मुरन्योन्यमलक्षितोद्यमाः स यत्र कान्तो जवलोलकुण्डलाः ॥ (भा. 10/29/4)

उस मधुर-गीत को जब गोपियों ने सुना ... वंशी तो बजी दो बार है, पर दोनों का परिणाम भिन्न-भिन्न है। पहले जब वंशी बजी, तो उस समय श्रीशुकदेवजी ने संकेत दिया। **'इति वेणुरवं राजन् सर्वभूत मनोहरम्'** प्राणीमात्र भगवान् के उस वेणुरव से मोहित हो गये। पाषाण भी द्रविभूत हो गये, यमुना की धारा भी स्तब्ध हो गई, सारा त्रिभुवन मोहित हो गया। पर आज ऐसा नहीं हुआ। रासविहारी ने जब महारास करने के लिये वंशी बजाई, तो **'जगौ कलं वामदृशां मनोहरम्'** इस वंशी को केवल व्रज की गोपियों ने सुना और व्रजगोपियों में भी जिनका चीरहरण भगवान् कर चुके हैं और जिन्हें महारास में आने का वचन दे चुके हैं, उन्हीं गोपियों ने वंशी सुनी। ये चीरहरण क्या है? **समाधान** - परमात्मा के दिव्य रस के रसास्वादन का अधिकार है - चीरहरण। चीरहरण हुये बिना, महारास में गति नहीं। जबतक जीवात्मा और परमात्मा के बीच में ये जो सूक्ष्म-आवरण (माया) है, जबतक ये हरि न चुरावें, तबतक जीव उस दिव्यरस का अधिकारी नहीं बनता।

घूंघट के पट खोल, तोए पीय मिलैंगे

प्रिया-प्रीतम के बीच में ये घूंघट का जो मायारूप पट पड़ा है, इसी का हरण करते हैं हरि क्योंकि घूंघट का पट भी तो प्रियतम ही उघारते हैं। तो,

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई ।
जानत तुमहिं तुम्हहिं होइ जाई ॥ (रामचरितमानस 2/127/2)

वे जिसे अपना रस देना चाहते हैं, उसी की आँखों से ये माया का घूंघट उठा देते हैं। और **'ब्रह्मवेद् ब्रह्मैव भवति'** (मुण्डकोपनिषद् 3/2/9) जहाँ उस ब्रह्म का अपरोक्ष साक्षात्कार हुआ, उस दिव्यरस का एक बार रसास्वादन किया कि वह महारास का परमपात्र बन गया।

नूतनजलधररुचये गोपवधूटीदुकूलचौराय ।
तस्मै कृष्णाय नमः संसारमहीरुहस्यवीजाय ॥

नैयायिक मंगलाचरण करके इस चीरहरण का ध्यान कर रहे हैं, गोपवधूटियों के दुकूल की चोरी करने वाले श्रीकृष्ण को हमारा नमस्कार है। धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज इसका बड़ा सुन्दर अर्थ करते हैं,

(गोपाः जीवाः तेषां वधूट्यः बुद्धयः तासां आवरणानि अज्ञानानि)

गोपरूपी जीव की बुद्धिरूपी गोपी में अज्ञानरूपी जो आवरण दुकूल पड़ा है, उस अज्ञान के आवरण का हरण करने वाले हैं - श्रीहरि। चीरहरणलीला अर्थात् आवरणभंग लीला। एक बार जिसका आवरण हरण हो जाये, तो वह फिर जीव संसार में भले ही रहे, पर संसार की माया उसे प्रभावित नहीं कर सकती। माया में रहकर भी माया से जो निर्लिप्त रहे, उसका नाम महात्मा है। तो गोपियाँ अब संसार में तो हैं, संसार के व्यवहार भी कर रही हैं; परन्तु सब कुछ करती हुई भी महात्मा हैं। महात्मा का स्वरूप है, जो तिनके की तरह संसार को त्याग दे, तनिक भी किसी वस्तु में आसक्ति न रहे, वह महात्मा है। आज गोपियाँ महात्मा ही तो बन गई और इसीलिये तो कन्हैया की वंशी जहाँ कान में पड़ी कि सारे जगत् व्यवहार को तिनके की तरह त्याग करके ही गोपियाँ चल पड़ीं।

प्रथम सुने भागवत भक्त मुख भगवद्वाणी । द्वितीय अराधै भक्ति व्यास नवभाँति वखानी॥
तृतीय करे गुरु समझ दक्ष सर्वज्ञ रसीलो॥ चौथे होय विरक्त वसै वनराज जसीलौ ॥
पंचम भूले देह सधि छठे भावना रास की । साते पावै रीति रस श्रीस्वामी हरिदास की ॥

भगवतरसिकजी कहते हैं, पंचम भूमिका में साधक जब देह का भान भी भूल जाता है, तब परमात्मा के दिव्यमहारास का अधिकारी बनता है। आज गोपियों की वही स्थिति हो गई। वंशी सुनी सब भाग खड़ी हुई। एक गोपी गैया दुह रही थी और जहाँ वंशी सुनी कि दोहनी को वहीं पटका और सीधी भागी चली गई। एक गोपी चूल्हे पर बैठी हलवा बना रही थी, जहाँ वंशी सुनी तो करछली हाथ में ही लिये चली गई और कड़ाही चूल्हे पर ही चढाई छोड़ दी। एक गोपी अलंकार धारण कर रई थी, तो नाक की नथ कान में ही लटकाय के चली गई। एक गोपी कपड़े पहिन रही थी, तो उल्टे-सीधे कपड़े पहनकर चली गई। एक गोपी अंगराग लेपन कर रही थी। जहाँ वंशी कान में पड़ी, तो जो अंगराग तो जहाँ लगा रखा था, उसे वैसा ही लगा छोड़ा। आँख में काजल लगा रही थी और वंशी सुनाई पड़ी और दूसरी आँख में बिना काजल लगाये ही चली गई।

लिम्पन्त्यः प्रमृजन्त्योऽन्या अञ्जन्त्यः काश्च लोचने ।
व्यत्यस्तवस्त्राभरणाः काश्चित् कृष्णान्तिकं ययुः ॥
ता वार्यमाणाः पतिभिः पितृभिर्भ्रातृबन्धुभिः ।
गोविन्दापहृतात्मानो न न्यवर्तन्त मोहिताः ॥ (भा. 10/29/7-8)

गोविन्द से मिलने के लिये जब गोपियाँ भागीं, तो बहुतों ने रोकने की चेष्टा की पर रुक न सकीं। गंगा की धारा गोमुख से जब निकलती है, तो अपने प्रियतम-प्रेमास्पद सागर को पाकर ही विश्राम लेती है। छोटा-मोटा पत्थर यदि रुकावट बने, तो अपने वेग से बहा ले जाती है। और बड़ा-पहाड़ यदि सामने आ जाये, तो अपनी दिशा बदलकर चली जाती है। परन्तु लक्ष्य सागर को पाना है, किसी से टकराना नहीं। उसी प्रकार व्रजवामायें दौड़ती-भागती चली जा रही हैं, किसी के रोके रुकती नहीं क्योंकि वंशी की तान सुनाकर गोविन्द ने सबके मन को अपहत कर लिया। एक गोपी को तो पकड़कर उसके पति ने कमरे में कैद कर ही दिया, ताला लगाकर किवाड़ बंद कर दिये। अब तो बेचारी बाध्य हो गई, आज सब गोपियाँ वंशी की तान पर दौड़ी जाइंगी और गोविन्द का दर्शन पाइंगी। उनका अंग-संग उन्हें प्राप्त होगा। धिक्कार है मुझे कि इस शरीर के प्रतिबन्ध में इस कमरे में ही कैद बनी रह गई? तुरन्त उसने पद्मासन लगाया और ध्यान में गोविन्द का चिन्तन करती-करती,

जहुर्गुणमयं देहं सद्यः प्रक्षीणवन्धना

उसने देहाग्नि में तुरन्त अपने त्रिगुणात्मक देह को त्यागा और दिव्य वपु धारण करके प्रभु के पास सर्वप्रथम पहुँच गई। परीक्षित बोले, भगवन्! इतनी ऊँची स्थिति गोपियों की कैसे हो गई? शुकदेव बाबा कहते हैं, परीक्षित! ये गोपियाँ कोई साधारण-सी स्त्रियां थोड़े-ही हैं? बड़े-बड़े वीतराग संत जो दण्डकारण्य में विचरण कर रहे थे, वे श्रीरामभद्र के रूप को देखकर मोहित हो गये।[1] वे सब सिद्धकोटि के संत तो व्रज की गोपियाँ बनकर आये हैं और इस दिव्यमहारास के रस का रसास्वादन करने के लिये प्रतीक्षारत थे, सो आज किसी के रोके कैसे रुक सकते हैं? **'गोभिः इन्द्रियैः कृष्णरसं पिबति इति गोपीः'** जो निरन्तर ही कृष्णरस का ही पान करें, ये वही गोपियाँ हैं। गोपियों के पहुँचते ही भगवान् ने सबका स्वागत किया।

स्वागतं वो महाभागाः प्रियं किं करवाणि वः ।
व्रजस्यानामयं कच्चिद् ब्रूतागमनकारणम् ॥ (भा. 10/29/18)

आओ-आओ देवियों! आपका स्वागत है। गोपियाँ गद्गद् हो गई कि वंशी बजाकर बुलाया और कितने प्यार से स्वागत कर रहे हैं। और जैसे ही अगला प्रश्न किया कि **'ब्रूतागमनकारणम्'** आ तो गई स्वागत है, पर आई क्यों? इसका कारण तो बताइये! कैसे आना हुआ? अब तो गोपियाँ बेचारीं मुँह लटकाकर खड़ी हो गई। वंशी बजाकर निमन्त्रण इन्होंने दिया और अब ये ही पूछ रहे हैं कि क्यों आई? अरे! जिसने बुलाया हो, उसे पता होना चाहिये कि हमने क्यों बुलाया? बेचारी गोपियाँ क्या उत्तर दें? मौन कुछ नहीं बोलीं। भगवान् आज इनके हृदयगत प्रेम को प्रकट करवाना चाहते हैं कि ये अपने मुँह से अपने प्रेम को प्रकट करके कहें, परन्तु किसी को भी अपने हृदय के प्रेम को स्पष्ट रूप से तो कहना बड़े साहस की बात है। तो सब गोपियाँ मौन खड़ी हैं और भगवान् आज पीछे पड़े हैं कि आज इनके मुँह से कहलवाकर ही छोड़ूँगा।

1. तदा महर्षयः सर्वे दण्डकारण्य वासिनः। दृष्ट्वा रामं हरिं तत्र भोक्तुमैच्छन् सुविग्रहैः॥ ते सर्वेस्त्रीत्वमापन्नाः समुद्भूताश्च गोकुले। हरिं सम्प्राप्यकामेन ततो मुक्ताभवार्णवात्॥ (वंशीधरी में पद्मपुराण-उत्तरखण्ड का वचन)

भगवान् बोले, अच्छा-अच्छा! समझ गया। आज शरदपूर्णिमा है। तो रात की चाँदनी देखने आई होगी वन में? बहुत अच्छा! देखना चाहिये। परन्तु साथ-साथ ध्यान भी रखना चाहिये कि ये जंगल वाली बात है। इस जंगल में हिंसक जानवर घूम रहे होंगे, तो चाँदनी देखते-देखते आपको कहीं कोई शेर-भालू न देख ले? इसलिये अब देख लिया तो जाओ,

दृष्टं वनं कुसुमितं राकेशकररञ्जितम्

चन्द्रमा की चाँदनी बहुत अच्छी तरह देख ली होगी, अब जाओ। गोपियों ने सिर हिला दिया, हम ये चाँदनी देखने नहीं आये। बहुत बार देखी है ये चाँदनी। भगवान् ने फिर पूछा, अच्छा तो फिर क्यों आई हो? ओ हो! लगता है कि अपने पतिदेव से झगड़ा हो गया होगा, सो भाग आई? ऐ देवियों! चाहे जितना महाभारत हो जाये घर में, पर कोई भी स्त्री को घर छोड़कर नहीं भागना चाहिये। पता है? स्त्रियों का परमधर्म पति की सेवा करना है। स्त्री का पति ही परमात्मा होता है। पति-परमात्मा की सेवा करो, घर में जाओ। पति भले ही क्रोधी-निर्धन हों, कोढ़ी हों, कैसे भी हों **'पतिः स्त्रीभिर्न हातव्यो'**। गोपियों ने सिर हिला दिया, महाराज! हमारा किसी से कोई झगड़ा नहीं हुआ है। भगवान् ने फिर पूछा, व्रज पर कोई संकट आया नहीं, चाँदनी देखने आई नहीं, परिवार में झगड़ा हुआ नहीं; तो क्या मुझसे मिलने आई हो? मेरे प्रेम में खिची चली आई हो, तो एक बात और सुन लो कि ये प्रेम तभी तक अच्छा रहता है, जबतक दूरी बनी रहे। **'अतिपरिचयादवज्ञा'** जब अति परिचय हो जाता है, निकटता बढने लगती है, तो मन के अन्दर थोड़ा दोषदर्शन भी होने लगते हैं और प्रेम में खटाई भी पडने लगती है। अरे! मुझसे यदि तुम्हारा प्रेम है ही, तो उसके लिये यहाँ जंगल में मुझसे मिलने की क्या जरूरत है? मेरी चर्चायें आपस में एक-दूसरे को सुनाओ, आँख बंद करके मेरे स्वरूप का ध्यान लगाओ। मैं सुबह-शाम जब गईयां चराने जाता हूँ, तब मेरा दर्शन कर लिया करो।

श्रवणाद् दर्शनाद् ध्यानान्मयि भावोऽनुकीर्तनात् ।
न तथा सन्निकर्षेण प्रतियात ततो गृहान् ॥ (भा. 10/29/27)

देवियों! लोकमर्यादा का थोड़ा ध्यान रखो, कितनी अपकीर्ति होगी तुम्हारी। घर जाओ, घर में ही बैठकर मेरा ध्यान लगाओ। लोकलाज का कुछ तो ख्याल करो। जब भगवान् ने स्पष्ट कह दिया कि जाओ! तब गोपियों के सारे मनोरथ भंग हो गये। चिन्ता के मारे नीचे सिर झुकाये पैर के अंगूठे से धरती को कुरेदने लगी। अन्त में आपस में बोलीं, बहिन! हम जबसे आई हैं, तब से ये खड़े-खड़े प्रवचन ही दे रहे हैं। यदि इन्हें ठीक से जवाब नहीं मिला, तो ये ऐसे ही खड़े-खड़े उपदेश देते रहेंगे। तब सब गोपियों ने मिलकर मधुर गीत गाया जिसका नाम है - प्रणयगीत। भगवान् ने दस श्लोकों में प्रश्न किया, तो गोपियों ने इस प्रणयगीत में ग्यारह-श्लोकों के द्वारा जवाब दिया और भगवान् की बोलती बंद कर दी। अद्भुत प्रेम गोपियों ने अपने इस गीत में प्रकट किया है, इसलिये इसका नाम प्रणयगीत है। सब गोपियाँ मिलकर बोलीं,

मैवं विभोऽर्हति भवान् गदितुं नृशंसं सन्त्यज्य सर्वविषयांस्तव पादमूलम् ।
भक्ता भजस्व दुरवग्रह मा त्यजास्मान् देवो यथाऽऽदिपुरुषो भजते मुमुक्षून् ॥ (भा. 10/29/31)

हे विभो! हे प्रभो! हमारा इस प्रकार से तो परित्याग न करो? हम कैसी-कैसी आशायें लिये आपकी वंशी की तान को सुनकर दीवानी दौड़ी चली आई और आप हो कि जो आते ही हमें तमाम प्रकार का उपदेश देने लग गये? क्या हम उपदेश सुनने आई थीं? पहले तो ये बताओ कि तुम्हें ये उपदेश देने का अधिकार है क्या? तुम

अहीर के छोरा, हम गंवार ग्वालिनी। न तो तुम्हें उपदेश देने का अधिकार है और न हम सुनना चाहती हैं। अरे! उपदेश उसे दिया जाता है, जो उपदेश सुनना चाह रहा हो? क्या जबरदस्ती पकड़कर बैठाकर किसी को प्रवचन सुनाया जाता है? हम सुनना नहीं चाहतीं और जबसे आई हैं, तबसे आप ये ही प्रवचन सुनाते जा रहे हैं? इसलिये ऐसा मत बोलो। हम ये सब सुनने नहीं आई हैं। प्रभो! हम तो आपको भोग लगाने आई हैं।

भक्ता भजस्व दुरवग्रह मा त्यजास्मान

भात का भोग लगाने आई हैं। भक्त और भात में बहुत सामंज़स्य है। ये जो भात शब्द है, वह भक्त शब्द से ही बना है। इसीलिये भगवान् को जैसे भक्त प्यारे हैं, ऐसे ही भगवान् को भात भी बहुत प्यारा है। जहाँ भी भगवान् को पवाने वाली बात आती है, तो प्राय: भात की चर्चा भोजन में जरूर आती है। रामजी महाराज भी जब चक्रवर्तीजी की गोद में बैठकर पा रहे थे, तो क्या था?

भोजन करत चपल चित इत उत अवसरु पाइ ।
भाजि चले किलकत मुख दधि ओदन लपटाइ ॥ (रामचरितमानस 1/203)

'दधि ओदन' अर्थात् दधि-भात पा रहे हैं। तो भगवान् को भात बहुत पसंद है। ऐसे ही भक्त भी बहुत पसंद हैं। भात कैसे बनता है? सबसे पहले तो धान घर में आवे, फिर धान में तमाम मूसल मारकर, उसका छिलका उतारा जावे। तब चावल अलग होगा, मूसलों के प्रहार से छिलका उतारकर चावल निकाला जाता है। फिर उस चावल को खौलते हुए पानी में डाला जाता है, थोड़ी देर तक खौलाया जाता है और इतना खौल जाये कि उठाकर जब हम उसे मसलें तो बिल्कुल भी कणिका उसमें दिखाई न पड़े, थोड़ी भी कठोरता भीतर न रह जाये, हाथ पर रखते ही एकदम पिस जाये, कठोरता का कण भी कहीं न रह जाये; तब वह शुद्ध भात बन जाता है।

ऐसे ही जीव भगवान् का भात है। उसे भक्त (भात) बनने में बहुत समय लगेगा। पहले तो ये माया में चिपका बैठा है। जैसे धान में मूसल मारो, छिलका उतारो, चावल निकालो। उसी प्रकार पहले तो हमें संसार के थप्पड़ खाते-खाते किसी सद्गुरु की अनुकम्पा हो जाये, वह शरण में स्वीकार कर लें तब शनै:-शनै: विवेकपूर्वक इसका छिलका उतारा जाता है। ये माया का छिलका जब उतर जाता है, जीव शुद्धस्वरूप में हो जाता है; तब भगवान् के पाने योग्य अब चावल बनता है। अब चावल तो बन गया, छिलका तो उतर गया; परन्तु थोड़ा अब इसे खौलने की आवश्यकता है। चावल खूब खौलेगा, तब भात बनेगा।

तो जीव जब परमात्मा के विरह की आग में तपता है, हे प्रभो! कैसे मिलोगे? कब मिलोगे? कहाँ मिलोगे? और निरन्तर उस प्रभु के विरह की आग भीतर धधकती रहे और उस विरहाग्नि में तड़पता रहे, तब जाकर इतना तड़पता है कि इसके भीतर की कठोरता बिल्कुल समाप्त हो जाती है। जबतक थोड़ा भी कण है, तबतक पाने में स्वाद नहीं आयेगा। चावल की कठोरता समाप्त हो जाये, तब वह भात कहलाता है। उसी प्रकार हमारे भीतर की सारी कठोरता अर्थात् हमारा सारा अभिमान गल जाये, तनिक भी अहंकार हमारे भीतर न रह जाये, कर्तृत्वाभिमान, देहाभिमान, ज्ञानाभिमान, विद्याभिमान, आदि सारे अभिमानों को गलाकर जब हम अपनी सत्ता को ही समाप्त करके सर्वथा परमात्मा को समर्पित हो जाते हैं, उसकी विराहाग्नि में अपने सारे अस्तित्व को गला देते हैं; तब भगवान् प्रसन्न हो जाते हैं - अब मेरा भात बन गया! अब मेरा भोग्य बन गया।

भगवती श्रुति कहती है, **'अहमन्नम्'** प्रभो! हम अन्न हैं और आप इस अन्न के भोक्ता हो। तो गोपियाँ भी

कह रही हैं, प्रभो! हम आपकी भात हैं। ये गला हुआ सिद्ध भात है। हमने सारे अहंकार को गला दिया, अपनी लोकलाज को भी गला दिया, अपनी घर-परिवार की सारी आसक्ति को गला दिया, अपना अस्तित्व ही गला दिया और ऐसा विशुद्ध भात बन गई। और वह भी रूखा भात नहीं है? आपके प्यार की मिसरी भी इसमें मिला रखी है। गोविन्द! आपके दिव्यप्रेम की मिसरी से मिला हुआ ये मीठा-भात है, रूखा भात नहीं है। इसलिये अपने सारे आग्रह त्यागो और परोसे हुए इस भात का भोग लगाओ। इस प्रणयगीत में बड़े सुन्दर-सुन्दर भाव हैं।

भगवान् बोले, भूख लगी हो, तब तो पावें। गोपियों ने कहा, सरकार! भूख न लगी होती, तो आपने थाली मँगवाई भी न होती। पहले कोई आदेश दे कि भाई! भूख लगी है, जल्दी से थाली लाओ, भोजन करेंगे। और परोसकर जब थाली सामने आ जाये, तब कहो कि भूख नहीं है - ये तो दुराग्रह है। यदि आपको पाना नहीं था, तो आपने फिर वंशी बजाकर बुलाया क्यों? ठीक है! हम जबसे आई हैं, तबसे आपके मुँह से एक ही बात सुन रही हैं कि चली जाओ! लौट जाओ! भाग जाओ! तो इसका मतलब आपको भात पसंद नहीं आया? तो ठीक है! पर वंशी बजाकर जो हमारा चित्त आपने चुरा लिया, उसे लौटाओ। हम तब लौटेंगी, जब हमारा मन लौटेगा। **'कृष्ण गृहीत मानसा'** हमारा मन तो आपने ग्रहण कर लिया है? और इतना तो आप जानते ही हैं सरकार! कोई भी इन्द्रियां बिना मन के काम नहीं करतीं। कान कथा कब सुनेंगे, जब मन सार्थक लगेगा। पैर घर को कब चलेंगे, जब मन आदेश देगा। तो जब आपने मन ही चुरा लिया, तो अब पैर घर की तरफ कैसे लौटें?

चित्तं सुखेन भवतापहृतं गृहेषु यन्निर्विशत्युत करावपि गृह्यकृत्ये ।
पादौ पदं न चलतस्तव पादमूलाद् याम: कथं व्रजमथो करवाम किं वा ॥ (भा. 10/29/34)

प्रभो! आपने वंशी बजाकर हमारा चित्त तो बड़े आराम से चुरा लिया, सो अब हमारे पैर घर की तरफ चल ही नहीं रहे, कैसे जायें? भगवान् बोले, तुम्हारे पैर काम नहीं कर रहे, तो योगबल से मैं तुम्हें घर-घर पहुँचा दूँगा, फिर तो पधारोगी? गोपियाँ बोलीं, वाह! तन को घर पहुँचा दोगे, पर मन अपने पास रखोगे। तो घर जाकर करेंगी क्या? अरे! घर के काम तब होंगे, जब मन साथ में होगा? भगवान् बोले, अच्छा! तो तुम चाहती क्या हो? गोपियों ने अपने मन के भाव स्पष्ट कर दिये, जो भगवान् गोपियों के मुख से कहलवाना चाहते थे। कह दिया -

सिञ्चाङ्ग नस्त्वदधरामृतपूरकेण हासावलोककलगीतजहृच्छयाग्निम् ।
नो चेद् वयं विरहजाग्न्युपयुक्तदेहा ध्यानेन याम पदयो: पदवीं सखे ते ॥ (भा. 10/29/35)

हे सखे! आप अपने दिव्य-अधरामृत से हमें कृतार्थ करो, अभिसिंचित करो। ये अधरामृत क्या है भाई? संत बहुत सुन्दर अर्थ करते हैं। **'धरती इति धरा। धरा अमृतं धरामृतं। धरामृतं न भवति इति अधरामृतम्'** धरती का नाम है धरा, जो सबको धारण करती है। और धरा पर जो अमृत उपलब्ध होता है, वह धरामृत। और जो अमृत इस धरा पर कहीं प्राप्त न होवे, वह अधरामृत अर्थात् प्रेमामृत-रसामृत। गोपियों ने उस रस की याचना गोविन्द से की, जिसका श्रुतियों ने वर्णन किया है।

रसो वै स: । रसँ ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति ॥ (तैत्तरीयोपनिषद् 2/7)

वह परमात्मा रसस्वरूप है। उसके उस दिव्यालौकिक अभौतिक अप्राकृत रस का जिसने रसास्वादन कर लिया, वह जीव आनन्दस्वरूप हो जाता है। गोपियाँ उसी रस की याचना प्रभु से कर रही हैं और सावधान भी कर दिया कि यदि आपने हमारा मनोरथ पूरा नहीं किया, अर्थात् वह रस हमें प्रदान नहीं किया तो आपके प्रेम में

हम अपने शरीर का परित्याग कर देंगी। तो जीते-जी न सही, आपको याद करके मरेंगी, तब तो आपकी प्राप्ति होगी ?

प्रभु ने अच्छी तरह से परीक्षण करके देख लिया। गर्मियों में आप घड़ा खरीदने जाते हैं, तो दस रुपये का मटका दस बार ठोक-ठोककर देखते हो कि पक्का है ? कहीं फूटा न हो ? टूटा न हो ? छिद्र न हो ? टेड़ा-मेड़ा न हो ? हर प्रकार से जब मन संतुष्ट हो जाता है, तब दस रुपये का मटका खरीदते हैं। तो जिन व्रजवामाओं को अपने अलौकिक दिव्य प्रेम का रस प्रदान करना चाहते हैं, प्रभु उन व्रजवामाओं का भी तो ज़रा निरीक्षण-परीक्षण करके देखेंगे ? प्राइमरी के छात्र की परीक्षा में कोई फ़र्क नहीं पड़ता है, पास कर देंगे। पर ज्यों-ज्यों ऊँची पदवी होती जायेगी, परीक्षा उतनी ही कड़ी होती जायेगी। तो भगवान् के निकटतम पहुँचकर व्रजवामाओं को उस दिव्य रस की प्राप्ति होने जा रही है, तो भगवान् परीक्षण कर रहे हैं कि संसार का कोई प्राकृत रस तो इनके अन्दर नहीं है ? संसार की किसी वस्तु की आसक्ति तो इनमें नहीं है ? पर गोपियों ने जब सब प्रकार से अपनी परीक्षा दी और कहा, महाराज ! आपके लिये हम सब कुछ त्यागकर आ गई हैं। कोई प्रलोभन अब हमें आपसे अलग नहीं कर सकता। आप स्वयं भी हमें अपने से अलग नहीं कर सकते हैं। तब भगवान् प्रसन्न हो गये, परीक्षा में पास हो गई और '**आत्मारामोऽप्यरीरमत्**' अब वह आत्माराम प्रभु व्रजवामाओं के साथ विहार करने लगे। जैसे-ही गोपियों के साथ भगवान् ने उनका मनोरथ पूर्ण करने के लिये ता-ता-थैया करके थिरकना प्रारम्भ किया, गोपियों के आनन्द का पारावार नहीं रहा। नाचते हुए उस नटनागर को देखकर गोपियों को भ्रम हो गया कि देखो ! कैसे नाच रहे हैं हमारे इशारों पर ? वह त्रिभुवनपति को हमने अपने वश में कर रखा है ?

बाहुप्रसारपरिरम्भकरालकोरुनीवीस्तनालभननर्मनखाग्रपातैः ।
क्ष्वेल्यावलोकहसितैर्व्रजसुन्दरीणामुत्तम्भयन् रतिपतिं रमयाञ्चकार ॥ (भा. 10/29/46)

ता-ता-थैया करके थिरक उठे कन्हैया। परन्तु जैसे ही कामदेव ने देखा, कामदेव को सबसे बड़ा अभिमान था। भगवान् ने चुनौती दी कि आओ ! तुम भी चले आओ। अबतक तुमने योगियों को समाधि में विचलित किया है ? पर मैं योगेश्वरेश्वर कृष्ण व्रज की अनन्त व्रजसुन्दरियों के बीच में विहार कर रहा हूँ। आओ ! मेरे मन में कोई विकार पैदा करके दिखाओ। कामदेव ने सारे बाण चला दिये। वशीकरण, उच्चाटन, सम्मोहन, स्तम्भन, उद्दीपन, आदि पाँचों बाणों का प्रयोग करके देख लिया, पर रतिपति कामदेव को पकड़कर भगवान् ने ऊपर लटका दिया. '**उत ऊर्धंस्तम्भयन्**' काम को स्तम्भित करके भगवान् ने व्रजवामाओं के साथ विहार किया। कामदेव लज्जित होकर चरणों में गिर गया और भगवान् को आज कामदेव ने '**अच्युत**' नाम दिया। '**न च्यवति स्वरूपात् इति अच्युत**' एक आप ही हो, जो अपने स्वरूप से विचलित नहीं हुये; बाकी तो मैंने सबको नचा दिया। आपके अतिरिक्त कोई नहीं बचा। काम का अभिमान गल गया। वही कामदेव पराजित होकर भगवान् श्रीकृष्ण की द्वारिका में आकर उनका प्रथम पुत्र प्रद्युम्न बना। परन्तु नाचते हुए श्रीमाधव का व्रजवामाओं ने दर्शन किया, तो उनमें सौन्दर्याभिमान जागा। एक गोपी के मन में मान हुआ, बाकी सबको अभिमान हुआ। तो भगवान् उस मानिनी गोपी को मनाने के लिये, अपने साथ में लेकर बाकी सब गोपियों के बीच से अन्तर्ध्यान हो गये।

अन्तर्हिते भगवति सहसैव व्रजाङ्गनाः।

अन्तर्हित के दो अर्थ हैं। पहला अर्थ है कि अदृश्य हो गये। और दूसरा अर्थ है कि भगवान् गोपियों का हृदय से हित चाहते थे, इसलिये अन्तर्हित हो गये। तो अन्तः में हित छुपा है जिनका, ऐसे श्रीहरि अन्तर्हित हो गये। अपने बीच में भगवान् को न देखकर व्रजवामाओं को ऐसा लगा, जैसे मणिधर सर्प की मणि को हरण करके ले जाये या पानी से मछली पृथक हो जाये। विकल होकर छटपटा उठीं। अपने प्यारे को ढूँढने के लिये चारों ओर दौड़ने-भागने लगीं और प्रेम में इतनी पागल हो गई कि वृक्षों से ही पूछने लगीं, ऐ भैया बरगद ! ऐ भैया पीपल ! तुम ही बताओ। अपनी विशाल शाखाओं को चारों तरफ से फैलाकर देखो, हमारे प्राणधन प्रियतम कहाँ भाग गये ? वृक्षों से भला क्या उत्तर मिलता ? गोपियाँ आपस में बोलीं, देखो-देखो ! कितने निष्ठुर हैं ? आखिर ये भी तो पुरुषजाति के ही हैं। स्त्रीहृदय की व्यथा को ये क्या समझेंगे ? छोड़ो !! इनसे बात करना। तुलसी से बात करने लगीं, बहिन तुलसी ! तू तो हमारे प्रिय से बहुत प्रेम करती है। तेरे बिना तो वह भी भोजन स्वीकार नहीं करते। बहिन ! जल्दी बता कहाँ हैं ? तेरा तो नाम ही तुलसी है। '**तुना विष्णुना लसति सोभने**' तेरी तो शोभा ही हमारे गोविन्द के पादपद्मों में होती है। जल्दी बोल !! तभी अचानक हवा का झोंका आया और तुलसी का पौधा हिल गया। एक गोपी बोली, सिर हिला रही है कि मैं नहीं बताऊँगी। तो तुलसी को भी खरी-खरी सुना दीं, अरी बहिन ! इससे तो पूछना ही बेकार था, ये तो हमारी सौत लगती है ! ये हमें भला क्यों बताने चली ? आगे चलो।

कुछ आगे बढ़ीं तो एक जगह खूब हरियाली नज़र आई। एक बोली, सखी ! निश्चित कन्हैया यहीं छुपे हैं। देखो ! ये पृथ्वी कितनी रोमांच-कंटकित हो रही है ? ये पृथ्वी की रोम खड़ी हो रही है अर्थात् इसका शरीर पुलकित हो रहा है। हमारे प्राणप्यारे-प्रभु के स्पर्श से ही ये इतनी पुलकित हो सकती है और दूसरा कोई कारण नहीं है। अरी बहिन पृथ्वी ! तू बोल कहाँ छुपा रखे हैं ? तेरी पुलकावली बता रही है कि तेरे पास यहीं कहीं छुपे हैं। तेरा अंग अत्यन्त रोमांचित हो रहा है। मानो पृथ्वी ने कहा, देवियों ! ये तुम्हारा भ्रम है, ये जो हरियाली तुम देख रही हो ? ये तो तुम्हारे श्रीकृष्ण के जन्म से भी पहले की है। गोपियाँ बोलीं, नहीं नहीं ! ये हम मानने को तैयार नहीं। हमारे प्यारे का अंग-संग हुये बिना तू इतनी रोमांचकंटकित हो ही नहीं सकती। हां ! ये बात और है कि श्रीकृष्णरूप में ना सही, तो जब हमारे प्यारे वामन बनकर तुझे नाप रहे थे, अपने श्रीचरणों से तबसे उनके चरणों का अंग-संग पाकर तू पुलकित हो गई। पृथ्वी ने कहा, नहीं-नहीं वामनजी का भी जन्म नहीं हुआ था, उससे पहले की हरियाली है। तो तीसरी गोपी ने जवाब दिया, अरे ! वामनरूप में ना सही, तो जब हमारे प्यारे वराह बनकर हिरण्याक्ष के चंगुल से तेरा उद्धार करने गये थे ? उस समय हमारे प्रियतम का वराहरूप में परिरम्भण कर लिया होगा, तूने आलिंगन किया होगा। तब से तू रोमांचकंटकित हो रही है, पुलकित हो रही है।

किं ते कृतं क्षिति तपो बत केशवाङ्घ्रिस्पर्शोत्सवोत्पुलकिताङ्गरुहैर्विभासि ।
अप्यङ्घ्रिसम्भव उरुक्रमविक्रमाद् वा आहो वराहवपुषः परिरम्भणेन ॥ (भा. 10/30/10)

को जड़ को चेतन न कछु जानत बिरहीजन

प्रेमी विरही को बोध नहीं रहता कि मैं किससे बात कर रहा हूँ ? गोपियाँ गोविन्द का पता सबसे पूछती हुई '**इत्युन्मत्तवचोगोप्य**' उन्मत्तवत् विचरण कर रही हैं। इतना सब ढूँढने पर भी जब प्यारे नहीं मिले, तब गोपियों ने फिर युक्ति से काम लिया। क्या करें ? एक बोली, चलो ! लीला अनुकरण करते हैं। जैसी लीलायें प्रभु ने की हैं, वैसी हम तो नहीं कर पायेंगी। ऊटपटांग लीला करेंगी, तो वे हाथ पकड़कर जरूर कहेंगे, ऐसे नहीं, ऐसे करो। बस पकड़े जायेंगे, हाँ ! ये ठीक है। तब तो एक गोपी यशोदा मैया बन गई और एक गोपी कृष्ण-कन्हैया

बन गई। एक गोपी पूतना बन गई और कृष्ण बनी गोपी ने पूतना बनी गोपी को मारने का अभिनय किया। गोपियाँ सब तालियाँ बजाने लगीं, पूतना मर गई पूतना मर गई; पर माधव नहीं आये। एक गोपी अपनी चुनरी को आकाश में उड़ाकर कहती है, व्रजवासियों! मत घबड़ाओ! मैंने गोवर्धन उठा लिया। ये इन्द्र तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ेगा।

मा भैष्ट वातवर्षाभ्यां तत्त्राणं विहितं मया

माधव फिर भी नहीं आये। सारी लीलाओं का अनुकरण कर लिया। एक गोपी तो कृष्ण बनकर इतनी तन्मय हो गई कि कहती है '**कृष्णोऽहं पश्यतगतिम्**' देखो-देखो! मेरी चाल देखो! मैं ही कृष्ण हूँ। जैसे ब्रह्मचिन्तन करते-करते बड़े-बड़े सिद्ध संत '**सोहऽम्**' की सत्ता में स्थित हो जाते हैं, आज गोपियों को भी कृष्णाद्वैत प्राप्त हो गया। इतने पर भी प्रभु नहीं आये। गोपियाँ अन्वेषण करती जा रही हैं। एक गोपी बोली, सखी! देखो-देखो! ये चरणचिह्न दिखाई पड़ रहे हैं। इसका मतलब है कि इसी रास्ते गये हैं। आगे बढ़ीं तो कुछ फूल बिखरे हुए मिले। एक बोली, सखी! हमारे प्यारे के साथ-साथ एक चरणचिह्न और दिख रहे हैं। इसका मतलब वह अकेले नहीं हैं, कोई उनके साथ भी है। ये कौन है, जो अकेली श्रीकृष्ण को अपने साथ लेकर चली गई? अरे सखी! देख-देख!! यहाँ पर हमारे प्यारे के चरण बहुत गड़े हुए मालूम पड़ रहे हैं, इसका मतलब उसे कंधे पर बैठाया है। और ये फूल टूटे हैं? ओ-हो! समझ गई। यहाँ पर फूल चुन-चुनकर उसका श्रृंगार किया होगा?

केशप्रसाधनं त्वत्र कामिन्याः कामिना कृतम् ।
तानि चूडयता कान्तामुपविष्टमिह ध्रुवम् ॥ (भा. 10/30/34)
अनयाऽऽराधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः

अब तो स्पृहा होने लगी उस गोपी के मन में कि वह कौन है, जो उनके साथ है। यहाँ पर श्रीशुकदेवजी ने नाम स्पष्ट नहीं किया कि वह एक गोपी कौन थी? पर संतों की मान्यता है, वह कोई और नहीं बल्कि साक्षात् किशारीजी श्रीराधारानी हैं। पर शुकदेवजी उनका नाम नहीं लेते हैं। कुछ संत कहते हैं कि भाई! शुकदेवजी की इष्टदेवी हैं - भगवती रासेश्वरी राधारानी। श्रीशुकदेवजी इतने रसिक संत हैं कि 'राधा' नामोच्चारण मात्र से ही छः महीने की समाधि लग जाती है। और परीक्षित को कथा सुनाते हुए शुकदेवजी सावधान हैं कि कहीं ऐसा न हो कि 'राधे' कहते ही हम तो छः महीने की समाधि में चले जायें और बेचारे सात दिन के मेहमान परीक्षित लटके ही रह जायें। इसलिये सजग-सावधान होकर कथा सुना रहे हैं। वक्ता को अपनी मनस्थिति का पता रहता है। वह जानता है कि किस प्रसंग में मैं अतिशय भावुक हो सकता हूँ। तो जब उसे लगता है कि मैं बहुत ज्यादा भावुक हो जाऊँगा, तो फिर वह उस प्रसंग को थोड़ा दांये-बांये करके निकल जाता है। उसकी बहुत गहराई में नहीं जाता, क्योंकि वक्ता यदि डूब गया, तो श्रोता फिर बैठे रह जायेंगे और कथा कैसे कह पायेगा?

एक बार धर्मसम्राट् श्रीकरपात्रीजी महाराज वृन्दावन में जब गोपीगीत पर कथा कहने के लिये पधारे, तो उन्होंने गोपीगीत का प्रथम श्लोक बोला और उस श्लोक के भावों में ऐसे डूब गये कि श्लोक बोलने के बाद एक शब्द भी व्याख्या नहीं कर सके! ऐसा प्रेम उमड़ा कि एक श्लोक कहकर ही कथा को विराम दे दिया और उस दिन कथा ही नहीं कह सके। तो शुकदेवजी जानते हैं कि रासेश्वरी के प्रेम में मेरी क्या स्थिति होती है? यदि वह स्थिति हो गई, तो परीक्षित को कथा कैसे सुना पाऊँगा? इसलिये श्रीरासेश्वरी का नाम लेते नहीं हैं। स्पष्ट

राधा न कहकर, अन्य शब्दों के द्वारा जैसे यहाँ जो गोपी साथ में गई है, वह चलते-चलते बोली, प्यारे! मैं अब चलते-चलते बहुत थक गई। अब आगे नहीं चला जाता

न पारयेऽहं चलितुं नय मां यत्र ते मन

अब तो आप ही कुछ करो, मुझसे नहीं चला जाता। भगवान् बोले, '**स्कन्ध आरुह्यताम्**' मेरे कंधे पर बैठ जाइये। और जैसे ही किशोरीजी ने कंधे पर बैठने के लिये कदम उठाया कि भगवान् वहाँ से भी अंतर्ध्यान हो गये। तो शुकदेवजी यहाँ पर कहते हैं - '**सा वधूरन्वतप्यत**' वह वधू भी एकदम संतप्त होकर, विरह में मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। अब 'वधू' कहकर यहाँ संकेत दिया। अन्य शब्दों से वर्णन कर रहे हैं, पर 'राधा' नाम नहीं ले रहे हैं। क्यों? जो वस्तु जितनी कीमती होती है, उसे उतना ही सँभालकर रखा जाता है। घर में आपने बहुत बढ़िया कोठी बनाई, तो आने वालों को घुमाते हैं, दिखाते हैं। पर ये किसी को नहीं बतायेंगे कि ये हमारी तिज़ोरी है। इसमें ऐसे चाबी फिट होती है, चाबी यहाँ रखते हैं, इतना इसमें माल है; ये बतायेगा कोई? अरे! ये तो बहुत अंतरंग लोग होते हैं, उन्हीं को बताया जाता है, हर किसी को थोड़े ही दिखाते फिरते हैं? उसी प्रकार इस श्रीमद्भागवत के भवन में राधातत्त्व के रत्न को श्रीशुकदेवजी महाराज ने शब्दों की तिजौरी में इतना छुपाकर रखा है कि जो भगवान् के परमवैष्णव अनन्य-रसिक हैं, वह तो उस तिजौरी को खोलकर उस रत्न को देख सकते हैं। अन्यथा ये रत्न हर किसी के आँखों के सामने आने वाला नहीं है, हर किसी को नहीं दिखाया जाता है।

अन्वेषण करतीं जो गोपियाँ आ रहीं थीं, उन्होंने जब किशोरीजी की वह अवस्था देखी, तो स्पृहा समाप्त हो गई। उस व्रज गोपी की व्यथा को देखकर सब गोपियाँ उसके विरह में उसका साथ देती हुई, वापिस अब यमुनातट पर आई और यमुनातट पर मिलकर सब गोपियों ने बड़ा ही मधुरगीत गाया और कहा, बहिन! यदि इस गीत को सुनकर भी गोविन्द नहीं आये, तो अब हम यमुनाजी के जल में ही अपना विसर्जन कर देंगी। ये गीत श्रीमद्भागवत का सबसे सुन्दर गीत है। यह गीत कनकमंजरी छन्द में हैं तथा इस गीत का नाम है - गोपीगीत।

गोप्य ऊचुः—

जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि ।
दयित दृश्यतां दिक्षु तावकास्त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते ॥
शरदुदाशये साधुजातसत्सरसिजोदरश्रीमुषा दृशा ।
सुरतनाथ तेऽशुल्कदासिका वरद निघ्नतो नेह किं वधः ॥
विषजलाप्ययाद् व्यालराक्षसाद् वर्षमारुताद् वैद्युतानलात् ।
वृषमयात्मजाद् विश्वतोभयादृषभ ते वयं रक्षिता मुहुः ॥
न खलु गोपीकानन्दनो भवानखिलदेहिनामन्तरात्मदृक् ।
विखनसार्थितो विश्वगुप्तये सख उदेयिवान्सात्वतां कुले ॥ (भा. 10/31/1-4)

बड़ा ही प्यारा ये दिव्यगीत है। गोपियाँ कहती हैं, हे प्यारे! जबसे आप व्रज में पधारे हो, तबसे इस व्रजभूमि की महिमा वैकुण्ठ से भी अधिक हो गई। अबतक लोग वैकुण्ठ भाग रहे थे, पर जब आप व्रज में आ गये तो लोग वैकुण्ठ छोड़कर वृन्दावन भागने लगे। क्योंकि वैकुण्ठ में कोई पहले तो पहुँच नहीं सकता, पहुँच भी जाये तो आपके दर्शन के लिये बड़ी लम्बी कतार लगानी पड़ती है और इस वृन्दावन में किसी कतार में लगने की

जरूरत नहीं है। किस गोपी के सामने नाचते मिल जाये, कब गायों के पीछे जंगल में भागते मिल जायें - कोई पता नहीं। यहाँ आप सबके लिये सुलभ हैं। अरे! जब पशुओं को, गायों को, वानरों को सुलभ हो रहे हैं; तो मानवों को सुलभ क्यों नहीं होंगे? इसीलिये आपकी महिमा से आज व्रजमण्डल की भी अद्भुत् महिमा हो गई है। अरे! औरों की तो बात क्या कहें? ऐश्वर्य की अधिष्ठात्री देवी भगवती लक्ष्मी (इन्दिरा) '**अत्र शश्वत् क्षयते**' लक्ष्मी कभी एक जगह नहीं टिकती, बहुत चंचला हैं। परन्तु वह चंचला-चपला व्रज में आकर अचला हो गई। आपको जब देखा, तो चंचला लक्ष्मी अपनी चंचलता को छोडकर व्रज में अचल होकर बैठ गई। '**हे दयित दृष्यताम्**' हे दयालु! अब तो दर्शन दो! '**दिक्षु तावका:**' देखो! देखो! हम तुम्हारी हैं। अरे! प्रतिज्ञायें तो बड़ी लम्बी-लम्बी करते हो कि एक बार जो मेरा हो जाये, उसको मैं सब प्रकार से अभय कर देता हूँ। आज हम सब प्रकार से तुम्हारी होकर भी वन-वन भटक रही हैं, क्या ये तुम्हें दिखाई नहीं पड़ता? अपनी आँखों से देखो, हम तुम्हारी होकर भी वन-वन भटक रही हैं - ये क्या तुम्हें अच्छा लग रहा है? तुम्हारे होने पर भी कोई जीव भटकता रहे, ये क्या आपके स्वरूपानुकूल है? क्या आज अपनी सारी प्रतिज्ञायें भूल गये?

यदि कहो कि क्यों भटक रही हो? तो प्यारे! प्राणों से भी पृथक् कोई रह सकता है? आप हमारे प्राण हो! '**त्वयि धृतासव**' अरे! हमें लेने के लिये यमराज भी आते हैं, पर हमारे हृदयभवन में ढूँढ़-ढूँढ़कर चले जाते हैं। उन्हें प्राणरूपी पक्षी मिलता ही नहीं है, क्योंकि हमारा प्राणपक्षी तो आपके पिंजड़े में कैद है; यमराज आकर क्या करेगा? '**त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते**' इसलिये अपना प्राणरूपी पक्षी को पाने के लिये हम आपके पीछे भाग रही हैं। आप तो हमारे प्राण-प्यारे हो और यदि तुम्हें मारना ही था, तो फिर इतनी बार हमें बचाया ही क्यों? यदि आप मारना चाहते, तो अबतक तो हम कब की मर गईं होतीं? अरे! आपको कलंक भी नहीं लगता। हमें मारने वाले तो बहुत आये, कितने बड़े-बड़े असुर आये। परन्तु उन असुरों को मारकर बार-बार आप ही हमें बचाते रहे। क्या इसी दिन के लिये हमें बचाया था? असुरों के प्रहार से बचाकर आज अपने विरहासुर के द्वारा मारोगे? ये तो वही हालत हो गई, जैसे कोई बकरे को खूब बढ़िया-बढ़िया खिलावे, बड़े-बड़े हिंसक जानवरों से रक्षा भी करे और एक दिन खुद ही अपने हाथ से तलवार चला दे। क्या इसी दिन के लिये ये बलिदान करने को तुमने बकरे को इतना खिलाया-पिलाया था? '**वरद निघ्नतो नेह किं वध**' अपने हाथ का बोया हुआ विषैला वृक्ष भी कोई अपने हाथ से काटता नहीं है। हम आपके द्वारा रक्षित हैं और आप ही हमें मारोगे? अरे! मारना कोई हथियारों से नहीं होता। हमें अपनी वंशी बजाकर बुलाया। आपके दिव्य मुखकमल की मुस्कान पाने के लिये हम दौड़ी-भागी चली आई। आपके जो विशाल नेत्र हैं, वे शरद के सरोवर में विकसित सरसिज के सौन्दर्य को भी हरण करने वाले हैं। उन नेत्रों में मिलन की दिव्य भावनायें भरी हुई थीं। इसलिये हम सब कुछ त्यागकर चली आई। पर मिलन की उत्कण्ठा जगाकर बिना मिले हमें छोड़कर भाग गये? क्या ये मारना नहीं हुआ?

तुम्हारी इस निष्ठुरता को देख-देखकर तो लगता है कि तुम यशोदामैया के तो हो नहीं। हमारी यशोदा तो कितनी स्नेहमयी, वात्सल्यमयी, करूणामयी, दयामयी है और उनका तुम-जैसा निष्ठुर बेटा? '**न खलु गोपिकानन्दन**' आप यशोदानन्दन नहीं हो सकते। सुना है कि भक्तों का कल्याण करने आये हो? ब्रह्माजी की प्रार्थना पर विश्व का कल्याण करने, भक्तों का परित्राण करने पधारे हो; तो क्या हम आपके भक्त नहीं हैं? फिर हमारा कल्याण क्यों नहीं कर रहे? हमारा इस संकट से उद्धार क्यों नहीं कर रहे? यदि अंतर्यामी हो तो हमारे

भीतर की भावना को क्यों नहीं समझ रहे? यदि तुम्हारा ये संकेत है कि हमारे अन्दर अभिमान का घर भर गया, इसलिये आप भाग गये; तो प्रभु! आपके श्रीचरणों में तो विषवमन कराने की अद्भुत शक्ति है। सारे व्रजमण्डल ने अपनी आँखों से स्पष्ट देखा था,

फणिफणार्पितं ते पदाम्बुजं कृणु कुचेषु न कृन्धि हृच्छयम्

कालिय की फणाली पर जब 'ता-ता-थैया' करके आप थिरके, तो उस विषधर का समस्त विष आपके इन चरणों ने वमन करा दिया। तो जो चरण कालिय का विषवमन करा सकते हैं, वह चरण क्या हमारे हृदय पर स्थापित होकर हमारा अभिमानरूपी विषशमन नहीं कर सकते? अरे! हमारे भीतर भी कामरूपी कालियनाग घुसा बैठा है, दुर्वासनाओं का विषवमन कर देता है। प्रभु! आप अपने श्रीचरणों को हमारे वक्ष पर धारण करके उस कामरूपी कालिय का मर्दन कर दीजिये। हम तो आपकी विरह में मरना भी चाहें, तो भी नहीं मर सकते क्योंकि अमृत पीने के बाद अमृत उसे मरने नहीं देगा। और आपका कथामृत जो है, वह स्वर्ग-सुधामृत से श्रेष्ठ है। जैसे आप सर्वैश्वर्य-सम्पन्न हैं, ऐसे ही आपका कथामृत भी सद्गुण-सम्पन्न है।

तव कथामृतं-तप्तजीवनं कविभिरीडितं ।
कल्मषापहम् श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततं भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जना:।। (भा. 10/31/9)

ये सद्गुण-सम्पन्न आपका कथामृत है। पहली विशेषता है। '**तप्तजीवनम् - तप्तानां जीवनम्**' संसार में दैहिक, दैविक और भौतिक तापों में तपे हुये प्राणियों को नवजीवन प्रदान करने वाला है। संसार में ऐसा कोई प्राणी नहीं है, जिसे कोई समस्या न हो। चौबीस घंटे हर व्यक्ति चिंता की चिता में जल रहा है, तप रहा है। परन्तु जब कथामृत पान करते हो, भगवान् की लीला कथा में जब डूब जाते हो, होश ही नहीं रहता कि कौन-सी चिंता था। जैसे कितनी भी गर्मी पड़ रही हो, पर गजराज ग्रीष्म के आतप से संतप्त होकर जब गंगामैया की शीतल लहरों में गोता मारता है, तो एकदम तरावट आ जाती है, सारी गर्मी भाग जाती है। और जब गंगाजल से बाहर निकल गया, सो धीरे-धीरे गर्मी फिर उसे गर्म करने लगती है, तपाने लगती है। ऐसे ही हमारी सारी चिंतायें कथामृत पान करते समय समाप्त हो जाती हैं और कथा सम्पन्न होने पर लौटकर अपने घर को चले, सो धीरे-धीरे चिंता फिर होने लगा, अरे! वहाँ जाना था, उससे ये लेना था, उसको वह देना था, अब ये काम निपटाना है। धीरे-धीरे अब गर्मी फिर प्रभावित करने लगी। तो तपे हुए प्राणियों को नवजीवन प्रदान करने वाला आपका ये कथामृत-रसामृत है। ये हम नहीं कह रहीं हैं, बल्कि बड़े-बड़े कवियों-मनीषियों और कोविदों ने आपके कथामृत की मुक्तकण्ठ महिमा गाई है, केवल हम नहीं गा रहीं। भाई! कोई एक व्यक्ति-विशेष किसी की प्रशंसा करे, तो हो सकता है, उसका कोई स्वार्थ हो? प्रशंसा तो तभी मानी जावे कि सभी के कंठ से मुक्तकंठ बात निकले। गोपियाँ कहती हैं, हमारी छोड़ो! बड़े-बड़े वैदिक मन्त्र आपकी महिमा गा रहे हैं। वेदस्तुति में वेदभगवान् कहते हैं -

इति तव सूरयस्त्र्यधिपतेऽखिललोकमलक्षपणकथामृताब्धिमवगाह्य तपांसि जहुः

अर्थात् जो आपके कथामृत में अवगाहन कर ले, उसके सारे ताप मिट जाते हैं। और सबसे बड़ी विशेषता ये है कि स्वर्ग का जो अमृत है, उस अमृत को पीने वाले देवताओं का पुण्य क्षीण होता चला जाता है। पर जीव के जितने कल्मष हैं, कथामृत पान करते ही सारे कल्मष धुल जाते हैं, सारे पाप नष्ट हो जाते हैं और जीव के पाप का विनाश करके आपका कथामृत आपके परमपद तक पहुँचा देता है।

संसारकर्दमालेपप्रक्षालनपटीयसि

भगवान् की कथा संसार के कीचड़ को धो देती है। और सबसे बड़ी विशेषता एक ये है कि जितने भी अन्य पुण्य हैं, फल तो देते हैं; पर कालांतर में। आज पुण्य किया तो फल मिलेगा जन्मान्तर में। परन्तु कथामृत में उधार-खाते का कोई काम नहीं। नगद-नारायण तुरन्त लो, उधारी नहीं चलती। भगवान् की कथा सुनी सुनने में आनन्द आ जाये, सुनने के बाद जीवन ही बदल जाये, जीवनमुक्ति का आनन्द मिल जाये और जब हम पांचभौतिक देहत्याग करें, तो भगवान् के परमपद का आनन्द मिल जाये। अर्थात् जहाँ जीव ने कथामृत श्रवण किया, वहाँ उसका मंगल प्रारम्भ हुआ। सब पुण्य कालान्तर में फल देते हैं, पर कथामृत तो तत्क्षण फल देता है।

आपके पास एक हाथ में एक लाख का चेक है और एक हाथ में एक लाख नगद हैं। जो नगद है, तो जब चाहिये, जो चाहिये तुरन्त खरीदो क्योंकि रूपया हाथ में है। और चेक है, तो कीमत भले ही एक लाख की है; पर हमें आज बाजार से दस हज़ार की चीज खरीदनी है और आज रविवार पड़ गया छुट्टी। कल गये तो कोई त्यौहार की छुट्टी। अब परसों बैंक खुले, जब मैनेजर आवे, औपचारिकतायें पूरी होवें, तब रुपये हाथ में आवे। तब कहीं जाकर खरीद पाओगे? तो जब चाहा, तब तो नहीं मिला; प्रतीक्षा करनी पड़ी। हाथ में नोट आये, तब काम चला। इसी प्रकार और जितने पुण्य हैं, आज करोगे तो बाद में फल मिलेगा। पर हरिकथामृत में कोई उधारी नहीं, नगद-नारायण तुरन्त लो। गोपियाँ कहती हैं, प्रभो! स्वर्गसुधामृत पीने वाले देवताओं का तो सुकृत क्षीण होता है और वह भी थोड़ा-थोड़ा पिलाया जाता है। अरे! पिलाना तो दूर रहा, केवल सुंघाया जाता है, क्योंकि यदि पिलाते होते, तो अबतक तो घड़ा कब का खाली हो जाता। तो देवताओं को डर लगता है कि अमृत का घड़ा खाली न हो जाये, इसलिये सुंघाकर ही खुश करते हैं। पर हरिकथामृत में कृपणता करने की आवश्यकता नहीं है, जिंदगी भर पियो और चाहे जितना पियो। '**हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता**' - हरिकथा में कृपणता इसलिये नहीं है क्योंकि ये अनन्त है। ये अमृत कभी समाप्त होने वाला नहीं है '**हरिः सर्वत्रगीयते**'। शास्त्रों के पात्रों में व्यासजी ने खूब चकाचक भर दिया है, जीवनभर पीते रहो। इसलिये गोपियाँ कहती हैं, प्रभु! आपके कथामृत का जो दान करे, इस दुनिया में उससे बड़ा दाता हमें कोई दिखता ही नहीं है। उससे बड़ा दाता कौन होगा? जो आपके कथामृत का जीवों को दान करे।

गोपियाँ कहती हैं, आपके दर्शन के समय आँखों की पलक भी गिर जाये, तो ब्रह्माजी पर क्रोध आता है कि ये पलकें! इन मूर्ख ब्रह्माजी ने क्यों बना दीं? ये पलकें गोविन्द के दर्शन में व्यवधान उत्पन्न करती हैं, '**त्रुटिर्युगायते त्वामपश्यताम्**'। विचार करो! जब पलक गिरने का व्यवधान असहनीय हो जाता है, तो ये घंटे कितने युगों के समान बीते होंगे? आपके लिये पति, पुत्र, समस्त परिजनों का परित्याग करके आई हैं और आप हमें अधूरा संगीत सुनाकर भाग गये? अरे! आपके पीछे यदि ढूँढने के लिये अब ज्यादा भागेंगी, तो छुपने के लिये आप भागोगे। इस अंधेरे में आपके चरणों में यदि कोई काँटा चुभेगा, तो पीड़ा हमारे हृदय में होगी। '**सीदतीतिनः**' अरे! जिन चरणों को हम अपने हृदय पर रखते समय भी डरती हैं कि हमारा कठोर वक्ष कहीं आपके कोमलचरणों में गढ़े नहीं, चुभे नहीं और ऐसे सुकुमार चरणों से आप जंगलों में कंटकाकीर्ण मार्ग में घूमें? ये विचार करने मात्र से हमारा हृदय व्यथित हो जाता है।

यत्ते सुजातचरणाम्बुरुहं स्तनेषु भीताः शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु ।
तेनाटवीमटसि तद् व्यथते न किंस्वित् कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषां नः ॥ (भा. 10/31/19)

और इतना कहकर अब सब गोपियाँ एक स्वर में विलाप करने लगीं, 'हे गोविन्द! हे माधव!'

रुरुदु सुस्वरं राजन् कृष्णदर्शनलालसाः

जब कृष्णदर्शन की लालसा में विरहातुर व्रजांगनायें विकल होकर विलाप करने लगीं, तो अब बिहारीजी अपने आपको को रोक न सके, अपने आपको ज्यादा देर तक छुपा न सके।

तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः ।
पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः ॥ (भा. 10/32/2)

गोपियों की इस विकलता को देखकर प्रभु तुरन्त व्रजगोपियों के बीचों-बीच प्रकट हो गये। कैसे प्रकट हुए? '**साक्षान्मन्मथमन्मथ**' इतने सुन्दर कि आज मन्मथ (कामदेव) के मन को भी मथ देने वाला माधव का सौन्दर्य है। मदन के मन को भी मोह लेने वाले मदनमोहन भगवान् प्रकट हो गये। केवल पीताम्बर भी कह सकते थे? पर पीताम्बर नहीं कहा, '**पीताम्बरधर**' मतलब? जब कोई प्रेमी भगवान् के विरह में विकल होकर अश्रुपात करता है, कृष्णदर्शन की लालसा से जब कोई आँसू बहाता है तो भगवान् उसके आँसूओं को पोंछने के लिये पीताम्बर हाथ में धारण करके दौड़ते हैं। ओढ़कर नहीं, हाथ में धारण करके भगवान् पीताम्बर लेकर दौड़े। भगवान् की उस दिव्यछटा को देखकर सब गोपियों को लगा, जैसे मृतशरीर में प्राण आ गये। '**तन्वः प्राणमिवागतम्**' घेर लिया गोविन्द को चारों ओर से। गोपियों का प्रेम चारों तरफ से बरस पड़ा।

एक गोपी टेढ़ी-भृकुटी से देख रही है। कहना बहुत कुछ चाह रही है, पर कह नहीं पा रही कहीं। कोई बात अनुचित लगे, तो ये फिर भाग जायेंगे। परन्तु कहे बिना रहा भी नहीं जा रहा, इसलिये टेढ़ी भृकुटी ताने बैठी है। एक गोपी को अभी भी स्वप्न लग रहा है, कहीं स्वप्न के श्रीकृष्ण हैं कि वास्तव में खड़े हैं? उस बेचारी को विश्वास नहीं हो रहा है। इसलिये बड़ी देर तक उस छैल-छबीले का दर्शन करके आँख बंद करके बैठ गई। ऐसा लगा जैसे नेत्रों के मार्ग से माधव को हृदय के कमरे में बैठाकर, पलकों के कपाट बंद कर दिये कि कहीं दुबारा न भाग जायें। इसलिये कमरे में कैद कर लिया।

तं काचिन्नेत्ररन्ध्रेण हृदिकृत्य निमील्य च

बड़े-बड़े योगियों को जो आनन्द प्राप्त होता है, परीक्षित! वह ब्रह्मानन्द (अद्भुत-आनन्द) उस व्रजवामा को नेत्र बंद करके प्राप्त हुआ। अंत में गोपियों ने घेरकर पूछा, प्रभो! संसार में तीन प्रकार के लोग देखे जाते हैं। एक वह हैं, जो प्रेम के बदले में प्रेम करते हैं। एक वह हैं कि हम तो प्रेम कर रहे हैं, तुम करो या मत करो। और एक वह हैं, जो किसी से प्रेम करना जानते ही नहीं। भगवान् कहते हैं, देवियों! जो प्रेम के बदले प्रेम करे, उसे प्रेमी नहीं कहते; उसे व्यवहार कहते हैं। और हम तो प्रेम कर रहे हैं, तुम करो या ना करो; ऐसे प्रेमी माता-पिता ही हो सकते हैं। और जो किसी से प्रेम नहीं करते, वे चार प्रकार के होते हैं - 1. आत्माराम, 2. आप्तकाम, 3. अकृतज्ञ, 4. गुरुद्रोही। आत्माराम संत तो अपने शरीर से ही प्रेम नहीं करते और किसी से क्या करेंगे? आप्तकाम की सारी कामनायें पूर्ण हो गई हैं, इसलिये वे किसी से प्रेम करता ही नहीं, उसके मन में कोई इच्छा ही नहीं। पर अकृतज्ञ अर्थात् कृतघ्न व्यक्ति भी किसी से प्रेम नहीं करता, वे स्वार्थी होता है। और चौथा गुरुद्रोही है, जो प्रेम करने वाले को भी लूटने में कसर न छोड़े, अपने प्रेमी को ही जो लूट ले, वे गुरुद्रोही हैं। एक गोपी बोली, हमें तो ये श्रीकृष्ण चौथे नम्बर के ही दिख रहे हैं। भगवान् ने सुन लिया, ऐ देवियों! तुम मुझे गुरुद्रोही समझ रही हो क्या? गोपियाँ बोलीं, गुरुद्रोही नहीं तो कौन हो? वंशी बजाकर तुमने बुलाया और रोता हुआ छोड़कर भाग गये? ये क्या

गुरुद्रोहीपन का लक्षण नहीं है? प्रेमियों के साथ ऐसा व्यवहार करते हो? भगवान् ने हाथ जोड़कर कहा, नहीं नहीं देवियों! ऐसा मत कहो। सच बात तो ये है कि तुम्हारे विरह में मैं भी तुमसे कम नहीं तड़फा। जब तुम मेरे लिये विकल होकर विलाप करतीं थीं, तो मैं भी तुम्हारे विरह में विकल हो जाता था। गोपियाँ बोलीं, बचपन से नम्बर एक के महाझूठा हो। यदि तुम्हें हमारा विरह होता, तो भागते क्यों?

भगवान् बोले, देवियों! बिना विप्रलम्भ के संयोग पुष्ट नहीं होता। अरे! शीतल छाया का सुख तभी समझ में आयेगा कि जब उसके पहले सिर पर धूप लगी हो। धूप से तपने के बाद जब छांव में पहुँचोगे, तब छत्रछाया का सुख समझ सकोगे। उसी प्रकार जबतक प्रियतम से मिलने की विरहाग्नि हृदय में न जली हो, विरह की तपन न हुई हो; तबतक मिलन का क्या सुख? रात्रि की अंधियारी न आवे, तो दिन के प्रकाश का क्या महत्व? देवियों! सच बात बोलूं? लोहे की जंजीरों से निकलना तो बहुत सरल है, पर परिजनों की आसक्तियों की बेड़ियों से निकलना बड़े-बड़े महापुरुषों को कठिन है, '**दुर्जरगेह-श्रृंखला**' पर तुमने परिजनों की आसक्ति को स्त्री के लिये सबसे बड़ी त्याग की कसौटी है - लोकलाज। पर तुमने तो मेरे लिये लोकलाज को भी तिलांजलि दे दी; उन बेड़ियों को भी तोड़ दिया। इसलिये तुम्हारे इस महात्याग के सामने मैं क्या दूं, कुछ समझ में नहीं आता। तुम ही कृपा करके अपने ऋण से मुझे उऋण करोगी, तो मैं उऋण हो पाऊँगा; अन्यथा मुझमें सामर्थ्य नहीं, देवियों! जो तुम्हारे ऋण से उऋण हो सकूं। गोपियाँ माधव की ये मधुरवाणी को सुनकर मुग्ध हो गईं। अब भगवान् ने उनके साथ पुनः विक्रीडन किया। जितनी गोपियाँ, उतने माधव प्रकट हो गये। इसके अतिरिक्त, जितनी गोपियाँ रासमण्डल में उपस्थित थीं, उतनी ही गोपी बनकर उनके घर पहुँच गये और जो काम अधूरा छोड़कर आई थीं, उस काम को सँभालने लगे। प्रत्येक ग्वाला अपनी गोपी को अपने घर में ही काम करते देख रहा है, इसलिये

नासूयनखलु कृष्णाय मोहितास्तस्य मायया

ऐसी अद्भुत भगवान् की रासलीला गोपियों के साथ भगवान् ने दिव्य महारास प्रारम्भ किया। प्रत्येक गोपी को लग रहा है कि गोविन्द मेरे साथ ही नाच रहे हैं और शुकदेवबाबा भी अपनी शब्द-छटा में नाचने लगे,

पादन्यासैर्भुजविधुतिभिः सस्मितैर्भ्रूविलासै-
र्भज्यन्मध्यैश्चलकुचपटैः कुण्डलैर्गण्डलोलैः।
स्विद्यन्मुख्यः कबररशनाग्रन्थयः कृष्णवध्वो
गायन्त्यस्तं तडित इव ता मेघचक्रे विरेजुः ॥ (भा. 10/33/8)

शुकदेवजी की शब्दशैली देखो। जैसा प्रसंग होता है, वैसी ही शब्द छटा होती है। भगवान् के दिव्य महारास के नृत्य का शुकदेवजी भी नृत्यमयी शब्दशैली में वर्णन कर रहे हैं। जैसे मेघमण्डलों में विविध प्रकार बिजलियां चमकती हैं, ऐसे ही कन्हैया की श्याम-छटा के बीच गौरांगी-गोपांगनाएं दामिनी की तरह दमक रही हैं। दूसरा दृष्टान्त दिया। जैसे नन्हा-सा बच्चा शीशमहल में अपने अनन्त-प्रतिबिम्ब के साथ नाचता है, ऐसे ही आत्माराम प्रभु अपने ही आत्माओं के साथ रमण कर रहे हैं।

रेमे रमेशो व्रजसुन्दरीभिर्यथार्भकः स्वप्रतिबिम्बविभ्रमः

दृष्टान्त कितना पवित्र दिया। अरे! बालक अपने प्रतिबिम्बों से नाचते समय सर्वथा निर्विकार रहता है, क्योंकि सब उसी के प्रतिबिम्ब हैं। ऐसे ही परमात्मा बिम्ब है, जीवात्मा प्रतिबिम्ब है और अपनी ही प्रतिबिम्बभूता व्रजवामाओं के साथ बिहारीजी विहरण कर रहे हैं। आइये! इस छटा को हम भी हृदयंगम करें। हमारे भोलेबाबा

भी पहुँच गये इस रासमण्डल में। गोपियों ने टोक दिया, बाबा! यहाँ दाढ़ी-मूंछ वालों का कोई काम नहीं, निकलो बाहर। भोलेबाबा ने कहा, देवि! मौका तो दो, हम भी बहुत बढ़िया नाच लेते हैं। गोपियों ने कहा, यहाँ पुरुष प्रवेश सर्वथा वर्जित है। तो भोलेबाबा दौड़कर गये और यमुनास्नान करके प्रेमसरोवर में डुबकी मारकर, लहंगा-फरिया ओढ़कर, चुनरी का हाथभर का घूँघट डालकर गोपियों के झुण्ड में मिलकर पहुँच गये। गोविन्द पहचान गये, आओ! मेरे गोपेश्वरनाथ! तबसे रासमण्डल में वृन्दावन के बीच भोलेनाथ गोपेश्वर बने विराजमान हैं। काम को भस्म करने वाले कामारि शिव जहाँ गोपी बनकर स्वयं ठुमका मार रहे हों, उस महारासमण्डल में काम का प्रवेश भला कैसे हो सकता है?

वृन्दावन के रास में पहुँचे जाये महेश ।
मिल सखियन के झुण्ड में कर गोपी को भेष ॥
नारायण व्रज भूमि को सुर पति नावत माथ ।
यहाँ आये गोपी भये श्रीगोपेश्वरनाथ ॥

इसलिये ये विक्रीडन गोविन्द का जो महारास में हुआ है, इसे कोई प्रेमपूर्वक वर्णन करे या श्रवण करे, उसे भगवान् की विशुद्ध-पराभक्ति प्राप्त हो जाती है और उसके हृदय का कामरोग सर्वथा समाप्त हो जाता है। यह फलश्रुति श्रीशुकदेवजी ने इस महारास की बतलाई।

अब एक बार समस्त व्रजवासी गोविन्द के साथ देवी पूजा करने अम्बिकावन में गये। देवी माँ की खूब पूजा की, सरस्वती नदी में स्नान किया, रात्रि में जागरण करके देवी माँ के गीत गाये; पर नन्दबाबा हारे-थके एक वृक्ष की छांव में लेट गये और सो गये। इतने में जंगल से एक अजगर आया और बाबा का पैर पकडकर ले गया। बाबा ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाये, बचाओ-बचाओ!

सर्पो मां ग्रसते तात प्रपन्नं परिमोचय

बेटा कन्हैया! या विशाल अजगर से मेरी रक्षा कर। ग्वालों ने सुना तो जलती हुई लकड़ियों के साथ मारने के लिये दौड़े, पर अजगर टस से मस नहीं हुआ। उसने बाबा को नहीं छोड़ा। प्रभु ने जब दौड़कर उस अजगर पर पादप्रहार किया, सोई अजगर का शरीर छूट गया और एक दिव्यरूप प्रकट हो गया। भगवान् बोले, कौन हैं आप? तब परिचय दिया,

अहं विद्याधरः कश्चित् सुदर्शन इति श्रुतः ।
श्रिया स्वरूपसम्पत्त्या विमानेनाचरं दिशः ॥ (भा. 10/34/12)

महाराज! मैं विद्याधर हूँ। मेरा नाम सुदर्शन है। मैं बहुत सुन्दर था, पर मेरी सुन्दरता ही मेरे लिये अभिशाप बन गई। मैं सुन्दरता के अहंकार में भरा हुआ, हमेशा लोगों का अपमान किया करता था। कोई थोड़ा भी बद्सूरत मिले, उसका उपहास करने लगता था। एक दिन एक काले-कलूटे से बाबा तीन-चार जगह से टेढ़े अपने ठुमका-सा मारते लहराते चले जा रहे थे। मैं उन्हें देखकर मज़ाक उड़ाने लगा, महाराजजी की चाल देखो! कितनी गजब की है? महाराजजी थोड़ी देर तक तो सुनते रहे। जब ज्यादा सहन नहीं हुआ, तो मुझसे कुपित होकर बोले, ऐ मूर्ख! तू मेरी चाल और मेरे हाल पर क्या हंसता है? जा मेरा शाप है, तू भी सर्प बन जा। तू भी मेरी तरह लहरा-लहराकर चलेगा। सोई मैं चरणों में गिरकर गिड़गिड़ाया-रोया। तो बाबा ने कृपा की और कहा, जाओ! तुम्हारा कल्याण स्वयं परमात्मा करेंगे। आज मुझे लग रहा है, प्रभु! उस संत ने मुझे शाप नहीं दिया,

आशीर्वाद दिया। जिन चरणों का ध्यान करते-करते ब्रह्मादिक देवता एक झलक को तरसते हैं और उस संत ने एक शाप में उन चरणों तक पहुँचा दिया?

शापो मेऽनुग्रहायैव कृतस्तैः करुणात्मभिः ।
यदहं लोकगुरुणा पदा स्पृष्टो हताशुभः ॥ (भा. 10/34/14)

आज साक्षात् नारायण के चरणस्पर्श से मेरे सारे अशुभ-अमंगल समाप्त हो गये। ये संत के शाप का ही तो आशीर्वाद है कि **'ब्रह्मदण्डाद् विमुक्तोऽहम्'** अब मैं ब्रह्मदण्ड से मुक्त हो गया, मैं जा रहा हूँ। प्रणाम करता हुआ चला गया। संत ने जिसे भी शाप दिया हो, उसे परमात्मा अवश्य मिले हैं। इसलिये संतों का शाप भी समझने वाले ही समझ पाते हैं। डॉक्टर इंजेक्शन लगावे या पेट फाड़े, पर उसकी हर क्रिया में मरीज का अनुग्रह छुपा रहता है; जो समझ में भले ही न आवे, पर सच्चा और ईमानदार डॉक्टर होना चाहिये।

तो इस प्रकार भगवान् की सुन्दर लीलायें व्रज में चल रही हैं। गोपियों के साथ विहार करते समय एक बार तो एक शंखचूड नाम का दैत्य गोपियों का ही अपहरण करके ले गया। जब गोपियाँ चीखी-चिल्लाईं, तब भगवान् ने दौड़कर उस असुर को एक मुक्का मारा और उसका सिर फट गया, मर गया और उसके सिर से एक चमकती हुई मणि निकली। भगवान् उस मणि को लेकर वापिस आये और बड़े भैया दाऊजी को प्रदान की। दाऊजी अपने छोटे भैया का ये प्रेम देखकर बड़े प्रसन्न हुये।

भगवान् गौचारण करने के लिये सुबह निकलते हैं, तो भगवान् की इस छटा को गोपियाँ जाते हुए देखती हैं और उसके बाद उनका पूरा दिन उसी चर्चा में बीतता है ... अब भगवान् तो वन में दूर निकल गये? तो दिन कैसे कटे, तो गोपियाँ आपस में उन्हीं की चर्चा करते-करते दिवस बिताती हैं। एक सखी कहती है, कन्हैया जब टेढ़े होकर वंशी बजाते हैं, तब कैसे लगते हैं? तो दूसरी उसका जवाव देती है, ऐसे लगते हैं। इसलिये दो-दो गोपियों के आपस का संवाद इस गीत में है इसलिये इसका नाम युगलगीत है। गोपियाँ गीत गाते हुई आपस में चर्चा कर रही हैं,

वामबाहुकृतवामकपोलो वल्गितभ्रुरधरार्पितवेणुम् ।
कोमलाङ्गुलिभिराश्रितमार्गं गोप्य ईरयति यत्र मुकुन्दः ॥ (भा. 10/35/2)

एक गोपी कहती है, सखी! जब हमारे प्यारे बांये कंधे की ओर तनिक गर्दन झुकाकर, अपने कपोल को बांयी ओर तिरछा करके झुकाकर अपने अधरों पर जब वेणु रखकर, जब फूँक मारते हैं और अपनी कोमल-कोमल अंगुलियों से स्वरों को छेड़ते हैं, उन छिद्रों को छेडकर जो स्वर-निनाद करते हैं, उस समय कितने प्यारे लगते हैं? दूसरी बोली, सखी! मत पूछ! उस वंशी की तान को सुनकर अपनी बात तो छोड़, देवांगनाओं के भी होश उड़ जाते हैं। इन्द्र के दरबार में जो अप्सरायें नाच रही हैं और जब वंशी के स्वर उनके कान में पड़ते हैं, तो सब स्वर-ताल- लय भूल जाती हैं और दौड़-दौड़कर विमानों में बैठ-बैठकर देवांगनाओं के साथ देववृंद आकाश में छा जाते हैं। कौन बजा रहा है वंशी? कहाँ बज रही वंशी? सब दौड़कर आ जाते हैं।

व्योमयानवनिताः सह सिद्धैर्विस्मितास्तदुपधार्य सलज्जाः ।
काममार्गणसमर्पितचित्ताः कश्मलं ययुरपस्मृतनीव्यः ॥ (भा. 10/35/3)

अभी तक तो वंशी की तान पर मोहित थीं, पर जब देवांगनायें वंशी वाले का दर्शन करती हैं; तो रहे-सहे होश भी उड़ जाते हैं। कन्हैया की बांकी-झांकी को देखते ही उन्हें अपने वस्त्रों तक को होश नहीं रहता कि

हमारे वस्त्र किधर जा रहे हैं? देह की सुध-बुध सब भूल जाती हैं। एक गोपी बोली, सखी! स्वर का मर्म जानने वाला व्यक्ति यदि संगीत पर मोहित हो जाये, तो आश्चर्य नहीं क्योंकि संगीतज्ञ है। पर हमारे कन्हैया की वंशी के स्वर में तो वह चमत्कार है कि संगीतज्ञ हो-न-हो, वन के पशु तक मोहित हो जाते हैं। इन मृगों को देखो, गायों को देखो, बछड़ों को देखो। कन्हैया की जब वंशी बजती है, तो सब गायें कान खड़े करके शान्त खड़ी हो जाती हैं। मुँह में घास है, पर चबा नहीं पा रहीं है। **'दन्तदष्टकवला धृतकर्णा'** कान खड़े हैं, घास मुँह में दबी है पर ना चबा पा रही हैं, ना निगल पा रही हैं, न उगल पा रही हैं। कान खड़े हैं मानो ऐसे लग रहा है कि जैसे कान के प्यालों में कृष्ण का वह वेणुरव भर-भरकर पी रही हों, वंशी का वह स्वररूपी अमृत कान के प्याले में सँभाल-सँभाल करके खूब पी रही हैं। भाई! कोई चरणामृत दे, तो दोना सँभाल लिया जाता है, हाथ सँभाल लिया जाता है कि एक बूंद भी न टपक जाये, तो अपराध हो जायेगा।

ऐसे ही कानरूपी दोना खड़े करके गोविन्द का वह दिव्यरसामृत वंशी का स्वररूपी अमृत पी रही हैं। वंशी के स्वर पर सारे पशु-पक्षी ऐसे स्थिर हो जाते हैं **'लिखितचित्रमिवासन्'** ऐसा लगता है कि जैसे दीवार पर किसी कलाकार ने चित्र बना दिये हों। हिलना-डुलना भूल जाते हैं, पलकों को गिराना तक भूल जाते हैं। ये स्थिति जब पशुओं की है, तो मानवों का क्या हाल होगा? अरे! मानवों की छोड़ो, जो स्वर के मर्मज्ञ हैं, संगीतज्ञ हैं फिर उनका क्या कहना? वह तो निहाल हो जायें, बेसुध हो जायें। स्वर-संगीत तो जीवित जादू है, जीते जी प्राण हर लेता है और जितना जादू इनके संगीत में है, उससे कहीं ज्यादा इनके सौन्दर्य में है। जो इनकी वंशी की तान पर दीवाने होकर आते हैं और थोड़ी-बहुत कसर यदि रह भी जाती है, तो इनकी रूपसुधा पर दीवाने हो जाते हैं। इतना सुन्दर इनका दिव्य श्रीअंग है।

दर्शनीयतिलको वनमालादिव्यगन्धतुलसीमधुमत्तैः ।
अलिकुलैरलघुगीतमभीष्टमाद्रियन् यर्हि सन्धितवेणु ॥ (भा. 10/35/10)

कन्हैया के ललाट पर जो कस्तूरी-तिलक है, कितना दर्शनीय/सुन्दर लगता है अथवा दर्शनीय अर्थात् दर्शन करने योग्य। संसार में जितने भी दृश्य हैं, जो भी देखने योग्य हैं, लोग दूर-दूर तक भाग-भागकर दर्शन करने आते हैं। भाई! अमुक् चीज बड़ी दर्शनीय है, जरूर देखना चाहिये। तो संसार में जितनी दर्शनीय वस्तुयें हैं, उन समस्त दर्शनीय वस्तुओं में ये तिलक है - सर्वश्रेष्ठ! इसके सामने सब फीके हैं। इनके सामने इनसे बढ़िया दर्शनीय कोई हो ही नहीं सकता। इनके कण्ठ में जो वनमाला है, उसके वन्यपुष्पों की सुगन्ध पर मण्डराते हुए भ्रमरों का जो समुदाय है, ये भ्रमरों का समुदाय गुनगुनाता हुआ कन्हैया के चारों तरफ मंडरा रहा है और कन्हैया भी ऐसे हैं कि जिस स्वर में भौंरे गुंजार करते हैं, उसी स्वर में वंशी का स्वर मिला लेते हैं। भौंरे भी धीरे-धीरे नहीं गुनगुना रहे? धीरे-धीरे नहीं! बहुत तेज उच्च स्वर से भौंरे गुंजार करते हैं और कन्हैया भी अपनी वंशी का स्वर उनके स्वर में मिला देते हैं। भाई! कन्हैया की वंशी बज रही है, भौंरों का गुंजार हो रहा है, पर तबले की कमी पड़ रही है। ताल-वाद्य भी तो कोई साथ में होवे? कौन तबला बजावे? तो आकाश के मेघमण्डल देखते हैं कि हमारे घनश्याम गा रहे हैं और वंशी बजा रहे हैं, तो हम भी पीछे क्यों हटें? वह भी संगीत में अपना स्वर मिलाने के लिये मन्द-मन्द गर्जना करते हैं और इस ढंग से मेघ गर्जना करते हैं, जैसे मृदंग बज रहा हो या तबला बज रहा हो। ज़ोर से गरज बैठेंगे, तो स्वर कहीं मन्द न पड़ जाये। भाई! जिसका गायन या वादन प्रमुख हो रहा हो, तो अन्य वाद्यों को उसके सहयोग में बजना चाहिये? दूसरा अन्य सहयोगी वाद्य इतना तेज न हो जाये कि मुख्य

वाद्य का स्वर ही दब जावे, तो इस समय गायन तो मुख्य रूप से गोविन्द की वंशी का है। आनन्द तो सब वंशी का ले रहे हैं? बाकी जितने कलाकार हैं, वह तो सहयोग दे रहे हैं। इसलिये मेघमण्डल ज्यादा तेज नहीं गरज रहे हैं कि कहीं वंशी का स्वर न दब जाये। इसलिये ऐसा लगता है, जैसे सारी प्रकृति ही स्वर में बद्ध हो गई हो।

ये सारा ब्रह्माण्ड स्वर में और लय में ही तो चल रहा है। सूर्य भगवान् लय में ना चल रहे होते, तो कैसे पता चल जाता कि आज इतने बजकर इतने क्षण पर सूर्योदय होगा? एक लय में न होते तो कैसे निर्णय लिया जाता कि आज चन्द्रमा इतने बजे उदित होगा? तो चन्द्रोदय और सूर्योदय का जो ठीक समय वर्षों पहले ज्योतिषी लोग लिख देते हैं, उसका क्या कारण है? एक लय में जा रहे हैं। घड़ी एक लय में टक-टक कर रही है। अरे! सारी प्रकृति स्वर और लय में बद्ध है। कन्हैया की वंशी ने तो सबको दीवाना कर दिया है। जितने भी बड़े-बड़े संगीताचार्य हैं, इकट्ठे हो जाते हैं और आपस में मन्त्रणा करते हैं, भैया! कौन-सा राग बजाया जा रहा है? किस जाति का है? लाख प्रयास करने पर भी बड़े-बड़े संगीतकार असफल हो जाते हैं, पर वंशी के स्वर का मर्म नहीं समझ पाते। ये संगीताचार्य कौन-कौन हैं - 'शक्रशर्वपरमेष्ठिपुरोगाः'। यहाँ तीन संगीताचार्यो का नाम लिया - 1. शक्र (इन्द्र), 2. शर्व (शंकर) और 3. परमेष्ठि (ब्रह्मा)। ये तीनों ही संगीताचार्य हैं। ब्रह्मा सामवेद के ज्ञाता हैं और सामवेद संगीत से ही भरा है। हमारे भोलेबाबा तो संगीत के महान रसिक हैं और नृत्य करने में तो कहना ही क्या है, नटराजराज हैं। इनके तो डमरू से ही ऐसा संगीत निकला कि पाणिनि व्याकरण तैयार हो गया। और इन्द्र के दरबार में तो गन्धर्वो का नाच-गाना चलता ही रहता है। इसलिये ये तीनों ही संगीत के महान् धुरन्धर आचार्य हैं। परन्तु जब आपस में मंत्रणा करते हैं कि गोविन्द की वंशी में कौन-सा राग है? तो लाख-प्रयास करने के बाद भी कोई निर्णय नहीं ले पाते।

एक गोपी कहती है, आखिर हमारे प्यारे गोविन्द ने ये संगीत सीखा किससे है? किसी से तो सीखा होगा? दूसरी बोली, मुझे तो नहीं मालूम कि किसी संगीत विद्यालय में पढ़ने जाते हों। मैंने तो नहीं सुना, न कभी देखा कि ये किसी गुरुजी के पास बैठकर संगीत की दीक्षा लिये हों, अध्ययन किये हों। तो फिर इन्हें ये वंशी बजाना कहाँ से आ गया? एक बोली, सखी! 'वेणुवाद्य उरुधा निजशिक्षाः' ये सारा ज्ञान हमारे गोविन्द के पेट में भरा है। 'निजशिक्षाः' स्वकीय ज्ञान है, ये किसी से पढ़ने-लिखने नहीं गये? इनके भीतर ज्ञान का भण्डार है। अरे भाई! आप कितने भी बड़े संगीताचार्य हों, कितना भी आपने संगीत का अध्ययन किया हो, ज्यादा-से-ज्यादा भारतीय संगीत में ही तो पारंगत हो सकते हैं? अब कोई विदेशी संगीतकार आकर अमेरिका का संगीत सुनावे, तो आपके पल्ले क्या पड़ेगा? उसके बारे में आप क्या बता पायेंगे? हर देश में अलग-अलग संगीत की विधा है, हर देश की अलग-अलग एक शैली है। जैसे भाषा अलग-अलग, वैसे ही संगीत भी अलग-अलग। अरे! अपने भारत में ही दक्षिणभारत का अलग ढंग का संगीत है, उत्तरभारत का अलग। तो ब्रह्माजी संगीत के कितने भी बड़े ज्ञाता हों? अपने एक ब्रह्माण्ड के संगीत मर्म को ही तो समझ सकते हैं? पर हमारे गोविन्द तो अनन्तकोटि ब्रह्माण्डों के अधिनायक हैं। किसी दूसरे ब्रह्माण्ड का संगीत यदि अपनी वंशी में फूंक दें, तो ब्रह्माजी क्या बता पायेंगे? इसलिये सखी! 'अनिश्चिततत्वाः' कन्हैया की वंशी का ये बड़े-बड़े देवता भी कोई रहस्य नहीं समझ पाते, क्योंकि इनकी संगीत विधायें तो अनेक प्रकार की हैं। ये तो अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड के संगीत के ज्ञाता हैं। इस प्रकार से समस्त गोपियाँ इस युगलगीत में कन्हैया की वंशी का वैशिष्ट्य आपस में एक दूसरे को सुनाती हुई गाती हैं।

इधर एक दिन कंस का भेजा हुआ अरिष्टासुर नाम का दैत्य बैल बनकर आ गया और भगवान् को मारने के लिये दौड़ा। भगवान् ने सींग पकड़कर यूं मरोड़ दिया, जैसे कोई गीले कपड़े को निचोड़ देता है; सोई अरिष्टासुर का उद्धार किया। तभी देवर्षि नारद मथुरा में पहुँच गये। कंस ने बड़ा भारी स्वागत किया, गुरुजी! खूब पधारे!! नारदजी बोले, राजन्! चक्कर क्या है? तुम्हारे चेहरे पर बारह बज रहे हैं? मुँह-लटकाये क्यों बैठे हो? कंस ने कहा, गुरुदेव! क्या बताऊँ? बड़े-बड़े असुरों को मैंने व्रज में भेजा। जाते तो सब हैं, पर आता कोई नहीं। मेरी समझ में नहीं आता कि ये कृष्ण-बलराम आखिर हैं कौन? नारदजी बोले, सुनो राजन्! ये जो कृष्ण-कन्हैया है, ये नन्द के लाला नहीं बल्कि तुम्हारी ही बहिन देवकी के लाला हैं। वसुदेव के द्वारा देवकी के गर्भ से निकले ये सातवें-आठवें पुत्र ही कृष्ण और बलराम हैं, जिन्हें तुम नन्दलाला समझ रहे हो। कंस बोला, अरे गुरुदेव! ये कैसे सम्भव है? वह दोनों मेरे बंदीगृह में थे। उनकी सारे बच्चे मैंने अपने हाथों से मारे हैं। नारदजी बोले, तुम बड़े भोले-भाले हो! तुम्हें अभी तक कुछ नहीं मालूम? वह वसुदेव चुपचाप जाकर नन्दभवन में छोड़ आया था। अब तो क्रोध के मारे कंस का बुरा हाल हो गया।

निशातमसिमादत्त वसुदेवजिघांसया ।
निवारितो नारदेन तत्सुतौ मृत्युमात्मनः ॥ (भा. 10/36/19)

उसी वक्त कंस ने वसुदेव को मारने के लिये तलवार निकाल ली, जिंदा नहीं छोड़ूँगा। उसने मेरे साथ विश्वासघात किया है? नारदजी ने हाथ पकड़ लिया, सुनो-सुनो! अब ये जोश से काम लेने का समय नहीं है, होश से काम लो। उसे जो करना था, वह कर चुका। अब एक काम करो। वसुदेव को यदि तुमने मारा? तो वासुदेव फिर कभी पकड़ में आने वाला नहीं है और उसके माता-पिता तुम्हारे पास जबतक हैं, तबतक उसे आना अनिवार्य है। वह अपने पिता से मिलने आयेगा ही। एक काम करो - तुम ही कुछ ऐसी योजना बनाओ कि वह आ ही जाये। कुछ मेले-ठेले का आयोजन करो। बच्चों का मेले में आने का बहुत मन होता है। और यदि उसका मन न हो, तो तुम किसी बहाने उसे बुलवाओ। तुम यहाँ से जितने असुर भेजते रहोगे, दोनों भैया मिलकर वहाँ एक-एक से तुम्हारे सब असुर मारते रहेंगे। इसके विरुद्ध, यदि तुमने बुला लिया और वह यहाँ आ गये, तो तुम सब मिलकर उन्हें मार लोगे। कंस बोला, हाँ गुरुदेव! ये बात आपने बहुत बढ़िया बताई। आज तक इस दिमाग में ही ये बात नहीं आई? नारदजी ने कहा, हमारी शुभकामनाऐं आपके साथ हैं। ऐसा कहकर नारदजी चल दिये।

कंस ने तुरन्त बड़े-बड़े असुर बुलवाये और आदेश दिया कि वसुदेव-देवकी को पुनः बंदी बनाकर बंदीगृह में डाल दिया जाये, मैं पहले कृष्ण को देखूँ, बाद में इनसे निपटूंगा। अब उन्हें कैसे बुलाया जाये? कौन लेने जाये? ये जरा सोचने वाली बात है। केशी नाम का दैत्य बोला, महाराज! एक बार मुझे मौका मिल जाये तो अच्छा होता। कंस बोला, अच्छा भाई! एक मौका तुम्हें भी दिया। केशी दैत्य चल पड़ा और जैसे-ही केशी यमुनातट पर क्रीडा करते गोविन्द को खा जाने के लिये घोड़ा बनकर, मुँह फाड़कर दौड़ा कि भगवान् ने मुष्टिका बाँधकर पूरा हाथ ही उसके मुँह में डाल दिया। केशी का एक मुक्के में ही कल्याण हो गया।

कंस ने तुरन्त निर्णय लिया कि अब कृष्ण-बलराम को लाने के लिये मैं अक्रूरजी को भेजूँगा। ये उनके चाचा लगते हैं। दूत को भेजकर अक्रूरजी को बुलवाया गया। कंस ने बुलाया है, ये जानकर अक्रूरजी पहले तो बहुत घबड़ाये; फिर डरते-डरते गये, हे भगवान्! न जाने क्या संकट आने वाला है? दुष्ट ने हमें क्यों याद

किया? पर जैसे-ही दरबार में प्रवेश किया कि सब दरबारियों के साथ खड़े होकर कंस ने आगे बढ़कर अभिवादन किया, आइये-आइये मित्र! तुम तो हमें बिल्कुल ही भूल गये -

गृहीत्वा पाणिना पाणिं ततोऽक्रूरमुवाच ह

जब हाथ में हाथ लेकर कंस ने बड़े आदर के साथ दरबार में बैठाया, तो अक्रूरजी की धड़कन तेज हो गई। अक्रूरजी सोचने लगे, दुष्ट ने कभी हमसे ढंग से 'राम-राम' तक नहीं की और आज कितने प्यार से हाथ मिला रहा है? अपने पास बैठा रहा है? **'नवन नीच की अति दुखदायी'** भगवान् जाने क्या संकट आयेगा? सावधान होकर हाथ जोड़कर बोले, सरकार! इस दास को आज कैसे याद कर लिया? कंस ने कहा, मित्र! अब तुमसे क्या छिपाऊँ? मैंने एक बहुत विशाल मेले का आयोजन किया है। मेरी हार्दिक इच्छा है कि तुम मेरा रथ लेकर व्रज में जाओ और वृन्दावन से कृष्ण-बलराम को ले आओ। आजकल बड़ा नाम सुन रहा हूँ। इस मेले में मैंने एक मल्लयुद्ध का भी कार्यक्रम रखा है। वह दोनों बालक बड़े धुरन्धर-बलशाली हैं। तो मैं देखना चाहता हूँ कि उनका बल-पराक्रम कैसा है? अब अक्रूरजी इसका षडयंत्र समझ गये और मन-ही-मन सोचने लगे कि इस मूर्ख को पता चल गया कि कृष्ण ही इसका काल है और फिर भी काल को घर बैठे ही बुलवा रहा है? हाथ जोड़कर बोले, महाराज! एक बात कह दूँ। हर व्यक्ति मनोरथ बड़े ऊँचे-ऊँचे बाँधता है; पर क्या कर पायेगा, ये तो वक्त बताता है।

मनोरथान् करोत्युच्चैर्जनो दैवहतानपि ।
युज्यते हर्षशोकाभ्यां तथाप्याज्ञां करोमि ते ॥ (भा. 10/36/39)

मैं तो आपका सेवक हूँ। आपने जो आज्ञा दी है, तदनुसार सब काम करूँगा। पर आप जो सोच रहे हैं, उनमें से कितने सफल होंगे - ये वक्त बतायेगा। यों कहकर अक्रूरजी चल पड़े। अपने भवन में रात्रि विश्राम किया और प्रातःकाल होते ही श्रीधाम वृन्दावन को चल पड़े। सवेरे के चले हुए शाम को पहुँचे ।

उषित्वा रथमास्थाय प्रययौ नन्दगोकुलम्

अब इतना वक्त कैसे लग गया? भाई! तन तो रथ में था, परन्तु मन के रथ पर पहले ही मनोरथपूर्वक अक्रूरजी महाराज वृन्दावन पहुँच गये -

किं मयाऽऽचरितं भद्रं किं तप्तं परमं तपः ।
किं वाथाप्यर्हते दत्तं यद् द्रक्ष्याम्यद्य केशवम् ॥ (भा. 10/38/3)

आज मैंने कौन-सा शुभ कर्म किया है, कौन-सा कल्याणमयी अच्छा कार्य किया है, जो आज मुझे कृष्णचन्द्रजी का दर्शन प्राप्त होने वाला है? वाह! मैं जानता हूँ कि उनके श्रीचरण कैसे हैं। **'योगिध्येयाङ्घ्रिपङ्कजम्'** बड़े-बड़े योगी ध्यान में उन्हीं चरणों का तो चिन्तन करते हैं, स्मरण करते हैं। उनके चरणों का चिन्तन करने मात्र से अमंगल नष्ट हो जाते हैं। कंस कितना भी बुरा सही, पर मैं तो उसे धन्यवाद दूँगा। अपने घर में आराम में सोया पड़ा था, कंस ने स्वयं दूत भेजकर बुलवाया और अपना रथ देकर परमात्मा से मिलने के लिये भेजा है। तो भगवद्दर्शन में जो भी सहयोग दे, उसे धन्यवाद देना ही चाहिये। मैं तो भाई कंस को हृदय से धन्यवाद देता हूँ। **'कंसो बताद्याकृत मेऽत्यनुग्रहम्'** ये कंस का ही तो अनुग्रह है, जो उसने भेजा। परन्तु यदि कंस ने भेजा है, तो प्रभु मेरी उपेक्षा तो नहीं करेंगे? फिर सोचते हैं, नहीं-नहीं! प्रभु मेरी उपेक्षा कदापि नहीं करेंगे, क्योंकि वह तो भक्तवांछाकल्पतरु हैं, भक्त के मनोरथ कल्पतरु की तरह पूर्ण करते हैं। मुझे विश्वास

है उनका दर्शन मुझे अवश्य मिलेगा। अचानक शुभ शकुन हो गया। ये मृगों का झुण्ड मेरी दाहिनी तरफ से दौड़ता-भागता चला गया। शुभ-संकेत मिला है, मुझे प्रभु का दर्शन निश्चित होगा। कैसा होगा उनका श्रीअंग? मैंने तो आज तक सुना-सुना है, देखा तो कभी नहीं? बड़े विशाल मछली जैसे उनके नेत्र होंगे, विशाल ललाट होगा, रसगुल्ले-जैसे गाल होंगे, तोते की चोंच के-जैसी सुन्दर नासिका होगी, बिम्बाफल की तरह लाल-लाल ओष्ठ होंगे। इस प्रकार कल्पनाओं में खो गये श्रीअक्रूरजी।

द्रक्ष्यामि नूनं सुकपोलनासिकं स्मितावलोकारुणकञ्जलोचनम् ।
मुखं मुकुन्दस्य गुडालकावृतं प्रदक्षिणं मे प्रचरन्ति वै मृगाः ॥ (भा. 10/38/9)

भगवान् के ध्यान में आनन्द की समाधि लग जाती है। अब घोड़े तो तब चलेंगे, जब उन्हें कोई चलावेगा? घोड़े भी शान्त खड़े हो जाते हैं। अक्रूरजी समाधि लगाये रथ में बैठ गये। कई घंटे बीत जाते हैं। जब होश आता है, तब फिर घोड़े हांकते हैं और घोड़े जहाँ चार-कदम और चले कि फिर समाधि लग गई। परिणामतः शाम को पहुँच पाये,

रथेन गोकुलं प्राप्तः सूर्यश्चास्तगिरिं नृप

परीक्षित! सूर्यास्त हो गया वृन्दावन में पहुँचते-पहुँचते, जबकि मथुरा से वृन्दावन को कोई पैदल भी जावे, तो दो-घंटे से ज्यादा न लगें। पर इन्हें रथ से भी इतना समय लग गया। शाम का वक्त था। गौचारण करके गोविन्द वापिस आये थे। गायों के पीछे-पीछे चलते हैं, इसलिये भगवान् के सुन्दर-सुन्दर चरणचिह्न पृथ्वी पर अंकित होते चले जाते हैं। मानो व्रजभूमि से इतना अनुराग है कि गायों के खुर से जो धरती खुद जाती है, उसकी पीड़ा को दूर करने के लिये भगवान् अपने सुकोमल चरणों की मर्हम-पट्टी करते हुये जाते हैं। अपने सुखद चरणों के स्पर्श से पुलकित कर देते हैं और उसकी पीड़ा को दूर कर देते हैं। रथ में चलते-चलते अक्रूरजी ने जो भगवान् के वज्र, अंकुश, ध्वजा, आदि से अंकित चरणों को देखा कि पहचान गये। रथ से कूद पड़े और व्रजरज को नीचे से ऊपर तक अपने अंग में लगाने लगे, ओ हो! ये मेरे प्यारे के चरणचिह्न हैं। मैंने पहचान लिया। अपने प्रिय की हर वस्तु प्रिय लगती है। आज उनके चरणचिह्न को देखते ही प्रेम में इतने डूब गये कि उस रज को ही उठाकर पूरे शरीर में लपेट f त्या। दौड़कर आगे बढ़े तो देखा कि दोनों भैया गैया दुहने की तैयारी कर रहे हैं। शाम का वक्त है, गोदोहन वेला है, दोनों के हाथ में दोहनी है और दोनों भैया गलबहियां डाले हैं। कन्हैया के श्यामवर्ण पर पीताम्बर लहरा रहा है और दाऊजी के गौरवर्ण पर नीलाम्बर लहरा रहा है।

ददर्श कृष्णं रामं च व्रजे गोदोहनं गतौ ।
पीतनीलाम्बरधरौ शरदम्बुरुहेक्षणौ ॥ (भा. 10/38/28)

जैसे शरत्पूर्णिमा में दो चन्द्रमा एक-साथ प्रकट हो गये हों। अक्रूरजी महाराज दौड़ पड़े और प्रभु के पादपद्मों में जाकर लिपट गये। ऐसा प्रेम उमड़ा कि भगवान् छुड़ाने पर भी छुड़ा नहीं पा रहे। बार-बार उठाते हैं, पर उठते ही नहीं। प्रेमाश्रुओं से भगवान् के पादपद्मों का प्रक्षालन ही कर दिया। प्रभु ने जैसे-तैसे उठाकर हृदय से लगाया। दाऊभैया भी अक्रूर चाचा के प्रेम को देखकर गद्गद् हो गये। दोनों भैया हाथ पकड़कर प्रमोदित होकर ले चले, चलो-चलो! चाचाजी आ गये! चाचाजी आ गये!! बड़े प्रेम के साथ हाथ पकड़कर भीतर ले आये। नन्दबाबा ने दौड़कर अक्रूरजी से भेंट की। भगवान् ने दिव्यासन पर उन्हें बैठाकर **'प्रक्षाल्य विधिवत् पादौ'** पाद-प्रक्षालन किया और **'निवेद्य गां चातिथये'** गौमाता का दर्शन कराया। प्राचीन भारत

की परम्परा थी कि घर में कोई अतिथि आवे, तो सबसे पहले गौमाता का दर्शन कराया जाता था। इसके कई उद्देश्य थे। गौमाता के समान पवित्र और कोई है ही नहीं, इसलिये पहले पवित्रतम गौमाता का दर्शन कराना आवश्यक है। दूसरा कारण एक और भी था कि कोई अतिथि संकोच में न पड़े कि हमें चाय की जरूरत है, दूध की जरूरत है, घी की जरूरत है, दही की जरूरत है, छांछ की जरूरत है; तो वह माँगने में सकुचायेगा कि न जाने इनके घर में होगा कि नहीं? इसलिये गौमाता का दर्शन करा दिया जाता था कि गौमाता की कृपा से दूध-दही की कमी नहीं है। आपको जो भी चाहिये, निःसंकोच माँग लीजियेगा। जब चाहिये, तब माँगो; चकाचक दूध-दही है। इसलिये गौमाता का दर्शन पहले ही कराया जाता था, ताकि अतिथि संकोच में न रहे। तो वह सब अतिथिपूजन की पद्धति का भगवान् ने पूर्ण निर्वाह किया। इसके बाद '**अन्नं बहुगुणं मेध्यम्**' विविध प्रकार का भोजन कराया। जब रात्रिविश्राम करने लगे, तो प्रभु चाचाजी के चरण दबाने लगे। अक्रूरजी के तो आनन्द का पारावार नहीं रहा। भक्त जितना सोच नहीं पाता, उतना प्रभु उसे आदर और स्नेह देते हैं। एकान्त पाकर भगवान् ने पूछा, चाचाजी! अब बताइये कि मथुरा में सब कुशल से तो हैं? अक्रूरजी कुछ बोलते ही नहीं। भगवान् बोले, हमनें प्रश्न ही अनुचित कर दिया?

किं नु नः कुशलं पृच्छे एधमाने कुलामये

चाचाजी! यदुवंशियों से कुशलता का प्रश्न पूछना ही गलत है क्योंकि यदुवंशियों के शरीर में जो कंसरूपी कैंसर पैदा हो गया है, उसके रहते कौन कुशल हो सकता है? अक्रूरजी ने कहा, ठीक कहा गोविन्द! इस बीमारी का इलाज करवाने के लिये ही मैं आपके पास आया हूँ। वह रोग आपके हाथों से ही ठीक हो सकता है। कंस का सारा षडयंत्र चुपचाप समझा दिया। भगवान् हंसकर बोले, चाचाजी! जब मामाजी ने हमें याद किया है तो हम मामाजी से मिलने जरूर जायेंगे, परन्तु ये षडयंत्र और किसी को मत सुना देना; अन्यथा यहाँ से निकलना असम्भव हो जायेगा। आप तो केवल मेले में घूमने की ही बात करना। यों समझाकर भगवान् नन्दबाबा के पास आये, बाबा! बाबा! हम तो मथुरा को मेला देखिंगे। नन्दबाबा ने अक्रूरजी से भेंट की और कहा, भैया अक्रूर! मैं कन्हैया कूं अकेलो तो भेजवे वारो नांय? याकूं मेला दिखानो है, तो या के संग में मैं जरूर चलूंगो। मेला भी घूम आइंगे और कंस को कर भी देते आइंगे। नन्दबाबा ने तो पूरे वृन्दावन में दुहाई लगवाय दई, '**जो मथुरा को मेला देखवो चाहे, सबेरे तैयार है जाय**' गली-गली में सबको सूचना पहुँचाय दई।

जहाँ गोपियों के कान में ये समाचार पड़ा कि गोविन्द कल प्रातःकाल मथुरा प्रस्थान कर रहे हैं? सब गोपियों की नींद भाग गई। जिनके दर्शन में पलक गिरने का व्यवधान भी गोपियों को असहनीय हो जाता, उनके जाने की बात सुनकर कैसे रह पातीं? सब गोपियाँ घर-द्वार छोडकर इकट्ठी हो गई, सखी! तूने सुना? दूसरी बोली, हाँ-हाँ! वह ही तो मैं चर्चा करने तेरे पास आ रई थी। अब क्या होगा? एक बोली, वही होगा, जो विधाता ने हमारे प्रारब्ध में लिख दिया होगा। सब गोपियाँ विधाता को ही गालियाँ देने लगीं, ये विधाता बड़ा क्रूर है? चाहे जैसी कलम चला देता है? इसका स्वभाव तो बिल्कुल बच्चों-जैसा है। छोटे-छोटे बच्चे गंगाजी की रेती में बैठकर बढ़िया-बढ़िया घर बनाते हैं, घंटों तक बनाते हैं और बनाते-बनाते जब मन भर जाय, तो एक लात मारकर तुरन्त फोड़ देते हैं। उन्हें बनाने में भी आनन्द आता है और फोड़ने में भी आनन्द आता है। ये विधाता भी हम सबको खिलौना बनाकर ही खेल रहा है। अपनी मर्जी से खेलता है - जब चाहे तब खेला और जब चाहा तब फोड़ दिया। थोड़ी भी दया होती तो ऐसा क्रूर विधान बनाता क्या?

अहो विधातस्तव न क्वचिद् दया संयोज्य मैत्र्या प्रणयेन देहिनः।
तांश्चाकृतार्थान् वियुनङ्क्ष्यपार्थकं विक्रीडितं तेऽर्भकचेष्टितं यथा॥ (भा. 10/39/19)

दूसरी बोली, बहिन! अब विधाता तो हमने देखा नहीं? उसको कोसने से कोई लाभ नहीं। एक बोली, मेरे लिये तो ये अक्रूर यमराज बनकर आया है। ना ये आता, ना कहीं गोविन्द के जाने का प्रश्न था। एक बोली, ये भी ठीक कहा बहिन! इसका नाम अक्रूर नहीं, क्रूर होना चाहिये। सारे व्रजमण्डल की दो आँखें हैं - कृष्ण और बलराम और ये दोनों को निकालकर ले जायेगा - इससे बड़ा क्रूरकर्म और क्या हो सकता है?

क्रूरस्त्वमक्रूरसमाख्यया स्म नश्चक्षुर्हि दत्तं हरसे बताज्ञवत्

एक बोली, बहिन! मैं अपने रहते तो जाने नहीं दूँगी। रथ पकड़ लूंगी अथवा रथ के सामने लेट जाऊँगी। जैसे बनेगा, वैसे श्रीकृष्ण को जाने से रोकूंगी। एक बोली, बहिन! ऐसा कुछ करने से हमारी बहुत बदनामी हो जायेगी। दुनिया वाले सब क्या कहेंगे? ये सब कैसी पागल हैं? लोकलाज का क्या होगा? गोपी बोली, बहिन! जब अपने प्राणप्यारे ही जा रहे हैं, तो लोकलाज भी चला जाये। उसे सँभालकर क्या करेंगे?

निवारयामः समुपेत्य माधवं किं नोऽकरिष्यन् कुलवृद्धबान्धवाः

कुल के वृद्ध बाँधव लोग, जो इसे नाम देना चाहें, जो भी कलंक देना चाहें, जो भी आक्षेप लगाना चाहें; लगाते रहें। पर मैं अपने रहते नहीं जाने दूँगी। यूं चर्चा करते-करते सारी रात गोपियों को नींद नहीं आई। प्रभु के विविध नामों का गान करतीं गोपांगनायें रातभर जागती रहीं।

विसृज्य लज्जां रुरुदुः स्म सुस्वरं गोविन्द दामोदर माधवेति

प्रातःकाल नन्दबाबा तो बैलगाड़ियों में अपने वृद्ध ग्वाल-बालों के साथ मथुरा को प्रस्थान कर गये। पर जैसे ही गोविन्द-दाऊजी के साथ तैयार होकर अक्रूरजी के रथ में बैठने लगे कि गोपियों के धैर्य का बाँध टूट गया और उन्होंने रथ घेर लिया। गोपियों की इस विकलता को देखकर अक्रूरजी घबराय गये और रथ में बैठे भगवान् को इशारा किया, सरकार! मुझे क्या आज्ञा है? ऐसी स्थिति में तो रथ को हांकना असम्भव है। भगवान् तुरन्त खड़े हुये और गोपियों को समझाने लगे,

सान्त्वय मास सप्रेमैरायास्य इति दौत्यकैः

प्रभु विविध भाँति समझाने लगे, देवियों! दिन-रात की तरह संयोग-वियोग आते ही रहते हैं। मात्र दो दिन की तो बात है। आज मैं जाऊँगा, कल अपना मथुरा का मेला घूम लूँगा, परसों अपने घर वापिस - तो दो दिन की बात है। उसमें तुम इतनी अधीर हो रही हो? किसी भी प्रकार से तुम्हें अपने धैर्य की रक्षा करते हुये मुझे विदा करना चाहिये। मैं परसों आ जाऊँगा। गोपियों के कान में शब्द पड़ा '**मैं परसों आ जाऊँगा**', तो गोपियों को एक आशा जगी। आपस में बोलीं, बहिन! हमारे प्यारे मथुरा में जायें तो इन्हें कितना सुख मिलेगा और इनके दर्शन से मथुरावासियों को कितना सुख मिलेगा। अत हमें उस सुख में विक्षेप नहीं डालना चाहिये। ठीक है दो-दिन की बात है? जैसे-तैसे अपना समय बिता लेंगी। यों कहकर गोपियों ने तुरन्त मार्ग छोड़ दिया। अक्रूरजी ने वायु-वेग से रथ एकदम दौड़ा दिया। रथ इतने वेग से एकदम दौड़ा कि भयंकर धूल उड़ पड़ी। तो जबतक वह धूल आकाश को छूती रही, तबतक उसी रथ को निराहरती रहीं

यावदालक्ष्यते केतुर्यावद् रेणू रथस्य च

समस्त व्रजवामायें निर्निमेष नयनों से उस मार्ग को निरन्तर निहारती रहीं। मानों माधव के रथ के साथ

व्रजगोपियों का मन भी मथुरा चला गया हो। पर अक्रूरजी मन-ही-मन विचार करने लगे, धन्य है ये व्रजगोपियाँ! कितना अद्भुत प्रेम था? और ऐसी गोपियों के प्रेमास्पद प्रभु को मैं उस क्रूर कंस के पास ले जा रहा हूँ? कंस तो बड़ा ही निर्दयी है, बड़ा ही दुष्ट है। कदाचित् इनका कुछ भी अहित हो गया, तो मैं इन गोपियों को क्या जवाब दूँगा? ये गोपियाँ तो मुझे कभी क्षमा ही नहीं करेंगी। अक्रूरजी सोच-सोचकर विचार करते हुये जा रहे थे कि निर्मल यमुना का जल दिखाई पड़ा, सो रथ रोक दिया। दोनों भाईयों को रथ में बैठा छोड़कर अक्रूरजी उतरे और जैसे-ही यमुना में डुबकी मारी कि यमुना जल के भीतर दोनों भैया बैठे नज़र आये। उछल पड़े, अरे! इन्होंने भी मेरे साथ छलांग मार दी क्या? उछलकर देखा, तो दोनों भैया रथ में भी। अब तो बड़े चक्कर में पड़ गये, ये दो-दो कृष्ण-बलराम कैसे हो गये? पुन: डुबकी मारी तो भगवान् दिव्य चतुर्भजरूप में प्रकट हो गये। प्रह्लाद, आदि भक्त एवं अनेकानेक देवी-देवता प्रकट होकर प्रभु का स्तवन कर रहे हैं। ये दृश्य देखते ही अक्रूरजी समझ गये, ओ हो! जिन्हें मैं नन्हा-सा नन्दलाला समझ रहा था, अब समझ गया कि ये कौन हैं।

नतोऽस्म्यहं त्वाखिलहेतुहेतुं नारायणं पूरुषमाद्यमव्ययम् ।
यन्नाभिजातादरविन्दकोशाद् ब्रह्माऽऽविरासीद् यत एष लोक: ॥ (भा. 10/40/1)

हे प्रभो! मैं पहचान गया। आप समस्त जगत के कारणों के भी कारण साक्षात् आदिपुरुष नारायण हैं। आपके नाभिकमल से ब्रह्माजी प्रकट हुये, जिन्होंने समस्त संसार की संरचना की। ऐसे हे प्रभु! आपको मेरा प्रणाम है। आप ही त्रिविक्रम बनकर बलि को छलने पधारे, आप ही वराह बनकर पृथ्वी का उद्धार किये, आप ही ने परशुराम बनकर क्षत्रियों का दर्प दूर किया, आप ही श्रीरामभद्र बनकर रावण का अंत करने पधारे। **'नमस्ते रघुवर्याय रावणान्तकराय च'** और आज आप ही चतुर्व्यूह में श्रीकृष्ण-बलराम-प्रद्युम्न-अनिरुद्ध रूप में आपका प्राकट्य हुआ है। बड़ी सुन्दर स्तुति की लौटकर आये और रथ में बैठे प्रभु को आँखें फाड़-फाड़कर देख रहे हैं, ये वह ही हैं जो चार हाथ वाले यमुनाजी में दिख रहे थे?

भगवान् बोले, चाचाजी! ऐसे क्यों देख रहे हो, **'किं ते दृष्टमिहाद्भुतम्'** कोई अद्भुत दृश्य देख लिया क्या? ये आँखें फटी-फटी-सी क्यों हैं? अक्रूरजी चरणों में गिर पड़े, प्रभु! अब ज्यादा लीला ना करना, नहीं तो पागल हो जाऊँगा। आप ही दिखाते हो और आप ही भोले बनकर पूछ रहे हो, ऐसा क्या देख लिया? पर अब कुछ भी हो, सबसे पहले आपको मेरे घर चलना पड़ेगा। भगवान् बोले, चाचाजी! आपका घर तो मेरा ही घर है। अवश्य आऊँगा!! पर पहले मामाजी से तो मिल लूं? प्रभु ने आने का वचन दिया। बातों-ही-बातों में अब रथ मथुराद्वार पहुँच गया। दिन अभी एक प्रहर बाकी है और रथ मथुरा पहुँच गया।

नन्दबाबा ने कहा, अरे कन्हैया बेटा! बड़ी देर लगाय दई तैंने आयबे में? हम अपनी बैलगाड़ियन तें कब तें आय गये? भगवान् बोले, बाबा! हमने तो नेकऊ देर नांय करी, पर चाचाजी ने यमुनाजी में नहायवे में घंटा लगाय दये। तब कोई बात नांय लाला! आराम कर!! कल मेला घूमवे मथुरा चलिंगे। भगवान् बोले, बाबा! अभी तो एक प्रहर बाकी है। आप आज्ञा करो तो कछु आज घूम आयें। बाकी को कल आपके साथ घूम लैंगे। नन्दबाबा बोले, खबरदार! ये अपनो वृन्दावन नायं, जो मुँह उठाय चल दिये। ये कंस की नगरी है। तेरो का भरोसो, कब-कौन सें लड़-भिड़ जाये? मैं न भेजवे वारो। दाऊजी बोले, बाबा! आप मोय आज्ञा देओ, मैं बड़ो समझदार हूँ। काऊ सें झगड़ा नायं होयगो। मैं लाला कूं घुमाय कें तुरतंई रात होवे सें पैलाई आ जाऊंगो। नन्दबाबा समझ गये, छोरन के खूब मन में है। तो ठीक है! मेला-ठेला में तो छोरा-छापरी घूमेंई फिरें? चल ठीक

है बलराम! मैं तो पे तो भरोसा कर लऊं। पर जा पे मोय नेकऊ विश्वास नायं। और देख! ज्यादा रात मत करियो और काऊ सें झगड़ा नांय होय, जल्दी आय जइयो। हाथ पकड़कर दाऊजी चल दिये। श्रीदामा, आदि ग्वाला भी आये हैं। ग्वाल-मण्डली के साथ गोविन्द मथुरा में प्रविष्ट हुये। मिथिलापुरी और मथुरापुरी की लीलायें बहुत कुछ मिलती-जुलती हैं। मिथिलापुरी में रामजी बड़े भाई थे इसलिये गुरुजी से आज्ञा माँगकर लखनलालजी को घुमाने ले गये। अब भगवान् कृष्ण छोटे हैं, दाऊभैया बड़े हैं; सो बाबा से आज्ञा लेकर जा रहे हैं। जैसे-ही मथुरा में प्रवेश किया कि पूरी मथुरापुरी में हल्ला मच गया, ऐ भैया! पूतना को मारवे वारो छोरा आय गयो। कोई कहे, ऐ भैया! सात कोस को गोवर्धन उठायवे वारो लाला आय गयो। जो जब जहाँ सुनता है, वहीं से भागता है।

धाए धाम काम सब त्यागी ।
मनहु रंक निधि लूटन लागी ॥ (रामचरितमानस 1/220/1)

सब अपने गृहकार्यों को छोड़-छोड़कर भाग रहे हैं। अरे सखी! चलो चलो! देखें, वह छोरा कैसे हैं? बड़ो नाम सुन राख्यो है। सब पागलों की तरह भाग रही हैं। अरे! जो देवियां इतनी लाज-मर्यादा में रहती थीं कि घर की देहरी से बाहर नहीं निकलतीं थीं, आज वे मुँह खोले भाग रही हैं, ऐ सखी! वह निकर गयो का? दूसरी कहती है, बांवरी! घर में घुसी अबतक का कर रही है? अब हालई निकलकर गये हैं। जल्दी दौड़!! पागलन की तरह भाग रई हैं और जो बिचारी कैसउ न निकर पाई, वह अट्टालिकाओं में ऊपर सें ही झरोखे सें झांक रई है। और भीड़ में जाते हुये जब गोविन्द किसी गली से निकलते हैं, तो एक झलक पाते ही ऊपर से ही चिल्ला पड़ती हैं, सखी देख! वह गयो कारो-कारो मुरलीवारो! अरे सखी! देखने में तो नेक-सो मालूम चले, पर कितनो सुन्दर, कितनो प्यारो है। मेरी तो समझ में नांय आवे, या नेक से छोरा ने सात-कोस को गोवर्धन कैसे उठाय लियो होयगो? ऐ नेक से डेढ़-हड्डी के छोरा ने इतने-इतने बड़े राक्षस कैसे मारे होइंगे? ऊपर से ही इतनी ज़ोर-ज़ोर से वार्ता करने लगती हैं कि कन्हैया तिरछी निगाह से उधर ही देखने लगते हैं कि हमारे बारे में कौन चर्चा कर रहा है? और जिस पर तिरछी चितवन चला दें, बस वही पागल ह्वै जाये। फिर वह अपने वश में नांय रहे, ऊपर सेंई चिल्लाय पड़ती है, सखी देख-देख! मेरी तरफ कैसें देख रहे हैं? दूसरी कहती है, बावरी! और तूने नांय देखो? मेरी तरफ देख-देखकर तो कैसे मंद-मंद मुस्कुराए रय हैं।

मिथिलापुरी के रामजी में और मथुरापुरी के श्यामजी में यही अन्तर है। मिथिलापुरी के रामजी तो बड़े लजीले-शर्मीले हैं। परन्तु मथुरापुरी के श्यामजी तो बड़े छैल-छबीले हैं। इन्हें काऊ सें नेकऊ संकोच नांय लगे। हठात् सबके चित्त को बलात् अपनी ओर खींचने वाले हैं। इसलिये इनका नाम ही कृष्ण है। **'कर्षयति इति कृष्ण:'**। किसी को नैन मटकाकर, किसी को भृकुटी हिलाकर, किसी को मंद-मुस्कुराकर; सब मथुरा-वासियों के चित्त को चुराते जा रहे हैं। अपनी आँखों के चंचल-चांचल्य से सबके चित्त को चुराते चले जा रहे हैं। इस प्रकार मथुरा की वीथियों में सबके चित्त को चित्तचोर चुराते चले जा रहे हैं। चारों तरफ से सुन्दरियों के द्वारा सुमन-वृष्टियां हो रही हैं। ऐसा लग रहा है कि जैसे अपने सुन्दर मन को ही समस्त सुन्दरियां सुमन के माध्यम से समर्पित कर रही हों। व्रजवासी देख-देखकर बोले, कन्हैया भैया! तेरी बड़ी जय-जयकार ह्वै रई है? कछु रिश्तेदारी मालूम चलै का? भगवान् हंसकर बोले, तुमें पतो नांय? यहाँ के महाराज कंस हैं, मेरे खास मामाजी लगे और मामाजी को भानजो घर में पहली बार आयो है, तो स्वागत नांय करेंगे? व्रजवासी बोले, ओ हो! ये बात है। वही हम सोच रहे हैं कि बड़ी जय-जयकार ह्वै रई है भाई? अरे! तू हमसें कह तो कि मामा के तांई जानो है

तो हम भी बढ़िया बगलबन्दी पहनकर, थापक-थौआ चन्दन पोतकर, इत्र-फुलेल लगाकर, माला-वाला डालकर, अच्छी तरह पक्के व्रजवासी बनकर आते? अब इन कपड़न में तेरे मामा के सामने भिखमंगा नांय लगिंगे?

कन्हैया बोले, तो नाराज़ काय कूं ह्वै रए हो। मामा के यां कोई कमी है का? बोलो! कहा-कहा चाहिये? व्रजवासी बोले, सबसें पहले बढ़िया पोशाक चाहिये। आगे बढ़े ही कि सामने से कंस का धोबी अहंकार से भरा, मूछों पर ताव मारता चला आ रहा था। अधिकारी से ज्यादा चपरासी को अभिमान होता है। अकड़कर चला आ रहा था। निकट आते ही प्रभु मुस्कुराकर बोले, मामाजी राम-राम! धोबी आँखें फाड़कर देखने लगा कि ये मेरा भाजा कहाँ से आ गया? धोबी ने पूछा, क्यों भाई! मामा कैसे बोला? भगवान् हंसकर बोले, अरे! महाराज कंस हैं ना? वह मेरे सगे मामा लगे! तो फिर मामा के गांव में जो मिलें, सो सबरे मामा। या नाते आप भी मामा ह्वै गये! धोबी बोला, अच्छा-अच्छा! तुम्हई कृष्ण-बलराम हो क्या? मुझे सब मालूम है कि तेरे मामा ने तुझे क्यों बुलवाया है। अच्छा भगवान् बोले, तब तो तुमें सब पतो है, तो दो-चार कपड़े नेक अपनी पोटरी में सें दै देओ। नेक बढ़िया से कपड़े पहनकर स्वागत करवायवे में आनन्द आ जायगो। इतना सुनते ही धोबी लाल-पीला हो गया और तमाम गालियां सुना डालीं,

ईदृशान्येव वासांसि नित्यं गिरिवनेचरा

अरे जंगली कहीं के! जंगलों में गायों के पीछे भागते जिंदगी गुजार दी और राजसी वस्त्र तू कभी देखा है, जो पहनेगा? सोई भगवान् ने घुमाकर थप्पड़ मारा और एक थप्पड़ में ही उस रजक का सिर कटकर दूर गिरा।

रजकस्य कराग्रेण शिरः कायादपातयत्

व्रजवासियों ने ज़ोर से जय-जयकार बोली। कन्हैया बोले, व्रजवासियों! छांट लेओ अपने-अपने कपड़ा। खोल-खोलकर पोटली जा कूं जो पसंद आयो, सो निकार-निकार कें पहन लियो। बाकी के सबरे दर्शकन कूं लुटाय दिये, तुमउं पहिनो और प्रेम तें मेला घूमो। पर वह कपड़े पहनकर जब व्रजवासी चलने लगे, तो पूरी सड़क साफ होयवे लगी। व्रजवासी बोले, लाला! कपड़ा हैं तो बड़े चमकीले-भड़कीले, पर देख तो भैया! ये तो रस्ता साफ कर रहे हैं, बड़े ढीले हैं। भगवान् बोले, अब ज्यादा ढीले हैं, तो नेक ऊपर लटकाय लेओ? अपनी मर्जी से छांटे। जब ऊपर लटकायें पकड़े तो ऐसे लगें जैसे हेंगर से टांग दए होंए! अरे कन्हैया! आनन्द न आयो भैया! इन कपड़न में? भगवान् बोले, तो अबे नेक सँभालकर चलो, आगें कछु व्यवस्था देखिंगे। सारे व्रजवासी ढीले-ढाले कपड़े पकड़े चले जा रहे हैं। दर्जी ने देखा तो बड़ी हंसी आई कि ये नया फैशन कहाँ से चल पड़ा? सबके सब ढीले-ढाले कपड़े? भगवान् को देखतेई दौड़ा आया, अरे सरकार! आपकी आज्ञा हो जाये, तो ये ढीले-ढाले कपड़े जो दीख रहे हैं, मैं ठीक कर दऊं? भगवान् बोले, वाह भैया! तेरे मुँह में घी-शक्कर। जल्दी कर भैया! हम तो तोई या देख रए। अरे! आओ-आओ सरकार! मेरा सौभाग्य होगा। सबको अपनी दुकान पर लाकर, सबका नाप लेकर, सबके वस्त्र सिलकर अपने हाथों से पहनाय दिये। व्रजवासियों को जब बढ़िया-व्यवस्थित वस्त्र पहनवे में आय गये, गद्‌गद् ह्वै गये। अरे कन्हैया! आनन्द आय गयो। अब तो या पोशाक में हम ही राजकुमार लग रए हैं। भगवान् बोले, भैया दर्जी! तेनें हमाए व्रजवासी प्रसन्न कर दए। बोल! तो कूं का इनाम दई जाये? दर्जी ने मन में सोचा, धोबी को क्या इनाम मिली, वह तो देख लई? हाथ जोड़कर बोला, सरकार! आपकी दया दृष्टि बनी रहे, मोय कछू नांय चइये, बस आपकी कृपा बनी रए सरकार! भगवान्

बोले, अच्छा! जाओ हमारा आशीर्वाद है कि तुम खूब फलोगे-फूलोगे। सो आजकल आप देखई रए हो कि दर्जी कैसे फल-फूल रए हैं? जितने को कपड़ा, उतने की सिलाई और दूल्हा सरकार की पोशाक होय, फिर तो कहनाई क्या? मालामाल ह्वै गये दर्जी।

भगवान् व्रजवासियों से बोले, भैया! अब तो कोनऊ कसर नांय? व्रजवासी बोले, लाला! आनन्द तो आय गयो या कपड़ा में, पर अभी नेक कसर तो है? व्रजवासियन के गले में जबतक मोटी-सी माला नांय पड़ी होय, तबतक आनन्द ना आवै। व्रजवासी माला के बड़े शौकीन हैं। यदि कहीं नहीं मिलैगी माला, तो स्वयं बाजार में खरीदिंगे और बढ़िया माला खरीदकर बिहारीजी को लै जायकर दिखाय दिंगे, 'जय हो बिहारीजी महाराज!! दूर सेई दिखाय दई और प्रसादी बनाकर पहिन लई।' भगवान् बोले, अच्छा! चलो कछु माला को प्रबन्ध करैं।

ततः सुदाम्नो भवनं मालाकारस्य जग्मतु

मथुरा में एक सुदामा नाम का माली रहता था, जो माधव का अनन्यभक्त था। भगवान् उसके घर पहुँच गये। कितने लोगों ने घर आने को कहा? पर किसी के यहाँ नहीं गये और माली के यहाँ बिना बुलाये ही पहुँच गये क्योंकि वह प्रभु का अनन्य भक्त था। जो माधव का घर में दर्शन किया कि मुग्ध होकर नाचने लगा। जितनी मालायें थीं, सब उठा लाया और उसके पास तो कुछ था भी नहीं, निर्धन था। मोटी-सी एक बढ़िया माला माधव के कण्ठ में डाली। बाकी सारे व्रजवासियों को माला पहनाकर साष्टांग-दण्डवत् प्रणाम करके स्वागत करने लगा। भगवान् ने उसे विशुद्ध-पराभक्ति का वरदान दिया और आगे बढ़ गये। व्रजवासी बोले, लाला! बढ़िया पोशाक मिल गई और गले में मोटी-सी माला गिर गई। पर नेक कसर और है। लाला! तू अच्छी तरह जाने व्रजवासियन के माथे पे जबतक थापक-थौआ चन्दन नांय पुतै, तबतक आनन्द नांय मिलै? चार कदम और आगे बढ़े तो क्या देखा कि तीन जगह से टेढ़ी-मेढ़ी कूबड़ी चन्दन का पात्र लिये चली जाय रई है। बड़ी सुगन्ध आय रई है। देखते ही भगवान् ने आवाज़ लगाई, अरी सुन्दरीजी! कुब्जा ने जिंदगी में पहली बार ये सम्बोधन सुना। सुन्दरी-सम्बोधन सुनते ही तुरन्त पीछे मुड़ी और माधव की छटा देखते ही दौड़ी-दौड़ी चली आई। भगवान् के पास आकर बोली, सरकार! आपने मो तें कछु कहीं का? भगवान् बोले, हाँ सुन्दरी! हम आपको बुलाय रहे हैं। अहोभाग्य महाराज! कहो। भगवान् बोले, पहले तो आप अपनो परिचय देओ कि आप कौन हो? कुब्जा ने प्रसन्नतापूर्वक परिचय दिया,

दास्यस्म्यहं सुन्दर कंससम्मता त्रिवक्रनामा ह्यनुलेपकर्मणि ।
मद्भावितं भोजपतेरतिप्रियं विना युवां कोऽन्यतमस्तदर्हति ॥ (भा. 10/42/3)

महाराज! मैं कंस की दासी सैरन्ध्री हूँ। मेरे हाथ का घिसा हुआ चन्दन पूरे मधूपुरी में इतना प्रसिद्ध है कि भोजपति कंस को भी मेरा चन्दन बहुत पसंद आया। इसलिये दरबार में चन्दन देने की सेवा करती हूँ। भगवान् बोले, महाराज कंस मेरे सगे मामाजी लगे। तो का वह चन्दन आज हमें दे देओगी, जो हमारे मामाजी ऐं दियो करो? कुब्जा बोली, सरकार! ये तो मेरो सौभाग्य है कि मेरे चन्दन को आप लगायेंगे। अरे! आपकी आज्ञा ह्वै जाय तो मेंई लगाय दऊं? भगवान् बोले, वाह! तब तो आपई लगाओ। अब बेचारी तीन जगह से टेढ़ी कुब्जा चन्दन लै लै कर भगवान् के माथे पर लेपन करवे लगी। व्रजवासी भी आगे बढ़वे लगे, हां देवीजी! नेक इत कूं भी। देखते-देखते सबरो चन्दन व्रजवासियन के माथे पे पोत दियो। थोड़े-बहुत टिपकी में तो व्रजवासियन कूं आनन्द आवे नांय? गलछप्पा-सम्प्रदाय व्रजवासियन की अलग पूरा मुँह जबतक चन्दन सें नांय लिपट जाय,

तबतक आनन्द नांय आवे। सब चन्दन पोत लियो व्रजवासियों ने, पूरो पात्र ही खाली कर दियो। व्रजवासी बोले, लाला! या चन्दन में तो बड़ी तरावट है भैया? बड़ी खुशबू है? बहुत आनन्द आय गयो। पर एक बात जरूर कहनी पडेगी - तेने अब वा बेचारी को सबरो चन्दन पोत लियो और दियो-लियो कछु नांय? अरे! दरबार में लै कें जाती, तो कितनो इनाम मिलतो? भगवान् बोले, अरे! ऐसी बात है? हम ऐसी कीमती चीज दैंगे, जो काऊ ने नांय दई होय?

भगवान् तुरन्त कुब्जा के पास आये और पैर के अंगूठे को अपने श्रीचरण के अंगूठे से दबाय कर वा की ठोंड़ी से हाथ लगाय दिये। दाऊजी तो मूं फेरकर बोले, कन्हैया ध्यान राखियो! ये वृन्दावन नांय? भगवान् हंसकर बोले, दाऊभैया! चिन्ता मत करियो मोकूं पूरो ध्यान है। ग्वाला सब हंसकर बोले, कन्हैया! कछु ह्वै जाय, तेरी जोड़ी तो बन गई। तू त्रिभंग और ये त्रिभंगा - तू भी तीन जगह सें टेढ़ो रए और जे भी तीन जगह सें टेढ़ियई दीख रई है। सब ग्वाला हास-परिहास कर रए थे और इतने में भगवान् ने ज़ोर का एक झटका मार दिया और

मुकुन्दस्पर्शनात् सद्यो बभूव प्रमदोत्तमा

कन्हैया के एक झटका में वा के तीनों कूबड़ गायब हो गये और ऐसी जगमगाती दिव्यरूप छटा के साथ प्रकट भई कि देखने वालों की आँखें भौंचक्की रह गई, हे भगवान्! जे छोरा केवल पहलवानई नांय? जादूगर भी है। जन्म की कूबड़ी एक झटका में सीधी कर दई या ने तो। कुब्जा ने प्रसन्नता में नाच उठी, पीताम्बर पकड़कर प्रणय-निवेदन किया, प्रभु! मेरे घर एक दिन आपको अवश्य आना होगा। भगवान् बोले, अवश्य आयेंगे! पर मामाजी से मिल आवें।

अब तो महाराज सब प्रसन्न हो गये। मथुरा के बड़े-बड़े जितने भी उद्योगपति व्यापारी थे, वह सब जगह-जगह पर भगवान् का ताम्बूल, लौंग, इलायची, आदि खिला-खिलाकर स्वागत करने लगे। व्यापारी को दूरदर्शी होना चाहिये। जिसके लक्षण सत्ता में जाते दीखें, उसी से रिश्तेदारी निकालनी प्रारम्भ कर देनी चाहिये। व्यापारियों को समझते देर नहीं लगी कि बालक बड़ा प्रतिभावान् है और हो-न-हो, अब इसी के हाथों से कंस मरेगा और कंस को मारकर यही मथुरानरेश बनेगा। तो क्यों ना अभी से रिश्तेदारी निकाल लें? घर में किसी ने नई बुलाया, कोई भरोसा थोड़ेई है कि सत्ता मिलई जायेगी? इसलिये सब जगह-जगह पर स्वागत-सत्कार भगवान् का करते हुए परिचय निकाल रए हैं।

आगे बढ़े दिव्य-सभागार में पहुँचे, जहाँ पर भगवान् परशुराम द्वारा प्रदत्त कंस का बहुत विशाल धनुष रखा हुआ था। धनुष को देखते ही प्रभु बोले, दाऊभैया! आज्ञा करो, नेक धनुष ऐं छू कें देख लऊं? दाऊजी हंसकर बोले, अपने मामाजी को धनुष है। धनुष के आसपास जो रक्षक-सैनिक खड़े थे, वे सब हंसने लगे, कल का बच्चा! अभी दूध के दाँत गिरे नहीं और महाराज का धनुष उठाने चल दिया। दाऊजी इशारे में बोले, लाला नेक इनकूं उठाय के तो दिखाए दे। तुरन्त आगे बढ़े और

करेण वामेन सलीलमुद्धृतं सज्यं च कृत्वा निमिषेण पश्यताम्

पलक झपकते बांये हाथ से धनुष उठा लिया और जो प्रत्यंचा चढ़ाई कि धड़ाम से दो टुकड़े हो गये। इतना भयंकर शब्द हुआ कि धरती हिल गई और कंस तो बेचारा सिंहासन से गिरते-गिरते बचा। सैनिक सब मारने दौड़ पड़े। दाऊजी बोले, लाला! आधा टुकड़ा जल्दी फेंक और धनुष के ही आधे-आधे टुकड़ों से सैनिकों की वह पिटाई की कि सैनिक प्राण बचाकर भागते ही नज़र आये। कंस के पास पहुँचकर बोले, सरकार! गजब हो

गया। आपके भानजे ने धनुष तोड़ दिया। जो कंस ने सुना कि धनुष तोड़ दिया, तो उसे पक्का विश्वास हो गया कि हमारी भी गारंटी खत्म है क्योंकि भगवान् परशुरामजी ने कहा था, धनुष कोई तोड़ नहीं सकता और जो तोड़ देगा, वह तुझे छोड़ नहीं सकता। इसलिये वह वचन याद आ गया और बहुत घबड़ा गया।

अब तो कंस का ये हाल हो गया कि उसे हर काली चीज में कृष्ण नज़र आते हैं। भोजन करते समय दाल में काला-ज़ीरा भी दीखे, तो थाली फेंक देता है, आ गया! काला-काला! पानी पीते समय काली छाया जल में दीखे, तो लोटा फेंक देगा। सामने वाले की आँखों की काली-पुतलिया में कृष्ण-कन्हैया नाचता नज़र आता है। बताओ ऐसा भजन कौन कर सकता है? भय के द्वारा ही सही, परन्तु कितना भजन कर रहा है? जो चौबीस घंटे भगवान् को ही देख रहा है? रात्रि होने वाली थी, समय पर्याप्त हो चुका था। इसलिये भगवान् लौटकर बाबा के पास विश्रामघाट आये। नन्दबाबा बोले, बेटा! घूम आये हो? भगवान् बोले, हां बाबा! बाबा ने पूछा, लड़ाई-झगड़ा तो नांय कियो? भगवान् बोले, नांय बाबा! चुपचाप बाबा के पास आयके सो गये। अब इधर कंस को नींद कहाँ? थोड़ी-बहुत नींद आ भी जाये, तो भयंकर स्वप्न देखता है।

स्वप्ने प्रेतपरिष्वङ्गः खरयानं विषादनम्

भूत-प्रेत बुला-बुलाकर आलिंगन कर रहे हैं। कभी देखता है कि गधे पर बैठकर शरीर में तेल लगाकर दक्षिण दिशा में जा रहा हूँ। कभी चलते समय परछांई में छिद्र नज़र आते हैं। ये सब मृत्यु के संकेत हैं। प्राणघोष शान्त हो गया। इसलिये कंस का भय और भी कई गुना बढ़ गया।

जैसे-तैसे सवेरा हुआ। नन्दबाबा बोले, लाला! चल। प्रभु बोले, बाबा! आप चलो, हम बाद में आइंगे। नन्दबाबा तो आगे चलकर सभागार में अपने उपयुक्त स्थान पर बैठ गये। बाद में दाऊभैया के साथ गोविन्द चले और जैसे-ही प्रभु ने सभागार में प्रवेश किया, तो दरवाज़े पर कुवलयापीड नामक बड़ा विशालकाय हाथी (जिसमें दस-हज़ार हाथियों का अकेले में बल था) मुख्य दरवाज़े पर खड़ा है। भगवान् बोले, ऐ महावत! हाथी हटाओ, हम भीतर जाइंगे। ऐ! सुनता क्यों नहीं है? हाथी क्यों नहीं हटाता? इतने पर भी नहीं सुना, तो भगवान् ने डाँटा, ऐ! ज्यादा गड़बड़ करेगा, तो एक मुष्टिका में तुझे और तेरे हाथी को सीधा यमलोक का रास्ता दिखा दूँगा।

अम्बष्ठाम्बष्ठ मार्गं नौ देह्यपक्रम मा चिरम्।
नो चेत् सकुञ्जरं त्वाद्य नयामि यमसादनम्॥ (भा. 10/43/4)

भगवान् के हाथ का मरा कोई यमसदन नहीं जाता। तो क्यों '**यमसादनम्**' कहा? '**यमसादनम्**' का मतलब है '**यमैः साध्यते**' यम, नियम, आदि अष्टांगयोगों की सिद्धि से जो गति योगियों को मिलती है, वह एक थप्पड़ में हम तुम्हें दे देंगे। महावत कुपित हो गया। मदांध हाथी खड़ा था, उसमें अंकुश मारकर भगवान् की तरफ दौड़ा दिया। भगवान् ने भी दौड़कर उसके दोनो लम्बे-लम्बे दाँत पकड़कर ज़ोर का झटका मारा। हाथी पूरा बेदान्ती (बिना दाँत का) हो गया। दाऊजी बोले, लाला! एक दाँत मोकूं फेंक। सो एक दाँत दाऊजी की ओर उछाल दिया। दोनों भाईयों ने वाके दाँत से वाकी पीठ एक कर दई। हाथी महावत दोनों ही मार दिये। भगवान् बोले, दाऊभैया! जब दरवाज़े पेई खटपट है, तो भीतर भी गड़बड़ होयगी। खाली हाथ जावौ ठीक नांय, या हाथी के दाँत ए संगेई लै चलैं। तो रक्तरंजित हाथी का दाँत कंधे पर धरकर दोनों भैया भीतर पहुँचे। जो भीतर प्रवेश किया, तो सभा में हज़ारों व्यक्ति बैठे थे। उन लाखों आँखों ने एक साथ भगवान् को देखा और सब अपनी-अपनी भावना से अलग-अलग रूपों में भगवान् का दर्शन कर रहे हैं। शुकदेव बाबा वर्णन करते हैं,

मल्लानामशनिर्नृणां नरवरः स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान्
गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रोः शिशुः।
मृत्युर्भोजपतेर्विराडविदुषां तत्त्वं परं योगिनां
वृष्णीनां परदेवतेति विदितो रङ्गं गतः साग्रजः ॥ (भा. 10/43/17)

श्रुतियां प्रभु को सम्बोधन करती हैं, '**रसो वै सः**'। परमात्मा तो रसस्वरूप है, अतः सारे रस आज एक साथ प्रकट हो रहे हैं। पहलवानों ने देखा, तो ऐसे लगा जैसे साक्षात् कठोर वज्र ही मूर्तिमंत खड़ा है। ये 'रौद्ररस' है। साधारण मानवों ने देखा, देखो! एक विशिष्ट महापुरुष हमारे बीच उपस्थित हुये हैं। ये 'अद्भुतरस' है। सुन्दर स्त्रियों ने देखा तो लगा, जैसे अनंग (कामदेव) अंग धारण करके खड़ा है। ये 'श्रृंगाररस' है। ग्वाल-बाल जो खड़े हैं, ओ हो! हमारो कन्हैया आ गयो! दौड़-दौड़कर सब गले मिलवे लगे। उन्हें अपना सखा दिख रहा है। यहाँ पर 'सख्यरस' और 'हास्यरस' है। जो दुष्ट प्रकृति के राजा सभा में बैठे थे, उन्होंने जब भगवान् को देखा तो उन्हें लगा, जैसे हम सबका शासक खड़ा है। जो गड़बड़ करेगा, उसी की खोपड़ी में हाथी का दाँत पड़ेगा। महाशासक के रूप में प्रभु का दर्शन हो रहा है - ये 'वीररस' है। कंस ने वसुदेव-देवकी को भी सभागार में नज़रबंद करके बैठा रखा है कि तुमने अपने बच्चों को बचाने में कसर तो नहीं छोड़ी। अब देखना! तुम्हारी आँखों के सामने मरेंगे। बंधक बनाये बैठा रखा है, तो दोनों दम्पत्ति आज अपने लाला का दर्शन कर रहे हैं। देवकी-वसुदेव दोनों को दर्शन हो रहा है। आपस में कह रहे हैं, ओ हो! देखो! मैं इतना-सा छोड़कर आया था, आज कितना बड़ा हो गया? वात्सल्य उमड़ने लगा। देवकी मैया के नेत्र सजल हो गये, आज ग्यारह वर्षो के बाद वह इतना-सा लाला मुझे मिला है, पर न तो बेटा कह पा रही हूँ, न पास में जा पा रही हूँ, न अंक से लगा पा रही हैं, इसलिये यहाँ पर दो रस एक साथ प्रकट हो रहे हैं - 'वात्सल्य' और 'कारुण्य'। भोजपति कंस ने देखा तो लगा कि मेरे सामने साक्षात मौत खड़ी है, मेरे सामने कालदण्ड लिये यमराज खड़े हैं - ये भयानक रस है। मूर्खो-अज्ञानियों को भगवान् का दर्शन विराडरूप में हुआ - ये वीभत्सरस है। भगवान् ने अभी-अभी हाथी का दाँत उखाड़ा है, तो उसमें रक्त लगा है और उस रक्त की बूंदे यत्र-तत्र गोविन्द के श्रीअंग में भी लगी हुई हैं। तो रक्तरंजित वह हाथी का दाँत देखकर अज्ञानियों को भगवान् के श्रीअंग में इस रस का भी दर्शन हुआ और ये रस वीभत्स-रस है। बड़े-बड़े अमलात्मा-विमलात्मा सिद्ध-सन्त जो बैठे थे, उन्होंने देखा, ये वही परमतत्त्व है -

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम् ।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ॥ (भा.मा. 1/2/11)

जिस परमतत्त्व को कोई ब्रह्म कहता है, कोई परमात्मा कहता है, कोई भगवान् कहता है; आज वही परमतत्त्व हमारी आँखों के सामने विराजमान है - ये शान्तरस है। जो भोजवंशी, वृष्णवंशी, अंधकवंशी, यदुवंशी सब बैठे हुए हैं, वे भगवान् से अपना नाता जोड़ रहे हैं। कोई कहता है कि ये मेरा भानजा है, कोई कहता है कि मेरा भतीजा है। भगवान् से अपना सम्बन्ध निकालना - ये भक्तिरस है। अपने बड़े भाई दाऊभैया के साथ जब माधव उस रंगभूमि में पधारे, तो भावनानुसार सबने अलग-अलग दर्शन किये। पर चाणूर नाम का दैत्य भगवान् के सामने ताल-ठोककर आ गया,

हे नन्दसूनो हे राम भवन्तौ वीरसंमतौ

ऐ नन्द के छोरा! बहुत नाम सुना है तेरा? चल आ! दो-दो हाथ कर। हमारे महाराज कंस पहलवानी के बड़े

शौकीन हैं। प्रजा का कर्तव्य होता है कि राजा को प्रसन्न करना। आओ हम और आप मल्लयुद्ध के द्वारा महाराज को प्रसन्न करें। भगवान् हंसकर बोले, च्यों रे? थोड़ी बहुत शर्म है तुझे कि बाजार में बेच खाई? मैं नेक-सो छोरा और तेरो पहाड़ जैसो शरीर? अरे! मेरी कुश्ती देखनी है तो मेरो जोड़ीदार कोई निकार?

बाला वयं तुल्यवलैः क्रीडिष्यामो यथोचितम्

भाई! बराबर की कुश्ती होनी चाहिये। ये पहाड़ के साथ तुझसे कौन भिड़ेगा? चाणूर अट्टहास करके हंसा और बोला, क्यों? बातें बनानी बहुत आती हैं तुम्हें? अभी-अभी कुछ पलों पूर्व हाथी का दाँत उखाड़कर ले आये। पता है वह हाथी कौन था? दस-हज़ार हाथियों का बल रखने वाला कुबलयापीड था। खेल-खेल में उसे अनायास मार दिया और फिर भी तुम अपने को बच्चा कह रहे हो? मैं जानता हूँ तुम कौन हो,

न बालो न किशोरस्त्वं बलश्च बलिनां वरः ।
लीलयेभो हतो येन सहस्रद्विपसत्त्वभृत् ॥ (भा. 10/43/39)

इतने बलशाली हाथी को मारने वाला बालक नहीं हो सकता। इसलिये आओ! मुझसे द्वन्द्व-युद्ध करो। छोटे-छोटे ग्वाला दौड़कर आये और बोले, ऐ कन्हैया! घबरइयो मत। हम काय कूं आयें तेरे संग में? होगी सो देखी जायगी, पूतना वारे हाथ दिखाय डार। भगवान् बोले, अच्छा! तुम सबन की इच्छा है? अरे आजा भैया! वैसे हमारे बाबा ने मना कर राखी है, पर तेरी कछु ज्यादई श्रद्धा दीख रई है। तो चल हमऊं मना नांय करें। कन्हैया अखाड़े में कूद पड़े। चाणूर बोला, अरे बलराम! तुम्हारी भी इच्छा हो, तो मेरे भैया मुष्टिकासुर के साथ तुम आ जाओ? दाऊजी बोले, वाह! हम भी येई देख रए थे कि कोई जोड़ीदार मिलै, तो मामाजी ऐं दो-हाथ हमउं दिखाय दयें। '**बलेन सह मुष्टिकः**' दाऊजी मुष्टिकासुर के साथ भिड़ गये। बड़ा भयंकर मल्लयुद्ध अखाड़े में छिड़ गया,

हस्ताभ्यां हस्तयोर्बद्ध्वा पद्भ्यामेव च पादयोः ।
विचकर्षतुरन्योन्यं प्रसह्य विजिगीषया ॥
अरत्नी द्वे अरत्निभ्यां जानुभ्यां चैव जानुनी ।
शिरः शीर्ष्णोरसोरस्तावन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥ (भा. 10/44/2-3)

पंजे-से-पंजे ऐड़ी-से-ऐड़ी बँधी हुई हैं, अद्भुत् मल्लयुद्ध चल रहा है। जो देवियाँ बैठी थीं, सब दुखी हो गई, अरे राम-राम! घोर अनर्थ! महापाप! सरासर अधर्म हो रहा है। छोटे-छोटे बच्चों से इतने बड़े-बड़े पहलवान लड़ रहे हैं? जिन बच्चों की अभी मूछें भी नहीं आई? '**किशोरौ नाप्तयौवनौ**' यौवन भी जिनका नहीं आया है और '**क्व वज्रसारसर्वाङ्गौ**' घोर अधर्म! ऐसी सभा में हम नहीं रहेंगी। बहुत-सी देवियाँ दुखी होकर चली गई, कुछ मन मारकर रह गई। भैया! अपना पक्ष कमज़ोर दिखाई पड़े ना? तो मैच देखने में आनन्द नहीं आता। कहाँ हमारे कृष्ण-कन्हैया इतने छोटे-से और कहाँ इतने पहाड़ जैसे पहलवान? हमें ऐसा मल्लयुद्ध नहीं देखना, ऐसा कहकर उठकर चली गई। कुछ मन मारकर रह गई कि शायद कुछ चमत्कार हो? बहुत चमत्कार सुने हैं? लड़ते-लड़ते बड़ी देर हो गई तो उच्च-सिंहासन पर बैठे कंस को बड़ा क्रोध आने लगा। चाणूर को इशारा किया, मूर्ख! घंटा भर हो गया? ये छोटे-छोटे बच्चों को एक मुक्का मारकर समाप्त क्यों नहीं करता? चाणूर को जोश आ गया। मालिक का संकेत पाते ही दोनों हाथ बाँधकर दौड़ा और पूरी ताकत से भगवान् की छाती में एक मुक्का मार दिया। पर शुकदेव बाबा कहते हैं, परीक्षित! वह मुक्का ऐसे लगा जैसे-मतवाले हाथी को

कोई माला फेंककर मार दे।

नाचलत्तत्प्रहारेण मालाहत इव द्विपः

भगवान् अविचल खड़े रहे और मुस्कुराने के बाद बोले, तूने मुक्का चलाया तो थोड़ी-सी थप्पड़ हमारी भी खा। और यों कहकर भगवान् ने जो घुमाकर एक चांटा मारा कि एक चांटे में चारों कौने चित्त गिरा चाणूर चकनाचूर हो गया। दाऊ महाराज ने भी मुष्टिकासुर को एक मुष्टिका घुमाकर मारी, एक मुष्टिका में ही मुष्टिकासुर मारा गया। शल और तोशल नाम के दो पहलवान और आ धमके, तो दोनों भाइयों ने मिलकर उन दोनों को भी ठिकाने लगा दिया। कूट नाम का दैत्य कूदता हुआ आ गया, तो कन्हैया ने दौड़कर दो-मुक्के मारकर कूट को भी कूट दिया। बाकी के पहलवान अपने-आप ही प्राण बचाकर भागने लगे। अब तो कंस का क्रोध पराकाष्ठा पर पहुँच गया, बंदी बना लो दुष्ट बालकों को! भागने न पावें!! आज मैं अपने हाथों से मारूँगा। इनके बाप नन्द को भी मारूँगा और अपने बाप उग्रसेन को भी मारूँगा। भगवान् समझ गये कि इसका तो काम तमाम हो गया, ये तो बिना मारे ही मर गया? वड़बड़ाने लगा, शब्दशैली बिखर गई, क्रोध में शरीर कांपने लगा। भगवान् ने एक छलांग मारी और मामा कंस के सिंहासन पर खड़े नज़र आये। जवतक वह कुछ सोच पाता, तबतक झपट्टा मारकर सिर के बाल पकड़कर घुमा दिया।

प्रगृह्य केशेषु चलत्किरीटं निपात्य रङ्गोपरि तुङ्गमञ्चात्

सिर के बाल पकड़कर-घुमाकर याद दिला रहे हैं कि मेरी माँ देवकी को विवाह वेला में तूने केश पकड़कर गिराया था? देवकीनन्दन तुझे गिराने आ गया। स्मरण दिलाकर ज़ोर का धक्का मारा। कंस हड़बड़ाकर उच्च सिंहासन से धड़ाम से नीचे गिरा। छाती पर कन्हैया भी कूद पड़े, कंस के रहे-सहे प्राण भी चले गये। कंस का ज्यों ही काम तमाम हुआ, तो कंस के आठ भाई और थे। वे भी सब हथियार लेकर मारने को दौड़े। अकेले दाऊमहाराज ने ही हाथी के दाँतों से आठों को ठिकाने लगा दिया। अब तो चारों तरफ हाहाकार मच गया। कंस की पत्नियाँ अस्ति और प्राप्ति छाती पीट-पीटकर बिलखने लगी। भगवान् ने जैसे-तैसे उन्हें समझाया। नन्दबाबा ने तो दौड़कर लाला को हृदय से लगा लिया, अरे! लाला! तैने इतने बड़े-बड़े दैत्य कैसें मार दिये? मेरी समझ में नांय आवै? कन्हैया बोले, मैंने एकऊ नांय मारो! मोकूं तो एक बंदर दीखो और वा बंदर ने एक-एक धमूकरा धर दियो, सो दारी के सबरे मर गये। नन्दबाबा बोले, ओ हो! लाला तेरी लड़ाई भई और मैंने हनुमानजी याद किये। तोकूं निश्चित हनुमानजी यई दीखे होंगे। वोई पहलवानन के देवता हैं। नन्दबाबा अब भी अपने लाला को नन्हा-सा लाला ही समझ रए हैं। और बाबा से मिलने के बाद तुरन्त भगवान् अपने माता-पिता देवकी-वसुदेव के सम्मुख आये। भगवान् ने अपने माता-पिता को बन्धनमुक्त किया और उनकी वंदना की।

मातरं पितरं चैव मोचयित्वाथ बन्धनात्

देवकी-वसुदेव के मन में बार-बार आता है कि ये तो साक्षात् नारायण है, हम जिसे इतना-सा छोड़कर आये थे। इनका चतुर्भुजरूप भी हमनें देखा था और अभी-अभी चमत्कार भी अपनी आँखों के सामने देख ही लिया। कितने बड़े-बड़े असुर कैसे चुटकियों में समाप्त कर दिये। ये तो साक्षात् जगदीश्वर हैं।

देवकी वसुदेवश्च विज्ञाय जगदीश्वरौ

जगदीश्वर जानकर देवकी-वसुदेव भगवान् की तरफ हाथ जोड़ने लगे। भगवान् को लगा कि ये तो सब गड़बड़ हो रहा है। ये तो सारा रसभंग हो जायेगा। भगवान् ने तुरन्त माया फैलाई और मधुर-मधुर वाणी के द्वारा

माता-पिता की इतनी महिमा गाई कि दोनों-दम्पत्ति का वात्सल्य उमड़ पड़ा। भगवान् कहते हैं, माँ! जो बालक सामर्थ्यवान् होकर भी माता-पिता की सेवा नहीं करता, वह श्वांस लेता हुआ मुर्दे के समान होता है। मैं इतने वर्षों तक आपसे दूर रहा, अब तो मुझे अपनी सेवा का अवसर दीजिये।

मातरं पितरं वृद्धं भार्यां साध्वीं सुतं शिशुम् ।
गुरुं विप्रं प्रपन्नं च कल्पोऽबिभ्रच्छ्वसन् मृतः ॥ (भा. 10/45/7)

अब अपने चरणों की सेवा का सौभाग्य दें। अरे! ये तो हमारा वही लाला हैं। सारी भगवत्ता भूलकर दोनों दम्पत्ति ने दोनों बालकों को हृदय से लगाकर प्रेमाश्रुओं में अभिषिक्त कर दिया। कण्ठ इतना अवरुद्ध हो गया कि दोनों-दम्पत्ति कुछ बोल ही नहीं पाये। भगवान् ने तुरन्त महाराज उग्रसेन को मथुरानरेश घोषित कर दिया। उग्रसेन महाराज के बहुत बार मना करने पर भी जबरदस्ती राजा बनाया। भगवान् कहते हैं, नानाजी! हम यदुवंशी हैं, हम राजा नहीं बन सकते क्योंकि हमारे पूर्वजों को शाप लगा हुआ है। ययातिजी के शाप से,

ययातिशापाद् यदुभिर्नासितव्यं नृपासने

अतः सिंहासन पर तो आपको ही विराजमान होना है। हम आपके सचिव बनकर आपके साथ रहेंगे। उग्रसेन महाराज को मथुरानरेश घोषित कर दिया। अब जितने यदुवंशी कंस के डर से इधर-उधर भाग गये थे, उन्हें लगा कि अरे! हमारे महाराज फिर सत्ता पर आसीन हो गये तो अपने घरों में सब लौट-लौटकर वापिस चले आये। यदुवंशी बेचारे जंगलों में भटकते-भटकते डेढ़-हड्डी के कमज़ोर हो गये थे, बुड्ढे हो गये थे, मुँह में दाँत नहीं थे, बाल सफेद हो गये थे, घास खा-खाकर गुजारा कर रहे थे। परन्तु जब उन्होंने लौटकर गोविन्द की माधुर्यमूर्ति की मुस्कान का अवलोकन किया, तो जितने बुड्ढे थे, सब जवान हो गये। जितने कमज़ोर थे, सब पहलवान हो गये। सबको जोश आ गया कि अब हमारे कृष्ण कन्हैया आ गये। अब हमें किसी का डर नहीं है। ये भगवान् के केवल दर्शनमात्र का चमत्कार है।

तत्र प्रवयसोऽप्यासन् युवानोऽतिबलौजसः ।
पिबन्तोऽक्षैर्मुकुन्दस्य मुखाम्बुजसुधां मुहुः ॥ (भा. 10/45/19)

अब भगवान् एकान्त में नन्दबाबा के पास आये और विविध प्रकार से वस्त्रालंकारों से समलंकृत करके बोले, बाबा! अब आज्ञा मिल जाये तो कुछ-दिन मथुरा में रहकर अपने जन्म देने वाले माता-पिता की और कुछ यदुवंशियों की सेवा कर लूं। कंस के मर जाने से अब कंस का ससुर जरासंध बदला लेने अवश्य आयेगा और ये मथुरावासी सब असुरक्षित हैं। आप आज्ञा करो, तो कुछ दिन इनके बीच में रहकर इन्हें भी सुख प्रदान करने की चेष्टा करूँ। नन्दबाबा गोविन्द के भावों को जान गये। वसुदेव के पास आकर सारे रहस्यों को जानने के बाद दोनों बालकों को वसुदेवजी के हाथ सौंपकर साश्रुकण्ठ व्रजवासियों के साथ अपने वृन्दावनधाम को प्रस्थान किये।

पूरयन्नश्रुभिर्नेत्रे सह गोपैर्व्रजं ययौ

श्रीकृष्ण-बलराम का यज्ञोपवीत एवं गुरुकुल-प्रवेश

यहाँ एक ओर नन्दबाबा को गोविन्द के वियोग का दुख-संताप बना संतप्त कर रहा है, वहीं दूसरी ओर देवकी-वसुदेव प्रभु से मिलकर निहाल हो रहे हैं। देवकी मैया के तो आनन्द का पारावार नहीं है। वसुदेवजी ने सबसे पहले अपने कुल पुरोहित गर्गाचार्यजी को बुलाकर कहा, महाराज! बालकों का शीघ्रता से पहले

यज्ञोपवीत करो। अभी तक बच्चों का जनेऊ भी नहीं हुआ। कृपया इन्हें गायत्रीमन्त्र की दीक्षा प्रदान करो। सो तुरन्त,

गर्गाद् यदुकुलाचार्याद् गायत्रं व्रतमास्थितौ

दोनों भाईयों का विधिवत् यज्ञोपवीत गर्गाचार्यजी ने सम्पन्न किया। गर्गाचार्यजी बोले, वसुदेव! बालक यदि माता-पिता के प्रेम के कारण अशिक्षित रह जायें, ये माता-पिता का सबसे बड़ा दुर्भाग्य है।

माता शत्रुः पिता वैरीः येन बालो न पाठितः ।
न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये बकोयथा ॥ (नीति)

इसलिये पहले इनकी शिक्षा का प्रवन्ध करो, किसी गुरुकुल में पढ़ने भेजो। आजकल बढ़िया गुरुकुल तो उज्जैन में है। मथुरा से दूर तो है, पर सांदीपनि मुनि बड़े अद्भुत कुलपति हैं, उनका गुरुकुल बहुत अच्छा है। तुरन्त रथ में बैठाकर दोनों भाईयों को गुरुकुल के लिये विदा कर दिया। सांदीपनि मुनि के सान्निध्य में रहकर प्रभु ने अल्पकाल में ही सारी विद्याओं को तुरन्त प्राप्त कर लिया। गुरुकुल में ही भगवान् ने सुदामा सखा को अभिन्न हृदय बनाया। जब विद्या में पारंगत होकर प्रभु लौटने लगे, तो गुरुदेव से प्रार्थना की, गुरुदेव! गुरुदक्षिणा में क्या सेवा करूँ? गुरुदेव बोले, बेटा! हमें कुछ नहीं चाहिये। तुम्हारी देने की कुछ इच्छा ही है, तो अपनी गुरुमाता से पूछ लो। ब्राह्मण तो भोले-भाले होते हैं, उन्हें ज्यादा माँगना-वाँगना नहीं आता। पर पंडिताइन बहुत होशियार होती हैं। गुरुजी ने तो कुछ नहीं माँगा, तब भगवान् गुरुमाता के पास गये, माताजी! आप आज्ञा करें, क्या सेवा करूँ? गुरुमाता बोलीं, बेटा! जबसे तू आया था, मैं अपने बच्चे को भूल गई थी। बहुत साल पहले समुद्र किनारे डूब गया था। अब भगवान् जाने कहाँ गया? कहाँ होगा? हमें कुछ नहीं मालूम। पर तेरे आने से मैं उसको भूल गई थी। अब तू जायेगा, तो फिर वह याद आयेगा। यदि मुझे मेरी प्यारी वस्तु तू देना चाहता है, तो मुझे मेरा वही बेटा दे दे।

गुरुमाता की आज्ञा मानकर दाऊभैया के साथ गोविन्द समुद्रतट चल पड़े। समुद्र के सम्मुख आकर आदेश दिया, **'गुरुपुत्र प्रदीयताम्'** हे सागर! हमें गुरुदेव का बेटा लाकर दो। समुद्र प्रकट हो गया और हाथ जोड़कर बोला, सरकार! मुझे इस बारे में कुछ नहीं मालूम, पर मेरे भीतर एक दैत्य छुपकर रहता है, उसने चुराया हो, तो कह नहीं सकता। भगवान् समुद्र में प्रविष्ट हुये और शंख में छुपे हुए उस पञ्चजन दैत्य का वध किया। परन्तु बालक नहीं मिला, पाञ्चजन्य शंख मिल गया। भगवान् उस शंख को लेकर सीधे यमपुरी पहुँचे और यमराज के दरवाज़े पर इतने ज़ोर से शंख बजाया कि यमराज घबड़ा गये दौड़े-दौड़े आये, प्रभु को बाहर आते ही दण्डवत् किया।

लीलामनुष्य हे विष्णो युवयोः करवाम किम्

आप दोनों तो साक्षात्-नारायण हो। कहिये सरकार! इस दास को कैसे याद किया? आपका आगमन यहाँ कैसे हुआ? मैं क्या सेवा करूँ? भगवान् बोले,

गुरुपुत्रमिहानीतं निजकर्मनिबन्धनम् ।
आनयस्व महाराज मच्छासनपुरस्कृतः ॥ (भा. 10/45/45)

अरे राजन्! हमारे गुरुदेव का बेटा यहाँ हो, तो पता लगाओ और हमारे सामने वापिस लाओ। यम बोले, सरकार! यहाँ जो भी आता है, कर्मों में बंधकर आता है। उसने यदि ऐसा कुछ कर्म किया होगा? तो कर्मबंधन में बंधकर आया होगा, तो उसके कर्मों का क्या करूँ? भगवान् बोले, जब हमारी आज्ञा है तो सारे कर्मबंधन खोल दो। मेरी आज्ञा है, तुरन्त लाओ! जब राष्ट्रपति का आदेश हो जाये, तो फांसी से भी मुक्ति मिल जाती है। भगवान् की आज्ञा सब कर्मबंधनों से खोलकर यमराज तुरन्त सब हिसाब-किताब लगाकर और गुरुपुत्र को ढूँढकर यमलोक से वापिस लाये और भगवान् के चरणों में समर्पित कर दिया, लीजिये सरकार! इसके सब बही-खाते बंद कर दिये। भगवान् प्रसन्न हुये और यमराज को आशीर्वाद देकर प्रस्थान किया।

अब एक शंका होती है कि इतनी देर तक दोनों भैया दरवाज़े पर ही खड़े रहे? यमराज ने ये नहीं कहा, महाराज! आप चलकर भीतर बैठिये, तबतक मैं पता लगाकर आता हूँ। थोड़ा समय तो लगेगा? - यमराज जानते हैं कि यदि ये भीतर घुसे तो भीतर जो पापी भरे हैं, इनके दर्शनमात्र से सब इनके घर (वैकुण्ठ) पहुँच जायेंगे। मेरा तो सारा कारोबार ही ठप्प हो जायेगा। इसलिये भगवान् को दरवाज़े पर ही खड़ा रखा और बालक को ढूँढकर यमराज ने बाहर लाकर ही प्रदान किया। प्रभु को प्रणाम करके विदा किया। भगवान् ने गुरुपुत्र लाकर गुरुमाता को भेंट किया। अब इतने वर्षों बाद किसी का पुत्र उन्हें प्राप्त हो जाये? उस माता-पिता के आनन्द का क्या कहना? अनन्त-अनन्त आशीर्वाद देकर गुरुदम्पत्ति ने प्रभु को विदा किया।

गोपी उद्धव संवाद– भगवान् लौटकर मथुरा आये और पूरे चौदह वर्ष तक रहे। परन्तु गोपियों और व्रजवासियों को परसों लौटने का दिया हुआ वचन इतने वर्षों में भी पूरा नहीं हुआ। भगवान् आखिर क्यों नहीं गये? ये प्रश्न सबके मन में उठता है, झूठ क्यों बोले? यदि नहीं आना था, तो उन्हें आशान्वित क्यों किया? और वचन दिया था तो निभाया क्यों नहीं? किसी कारणवश यदि नहीं भी जा सके, सर्वदा के लिये वृन्दावन जाना असम्भव था, तो एक दिन के लिये चले जाते? अरे! एक दिन के लिये जाना भी संभव नहीं था, तो एक दिन के लिये उन्हीं को बुलवा लेते? पर न स्वयं गये, न उन्हें बुलवाया? पर एकदम सम्बन्ध तोड़ लिया? ऐसा क्यों? देखिये! प्रत्येक परिस्थिति की पूर्ण समीक्षा आज के परिवेश में करना तो बहुत कठिन होता है। पर संतों ने इस पर विचार करके जो समाधान दिये, वे इस प्रकार हैं - पहला कारण तो यह है कि कंस को मारते ही जो कंस का ससुर जरासंध है, वह कट्टर दुश्मन बन चुका है और उस समय जरासंध-जैसा शक्तिशाली राजा कोई दूसरा नहीं था। जरासंध के पास अपार सैन्यशक्ति भी थी, बहुत बड़ा बलिष्ठ राजा था। अब भगवान् यदि व्रजवासियों के साथ वापिस वृन्दावन में चले जायें, तो जरासंध के कोप से मथुरा का एक भी सदस्य जीवित नहीं बच सकता। सबको समाप्त कर देता, सारा यदुवंश सामाप्त हो जाता।

एक दिन के लिये ही जाकर वापिस आ जाते? जैसे गुरुकुल पढ़ने गये, तो कुछ तो समय लगा होगा? ऐसे ही कुछ दिनों के लिये वृन्दावन में जाकर ज़रा व्रजवासियों को प्रसन्न कर आते? क्यों नहीं गये? उसका कारण ये है कि प्रभु यदि वृन्दावन में आते-जाते रहे और व्रजवासियों के प्रति अपना प्रेम दिखाते रहे। भगवान् ने ये अपना प्रेम इतना गोपनीय रखा है कि मथुरा में भी किसी को नहीं मालूम कि गोविन्द व्रजवासियों से कितना प्रेम करते हैं? और यदि ये प्रेम उजागर हो गया और जरासंध के कान में ये बात पड़ गई, तो मथुरा का यदि कुछ नहीं बिगाड़ सका, तो व्रजवासियों को समाप्त कर देगा। शत्रु का लक्ष्य होता है, किसी-न-किसी प्रकार से चोट पहुँचाना। मथुरा में तो मथुरावासी किले में सुरक्षित हैं, जरासंध उनका कुछ नहीं बिगाड़ पा रहा है। परन्तु यदि उसे पता चल जाये कि व्रजवासी श्रीकृष्ण के बहुत प्राण-प्यारे हैं, तो वह व्रजवासियों को समाप्त कर देगा। इसलिये भगवान् उस प्रेम को उजागर नहीं करना चाहते।

तो भैया व्रजवासियों को मथुरा ही बुला लेते? मथुरा में ही निवास दे सकते थे? एक बस्ती उनकी भी बसा

लेते? वह भी सुरक्षित हो जाते? पर प्रभु ने ऐसा नहीं किया क्यों? प्रभु को लगा कि यदि व्रजवासियों को मैंने मथुरा बुलाया, तो मथुरा का रस और वृन्दावन का रस भिन्न-भिन्न है। मथुरावासियों ने हमेशा भगवान् का ऐश्वर्य देखा। बड़े-बड़े असुरों को मारते हुये देखा, मथुरा की गद्दी पर उग्रसेन को विराजमान करते हुये देखा; तो मथुरा में भगवान् का जो भी दर्शन करते हैं, वे ऐश्वर्यभाव रखते है। इसके विरुद्ध, व्रज में ऐसा मानने वाला कोई भी नहीं है। व्रजवासियों का माधुर्य-भाव (सख्य-भाव) है। वह भगवान् को भगवान् नहीं मानते, उनके ऐश्वर्य को स्वीकार नहीं करते। मैया को चाहे जितना विराट्-रूप दिखाया हो, पर मैया ने तो पकड़कर ऊखल में बाँध ही दिया? मैया के सामने वह ऐश्वर्य ढह गया। जबकि देवकी मैया का ऐसा पुष्ट-वात्सल्य नहीं है। देवकी मैया ने लाला को हृदय से तो लगाया है, पर पहले तो वह भगवान् ही मान बैठी थी? जैसे-तैसे भगवत्ता को छुपाया तो भी आज मैया लाला को अपना पुत्र मान तो लेती हैं। पर जैसा वात्सल्य पुत्र को देना चाहिये, वैसा नहीं दे पाई क्योंकि बहुत ऐश्वर्य देख लिया है। तो मथुरावासियों का भाव ऐश्वर्य-मिश्रित है और व्रजवासियों का भाव माधुर्य से परिपूर्ण है। अब भगवान् उद्धव-जैसे ज्ञानी सखाओं के बीच गोष्ठी में बैठे हों और वहाँ मधुमंगल, आ आकर बोलें, चल कन्हैया! कबड्डी खेलेंगे। तो माधुर्य और ऐश्वर्य-रस में टकराव हो जाता? उद्धव-जैसे ज्ञानियों को ये व्यवहार तनिक भी पसंद नहीं आता। तो प्रभु को लगा वन का पुष्प वन में ही सुन्दर लगता है। घर में तोड़कर ले आओ, तो मुरझा जाता है। भगवान् को लगा कि जो प्रेम व्रजवासियों में उस वृन्दावन के बीच में है, उसे मथुरा में लाकर यहाँ की भावनाओं के बीच में उसका टकराव न हो जाये। इसलिये भगवान् ने व्रजवासियों को व्रज में ही रखना उचित समझा।

ऐसे अनेक कारण हैं जिससे भगवान् न तो उन्हें बुला पा रहे हैं, ना व्रजवासियों से मिलने जा पा रहे हैं। पर जो गोपियों और व्रजवासियों का प्रेम हृदय में है, वह छुपाते-छुपाते अब बहुत दिन हो गये। किसी के प्रति अतिशय-प्रेम हो तो जबतक उसकी चर्चा किसी से न की जाये, तबतक हृदय हल्का नहीं होता। तो भगवान् को लगा कि मैं जिस प्रेम को गुप्त रूप से इतने दिनों से अपने हृदय में छुपाये घूम रहा हूँ। कम-से-कम कोई एक साथी तो मथुरा में ऐसा बन जाये, जिसे हृदय की बात कह सकूँ? इसलिये भगवान् ने आज ऐसा उपयुक्त साथी उद्धवजी को चुना।[1] उद्धवजी प्रबुद्ध-विद्वान् हैं, बृहस्पति का शिष्य है और मेरा चचेरा भाई भी है। इसलिये उद्धवजी को अपने प्रेम का साथी बनाना चाहा। परन्तु उद्धव प्रेम जानते ही नहीं हैं? वह तो **'तत्त्वमसि'**, **'प्रज्ञानं ब्रह्म'**, **'अयं आत्मा ब्रह्म'**, **'सोऽहम्'**, आदि वाक्यों की समीक्षा करते-करते वेदान्त में इतने पारंगत हो चुके हैं कि वे प्रेमतत्त्व को समझते ही नहीं? तो प्रभु को लगा कि विद्वान् तो बहुत हैं, प्रबुद्ध है। पर एक बार इसे व्रज भेजकर सरस-भक्त और बना दूं। तो मन की बात फिर इससे कह सकूंगा। मेरा एक पक्का-सच्चा सखा मेरे प्रेम की चर्चा सुनने-कहने वाला कोई मेरा हो जायेगा। इसलिये आज भगवान् ने उद्धव को उन प्रेमियों के पास भेज ही दिया।

गच्छोद्धव व्रजं सौम्य पित्रोर्नौ प्रीतिमावह ।
गोपीनां मद्वियोगाधिं मत्सन्देशैर्विमोचय ॥ (भा. 10/46/3)

भगवान् कहते हैं, प्रिय उद्धव! मैं कभी-कभी अपने व्रजवासियों के प्रेम में इतना पागल हो जाता हूँ कि

1. वृष्णीनां प्रवरो मन्त्री कृष्णस्य दयितः सखा।
शिष्यों बृहस्पतेः साक्षात्उद्धवो बुद्धिसत्तमः।। (भागवत 10/46/1)

मुझमें कुछ भी सुध-बुध नहीं रहती। कभी-कभी तो भोजन भी अच्छा नहीं लगता। इसलिये मित्र! एक बार तुम मेरे वृन्दावन चले जाओ, मेरे व्रजवासियों से मिलो और कुछ ऐसा तत्त्वज्ञान उन्हें प्रदान करो कि वे मुझे भुलाकर प्रेमपूर्वक वृन्दावन में रहें। क्योंकि मैं जानता हूँ कि वह मुझे भूले नहीं होंगे। मेरे विरह में गोपियाँ कैसे रह पा रही होंगी, मैं तो सोच-सोचकर परेशान हो जाता हूँ।

धारयन्त्यतिकृच्छ्रेण प्रायः प्राणान् कथञ्चन ।
प्रत्यागमनसंदेशैर्बल्लव्यो मे मदात्मिकाः ॥ (भा. 10/46/6)

प्रिय उद्धव! मुझे तो शंका हो रही है कि न जाने मेरे विरह में वे अपने प्राणों की रक्षा कर पाई होंगी कि नहीं? यदि जीवित भी होंगी तो केवल एक ही आशा से, **'प्रत्यागमनसंदेशैः'** में उन्हें जो वचन देकर आया था कि परसों आऊँगा। संभवतः यही वचन उनकी रक्षा कर रहा होगा। मेरे लौटकर आने की आशा में ही अपने प्राणों को रोके बैठी होंगी। और मैं जा नहीं पा रहा? इसलिये मित्र! तुम जाओ और मुझे ही जो अपनी आत्मा, मुझे ही अपना जीवनधन सर्वस्व जो माने बैठी हैं, उन व्रजवामाओं के पास जाकर मेरा संदेश सुनाओ और अपना उपदेश सुनाकर उन्हें स्वरूपस्थ कर दो। मेरे वियोग के शोक से उनका उद्धार करो।

मन-ही-मन उद्धव ये भी विचार कर रहे हैं कि मुझे भेज रहे हैं? और उन्हें समझाने भेज रहे हैं, जिन्होंने कभी विद्यालय का मुँह भी नहीं देखा होगा? वह निरक्षर अशिक्षित गोपी-ग्वाला गाय-बछड़ा चराने वाले मेरे उस विशुद्ध-वेदान्त की टेढ़ी-भाषा को वहाँ पर कौन समझेगा? लक्षणा, व्यंजना आदि के द्वारा **'तत्त्वमसि'**, आदि महावाक्यों का जब मैं व्याख्यान करूँगा, तो वेदान्त से परिष्कृत मेरी उस उच्चकोटि की भाषा को वहाँ पर कौन समझेगा? परन्तु भगवदाज्ञा है, पालन तो करना ही चाहिये? भगवान् ने तुरन्त अपना पीताम्बर उढ़ाय दिया, मोरमुकुट पहनाय दिया। सांवले-सलौने उद्धव पीताम्बर और मोरमुकुट में तो बिल्कुल कृष्ण-कन्हैया जैसे लगने लगे और भगवान् ने अपना रूप और अपने आभूषण प्रदान करके उद्धवजी को भेजा।

उद्धवजी चल पड़े। चलते-चलते जब उनका रथ वृन्दारण्य में प्रविष्ट हुआ, लाखों गायों के दौड़ने-भागने से इतनी भयंकर धूल उड़ रही थी कि पूरा आकाश धूल से आच्छादित था और उद्धवजी का रथ उस धूल में ढके होने के कारण कोई नहीं देख पाया, किसी को पता नहीं चला कि उद्धव कब आ गये। गौदोहन शब्द दसों दिशाओं को गुंजित कर रहा है। शाम का वक्त है, रथ को दरवाज़े पर छोड़कर उद्धवजी ने ज्यों-ही नन्दभवन में प्रवेश किया, तो सांवला-रूप, मोरपंख और पीताम्बर देखकर नन्दबाबा तो पागल हो गये और दौड़ पड़े। उद्धव को भुजापाश में कसकर हृदय से लगा लिया।

नन्दः प्रीतः परिष्वज्य वासुदेवधियाऽऽर्चयत्

नन्दबाबा को लगा कि मेरा कन्हैया आ गया, इसलिये वात्सल्य उमड़ पड़ा, प्रेमाश्रुओं से उद्धव का अभिषेक कर दिया। जब अलग हटकर ध्यान से देखा तो होश आया, अरे! ये तो कृष्ण-जैसा है, कृष्ण तो नहीं है। तब उद्धवजी ने प्रणाम करके कहा, बाबा! मैं तुम्हारे लाडले कृष्ण का मित्र उद्धव हूँ। मेरा प्रणाम तो स्वीकार करें। बस इतना ही पर्याप्त है। अरे! अपना बेटा परदेश में हो, कदाचित् ना आ सके; तो उसका कोई मित्र भी आ जाये, तो वह भी उतना ही प्यारा लगता है। आज उद्धव के बारे में जब सुना कि ये हमारे कृष्ण का सखा है, सुनते ही नन्दबाबा का वात्सल्य उमड़ पड़ा।

भोजितं परमान्नेन संविष्टं कशिपौ सुखम्

सुन्दर-सुन्दर भोजन करवाया, एकांत कक्ष में ले जाकर विश्राम किया। जब विश्राम करके थकान उतर गई, तब नन्द और यशोदा उद्धवजी के पास आकर बैठ गये। अब विविध प्रकार से कुशलता के प्रश्न पूछ रहे हैं,

कच्चिदङ्ग महाभाग सखा नः शूरनन्दनः

अब देखिये! अपने लाडले कृष्ण का वर्षों बाद कोई सखा आया है। पूछना बहुत कुछ चाहते हैं और बहुत शीघ्र पूछना चाहते हैं, पर एक शिष्टाचार है कि घर में कोई अतिथि आवे तो देखते ही उससे प्रश्नों की झड़ी मत लगाओ। पहले उसके भोजन-पानी का प्रबन्ध करो, उसे विश्राम दो। जब विश्राम प्राप्त करके बैठे, तब अपनी बात कहो - ये मर्यादा है। नन्दबाबा कन्हैया के एक-एक पल के बारे में जानने को उत्सुक हैं, परन्तु अभी व्यवहार निर्वहन कर रहे हैं। और फिर जब प्रश्न किया, तो कृष्ण-कन्हैया के बारे में सबसे पहले सीधा नहीं पूछा, मेरा सखा वसुदेव कुशल से तो हैं? सारे यदुवंशी आनन्द से तो हैं? क्योंकि सबका कलंक कंस था, जो मर गया। लोग तो कहते हैं, मेरे कृष्ण ने कंस मार दिया? पर भैया उद्धव! मैं तो यही कहूँगा कि उसे किसी ने नहीं मारा, उसके पापों ने ही उसे मारा है। वह अपने ही पापों से मरा है। क्योंकि,

साधूनां धर्मशीलानां यदूनां द्वेष्टि यः सदा ॥ (भा. 10/46/17)

चौबीसों घंटे साधु-संतों से और धर्मशीलों से द्वेष रखता था। उसी पाप ने उसे मार दिया और मेरा कृष्ण निमित्त बन गया। इधर-उधर की सारी बातें करने के बाद अब कृष्ण की कुशलता पूछते हैं क्योंकि उद्धवजी के सम्मुख नन्दबाबा जानते हैं कि मैंने सीधी कृष्णचर्चा प्रारम्भ कर दी, तो हो सकता है कि कृष्ण के स्मरणमात्र से मेरा कण्ठावरुद्ध हो जाये और मेरी ऐसी स्थिति बने कि फिर अपनी ही सुध ही न रहे। अतः इधर-उधर की सारी बातों की जब औपचारिकतापूर्ण हो गई, तब अंत में श्रीकृष्ण की चर्चा की।

अपि स्मरति नः कृष्णो मातरं सुहृदः सखीन् ।
गोपान् व्रजं चात्मनाथं गावो वृन्दावनं गिरिम् ॥ (भा. 10/46/18)

प्रिय उद्धव! अब ये बताओ - हमारा कृष्ण मथुरा में आनन्द से तो है? वैसे तो ये प्रश्न करना ही व्यर्थ है क्योंकि अब मथुरा में महलों में उसे गायें चराने के लिये थोड़े-ही जाना पड़ता होगा? अब वृन्दारण्य की तरह इधर-उधर भागना-दौड़ना थोड़े-ही पड़ता होगा? अब तो राजाधिराजों की तरह महलों में उसके खूब ठाठ होंगे। परन्तु उन दिव्य-भव्य भवन-प्रासादों में उसे अपना ये वृन्दारण्य याद आता है कि नहीं? अपनी माता यशोदा का उसे कभी स्मरण आया? कभी उसे गोवर्धन-गिरिराज की सुध आई? कभी यमुना का पुलिन उसे अपनी ओर आकृष्ट किया? अरे! जब वह वृन्दावन आयेगा, हमें तो तभी उसके दर्शन हो पायेंगे।

तर्हि द्रक्ष्याम तद्वक्त्रं सुनसं सुस्मितेक्षणम्

उसकी मंद-मंद मुस्कान देखने के लिये ये नेत्र अत्यंत आतुर हो उठे हैं। एक बार तो हम सारे व्रजवासी भयंकर दावाग्नि की ज्वालाओं में घिर गये थे। पर जैसे-ही हमने ज्वालाओं की पीड़ा से त्राहि-त्राहि करके गोविन्द को पुकारा, तो उद्धव! मेरे कृष्ण-कन्हैया ने सारी अग्नि का पान करके हम व्रजवासियों की रक्षा करी। आश्चर्य होता है कि उन ज्वालाओं को तो शान्त करके हमारे व्रजवासियों को उसने बचा लिया, परन्तु आज तो उसकी ही विरह-ज्वाला में सब व्रजवासियों का ये परिकर संतप्त हो रहा है। क्या इस विरहाग्नि की ज्वाला को शीतल करने नहीं आयेगा? और इतना कहते-कहते '**अत्युत्कण्ठोऽभवत्तूष्णीं**' नन्दबाबा का कंठ इतना रुंध

गया कि वाणी मौन हो गई और यशोदा तो कुछ बोल ही नहीं पा रहीं,

यशोदा वर्ण्यमानानि पुत्रस्य चरितानि च ।
शृण्वन्त्यश्रूण्यवास्राक्षीत् स्नेहस्नुतपयोधरा ॥ (भा. 10/46/28)

लाला की चर्चा सुननेमात्र से मैया का वात्सल्य उमड़ पड़ता है। आँखों से प्रेमाश्रु और स्तनों से दुग्धधारा बहने लग जाती है। दोनों की इस दिव्य वात्सल्यमयी स्थिति को देखकर उद्धव-जैसे ज्ञानी का ज्ञान बहने लगा। उद्धवजी समझ नहीं पा रहे कि मैं उपदेश कहाँ से प्रारम्भ करूँ? और क्या कहूँ? क्योंकि मैं जानता हूँ कि ये जितने भी शास्त्र हैं, जितने भी प्रवचन हैं, उन सबका उद्देश्य एक ही है कि गोविन्द में मन लगे। परन्तु ये दोनों दम्पत्ति तो भगवान् के प्रेम में ही डूबे हुए हैं। अब मैं इन्हें कौन-सा उपदेश दूं? यदि मैं ये कहूँ कि नहीं! नहीं! अपने कृष्ण को भूल जाओ। तो ये तो बड़ा विपरीत उपदेश होगा? सारी दुनिया परमात्मा में मन लगाने का उपदेश देती है, तो इनका मन तो गोविन्द में इतना रचा-बसा है कि अब मैं उस मन को हटा भी नहीं सकता (और हटाना उचित भी नहीं है)। तो अब कौन सा उपदेश दिया जाये? उद्धवजी को प्रशंसा करने के अतिरिक्त कोई उपदेश समझ में ही नहीं आ रहा। तो प्रशंसाओं की झड़ी लगा दी,

युवां श्लाघ्यतमौ नूनं देहिनामिह मानद ।
नारायणेऽखिलगुरौ यत् कृता मतिरीदृशी ॥ (भा. 10/46/30)

धन्य हैं आप दोनों! आपका मानव-जीवन सार्थक हो गया, जो अखिल जगत् के नियामक श्रीमन्नारायण में आपकी इतनी अद्भुत रति है। ऐसी रति-मति-गति सब गोविन्द के ऊपर ही न्यौछावर है। बाबा! पता है? श्रीकृष्ण कौन हैं? बाबा! एक बार जो श्रीकृष्ण का ध्यान कर ले और कहीं अन्तकाल में उनका नामस्मरण कर ले, तो संसार में दुबारा फिर उसे आने की आवश्यकता नहीं पड़ती; वह परब्रह्म ही श्रीकृष्ण हैं। उन्होंने आपको लौटने का वचन दिया है, तो अवश्य आयेंगे। पर एक निवेदन मैं अवश्य करूँगा, बाबा! बुरा मत मानना!! जिस कृष्ण को तुम केवल अपना बेटा समझ रहे हो, वह केवल तुम्हारा बेटा ही नहीं है। वह घट-घटवासी है।

न माता न पिता तस्य न भार्या न सुतादयः ।
नात्मीयो न परश्चापि न देहो जन्म एव च ॥ (भा. 10/46/38)

वह निर्गुण-निराकार-निर्विशेष-निरुपादिक-निरुपम है। जैसे प्रत्येक लकड़ी में आग समाई है, ऐसे ही घट-घट में वह समाया है। जिस लकड़ी का मंथन कर दो, उसी से अग्नि प्रकट हो जाती है। उसी प्रकार, जहाँ तुम्हारी प्रीति भावना पुष्ट हो जाये, वह कृष्ण वहीं से प्रकट हो जाता है। संसार में ऐसी कोई वस्तु नहीं, जो उससे रहित हो। सूक्ष्म से सूक्ष्म और विराट् से विराट् - सबमें वही समाया हुआ है। जो दिखाई पड़ रहा है, जो सुनाई पड़ रहा है, वह सब अच्युत के बिना कुछ भी नहीं है। सब उसी का विविध रूप है।

दृष्टं श्रुतं भूतभवद् भविष्यत् स्थास्नुश्चरिष्णुर्महदल्पकं च ।
विनाच्युताद् वस्तु तरां न वाच्यं स एव सर्वं परमार्थभूतः ॥ (भा. 10/46/43)

ऐसी भी कोई सत्ता है, जो उसके बिना हो? चारों तरफ सब वही तो है। जैसे एक कुंभकार मिट्टी के बर्तन बनाने बैठता है, बहुत सारे बर्तन बनाता है - घड़ा बनाता है, सकोरा बनाता है, कुल्हड़ बनाता है, दीपक बनाता है, मटकी बनाता है, सुराही बनाता है। नाम-रूप तो अलग-अलग हैं, आकृति अलग-अलग है, पर तत्त्वतः सबमें मिट्टी तो एक ही है। ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं है, जिसमें मिट्टी ना हो। सब मिट्टी के ही तो हैं? बाबा! उसी

प्रकार नाम-रूप पृथक-पृथक हैं, पर तत्त्वतः श्रीकृष्णतत्त्व तो सबमें समाया हुआ है। उसके बिना कुछ भी नहीं।

नन्दबाबा बोले, भैया! तेरा उपदेश मेरी समझ में ना आवें। उद्धव! तू कह रहा है कि मेरा कृष्ण साक्षात् ब्रह्म है, परिपूर्ण परमात्मा है। मैं तो एक मोटी-सी बात बताता हूँ, किसी का पागल पुत्र भी घर छोड़कर भाग जाये, जो एकदम निकम्मा हो, घर के लिये भार ही हो ओर ऐसा पुत्र भी घर छोड़कर चला जाये, तो वह कैसा भी बुरा हो, पर माता-पिता का फिर भी लाड़ला होता है। पर जब हमारा कृष्ण-जैसा बेटा (जिसे तू भगवान् कह रहा है) वह जब हमसे दूर चला गया, तो क्या हमें उसका विस्मरण कर देना चाहिये? तू सोच पा रहा है कि ऐसे कृष्ण-जैसे पुत्र को हम भूल पायेंगे? तू कहता है, वह भगवान् है। पर हमें तो कहीं से भी भगवान् नज़र नहीं आता? भगवान् तो जन्म-मरण से छुड़ाने वाला होता है और यशोदा ने तो उसे बाँध दियां था? भगवान् तो योगियों के भी ध्यानगम्य परमशान्त होते हैं, परंतु वह तो महानटखट था? घर-घर में ग्वालिनियों के मटके फोड़ता था? न जाने तू कैसे उसे भगवान् मानता है? हमारी आँखों में तो उसकी भगवत्ता कहीं से भी नज़र नहीं आती? और यदि वह भगवान् जैसा है, तो भगवान् जैसे पुत्र को हम कैसे भूल सकते हैं? हमारे नेत्र उसकी रूपसुधा के रसिक बन चुके हैं और तू कहता है, उसके कोई रूप-रंग नहीं है? इन नेत्रों ने उसकी रूपसुधा का पान किया है। वह नेत्र कैसे मान लेंगे, उसका कोई रूप नहीं है? जिन हाथों ने उसे उंगली पकड़कर चलना सिखाया है, गोदी में उठाकर खिलाया है, वह मेरे अंग कैसे मान लेगा कि उसका कोई आकार नहीं है?

स्थिति बिल्कुल ऐसी है, जैसे कोई प्यास में तड़प रहा हो, पानी की बूंद के लिये तरस रहा हो कि पानी नहीं मिला तो प्राण निकल ही जायेंगे। और ऐसे अत्यंत पिपासू के पास कोई सज्जन आकर पानी की जगह पानी का ज्ञान देने लगे, पानी कहाँ नहीं है भाई! ऊपर देखो! मेघों में पानी ही पानी भरा है। नीचे देखो! धरती में जहाँ खोदोगे, वहीं पानी ही पानी निकलेगा। अरे! अपने भीतर देखो, पानी तुम्हारे भीतर भी है। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश से शरीर बना है, तो जल तुम्हारे भीतर ही है। तो क्या गलत कह रहा है? गलत तो बिल्कुल नहीं है, उसका कहना यथार्थ है। पानी हमारे भीतर है, पानी ही नीचे है, पानी ही ऊपर है। पर क्या इस पानी का ज्ञान हो जाने से प्यास बुझ जायेगी? प्यासा तो एक ही बात कहेगा, मुझे पानी का प्रवचन नहीं सुनना है, मुझे पानी पीना है; क्योंकि मेरी प्यास तो पानी पीकर ही बुझेगी, पानी के ज्ञान से नहीं। उद्धवजी गोविन्द का ज्ञान दे रहे हैं और श्रीनन्दबाबा गोविन्द की उस रूपसुधा के पिपासु बने दर्शन की उत्कण्ठा में लालायित रहते हैं। कैसे तृप्त हो जायेंगे?

भजन - अंखियां हरि दर्शन की प्यासीं

सारी रात उद्धवजी की नन्दबाबा के साथ चर्चा करते-करते यूं ही बीत गई। किसी को भी नींद नहीं आई। प्रातःकाल हुआ स्नान करने के लिये उद्धवजी यमुना की ओर चल दिये। अब प्रातःकाल गोपियों की दृष्टि उद्धवजी के रथ पर पड़ी। सब गृहकार्य छोड़कर दौड़ पड़ीं, सखी! देखो-देखो!! नन्दभवन के दरवाज़े पर ये रथ खड़ा है। मैं पहचान गई। ये वही रथ था, जिसमें बैठकर माधव मथुरा गये थे। तो ये रथ यहाँ कैसे खड़ा है? लगता है कोई आया है। देखते-देखते सब गोपियों ने उस रथ को घेर लिया। रथ भी वही? घोड़े भी वही? लगता है अक्रूर फिर आ गया। एक बोली, अब अक्रूर क्या करने आयेगा? एक ने व्यंग्य किया कि हमारे कृष्ण-कन्हैया को पहले ले गया और हमारे गोविन्द ने उसके मालिक कंस को मार दिया। अब उसका मालिक

कंस मर गया है, तो हमें लेने आया होगा, ताकि हमारे हाथों से पिण्डदान करवा दे।

अक्रूर आगतः किं वा यः कंसस्यार्थसाधकः ।
येन नीतो मधुपुरीं कृष्णः कमललोचनः ॥
किं साधयिष्यत्यस्माभिर्भर्तुः प्रेतस्य निष्कृतिम् । (भा. 10/46/48-49)

आपस में उस रथ को लेकर चर्चा कर रही थीं, तवतक उद्धवजी आ गये और जो उद्धवजी की सांवली-सूरत देखी, पीताम्बर और मोर-मुकुट देखा, '**कोऽयम् अच्युत वेषभूषणः**' अरे! ये तो बिल्कुल हमारे गोविन्द के समान वेशभूषा वाला कौन है? दौड़ पड़ी सब गोपियाँ और उद्धवजी को घेर लिया, हम पहचान गई, तुम हमारे प्यारे के भेजे भए सखा हो? ये पीताम्बर जो है ना, इसकी गन्ध से बहुत परिचित हैं। ये हमारे प्यारे का पीताम्बर है, जो नेत्रों में नाचता रहता है। हमने पहचान लिया, शायद इसलिये ये उड़ाकर तुम्हें भेजा होगा, ताकि हम तुम्हें पहचान सकें।

जानीमस्त्वां यदुपतेः पार्षदं समुपागतम् ।
भर्त्रेह प्रेषितः पित्रोर्भवान् प्रियचिकीर्षया ॥ (भा. 10/47/4)

हम जान गई कि तुम उस यदुपति के भेजे हुये पार्षद हो। अब जरा व्यंग्य देखिये, हमारे प्यारे के भेजे हो या व्रजनाथ के भेजे हो, या गिरधारी के भेजो हो; ऐसा नहीं कहा, '**यदुपतेः**' क्योंकि अब तो यदुवंशी ही उसके लिये सब कुछ हो गये हैं। उन यदुवंशियों के मालिक ने हमारे पास तुम्हें भेजा है? अरे भाई! माता-पिता की याद आ गई होगी? इसलिये भेज दिया? क्योंकि बड़े-बड़े संतों को भी अपने माता-पिता का प्रेम भुलाया नहीं जाता। माता-पिता को कौन भूल सकता है?

स्नेहानुबन्धो बन्धूनां मुनेरपि सुदुस्त्यजः

बड़े-बड़े मुनियों को माता का पिता का स्नेह त्यागना बहुत कठिन होता है। अन्यथा व्रज में अब कृष्ण के लिये स्मरणीय है ही कौन? माता-पिता भी बहुत जर्जरित वृद्ध हो गये हैं। उनकी याद आ गई, यही बहुत है। क्योंकि उसने व्रज को तो ऐसे त्याग दिया, सखी! जैसे-जंगल में आग लगे और सारे जानवर छोड़कर भाग जायें। दूसरी गोपी बोली, हाँ! ठीक कहा बहिन! ऐसे ही छोड़ा है उसने, जैसे पुष्प का पराग लेकर भंवरा उड़कर चला जाता है। एक बोली, जैसे धनहीन पुरुष को गणिका त्यागकर चली जाती है। एक बोली, जैसे ब्राह्मण दक्षिणा लेकर यजमान को आशीर्वाद देकर चला जाता है। एक बोली, जैसे अतिथि भोजन करके घर छोड़कर चला जाता है। इस प्रकार दृष्टांतों की झड़ी लगा दी।

इतने में एक भंवरा गुनगुनाता हुआ किशोरीजी के चरणकमलों की ओर बढ़ा। किशोरीजी के लाल-लाल पादतल कमल के समान चमक रहे थे। भंवरे को लगा, चलो! पुष्प का पराग ले लूं। तो कमलदल की भ्रांति में किशोरीजी के चरणों पर जाकर बैठ गया। गोपियों को लगा, ये भी हमारे प्यारे का भेजा हुआ कोई दूत है। तो भंवरे से ही बातें करने लगीं, इसी का नाम भ्रमरगीत है।

मधुप कितवबन्धो मा स्पृशाङ्घ्रिं सपत्न्याः कुचविलुलितमालाकुंकुमश्मश्रुभिर्नः ।
वहतु मधुपतिस्तन्मानिनीनां प्रसादं यदुसदसि विडम्ब्यं यस्य दूतस्त्वमीदृक् ॥ (भा. 10/47/12)

'**भो मधुप! कितवबन्धो**' ऐ भंवरे! तू उसी कपटी का मित्र है ना? उसी का साथी है? तेरे लक्षण ही हमें बतला रहे हैं कि तुझे उसी कपटी ने भेजा है। मानो भंवरे ने पूछा, क्या लक्षण हैं मेरे? गोपियाँ बोलीं, मथुरा की

सुन्दरियों का कुच-कुमकुम हमारे गोविन्द की माला में लगा हुआ था और उस माला का पराग तूने लिया होगा, तो वही तेरी मूछों पर लग गया। और ऐसा कुमकुम मूछों पर लगाकर हमारे सामने हमें चिढ़ाने आया है? तेरा मतवालापन दूर से ही समझ में आ रहा है। ऐसे लक्षणों से मुँह उठाये चला आया, तुझे शर्म नहीं आयी? खबरदार!! जो हमें छुआ तो, भाग यहाँ से डांट दिया। तेरे सारे लक्षण कृष्ण-जैसे हैं। हम अच्छी तरह जानती हैं, काले सब कपटी ही होते हैं। तू सुनना चाहे तो सुना दें तुझे कृष्ण की कपटकथा? देख बालि और सुग्रीव भाई थे, पर उस काले ने पता है क्या किया? छुपकर बहेलियों की तरह बालि को मार दिया। अरे! बहेलिया भी बंदरों को नहीं मारते। अरे छोड़! उस बंदर की बात। शूर्पणखा तो प्रेम में दीवानी होकर विवाह की बात करने आई थी। विवाह करना तो दूर रहा, बेचारी सुरूपा को कुरूपा बना दिया? अरे छोड़! उसे शूर्पणखा की बात!! बलि तो कितना धर्मात्मा था। बौना वामन बनकर उसको ही लूट लिया। कहाँ तक सुनायें, उसकी कपटकथा। काले सब कपटी होते हैं। वह तो कौओं की तरह हैं। कौआ को खिलाओ, खाता जायेगा। जब पेट भर जायेगा, तो खिलाने वाले की खोपड़ी में चोंच मारकर भाग जायेगा। ऐसा ही कपटी तेरा स्वामी कृष्ण है। कहाँ तक उसकी कपटकथा सुनायें?

मृगयुरिव कपीन्द्रं विव्यधे लुब्धधर्मा स्त्रियमकृत विरूपां स्त्रीजितः कामयानाम् ।
बलिमपि बलिमत्त्वावेष्टयद् ध्वाङ्क्षवद् यस्तदलमसितसख्यैर्दुस्त्यजस्तत्कथार्थः ॥
(भा. मा. 10/47/17)

भंवरा गुनगुनाया। एक गोपी बोली, हमसे पूछ रहा है, एक तरफ कपटी कह रही हो और दूसरी ओर उसी की चर्चा कर रही हो? उनकी चर्चा के बिना रह नहीं पा रही? क्यों करती हो चर्चा? एक गोपी बोली, बस! यही कमी है हममें। हम जानती हैं कि उसकी चर्चा हमें नहीं करना चाहिये क्योंकि जो करेगा, वह बर्बाद होगा। ये जितने भी भिक्षुक हैं, सब कृष्णकथा सुनकर ही बर्बाद हुए हैं। एक बार जो सुन ले, फिर दुनिया में उसका मन कहीं टिकता नहीं। सारे द्वन्द्वधर्म छूट जाते हैं और अंत में दो-दो रोटी माँगता, घर-घर के टुकड़े खाता, बेचारा पक्षियों की तरह विचरण करता है।

बहव इह विहङ्गा भिक्षुचर्यां चरन्ति

भंवरा उड़ गया। एक गोपी बोली, वह जैसे-ही आया, तूने उल्टा-सीधा सुनाना प्रारम्भ कर दिया? वह नाराज होकर चला गया। अब प्यारे को एक-एक बात सुनायेगा। उनके मन को इतना कष्ट पहुँचेगा? सब गोपियाँ विकल हो गई और पुकारने लगीं, अरे भंवरे! वापिस आ जा! हम कान पकड़कर माफी माँगती हैं। भंवरा लौटकर आ गया, तो गोपियाँ गद्गद् हो गई। **'प्रियसख पुनरागाः'** आओ-आओ भैया! आसन बिछा दिया बैठो, विराजो! क्या करें बहुत दिनों का आवेश भरा था। तुझे देखकर ना जाने क्या-क्या उल्टा-सीधा कह दिया, ये सब बातें, वहाँ मत कहना। ये तो सब हमारी नाराजगी थी, जो बातों से निकल गई। अब तू सच-सच बोल, हमारे प्यारे हमारी कभी बात करते हैं? हमारी चर्चा करते हैं? यदि चर्चा करते हैं, तो बोल! क्या कहते हैं? अरे! प्रशंसा न करते हों, पर कभी-कभी मथुरा की सुन्दरियों के बीच में इतनी चर्चा तो जरूर करते होंगे कि तुम तो बड़ी सुशिक्षित हो। हम व्रज में रहे, वहाँ पर सब गंवार-ग्वालिनियां थीं। किसी को कुछ आता जाता ही नहीं था? तो निन्दा की स्थिति में ही सही, पर कभी चर्चा तो उनके बीच चलती ही होगी? तो कौन-सी चर्चा चलती है?

क्वचिदपि स कथा नः किङ्करीणां गृणीते

ये सारी बातें सुन-सुनकर उद्धवजी के होश उड़ गये, हे भगवान! जिन्हें मैं अशिक्षित गंवार-ग्वालिनी समझकर आया था, ये तो सब व्रजवामायें जानती हैं कि वही कृष्ण है, वही राम है, वही वामन है। इतने भगवान् के दिव्य अवतारों का प्रसंग ये स्मरण कर रही हैं। इसका मतलब कि श्रीकृष्ण को ये केवल नन्द का लाला नहीं, तत्त्वतः उनके स्वरूप को जानती हैं। उद्धव-जैसा ज्ञानी उन कृष्णाश्रित गोपियों के चरणों में गिर गया,

अहो यूयं स्म पूर्णार्था भवत्यो लोकपूजिताः ।
वासुदेवे भगवति यासामित्यर्पितं मनः ॥ (भा. 10/47/23)

धन्य हो देवियों! जो तुम्हारा चित्त भगवान् वासुदेव में इतना समर्पित है। आज मुझे लगा कि कृष्णभक्ति के बिना जीवन कितना अधूरा है? दान, तप, होम, जप, स्वाध्याय, संयम ... जितने भी साधन हैं, उन सबके द्वारा **'कृष्णे भक्तिर्हि साध्यते'** श्रीकृष्ण की भक्ति ही प्राप्त होती है। जप-अनुष्ठान करके भी यदि कृष्णभक्ति नहीं मिली, तो **'श्रम एव हि केवलम्'** सब बेकार है। संत-वैष्णवलोग भोजन में नमक को 'रामरस' कहते हैं। भोजन बहुत सुन्दर है, पर सब्जी में यदि रामरस न गिरे? सब बेकार स्वाद ही चला जाता है। उसी प्रकार जीवन में सब कुछ पा लिया, पर रामरस नहीं मिला, तो जीवन भी बेकार है। गोस्वामीजी के शब्दों में देखें -

बुद्धि बड़ी चतुराई बड़ी और सुन्दरता तन में प्रगटी है,
मान बड़ौ धन धाम बड़ौ यश कीरति हूं जग में प्रगटी है।
झूमत द्वार गजेन्द्र हज़ार सो इन्द्रहूं से कछु नाहिं घटी है,
तुलसी जगदीश की भक्ति बिना जैसे सुन्दर नारि की नाक कटी है॥

दिव्यातिदिव्य अलंकारों से समलंकृत सुन्दरी हो, पर नासिकाविहीन हो जाये, तो सारा सौन्दर्य चौपट हो जाता है। ऐसे ही जीवन में सर्वस्व पा लिया, पर गोविन्द की भक्तिप्रीति प्राप्त नहीं हुई; तो सब कुछ पाना व्यर्थ ही रहा। उद्धव-जैसे ज्ञानी को पूरे छह महीने लग गये, **'उवास कतिचिन्मासान्'** छः महीने तक उद्धव को होश नहीं रहा कि मुझे वापिस भी जाना है। घंटेभर को उपदेश देने आये थे, पर छः महीने बाद जब होश आया तो गोपियों की चरणरज को माथे से लगाया और कहा, हे प्रभु! अबतक जीवन में और जन्म-जन्मान्तरों में जितने भी पुण्य किये हों, वे समस्त सुकृतों का एक ही फल चाहूँगा।

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम् ।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम् ॥ (भा. 10/47/61)

श्रुतियां इस प्रकार का निरुपण करते-करते **'नेति-नेति'** कहते मौन हो जाती हैं, **'इदमित्थं'** कहकर नहीं बता पातीं, वही ब्रह्मतत्त्व व्रजवासियों के लिये किस प्रकार से सुलभ है। कैसे इनके रोम-रोम में वह आसन जमाये बैठा है। अब मेरा जब भी जन्म हो, श्रीधाम-वृन्दावन में ही होना चाहिये। भले ही वृन्दावन का कीट-पतंग, गुल्म, लता, औषधि जो चाहो, सो बनाओ; पर व्रज से बाहर मत भेजना। गोपियों के चरणों की धूल का कण भी बन जाऊँ, तो कृतार्थ हो जाऊँगा।

वन्दे नन्दव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः ।
यासां हरिकथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम् ॥ (भा. 10/47/63)

इन व्रजवामाओं की चरणरज को शत-शत नमन करता हूँ, जो त्रिभुवन को परमपावन कर रहीं हैं। इसीलिये व्रज के रसिक-संत कहते हैं, उस ब्रह्म को वेदों में कहाँ ढूँढ़ते फिर रहे हो? वृन्दावन के वृक्ष-वृक्ष के

नीचे आकर ढूँढ लो।

वृन्दावन के वृक्ष को मरम न जाने कोय ।
डाल-डाल और पात-पात पे राधे-राधे होय ॥

धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज कहा करते थे कि वृन्दावन के वृक्ष के सामने कल्पतरु भी तुच्छ है। कल्पवृक्ष सब कुछ दे सकता है, परन्तु प्रभु को थोड़े-ही दे सकता है? पर वृन्दावन के नीचे बैठकर तो साक्षात् प्रिया-प्रीतम की युगल-छटा देखने में समर्थ हो सकते हो। जो सामर्थ्य कल्पवृक्ष में नहीं है, वह वृन्दावन के वृक्ष में है। कल्पवृक्ष तो स्वर्ग के भोग दे सकता है, प्रिया-प्रियतम से नहीं मिला सकता। और ऐसे अनेकों प्रामाणिक-प्रसंग व्रज में हैं, जिन्होंने कलिकाल में भी वृन्दावन के तरुवर के नीचे प्रिय-प्रियतम का दर्शन प्राप्त किया है।

छ: महीने के बाद उद्धवजी उस व्रजरज को वन्दन करके मथुरा वापिस लौटे। भगवान् बोले, आओ! ज्ञानीजी महाराज! आपने ऐसा कौन-सा तत्त्वज्ञान दिया, जो छ: महीने लगा दिये? उद्धवजी बोले, बात मत करो! तुम कितने निष्ठुर हो, ये आज पता चल गया। भगवान् बोले, उद्धव! तुम्हारी तो भाषा ही बदल गई? इतने दिनों में तुम्हारा तो व्यवहार बदल गया? ये तुम्हें क्या हो गया? प्रभु ने दौड़कर हाथ पकड़ा, मित्र! इतने दिनों के बाद आये हो, फिर भी सीधे मुँह बात नहीं कर रहे? अरे! जल्दी-जल्दी बताओ, किस-किससे बातें हुई? कौन-कौन-से मिले? मैया ने क्या कहा? बाबा ने क्या कहा? गोपी-ग्वालों ने मेरे प्रति क्या संदेश दिया? और उद्धवजी जिसके भी बारे में कुछ कहना चाहते हैं, उसको याद करते ही उद्धवजी का गला रुंध जाता है, नेत्र बरसने लगते हैं; कुछ बोल ही नहीं पाते। भगवान् ने अपने प्रिय सखा को हृदय से लगाकर कहा, मित्र! बस यही प्रेम मैं तुम्हारे जीवन में देखना चाहता था। अब केवल मैं अकेला नहीं, तुम भी मेरे प्रेमी सखा बन गये। इसीलिये मैंने तुम्हें उस प्रेमनगरी में भेजा था। अब तुम मेरे भक्तों का दर्शन करो। नेत्र बंद कराये तो नेत्र बंद करते ही उद्धवजी ने देखा कि प्रिया-प्रियतम एक साथ झूले पर विराजमान हैं। अनेक सखियां मिलकर चारों तरफ से छत्र-चंवर डुलाय रही हैं और लाड़-लड़ाय रही हैं। प्राकृत नेत्रों से ही प्राकृत-वस्तु देखी जा सकती है। वृन्दावन भी दिव्य है, **'अदृश्यम् चर्म चक्षुषा'** जो इन चर्म-चक्षुओं से दिखाई नहीं पड़ता। भगवान् ने जब अनुग्रह किया, तो जैसे अर्जुन को दिव्यदृष्टि देकर विराट्-रूप दिखाया। ऐसे ही उद्धव को दिव्यदृष्टि देकर अपना दिव्य व्रजधाम और व्रजवासियों का दर्शन कराया।

भजन - छाय रही अजब बहार रे झूलें बांके बिहारी

इस प्रकार प्रभु ने श्रीउद्धवजी को व्रजगोपियों के मध्य वृन्दावन भेजकर उनके ज्ञान में प्रेम का पुट लगवा दिया। और अब ऐसे प्रेमी सखा उद्धव को साथ लेकर प्रभु कुब्जा के घर गये। उसका मनोरथ पूर्ण किया और एक दिन अक्रूरजी के घर को भी पावन किया।

दशम स्कन्ध-उत्तरार्द्ध

श्रीशुकाचार्यजी अब श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध के उत्तरार्ध में प्रवेश करते हुए कहते हैं, परीक्षित! प्रभु द्वारा कंस के उद्धार के पश्चात् जब कंस की पत्नियां अस्ति और प्राप्ति अपने पिता जरासंध के पास गई और अपने वैधव्य का कारण भगवान् श्रीकृष्ण को बताया, तो जरासंध ने कुपित होकर तेईस अक्षौहिणी सेना के साथ मथुरा पर आक्रमण बोल दिया। अपार सेना भगवान् ने जरासंध की समस्त सेना का संहार कर दिया और जरासंध को जीवित छोड़ दिया। इस प्रकार लगातार जरासंध ने सत्रह आक्रमण किये, पर भगवान् उसे बार-बार छोड़ देते हैं। जरासंध जब अठारहवीं बार मथुरा पर आक्रमण कर रहा था, तो इधर नारदजी ने योजना बनाई और जरासंध के साथ कालयवन म्लेच्छों के राजा को भगवान् से युद्ध करने भेज दिया। पूरी मथुरापुरी को भगवान् सहित घेर लिया। भगवान् उसे देखकर बिना कोई आयुध लिये नगर से बाहर निकल पड़े।

निर्जगाम पुरद्वारात् पद्ममाली निरायुध:

कोई आयुध हाथ में नहीं लिया। कालयवन श्रीकृष्ण को पहचानकर पकड़ने के लिये दौड़ा, तो भगवान् ने दौड़ लगाई और दौड़ते-दौड़ते एक गुफा में घुस गये। उस गुफा में महाराज मुचुकुन्द सो रहे थे, उन्हें अपना पीताम्बर उड़ाकर भगवान् छुप गये। कालयवन ने पीताम्बर को पहचानकर भगवान् कृष्ण समझकर सोये हुये महाराज मुचुकुन्द को ज़ोर से लात मारी। मुचुकुन्द जाग गये और उनकी दृष्टि पड़ते ही कालयवन भस्म हो गया। शुकाचार्यजी कहते हैं, परीक्षित! देवासुर संग्राम में मुचुकुन्द ने देवताओं का सहयोग दिया और वरदान में माँगा - मुझे विश्राम चाहिये। देवताओं ने कहा, यहाँ विश्राम कीजिये। जो आपको असमय जगावेगा, वह भस्म ही हो जायेगा। तो आज भगवान् ने मुचुकुन्द के द्वारा कालयवन को भस्म कराया। मुचुकुन्द ने भगवान् की स्तुति की और भक्ति का वरदान माँगा, तो भगवान् ने मुचुकुन्द महाराज को अगले जन्म में अपनी पावनभक्ति का वरदान दिया। संतों की मान्यता है कि वे ही मुचुकुन्द कलिकाल में फिर नरसी भगत बनकर प्रकट हुये, जिन्हें भगवान् की अविरल-भक्ति का अधिकार प्राप्त हुआ। परमभक्त नरसीजी भगवान् के अद्भुक्त भक्त थे, जिनके लिये भगवान् सावलशाह सेठ बनकर आये।

कालयवन का अन्त करवाकर प्रभु वापिस मथुरा लौटकर पहुँचे। उधर दाऊमहाराज ने अपने हल-मूसल से उन म्लेच्छों का संहार कर डाला, जो कालयवन के साथ आये थे। ज्यों ही विश्राम किया कि जरासंध अठारहवां आक्रमण करने आ पहुँचा। भगवान् बोले, दाऊजी! अब तो लड़ते-लड़ते थक गये, कहीं भाग चलो। दाऊजी बोले, कैसी बात कर रहे हो? जरासंध सत्रह बार हारा बैठा है। हम भागेंगे, तो वह पूरी मथुरा को मिट्टी में मिला देगा। भगवान् बोले, दाऊभैया! चिन्ता न करो। मैंने समुद्र में टापू के ऊपर एक द्वारिका पुरी का निर्माण करा दिया है। सबको वहाँ भेज देंगे और इसे पागल बनाकर हम और आप भाग चलेंगे। दाऊजी बोले, बदनामी होगी, लोग रणछोड़ कहेंगे। भगवान् बोले, एक नाम और बढ़ जायेगा। जहाँ माखनचोर कहते हैं, चीरचोर कहते हैं, तो रणछोड़ भी कह लेंगे। दाऊजी बोले, भैया! तेरी लीला तू जान। अठारहवें युद्ध में जरासंध से लड़ते-लड़ते प्रभु भाग ही लिये और दाऊजी भी भाग लिये। जरासंध आश्चर्यचकित रह गया। प्रवर्षणपर्वत पर प्रभु और दाऊजी चढ़ गये, तो जरासंध ने पूरे पहाड़ को घेर के आग लगवा दी, सारे पहाड़ को भस्म कर दिया। भगवान् उसी

पर्वत से समुद्र में पहुँचकर सीधे द्वारिका पहुँचे। उधर तो भगवान् द्वारिकाधीश बनकर ठाठ से विराजे हुये हैं, यहाँ जरासंध ने पूरे पहाड़ को जब भस्म कर दिया, तो उसे विश्वास हो गया कि मैंने दोनों को भस्म कर दिया। विजय का शंख बजाकर मगधदेश लौटा। जरासंध ब्राह्मणों को अनुष्ठान पर बैठाकर आया था कि अबकी बार मेरी विजय अवश्य होनी चाहिये, सो हो भी गई। भगवान् ने ब्राह्मणों का महत्व बढ़ा दिया और जरासंध ब्राह्मणों का बड़ा अद्भुत भक्त बन गया। ग्यारह-वर्ष की अवस्था में वृन्दावन छोड़कर प्रभु मथुरा पधारे, चौदह वर्ष मथुरा में रहकर असुरों का उद्धार किया। और आज पच्चीस-वर्ष की अवस्था में प्रभु द्वारकाधीश बने। दाऊभैया का विवाह महाराज रेवतजी की पुत्री रेवती महारानी के साथ हुआ और द्वारकाधीश बनकर प्रभु का प्रथम विवाह भगवती लक्ष्मीस्वरूपा रुक्मिणीजी के साथ सम्पन्न हुआ। परीक्षित बोले, एक क्षण महाराज! इस विवाह के बारे में मैंने बड़ी विचित्र बात सुनी है?

भगवान् भीष्मकसुतां रुक्मिणीं रुचिराननाम् ।
राक्षसेन विधानेन उपयेम इति श्रुतम् ॥ (भा. 10/52/18)

हमने ऐसा सुना है कि हमारे प्रभु द्वारकाधीश का प्रथम विवाह रुक्मिणीजी के साथ राक्षस-विधि से हुआ था। शुकदेवजी मुस्कुराये, बिल्कुल ठीक सुना था परीक्षित! ऐसा ही हुआ था। परीक्षित ने कहा, तो ज़रा बताइये तो महाराज! ये विधि क्यों अपनाई? शुकदेव भगवान् बोले, सुनो राजन्!

श्रीकृष्ण–रूक्मिणी विवाह :–

राजाऽऽसीद् भीष्मको नाम विदर्भाधिपतिर्महान् ।
तस्य पञ्चाभवन् पुत्राः कन्यैका च वरानना ॥ (भा. 10/52/21)

विदर्भदेश के राजा भीष्मक की एक बेटी थी, जिनका नाम है रुक्मिणी। भीष्मकजी के पाँच बेटे थे - रुक्मी, रुक्मरथ, रुक्मबाहु, रुक्मकेशी तथा रुक्ममाली। पाँचों भाईयों की इकलौती बहिन थी रुक्मिणी। नारदादि महात्माओं के द्वारा द्वारकाधीश की निरन्तर महिमा सुनकर भीष्मकजी के मन में अपनी बेटी के लिये सुयोग्य वर समझ में आ गया। पाँचों पुत्रों से परामर्श लिया, पुत्रों! तुम भी समझदार हो गये हो। मेरा तो मन हो रहा है, क्यों ना द्वारकाधीश-कृष्ण से तुम्हारी बहिन का विवाह कर दिया जाये? तुम्हारा क्या विचार है? और तो कोई कुछ नहीं बोला, पर बड़ा बेटा रुक्मी बिगड़ गया, पिताजी! उस रणछोड़-भगोड़े से मैं अपनी बहिन का विवाह कभी नहीं होने दूँगा। अरे राम-राम! ठीक है! ठीक है! अब ज्यादा व्याख्या न कर बेटा!! जब तेरा यही निर्णय है, तो अब जहाँ भी सम्बन्ध करना हो, वहाँ तू ही करना। मैं कोई चर्चा नहीं करूँगा!! रुक्मी बोला, ठीक है पिताजी! आप आराम करो। बेटा उठकर गया और दूसरे दिन लौटकर कहता है, पिताजी! परसों बारात आ रही है। राजा भीष्मक चौंके, परसों बारात आ रही है? इतनी जल्दी? सम्बन्ध कहाँ पक्का किया? रुक्मी बोला, पिताजी! मेरा निर्णय कोई ऐसा-वैसा नहीं होता? सिंधुनरेश दमघोषपुत्र शिशुपाल के साथ सम्बन्ध पक्का करके आया हूँ। मैंने उसे समझा दिया है, परसों वह बारात लेकर आ जायेगा। भीष्मकजी बोले, ठीक है बेटा! जैसी तेरी इच्छा। पर रुक्मिणीजी के कान में जब ये समाचार पड़ा, तो परेशान हो गई, हे भगवान्! मेरे मन में तो कोई और बैठा है। और ये मैं क्या सुन रही हूँ? भाभीजी के सामने रोते-रोते मन की सारी बात कह दी। भाभियों ने समझाया, बहिन! ऐसे रोने से काम नहीं चलेगा। जल्दी कुछ करो। कुछ न बने तो कम-से-कम एक पत्र ही डाल दो? ठीक है! रुक्मिणीजी ने कलम उठाकर तुरन्त एक बड़ा सुन्दर भाव-भरा पत्र सात-श्लोकों में

लिखा और एक ब्राह्मण को बुलाकर प्रणाम करके कहा, महाराज! ये पत्र नहीं, मेरे प्राण समझो। शीघ्रातिशीघ्र मेरे प्राणनाथ-प्रभु को द्वारिका में जाकर ये पत्र प्रदान करो। पण्डितजी पत्र लेकर वेग-से दौड़े और द्वारिकापुरी के दुर्गम-दुर्ग में प्रविष्ट होकर पहुँचे।

दरबार में जैसे ही ब्राह्मण को आते हुये देखा कि भगवान् ने खड़े होकर स्वागत किया, आईये! आईये पण्डितजी महाराज! आपका स्वागत है। बड़े आदर के साथ हाथ पकड़कर अपने अन्तःपुर में ले गये। स्नानादि से निवृत्त करवाकर सुन्दर भोजन कराया,

तं भुक्तवन्तं विश्रान्तमुपगम्य सतां गतिः

भोजन, आदि से निवृत्त करवाकर जब ब्राह्मणदेवता विश्राम करने लगे, तो चरण दबाते हुये भगवान् बोले, पण्डितजी! अब बताइये,

कच्चिद् द्विजवरश्रेष्ठ धर्मस्ते वृद्धसम्मतः

ब्राह्मण जब भी मिलते थे, तो भगवान् सबसे पहले यही प्रश्न करते हैं, तुम्हारा धर्म-कर्म ठीक चल रहा है? तुम्हारे धर्माचरण में कोई विघ्न-बाधा उपस्थित तो नहीं हो रही? ब्राह्मणों का यही कुशल-क्षेम है। ब्राह्मणों के कर्त्तव्य में बाधा उत्पन्न हो, यही सबसे बड़ी पीड़ा ब्राह्मणों की होती है। धर्म-कर्म ठीक चल रहा हो, तो फिर कोई चिन्ता नहीं। भगवान् कहते हैं, जो राजा अपने राज्य में ब्राह्मणों की सेवा करता है, उस राजा से मैं भी प्रसन्न रहता हूँ। और जो ब्राह्मण संतुष्ट रहता है, उसे तो मैं सर्वस्व समर्पित कर देता हूँ।

असन्तुष्टोऽसकृल्लोकानाप्नोत्यपि सुरेश्वरः ।
अकिञ्चनोऽपि संतुष्टः शेते सर्वाङ्गविज्वरः ॥ (भा. 10/52/32)

भगवान् कहते हैं कि जो असंतुष्ट है, उसे अनेकानेक लोकों का राज्य-वैभव भी मिल जाये, फिर भी परेशान रहता है। इसके विरुद्ध, घर में फूटी-कौंड़ी भी न हो, एकदम अकिंचन हो; परन्तु यदि हृदय उसका संतोषी है, तो उसके समान धनवान् कोई नहीं है। उसके मन में कभी कोई पीड़ा होती ही नहीं है। क्योंकि सबसे ज्यादा जीव को परेशान करने वाली उसकी कामनाऐं हैं। अब महाराज! ये बताइये! आप मेरे इस दुर्गम-दुर्ग में पधारे हैं, तो कोई विशेषकार्य से ही आये होंगे?

सर्वं नो ब्रूह्यगुह्यं चेत् किं कार्यं करवाम ते

आप कौन-से गोपनीय कार्य से आये हैं? कृपया बतायें। पण्डितजी ने तुरन्त रुक्मिणीजी का पत्र निकालकर भगवान् के हाथ में थमा दिया, जल्दी से पढ़ लीजिये महाराज! समय बहुत कम है। पत्र पढ़कर आप सब समझ जायेंगे। भगवान् बोले, पण्डितजी! आप ही सुना दीजिये। पण्डितजी बोले, महाराज! आपका प्राइवेट (निजी) पत्र है। राजसभा में कोई राजनैतिक पत्र नहीं है, जो सबको सुना दूँ। भगवान् बोले, ब्राह्मण! आज तक कोई भी रहस्य मैंने अपने ब्राह्मणों से कभी नहीं छुपाया। इस पत्र में जो भी रहस्य हो, आप निस्संकोच खोलिये और पढ़कर सुनाइये। पण्डितजी ने पढ़ना प्रारम्भ किया। रुक्मिणीजी पत्र में लिख रही हैं,

श्रुत्वा गुणान् भुवनसुन्दर शृण्वतां ते निर्विश्य कर्णविवरैर्हरतोऽङ्गतापम् ।
रूपं दृशां दृशिमतामखिलार्थलाभं त्वय्यच्युताविशति चित्तमपत्रपं मे ॥ (भा. 10/52/37)

रुक्मिणीजी ने दो सम्बोधन किये - '**हे अच्युत**' और '**हे भुवनसुन्दर**' आप त्रिभुवनसुन्दर हैं। आपकी महिमा मैंने बहुत ज्यादा सुनी है, देखा कभी नहीं। पर आपकी प्रशंसा सुनते-सुनते मेरे हृदयपटल पर आपका

एक सुन्दर-सा चित्र अंकित हो गया है। मैंने अपने हृदय में एक काल्पनिक-चित्र बना लिया है। मेरे कान तो सुन-सुनकर तृप्त हो रहे हैं, पर नेत्र तरस रहे हैं। मेरे नेत्रों को वह परम लाभ ना जाने कब प्राप्त होगा? कब आपके दर्शन मिलेंगे? अब आप सोच रहे होंगे, भेंट कभी हुई नहीं? आमना-सामना कभी हुआ नहीं? और ये पत्र इतनी जल्दी कैसे डाल दिया? रुक्मिणीजी लिखती हैं, प्रभु! मैंने तो आपका चित्र अपने हृदय में बना लिया और आपको ही अपना जीवन-धन सर्वस्व मान लिया। परन्तु दुर्भाग्य से परसों ही मेरी बारात कहीं और से आ रही है। ऐसा न हो कि शेर के भाग को कोई गीदड़ उठाकर ले जाये। इसलिये आपको सावधान कर रही हूँ कि आईये! वीरता का शुल्क देकर मुझे यहाँ से ले जाइये। आप कहोगे कि वीरता तो हम दिखायेंगे, पर तुम्हारा हरण करने के लिये तो तुम्हारे भाईयों पर ही हाथ उठाना पड़ेगा। तुम्हें अच्छा लगेगा क्या? तो रुक्मिणी कहती हैं, प्रभो! ऐसा न करना। मेरे भाईयों का वध करके, फिर आप मुझे लेने आयें, ये नहीं करना। इसका भी एक उपाय है -

अन्तःपुरान्तरचरीमनिहत्य बन्धूंस्त्वामुद्वहे कथमिति प्रवदाम्युपायम् ।
पूर्वेद्युरस्ति महती कुलदेवियात्रा यस्यां बहिर्नववधूर्गिरिजामुपेयात् ॥ (भा.मा 10/52/42)

हमारी कुल-परम्परानुसार जिस कन्या का विवाह होता है, वह विवाह के पहले गिरिजामन्दिर में पूजन करने जाती है। उस परम्परानुसार मैं भी सखियों के साथ जाऊँगी। तो उसी मन्दिर में आप दर्शन देने पधारियेगा महाराज! तो सारी बात बन जायेगी, कोई झगड़ा नहीं होगा और कहीं आप समय पर मुझे लेने नहीं आये, तो इतना याद रखिये प्रभु! मैं सौ-जन्म लेने को तैयार हूँ, पर विवाह करूँगी, तो केवल आपके साथ।

पूरा पत्र ब्राह्मण ने सुना दिया। भगवान् पत्र सुनकर मुस्कुराते हुये बोले, पण्डितजी! जो स्थिति रुक्मिणीजी की है, ठीक वही स्थिति हमारी भी है। ब्राह्मण चौंके, महाराज! आपकी क्या स्थिति है, वह आप भी सुना दीजिये। भगवान् बोले, सन्त-ब्राह्मणों से रुक्मिणी के सौन्दर्य की महिमा सुनते-सुनते आजकल मैं भी रुक्मिणी के बारे में ही सोचता रहता हूँ। कभी-कभी तो रात-रातभर नींद नहीं आती। जागरण में ही रात्रि बीत जाती है।

तथाहमपि तच्चित्तो निद्रां च न लभे निशि ।
वेदाहं रुक्मिणा द्वेषान्ममोद्वाहो निवारितः ॥ (भा. 10/53/2)

मुझे मालूम है कि रुक्मिणी मुझे बहुत पसंद करती है, पर उसका भाई बहुत विघ्न डाल रहा है। उसी की वजह से सब गड़बड़ हुआ है। पर कोई बात नहीं अब रुक्मिणी का संदेश मिल गया है। उसकी मनःस्थिति स्पष्ट हो गई है, तो अब देर करने की आवश्यकता नहीं, आप जल्दी तैयार हो जाइये। और भगवान् तुरन्त खड़े हुये। शैब्य, सुग्रीव, मेघपुष्प, बलाहक नाम के चार घोड़े, जो उच्चैःश्रवा के समान गतिमान थे, उन अश्वों को लाकर रथ में नियुक्त करके भगवान् बोले, पण्डितजी! आइये जल्दी से। पण्डितजी को हाथ पकड़कर रथ में बैठाया और रथ को वायु-वेग से दौड़ा दिया। जो गोविन्द का रथ दौड़ा, दाऊजी ने देख लिया। अब रात का समय हो रहा है, आवाज़ लगाई, ऐ द्वारकाधीश! पर तबतक तो रथ न जाने कहाँ-का-कहाँ पहुँच गया। दाऊजी चिंतित हो गये। सेवकों को बुलाया, क्यों भाई? रात हो रही है और ये द्वारकाधीश अचानक रथ लेकर कहाँ भाग गये? बिना कुछ बताये? तुम्हें मालूम है? सेवक बोले, सरकार एक पण्डितजी आये थे और कुण्डनपुर के थे, इतना तो हमें मालूम है। वह एक पत्र भी लाये थे, वह भी हमें मालूम है। पर भगवान् जाने, अन्तःपुर में ले जाकर उन पण्डितजी से क्या-क्या बातें हुई? भीतर ले जाते हुये हमें दिखाई पड़े। बाद में आकर सीधे रथ में दौड़ते नज़र आये। कहाँ जा रहे हैं? क्यों जा रहे हैं? क्या कार्यक्रम है? किसी को कुछ नहीं पता।

दाऊजी बोले, वह पण्डितजी कुण्डनपुर के थे, ये बात पक्की है? तो आगे का कार्यक्रम भी हमें सब पता है। परसों कुण्डनपुर की राजकुमारी रुक्मिणी का स्वयंवर है और शादी का कोई कार्ड आता, तो सबको दिखाया जाता। पत्र गुप्त है, इसका मतलब कि दाल में कुछ काला है। अब तुम जल्दी से बाराती बनो और मेरे साथ चलो। मैं भी तैयार होकर चलता हूँ क्योंकि वहाँ कुछ भी हो सकता है। शिशुपाल बारात लेकर आ रहा है, तो शिशुपाल की बारात में जरासंध-जैसे बड़े-बड़े दिग्गज राजा-महाराजा आयेंगे। और कृष्ण-कन्हैया तो अकेले चले गये। मुझे पूरी तैयारी के साथ चलना होगा। दाऊजी का प्रभु के प्रति वात्सल्यभाव है कि मेरा छोटा भइया है, अकेला कहीं समस्या में न फंस जाये। तो पूरी नारायणीसेना तैयार करके दाऊजी ने हल-मूसल सँभाले और चल दिये। सबेरा होते-होते प्रभु का रथ कुण्डनपुर की सीमा में पहुँच गया। भगवान् बोले, पण्डितजी! कुण्डनपुर आ गया। अब आप जाकर रुक्मिणी को समझाइयेगा कि हम आ चुके हैं। वह किसी भी प्रकार से भयभीत न रहें। जैसा पत्र में लिखा है, वही सब होगा। पण्डितजी चल पड़े।

इधर पूरे कुण्डनपुर में हल्ला मच गया, बारात आ गई! बारात आ गई। शिशुपाल बैण्ड-बाजे लेकर आ चुका था। रुक्मी ने कहा, पिताजी! सुन लिया आपने? बारात आ गई है। मैं जनवासे आदि का प्रबन्ध करने जा रहा हूँ। और आप सगाई का सामान लेकर जल्दी आ जाओ क्योंकि मैं उस दिन केवल बात करके आया था, सगाई-वगाई तो कुछ हो नहीं पाई थी, ठीक है बेटा! चलो। अब आधुनिक तरीके का विवाह हो रहा है कि जब बारात आ गई, तब सगाई चढ़ाई जा रही है। तो भीष्मकजी सगाई का सामान तैयार करके ले जाने लगे।

अब रुक्मिणी का एक-एक क्षण युग के समान बीत रहा है। हे भगवान्! इधर बारात भी आ गई, उधर द्वारकाधीश का कुछ पता नहीं चल रहा। पण्डितजी भी अभी तक नहीं लौटे। न जाने क्या हो रहा होगा? वहाँ पर पहुँच भी पाये होंगे कि नहीं? रुक्मिणी बेचारी हाथ जोड़कर भोलेबाबा को याद कर रही हैं, हे भोलेनाथ! सोमवार के बहुत व्रत किये हैं। तुम्हारे! आज तुम्हारे व्रत-अनुष्ठानों का पूरा फल चाहिये। आज सब देवता मेरे विपरीत क्यों हो रहे हैं?

दुर्भगाया न मे धाता नानुकूलो महेश्वरः ।
देवी वा विमुखा गौरी रुद्राणी गिरिजा सती ॥ (भा. 10/53/25)

हे मातेश्वरी! हे गिरिजा मैया! हे रुद्राणी! हे भवानी! आपकी भी तो मैंने बहुत सेवा की है। आज मुझे अपने समस्त व्रत-अनुष्ठानों का फल चाहिये। भगवती-रुक्मिणी देवी-देवता याद कर रही थीं कि अचानक बांये-अंग फड़कने लगे, ओ हो! ये शुभ-शकुन हो रहा है।

वाम ऊरुर्भुजो नेत्रमस्फुरन् प्रियभाषिणः

रुक्मिणीजी को शुभ-संकेत मिलने लगे कि अचानक सामने से पण्डितजी भी आते दिखाई पड़ गये। मंद-मंद मुस्कुराते, डण्डा घुमाते पण्डितजी चले आ रहे थे और आने वाले की चाल-चेहरा से ही पता चल जाता है कि कार्य बनाकर आ रहा है कि बिगाड़ के काम बिगड़ जाये न? तो लटका हुआ चेहरा अलग समझ में आ जाता है? रुक्मिणीजी तो देखते ही प्रमुदित हो गई लगता है, काम बन गया! पण्डितजी बड़े प्रसन्न नज़र आ रहे हैं। दौड़कर ब्राह्मण को प्रणाम किया, महाराज! जल्दी बताइये, क्या समाचार लाये हो? ब्राह्मण बोले, बेटी! समाचार तो उन्होंने कुछ भी नहीं दिया। पर तू घबड़ाना मत। तुमने जिसे समाचार भेजा था, मैं तो उसी के साथ आया हूँ। वे मन्दिर में तुम्हारी प्रतीक्षा में हैं। अब तो रुक्मिणीजी के आनन्द का पारावार नहीं रहा। अत्यंत गद्गद्

होकर ब्राह्मण के चरणों में प्रणाम किया, महाराज! तुम्हारे इस ऋण से मैं जीवन में कभी उऋण नहीं हो पाऊँगी। बार-बार प्रणाम-नमस्कार करके ब्राह्मण को विदा किया और तुरन्त अपना दिव्य-श्रृंगार करके भगवती-रुक्मिणीजी चल पड़ीं। सखियों के साथ मन्दिर की तरफ रुक्मिणीजी चली जा रही हैं।

इधर भीष्मकजी भी सगाई का सामान लेकर जनवासे की ओर जा रहे थे कि रास्ते में किसी ने खबर कर दी, अरे महाराज! मालूम है? अपने नगर के बाहर द्वारकाधीश कृष्ण खड़े हैं। ओ हो! तब तो हम पहले उन्हीं का स्वागत करेंगे। पहले उन्हीं से मिलेंगे, बाकी का काम सब बाद में होगा। अब भीष्मकजी का अचानक रास्ते में ही कार्यक्रम बदल गया और जो द्वारकाधीश को देखा तो प्रमुदित होकर दौड़े, आओ-आओ सरकार! आपका स्वागत है। इस शुभ-पावन घड़ी में आप पधारे, मैं तो धन्य हो गया। बार-बार जब भीष्मकजी भगवान् का स्वागत करने लगे तो, सगाई का सामान लिये सिर पर जो सेवक चले जा रहे थे, उन्होंने समझा, दूल्हा सरकार निश्चित् यही हैं, तभी तो महाराज इतना गद्गद् होकर स्वागत कर रहे हैं। सो सगाई का एक-एक करके सब सामान द्वारकाधीश के चरणों में चढ़ाना प्रारम्भ कर दिया। सगाई चढ़नी थी शिशुपाल की, पर चढ़ गई गोपाल की। भगवान् भी मुस्कुराकर बोले, महाराज! ये सब करने की क्या आवश्यकता थी? अब भीष्मकजी को लगा, गड़बड़ तो हो ही गई। हाथ जोड़कर बोले, सरकार! मैंने तो जैसे ही नाम सुना कि आप पधारे हो। बस मेरी खुशी का तो पारावार ही नहीं रहा। मैं आपका भला क्या स्वागत कर सकता हूँ? आइये-आइये! पहले मेरे घर चलिये महाराज! आज ही बेटी का विवाह है। कैसी शुभ-घड़ी में आप आये हैं। भगवान् बोले, वैसे आज हम बहुत जल्दी में हैं। फिर भी तुम्हारा प्रेम देखकर मना भी करते नहीं बनता। चलो! चले चलते हैं। हाथ पकड़कर अपने रथ में बैठाकर भीष्मकजी गद्गद् होकर प्रभु द्वारकाधीश को अपने नगर में लाये।

अब नगर में तो हल्ला पहले से ही मचा हुआ था कि बारात आ गई! बारात आ गई। भीष्मक महाराज के रथ में जब नगरवासियों ने द्वारकाधीश का दर्शन किया तो गद्गद् हो गये, ओ हो! रुक्मिणी के भाग्य खुल गये। देखो! कितना सुन्दर दूल्हा है? या नगर में इतनो सुन्दर दूल्हा आजतक कबहुं नांय आयो। जो देखे, वही गद्गद् हो जाये। अब भीष्मक जी सुन-सुनकर परेशान हो गये, बड़ा गड़बड़ हो रहा है भाई। सोच कुछ रहे थे और हो कुछ रहा है। अब किस-किसका मुँह बंद करें? किस-किसको समझायें? एक सेवक को बुलाकर कहा, इन्हें समझाओ! ये लोग क्या बकवास कर रहे हैं? लोगों को भ्रम हो रहा है। सेवक ने देवियों को समझाया, ऐ देवियों! पागल हो गई हो? ये हमारे मेहमान द्वारकाधीश-कृष्ण हैं, दूल्हा-सरकार नहीं हैं। दूल्हा-सरकार अभी जनवासे में ही सो रहे हैं। जब ये समाचार मिला, तो सब बेचारीं जितनी भी देवियां थीं, उदास हो गई। एक बोली, हे भगवान्! हम तो सोच रहीं थीं कि कुण्डनपुर के भाग्य खुल गये, जो इतना सुन्दर दूल्हा मिला। पर भगवान् जाने रुक्मिणी के भाग्य में कौन-सो दूल्हा है? या तें सुन्दर तो कोई हाई ना सकै? एक बुढ़िया बोली, हे भगवान्! आज तक मैंने जीवन में जितने पुण्य किये हों, उसका एक ही फल माँगूँगी कि राजकुमारी रुक्मिणी को ये ही वर मिले।

अस्यैव भार्या भवितुं रुक्मिण्यर्हति नापरा

नगर के जितने भी नर-नारी हैं, वे सब अपने-अपने सुकृत मनाने लगे कि हमारी राजकुमारी को यही वर मिले। जो देखे, वही निहाल हो जाये। अब भगवान् को लगा कि रुक्मिणी उधर मन्दिर में पहुँच रही होंगी, हमें बहुत विलम्ब हो रहा है। तो नगर में घूमते-घूमते बोले, बस महाराज! अब हमारी हाज़िरी इतनी ही स्वीकार कर

लो। हम जल्दी में हैं; अब आज्ञा चाहेंगे। अरे महाराज! शादी में पूर्णतया सम्मिलित होकर जाते, तो बड़ी खुशी होती। भगवान् बोले, देखिये महाराज! आपने कोई चिट्ठी तो हमें भेजी नहीं थी? अचानक हम यहाँ से निकल रहे थे। तो देवी माँ का दर्शन किया, साथ-साथ में आप सबका भी दर्शन हो गया। अतः हमारी इतनी ही हाज़िरी स्वीकार कर लो। क्योंकि मैं विलम्ब से घर पहुँचा तो, बड़े भैया बहुत नाराज़ होंगे। भीष्मकजी ने मन में सोचा, ज्यादा रोकना ठीक भी नहीं है। मेरा बेटा बहुत नालायक है। न जाने कैसा ऊटपटांग कोई व्यवहार कर दे, तो बात बिगड़ जावेगी। इसलिये अच्छा यही है कि इन्हें राजी-राजी विदा कर ही देना चाहिये। रोकने का ज्यादा दुराग्रह न करते हुये भीष्मकजी ने कहा, बस महाराज! ऐसी ही कृपादृष्टि आपकी बनी रहे। जैसे आज अचानक आपने कृपा की, बस मैं तो इसी से कृतार्थ हो गया। ऐसी ही कृपा बनी रहे। भगवान् हंसकर बोले, चिन्ता न करो! भगवान् ने चाहा तो आना-जाना हमेशा ही बना रहेगा। और यों कहकर भगवान् तो अपने रथ में बैठकर चल दिये। उधर भगवती रुक्मिणी जब सखियों के साथ मन्दिर में पहुँची, तबतक ये समाचार शिशुपाल तक पहुँच गया। उसके गुप्तचरों ने कह दिया, महाराज! आप यहाँ दूल्हा बने बैठे हो और हम अभी नगर भ्रमण करके लौटे हैं। वहाँ नगर में सब नर-नारी द्वारकाधीश-कृष्ण को ही दूल्हा समझकर स्वागत कर रहे हैं।

जरासंध भी बारात में आया था, उसका माथा खराब हो गया, शिशुपाल! तुम्हारी शादी में ये कृष्ण कहाँ से आ गया? अरे! कृष्ण-बलराम को तो मैंने पहाड़ में आग लगाकर भस्म कर दिया था। फिर वे यहाँ भूत-प्रेत बनकर कहाँ से आ गया? और यदि सचमुच तुम्हारे विवाह में श्रीकृष्ण आया है, तो समझ लो दाल में कुछ काला है। ये कृष्ण-कन्हैया बड़ा खतरनाक है। शिशुपाल बोला, तुम तो तिल का ताड़ बना रहे हो। अरे! आया है तो आने दीजिये। आप अचानक उसके नाम से इतने घबड़ा क्यों गये? वह गंवार-ग्वाला हमारा क्या बिगाड़ लेगा? जरासंध बोला, मित्र! यही गलती मैंने भी पहले की थी। मैं भी उसे गंवार-ग्वाला ही समझता रहता था। पर जब सत्रह बार बुरी तरह उसने मुझे मारकर भगाया, तब मेरी समझ में आया कि वह केवल ग्वाला ही नहीं, बहुत खतरनाक है; इसलिये तुझे सावधान कर रहा हूँ। तू भी ग्वाला समझने की गलती ना कर बैठना? वह बहुत् होशियार है, बहुत नटखट है, बहुत बलशाली है। शिशुपाल बोला, तुम बेकार में ही हमें डरा रहे हो। सभी बाराती खड़े होकर बोले, महाराज! आपको किसी प्रकार से चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। हम केवल बारात के लड्डू खाने नहीं आये, बल्कि पूरी तैयारी के साथ आये हैं। बोलो क्या आज्ञा है? शिशुपाल बोला, तो जाओ! नगर को घेर लो, कहीं कोई उपद्रव न हो पावे। सभी सैनिक अपने-अपने शस्त्र लेकर दौड़े। जब पता चला कि रुक्मिणी मन्दिर में पूजा करने गई हैं, तो सैनिकों ने दौड़कर सारा मन्दिर घेर लिया। मन्दिर में बैठी रुक्मिणीजी देवी मां की पूजा करके उनसे प्रार्थना कर रही हैं,

नमस्ये त्वाम्बिकेऽभीक्ष्णं स्वसन्तानयुतां शिवाम् ।
भूयात् पतिर्मे भगवान् कृष्णस्तदनुमोदताम् ॥ (भा. 10/53/46)

हे मातेश्वरी! द्वारकाधीश श्रीकृष्ण ही मुझे पतिरूप में प्राप्त हों, ऐसा आशीर्वाद दीजिये। देवी मैया प्रसन्न हो गई और रुक्मिणीजी को आशीर्वाद दे दिया,

मनु जाहिं राचेउ मिलिहि सो बरु सहज सुन्दर साँवरो ।
करुना निधान सुजान सीलु सनेहु जानत रावरो ॥ (रा.मा. 1/236)

मैया का आशीर्वाद लेकर रुक्मिणीजी भगवान् की सांवली-सलौनी सूरत को हृदय में विराजमान किये जब

बाहर निकलीं, तो देखा कि विशाल सैन्य-समुदाय खड़ा हुआ है। रुक्मिणीजी घबड़ा गईं, हे भगवान्! मैंने तो पत्र में लिखा था, मन्दिर में कोई नहीं होगा। यहाँ तो इतनी बड़ी सेना खड़ी नज़र आ रही है? अब क्या होगा? और इस विशाल सेना में मेरे द्वारकाधीश कौन हैं? कहाँ खड़े हैं? कैसे हैं? मैंने तो आज तक कभी देखा भी नहीं है, पहचानना बड़ा मुश्किल होगा। पर इतना विश्वास है, वे लाखों में एक हैं अलग समझ में आ जायेंगे। पर हैं कहाँ? रुक्मिणीजी अति-मंथर-गति से आगे बढ़ती जा रही हैं और अपनी चंचल-चपल आँखों से चारों तरफ दृष्टि घुमा रही हैं कि मेरे प्यारे कहाँ हैं? सैनिकों ने जब रुक्मिणीजी के सौन्दर्य को देखा, तो सब मोहित हो गये। कोई कहता, वाह! इनकी चाल देखो, कितनी गजब की है? कोई कहता, आ हा! इनके विशाल बाल देखो, कैसे लहरा रहे हैं? कोई कहता, हृदय का हार देखो, कैसा जगमगा रहा है?

सब सैनिक रुक्मिणीजी के सौन्दर्य का वर्णन किये जा रहे हैं और भगवान् सावधान हैं, ले जाने के लिये। सो सैनिकों के बगल में आकर खड़े हो गये। सैनिकों की दृष्टि रुक्मिणीजी पर रुक्मिणीजी की दृष्टि द्वारकाधीश को ढूँढ़ती हुई एक-एक सैनिकों को देखती हुई, घूम रही है। घूमती हुई दृष्टि जैसे-ही द्वारकाधीश के ऊपर पड़ी, आँखें चार हुई। भगवान् ने हाथ हिलाकर कहा, घबड़ाओ मत! हम ही हैं। मंद-मंद मुस्कुराते माधव को हाथ हिलाते देखा, सो रुक्मिणीजी के आनन्द का पारावार नहीं रहा। एक दृष्टि में पहचान गई, मुख पर मुस्कान छा गई। जब रुक्मिणीजी की मुस्कान को सैनिकों ने देखा, तो उनके भी होश उड़ गये। भगवान् सबके बीच में से आगे बढ़े और रुक्मिणीजी का हाथ पकड़कर अपने रथ की ओर बढ़ते चले गये। सैनिक देखते जा रहे हैं, वाह! गजब की जोड़ी है भैया! ऐसी प्यारी झांकी जीवन में पहली बार देखी है। किसी को होश ही नहीं कि हो क्या रहा है? ऐसी मोहनी भगवान् ने डाल दी। और हाथ पकड़कर रुक्मिणीजी को रथ में बैठा लिया। सैनिक देखते जा रहे हैं, अरे वाह! रथ देखो! कितना गजब का है? पूरा सोने का है। दूसरा बोला, पागल! सोने के रथ तो और भी हो सकते हैं, घोड़े नहीं देख रहा कितने गजब के हैं? कान कैसे खड़े हैं, उच्चैश्रवा-जैसे हैं। भगवान् स्वयं बैठ गये, रुक्मिणीजी को बैठा लिया और जो चाबुक चलाया, घोड़े तो हवा में बातें करते उड़ते चले गये। सैनिक बोले, देखो देखो! घोड़े कैसे दौड़ रहे हैं? कैसे हवा से बातें कर रहे हैं? जब रथ दूर तक चला गया, तब होश आया, क्यों रे? हम काए को खड़े हैं? काए के लिये आये हैं? एक बोलो, अरे याद आया! महाराज ने रुक्मिणी की रखवाली के काम से भेजा था। जो सखियां खड़ीं थीं, वह हंसकर बोलीं, तुम सब भांग पीकर आये हो क्या? रुक्मिणी तो रथ में बैठकर वह गई। अरे राम-राम! लै गयो! लै गयो! पकड़ो-पकड़ो! भागो-भागो।

जैसे-ही दौड़ लगाई और चिल्लाना प्रारम्भ किया, ऐ भगौड़े! कहाँ भागता है? तेरे अन्दर थोड़ा भी क्षत्रियत्व है, तो हमसे युद्ध कर। बार-बार जब युद्ध की चुनौती देने लगे, तो भगवान् ने रथ को मोड़ दिया और युद्ध के लिये भगवान् खड़े हो गये। जैसे-ही भगवान् युद्ध के लिये खड़े हुए कि सैनिकों ने घेराबंदी प्रारम्भ कर दी। घेराबंदी कर ही रहे थे कि अचानक ज़ोर से आवाज सुनाई पड़ी - 'बोल द्वारकाधीश की जय'! भगवान् ने चौंककर पीछे देखा, ये हमारी जय किसने बोली? जो पीछे मुड़कर देखा, सो दाऊजी महाराज हल-मूसल तानें पूरी नारायणीसेना के साथ वायुवेग से चले आ रहे हैं। निकट आते ही भगवान् ने प्रणाम किया, दाऊभैया! प्रणाम। दाऊजी बोले, लाला! आशीर्वाद इकट्ठो बहुरानी के साथ घर में ही जाकर मिलोगे। तू बहु को घर में लै कें चल! मैं इन्हें स्वागत करकें अब हालई लौटकर आऊं। भगवान् तो रुक्मिणीजी के साथ तुरन्त रवाना हो

गये। दाऊजी ने जो सैनिकों को हल-मूसल दिखाया, सैनिकों के तो देखते ही पसीना छूट गये, हे भगवान्! आखिरी वक्त पर ये मूसल वालो कहाँ तें आ गयो?

सैनिक तुरन्त भागे। आकर जनवासे में शिशुपाल के सामने रोते हुए बोले, सरकार! सब गड़बड़ हो गया। आपकी होने वाली देवीजी भाग गईं। वही काला-काला मुरलीवाला आया और सबकी आँखों में मोहिनी डालकर कब-कैसे पागल बनाकर ले गया, पता ही नहीं चला महाराज। अब तो शिशुपाल तलवार लेकर सैनिकों को ही मारने दौड़ा। जरासंध ने हाथ पकड़कर कहा, मित्र! रहने दो। अब इन पर क्रोध करने से कोई फायदा नहीं। मैंने पहले ही सावधान किया था, वह काला-काला मुरलीवाला बहुत खतरनाक है। मैंने तुम्हें भी सावधान किया। तुमने मेरी बात पर ध्यान ही नहीं दिया? शिशुपाल बोला, सब गड़बड़ हो गया मित्र! मैं तो आत्महत्या करके यहीं मरता हूँ, मैं जिंदा नहीं जाऊँगा। बैण्ड-बाजे के साथ बारात लेकर आया था, बिना बहू को लेकर जाऊँगा तो दुनिया उपहास करेगी। भाभियां जिंदगीभर मुझे उलाहना देंगी, मेरा उपहास उड़ायेंगी - ये भी कोई जिंदगी है?

जरासंध ने सोचा, शिशुपाल बेचारा बहुत दु:खी हो रहा है। हाथ पकड़कर कमरे में ले जाकर समझाया, देखो मित्र! जीवन में जय और पराजय आती ही रहती है। और क्षत्रियों का तो काम ही है, सिंहपुरुष होकर इस प्रकार से मन को दुर्बल न बनाओ, मित्र! तुम मुझे देखो!!

शौरेः सप्तदशाहं वै संयुगानि पराजितः।
त्रयोविंशतिभिः सैन्यैर्जिग्य एकमहं परम् ॥ (भा. 10/54/13)

इसी शूरसेनवंशज कृष्ण ने मुझे एक-दो बार नहीं, पूरे सत्रह बार हराया। मेरी तेईस-तेईस अक्षौहणीसेना को साथ हराया। पर मैंने हिम्मत कभी नहीं हारी। तो अठारहवें-युद्ध में फिर मैंने भी उसे ऐसा भगाया कि अपनी जन्मभूमि मथुरा छोड़कर आज समुद्र में घुसा बैठा है। तो मैंने इतनी बार पराजय का मुँह देखा, फिर भी हिम्मत नहीं हारी? और एक तू है, जो पहली बार पराजय पाते ही आत्महत्या तक की बात सोचने लगा? कैसा वीर है? अब शिशुपाल को शान्ति मिली कि जब हमसे भी बड़े-बड़े बेशर्म पड़े हैं, तो हम काय कूं मरें? हमारा मित्र सत्रह बार हारा बैठा है, हम तो आज पहली बार ही हारे हैं। बेचारे शिशुपाल को बड़ी हिम्मत आ गई। दुल्हन के डोले में स्वयं बैठ गया और रोते-रोते अपने घर को छुपकर भाग गया। तब से शिशुपाल भगवान् का कट्टर-दुश्मन बन गया। जबतक दिनभर में सौ-गाली न सुना दे, इसका भोजन ही हज़म नहीं होता। परन्तु जब रुक्मिणीजी के बड़े भाई रुक्मीजी को समाचार मिला कि मेरी बहिन को कृष्ण हरण करके ले गया, तब तो उसे बड़ा क्रोध आया। उसने पूरी सेना के बीच शस्त्र उठाकर प्रतिज्ञा की,

अहत्वा समरे कृष्णमप्रत्यूह्य च रुक्मिणीम् ।
कुण्डिनं न प्रवेक्ष्यामि सत्यमेतद् ब्रवीमि वः ॥ (भा. 10/54/20)

ये मेरी सत्य-प्रतिज्ञा है। मैं कृष्ण को मारकर अपनी बहिन को यदि वापिस लौटाकर नहीं लाया, तो इस कुण्डनपुर में कभी प्रवेश नहीं करूँगा। मैं कुण्डनपुरवासियों को मुँह नहीं दिखाऊँगा। प्रतिज्ञा करके चल पड़ा और रास्ते में भगवान् का रथ पकड़ लिया। जो लड़ने की चुनौती दी, तो भगवान् ने भी युद्ध प्रारम्भ कर दिया। रुक्मिणीजी घबड़ा गईं, हे भगवान्! ये क्या गड़बड़ हो गया? एक तरफ भैया, एक तरफ पतिदेव? भयंकर युद्ध हुआ। अब रुक्मिणी क्या करे? परन्तु जब रुक्मी के सभी रथ-घोड़े समाप्त हो गये, रुक्मी निहत्था रह

गया; तब भगवान् ने चमचमाती तलवार निकाली। तलवार देखते ही रुक्मिणी घबड़ा गई और प्रभु के चरण पकड़ लिये,

योगेश्वराप्रमेयात्मन् देवदेव जगत्पते ।
हन्तुं नार्हसि कल्याण भ्रातरं मे महाभुज ॥ (भा. 10/54/33)

हे महाभुज! हे योगेश्वर! हे जगत्पते प्रभु! भला-बुरा जैसा भी सही, मेरा भैया है। मेरे विवाह की वेला में मेरी आँखों के सामने तो कम-से-कम मेरे भाई का तो वध न करो? अन्यथा ये मेरा विवाह जीवनभर के लिये कलंकित हो जायेगा। जब भी भाभियों का वह वैधव्य देखूँगी, मुझे बड़ी पीड़ा होगी। भगवान् रुक्मिणी को भयभीत देखकर मुस्कुरा पड़े और हंसकर बोले, देवीजी! ज्यादा मत घबड़ाओ! जब तुम्हारा भैया तो है, मेरा भी तो कुछ लगेगा? अब मारना थोड़े-ही है, रिश्तेदार बन गया है? इसका अभिमान थोड़ा-सा तोड़ना बहुत आवश्यक है। तुम घबड़ाना मत!!

रथ से प्रभु कूद पड़े और तलवार से रुक्मी के सिर को मूड़ने लगे। इतने में विजय का शंख बजाते दाऊजी आ गये। मार्ग में ये दृश्य देखते ही दाऊजी ने दौड़कर गोविन्द का हाथ पकड़ा, ऐ कृष्ण! ये नाईगिरी को काम कब तें सीख लियो? शादी होवे की देर नांय भई और साले का सिर मूड़नो प्रारम्भ कर दियो? अपने रिश्तेदारों के साथ कोई ऐसा व्यवहार करता है, जो तुमने किया? बहुत निन्दनीय काम किया है तुमने।

असाध्विदं त्वया कृष्ण कृतमस्मज्जुगुप्सितम् ।
वपनं श्मश्रुकेशानां वैरूप्यं सुहृदो वधः ॥ (भा. 10/54/37)

यहाँ पर बड़े भाई दाऊजी ने कन्हैया को खूब डाँट लगाई, ये भी कोई तरीका है? शादी होने को अभी एक दिन नहीं बीता और तुमने साले का सिर मूड़कर रख दिया? ऐसा दुर्व्यवहार रिश्तेदारों से करने लगोगे, तो कौन तुमसे रिश्तेदारी बनायेगा? भगवान् ने देखा कि दाऊजी ज्यादा ही लाल-पीले हो रहे हैं तो मुस्कुराकर इशारे में बोले, दाऊजी! नई-नई शादी भई है। बहुरानी के सामने आप हमें डाँट रहे हो। बड़े भैया हो। चाहे जब डाँट लीजौ, पर बहु के सामने तो नांय डाँटो? सोई दाऊजी की सारी गुस्सा ठंडी है गई। तुरन्त रुक्मिणी के पास आकर बोले, बेटी रुक्मिणी! बुरा मत मानना। '**क्षत्रियाणामयं धर्मः प्रजापतिविनिर्मितः**' विधाता ने हम क्षत्रियों का धर्म ही कुछ ऐसा कठोर बनाया है कि सगा-भाई भी युद्ध की चुनौती देवे, तो उससे भी युद्ध करना हम क्षत्रियों का धर्म बन जाता है। अब मेरे भाई को तुम्हारे भाई ने चुनौती दी, दोनों लड़ बैठे। अब जो होना था, सो हो गया। अब उन बातों को जाने दो। क्षत्रियों के विवाह में यदि खटपट न होवै, तो वह विवाह ही कैसा? ठाकुरों के विवाह में तो नेक-नेक में तलवारें चलती हैं। रुक्मी भैया! अब तुम भी जाओ। रिश्तेदार बन गये हो भाई।

देखिये बड़ों की यही भूमिका होनी चाहिये। शादी-विवाह में झगड़े होते हैं। पर जब भी दो-पक्षों में झगड़ा होवे, तो बड़ों को चाहिये कि सबसे पहले अपने पक्ष को डाँटो। भले ही उसकी गलती न हो। पर जब अपने पक्ष को डाँटोगे, तो विपक्ष की सहानुभूति आपके प्रति होगी। और जब विपक्ष की सहानुभूति आपसे जुड़ जाये, तब उन्हें समझाओ, भाई! गलती तुम्हारी भी है; तो आपकी बात सुन लेंगे। और कहीं सीधे ही आपने उनकी गलती निकालनी प्रारम्भ कर दी, तो मामला और तूल पकड़ता जायेगा। दाऊजी ने भी वही भूमिका निभाई। आते ही भगवान् पर बरस पड़े, बहुत गलत किया! तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिये था। सो रुक्मी के मन में दाऊजी के प्रति

थोड़ा-सा झुकाव हुआ और बाद में दाऊजी ने रुक्मी को भी समझा दिया, भाई! तेरी भी गलती है। तुझे भी ऐसा अनर्गल-प्रलाप नहीं करना चाहिये था। तो दोनों की भूमिका सामंजस्य के साथ दाऊजी ने निभाई। रुक्मी को विदा किया।

इधर द्वारकाधीश बडे धूमधाम के साथ जब घर लौटे, द्वारकावासियों को पता चला, हमारे सरकार बहुरानी को साथ में लेकर आये हैं; तब तो घर-घर में मण्डप सजने लगे और मंगलगीत गवने लगे। सबने मिलकर भगवान् के विवाह का मंगलगीत गाया। रुक्मिणी अंग-अंग में श्रृंगार करके गोविन्द की छवि का दर्शन करती हुई, बड़े भाव के साथ अपने हृदयभवन में गोविन्द की झांकी को सजाये बैठीं गीत गा रही हैं -

भजन - मैंने मेंहदी लगाई रे कृष्ण नाम की

प्रभु का प्रथम विवाह महाराज भीष्मक की लक्ष्मीस्वरूपा कन्या भगवती रुक्मिणी के साथ सम्पन्न हुआ। रुक्मिणी साक्षात् भगवती लक्ष्मी हैं और लक्ष्मी केवल नारायण की ही हैं और नारायण की ही रहेंगी। जो अपने आपको लक्ष्मीपति समझने की चेष्टा करते हैं, उन्हें फिर शिशुपाल की तरह रोना पड़ता है। क्योंकि लक्ष्मीपति बनने का प्रयास करोगे, तो नारायण तुरन्त अपनी लक्ष्मी को हरण करके ले जायेंगे। तो शिशुपाल की तरह रोना पड़ेगा। लक्ष्मी पुत्र बन सकते हो, लक्ष्मी को पुत्री भी मान सकते हो; पर लक्ष्मीपति तो केवल नारायण हैं और वे ही रहेंगे। प्रभु के रुक्मिणीजी से प्रथम पुत्र हुए प्रद्युम्न, जो साक्षात् कामदेव के अवतार हैं।

कामस्तु वासुदेवांशो दग्धः प्राग् रुद्रमन्युना ।
देहोपपत्तये भूयस्तमेव प्रत्यपद्यत ॥ (भा. 10/55/1)

भगवान् रुद्र ने क्रुद्ध होकर काम को भस्म किया था और जब रति बहुत रोई, तो शिवजी ने वचन दिया, जब यदुवंश कृष्ण अवतारा

कृष्ण तनय होइहि पति तोरा ।
बचनु अन्यथा होइ न मोरा ॥ (रामचरितमानस 1/88/1)

तो भोलेनाथ का वचन सत्य हुआ और कामदेव ही भगवान् के प्रथम पुत्र प्रद्युम्न बनकर प्रकट हुये। काम जब विकारों से उत्पन्न होवे, तो वह धर्मविरुद्ध काम है। धर्म के अनुकूल जो काम है, वह तो भगवान् का स्वरूप है, भगवान् की विभूति है। तो वह धर्मसम्मत कामदेव ही प्रद्युम्न के रूप में प्रकट हुए। शम्बरासुर नाम का दैत्य प्रद्युम्न का हरण करके ले गया और समुद्र में फेंक दिया। एक मछली उसे निगल गई और उस मछली को पकड़कर मल्लाह ने शम्बरासुर को ही भेंट कर दिया। मछली के पेट से प्रद्युम्न शम्बरासुर के घर में ही पहुँच गये। उनका लालनपालन भी वहीं हुआ। इधर नारदजी ने कामपत्नी रति को सावधान कर दिया, जाओ! अपने पति को सँभालो। तो छद्मवेश में काम की पत्नी शम्बरासुर के यहाँ आकर सेवा करने लगी और प्रद्युम्न का भरणपोषण करने लगी।

नातिदीर्घेण कालेन स कार्ष्णी रूढयौवनः

बहुत कम समय में ही जब कृष्णतनय श्रीप्रद्युम्न यौवनसम्पन्न हो गये, तो रति के भावों में परिवर्तन होने लगा। एक दिन प्रद्युम्न बोले, देवी! एक तरफ तुम मेरा मातृभाव से लालनपालन कर रही हो? दूसरी ओर तुम्हारी दृष्टि और व्यवहार में मातृत्व तो दिखाई नहीं पड़ रहा,

मातृभावमतिक्रम्य वर्तसे कामिनी यथा

कौन हो तुम ? तब रति ने पूरी कहानी सुना दी,

भवान् नारायणसुतः शम्बरेणाहतो गृहात् ।
अहं तेऽधिकृता पत्नी रतिः कामो भवान् प्रभो ॥ (भा. 10/55/12)

अरे! आप तो साक्षात श्रीद्वारिकाधीश के पुत्र हो और शम्बरासुर तो आपका सबसे बड़ा दुश्मन है। मैं तो आपकी जन्मजन्म की पत्नी रति हूँ और आप मेरे पति कामदेव हो। सारी घटना विस्तार से सुनते ही प्रद्युम्न क्रोध में भर गये। शम्बरासुर को जाकर ललकारा, मैं ही तेरा काल कृष्ण का लाल प्रद्युम्न हूँ। शम्बरासुर कांप गया, मेरा काल मेरे ही घर में आकर इतना बड़ा हो गया। दोनों में भयंकर युद्ध हुआ। सैन्यशक्ति के साथ शम्बरासुर का संहार करके प्रद्युम्न रति के साथ अपनी द्वारिका को वापिस लौट आये।

रुक्मिणीजी के आनन्द का तो पारावार ही नहीं रहा। पुत्र पैदा होते ही खो गया था और मिला तो बहूरानी के साथ ही मिल गया। प्रद्युम्न का स्वागत हुआ। शुकदेवजी बोले, परीक्षित! प्रभु के और भी विवाह हुए थे। परीक्षित बोले, और विवाह कहाँ-कहाँ हुए थे महाराज ? शुकदेवजी बोले, परीक्षित! वह भी सुन लो।

सत्राजित नामक एक राजा के पास सम्यन्तक नामक चमचमाती हुई मणि, जो आठ भार सोना नित्य देने वाली थी। कुछ यदुवंशियों ने वह मणि भगवान् के लिए माँगी, तो सत्राजित ने मना कर दिया और जब इसका छोटा भाई उस मणि को गले में धारणकर शिकार खेलने गया, तो शेर के हाथों मारा गया। सत्राजित का भाई जब लौटकर घर नहीं आया, तो सत्राजित ने समझा कि श्रीकृष्ण ने मेरे भाई की हत्या करवाकर मणि को ले लिया है। सत्राजित ने अपनी पत्नी से कहा, देवी! मुझे तो पूरी शंका है कि कृष्ण ने मेरे भैया को मारकर मणि अपने पास रख ली है। पर जबतक इसका प्रमाण न मिल जाये, तबतक तुम किसी से यह बात न करना। परन्तु माताओं का स्वभाव है - कोई रहस्य उन्हें पता चल जाये, तो जबतक वह बात दो-चार लोगों से बाँट न लें, तबतक बीमार रहती हैं। तो उनकी पत्नी ने अपनी पड़ौसिन से चर्चा कर दी। पड़ौसिन ने अपनी पड़ौसिन से चर्चा कर दी और '**कर्ण कर्णे च ऽजपञ्जनाः**' वह बात फैलती चली गई। सारी जनता में चर्चा का विषय बन गया कि देखो! बचपन की आदतें जाती नहीं हैं ? श्रीकृष्ण पहले जब बचपन में भी चोर ही थे। पहले माखन चोरी करते थे, बड़े हो गये सो अब हीरे-जवाहरात चुराने लगे ?

भगवान् ने कहा, राम राम! ये तो कलंक लग गया हमें ? तो भगवान् उस मणि की खोज में निकल पड़े। जंगल में ढूँढ़ते-ढूँढ़ते देखा कि शेर मरा पड़ा है और सत्राजित का भाई प्रसेन जो था, वह भी मरा हुआ पड़ा है। उन सब चिन्हों को देखते हुए आगे बढ़े तो जामवंत की गुफा में पहुँच गये। वहाँ देखा कि जामवंत की बेटी जाम्भवती वह मणि लिये खेल रही है। मणि को देखते ही प्रभु आश्वस्त हो गये। प्रभु को देखकर जाम्भवती घबरा गई कि ये कौन आ गया ? जामवंतजी को भी क्रोध आया कि बिना अनुमति लिये ये घर में कौन घुसा चला आया ? और क्रोध में आकर भगवान् की छाती में उछलकर एक मुक्का मारा। बदले में भगवान् ने भी दो मुक्के जामवंतजी को जड़ दिये। फिर क्या था मुक्केबाजी प्रारम्भ हो गई। सत्ताईस दिन तक भयंकर द्वन्द्वयुद्ध चला।

अट्ठाइसवें दिन भगवान् ने जामवंतजी को उठाकर पटक दिया और छाती पर चढ़ गये, जामवंतजी की नस-नस ढीली कर दी। जामवंतजी बोले, बस करो महाराज! मैं पहचान गया, आप ही मेरे रामजी हो। पहचान निकल आई। सरकार! यहाँ तक कैसे आ गये ? भगवान् ने मणि चोरी का प्रसंग विस्तार से सुना दिया और

कहा, ये मणि मुझे दे दो! जामवंतजी बोले, प्रभु! ये मणि शेर से लड़कर मैंने प्राप्त की और अपनी बेटी को दान कर दी। अब बेटी से वापिस लेकर मणि आपको कैसे दे दूँ ? बेटी का धन पिता कभी नहीं लेता। भगवान् बोले, तो अब क्या करें ? जामवंतजी बोले, एक उपाय है सरकार! मेरी बेटी से विवाह कर लो और दहेज में मुझसे मणि ले लो। भगवान् बोले, जैसी आपकी इच्छा। फिर तो जंगल में मंगल हो गया। जाम्भवतीजी का विवाह प्रभु से सम्पन्न हुआ। दहेज में मणि देकर भगवान् को विदा किया। भगवान् लौटकर द्वारिका आये और सत्राजित को बुलाकर समस्त वृतान्त सुनाया और मणि सत्राजित के हाथ में सौंप दी। अब तो सत्राजित बड़ा लज्जित हुआ और जनता की हवा एक क्षण में बदलती है, सो बदल गई। जो जनता कल कह रही थी कि कृष्ण बचपन का चोर था, देखो! आदत अभी भी नहीं सुधरी ? वही जनता कहने लगी, हम पहले ही कह रहे थे कि द्वारकाधीश के दरबार में किस बात की कमी है। इस दुष्ट को शर्म भी नहीं आई कि इतने बड़े महापुरुष को इसने चोरी लगाई। एक क्षण में भाषा बदल गई। दुनिया की तो भेड़ चाल है, जिधर हवा चल जाये। बड़े-बड़े राजनेता जनता के रुख को समझ नहीं पाते, चुनाव के सारे आंकड़े धरे-के-धरे रह जाते हैं, कोई समझ नहीं पाता।

अन्ततोगत्वा सत्राजित बहुत लज्जित हुआ और प्रभु से बोला, महाराज! अब तो एक ही उपाय है। आप मेरी बेटी सत्यभामा से विवाह कर लो, तो फिर मेरी जनता में बदनामी नहीं होगी। भगवान् बोले, जैसी आपकी इच्छा! धूमधाम से अपनी बेटी सत्यभामा का विवाह सत्राजित ने श्रीद्वारिकाधीश से किया और दहेज में मणि भी प्रदान कर दी। भगवान् बोले, मणि तो हम नहीं लेंगे! यदि मणि ले ली, तो जनता में फिर हवा बदल जायेगी। लोग कहेंगे, देखो! कृष्ण कितना होशियार था। मणि लेने के चक्कर में ही तो शादी की। घूम-फिरकर वह मणि का चक्कर फिर हमारे साथ जुड़ेगा। पर सत्राजित बोला, मैं तो अपनी बेटी को मणि देने का संकल्प कर चुका हूँ। इसलिए अब यह मणि अपने पास नहीं रख सकता। भगवान् बोले, तो एक काम करो! मणि तो तुम्हारे ही घर रहेगी, पर उस पर अधिकार हमारा होगा और इससे जो आठ भार सोना निकलता है, वह हमारे घर भेजते रहना। इस प्रकार इस प्रसंग में भगवान् के दो विवाह और हुए।

एक बार भगवान् अपने प्रिय पाण्डवों से मिलने के लिए द्वारिकापुरी से दिल्ली पधारे। दिल्ली का ही प्राचीन नाम इन्द्रप्रस्थ नगरी है। पाण्डवों ने प्रभु का आत्मीय स्वागत किया। एक दिन भगवान् अर्जुन से बोले, मित्र! चलो यमुना पार कहीं घूमने चलें। दोनों मित्र रथ में बैठकर घूमने निकले। तो यमुनातट पर एक कन्या को तपस्या करते देखा। भगवान् ने कहा, अर्जुन! पता लगाओ ये देवी कौन बैठी हैं ? क्या कर रही हैं ? अर्जुन ने जाकर पूछा, देवि! आप कौन हैं ? यहाँ एकान्त में क्यों बैठी हैं ? तब उस कन्या ने परिचय दिया,

अहं देवस्य सवितुर्दुहिता पतिमिच्छती ।
विष्णुं वरेण्यं वरदं तपः परममास्थिता ॥ (भा. 10/58/20)

महाराज! मैं सविता की दुहिता हूँ, मेरा नाम कालिन्दी है तथा मैं श्रीद्वारिकाधीश को पति रूप में पाने के लिए तप कर रही हूँ। सुनते ही अर्जुन मुस्कुराकर प्रभु के पास आये और बोले, सरकार! आपका वृहस्पति बड़ा जोड़दार चल रहा है। ये कन्या आपको पाने के लिये तप कर रही है। भगवान् ने कहा, तो फिर परिचय कराओ! कालिन्दी का परिचय गोविन्द से कराकर अर्जुन ने पाणिग्रहण करवा दिया। ये हुआ प्रभु का चौथा विवाह। अब अवन्ती-उज्जैन देश के राजा थे विंद और अरविंद। उनकी बहिन का नाम था मित्रवृन्दा। दोनों

भाई राजनैतिक लाभ लेने के लिए अपनी बहिन का विवाह दुर्योधन के साथ वरण करना चाह रहे थे, जबकि मित्रवृन्दा प्रभु द्वारिकाधीश के नाम की माला जप रही थी। मित्रवृन्दा के विवाह के स्वयंवर में जब मित्रवृन्दा को प्रभु द्वारिकाधीश दिखाई पड़े, तो मित्रवृन्दा ने किसी के विरोध की परवाह न करते हुए वरमाला द्वारिकाधीश के ही कण्ठ में डाल दी। भगवान् ने पाणिग्रहण कर लिया। जब मित्रवृन्दा के भाईयों ने विरोध किया, तो भगवान् मित्रवृन्दा को हरणकर ले आये और द्वारिका में आकर सानन्द रहने लगे। ये हुआ भगवान् का पाँचवा विवाह।

एक थे महाराज कौशल नरेश नग्नजित, जिनकी बेटी का नाम था सत्यादेवी। राजा ने प्रतिज्ञा की कि मेरे सात बलिष्ठ बैल हैं। जो वीर एक रस्सी में इन सातों बैलों को नाथ देगा, उसी से मैं अपनी बेटी का विवाह करूँगा। विवाह योग्य बड़े-बड़े राजकुमार वीरों ने प्रयास किया, पर उन बैलों ने सबको मार-मारकर खण्डित कर दिया। जब द्वारिकाधीश प्रभु पहुँचे, तो प्रभु ने सात रूप बनाकर सातों बैलों को एक रस्सी में नाथ दिया। सत्या ने प्रसन्नतापूर्वक आकर भगवान् के गले में माला पहना दी। अन्य राजाओं ने जब इसका विरोध किया, तो अर्जुन ने समस्त राजाओं को मार भगाया। ये हुआ भगवान् का छठवां विवाह।

वसुदेवजी की एक छोटी बहिन थी श्रुतकीर्ति। ये भगवान् की बुआजी लगीं। श्रुतकीर्ति श्रीकृष्ण से बड़ा स्नेह करती थीं और उनसे प्रगाढ़ सम्बन्ध बनाने के लिए उन्होंने अपनी बेटी भद्रा का विवाह श्रीद्वारिकाधीश के साथ सम्पन्न कर दिया। ये हुआ प्रभु का सातवां विवाह। कुछ लोगों को बड़ा विस्मय होता है कि ये विवाह कैसे सम्पन्न हो गया क्योंकि भद्रा प्रभु की बुआ की लड़की हुई? परन्तु प्रभु की बुआ कुन्ती, जिनके लड़के अर्जुन और प्रभु ने अपनी बहिन सुभद्रा का विवाह जब अर्जुन से कर दिया, तो यह विवाह कैसे नहीं हो सकता?

एक बार भगवान् ने ऊपर चक्र में घूमती हुई मछली का नीचे प्रतिबिम्ब देखकर उस मछली का लक्ष्य भेदन कर दिया। एक बार में लक्ष्य भेदन करने से मद्रदेश के राजा की कन्या लक्ष्मणा का पाणिग्रहण किया और भगवान् का ये आठवाँ विवाह सम्पन्न हुआ।

इस प्रकार प्रभु के आठ विवाह तो अलग-अलग हुए, परीक्षित! परन्तु सोलह हज़ार एक सौ विवाह एक दिन में ही सम्पन्न हुए। परीक्षित ने प्रश्न किया, महाराज! इतने विवाह एक साथ-एक ही मुहूर्त में कहाँ और कैसे सम्पन्न हो गये? शुकदेवजी कहते हैं, सुनो! प्राग्ज्योतिषपुर का राजा भौमासुर नाम का दानव था। वैसे इसका नाम नरकासुर था, परन्तु भूमिपुत्र होने के नाते भौमासुर कहलाता था। इसने बीस हज़ार राजकुमारियों के साथ विवाह का संकल्प किया था और भौमासुर जिस राजा को युद्ध में पराजित करता, उसके यहाँ जितनी राजकुमारियाँ होतीं, सबको लाकर बन्दीगृह में डाल देता और इस प्रकार राजकुमारियों का हरण करते-करते उनकी संख्या सोलह हज़ार एक सौ तक पहुँच गई। भगवान् को पता चला तो,

सभार्यो गरुडारूढः प्राग्ज्योतिषपुरं ययौ

सत्यभामा को साथ लेकर गरुड़ पर बैठकर भगवान् प्राग्ज्योतिषपुर पहुँच गये। नगर में प्रवेश किया तो नगररक्षक पाँच मुख वाला मुर नामक दैत्य भगवान् पर झपट पड़ा। भगवान् ने उसके पाँचों सिर काटकर वध कर दिया, तब से भगवान् का नाम मुरारि हो गया। मुर दैत्य का वध करने के पश्चात् प्रभु का भौमासुर के साथ बड़ा भयंकर संग्राम हुआ और भौमासुर की सैन्यशक्ति सहित भौमासुर का भी भगवान् ने संहार कर

दिया। भूदेवी ने प्रकट होकर प्रभु की सुन्दर स्तुति की और बंदीगृह में जाकर भगवान् ने राजकन्याओं को बन्धनमुक्त किया।

राजकुमारियाँ प्रसन्न होकर प्रभु को प्रणाम करके बोलीं, सरकार! आपने इस बन्दीगृह की चारदीवारी से तो मुक्त कर दिया, पर अब हम सब कहाँ जायें? लौटकर घर वापिस भी नहीं जा सकतीं। कोई राजकुमार भी हमारे बंदीगृह में रहने के कारण हमसे विवाह करने तैयार नहीं होगा। इसलिये अब तो मृत्यु के अतिरिक्त हमें कोई मार्ग नहीं सूझता। हे प्रभु हमारा उद्धार कीजिये। भगवान् बोले, घबड़ाओ मत! जिसके लिये जीवन के सारे रास्ते बंद हो जाते हैं, उसके लिये मेरे घर के दरवाज़े सदा खुले रहते हैं। तब तो समस्त राजकुमारियां भगवान् के चरणों में समर्पित हो गई, प्रभो! आपने नवजीवन दिया है। ये जीवन आपके चरणों में ही समर्पित है। भगवान् ने '**तथास्तु**' कहकर समस्त राजकुमारियों को एक ही मुहूर्त में विवाह करके स्वीकार किया। इस प्रकार परीक्षित! भगवान् के सोलह हज़ार एक सौ आठ विवाह हुए।

कालान्तर में भगवान् की प्रत्येक रानी से दस-दस बेटे और एक-एक बेटी का जन्म हुआ। इस प्रकार प्रभु के पुत्र और कन्याओं का जन्म हुआ। परीक्षित बोले, भगवन इतने बड़े परिवार में भगवान् कैसे रहते थे? उनकी गृहस्थलीला पर भी कुछ प्रकाश डालिये। शुकदेवजी कहते हैं, सुनो! भगवान् इतने विशाल परिवार के बीच भी हमेशा प्रसन्न अवस्था में मुस्कुराते हुए ही रहते थे - ये प्रभु की विशेषता है।

एक दिन प्रभु ने सोचा, हमारी इतनी रानी-पटरानियाँ हैं। कभी कोई रूठ जाती है, कभी कोई कोपभवन में बैठ जाती है और प्रायः हम सबको मना भी लेते हैं और हमें रूठी रानियों को मनाने में आनन्द भी बहुत आता है। परन्तु आजतक हमारी रुक्मिणी हमसे कभी नहीं रूठी? चलो! आज रुक्मिणी को थोड़ा नाराज़ करके देखते हैं। इन्हें क्रोध आता भी है कि नहीं? और क्रोध आयेगा तो कैसी लगेंगी? तो आज भगवान् रुक्मिणी के कक्ष में गम्भीर मुद्रा में आकर बैठ गये। रुक्मिणी ने पहली बार प्रभु के मुख पर ये गम्भीरता देखी, तो बेचारी पंखा लेकर हवा करने लगी और धीरे से बोली, क्या बात है महाराज! आज कैसे गुमसुम से बैठे हो? भगवान् एकदम चौंककर रुक्मिणी के मुख की ओर देखते हुए बोले, रुक्मिणी! एक बात बताओ! तुमने हमसे विवाह क्यों किया? ये प्रश्न सुनते ही रुक्मिणी के तो होश ही उड़ गये, हे भगवान्! आज मुझसे जाने क्या गलती हो गई? ये कैसी बातें कर रहे हैं? शादी हुए वर्षों बीत गये, दस पुत्रों के पिताजी भी बन गये और आज हमसे पूछ रहे हैं कि तुमने हमसे विवाह क्यों किया! ये भी भला कोई प्रश्न है?

रुक्मिणी मौन कुछ नहीं बोलीं और भगवान् तिरछी निगाह से देख रहे हैं कि देखें! गुस्सा आ रहा है कि नहीं। पर कोप का कहीं कोई लक्षण ही नहीं? भगवान् और अधिक छेड़ने लगे, रुक्मिणी! मेरी दृष्टि से तो हमारा-तुम्हारा जोड़ा कुछ ठीक नहीं बैठता। कहाँ तुम राजघराने की राजकुमारी और कहाँ अपने राम, जिनके माँ-बाप का कोई ठिकाना ही नहीं खानदान का कुछ पता ही नहीं, गुण हममें कुछ हैं नहीं। ये भले ही मान लो कि नम्बर एक के चोर हैं। यही गुण हमने बचपन से सीखा है। यदि तुम ये कहो कि हम बड़े पराक्रमी थे, तो सारी दुनिया जानती है कि हम रणछोड़ हैं। शत्रु भारी पड़ जाये, तो मैदान छोड़कर भाग जाते हैं। अपनी जन्मभूमि को भी छोड़ देते हैं। तुम यदि ये कहो कि मैंने तो अपने माता-पिता की आज्ञानुसार तुम्हारा चयन किया है, तो देवी तुम्हारे परिवार ने शिशुपाल को पसंद किया था। तुम ही हमारे साथ विरोध करके चली आई - मेरी समझ में नहीं आता कि शिशुपाल में कमी क्या थी? खानदानी था, चेदिदेश का होने वाला राजा था और अपने राम को तो राजा कभी बनना ही नहीं, राजा तो हमेशा उग्रसेन रहेंगे।

रुक्मिणीजी की धड़कन बढ़ती ही जा रही है। जब इतना सब सुनने पर भी रुक्मिणीजी कुछ नहीं बोलीं, तो भगवान् बोले, रुक्मिणी ! मैं तो कहता हूँ कि अभी भी कुछ नहीं बिगड़ा है ... जो ये शब्द सुना रुक्मिणी कि पूरे होश उड़ गये, हाथ का पंखा दूर गिर गया और रुक्मिणी मूर्छित होकर गिरने लगीं कि भगवान् समझ गये, ये तो घबड़ा गईं!! तो

पर्यङ्कादवरुह्याशु तामुत्थाप्य चतुर्भुज:

चतुर्भुजरूप में भगवान् दौड़े और दो भुजाओं से रुक्मिणी को थाम लिया। एक भुजा से पंखा झलने लगे और एक भुजा से जल छिड़कने लगे, तब रुक्मिणीजी को होश आया। भगवान् ठहाका मारकर हंसे, ऐ देवि ! विवाह हुए इतने वर्ष बीत गये ? दस पुत्रों की माताजी बन गईं ? और आज मैंने थोड़ा-सा परिहास किया, तो इस छोटे-मोटे परिहास की बातों में भी तुम इतनी घबड़ा गईं ? ये सब हंसी-मजाक की बातें थीं। एक बात कहूँ ? गृहस्थ जीवन में सुबह से शाम तक झंझटों के अलावा कुछ है ही नहीं, बस एक ही चीज सबसे अच्छी है -

अयं हि परमो लाभो गृहेषु गृहमेधिनाम् ।
यन्नर्मैर्नीयते याम: प्रियया भीरु भामिनि ॥ (भा. 10/60/31)

भगवान् कहते हैं, अरी सुंदरी ! गृहस्थ व्यक्ति प्रपंचों से पीड़ित होकर परेशान होकर जब अपनी प्रिया के पास पहुँचता है, तो हास-परिहास-मनोरंजन करके सारे प्रपंचों को भूल जाता है। इसलिए परिहास करना बहुत आवश्यक होता है। और एक तुम हो, जो हंसी-मजाक की बातों में घबड़ा गईं ? अब रुक्मिणीजी सावधान होकर बैठीं और प्रत्येक बातों का इतना सटीक जवाब दिया कि भगवान् गद्गद् हो गये। रुक्मिणी ने कहा, सरकार ! आपने भले ही मुझसे ये सारी बातें परिहास में कहीं। परन्तु जो कुछ भी कहा, वह एकदम सत्य था। भगवान् बोले, अच्छा ! तुम्हें मेरी बातें सत्य मालूम पड़ीं ? अच्छा बताओ ! मैंने क्या सत्य कहा ? रुक्मिणी बोलीं, सुनिये सरकार ! आप कह रहे थे कि मेरे अन्दर कुछ भी गुण नहीं हैं, तुमने कैसे पसंद किया ? मैं जानती हूँ, आप में कोई गुण नहीं है, इसलिये महापुरुष आपको निर्गुण कहते हैं। आप तो गुणातीत हो। सारा जगत् सत्त्व, रज, तम से बना हुआ है, ये त्रिगुणात्मक जगत् है। पर आप तो त्रिगुणातीत हो, तीनों गुणों से परे साक्षात् नारायण हो। तो आपका ये कथन कि मेरे अन्दर कोई गुण नहीं है, बिल्कुल सही ही तो है। आप कह रहे थे हमारे माँ-बाप का पता नहीं है ? आपने बिल्कुल ठीक कहा। भगवती श्रुति आपके स्वरूप का निरूपण करती-करती **'नेति-नेति'** कहकर थक जाती है और **'इदमित्थम्'** कहकर जब श्रुति को ही आपको जानना असम्भव लगता है, तो आपके माँ-बाप को कोई क्या जान पायेगा ? इसलिए आपका ये कथन भी तो ठीक ही है। आप कह रहे थे कि हम रणछोड़ हैं ? अपना घर छोड़कर डर के मारे समुद्र में घुसे बैठे हैं ? ठीक कहा, सरकार ! क्योंकि जिन भक्तों का हृदयसागर एकदम स्वच्छ और निर्मल हो जाता है, जिन भक्तों के हृदयसागर में काम, क्रोध, आदि दुर्विकारों का कभी प्रवेश नहीं होता; ऐसे भक्तों के सुन्दरदुर्ग में आप अपना घर बनाकर रह जाते हैं। भक्तों का भवन जब आपको भा जाये, तो अपना वैकुण्ठ छोड़कर चले जाते हो,

हरिरपि निजलोकं सर्वथातो विहाय प्रविशति हृदि तेषां भक्तिसूत्रोपनद्धः

गोस्वामी तुलसीदासजी हनुमानचालीसा के अन्त में रामजी को हृदय में बैठाने की बात नहीं करते, बल्कि हनुमानजी को हृदय में बैठा रहे हैं। हनुमानजी यदि हृदय में बैठ गये, तो हनुमानजी के हृदय में बैठे हुए सीतारामजी अपने आप हृदय में आ जायेंगे।

पवनतनय संकटहरण मंगलमूरति रूप ।
राम लखन सीता सहित हृदय बसहु सुर भूप ॥

अरे ! हनुमन्तलालजी हृदय में बैठ गये तो सीतारामजी महाराज, लखनलालजी के साथ पूरा रामदरबार आपके हृदय में अपने आप ही आ जायेगा। धाम कहते हैं घर को। तो भगवान् हैं अतुलित बलशाली। समस्त बल प्रदान करने वाले परमात्मा ही तो हैं और ऐसे अतुलित बलशाली भगवान् जिनके हृदयभवन में विराजमान होते हैं, ऐसे हनुमानजी का हृदय है **'अतुलितबलधाम'**। तो रुक्मिणीजी कहती हैं, प्रभो ! आप अपना घर छोड़कर भक्तों के हृदय भवन में विराजमान होने वाले भक्त वत्सल हो। रुक्मिणीजी ने हर शब्द की व्याख्या पलट दी, अर्थ बदल दिये। भगवान् स्तब्ध रह गये, रुक्मिणी ! यदि आज मैंने तुमसे परिहास न किया होता, तो तुम्हारी इस योग्यता का मुझे कभी भी पता ही नहीं चलता ? तुम तो बड़ी पढ़ी-लिखी बुद्धिमान हो। भगवान् रुक्मिणीजी के स्वभाव की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करने लगे।

शुकदेव बाबा कहते हैं, परीक्षित ! इस प्रकार से भगवान् इतने बड़े परिवार में हास-परिहास मनोरंजन करते हुए हमेशा प्रसन्न रहते हैं। जीवन में कभी माधव का मुख मुरझाया नहीं। जैसे-जैसे भगवान् के विवाह हुए, वैसे-वैसे ही भगवान् के पुत्र-पौत्रादिकों के विवाह हुए। भगवान् के पुत्र प्रद्युम्न हुए और पौत्र अनिरुद्ध हुए। अनिरुद्धजी के दो विवाह हुए और दोनों में भयंकर युद्ध हुआ। अनिरुद्धजी का एक विवाह हुआ रुक्मिणीजी के भाई रुक्मी की नातिन के साथ। रुक्मी के घर भगवान् बारात लेकर आये। इधर विवाह हो रहा था और उधर दाऊजी को पकड़कर रुक्मी बोला, दाऊजी ! चलो कुछ द्यूतक्रीडा खेलें ! अब क्या था, पांसे फिंकने लगे। अब दाऊजी बारबार जीत रहे हैं और रुक्मी बारबार कहता है, आप हार रहे हो। उसके ठुकुरसुहाती करने वाले जो आसपास बैठे हैं, वह भी रुक्मी का ही समर्थन कर रहे हैं। अचानक आकाशवाणी हुई,

तदाब्रवीन्नभोवाणी बलेनैव जितो ग्लहः

आकाशवाणी ने कहा, द्यूतक्रीडा में दाऊजी की विजय हुई है। सोई दाऊजी गद्गद् हो गये, कहो ! मानोगे आकाशवाणी की बात ? भाई ! देववाणी मिथ्या हो नहीं सकती ? और तुम अबतक हमें क्या मूर्ख बना रहे थे ? अब दाऊजी ने जब इस प्रकार कहा, तो रुक्मी के मुख से निकल गया, सुनो दाऊजी ! तुम लोग गंवारग्वाले हो.! गैयां चराना जानते हो, ये जुआ खेलना राजाओं-महाराजाओं का खेल है, ग्वालों का नहीं!!

नैवाक्षकोविदा यूयं गोपाला वनगोचरा

तुम वनगोचर लोग द्यूतक्रीडा के बारे में क्या जानो ? अब तो दाऊजी की आँखे लाल हो गईं, ऐ मूर्ख ! एक तरफ हमसे रिश्तेदारी बना रहा है ? दूसरी तरफ हमें वनगोचर समझ रहा है ? मैं कौन हूँ अभी दिखाता हूँ। हल-मूसल उठाया और हल से पकड़कर एक मूसल धमक दिया, सो उसी क्षण रुक्मी का प्राणान्त हो गया और जो उसकी ठुकुरसुहाती मिलाने वाले थे, उनके एक-एक मुक्के में सारे दाँत तोड़ दिये।

अब तो विवाहमण्डप में हाहाकार मच गया। दाऊजी बिगड़ें, तो इनके सामने कौन आये ? अब भगवान् के सामने बड़ा भारी धर्मसंकट था। भगवान् के भाई ने उनकी पत्नी रुक्मिणी के भाई को मार दिया, तो अब भगवान् पक्ष किसका लें ? भगवान् के पास पत्रकार पहुँच गये, बताइये महाराज ! इस घटना पर आप क्या कहना चाहेंगे ? पत्रकार तो ऐसे ही लोगों को पकड़ते हैं। अब भगवान् को लगा, यदि हमने समर्थन कर दिया कि बहुत अच्छा हुआ, तो बताओ रुक्मिणी क्या सोचेगी ? लो इनके भैया ने मेरे भैया को मार दिया ? और ये

कह रहे हैं बहुत अच्छा हुआ? ये तो कम-से-कम चुप ही बैठे रहते? रुक्मिणी को बुरा लगेगा। और यदि हमने ये कहा, नहीं-नहीं बहुत बुरा हुआ। ऐसा नहीं होना चाहिए। विवाह की हंसी-खुशी के वातावरण में दाऊजी ने क्रोध करके अच्छा नहीं किया, तो अभी दाऊजी हम पर बरस पड़ेंगे? बड़े भैया हैं, सब के बीच में डाँटेंगे, तेरा साला मर गया, इसलिए तू मुँह बिगाड़ रहा है? और तेरे बड़े भाई का जो उसने अपमान किया, वह नहीं दिखाई पड़ा? भगवान् को लगा दोनों तरफ से फंसे हैं, इसलिए एकदम मुँह पर ताला लगा लिया। भगवान् ने कोई भी प्रतिक्रिया इस घटना पर व्यक्त नहीं की। शुकदेव भगवान् कहते हैं,

निहते रुक्मिणि श्याले नाब्रवीत्साध्वसाधु वा

अब भगवान् इसलिए नहीं बोले क्योंकि '**रुक्मिणीबलयो राजन् स्नेहभङ्गभयाद्धरिः**' रुक्मिणी और बलराम - दोनों का स्नेह बनाये रखने के लिये भगवान् ने किसी के पक्ष में बात नहीं की। न हाँ कहा न ना कहा। मौन धारण कर लिया। इस प्रकार से अनिरुद्धजी का प्रथम विवाह हुआ।

अनिरुद्धजी का दूसरा विवाह बाणासुर की बेटी ऊषा के साथ हुआ और इस विवाह में तो स्वयं द्वारिकाधीश कृष्ण को शङ्करजी से युद्ध करना पड़ा। बाणासुर बहुत भारी शिवभक्त था। उसकी बेटी ऊषा ने स्वप्न में अनिरुद्धजी से गन्धर्व-विवाह रचा लिया और प्रतिज्ञा की मेरा विवाह उसी से होगा, जिसे मैंने स्वप्न में देखा है। बाणासुर के मंत्री की बेटी थी चित्रलेखा, जो बड़ी मायावी और विचित्र चित्रकार थी। उसने चित्र बनाते-बनाते जब अनिरुद्धजी का चित्र बनाया, तो उसे देखते ही ऊषा प्रसन्न हो गई। चित्रलेखा ने कहा, चिन्ता मत कर बहिन! मैं इन्हें तेरे सामने लाती हूँ। मायावी चित्रलेखा आकाशमार्ग से उड़ती हुई गई और द्वारिकापुरी से सोते हुए अनिरुद्ध को पलंग सहित उठाकर ले आई। बाणासुर के राजभवन में ऊषा के कमरे में अनिरुद्धजी की नींद खुली तो पूछा, कौन हो देवि? ऊषा ने कहा, मैंने ही आपको बुलवाया है। मैं आपसे विवाह करना चाहती हूँ। अनिरुद्धजी ने भी ऊषा को पसंद किया और दोनों का गान्धर्वरीति से चुपचाप विवाह हो गया। अब राजकुमारी के भवन में अनिरुद्ध विराजमान हैं। किसी बात पर उन्हें ज़ोर से हंसी आ गई, सो द्वारपाल ने सुन लिया। द्वारपाल के कान खड़े हो गए कि राम !! राम !! राजकुमारी के महल में पुरुषप्रवेश वर्जित है। अन्दर से हंसने की आवाज कैसे आई? जाकर बाणासुर से शिकायत की, '**कन्यायाः कुलदूषणम्**'। बाणासुर दौड़ा आया और राजकुमारी ऊषा के भवन में अनिरुद्ध को देखकर कुपित होकर बंदी बनाकर बन्दीगृह में डाल दिया।

नारदजी ने भगवान् द्वारिकाधीश को खबर की, सरकार! बाल-बच्चे सब आनन्द में हैं? भगवान् बोले, और तो सब ठीक है, पर आजकल कुछ दिनों से अनिरुद्ध का पता नहीं चल रहा है? कहाँ चला गया? नारदजी बोले, वाह महाराज! आपको कुछ पता ही नहीं। वह बाणासुर के यहाँ बन्दीगृह की हवा खा रहे हैं। भगवान् पूरी नारायणीसेना के साथ बाणासुर की नगरी शोणितपुर चल दिये। बाणासुर भगवान् भोलेनाथ का परमभक्त था और भोलेनाथ ने उसे एक ध्वज दिया था और कहा था कि जिस दिन ये ध्वज टूटकर गिर जाये, समझना तुझपर बहुत बड़ा संकट आने वाला है। इधर भगवान् ने चढ़ाई की और उधर उसका ध्वज टूटकर गिर गया। बाणासुर घबड़ा गया। भोलेनाथ के पास आकर बोला, प्रभु! आप ही मेरे स्वामी हो, रक्षक हो। आज मेरी रक्षा करो। भोलेनाथ ने वचन दिया, चिन्ता मत करो! हम तेरे साथ हैं। भोलेनाथ बाणासुर के महल के मुख्य द्वार पर पहुँचकर त्रिशूल लेकर खड़े हो गये और बोले, चेला! तू जाकर अन्दर विश्राम कर।

अब जैसे ही द्वारिकाधीश युद्ध के लिये आये, तो भोलेनाथ को देखकर नमस्कार किया, अरे भोलेनाथ! प्रणाम! भोलेनाथ ने कहा, स्वागत है सरकार! आप यहाँ कैसे? भगवान् बोले, इस बाणासुर ने मेरे पौत्र अनिरुद्ध को बंदी बना रखा है, तो उसे इस दुःसाहस का दण्ड देने आये हैं। आप यहाँ कैसे खड़े हो महाराज? भोलेनाथ ने कहा, महाराज! आप जिससे लड़ने आये हो, मैं उसी की रखवाली के लिए खड़ा हूँ। वह हमारा चेला है। द्वारिकाधीश ने कहा, प्रभो! आप हटिये! हम बिना दण्ड दिये नहीं छोड़ेंगे। भोलेनाथ ने कहा, प्रभु! तो चेला के साथ हम भी विश्वासघात नहीं करेंगे। उसकी रक्षा का वचन हमने दिया है। ऐसे कैसे छोड़ दें? भगवान् बोले, तब तो फिर युद्ध होगा।

फिर क्या था? दोनों हो गये आमने-सामने और इस भयंकर युद्ध में दिव्यास्त्रों का प्रयोग तक कर दिया। यहाँ तक कि भोलेनाथ ने अपना अत्यन्त अमोघ पाशुपतास्त्र चला दिया, उधर भगवान् ने अपना नारायणास्त्र सँभाल लिया। महात्मा खड़े हो गये, सरकार! क्या अभी प्रलय करना है? आप दोनों विभूतियाँ यदि टकरा जायेंगी, तो अभी विश्व का संहार हो जायेगा। तब दोनों ने शान्त होकर अपने-अपने ज्वर को भेजा। द्वारिकाधीश ने वैष्णवज्वर और भोलेनाथ ने माहेश्वरज्वर भेजा। वैष्णवज्वर और माहेश्वरज्वर आपस में टकराये। अन्त में वैष्णवज्वर ने माहेश्वरज्वर को परास्त कर दिया। माहेश्वरज्वर ने भगवान् की चार श्लोकों में स्तुति गाई। इन चार श्लोकों का नित्यपाठ करने से ज्वरबाधा नहीं सताती।

नमामि त्वानन्तशक्तिं परेशं सर्वात्मानं केवलं ज्ञप्तिमात्रम् ।
विश्वोत्पत्तिस्थानसंरोधहेतुं यत्तद् ब्रह्म ब्रह्मलिङ्गं प्रशान्तम् ॥ (भा. 10/63/25)

माहेश्वरज्वर ने सुन्दर स्तुति की। भगवान् ने प्रसन्न होकर ज्वर को शापमुक्त किया और भगवान् ने जृम्भणास्त्र के द्वारा भोलेनाथ को मोहित कर दिया। जृम्भणास्त्र का प्रभाव है कि यदि उसका प्रयोग किया जाये, तो जम्हाई आने लगती है। भोलेबाबा को ज़ोर-ज़ोर से जम्हाई आने लगी। भोलेनाथ चुटकी बजाते रहे और भगवान् भीतर घुस गये। बाणासुर युद्ध के लिये आया, तो भगवान् ने सुदर्शन चक्र से उसके एक हज़ार हाथों को काटना प्रारम्भ कर दिया। जब बाणासुर के चार हाथ बचे, तो उसकी धाई माँ कोटरादेवी नग्न होकर रणभूमि में आ गई। भगवान् मुँह फेरकर खड़े हो गये और बाणासुर प्राण बचा के भाग गया। और अन्त में बाणासुर ने भगवान् के पौत्र अनिरुद्ध को तथा अपनी बेटी ऊषा दोनों को प्रभु के सामने लाकर प्रणाम किया, सरकार! क्षमा कीजिए। भगवान् प्रसन्न हो गये। भोलेनाथ को जृम्भणास्त्र से मुक्त कर दिया। भोलेनाथ ने भी हाथ जोड़े, महाराज! भला-बुरा जैसा भी सही, पर चेला है। इसे क्षमा कर दो। भगवान् हंसकर बोले, भोलेबाबा! तुम्हारा चेला है, तो मेरा भी तो कुछ लगता है। इसने मेरे परमभागवत प्रह्लाद के वंश में जन्म लिया है। प्रह्लाद के पुत्र विरोचन हुए, विरोचन के पुत्र हुए बलि और बलि के पुत्र बाणासुर है। इसलिए मैं इसे कभी नहीं मारता। अब तो मैंने इसे अपना ही चतुर्भुज रूप दे दिया है। इस प्रकार अनिरुद्ध को उनकी पत्नी के साथ लेकर भगवान् द्वारिका आये। तो ऐसे-ऐसे भगवान् के पौत्रों के विवाह हुए।

नृगोपाख्यान :– एक बार अपने छोटे-छोटे बालगोपाल परिकर को लेकर भगवान् बोले, चलो! आज कहीं घूमने चलें। एक सुन्दर बगीचे में घूमते-घूमते आये। एक वृक्ष की छांव में पहुँचकर भगवान् बोले, हम यहाँ आराम करेंगे! तुम सब बच्चे खेलो। बच्चे गेंद खेलने लगे। एक बालक ने गेंद इतनी ज़ोर से फेंकी कि कुआँ में गिर गई। बच्चे दौड़े और कुऐं में झांका तो एक बड़ा भारी गिरगिट दिखाई पड़ा। बच्चे डरकर प्रभु

के पास आये और बोले, महाराज! इतना बड़ा भारी गिरगिट हमने पहले तो कभी नहीं देखा? आप चलकर देखें। प्रभु ने जब गिरगिट को स्पर्श किया तो उसका शरीर छूट गया और एक दिव्यपुरुष प्रकट हुआ और अपना परिचय देने लगा,

नृगो नाम नरेन्द्रोऽहमिक्ष्वाकुतनयः प्रभो ।
दानिष्वाख्यायमानेषु यदि ते कर्णमस्पृशम् ॥ (भा. 10/64/10)

अब देखिये! किसी की बात करने के ढंग से ही पता चल जाता है कि इसकी मानसिकता कैसी है? अब साक्षात् परमात्मा पूछ रहे हैं कि तुम कौन हो? पर इसकी बात करने की अकड़ देखो, महाराज! हमारा नाम नहीं सुना आपने? अरे! दानियों में कहीं भी चर्चा चले तो प्रथम श्रेणी में मेरा ही नाम आता है। महाराज! आपके कान में भी मेरा नाम जरूर पड़ा होगा। मैं इक्ष्वाकु का पुत्र सूर्यवंशी राजा नृग हूँ। कहने का ढंग देखो! परिचय का तरीका देखो। भगवान् ने पूछा, अच्छा भैया! इतने बड़े राजा और इतने बड़े दानी, फिर गिरगिट कैसे बन गये? क्या दान किया तुमने? नृग बोले, महाराज! मैं गौदान करता था। इतनी गायों का मैंने दान किया कि आकाश के तारे शायद कोई गिन ले, पृथ्वी के अणु-परमाणु शायद कोई गिन ले; परन्तु मैंने इतनी गायों का दान किया है कि उनकी गिनती असम्भव है। राजा नृग ने अपना बढ़चढ़ के परिचय दिया तो भगवान् बोले, बूढ़ी-ठेढ़ी गाय को दान करतो होयगो, सो गिरगिट बन गयो? नृग बोला, नहीं-नहीं महाराज!

पयस्विनीस्तरुणीः शीलरूपगुणोपपन्नाः कपिला हेमशृङ्गीः ।
न्यायार्जिता रूप्यखुराः सवत्सा दुकूलमालाभरणा ददावहम् ॥ (भा. 10/64/13)

मेरी गाय एक-से-एक सुन्दर, दुध देने वाली, एकदम नई-नई तरुणी कपिला गाय, जिन्हें सोने से सींग मढ़कर चाँदी से खुर मढकर मैं दान करता था। दान में कहीं कोई दोष नहीं था। पर महाराज! एक बार एक ब्राह्मण को मैंने एक गाय दान कर दी और ब्राह्मण के घर से वही गाय भागकर मेरी दूसरी गायों में मिल गई। मैं पहचान नहीं सका और वही गाय मैंने दूसरे ब्राह्मण को दान कर दी। अब दूसरा ब्राह्मण उस गाय को लिये जा रहा था और पहला ब्राह्मण उसी गाय को ढूँढ़ता फिर रहा था। दोनों आपस में टकरा गये। एक कहता है, ये गाय मेरी है! दूसरा कहता, मेरी है! मेरे समक्ष जब दोनों का झगड़ा आया तो मैं कोई निर्णय नहीं कर पाया और दोनों ही ब्राह्मण उस गाय को छोड़कर चले गये। मेरे मरने के बाद जब मैं यमलोक पहुँचा तो यमराज ने मुझसे पूछा, पहले पाप भोगोगे कि पुण्य? मैंने कहा पहले पाप भुगता दो, बाद में इकट्ठा पुण्य भोगूँगा। सो पाप का परिणाम ये हुआ कि गिरगिट बनकर कुएें में गिरा और पुण्यों का उदय हो गया, तो आज स्वयं आपके श्रीचरणों का दर्शन करके मैं कृतार्थ होकर जा रहा हूँ - और ऐसा कहकर चला गया।

कुँआ पर ही भगवान् ने अपने सभी बच्चों को समझाना प्रारम्भ किया, बच्चों! तुमने नृग की आत्मकथा सुन ली? देखो! ब्राह्मण और संत का अपमान अनजाने में भी बन जाये, तो भी बहुत खतरनाक होता है। जानबूझकर तो कभी उनका अपमान सोचना भी मत। कोशिश करना कि अनजाने में भी न हो पाये क्योंकि ब्राह्मण का जो धन है, वह विष से भी ज्यादा खतरनाक होता है। जहर को तो जो खायेगा, वही मरेगा। परन्तु ब्राह्मण के धन को ले जाने वाले का तो सारा कुटुम्ब ही नष्ट हो जाता है।

नाहं हालाहलं मन्ये विषं यस्य प्रतिक्रिया ।
ब्रह्मस्वं हि विषं प्रोक्तं नास्य प्रतिविधिर्भुवि ॥ (भा. 10/64/33)

अरे! आग की ज्वालाओं में कोई कूद जाये, तो मैं बचा लूँगा। कालकूट विष कोई पी जाये, तो बचा लूँगा। पर ब्राह्मण का धन लेने वाले को मैं भी कभी नहीं बचा सकता, क्योंकि जो ब्राह्मण विरोधी है, सबसे पहले मुझ कृष्ण का विरोधी है। '**अन्यथा मे स दण्डभाक्**' जो मेरी इस ब्राह्मणसेवा की आज्ञा का उल्लंघन करेगा, उसे मैं स्वयं अपने हाथों से दण्ड दूँगा। इस प्रकार प्रभु ने अपने बच्चों को ब्राह्मणों के प्रति बहुत सावधान किया। समय-समय पर भगवान् अपने बच्चों को इसी तरह से शिक्षा देते रहते हैं। '**भय बिनु होय न प्रीत**' प्रभु ने देखा यदुवंशी बालक बहुत बलशाली होने के साथ-साथ उच्छ्रृंखल भी हो रहे हैं, इसलिये भगवान् ने उन्हें यहाँ थोड़ा-सा भय दिखाया और समझाया।

एक दिन दाऊजी महाराज बोले, कृष्ण! भाई तू इतना बड़ा राजा बन गया, परन्तु कभी वृन्दावन जाने का विचार नहीं बनाया? व्रजवासियों को परसों लौटने का वचन दिया था, वर्षों बीत गये। अबतक तो कभी जाना ही नहीं हो पा रहा? भाई! काम तो कोई-न-कोई लगे ही रहेंगे। चलो भाई! वृन्दावन घूमने चलें। भगवान् बोले, दाऊजी! इस साल आप ही घूम आओ। दाऊजी बोले, ठीक है! तू अपनी द्वारिका सँभाल, मैं तो चला वृन्दावन और गर्मियों की छुट्टियां वहीं मनेंगी मेरी। पूरे दो महीने के लिये जाऊँगा।

द्वौ मासो तत्र चावात्सीन्मधुं माधवमेव च

मधु-माधव अर्थात् चैत्र और वैशाख। ये दो महीने का अवकाश लेकर दाऊजी वृन्दावन धाम पधारे। व्रजवासियों के तो आनन्द का पारावार ही नहीं रहा, वृन्दावनधाम में दाऊजी का खूब स्वागत किया गया। एक बार दाऊजी महाराज अपने परिकर साथ क्रीडा कर रहे थे। गर्मियों का समय था, पसीना आ रहा था। जब गर्मी ज्यादा बढ़ने लगी तो ग्वाला बोले, दाऊजी! गर्मी बहुत पड़ रही है। चलो! यमुनाजी में जलक्रीडा करें! खूब नहायेंगे और जल में ही आनन्द लेंगे। दाऊजी बोले, यमुनाजी तो दूर हैं यहाँ ते? एक काम करो! हम यमुनाजी को यहीं बुला लेते हैं। ऐ यमुने! इधर आओ! यमुनाजी बोलीं, वाह महाराज! ऐसी नहवाने के लिये यमुना घर-घर जाने लगी, तो यमुना का तो हो गया कल्याण? मैं नहीं आऊँगी। अब तो दाऊजी की आँखें लाल हो गई। यमुनाजी को बुरी तरह से डाँटा,

पापे त्वं मामवज्ञाय यन्नायासि मयाऽऽहुता

अरी पापिनी! तूने मुझ बलराम की आज्ञा का उल्लंघन करके जो मेरा अनादर किया है, उसका आज तुझे फल चखाता हूँ। तेरे खंड-खंड करके तेरा जगत् से अस्तित्व ही समाप्त कर दूँगा। जो हल-मूसल सँभाले और हल पृथ्वी पर पटका कि यमुनाजी कांप उठीं और तुरन्त दिव्यरूप में यमुना प्रकट होकर चरणों में गिर पड़ीं।

राम राम महाबाहो न जाने तव विक्रमम् ।
यस्यैकांशेन विधृता जगती जगतः पते ॥ (भा. 10/65/26)

हे अनन्त! हे महाबाहो! हे जगदीश्वर! मैं आपके बल-पराक्रम को समझ ना सकी, मेरी इस धृष्टता को क्षमा करें। तब दाऊजी का कोप शान्त हुआ। शुकदेवजी कहते हैं, परीक्षित! आज भी श्रीधामवृन्दावन में यमुनाजी दाऊजी के हल से टेढ़ी होकर बह रही हैं। इस स्थान पर यमुना की धारा सीधी नहीं है। बलरामजी के अनन्त पराक्रम का परिचय आज भी यमुनाजी की वक्रता प्रदान कर रही है।

इधर द्वारिका में जबतक दाऊजी रहे, किसी की हिम्मत नहीं पड़ी कि आँख उठा के देख लें। पर जब दुष्ट

राजाओं को ये पता चला कि दाऊजी वृन्दावन छुट्टी मनाने गये हैं, सो ही द्वारिका के ऊपर दुष्टों ने टेढ़ी निगाह डालना प्रारम्भ कर दी। एक पौण्ड्रक नाम का राजा था, जो स्वयं को भगवान् सिद्ध करने की कोशिश में लगा रहता था। उसका मित्र राजा काशिराज उसे और भड़का रहा था कि तू भगवान् बन, मैं तेरा पुजारी बन जाता हूँ। दुनिया में तेरा प्रचार-प्रसार मैं करूँगा। तू भगवान् बनकर पुजना और जितना दुनिया वालों को मूर्ख बनाकर चढ़ावा आयेगा, वह आधा-आधा। अब बताओ? जब जगत् में धराधाम पर साक्षात् परमात्मा श्रीकृष्ण विराजमान हों, उस समय पौण्ड्रक-जैसा व्यक्ति भगवान् बनकर घूमता था और यदि आजकल इस युग में दो-चार लोग परमात्मा बनकर घूमें, तो कौन-से आश्चर्य की बात है?

पौण्ड्रक ने नकली गरुड़ बना लिया, अपने शरीर में दो नकली हाथ भी लगा लिये। चार हाथ वाला बन गया और शंख-चक्र-गदा-पद्म भी सब नकली बनवा लिये। इसका गरुड़ सचमुच आकाश में घूमता था। भोली-भाली जनता पागल बन गई और '**जय पौण्ड्रक वासुदेवाय**' आरती करने लगी। काशिराज ने कहा, मित्र! यदि कृष्ण तुम्हें भगवान् मान ले, सो तुम्हारे ऊपर भगवत्ता की मोहर लग गई क्योंकि आज कृष्ण को लोग भगवान् समझते हैं। तुम कृष्ण को द्वारिका में धमकी भरा पत्र भेज दो। पौण्ड्रक बातों में आ गया। मूर्ख और शंख तो दूसरों के फूँकने से ही बजते हैं, सो काशिराज की बातों में आकर पौण्ड्रक ने एक धमकी भरा पत्र देकर द्वारिका भेज दिया। दूत ने द्वारिकाधीश के दरबार में पत्र दिया। उद्धवजी ने आगे बढ़कर दूत से पत्र लिया और पढ़ते ही खूब ज़ोर से हंसने लगे। भगवान् बोले, जल्दी बताओ! इस पत्र में लिखा क्या है? उद्धवजी बोले, इसमें लिखा है सरकार! अपना बोरिया-बिस्तर बाँधो और यहाँ से निकल भागो। आप नकली हो, असली भगवान् अब पैदा हुए हैं। इस पत्र में आपको एक भगवान् चुनौती दे रहे हैं --

वासुदेवोऽवतीर्णोऽहमेक एव न चापरः ।
भूतानामनुकम्पार्थं त्वं तु मिथ्याभिधां त्यज ॥ (भा. 10/66/5)

ऐ कृष्ण! पंचभूत प्राणियों पर अनुग्रह करने के लिए असली वासुदेव भगवान् का मेरे रूप में अवतार हुआ है। तू तो मिथ्या है, तू झूठा है! अब तेरा कल्याण इसी में है कि तू द्वारिका छोड़कर भाग जा, तो मैं तुझे छोड़ दूँगा। ये सुनकर भगवान् भी खूब खिलखिलाकर हंसे और पूरी सुधर्मासभा भी अट्टहास करने लगी। सब हंसे, ये असली भगवान् कहाँ से आ गये भाई? भगवान् उस दूत को बुलाकर बोले, सुनो! अपने भगवान् से जाकर कहना कि वह यहाँ आने का कष्ट न करें। हम उनका दर्शन करने कल ही उनके घर पहुँच रहे हैं। दूत वापिस हो गया और पौण्ड्रक को जाकर सुना दिया, वह द्वारिकाधीश कृष्ण कह रहे हैं कि वह आपका दर्शन करने कल यहाँ आयेंगे। अब पौण्ड्रक की धडकन तेज हो गई, क्यों रे काशिराज? तूने तो मुझे बड़ा मूर्ख बनाया? क्या कह रहा था तू? वह धमकी भरा पत्र सुनते ही भाग जायेगा? अरे! वह तो मेरे ही घर आ रहा है। अब मैं कहाँ भागूँ? काशिराज ने कहा, तू डरता क्यों है? मैं भी तो तेरे साथ में हूँ। देख भाई! भगवान् बनना है, तो थोड़ी बहुत कष्ट तो उठानी पड़ेगी। चिन्ता मत कर, मैं तेरे साथ हूँ। और दूसरे दिन भगवान् उसके घर पहुँच गये। जो उसके शहर में भगवान् पहुँचे, सो काशिराज ने कहा, मित्र पौण्ड्रक! वह आ गया है। अब तू अपना चमत्कार दिखा।

पौण्ड्रक ने अपने उड़नखटोले गरुड़ का खटका दबाया और उसका गरुड़ उड़ता हुआ आकाश में आ गया। दूसरा खटका दबाया तो अंगुली में सुदर्शन चक्र नाचने लगा। इतना सब देख-देखकर भगवान् खूब

हंसे, उद्धव! इसने तो गजब कर दिया? मेरा दूसरा रूप एकदम बनाकर तैयार कर दिया? पर कुछ भी हो मेरा रूप बनाने में मेरा कितना चिन्तन इसने किया होगा? ज्यों-का-त्यों बन गया? अब इसे असली रूप मैं दूँगा। यों कहकर सुदर्शनचक्र से पौण्ड्रक का वध कर दिया। सिर काटते ही उसे सारूप्यमुक्ति प्रभु ने प्रदान की और काशिराज का भी सिर काटकर काशी में ही फेंक दिया।

काशिराज के वध का समाचार जब उसके पुत्र सुदक्षिण को मिला, तो उसने अभिचार विधि से दक्षिणाग्नि की आराधना कर कृत्या प्रकट की और द्वारिका को भस्म करने भेज दिया। पर भगवान् ने सुदर्शन चक्र से कृत्या को भी भस्म किया और सुदर्शन को आदेश दिया कि जाओ! सारी काशीपुरी का विध्वंस कर दो। तो भगवान् के दिव्य सुदर्शन ने आकर काशीपुरी को भी भस्म कर दिया। भगवान् के ऐसे अद्भुत बल-पराक्रम की चर्चा शुकदेवजी ने सुनाई।

परीक्षित बोले, महाराज! प्रभु कृष्ण की कथा के बीच-बीच में थोड़ा दाऊजी की महिमा का गान भी करते जाइये। तब सुनाया कि एक द्विविद नाम का वानर था। उसने दाऊजी का वरुणकलश फोड़ दिया, तो दाऊजी ने अपने हल-मूसल के द्वारा उस द्विविद वानर का भी संहार किया। जो किसी समय में रामदल के वानरराज सुग्रीव का सचिव हुआ करता था।

एक बार दुर्योधन की बेटी लक्ष्मणा का स्वयंवर हो रहा था। सो उस स्वयंवर से भगवान् के जाम्भवतीनन्दन साम्ब ने उस राजकुमारी का हरण कर लिया। दुर्योधन ने साम्ब को बंदी बनाकर बन्दीगृह में डाल दिया। दाऊजी को जब ये समाचार मिला, तो वह साम्ब को छुड़वाने के लिये हस्तिनापुर गये। उद्धव से संदेश भिजवाया, जाओ! हमारे चेला दुर्योधन से कहना कि हम आये हैं। उद्धवजी ने समाचार दिया। दुर्योधन सभी कौरवों के साथ अपने गुरुजी का स्वागत करने आया क्योंकि दुर्योधन ने दाऊजी से गदायुद्ध सीखा था, इसलिए दाऊजी को अपना गुरुदेव मानता था। दाऊजी ने कहा, भाई दुर्योधन! तुमने हमारे भतीजे को बंदी क्यों बनाया? दुर्योधन ने कहा, उसने हमारी राजकुमारी का हरण करने दु:साहस किया। दाऊजी बोले, तो हमारा साम्ब सबसे सुन्दर है। यदि वह तुम्हारी पुत्री को पसन्द करता है, तो इसमें तुम्हें क्या आपत्ति है? तुम अपनी बेटी को उसके साथ ब्याह दो। सम्बन्ध तो तुम्हें कहीं-न-कहीं पक्का करना ही है और साम्ब-जैसा लड़का तुम्हें कहाँ मिलेगा? दुर्योधन बोला, गुरुजी! आप भी अपनी औकात में रहियेगा। हम आपको गुरु मानते हैं, इसका मतलब ये नहीं है कि जो मन में आया सो आप आदेश देने लगे? आप हमारे कोई राजाधिराज हो, जो हमें आज्ञा दे रहे हो? पैर की जूती आज सिर पर चढ़ने की कोशिश कर रही है? अब दाऊजी से कोई इतना कहने के बाद क्या जिंदा रह सकता है? दाऊजी ने अपने हल-मूसल सँभाल लिये, ऐ दुष्ट दुर्योधन! तूने अबतक अपने गुरुदेव की सर्वदा कृपा का दर्शन किया है। आज तुझे अपना कोप दिखाता हूँ। तेरी समस्त हस्तिनापुर को गङ्गाजी में डुबो दूँगा। और इतना कहकर जो अपना हल घुमाकर धरती में पटका कि सारी हस्तिनापुर गेंद की तरह डगमगा गई। कौरवों में हाहाकार मच गया। समस्त कौरवों ने दाऊजी के चरणों में गिरकर क्षमा माँगी और गिड़गिड़ाने लगे।

राम रामाखिलाधार प्रभावं न विदाम ते ।
मूढानां नः कुबुद्धीनां क्षन्तुमर्हस्यतिक्रमम् ॥ (भा. 10/68/44)

हे दाऊजी महाराज! हम मूर्खों के अपराध को क्षमा करो! हम आपके बल-पराक्रम को समझ न सके।

तब दाऊजी का क्रोध शान्त हुआ। शुकदेव बाबा कहते हैं, परीक्षित! आज भी हस्तिनापुर गङ्गाजी तरफ झुका हुआ है। दुर्योधन ने दौड़कर अपनी बेटी लक्ष्मणा और भगवान् के पुत्र साम्ब । दोनों को दाऊजी के समक्ष आगे करके क्षमा माँगी। ऐसे दाऊजी के भी अद्‌भुत पराक्रम हैं।

एक बार नारदजी ने सोचा, मैं भी तो देखूँ कि हमारे सरकार सोलह हज़ार एक सौ आठ विवाह करके कैसे रहते हैं? तो जैसे ही प्रत्येक भवन में प्रवेश करते गये कि सभी जगह प्रभु अलग-अलग कार्य करते हुए दिखाई दिये। नारदजी के तो होश उड़ गये। भगवान् के चरणों में गिर पड़े, प्रभु! ये कैसी विचित्र लीला है? भगवान् हंसकर बोले, बेटा नारद! मेरी इन लीलाओं से तेरे चार-खोपड़ी वाले पिताजी भी चक्कर खा जाते हैं। यदि तुम भी चकरा जाओ, तो कौन-से आश्चर्य की बात है? यहाँ प्रभु ने देवर्षि नारदजी को **'बेटा'** शब्द का सम्बोधन किया है - **'पुत्र मा खिदः'** बेटा! खेद मत करो, प्रेम से मेरा भजन करो। देवर्षि नारद ने भगवान् की उन अद्‌भुत लीलाओं का स्मरण करते हुए द्वारिकापुरी से प्रस्थान किया। शुकाचार्यजी कहते हैं, परीक्षित! द्वारिकाधीश प्रभु की दिनचर्या बड़ी अद्‌भुत थी।

ब्राह्मे मुहूर्त उत्थाय वार्युपस्पृश्य माधवः ।
दध्यौ प्रसन्नकरण आत्मानं तमसः परम् ॥ (भा. 10/70/4)

ब्रह्ममुहूर्त में जागते हैं, जल से नेत्रों को प्रक्षालित करके प्रसन्नमुद्रा में अपने आत्मज्योतिस्वरूप का ध्यान करते हैं। फिर सुन्दर निर्मल जल में यथाविधि स्नान करते हैं क्योंकि कृष्ण शाखा के अन्तर्गत है। सूर्योदय से पूर्व अग्निहोत्र करने के बाद सूर्योदय होने पर अपने माता-पिता-गुरुजनों को दण्डवत् करते हैं, ब्राह्मणों को गायों का दान करते हैं। फिर अपना दिव्य-श्रृंगार करके रथ में बैठकर सुधर्मा सभा पहुँचते हैं। परीक्षित! भगवान् की सुधर्मासभा भी बड़ी अद्‌भुत है। चाहे जितने भी सदस्य आ जायें, एक आसन हमेशा खाली ही रहती है। कोई भी षडोन्वयादि विकार उसमें प्रवेश नहीं कर सकते हैं।

आज उस सुधर्मा सभा में एक दूत ने पत्र लाकर दिया और कहा, महाराज! जरासंध के बन्दीखाने में बीस हज़ार आठ सौ राजा कैदी बने हुए पड़े हैं। उन पर कृपा करके उन्हें मुक्ति दिलायें। भगवान् बोले, उनसे कह देना कि हम बहुत जल्दी आयेंगे। दूत चला गया। इतने में देवर्षि नारद आकर बोले, सरकार! पाण्डवों ने आपको निमन्त्रण भेजा है कि वह राजसूययज्ञ करना चाहते हैं। आप सपरिवार पधारें! भगवान् बोले, कह देना कि हम जल्दी ही आयेंगे। भगवान् ने उद्धव से पूछा, मैंने दोनों लोगों से कह तो दिया है कि जल्दी आयेंगे। पहले कहाँ जाना चाहिए? उद्धवजी बोले, प्रभु! पहले हमें पाण्डवों के यहाँ जाना चाहिए क्योंकि राजसूययज्ञ तभी सम्भव होगा, जब जरासंध को भी जीत लिया जावे; क्योंकि जरासंध को जीते बिना राजसूययज्ञ सम्पन्न करना सम्भव ही नहीं है। भगवान् इन्द्रप्रस्थ पहुँचे। सपरिवार गाजे-बाजे के साथ पाँचों भाइयों ने भगवान् का दिव्य-भव्य स्वागत किया। मानो मृत शरीर में प्राण आ गये हों, इस प्रकार से पाँचों भाई भगवान् से मिले। भगवान् ने अर्जुन के साथ रहकर खाण्डववन का दाह कराया और अग्नि को तृप्त किया। भगवान् कई महीनों तक युधिष्ठिरजी की प्रसन्नता हेतु इन्द्रप्रस्थ में ही रहे।

एक दिन युधिष्ठिरजी ने भगवान् से कहा, प्रभु! राजसूययज्ञ करने में सभी राजाओं की सहमति प्राप्त हो चुकी है। पर जरासंध ही एकमात्र ऐसा राजा है, जिसे अभी तक किसी के द्वारा जीता नहीं जा सका। इसलिए कृपा करके इसे जीतने का कोई उपाय बताइये। भगवान् बोले, युधिष्ठिर! तुम चिन्ता मत करो। इस कार्य को

करने हम स्वयं जाते हैं। तब भगवान् भीमसेन और अर्जुन को साथ लेकर ब्राह्मणवेश धारण करके जरासंध के पास पहुँच गये। चूंकि जरासंध ने ब्राह्मणों के प्रताप से एवं उनके आशीर्वाद से भगवान् को भी अट्ठारहवें युद्ध में परास्त किया था, इसलिए वह ब्राह्मणभक्त बन गया था और ब्राह्मणों को बहुत सम्मान देता था। ब्राह्मण के माँगने पर जरासंध कोई भी वस्तु प्रदान करने से इन्कार नहीं करता था। जरासंध ने तीनों ब्राह्मणों का स्वागत किया। जरासंध ने कहा, हे ब्राह्मणो! मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ? क्या चाहते हो? अन्न, धन, वस्त्र, आदि जो चाहिए, सो माँगो। भगवान् ने कहा, राजन्! हमें वचन दो कि हम जो माँगेंगे, सो दोगे। जरासंध ने उन लोगों की आवाज़, शक्ल-सूरत, कलाईयों पर पड़े हुए धनुष की प्रत्यंचा की रगड़ के निशान देखकर पहचान लिया कि ये ब्राह्मण नहीं, क्षत्रिय हैं। ब्राह्मण का वेश धारण करके आये हैं। जरासंध ने मन में विचार किया, चलो ठीक है! जब ये क्षत्रिय होने पर भी मेरे भय से ब्राह्मण का वेश बनाकर आये हैं। परन्तु जब ये माँगने पर ही उतारू हो गये हैं, तब ये जो चाहें, सो माँग लें। मैं इन्हें अवश्य दूँगा। याचना करने पर मैं अपना शरीर भी दे दूँगा। जरासंध ने श्रीकृष्ण, अर्जुन और भीमसेन से कहा, ब्राह्मणो! आप लोग मंनचाही वस्तु माँग लो! आप चाहो तो मैं अपना सिर भी काटकर आपको दे सकता हूँ। भगवान् ने कहा, राजन्! यदि आप हमें कुछ देना ही चाहते हैं, तो द्वन्द्वयुद्ध की भिक्षा दीजिये। ये पाण्डुपुत्र भीमसेन हैं और ये उनका छोटा भाई अर्जुन है और मैं इनका ममेरा भाई (आपका पुराना शत्रु) कृष्ण हूँ। जब भगवान् ने इस प्रकार परिचय दिया, तो जरासंध ठहाका मारकर हंसने लगा। गुस्से में चिड़कर बोला, मूर्खो! यदि तुम्हारी युद्ध की ही इच्छा है, तो मैं इसे सहर्ष स्वीकार करता हूँ। परन्तु कृष्ण तुम तो डरपोक हो, भगोड़े हो, रणछोड़ हो। तुमसे तो मैं युद्ध नहीं करूँगा। दूसरा ये अर्जुन डेढ़ हड्डी का कमज़ोर है। इसकी अवस्था भी बहुत छोटी है, ये बच्चा मुझसे द्वन्द्वयुद्ध करने लायक नहीं है। तीसरा ये भीमसेन मोटा-तगड़ा पहलवान है। ये मेरे जोड़ का है, मेरे लायक है।

जरासंध ने ऐसा कहकर एक गदा भीमसेन को दे दी और एक गदा लेकर नगर से बाहर अखाड़े में आ गया। दोनों वीर भिड़ गये। दिन में युद्ध करते रात्रि में जरासंध अतिथियों के रूप में उनकी खातिरदारी करता। इस प्रकार लड़ते-लड़ते सत्ताईस दिन बीत गये। भीमसेन ने भगवान् से कहा, महाराज! मेरे हाथ-पैर सब रक्तरंजित हो गये। यदि कहीं कल और मैंने युद्ध किया, तो जरासंध मुझे मार देगा। भगवान् ने कहा, तुम युद्ध तो करते हो, परन्तु मेरी ओर देखते ही नहीं। कल युद्ध करते-करते मेरी ओर देखना। दूसरे दिन युद्ध शुरू हुआ। भीमसेन ने भगवान् की ओर देखा, तो भगवान् ने एक घास का तिनका बीच में फाड़कर फेंक दिया इशारा कर दिया। भीमसेन ने जरासंध को बीच में फाड़कर विपरीत दिशा में फेंक दिया सोई जरासंध का वध हो गया। जरासंध की मृत्यु हो जाने पर वहाँ की प्रजा ज़ोर-ज़ोर से हाय-हाय करके पुकारने लगी। भगवान् ने भीमसेन का आलिंगन करके स्वागत किया। फिर भगवान् ने जरासंध के पुत्र सहदेव का राज्याभिषेक करके सिंहासन पर विराजमान कर दिया। भगवान् ने जरासंध की कैद में बंदी पड़े हुए उन सभी राजाओं को कैद से मुक्त कराया। बीस हज़ार आठ सौ कैदी राजाओं ने जब भगवान् का दर्शन किया, तो गद्‌गद् हो गये। वे इस बात का दुःख ही भूल गये कि हम कैद में कितने दिनों से बंद पड़े थे। भगवान् का मुखकमल इतना सुकोमल है, वर्षाकालीन मेघ के समान उनका सांवला-सलोना शरीर है, रतनारे नेत्र हैं **'पद्मगर्भारुणेक्षणम्'** प्रभु का सुन्दर शरीर प्रसन्नता का सदन है। भगवान् को देखकर उन राजाओं की ऐसी स्थिति हो गई, मानो वे प्रभु को नेत्रों से पी रहे हों, जिह्वा से चाट रहे हों, नासिका से सूंघ रहे हों, बाहुओं से आलिंगन कर रहे हों। उन्होंने प्रभु को प्रणाम करके कहा,

नमस्ते देवदेवेश प्रपन्नार्तिहराव्यय ।
प्रपन्नान् पाहि नः कृष्ण निर्विण्णान् घोरसंसृतेः ॥ (भा. 10/73/8)

शरणागतों के सारे दुःख और भय हर लेने वाले देवदेवेश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप अविनाशी श्रीकृष्ण! हम आपको नमस्कार करते हैं। आपने जरासन्ध के कारागार से तो हमें छुड़ा ही दिया। अब इस जन्म-मृत्युरूपी घोर संसारचक्र से भी छुड़ा दीजिये, क्योंकि हम संसार में दुःख का कटु अनुभव करके उससे ऊब गये हैं और आपकी शरण में आये हैं। प्रभो! अब आप हमारी रक्षा कीजिये। सभी राजाओं ने गोविन्द की स्तुति गाई,

कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने ।
प्रणतक्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नमः ॥ (भा. 10/73/16)

ये भागवत का सबसे सुन्दर मन्त्र माना जाता है। प्रणतजनों का क्लेश दूर करने वाले हे कृष्ण-कन्हैया! गोविन्द! द्वारिकानाथ! आपको हमारा प्रणाम है। ये भागवत का संकटमोचन मन्त्र है।

शुकदेवजी कहते हैं, राजन्! पाण्डवों का राजसूययज्ञ प्रारम्भ हुआ। उस यज्ञ में पहली समस्या खड़ी हुई कि प्रथम पूजन किसका हो? तो सहदेव ने भगवान् का नाम प्रस्तावित किया। बाबा भीष्म ने उसका अनुमोदन कर दिया। सभी ने स्वीकृति दे दी और ज्यों ही भगवान् का प्रथम पूजन प्रारम्भ हुआ, सो तिलमिलाकर शिशुपाल उठ खड़ा हुआ, ये वही द्वारिकाधीश है, जिसकी बदौलत हम दूल्हा बनते-बनते दुल्हन के डोले में खुद ही चले आये थे। आज बढ़िया मौका है, छोड़ूँगा नहीं। शिशुपाल ने भगवान् पर गालियों की बौछार कर दी। जो एक सौ एक गाली हुई कि भगवान् ने तुरन्त '**शिरः क्षुरान्तचक्रेण जहार पततो रिपोः**' सुदर्शनचक्र से उसका शिरोच्छेदन कर दिया। उसके देह से एक प्रकाश निकला, जो भगवान् में विलीन हो गया। और भी शिशुपाल के समर्थक जो दुष्ट राजा बैठे थे, वे डर के मारे मौन हो गये कि अगर गड़बड़ करेंगे, तो यही हालत हमारी भी हो जायेगी।

पाण्डवों का राजसूययज्ञ बड़े धूमधाम से सानन्द सम्पन्न हुआ और इसी यज्ञ में दुर्योधन को पाण्डवों की सभा में घुसते समय जल में थल, थल में जल दिखा। सो पानी में गिरा और लोग ठहाका मारकर हंस गये। भीमसेन तो बड़े तेज स्वर में हंस दिये, सो दुर्योधन के हृदय में आग लग गई। उसने प्रतिज्ञा की - किसी दिन मैं भी इन पाण्डवों पर ऐसे ही न हंसा, तो मेरा भी नाम दुर्योधन नहीं। यही हंसी महाभारत का बीज बन गई। उसी का बदला लेने के लिए शकुनि मामा के सहयोग से घूतक्रीडा का षडयन्त्र रचा करके पाण्डवों का सर्वस्व छीन करके द्रौपदी का अपमान किया। वस्त्रहरण करते समय भगवान् द्वारिकानाथ ने द्रौपदी की रक्षा की। श्रीशुकदेवजी कहते हैं, परीक्षित! भगवान् के गुणगण तो अनन्त हैं, जिनका कोई बखान ही नहीं कर सकता। अब तुम कोई विशेष भगवच्चरित्र सुनने की जिज्ञासा रखते हो, तो बताओ।

परीक्षितजी बोले, भगवन्! निःसंदेह भगवान् के चरित्र तो अनन्त हैं, परन्तु आपने बार-बार प्रभु को दीनबन्धु, आदि नामों से पुकारा तो अवश्य है। परन्तु दीनबन्धुतापूर्ण कोई चरित्र अभी तक आपने सुनाया नहीं? भगवान् ने किसी दीन को भी बन्धु बनाया था क्या? शुकदेवजी को सुदामाजी याद आ गये। शुकदेवजी बोले, तुमने बहुत उत्तम प्रश्न किया है परीक्षित! अब हम तुम्हें प्रभु के ऐसे ही दीनसखा की कथा सुनाते हैं। ध्यान से सुनो!

कृष्णस्यासीत् सखा कश्चिद् ब्राह्मणो ब्रह्मवित्तमः ।
विरक्त इन्द्रियार्थेषु प्रशान्तात्मा जितेन्द्रियः ॥ (भा. 10/80/6)

परमभागवत श्रीसुदामाजी का पावनपरिचय देते हुए श्रीशुकदेवजी महाराज कहते हैं, परीक्षित! भगवान् श्रीकृष्ण के परमप्रिय अभिन्नहृदय श्रीसुदामाजी महाराज हैं। '**कृष्णस्य सखा**' सुदामाजी की विशेषता के इतने विशेषण गिना दिये कि मूल परिचय देना शुकदेवजी भूल ही गये। न नाम बताया, न काम बताया, न धाम बताया - केवल विशेषण गिनाये। कैसे हैं सुदामा? '**ब्राह्मणो ब्रह्मवित्तमः**' ये ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण हैं, ब्रह्मविद्वरिष्ठ हैं। केवल ब्रह्मविद् नहीं हैं, केवल ब्रह्मवित्तर नहीं हैं, वरन् '**ब्रह्मवित्तमः**' परमश्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानी हैं। इन्द्रियों के विषयों से एकदम विरक्त रहने वाले ब्राह्मण हैं। शुकदेवजी को फिर भी संतोष नहीं हुआ, तो बोले '**प्रशान्तात्मा**' हर परिस्थिति में प्रसन्न रहते हैं। जिसका चित्त कभी अशान्त नहीं होता, वह ऐसे प्रशान्त आत्मा। आगे विशेषण किया '**जितेन्द्रियः**' जितेन्द्रिय हैं, जिसकी इन्द्रियाँ सर्वथा उसके वशीभूत हों इतने बढ़िया-बढ़िया विशेषण श्रीसुदामाजी महाराज के गिनाये और जब बेचारी सुशीला का परिचय देने लगे, तो श्रीशुकदेवजी बोले, सुदामा की धर्मपत्नी सुशीला परमपतिव्रता तो थी, पर

दरिद्रा सीदमाना सा वेपमानाभिगम्य च

सुशीला परमपतिव्रता तो थीं, परन्तु दरिद्र बहुत थीं। यहाँ सुदामाजी को तो दरिद्र नहीं कहा। फिर सुशीला को क्यों दरिद्र बता दिया? भाई! पतिदेव डॉक्टर बन जायें, तो देवीजी अपने आप डॉक्टरनी कहलाने लगती हैं। तो फिर सुशीला को दरिद्र क्यों कहा? '**दरिद्रो यस्त्वसंतुष्टः**' भागवत की दृष्टि में जो असंतुष्ट रहता है, वही दरिद्री है। सुदामाजी तो संतुष्ट हैं, हर हाल में मस्त हैं पर सुशीला बेचारी को घर की चिन्ता लगी रहती है, घर की आवश्यकताओं से चिंतित रहती है। आज जब किसी संत के द्वारा सुशीला को यह पता चला कि मेरे स्वामी के सखा द्वारिकाधीश कृष्ण हैं, तो अचम्भित रह गई। सुदामाजी का कैसा विरक्त स्वभाव है कि अपनी पत्नी को भी कभी नहीं बताया कि मैं श्रीकृष्ण का सखा हूँ। अन्यथा लोग मुख्यमन्त्री से हाथ मिलाते हुए फोटो खिंच जाये, तो गजब कर देते हैं। पर यहाँ सुदामाजी ने सुशीला को भी नहीं बताया। सुशीला ने आज पूछा, स्वामी! सच बताइये। क्या श्रीकृष्ण आपके सखा हैं? मैंने ऐसा सुना है! सुदामाजी हंसे, हाँ-हाँ! बचपन का मित्र है हमारा! गुरुकुल में हम साथ-साथ पढ़ते थे। पर तुझे किसने बताया? सुशीला बोली, महाराज! एक साधु आये थे। बातों-बातों में चर्चा चली, तो उन्होंने मुझे बताया। आपने कभी नहीं बताया,

ननु ब्रह्मन् भगवतः सखा साक्षाच्छ्रियः पतिः ।
ब्रह्मण्यश्च शरण्यश्च भगवान् सात्वतर्षभः ॥ (भा. 10/80/9)

अरे मालूम है? द्वारिकाधीश भगवान् श्रीकृष्ण जो हैं, जिन्हें आप अपना मित्र बता रहे हो, वह साधारण नहीं हैं, वरन् ब्राह्मणों के अनन्य भक्त हैं। ब्राह्मणों को बहुत मानते हैं और शरणागतवत्सल हैं। जो शरण में आ जाये, उसे सब कुछ न्यौच्छावर कर देते हैं। मेरी प्रार्थना है कि महाराज! एक बार आप अपने उन सखा से मिलने भर चले जाओ। जब आप जाओगे तो,

दास्यति द्रविणं भूरि सीदते ते कुटुम्बिने

आप यदि मिलने जाओगे, तो वह बहुत द्रव्य देंगे। इतना धन देंगे कि हमारी पीढ़ियों की भी दरिद्रता दूर हो जायेगी। सुदामाजी बोले, बांवरी! बचपन का मित्र और वर्षों के बाद आज मिलने जाऊँगा, तो क्या द्रव्य

कमाने उसके पास जाऊँगा? दरिद्रता रोने जाऊँगा? ऐसे तो मैं कभी नहीं जाने वाला। और मुझे तो ये भी नहीं मालूम कि वह रहता कहाँ है? सुशीला समझ गई कि ये बड़े ही पक्के सिद्धान्तवादी हैं। लेने-देने की बात पर ज़ोर डाला तो ये कभी नहीं जाने वाले। सुशीला बोली, नहीं! नहीं! मेरा मतलब ये थोड़े-ही था कि धन मिल ही जावेगा। अरे मिले न मिले? ब्राह्मण को तो हर हाल में प्रसन्न रहना चाहिये। मेरा मतलब तो सिर्फ इतना था कि एक बार मिलने अवश्य जाइये और रही बात उनके पते की, तो वह मुझे मालूम है। **'आस्तेऽधुना द्वारवत्याम्'** आजकल वह द्वारिकापुरी में द्वारिकाधीश बनकर विराजे हुए हैं। बड़ी महिमा है उनकी द्वारिकापुरी में। स्वामी! अपने लिए न सही, पर एक बार मेरे लिए जरूर मिल आइये। क्या अपने सखा का इतना नाम सुनकर आपका मिलने का मन नहीं होता? सुदामाजी बोले, अरी बांवरी! तूने खूब मन की बात कही। मिलने को तो मेरा मन भी खूब होता है और तू कह रही है, तो आज तो और भी उतावलापन आ गया है। कई बार उसकी याद आई, मिलने का बहुत मन हुआ; फिर मैंने सोचा न जाने कहाँ होगा? कैसे मिलूँगा? पर जब आज तू भी कह रही है, तो अब मेरा मन भी खूब हो रहा है। मेरे मन में तो एक ही उत्कण्ठा है।

अयं हि परमो लाभ उत्तमश्लोकदर्शनम्

आजकल मैं अपने उस बालसखा की चारों तरफ इतनी प्रशंसा सुन रहा हूँ, तो मेरे मन में भी उसके दर्शन की बड़ी उत्कण्ठा हो रही है। परन्तु सोचता हूँ कि जब इतनी महिमा है, तो अब तो वह बहुत बदल गया होगा। अब तो उसके ठाठ ही कुछ निराले होंगे? इसलिए उसके दर्शन की इच्छा तो मेरी भी है। बस यही एक परमलाभ मेरे मन में है। सुशीला बोली, तो फिर देर किस बात की? सोच क्या रहे हो? चलो! अभी निकलो। सुदामाजी बोले, अरी सुशीला! ऐसे थोड़े-ही मुँह उठाकर चला जाऊँगा? अरे भाई! वर्षों के बाद अपने सखा के घर जाऊँगा, तो खाली हाथ जाऊँगा? कुछ स्थान ऐसे होते हैं देवि! जहाँ पर खाली हाथ कभी नहीं जाना चाहिए। और जब घर में देखता हूँ, तो मुझे कुछ दिखाई नहीं पड़ रहा। तो अब क्या लेकर जाऊँ? सुशीला बोली, चिन्ता न करो! मैं अभी प्रबन्ध करती हूँ। दौड़कर गई और,

याचित्वा चतुरो मुष्टीन् विप्रान् पृथुकतण्डुलान् ।
चैलखण्डेन तान् बद्ध्वा भर्त्रे प्रादादुपायनम् ॥ (भा. 10/80/14)

सुशीला चार ब्राह्मणियों के घर जाकर एक-एक मुट्ठी चावल उधार माँग लाई। वह चार मुट्ठी चावल जैसे-तैसे करके मिले अब बाँधे किसमें? तो घर में एक जीर्ण-शीर्ण धोती मिल गई, उसी की दो-तीन तह मिलाकर उस चार मुट्ठी चावल की पोटली बाँधी और हाथ जोड़कर बोली, स्वामी! बस यही तुच्छ भेंट अपने सखा को प्रदान करना। परन्तु जब उनसे मिलो तो मेरा एक संदेश जरूर कहना -

एक मास द्वै पाख में दो एकादशी होंय ।
सो प्रभु दीनदयाल ने नितप्रति दीनी मोय ॥

हे गोपाल! आपके सभी उपासक वैष्णव महीने में दो बार एकादशी का व्रत रखते हैं। पर मेरे घर में तो प्रतिदिन एकादशी ही बनी रहती है। जब भी मेरे बालक भोजन की इच्छा प्रकट करते हैं और खाने को कुछ नहीं दिखता, तो मुझे कहना पड़ता है, बेटा! आज एकादशी का व्रत है। तो सरकार! इस घर में कबतक व्रत चलेगा? थोड़े से शब्दों में बड़े सुन्दर भाव सुशीला ने कह दिये। अब सुदामाजी बोले, अच्छा देवि! कह दूँगा। पोटली बगल में दबाये चल पड़े। प्रभु का तो स्वभाव/संकल्प है - **'जो तू आवे एक पग, मैं आऊं पग साठ'** जीव एक कदम बढ़ाता है, भगवान् साठ कदम बढ़ाकर स्वागत करते हैं। उसके मार्ग के सारे विघ्न प्रभु आगे-आगे दूर करते चलते हैं। सुदामाजी चल पड़े। संकल्प दृढ़ हो तो लक्ष्य निश्चित् प्राप्त होता है।

भजन - दूर नगरी बड़ी दूर नगरी कान्हा दूर नगरी

सुदामाजी महाराज तो सुदृढ़ संकल्प के साथ चल पड़े, अब नगरी चाहे जितनी दूर हो। चलते-चलते बेचारे जब परिश्रान्त हो गये, तो एक पेड़ की छाँव में थोड़ा विश्राम करने लगे। सुदामाजी को विश्राम करते प्रभु ने देखा, तो सोचा कि मार्ग कुछ तो सुलभ करें। तो भगवान् ने ऐसी लीला की कि सोते हुए सुदामाजी को लाकर द्वारिका में ही सुला दिया। सुदामाजी की नींद खुली तो होश उड़ गए, भैया! ये हम कहाँ चले आये? ये महल- अटारी कैसी दिख रही हैं? एक पथिक से पूछा, भैया! हम द्वारिका जानो चाहें! ज़रा पता बता देओगे? द्वारिका कितनी दूर है? पथिक हंसता हुआ बोला, बाबा! द्वारिका में तो आप खड़े ही हो? अरे भाई! बड़ा गजब हो गया? इतनी जल्दी आय गये? भैया! यदि ये द्वारिका है, तो यहाँ हमारो कन्हैया कहाँ मिलैगो? पथिक बोले, ये कौन है? पता ठिकाना पूरा बताओ? मकान नम्बर, गली नम्बर, मुहल्ला का नाम। सुदामाजी घबराये, तू हमारे कन्हैया कूं न जाने? अरे! देख भैया! ये तो हमारे बचपन की बात है, वाका नाम तो है श्रीकृष्णचन्द्र। हमारे बचपन के मित्र हैं वो, इसलिए हम कन्हैया कहें। वह पथिक तो नाम सुनते ही उछल पड़ा, तुम हमारे महाराज का नाम ले रहे हो? अरे बाबा! उनका नाम लेने से पहले पता है कितने विशेषण लगाए जाते हैं? **'अनन्तश्री समलंकृत छत्रपति राजमूर्ति धर्मचक्रवर्ती सर्वेश्वरेश्वर सर्वतन्त्रस्वतन्त्र गो-विप्र-प्रतिपालक विश्ववन्द्य श्रीश्री श्रीमहाराजाधिराज द्वारिकाधीश्वर श्रीकृष्णचन्द्रजी सरकार'** और तुम न जाने कैसा ये विचित्र नाम बोल रहे हो? ये तो हमने पहली बार सुना उनका नाम!

सुदामाजी तो इतने लम्बे-चौड़े विशेषण सुनकर ही चक्कर में पड़ गये, भैया! वा को इतनो लम्बो-चौड़ो नाम है गयो? अब तेरी समझ में तो बात आय गई होयगी। अब ये तो बताय दे, वह कहाँ मिलैगो? पथिक बोला, वाह महाराज! उनके बारे में क्या पूछना? अरे चले जाइये! बड़े-बड़े विशाल भवन पंक्तिबद्ध जितने भी तुम्हें दिख रहे हैं, सब उन्हीं के तो हैं। उनके हज़ारों भवन हैं। वह तो यहाँ के मालिक हैं। इतना कहकर पथिक तो चला गया। सुदामाजी आश्चर्य में डूबे उन विशाल भवनों को देखते-देखते आगे बढ़े, तो बड़ा ही जगमगाता हुआ एक दिव्य-भव्य भवन नज़र आया, जो भगवती रुक्मिणीजी का था, उसी में घुस गये। भागवत के अनुसार तो सुदामाजी सीधे अन्तःपुर तक चले गये, परन्तु प्रसिद्ध है और कवियों ने बड़ा सुन्दर भाव सजाया है कि जब द्वारपालों ने पूछा, महाराज! किससे मिलना है? सुदामाजी हाथ जोड़कर बोले, भैया! अन्दर जाकर बस इतनो कह दीजौ, तेरे बचपन के सखा सुदामा मिलवे कूं आये हैं। बस अपने महाराज कूं इतनो बताय दे।

द्वारपाल तो अचम्भित रह गया, आप हमारे महाराज के सखा हो? सुदामाजी बोले, हाँ हाँ! बचपन के मित्र हैं! द्वारपाल ने सोचा, भगवान् की लीला कुछ समझ में तो आती नहीं? कब कौन किस रूप में चला आवे? देखने में तो लग नहीं रहे। पर जब सखा बता रहे हैं, तो हमें क्या परेशानी है? पूछ लेते हैं। विराजिये महाराज! हम अन्दर खबर करते हैं। सुदामाजी को बैठाकर द्वारपाल भीतर गया और भगवान् को प्रणाम किया, सरकार! इस दास को सेवा करते-करते वर्षों बीत गये, पर आज जो विभूति आपके दरवाज़े खड़ी है और आपको वह अपना सखा भी बता रहा है। ऐसे भी आपके कोई सखा सम्भव हो सकते हैं, ये मेरे स्वप्न

में भी नहीं था। भगवान् बोले, ऐसा कौन है भाई? द्वारपाल बोले, सरकार! यही तो समझ में नहीं आता कि वे कौन हैं?

सीस पगा ना झगा तन में प्रभु जानै को आहि बसै केहि ग्रामा
धोति फटी सी लटी दुपटी अरु पाँय उपानह की नहिं सामा।
द्वार खड्यो द्विज दुर्बल एक रह्यौ चकिसौं वसुधा अभिरामा
पूछत दीन दयाल को धाम बतावत आपनो नाम सुदामा ॥

(नरोत्तमकविकृत सुदामाचरित 35)

जो प्रभु के कान में सुदामा नाम पड़ा कि भगवान् अपने सिंहासन से कूदकर दौड़े। पीताम्बर नीचे गिर गया, पादुका पहनना भूल गये, दोनों भुजा पसारे 'सुदामा-सुदामा' पुकारते दरवाज़े को भागते चले गये। सारी सभा सावधान हो गई। ऐसी कौन-सी विभूति आई, जिसके नाम पर इतने उतावले आतुर होकर सरकार जा रहे हैं, अरे! इस दरबार में ब्रह्मादिक देवताओं को ही आते हमने देखा। पर आजतक जो आये उन्होंने अपना सिर झुकाया, मुकुट नवाया। पर इतनी आतुरता सरकार में कभी नहीं दिखाई पड़ी? सारे सभासद सावधान होकर खड़े हो गये और भगवान् दौड़े-दौड़े सात ड्योढ़ी पार पहुँच गये। सेवक प्रभु के पीछे-पीछे भागे चले जा रहे हैं। दरवाज़े पर खड़े सुदामाजी अनेकों प्रकार के संकल्पों-विकल्पों में गोते लगा रहे हैं कि न जाने पहचान पायेगा या नहीं? उसे याद भी होगा कि नहीं? नाम का भी स्मरण होगा कि नहीं? अनेक प्रकार के संकल्प चल रहे हैं। जो भगवान् ने दरवाज़े पर खड़े सुदामाजी को देखा कि लपककर-दौड़कर भुजापाश में हृदय से कसकर दबा लिया, हृदय से लगा लिया। सुदामाजी को लगा, जैसे आनन्द के सरोवर में सराबोर हो गये हों। दोनों मित्र एक-दूसरे के गले लगे। इतने आनन्द विभोर हुए कि दोनों के नेत्र सजल हो गये। दोनों का ही कण्ठावरुद्ध हो गया। अत्यन्त प्रेम की अधिकता में कोई किसी से कुछ बोल ही नहीं पा रहा है। भगवान् ने सुदामाजी का हाथ पकड़ा और शनैः-शनैः भवन के भीतर ले आये।

जब सभासदों की दृष्टि सुदामाजी के स्वरूप पर पड़ी, तो सभी स्तब्ध हो गये, ओ हो! यही विभूति थी, जिसके लिए सरकार इतने हड़बड़ा के भागे? राम-राम! जिसके पैरों में जूते-चप्पल भी नहीं है? तन पर वस्त्र के नाम पर मात्र एक धोती है। सिर पर पगड़ी भी नहीं, धोती आधी नीचे लिपटी है और आधी को ऊपर से ही लपेट रखा है। मात्र जैसे-तैसे तन ढांक पाये हैं। ऐसे अकिंचन के प्रति सरकार इतने उदार हैं। किसी को कुछ समझ नहीं आ रहा। सारी सभा सुदामा को देखकर स्तब्ध और सुदामाजी सभा की दिव्यता-भव्यता को देखकर भौंचक्के रह गये। भगवान् ने हाथ पकड़कर सुदामाजी को सर्वश्रेष्ठ सिंहासन पर आसीन किया। सुदामाजी बारम्बार विरोध करते हैं, फिर भी भगवान् हाथ पकड़कर बैठा ही देते। रुक्मिणीजी आश्चर्यचकित आँखों से देख रहीं थीं कि आखिर ये है कौन? रुक्मिणीजी के भावों को प्रभु जान गये और आदेश किया, देवि! शीघ्र जाओ और जल लेकर आओ। मुझे इन महापुरुष के चरण धोने हैं। रुक्मिणी भागी-भागी गई और इधर भगवान् सुदामाजी के श्रीचरणों में बैठ गये। पीताम्बर को उठाकर सुदामाजी के चरणों में लगी धूल को शनैः-शनैः झाड़ने लगे। ज्यों ही तलवे पर हाथ गया कि सुदामाजी उछल पड़े। तब भगवान् ने पादतल को देखा कि अनगिनत काँटे चुभे हुए हैं, जिनकी कोई गणना ही नहीं है और कितने सारे फफोले पड़ गये हैं, नंगे पैर चलते-चलते जिसकी सुध नहीं। उनमें से कई फफोले फूट गये, जिनमें छोटे-छोटे धूल मिट्टी के कण

अन्दर भर गये। ऐसे कंटकविद्ध पादपद्मों को प्रभु ने जब देखा तो जबतक रुक्मिणी पानी लेकर आ पातीं, तबतक तो प्रभु के ही नेत्रों से गङ्गा-यमुना की धारा बह चली कि सुदामाजी के दोनों चरण ही प्रभु ने प्रक्षालित कर दिये।

ऐसे बेहाल बेवाइन सों पग कंटक जाल लगे पुनि जोये
हाय! महादुख पायो सखा तुम आए इतै न किते दिन खोये ।
देखि सुदामा की दीन दसा करुना करिके करुनानिधि रोये
पानी परात को हाथ छुयो नहिं नैनन के जल सों पग धोये ॥

(नरोत्तमकविकृत सुदामाचरित 42)

प्रीतो व्यमुञ्चदब्बिन्दून् नेत्राभ्यां पुष्करेक्षणः

प्रीति की अधिकता में प्रभु के नेत्रों से इतना जल बहा कि सुदामाजी के चरण धुल गये। रुक्मिणीजी पानी लेकर आईं और ये दृश्य देखकर हक्की-बक्की रह गई। खड़ी-खड़ी सोचने लगीं,

किमनेन कृतं पुण्यमवधूतेन भिक्षुणा ।
श्रिया हीनेन लोकेऽस्मिन् गर्हितेनाधमेन च ॥ (भा. 10/80/25)

इस अवधूत ने कौन-सा पुण्य किया होगा? सारा जगत् मेरे जगदीश्वर के चरणकमलों की रज चाहता है और मेरे स्वामी इसकी चरणरज नेत्रजल से प्रक्षालित कर रहे हैं। इसके समान भाग्यशाली पुण्यात्मा कौन हो सकता है? केवल रुक्मिणी ही नहीं, सारा जगत् सुदामाजी के सौभाग्य की सराहना कर रहा है। सुदामाजी सहमे हुए सिंहासन से चिपके बैठे हैं। प्रभु सुदामाजी के मनोगत भाव जान गये कि सुदामाजी सिंहासन पर मुझसे मन की बात नहीं कर पायेंगे और मित्र से जब वर्षों बाद मिले हैं, तो मन की बात तो होनी ही चाहिये। तो संकोची स्वभाव के सखा को प्रभु हाथ पकड़कर बोले, मित्र! बहुत थके-हारे मालूम पड़ रहे हो, इसलिए अन्तःपुर में चलकर थोड़ा विश्राम करो। और चरणोदक रुक्मिणीजी को देकर भगवान् सुदामाजी के साथ भीतर गये। सुन्दर स्नान कराया, वस्त्राभूषण धारण कराये, विविध व्यंजनों का भोजन कराया, ताम्बूल निवेदन किया और उसके बाद सुदामाजी महाराज को रुक्मिणी के एकान्तिक कक्ष, जहाँ पर हस्तीदन्त निर्मित सुन्दर पलंग पर दूध के झाग के समान शुभ्र-सुकौमल शय्या पर शयन कराया। सुदामाजी को लेटकर ऐसा लगा जैसे क्षीरसिन्धु में अवगाहन कर रहे हों। आनन्दविभोर हो गये, मन आह्लादित हो रहा है। इतनी खुशी है कि शब्दों में व्यक्त नहीं कर पा रहे हैं। अपने आनन्द को भगवान् से कुछ बता नहीं पा रहे हैं। इतना अपार सुख का अनुभव हो रहा है। प्रभु के स्वभाव को प्रसन्नता के साथ मन ही मन सराह रहे हैं, पर कुछ बोल नहीं पा रहे। सुदामाजी जब शयन करने लगे, तो प्रभु चरण दबाने लगे। सुदामाजी बारबार हाथ पकड़ते हैं, रोकते हैं; पर भगवान् एक नहीं सुनते, एक नहीं मानते। सुदामा जानते हैं कि उन्हें बचपन से ही मालूम है कि ये बड़ा हठी है। जो करना चाहे, सो करैगो; बात मानवे वारो ना हैं। पर रुक्मिणीजी ने देखा, जब मेरे स्वामी चरणसेवा कर रहे हैं, तो मुझे भी तो इस महापुरुष की कुछ सेवा करना चाहिए। तो तुरन्त एक पंखा उठाकर ले आई और एक किनारे खड़ी होकर हवा करने लगीं,

देवी पर्यचरत् साक्षाच्चामरव्यजनेन वै

देखो तो इस अवधूत के ठाठ!! साक्षात् लक्ष्मी जिसे पंखा झल रही हों, साक्षात् लक्ष्मीपति जिसके चरण

दबा रहे हों; संसार में इससे बड़ा सम्पन्न और कौन हो सकता है? लक्ष्मीनारायण दोनों ही सेवा में समर्पित हैं। भगवान् कहना चाहते हैं कि कोई सुदामा जैसा बने तो सही?

निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शनम् ।
अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः ॥ (भा.मा. 11/14/16)

भगवान् तो उसकी चरणरज में स्नान करने को तैयार हैं, कोई निरपेक्ष बनकर तो देखे। हमारी तो न जाने कितनी अपेक्षाऐं हर व्यक्ति से हैं। जो हमसे जुड़ा कि उससे हमने अपेक्षाऐं कीं, ये हमारे इस काम आयेगा, इससे ये काम चलेगा। प्रभु का भजन करते हैं, तो उससे भी अपेक्षाऐं हैं कि भगवान् से भी ये माँगेंगे, वह माँगेगे। बहुत सारी अपेक्षाऐं हैं, पर किसी से कोई अपेक्षा नहीं मन में, कोई इच्छा शेष नहीं - ऐसा निरपेक्ष संत कोई बन जाये, तो भगवान् कहते हैं, मैं नित्यप्रति उसके पीछे-पीछे भागता हूँ, ताकि उसके चलने से जो धूल उड़ रही है, उसकी चरणधूल में स्नान करके मैं अपने को पावन करता हूँ - ये भगवान् का वचन उद्धव से है। सुदामाजी की सेवा में आज प्रभु समर्पित हैं। अचानक चरण दबाते प्रभु ने पूछा, मित्र! बहुत वर्षों के बाद आपके आज दर्शन भए हैं। अब पहले तो मुझे ये बताओ, विवाह हो गया? अब भगवान् तो चाहते हैं, हम दोनों मित्र उसी बचपन की अवस्था में पहुँच जायें, जहाँ गुरुकुल में खूब हास-परिहास किया करते थे। और बचपन का मित्र बुढ़ापे में मिल जाये, तो बुढ़ापा भी उस समय भूल जाते हैं। वह सारा बचपन आँखों में नाचने लगता है, उस दिन ये हुआ था, उस दिन ऐसा हुआ था; बचपन की सारी यादें ताजा हो जाती हैं। तो भगवान् ने सबसे पहला प्रश्न किया,

अपि ब्रह्मन् गुरुकुलाद् भवता लब्धदक्षिणात् ।
समावृत्तेन धर्मज्ञ भार्योढा सदृशी न वा ॥ (भा. 10/80/28)

मित्र! पहले ये बताइये कि तुम्हें कोई तुम्हारे अनुकूल भार्या मिली? इस बात पर सुदामाजी थोड़े-से शर्माये और इशारे में बोले, भैया! या शादी के अलावा तो कूं और कोई बात पूछवे की नांय मिली? मेरे विवाह की चिन्ता है का? भगवान् बोले, ये प्रश्न इसलिए पूछ रहा हूँ क्योंकि तुम हमेशा बचपन में बाबापने-जैसी बातें ही किया करते थे। इसलिए डर है कि कहीं वास्तव में विरक्त होकर फक्कड़ तो नहीं हो गये? सुदामाजी बोले, नांय कन्हैया! ऐसी बात नांय। विवाह तो ह्वै गयो। तेरी भाभी को नाम है सुशीला और जैसोई तो नाम है, वैसोई वा को काम है। बड़ी सुशील स्वभाव की है, सो जीवन की गाड़ी बड़े आनन्द तें चल रई है। अब तू भी जल्दी बोल तेरो विवाह भयो के नांय? भगवान् हंसकर बोले, अब मित्र! हमारी मत पूछो। हम तो बाद में इकट्ठी बताइंगे। पर एक बात बताओ, तुमने चुपचाप विवाह कर लियो? हमें भनक तक नांय पड़ी? चलो! जो बात ह्वै गई, सो ह्वै गई। पर पहले ये बात बताओ कि जब यहाँ आये हम तें मिलवे, तो भाभीजी ऐं तो जरूर बताय ऐं आये होगे? सुदामा बोले, लाला! सच्ची बात बोलूं? तेरी भाभी ने ही भेजो है। भगवान् बोले, ओ हो परमसौभाग्य! या को मतलब भाभीजी हमारे बारे में सब जानती हैं। आपनेई बताया होगा हमारे बारे में, इसलिए उन्होंने हमारे पास भेजा। भाभीजी ने बड़ी कृपा करी। परन्तु यदि भाभीजी ने आपको हमारे पास भेजा है, तब तो हमारे लिए कुछ खाने-पीने जरूर भेजा होगा।

अब सुदामाजी की धड़कन तेज ह्वै गई, हे भगवान्! चार घर के माँगे भये चावल और अलग-अलग घर के अलग-अलग प्रकार के चावल तो अलग ही समझ में आ जावैं? अब ये इतनो बड़ो राजाधिराज है। या कूं

ये माँगे भये चावल कैसे दूं? ये देखेगो, तो का सोचेगो - ये भिखमंगा का लेकर आयो? संकोची स्वभाव के सुदामाजी सहम गये और बगल में पुटरिया ज़ोर तें दबा राखी है। हाथ जोड़कर बोले, भैया कन्हैया! हम पर का धरो, जो तेरे तांई लाते? भगवान् बोले, देखो ऐसी-वैसी बातें मत कियो कर। अरे! लाये हो तो बताओ? नई लाये तो बात ही खत्म। सुदामाजी बोले, तो सच्ची-सच्ची बोलूं! मैं कछु नई लायो। भगवान् हंसकर बोले, वाह मित्र! मालूम चलै कि तुम्हारे बचपन की आदतें अबेऊ ठीक नांय भई। बचपन की बातें याद तो हैं? सुदामाजी बोले, एक-एक याद है। भगवान् बोले, तब तो वह भी याद होगा कि जब एक दिन हम आप जंगल में समिधा बीनवे गये थे? सुदामाजी बोले, हाँ हाँ! सब याद आ गई। जंगल में वा दिना पानी कितनो भयंकर बरसो? पूरो जंगल पानी सें लबालब भर गयो।

वयं भृशं तत्र महानिलाम्बुभिर्निहन्यमाना मुहुरम्बुसम्प्लवे ।
दिशोऽविदन्तोऽथ परस्परं वने गृहीतहस्ताः परिबभ्रिमातुराः ॥ (भा. 10/80/38)

मित्र याद है, वा दिना एक-दूसरे को हाथ पकड़कर दिग्भ्रमित हो गये। इधर से उधर भटक रहे थे और रास्ता नहीं सूझ रहा था। गुरुकुल का मार्ग भूल गये थे। सुदामाजी बोले, भैया कन्हैया! कितनी भयंकर सर्दी पड़ी। सारी रात वृक्ष के ऊपर बैठकर बितानी पड़ी। वा रात कूं कैसे भूल जाऊँगो? भगवान् बोले, तुमें याद तो सब है! तब तो ये भी याद होगा, वा दिन सर्दी में तुम्हारे दाँत कितनी ज़ोर से कटकटाय रहे थे? अब सुदामाजी समझ गये, ये तो कछु पोलपट्टी खोलवे बारो है। तो बड़ी ज़ोर से हंसकर बोले, कन्हैया! तू रहन दे भैया, उन बचपन की बातन कूं। वह विद्यार्थी जीवन के आनन्द ही कछु और हते ... और प्रसंग पूरा बदल दिया। सुदामाजी बोले, कुछ ह्वै जाय कन्हैया! पर वा दिना जब अपन गुरुकुल में नहीं पहुँचे, तो गुरुजी कितनी चिन्ता में पड़ गये? रातभर सोये नहीं। कृष्ण! सुदामा! कृष्ण! सुदामा! चिल्लाते हुए सारे विद्यार्थियन कूं लई के अपन कूं रातभर ढूँढ़ते फिरे। और जब पानी में भींजे अपन दौनन कूं देख्यो, देखतेंई गुरुजी ने तुरन्त दौड़कर अपन कूं गले सें ना लगा लियो तो? कितनो वात्सल्य उड़ेल्यो।

अहो हे पुत्रका यूयमस्मदर्थेऽतिदुःखिताः

अरे बच्चों! तुमने मेरे लिए बहुत दुःख उठाया। रातभर इस भयंकर बरसात में भीगे वस्त्रों से सर्दी में ठिठुरते रहे? ओ हो! कितना कष्ट उठाया तुम लोगों ने मेरी सेवा में। सच्चे शिष्य का यही लक्षण है। अरे! अपने गुरुदेव के वचन की रक्षा करने के लिए आज्ञापालन करने के लिए प्राणों की बाजी लगा दे, शिष्य ऐसा ही होना चाहिए।

पीपाजी महाराज राजस्थान के राजा थे। जगद्गुरु भगवान् स्वामी श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराज राजस्थान पहुँचे, तो स्वामीजी के प्रति राजा के मन में बड़ी श्रद्धा हुई और राजा को लगा कि ऐसे महापुरुष से शरणागति ले लेना चाहिए। तो पीपाजी महाराज स्वामीजी से मिलने के लिए हीरे-जवाहरातों से लदे हुए थार लेकर आये। शिष्यों को कहा, भैया! गुरुदेव से कहो, पीपाजी महाराज मिलने आये हैं, गुरुजी की शरणागति चाहते हैं, शिष्यत्व ग्रहण करने आये हैं। शिष्यों ने स्वामीजी से कहा, महाराज! पीपाजी आये हैं। आपसे मिलना चाहते हैं। स्वामीजी ने अन्दर से ही शिष्यों से कहलवा दिया, जाओ! उनसे कह देना हम राजाओं से बात नहीं करते हैं। शिष्यों ने कह दिया, हमारे गुरुदेव की आज्ञा है कि वह राजाओं से बात नहीं करते। पीपाजी ने सुनते ही जितने हीरे-जवाहरात, हाथी, घोड़ा, आदि लाए थे, सब लौटा दिया और साधारण-से वस्त्र धारण करके

हाथ जोड़कर शिष्यों से कहा, अब स्वामीजी से कहो कि एक साधारण-सा प्राणी आपकी शरण में आया है। अब वह राजा नहीं है, आपकी शरण में एक अकिंचन आया है। शिष्यों ने कहा, गुरुदेव! अब तो उसने हाथी, घोड़े, हीरे, जवाहरात, आदि सब लौटा दिये। अब तो साधारण से वस्त्र पहनकर आपकी शरणागति ग्रहण करना चाहता है। अब तो ले आयें? स्वामीजी को लगा, राजा बड़ा श्रद्धालु है। अच्छा! उससे कहो कि हम उससे मिलना नहीं चाहते हैं। शिष्य बोले, महाराज! वह बेचारा बहुत प्रेम से आपकी शरणागति ग्रहण करना चाहता है। स्वामीजी बोले, अरे भाई! उससे कहो कि जाकर कुआँ में गिरे। कह दो स्वामीजी ने ये ही कहा है - हमारी यही आज्ञा है। शिष्यों ने जाकर पीपाजी से ऐसा ही कह दिया। पीपाजी चुपचाप चल पड़े और चलकर जहाँ कुआँ में छलांग लगाने को हुए शिष्यों ने पकड़ लिया, रुको-रुको! स्वामीजी ने हमें बाद में ये भी कहा था कि गिरने लगे तो पकड़कर ले आना। तब पीपाजी महाराज को शिष्य स्वामीजी की शरण में लाये और देखते ही स्वामीजी को दण्डवत् किया। गुरुदेव ने तुरन्त पीपाजी को उठाकर गले से लगा लिया, तू मेरी परीक्षा में सफल हुआ। शरणागति के लक्षण तुझमें हैं। ऐसे शिष्य गुरुदेव के वचनों पर प्राणों को भी न्यौछावर कर दें - ऐसी निष्ठा गुरुवचन में हो। सुदामाजी बोले, कन्हैया! गुरुजी कितने प्यार से बोले, बच्चों! तुमने मेरे लिए रातभर सर्दी में ठिठुरकर जो कष्ट पाया है। हम तुम्हारी गुरुभक्ति से बहुत प्रसन्न हैं -

तुष्टोऽहं भो द्विजश्रेष्ठाः सत्याः सन्तु मनोरथाः

अब देखिये! दोनों मित्र उन बचपन की बातों को याद कर रहे हैं। सुदामाजी कहते हैं, मित्र! याद है? गुरुजी ने कितना भावविभोर होकर आशीर्वाद दिया था कि बच्चों! हम तुम दोनों से प्रसन्न हुए। तुम्हारे सारे मनोरथ सिद्ध हों और ये भी कहा मेरे गुरुकुल में रहकर तुमने जितने शास्त्रों का अध्ययन किया है, जो भी विद्या ग्रहण की है, आजीवन तुम्हें ये विद्या विस्मृत नहीं होगी। जब याद करोगे, विद्या स्मरण में रहेगी। भगवान् बोले, मित्र! तुम्हें तो एक-एक वचन याद है? क्यों न हो, गुरुदेव का स्नेह इतना अधिक था, उसे हम कभी भूल नहीं सकते। भगवान् तुरन्त फिर बोले, मित्र! आदतें तुम्हारी फिर भी वही हैं। सुदामाजी बोले, क्या मतलब? भगवान् बोले, मतलब सीधो सो ये है कि भाभीजी ने कछु भेजो है कि नांय। सुदामाजी बोले, घुमा-फिराकर फिर भाभीजी पर आय गयो? अरे भैया! जब एक बार मना कर दी, तो तूं बारबार काय कूं पूछे? भगवान् बोले, अच्छा! लगता है तुम मेरा स्वभाव भूल गये। अब भूल गये तो बताय देता हूँ, दुबारा याद दिलाता हूँ।

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥ (भा. 10/81/4)

मित्र! मैं पदार्थों का भूखा नहीं हूँ। वस्तु कुछ भी हो, पदार्थ कुछ भी हो, पत्र हो, पुष्प हो, फल हो, या जल। शर्त मेरी सिर्फ एक है कि उस पदार्थ में भक्तिभाव प्रेम भरा हुआ होना चाहिए। तुमने क्या दिया, उसकी कोई कीमत नहीं। तुमने कैसे दिया, इसका बड़ा महत्त्व है। तुम क्या बोले, उसका कोई महत्व नहीं। पर कहाँ से बोले, इसका बड़ा महत्व है। गोपियाँ कपटी! कनुआ! ... क्या-क्या नहीं कहती थीं? पर कहाँ से कह रही हैं? उनकी भावना को भगवान् समझते हैं। प्रेमियों की भाषा विचित्र होती है, व्यवहार विचित्र होता है, क्रियायें विचित्र होती हैं। भगवान् कहते हैं, मित्र! इसलिए तुम जो भी लाये हो, निःसंकोच बताओ। सुदामाजी बोले, तू लाख प्रवचन कर ले! जब लाये ही कछु नांय, तो कहाँ से दिंगे? प्रभु समझ गये, ये साहस नहीं जुटा पायेगा।

अच्छा मित्र! जाने दो! जब कुछ भी नहीं लाये, तो बात ही खत्म। पर मैं देख रहा हूँ कि तुम जब तें आये हो, ये हाथ बड़ी ज़ोर से चिपका राख्यो है? या हाथ में कछु बीमारी है गई का? सुदामाजी बोले, ना-ना! कन्हैया! ऐसी कोई बात नांय। अब भाई! इतनी लम्बी यात्रा पैदल-पैदल जब आयेंगे? तो नेक हाथ-पैर में दर्द तो है जायगो? बस यही हाथ में मामूली सो दर्द है, बाकी मैं बिल्कुल ठीक हूँ। भगवान् बोले, तो ये बात तब सें क्यूं नई बताई? हाथ में दर्द है और हम पैर दबाय रहे हैं? अरे! लाओ हाथ हमें पकड़ाय देओ! ऐसी मालिश करिंगे कि दो क्षण में सबरो दर्द दूर है जायगो। सुदामाजी बोले, भैया! तेरे हाथ जोडूं। तू मो पे दया कर, या हाथ में हाथ मत लगइयो। मैं अपने आप सब ठीक है जउंगो। भगवान् बोले, अब तो कछु है जाये। तुम्हारो दर्द तो हम दूर करके ही छोडिंगे। सुदामाजी खूब दायें-बांये भये, पर भगवान् ने जबरजस्ती हाथ बढ़ाया और,

स्वयं जहार किमिदमिति पृथुकतण्डुलान्

भगवान् ने उस तन्दुल की पोटली को हाथ से पकड़कर एक झटके में बाहर निकाल लिया। पोटली टपककर बाहर गिरी, सुदामाजी बेचारे देखते ही रह गये। भगवान् ने तुरन्त पोटली खोली और,

इति मुष्टिं सकृज्जग्ध्वा द्वितीयां जग्धुमाददे ।
तावच्छ्रीर्जगृहे हस्तं तत्परा परमेष्ठिनः ॥ (भा. 10/81/10)

एक मुट्ठी चावल भगवान् ने अपने श्रीमुख में डालकर संकल्प लिया कि इस एक मुट्ठी तंदुल के बदले एक लोक का साम्राज्य सुख प्रदान करता हूँ। दूसरी मुट्ठी चावल प्रभु ने हाथ में लिये कि रुक्मिणीजी ने हाथ पकड़ लिया और इशारा किया, प्रभु! अब सब कुछ दे के क्या स्वयं सुदामा बनना चाहते हो? अथवा हाथ पकड़कर संकेत दिया, प्रभु! प्रेमाधिक्य में पा रहे हो, पर कच्चे चावल हैं। कहीं आपका पेट खराब न हो जाये। अथवा इसलिए हाथ पकड़ लिया, प्रभु! ये संत का लाया हुआ महाप्रसाद है और महाप्रसाद मिल-बाँटकर पाना चाहिए। अकेले-अकेले कैसे पा रहे हो? परिवार में सबको तो दो-दो दाने प्रसाद के मिलें? भगवान् ने वह तंदुल पोटली रुक्मिणीजी को सौंप दी, अच्छा! जाओ ये प्रसाद सबको वितरण करो। रुक्मिणी वितरण करने हेतु गई और भगवान् ने एकान्त पाकर पूछा, मित्र! इतना दिव्यप्रसाद इतनी देर तक छुपाये रखा? यदि भाभीजी ने हमारे लिए कुछ प्रसाद भेजा है, तो कुछ-न-कुछ संदेश भी भेजा होगा। अरे! कुछ न कुछ तो कहलवाया ही होगा? सुदामाजी को याद आ गया, हाँ कन्हैया! ये तूने खूब याद दिलाय दी। मैं तो बिल्कुल भूल ही गया था? एकान्त पाकर सुदामाजी ने सुना दिया,

एक मास द्वै पाख में दो एकादशी होंय ।
सो प्रभु दीनदयाल ने नितप्रति दीनी मोय ॥

सुशीला भाभी का संदेश सुनते ही प्रभु के नेत्र सजल हो गये और कुछ पलों के लिए भगवान् ने दोनों नेत्र बंद कर लिये। सुदामाजी को लगा कि ये मैंने क्या सुना दिया? और क्षणभर में भगवान् ने नेत्र बंद करके चमत्कार कर दिया। सुशीलाजी को प्रत्युत्तर भिजवा दिया,

होनी थी सोह्वै गई पर अब न ऐसी होय ।
भाभी तेरे भवन में नित्य द्वादशी होय॥

तुझे देते नहीं देखा, मगर झोली भरी देखी। लेने वाले को ही पता नहीं चला कि किसने दिया। भगवान् देना सिखाते हैं। रहीमदासजी जब दान करते थे, तो नीचे को सिर झुका लेते थे। किसी ने पूछा, भाई! आप सिर नीचे क्यों कर लेते हैं? रहीमजी ने कहा, क्या करें -

देनहार कोई और है भेजत है दिन रैन ।
लोग भरम हम पर करें या ते नीचे नैन ॥

अरे! देने वाला तो वह परमदाता है। '**दाता एक राम, भिखारी सारी दुनिया**' सारी दुनिया भिखारी है, कोई छोटा भिखारी, कोई बड़ा भिखारी। माँगते तो सब उसी दाता से हैं? यदि उसने किसी को बहुत ज्यादा दिया भी है, तो देने के लिये दिया है कि तुम भी दाता बन जाओ। परन्तु जब उसकी सम्पत्ति को हम अपना मानकर देने का गर्व करने लगते हैं, मैंने इतना दान दिया? तो भगवान् को हंसी आने लगती है कि देखो! मेरी ही वस्तु पर कितनी अकड़ दिखा रहा है? कभी-कभी तो भगवान् को भी चढ़ावा चढ़ाते समय अहंकार करते हैं, देखो प्रभु! मैंने आपको इतने का दान किया। भगवान् पर भी मानो जैसे एहसान कर रहे हों। भगवान् जिसे देते हैं, उसे पता नहीं चलता कि किसने दिया?

सुदामाजी ने तो प्रसंग बदल दिया, अरे भैया! कृष्ण-कन्हैया!! तूने मेरे घर की एक-एक बातें सब पूंछ लई? पर अपने बारे में कछु न बतायो? हम पूछ तो रहे हैं कि तेरी शादी-वादी भई है कि नांय? भगवान् बोले, ओ हो! तो अब हम क्यों बतायें? जब घर में बैठे हो। तो सीधे आपसे मिलवाये देते हैं। अरे वाह! ये तो वहुत ही अच्छी बात है। भगवान् बाहर जाकर रुक्मिणी से बोले, जाओ! सबसे जाकर कहो कि आशीर्वाद ले जायें। ये सिद्धविभूति हैं। रुक्मिणी ने जाकर रानी-पटरानियों को सूचना पहुँचा दी। सब दौड़ी-भागी चली आईं। रुक्मिणीजी ने प्रणाम किया, महाराज! नमो नारायणाय! सुदामाजी भगवान् कूं देखवे लगे, भैया! परिचय तो करा, कौन हैं ये? भगवान् बोले, ये हैं हमारी धर्मपत्नी! ओ हो! '**सौभाग्यवती भव! पुत्रवती भव! पतिप्रिया भव!**' ... ढेरों आशीर्वाद गिनाय दिये। पीछे से सत्यभामाजी आईं, महाराज! प्रणाम! सुदामाजी भगवान् कूं देखकर बोले, अब ये कौन आय गई? भगवान् हंसकर बोले, मित्र! ये भी हमारी धर्मपत्नी हैं। ओ हो! समझ गयो, दो-दो विवाह कर राखे हैं? बड़ी अच्छी बात है! बड़े ठाठ हैं भैया तेरे? '**सौभाग्यवती भव! पुत्रवती भव! पतिप्रिया भव!**' पीछे से कालिन्दी भागी चली आई, महाराज! प्रणाम! ओ रे! लाला अब ये कौन आय गई? भगवान् हंसकर बोले, मित्र! अब बारबार मत पूछो। या समय जो भी प्रणाम करे, सब हमारी धर्मपत्नी हैं। सुदामाजी बोले, ओ हो! तो क्या दस-पचास हैं? भगवान् बोले, मित्र! मोय कहवे में बड़ी शर्म लगे कि कितनी हैं। वह तो जितनी हैं, सब सामने आ रही हैं। तुम आशीर्वाद दे रहे हो, अपने आपई गिन लो? हाँ भैया! हम सबन कूं गिन लेंगे, तू बुला सबन कूं।

सुदामाजी ने सोची ज्यादा-से-ज्यादा दस-पचास होंगी? पर वहाँ तो बड़ी लम्बी पंक्ति लग गई। सुदामाजी को तो '**सौभाग्यवती भव! पुत्रवती भव! पतिप्रिया भव!**' कहते-कहते गलो बैठन लाग्यो, आशीर्वाद देते हाथ दुखने लागे, गिनते-गिनते खोपड़ी गर्म ह्वै गई। जब संख्या ज्यादा बढ़वे लगी, तो '**सौभाग्यवती भव**' कहना भी मुश्किल पड़ गया। संक्षेप में ही '**भव-भव-भव-भव**' फटाफट आशीर्वाद सबन कूं दैवे लगे। पाँच हज़ार तक संख्या जब पार कर गई, तो घबड़ाकर बोले, भैया! अब जल्दी बता, अब कितनी बाकी हैं? भगवान् हंसकर बोले, अबे तो आधी भी ना भई। अब चौंक पड़े, भैया कन्हैया! तेरी लीला मेरी समझ में न आवे। तू मो पर दया कर और सच्ची-सच्ची बता दे, पूरी संख्या कितनी है? भगवान् हंसकर बोले, मित्र! पूरी सोलह हज़ार एक सौ आठ। सुनते ही सुदामाजी के पैरों से तो धरती खिसक गई, ओ रे कन्हैया! तेने मेरो कर दियो कल्यान। पाँच हज़ार कूं आशीर्वाद देवे में तो मेरो गरो बैठ गयो, हाथ दूखन लागे; और दस हज़ार तक

तो मेरी आवाज ही ठप्प ह्वै जायगी? भगवान् बोले, अब तुमने घर में ही लड़ाई कराई। बिना आशीर्वाद की बुरो न मान जायेंगी? ये भी सही कई भैया! एक काम कर। देख ये तेरी अर्धांगनी और तू सबको अर्धांग। तो सबकी जगह इकट्ठो तू मोकूं प्रणाम कर लै, इकट्ठो मैं तो कूं आशीर्वाद दै दऊं। बस सबन कूं आशीर्वाद बराबर मिल जाइगो। भगवान् बोले, हाँ मित्र! ये बात सही रहेगी। सबके साथ मिलकर प्रभु ने प्रणाम किया और सुदामाजी ने इकट्ठा आशीर्वाद दे दिया। गद्‌गद् होकर सुदामाजी द्वारकाधीश से बोले, लाला! हमने एक शादी करी और तोए न बुलायो सो, तूने उलाहना सुनाय दियो। और तूने इतनी सारी शादी करीं, भैया! एकऊ विवाह में तो कूं अपने मित्र की याद न आई? अरे! एक में भूल जातो, तो दूसरे विवाह में ही बुलाय लेतो? भगवान् ज़ोर से हंसकर बोले, मित्र! विवाह की तारीख पक्की होती, तो सबसे पहले मेहमानों में आप ही पधारते। पर क्या बतायें, जब भी भयो, सीधो विवाह भयो। पहले तें तारीख कबऊं पक्की न भई। सुन-सुनकर सुदामाजी बड़े प्रसन्न भये, भैया! तेरी बचपन सें लीला बड़ी विचित्र है। भैया! तो कूं कौन समझ सकै? भगवान् ने बड़ा भारी दिव्य-भव्य सब प्रकार से सुदामाजी का स्वागत किया।

अब सुदामाजी बोले, भैया! ज्यादा देर न रूकेंगे। तेरी भाभी राह देख रही होगी। तो भगवान् ने रोकने का कोई दुराग्रह नहीं किया और विदा करने के लिए चल पड़े। चलते-चलते सुदामाजी के मन में विचार आया, स्वागत तो ज़ोरदार भयो! पे लेवे-देवे की बात कछु नांय भई? और मैं अच्छी तरह जानूं कि सुशीला ने मोकूं काय कूं भेजो है। निश्चित दरवाज़े पर बैठी होगी कि आज कछु नांय, तो मेरे तांई एक धोती लेकर तो जरूर ही आइंगे। कछु न कछु तो होयगो? पर अपने राम तो जैसे आये, वैसे ही जाय रहे हैं। सुशीला बहुत बुरो मान जायेगी। अब या कूं कहूँ तो कैसे कहूँ? सोचते-सोचते रुक गये, का बात ह्वै गई? सुदामाजी बोले, बस! अब तू मेरे साथ कबतक चलैगो? जा! जाकर आराम कर!! हम तो धीरे-धीरे आराम तें घर पहुँच जाइंगे। भगवान् बोले, जो आज्ञा! सुदामाजी फिर बोले, भैया! तो अब हम चलें? भगवान् बोले, मित्र! अब कैसे कहें? अरे हाँ कन्हैया! एक बात तो मैं भूलई गयो? तूने आते ही भाभी को समाचार पूछो? अब जात ही भाभी भी तेरो समाचार पूछेगी, तो वा तें का कह दूं ये तो बता? भगवान् बोले, अरे! ये तो मैं भूलई गयो? भाभीजी तें मेरी 'राम-राम' जरूर बोल दीजौ। सुदामाजी ने सोचा, ये भी कोई समाचार होय? अरे 'राम-राम' तो तू न भी कहतो, तब भी कह देते। कोई विशेष बात कहनी है, तो बता? भगवान् बोले, हाँ! तो एक बात जरूर बोलियो कि अब जब भी आप द्वारिका पधारो, तो भाभीजी संग में आवें। सुदामाजी समझ गये, ये तो कछु न देवह वारो। भैया! हमने कितनी बार याद दिलाई? अच्छा ठीक है भैया! 'राम-राम' बोल दैंगे, राजीखुशी बताय दैंगे। भगवान् ने चाही तो फिर मिलेंगे। सुदामाजी चल पड़े पर फूटी-कौड़ी भी भगवान् ने नांय दी।

अब चलते-चलते सुदामाजी सोच रहे हैं। सुदामाजी के मन में यदि धन पाने की इच्छा होती, तो स्वाभाविक है जिस वस्तु की कामना मन में होती है और वह कामना पूर्ण न हो तो क्रोध का जन्म होता है। कामना की अपूर्णता में ही क्रोध जन्म लेता है। पर सुदामाजी के मन में ये सब कामना थी ही नहीं, केवल दर्शनलाभ लेने आये थे, सो मिल गया। धन की इच्छा तो सुशीला में थी। इसलिए सुदामाजी के मन में किंचिन्मात्र भी कोई कुभाव नहीं आया, अपितु गद्‌गद् हृदय से विचार कर रहे हैं -

क्वाहं दरिद्रः पापीयान् क्व कृष्णः श्रीनिकेतनः ।
ब्रह्मबन्धुरिति स्माहं बाहुभ्यां परिरम्भितः ॥ (भा. 10/81/16)

कहाँ तो मेरे जैसा दीनहीन दरिद्र ब्रह्मबन्धु पतित ब्राह्मण और कहाँ उस जैसा लक्ष्मीपति? पर धन्य है! लोग तो उच्च-पदवी को पाकर माता-पिता को भी पहचानने से मना कर देते हैं। पर वह तो केवल मेरा बचपन का साथी ही तो था? पर किस प्रकार से दौड़कर मुझे भुजापाश में बाँध लिया था? धन्य है! ये श्रीकृष्ण के अतिरिक्त इतना कौन कर सकता है? दरिद्र पर तो लोगों की दृष्टि तक ही नहीं जाती और उसने तो लक्ष्मीपति होकर मेरा इतना सम्मान किया? और मैं यह भी जानता हूँ कि धन क्यों नहीं दिया,

अधनोऽयं धनं प्राप्य माद्यन्नुच्चैर्न मां स्मरेत् ।
इति कारुणिको नूनं धनं मेभूरि नाददात् ॥ (भा. 10/81/20)

धन न देने का कारण एक ही है कि निर्धन को यदि बहुत सारी सम्पत्ति दे दो, तो उसकी बुद्धि खराब हो जाती है। वह मदान्ध हो जाता है, विषयों में भटक जाता है। यही सब सोच-विचारकर प्रभु ने धन नहीं दिया, बड़ी कृपा की। ये भी नारायण की बड़ी कृपा है। यही सब सोचते हुए सुदामाजी घर आये। अब घर आकर क्या देखा कि जहाँ टूटी-फूटी झौपड़ी पड़ी हुई थी, वहाँ पर इतना दिव्य-भवन देखा कि सुदामाजी के होश उड़ गये, अरे! राम-राम! कहीं लौट फिरकर मैं दुबारा द्वारिकाधीश के घर में तो नांय घुस आयो? ये भवन तो बिल्कुल द्वारिकाधीश के भवन-जैसा है? पर नहीं नहीं रास्ता तो मैं बिल्कुल ठीक आया हूँ। तो ये महल कौन को है? मेरी कुटिया याई जगह हती, पक्की बात है। महल के चक्कर काटते हुए आँखें फाड़कर महल को देखते रहे।

भजन - सुदामा मन्दिर देख डरे यहाँ तोथी मेरी टूटी झोंपड़ियाँ अव कंचन महल खड़े ॥

डरे हुए से सुदामाजी भवन के चक्कर काट रहे हैं, कुटिया कहाँ गई मेरी? अरे! कुटिया गई तो गई, पर सुशीला कित कूं चली गई? अब सुशीला ऐं कहाँ ढूँढू मैं? तबतक सेवकों ने सुदामाजी की मनःस्थिति को समझ लिया और सुशीलाजी को सूचना दी, महारानीजी! देखिए! ये ब्राह्मण कौन है? बड़ी देर से चक्कर काट रहा है? झरोखे से झांककर जो सुशीला ने देखा, देखते ही प्रसन्नता के मारे उछल पड़ी, अरे! चलो चलो! स्वागत की तैयारी करो! मेरे स्वामीजी आये हैं। सुशीला ने सोलह श्रृंगार किये, स्वर्णथाल में महा-आरती सजाई और स्वागत के लिये चल पड़ीं। दास-दासियां घेरकर चल रहे हैं, जय-जयकार बोलते सब चल पड़े। सुदामाजी ने जब अपने नाम का जयघोष सुना सो और ज्यादा घबड़ा गये, भाई! सुदामा तो अपन ही हैं? पर ये सुदामा महाराज कोई और होंइंगे! हमारे नाम के राजा को महल होयगो ये? पर ये देवीजी कौन चली आ रहीं हैं? सुशीलाजी तो स्वागत में आरती सजाये चली आय रही हैं और सुदामाजी रास्ता छोड़कर कौने में जा खड़े हुए, होंगी कोई रानी-महारानी, जा रही होंगी कहीं पूजापाठ करवै कूं? पर छम-छम करती सुशीला जब एकदम सामने खड़ी होय गई और आरती घुमायवे लगी, सो सुदामाजी और ज्यादा घबड़ाय गये, ऐ देवीजी! आप कौन हो? और मेरी आरती काय पे कर रही हो? सुशीला बोली, वाह सरकार! ऐसे सखा तें मिलवे गये कि मोईये भूल गये? अब सुशीला के शब्द जो कान में पड़े, तब सुशीलाजी की सूरत पर दृष्टि डाली।

पत्नीं वीक्ष्य विस्फुरन्तीं देवीं वैमानिकीमिव ।
दासीनां निष्ककण्ठीनां मध्ये भान्तीं स विस्मितः ॥ (भा. 10/81/27)

सुदामाजी की आँखें फटी-की-फटी रह गई, अरी सुशीला! तेरे पास इतनी बढ़िया साडी, इतनी बढ़िया सोने की थारी, इतनी ऊँची महल-अटारी - ये सब कहाँ तें आय गईं? सुशीला हंसवे लगीं, वाह महाराज! तो

तुम्हारे सखा ने तुमें कछु नांय बतायो का? ये तो सब चमत्कार आपके द्वारिकाधीश कृष्ण कोई तो है। अब सुदामाजी समझ गये, अरी सुशीला! अब मैं मान गयो। श्रीकृष्ण सचमुच घनश्याम है। ये आकाश के मेघों का नाम भी घनश्याम है। ये भी सांवले और मेरा घनश्याम भी सांवला। सारा संसार जब सोता रहता है, तब आकाश के घनश्याम चुपचाप पानी बरसाकर चले जाते हैं। पता ही नहीं चलता कि कब बरस गये? यदि ये दिखाना होता कि लोग देखें कि मैंने इतना पानी बरसाया है, ताकि लोग मेरी महिमा को समझें मेरी प्रशंसा करें तो फिर दिन में ही बरसात होती रात में कभी पानी ही नहीं बरसता। परन्तु आकाश के घनश्याम इसकी अपेक्षा नहीं करते कि कौन हमारा एहसान मानेगा, कौन हमें धन्यवाद देगा? उनका तो लक्ष्य है जीवों का कल्याण करना, इसलिए बिना कहे बरसते हैं। चाहे दिन में बरसें, चाहे रात में। कोई माने या ना मानें। यही स्वभाव तो हमारे प्यारे प्रभु का है। अज्ञान की निद्रा में सारा जगत् सो रहा है, **'मोह निसा सबु सोवनिहारा'** भगवान् कृपादृष्टि कर रहे हैं, पर जो समीक्षा करने वाले हैं, वह तो उस कृपा को देख लेते हैं। पर अज्ञान की तन्द्रा में सोने वालों को क्या पता कि प्रभु की कितनी कृपा हमारे ऊपर बरस गई?

अरे! कोई एक गिलास भी पानी पिलाता है, तो हम दस-बार धन्यवाद देते हैं। जिसने मानव तन दिया, जो देव दुर्लभ है। मानव तन देकर ही छुट्टी नहीं कर ली, उस मानव तन का प्रकृति के द्वारा सारा प्रबन्ध किया। वृक्षों के द्वारा फल दियेम पर्वतों के झरनों का जल दिया। ये सारे प्रबन्ध परमात्मा ने हमारे लिये ही तो किये हैं। सूर्य का प्रकाश दिया, चन्द्रमा की शीतल किरणें दीं, सारा प्रबन्ध प्रभु का है। और हम अभागे ऐसी गहरी नींद में सो रहे हैं कि हमें पता ही नहीं चल रहा है कि उसने क्या दिया? और जितना दिया, उसे स्वीकार नहीं करते और अनन्त इच्छाओं को थोप रहे हैं। ये काम और कर दो, प्रभु! ये काम और बन जाये हमारा! और न बने तो भगवान् को ही दोष देने लग जाते हैं। भगवान् ने दिया ही क्या है हमें? प्रभु ने किया ही क्या है, हमारे लिये? इतनी बड़ी कृतघ्नता। माँगों का कोई अन्त नहीं है, इच्छाओं का कोई अन्त नहीं है। अरे! बनना है, तो सुदामाजी की तरह बनो। सीखना है, तो सुदामाजी से सीखो। पहले कुछ नहीं था, तब भी प्रसन्न। आज सब कुछ है, तब भी प्रभु की कृपा का अनुभव। भगवान् की कृपा की निरन्तर समीक्षा करते रहो। इस प्रकार से भगवान् ने अपने समान सुदामाजी को वैभव प्रदान कर दिया। द्वारिकापुरी के समान सुदामापुरी प्रदान करके भगवान् ने सुदामाजी की श्रेष्ठता सिद्ध कर दी और अपनी दीनबन्धुता सार्थक कर दी।

शुकदेवजी कहते हैं, अब एक समय की बात सुनो परीक्षित!

अथैकदा द्वारवत्यां वसतो रामकृष्णयोः।
सूर्योपरागः सुमहानासीत् कल्पक्षये यथा ॥ (भा. 10/82/01)

द्वारिका में विराजे भगवान् को समस्त विद्वानों ने मिलकर निवेदन किया, प्रभु! अब की बार सूर्यग्रहण बड़ा ही अद्वितीय पड़ रहा है और हमारा निवेदन है कि ग्रहणकाल में कुरुक्षेत्र स्नान करने का बड़ा भारी पुण्य होता है। यदि आप उचित समझें, तो इस पावन पुनीत अवसर पर हमलोग कुरुक्षेत्र स्नान करने चलें। भगवान् ने तुरन्त स्वीकृति दी कि हम स्वयं भी चलेंगे और अपने समस्त परिकर को भी ले चलेंगे। अब तो भगवान् द्वारिकानाथ का सम्पूर्ण परिकर बड़ा प्रसन्न हुआ, चलो! सब चलेंगे! देवकीमैया, रोहिणीमैया, वसुदेवजी महाराज, इत्यादि समस्त परिकर को लेकर भगवान् समस्त रानियों सहित कुरुक्षेत्र पधारे। उधर वृन्दावन में व्रजवासियों ने भी नन्दबाबा से निवेदन किया, बाबा! कुरुक्षेत्र में चलौ स्नान कर आवैं! सूर्यग्रहण बड़ो ज़ोरदार

है। नन्दबाबा बोले, चलौ! तुमहूँ चलौगे, तो हमऊं चले चलेंगे। तब नन्दबाबा, यशोदा मैया, सब गोपी, ग्वाला, मिलकर बैलगाड़ियों में सामान लादकर वह भी कुरुक्षेत्र को रवाना हो गये। इधर इन्द्रप्रस्थ से पाँचो पाण्डव, द्रौपदीजी, कुन्ती मैया को साथ में लेकर अपने समस्त दलबल के साथ कुरुक्षेत्र को चल दिये। देश के कोने-कोने से सभी आ रहे थे। बड़ा विशाल मेला कुरुक्षेत्र में लगा। कितना भी बड़ा मेला हो, कितनी भी भीड़ हो, महापुरुषों के लिये तो स्पेशल जगह मिल जाती है।

द्वारिकानाथ जब पर्वकाल में स्नान करने हेतु चले, तो एक साथ भीड़ उमड़ी। तो द्वारिकानाथ के जो सेवक हैं, वह उनके लिये मार्ग बनाते हुए जाने लगे, हटो! हटो! द्वारिकानाथ पधार रहे हैं। रास्ता खाली करो! ऐसे मार्ग बनाते जा रहे थे। संयोग की बात उसी मार्ग से व्रजवासी भी जा रहे थे। वह भी स्नान करने के लिये ही आये थे। पर्वकाल हुआ और चल पड़े। तो जो ग्वाला उस मार्ग में जा रहे थे, रास्ता बनाने वाले द्वारिकानाथ के सैनिकों ने उन्हें भी धक्का मारा, ऐ भाई! ग्वालाओ! एक किनारे हो जाओ! व्रजवासी बोले, क्यों? अरे! तुम्हें सुनाई नहीं पड़ रहा? द्वारिकानाथ पधार रहे हैं। पर्वकाल में स्नान करने जायेंगे। अभी-अभी यहाँ से निकलने वाले हैं। व्रजवासी बोले, तेरे ये द्वारिकानाथ कौन हैं भैया? सेवक बोले, बड़े विचित्र हो! तुम लोग अभी द्वारिकानाथ से परिचित नहीं हो? संसार में कौन है, जो उनसे परिचित नहीं हो? '**अनन्तश्री छत्रपति राजमूर्ति धर्मचक्रवर्ती सर्वेश्वरेश्वर सर्वतन्त्रस्वतन्त्र गो-विप्र-प्रतिपालक विश्ववन्द्य श्रीश्री श्रीमहाराजाधिराज द्वारिकाधीश्वर श्रीकृष्णचन्द्रजी सरकार**' पधार रहे हैं। लम्बा-चौड़ा जब परिचय दिया और जो कृष्णचन्द्र नाम लिया, व्रजवासी तो सबके सब उछल पड़े, अरे! तो का अपनो कन्हैया ये द्वारिकानाथ बन गयो? अरे भैया! इतनो बड़ो ह्वै गयो कि वाके तांई सब आगे-पीछे नौकर-चाकर वा कूं रस्ता बनाउते जावें? अब तो खुशी के मारे सब ठुमुक-ठुमुककर नाचवे लगे, तो या को मतलब कन्हैया आयो है?

अब बेचारे जो द्वारिकानाथ के सेवक थे, उन्हें तो नहीं मालूम ये कौन हैं? चूंकि प्रभु से सभी प्रभावित हैं, तो ये भी उनके कोई दीवाने होंगे। ऐसा जानकर वह बार-बार फिर धक्का मारने लगे, भाई! एक किनारे हो जाओ और दूर से दर्शन करना! हाथ मत लगाना। डाँटते जा रहे हैं, एक तरफ धक्का मारते जा रहे हैं। श्रीदामा और मधुमंगल बोले, ऐ! जाकर अपने वा द्वारिकानाथ सें कहियो, रास्ते में तेरे बाप खड़े हैं। अब तो सेवकों के होश उड़ गये, हे भगवान्! ये बोल कैसे रहे हैं? इनका दुःसाहस देखो। अभी तुम्हारी शिकायत करते हैं, खबर लेते हैं। सैनिक नाराज हो गये। दौड़कर भगवान् द्वारिकानाथ के पास पहुँचे, सरकार! आपके लिए रास्ता बनाते हुए हम लोग व्यवस्था बना रहे थे, पर न जाने कौन कहाँ के कुछ गंवार ग्वाले लोग रस्ते में खड़े हैं। 'ग्वाला खड़े हैं' - ये सुनकर भगवान् भी अचम्भित हो गये। अच्छा फिर क्या हुआ? सैनिक बोले, सरकार! हमनें उनसे निवेदन किया कि आप एक किनारे हो जाओ, तो वह पूछने लगे कौन आ रहा है? तो हमने सरकार आपका नाम लिया। हमने सोचा आपके नाम से कौन परिचित नहीं है? तो सोचा कि नाम सुनते ही एक किनारे हो जायेंगे। पर जब नाम सुना, तब तो ऐसा बोले, सरकार! हम आपसे कैसे बता दें, हमें संकोच लगता है। भगवान् बोले, जैसा भी बोले हों, वैसा ही बताओ और तुरन्त बताओ। ज्यों की त्यों भाषा का जब प्रयोग किया, महाराज! एक कह रहा था कि कह देना अपने द्वारिकानाथ से कि रास्ते में तेरे बाप खड़े हैं। सुनकर भगवान् एकदम रोमांचित हो उठे और समझते देर नहीं लगी कि ये निश्चित् रूप से मेरे व्रजवासी ही हो सकते हैं। मेरा नाम सुनकर भी जो मेरे बारे में ऐसा खराखरा बोलें - ये अधिकार तो केवल व्रजवासियों का ही है।

सुनते ही भगवान् तुरन्त दौड़ पड़े। सेवकों के होश उड़ गये, हे भगवान् ये क्या हुआ? पीछे सेवक, आगे द्वारिकानाथ। जो व्रजवासियों ने दूर से ही अपने गोविन्द का दर्शन किया, सब ग्वाला दौड़ पड़े। ऐसा अपूर्व आनन्द कुरुक्षेत्र में अचानक उमड़ पड़ा। सारे व्रजवासियों से भगवान् इस ढंग से मिले कि प्रत्येक गोप को यही लगा कि सबसे पहले हमसे मुलाकात हुई है। अनन्त रूपों में भगवान् सबसे मिले हैं और सारे व्रजवासियों के द्वारा ये पता चला कि यशोदा मैया और नन्दबाबा भी पधारे हैं, तो भगवान् तुरन्त नन्दबाबा और मैया से भी मिले। अब तो पर्वस्नान हुआ, सो हुआ; एक नया पर्व उपस्थित हो गया। और इतना आनन्द उमड़ने लगा कि भगवान् तुरन्त मैया से मिलने के बाद सबको बताए कि द्वारिका का भी पूरा परिकर आया है, पटरानियां आई हैं। तो यशोदा मैया भी एकदम गद्‌गद् हो गई। ये देखने के लिए जानने के लिए कि मेरे कन्हैया की बहुऐं कितनी हैं, कैसी हैं, चलो! मैं देखूं तो सही। यशोदा मैया मिलने आई। अब यशोदा मैया के पास रोहिणी बहुत वर्षों तक रही हैं। जबतक वसुदेवजी कारागार में रहे, तबतक यशोदा मैया के साथ रोहिणीजी रही हैं। तो रोहिणीमैया व्रजवासियों के साथ सबसे परिचित हैं। तो रोहिणीमैया यशोदाजी का परिचय देवकी से कराती हैं। और भगवान् की समस्त पटरानियों से भेंट कराई। मातायें सब एक-दूसरे से मिल रही हैं। विविध प्रकार की चर्चायें सानन्द चल रही हैं।

उधर पाण्डवों को पता चला कि हमारे द्वारिकानाथ पधारे हैं, तो यदुवंश में कुन्ती मैया का मायका है। इसलिए वह अपने भैया वसुदेवजी से मिलने के लिए आई। ऐसा अद्‌भुत सम्मेलन हुआ इस मेले में। अब किसी का इस मेले को छोड़कर घर जाने का मन नहीं होता। भगवान् अपनी गोपियों से जो बरसाने से आई थीं, उन सबसे रासरासेश्वरी राधारानी के साथ प्रीतिपूर्वक मिले। और भगवान् ने एकान्त में व्रजगोपियों के बीच बैठकर बड़ा ही मार्मिक और अद्‌भुत तत्त्वज्ञान का उपदेश दिया। अपने वास्तविक तत्त्व व्यापक ब्रह्मस्वरूप का जब भगवान् ने गोपियों को बोध कराया, तो गोपियाँ आनन्दमग्न होकर अपने श्रीकृष्ण के उसी रूप में परिनिष्ठित हो गई। उनका जीवकोष ही लुप्त हो गया। और परमानन्द में सर्वदा के लिये निमग्न हो गई। भगवान् का अब घर लौटने का मन नहीं कर रहा, व्रजवासी भी कोई लौटना नहीं चाहते। अचानक कुछ संतों को जब पता चला कि हमारे प्रभु पधारे हैं। तो दुर्वासा, अत्रि, वसिष्ठ, बृहस्पति, कण्व, आदि जितने भी दिव्यकोटि के संत हैं, सब मिलकर एक साथ द्वारिकानाथ का दर्शन करने आये। भगवान् ने देखा, ओ हो! संतमण्डली आ रही है। भगवान् ने खड़े होकर सब संतों को प्रणाम किया, पूजन-वन्दन किया। भगवान् संतों की महिमा गाते हुए बोले,

न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः ।
ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः ॥ (भा. 10/84/11)

भगवान् कहते हैं, आप जितने संत हैं, सभी मूर्तिमन्त तीर्थ ही हैं। आप जहाँ विराजमान हो जायें, वह भूमि तीर्थभूमि बन जाती है। तीर्थ मृत्तिकामय हैं, जड़ हैं। तीर्थों में रहकर वर्षों-वर्षों तक आप साधना उपासना करोगे, तब कहीं जाकर प्रभु-प्राप्ति होगी। पर आप जैसे संतों का तो दर्शनमात्र कर ले, तो गोविन्द रीझ जाते हैं। भगवान् कहते हैं, तीर्थों का सेवन करने से तो किसी काल में कल्याण होगा। पर आप जैसे साधुओं के तो दर्शनमात्र से जीव का कल्याण हो जाता है। आप संत ही तो तीर्थों में तीर्थत्व प्रदान करते हैं। संत न हो, तो वह तीर्थ नाममात्र का होता है। तीर्थ का तीर्थत्व संतों के भजन करने से ही जागृत होता है, नहीं तो नाममात्र का है।

एक बार भोलेबाबा भवानी के साथ नन्दीश्वर पर बैठे जा रहे थे। चलते-चलते जंगल में एक एकदम उजड़ा हुआ स्थान मिला, तो भोलेनाथ तुरन्त नन्दीश्वर से नीचे उतरे और उस भूमि को साष्टांग प्रणाम किया। और पुनः नन्दीश्वर पर बैठकर आगे चल पड़े। अब पार्वतीजी चारों तरफ देखें, यहाँ न कोई मन्दिर दीख रहा है, न कोई समाधि दीख रही है, घनघोर जंगल है, बीहड़ है; भोलेबाबा ने प्रणाम किसे किया? चलो होगा कोई देवी-देवता। चल दीं। ऐसा ही आगे चलकर फिर एक स्थान मिला, वह भी बिल्कुल मैदान था। वहाँ भी कुछ भी नहीं था, पहले स्थान पर तो कम-से-कम उजड़ा हुआ दिख रहा था कि पहले कुछ रहा होगा। यहाँ पर तो कुछ भी कैसा भी स्थान नहीं था। भोलेबाबा ने नन्दी रोका और फिर उतरकर साष्टांग प्रणाम किया। फिर उठकर चल दिये। पार्वतीजी से नहीं रहा गया, भोलेबाबा! क्षमा करें!! मैं पूछना चाहूँगी! यहाँ कौन से देवी-देवता बैठे थे, जो आप उन्हें प्रणाम कर रहे थे? पहले भी आपने उतरकर प्रणाम किया था, वहाँ भी कुछ नहीं था? यहाँ भी कुछ नहीं है? तो आप प्रणाम किसे करते हैं, ये मेरी समझ में नहीं आया? भोलेबाबा मुस्कुराकर बोले, देवी! वह जो तुम्हें उजड़ा हुआ स्थान दिखा था, आज से दस हज़ार वर्ष पहले एक बहुत सिद्धसंत का वहाँ जन्म हुआ था। बड़े भजनानन्दी थे, बड़े मुक्त थे। तो उस वैष्णव संत की वह जन्मभूमि थी, इसलिये मैंने उस भूमि को प्रणाम किया, जिसने इतने तपस्वी संत को जन्म दिया। अच्छा महाराज! तो यहाँ क्या है? यहाँ तो कुछ भी नहीं है? भोलेबाबा ने कहा, अभी तो नहीं है! पर आज से दस हज़ार वर्ष बाद यहाँ एक भक्त का जन्म होने वाला है। अभी तो इस भूमि में वह बात नहीं है, परन्तु दस हज़ार वर्ष के बाद जब इस भूमि में उस भक्त का जन्म होगा, तो सारे देवी-देवता प्रकट होकर नाचेंगे; ऐसा वह तपस्वी भक्त होगा। इसलिए मैं पहले से ही इस भूमि को प्रणाम कर रहा हूँ, जो एक भक्त की जननी बनने जा रही है। मैं अपनी दिव्य दृष्टि से उस आगामी भक्त का दर्शन कर रहा हूँ, इसलिये मैंने इसे प्रणाम किया। कहने का तात्पर्य ये है कि जो संत हैं, भक्त हैं; ये चलते-फिरते चैतन्य तीर्थ हैं। ये जहाँ जन्म या वास करें, वह भूमि ही तीर्थ बन जाती है। यहाँ भगवान् ने संतों की बड़ी महिमा गाई है।

वसुदेवजी का यज्ञोत्सव, श्रीभगवान् द्वारा देवकीजी के छः पुत्रों को लौटा लाना, सुभद्राहरण, भगवान् द्वारा मिथिलेश जनक और श्रुतदेव ब्राह्मण के घर एक-साथ जाना, वेदस्तुति, शिवजी का संकटमोचन, भृगुजी द्वारा त्रिदेवों की परीक्षा, भगवान् द्वारा मरे हुए ब्राह्मण-बालकों को वापस लाना

तभी वसुदेवजी ने सभी संतों को दण्डवत् प्रणाम किया और नारदजी से बोले, महाराज! एक मेरी जिज्ञासा है कह दूँ? नारदजी बोले, हाँ हाँ कहो! वसुदेवजी बोले, ये बताओ कि जीव को ऐसा कौन-सा कर्म करना चाहिए, ताकि वह कर्मबन्धनों से मुक्त हो जाये। क्योंकि कर्म करोगे, तो कर्म का फल भोगने के लिए फिर जन्म लोगे। चाहे वह अच्छा हो या बुरा हो। पर भोगने के लिए तो आना पड़ेगा कि नहीं? और जब आओगे तो फिर कोई-न-कोई कर्म करोगे। बिना कर्म किये तो कोई रहने वाला नहीं है? तो कर्म किये बिना कोई रह नहीं सकता और कर्म किया है, तो फल भोगने के लिए रहना पड़ेगा? तो ये तो कड़ी टूटने वाली ही नहीं है। इसलिए ऐसा कौन-सा कर्म है, जिसके करने से कर्मबन्धनों में बन्धना न पड़े और कर्मबन्धन से छुटकारा मिल जाये।

कर्मणा कर्मनिर्हारो यथा स्यान्नस्तदुच्यताम्

श्रीवसुदेवजी ने यह प्रश्न नारदजी से किया। नारदजी पहले तो खूब हंसे। वसुदेवजी के पूछने पर नारदजी बोले, तुम्हारा प्रश्न तो उचित है, पर मुझे हंसी इसलिए आ रही है क्योंकि गङ्गातट पर रहने वाले गङ्गाजी की महिमा नहीं गाते। गङ्गा किनारे रहने वाले से यदि कोई पापकर्म बन जाये, तो नैमिषारण्य में नहाने जाता है, क्योंकि गङ्गाजी तो रोज की हैं घर की हैं।

गाङ्गं हित्वा यथान्याम्भस्तत्रत्यो याति शुद्धये

उसी प्रकार आज वसुदेवजी साक्षात् प्रभु के पिता होकर भी उनकी महिमा को नहीं जानते। जिन गोविन्द के दर्शनमात्र से जीव के सारे बन्धन छूट जाते हैं, जिन गोविन्द की कृपादृष्टि से सारे बन्धन खुल जाते हैं; उन्हीं गोविन्द के पिताश्री हमसे पूछ रहे हैं कि कर्मबन्धन का छुटकारा कैसे मिले? इसलिए हमें हंसी आ गई। महाराज वसुदेव! जो भी जीव जन्म लेता है, जगत् में पैदा होते ही उसके ऊपर प्रमुख रूप से तीन ऋण होते हैं। पितृऋण, ऋषिऋण और देवऋण। जीव का कर्तव्य है कि वह इन तीनों ऋणों से मुक्त हो। ऐसा कर्म करे, ताकि इन ऋणों से वह मुक्त हो जाये। पितृऋण क्या है? उसके लिए चाहिए कि सुन्दर शास्त्रविधि से विवाह करो और सन्तति को जन्म दो। तब तुम भी जब माता-पिता बनोगे, तो अपने माता-पिता से (पितृऋण से) उऋण होगे। संतान जन्म से मातृ-पितृऋण से मुक्ति प्राप्त होती है।

महात्माओं ने जंगल में रहकर घास-पत्ते चबाकर तपस्या करके अनेक अनुसंधानपूर्वक अध्यात्म की खोज की है, उस परमतत्त्व का अनुसंधान करके बड़े-बड़े बृहद् ग्रन्थों में उनका रहस्य लिख दिये हैं। तो वेदों में, पुराणों में, शास्त्रों में, जो अध्यात्म के रहस्य लिखे हैं, उनके हम लोग ऋणी हैं। तो हमारा कर्तव्य है कि हम उन रहस्यों को समझें, जानें और ऋषियों द्वारा लिखे गये उन ग्रंथों का हम अध्ययन करें, श्रवण करें। तो शास्त्रों के अध्ययन करने से श्रवण करने से ऋषिऋण से मुक्ति मिलती है। देवताओं का भी हमारे ऊपर ऋण है। सूर्य प्रकाश दे रहे हैं, वायु अपनी शीतल-मन्द-सुगंध से हमारे वातावरण को सुवासित कर रहे हैं ... तो ये सारे देवता यदि एक भी नाराज हो जाये, तो जीवन दूभर हो जाये। जब ये देवता हमारा ध्यान रख रहे हैं, तो हम भी इनके ऋणी हैं, जिससे मुक्त होने के लिए हमें यज्ञ करना चाहिए। यज्ञ के माध्यम से जब देवताओं को भोजन दिया जाता है, तब हम देवऋण से मुक्त होते हैं। वसुदेवजी! आपने कृष्ण-जैसे पुत्र को जन्म दिया है, तुम पितृऋण से मुक्त हो गये। शास्त्रों का भी तुम खूब स्वाध्याय करते हो, श्रवण करते होय इसलिए ऋषिऋण से भी मुक्त हो। पर आज तक तुमने कोई यज्ञ नहीं किया है। इसलिए देवऋण तुम्हारा बाकी है। इसके लिए भी प्रयास करो।

वसुदेवजी भगवान् की ओर देखने लगे। भगवान् बोले, पिताश्री! आप तो आज्ञा करो, सारी व्यवस्था हो जायेगी। वसुदेवजी बोले, तब तो मेरी इच्छा है। इतने बड़े-बड़े संत-महात्मा उपस्थित हैं और इतनी पवित्र कुरुक्षेत्र-जैसी भूमि है। तुम चाहो, तो यहीं यज्ञ कर लिया जाये। भगवान् बोले, जो आज्ञा! तुरन्त यज्ञ की तैयारियाँ होने लगीं। जितने संत आये थे, उन्हीं सबको होता, ऋत्विज, आदि यज्ञ के सदस्य नियुक्त कर लिये। और संतों के पावन सान्निध्य में विराट् यज्ञ प्रारम्भ हो गया। उस यज्ञ के माध्यम से भी बहुत समय बीत गया। इस प्रकार तीन महीने तक भगवान् ने व्रजवासियों के साथ अपने प्रिय पाण्डवों के साथ द्वारिकावासियों के साथ कुरुक्षेत्र में वास किया। तत्पश्चात् पाण्डव अपनी इन्द्रप्रस्थ, व्रजवासी अपनी व्रजभूमि और द्वारिकावासी द्वारिका के लिये प्रस्थान कर गये।

द्वारिका में एक दिन एकान्त पाकर देवकी मैया ने अपने लाला से कहा, अरे! कृष्ण कन्हैया! कुरुक्षेत्र के

महात्मा लोग कह रहे थे, तुम साक्षात् नारायण हो। मैंने तो ये भी सुना है कि तुम अपनी गुरुमाता का बेटा, जो वर्षों पहले समुद्र में डूबकर समाप्त हो गया था, उसे लाकर तुमने लौटा दिया। बेटा! ये सब बातें सही हैं क्या? भगवान् बोले, हाँ माँ! बात तो बिल्कुल सही है। देवकी माँ आँखों में आँसू भरकर बोली, बेटा! जब तू गुरुमाता का बेटा लाकर दे सकता है, तो तेरी इस माँ के तो छः-छः बच्चे कंस के हाथों समाप्त हो गये। जी भरकर अपने बच्चों का मुँह तक नहीं देख पाई। क्या मेरे बच्चों का एक बार मुझे मुँह नहीं दिखायेगा? एक बार जब से ये घटना सुनी है, मेरे मन में बार-बार यही बात आ रही है कि जब मेरा लाल इतना महान् है, तो क्या मेरा मनोरथ पूर्ण नहीं करेगा?

भगवान् बोले, माँ! जैसी आपकी आज्ञा!! और तुरन्त प्रभु दाऊभैया के साथ सीधे सुतललोक चल पड़े। महाराज बलि ने बड़ा दिव्य स्वागत भगवान् का किया। भगवान् बोले, हम अपने अग्रजों को माँ से मिलाने के लिये लेने आये हैं। बलि ने तुरन्त कंस के हाथों मरे हुए उन छहों बालकों को ज्यों-का-त्यों भगवान् को सौंप दिया। भगवान् ने लाकर वह बालक ज्यों-के-त्यों देवकी माँ की गोद में समर्पित कर दिये। उन नन्हें-नन्हें बालकों को इतने वर्षों बाद देखकर देवकी मैया का वात्सल्य उमड़ पड़ा। सब बच्चों को अपने हृदय से लगाकर स्तनपान कराने लगी। जैसे ही उन बालकों ने देवकी मैया का स्तनपान किया। सभी बालक परमधाम को प्रस्थान करते चले गये,

पीत्वामृतं पयस्तस्या पीतशेषं गदाभृतः

अरे! गोविन्द का वह उच्छिष्ट दुग्ध उन बालकों ने पिया है, इसलिए सब के सब परमपावन हो गये। देवकी माँ विकल हुई, तो भगवान् बोले, माँ! आपने मिलने को कहा था, सो मिला दिये, दिखा दिये। अब आप प्रसन्न हो जाइये और इन्हें अपने धाम जाने दीजिये। तब माँ को संतोष मिला।

शुकदेवजी कहते हैं, परीक्षित! ऐसे अद्भुत भगवान् के आश्चर्यमय चरित्र हैं। और भी कुछ पूछना चाहो, तो पूछ लो। परीक्षित ने कहा, महाराज! तो ये बताइये हमारे दादा-दादी का विवाह कैसे हुआ था? शुकदेवजी मुस्कुरा पड़े, वाह! मृत्यु के कितने निकट पहुँच गये महाराज परीक्षित, पर शुकदेवजी ने प्रभु के दिव्यचरित्रों को सुना-सुनाकर उनकी मृत्यु को ही भुला दिया। आज परीक्षित ये भूल ही गये कि कुछ समय बाद ही हमें मरना भी है। मृत्यु का विस्मरण ही मानो हो गया? इसीलिए तो ये पूछ रहे हैं कि हमारे दादा-दादी का विवाह कैसे हुआ? शुकदेवजी महाराज ने भी बड़े रोचक ढंग से सुनाया, अरे परीक्षित! जब भगवान् की बहिन सुभद्रा सयानी हो गई, तो दोनों भैया मिलकर एक दिन विचार करने लगे, भाई! अब कहीं इनका सम्बन्ध करना चाहिए, बहिन सयानी हो रही है। बड़े भैया बलरामजी बोले, अरे! कृष्ण कन्हैया! हमने फैसला कर लिया। हमारा पक्का चेला है दुर्योधन और मैं अपनी बहिन सुभद्रा का विवाह उसी से करूँगा। अब भगवान् चुप हो गये। बड़े भैया के सामने किसी की एक नहीं चलने वाली, ये भगवान् जानते हैं। तो कहने से कोई फायदा नहीं, क्या करें? भगवान् को ये सम्बन्ध पसन्द नहीं और दाऊजी ने पक्का निर्णय सुना दिया, तो भगवान् ने सुभद्राजी के पास बैठ-बैठकर अर्जुन के इतने गीत गाये। जब देखो, तब इतनी महिमा सुनाई कि सुभद्राजी के हृदयपटल पर अर्जुन का एक स्थान बना दिया।

उधर पाण्डवों का वनगमन चल रहा था, सो अर्जुन के जाकर कान में मंत्र फूंक आये। अर्जुन तो प्रभु के पक्के चेला हैं, सो अर्जुन '**त्रिदण्डी द्वारकामगात्**' त्रिदण्डी स्वामी बनकर अर्जुन द्वारिका आ गये। ऐसा

अद्भुत वेष बनाया कि कोई भी द्वारिकावासी अर्जुन को पहचान न पाया। अर्जुन तो सभी को पहचानते हैं, सो जब अर्जुन के पास कोई आये, तो स्वामीजी! प्रणाम!! अब जो प्रणाम करे उसकी पूरी जन्मपत्री अर्जुन बता दें। तेरा ये नाम है, तेरा ये धाम है, तुम इतने भाई-बहिन हो, तेरे पिताजी का ये नाम है, तेरा मकान फलां जगह है, फलां मोहल्ले में ... सुनने वाला अवाक् रह जाता। महाराजजी बड़े गजब के हैं? एक-एक बात महाराजजी की अक्षरशः सत्य निकलती है? अब क्या था, दुनिया पड़ गई पीछे? अर्जुन के यहाँ जब देखो, तब भीड़ ही लगी रहती है, महाराज! ज़रा मेरा हाथ देखो! मेरे बारे में कुछ बताओ! अब अर्जुन द्वारिका में प्रायः सबको जानते थे, इसलिए सबके बारे में जो जानते थे, वह बता देते थे। अर्जुन को तो कोई पहचान नहीं पा रहा कि ये कौन है?

महाराजजी की बात जब चारों तरफ फैल गई, तो दाऊजी के मन में विचार आया और वह भी मिलने पहुँच गये। महाराज प्रणाम!! अर्जुन थोड़े-से सकपका गये कि बड़े भैया हैं। परन्तु अब महाराजजी बने हैं, तो पक्के ही बनेंगे; सो दे दिया आशीर्वाद, प्रसन्न रहो। अरे महाराज! आपकी महिमा सुनकर अपने आपको रोक न पाया, अतः दर्शन करने चला आया। अर्जुन बोले, हम जानते हैं कि आप क्यों आये हो। हो न हो आप अपनी बहिन के विवाह में आजकल सोचते बहुत रहते हो। हम जानते हैं तुम्हारी बहिन का नाम सुभद्रा है और उसका विवाह गाण्डीवधारी अर्जुन के साथ होना चाहिये। दाऊजी बोले, वाह! ये तो हमने सोचा ही नहीं? अब महाराजजी कह रहे हैं तो भैया! ये तो भविष्य के गर्त में है? न जाने किसका सम्बन्ध कहाँ बैठे? पर महाराज! आपके दर्शन से हम निहाल हो गये। अब आपका आशीर्वाद मिलेगा, तो बहिन का विवाह भी जल्दी ही हो जायेगा। आप चलकर हमारे घर को भी पवित्र कर दीजिये।

अर्जुन बोले, वैसे हम घर-गृहस्थी वालों के यहाँ नहीं जाते। पर आपका प्रेम और श्रद्धा देखकर मना करते नहीं बन रहा। चलो, चले चलते हैं! हाथ पकड़कर घर ले आये। भगवान् को सब मालूम है, इनकी तो मिलीभगत चल रही है। भगवान् भी आ गये, महाराजजी! प्रणाम!! प्रसन्न रहो बच्चा!! भगवान् बोले, दाऊभैया! हमारे अहोभाग्य, जो आप महाराज को घर ले आये, हमें भी दर्शन मिल गये। अब दाऊजी आप आराम कीजिये। महाराजजी की सेवा का अवसर हमें भी तो दीजिये? हाँ-हाँ! जरूर ले जाइये! बड़े सिद्धबाबा हैं। भगवान् बोले, आइये महाराज! अर्जुन को भगवान् अन्तःपुर में ले गये। बहिन सुभद्रा! देखो! बड़े सिद्धबाबा आये हैं। जल्दी से बढ़िया भोजन बनाओ! महाराजजी प्रसाद आज यहीं पावेंगे और ये प्रसन्न हो गये, तो तुम्हारे सारे मनोरथ सिद्ध हो जावेंगे। सुभद्रा ने सुन्दर भोजन बनाया और सुन्दर थाली परोसकर लाई। अर्जुन को आवाज़ देकर प्रभु ने बैठाया, विराजिये महाराज! सुभद्राजी ने थाली परोस दी। भगवान् बोले, बहिन! एक बहुत आवश्यक कार्य याद आ गया है। मैं थोड़ी देर से आता हूँ, तबतक तुम महाराज का ध्यान रखना। बढ़िया भोजन पवाना और भगवान् खिसक लिये क्योंकि सारी योजना तो इन्हीं की थी।

सुभद्राजी को जब एकान्त में अवसर मिला, तो टुकुरटुकुर अर्जुन को देखने लगी और सोचने लगीं, ये शक्ल कुछ जानी-पहचानी-सी मालूम पड़ रही है? बहुत ध्यान से जब देखा, ओ हो! ये तो बिल्कुल अर्जुन-जैसे लग रहे हैं। पर अर्जुन महात्मा बनकर क्यों आयेंगे? अरे! मेरे चित्त में आजकल उन्हीं का चिन्तन चढ़ा रहता है, इसलिए ऐसा भ्रम हो रहा है। पर नहीं-नहीं! ये तो बिल्कुल वैसे ही लग रहे हैं? एक बार पूछ लूं? पूछना तो अच्छा नहीं लगेगा। तो छुपकर आवाज़ लगाई, अरे अर्जुन! सोई अर्जुन ने चौंककर देखा, यहाँ

किसने हमें बुलाया? हम तो महाराजजी बनकर बैठे हैं। सुभद्राजी समझ गई, तब तो निश्चित् ही अर्जुन ही है, इसीलिए अपना नाम सुनकर चौंके। सुभद्राजी भोजन परोसने के लिए आई और मुस्कुराकर बोलीं, महाराज! काय कूं बहरूपिया बने बैठे हो? मैं पहचान गई आप कौन हो। अर्जुन हंस पड़े, देवी! ये सब पापड़ तुम्हारे लिए ही बेल रहा हूँ। तुम्हें पाने के लिए ही महात्मा बनकर आया हूँ। सुभद्राजी ने पूछा, अच्छा! ये बात है, तो ठीक है। कल मन्दिर में दर्शन दीजियेगा, मैं भी वहीं पहुँचूंगी। गुप्त मंत्रणा हो गई। उधर भगवान् भी आ गये, बहिनजी! महाराजजी का भोजन ठीक चल रहा है? हाँ भैया!! महाराजजी तो प्रसाद पाकर चलते बने। दूसरे दिन बहिनजी चल पड़ीं। सखियों से समाप्रवृत जैसे-ही मन्दिर में पूजा करने पहुँची, दो-चार रक्षक दूत राजकुमारी की रक्षा में चले। सुभद्राजी ने भगवती का पूजन मन्दिर में किया और पूजन करके जो सुभद्राजी बाहर निकलीं कि अर्जुन ने तुरन्त हाथ पकड़कर रथ में बैठाकर रथ को वायुवेग से दौड़ा दिया।

ज्यों ही अर्जुन ने साधुवेश में सुभद्राजी का हरण किया, तो जो सैनिक लोग सुरक्षा में आये थे, सब चक्कर में पड़ गये। कुछ तो युद्ध करने लगे और कुछ दाऊजी के पास दौड़कर आये, दाऊजी महाराज! गजब हो गया। वह महाराजजी सुभद्राजी का हरण करके ले जा रहे हैं, जिन्हें कल आप भोजन पवाने लाये थे। अब तो दाऊजी आँखें लाल हो गई, अरे राम-राम! वह ऐसा पाखंडी-ढोंगी बाबा निकला। मैं उसे जिंदा नहीं छोड़ूँगा। हल-मूसल सँभाले दाऊजी ने और जैसे-ही युद्ध के लिये चले तो अचानक क्या देखा कि भगवान् आराम से बैठे-बैठे मुस्कुरा रहे हैं। दाऊजी दौड़कर आये, ऐ कन्हैया! तुमने कुछ सुना? भगवान् बोले, हाँ दाऊजी! सब सुन लिया। क्या सुन लिया? ये ही सुन लिया कि महाराजजी जो कल आये थे, वह बहिनजी को लेकर भाग गये। अरे राम-राम! तुम तो ऐसे कह रहे हो, जैसे कुछ हुआ ही न हो? अरे! इतनी बड़ी घटना हो गई और तुम बैठे-बैठे हाथ-पर-हाथ रखकर क्या सोच रहे हो? भगवान् बोले, दाऊजी! मैं तो यही सोच रहा हूँ। आखिर हमारे बल-पराक्रम को दुनिया में कौन नहीं जानता? फिर आखिर ये साधु कौन हो सकता है, जिसने हमारी बहन का हाथ पकड़ने का साहस दिखाया? भाई! कोई वीर-बांकुरा ही होगा? कोई ऐसा वैसा तो हिम्मत कर नहीं सकता? तो मैं सोच रहा हूँ कि इतनी हिम्मत करने वाला कौन हो सकता है?

दाऊजी बोले, जबतक तू सोचेगा! तबतक तो वह कहाँ से कहाँ पहुँच जायेगा? तू बैठे-बैठे सोच, मैं अभी उसे ठिकाने लगाकर आता हूँ। भगवान् बोले, अच्छा! तो तुमने लड़ने का फैसला कर ही लिया, तो मैं क्यों पीछे हटूं? मैं भी चलता हूँ! मैं तो बस यही सोच रहा था कि यदि हिम्मत वाला कोई वीर हमें मिल ही रहा है, तो हमें तो अपनी बहिन का विवाह कहीं-न-कहीं करना था, उसी से कर दें तो क्या बुराई है? आजकल ऐसे साहसी वीर कहाँ मिलते हैं? दाऊजी बोले, अरे! मैं तो ऐसा सोच भी नहीं सकता। यदि ऐसा हुआ तो मेरी नाक कट जायेगी। भगवान् बोले, दाऊजी! यदि वह हमें पराजित करके सुभद्रा को ले गया, तो हमारी थोड़ी बहुत बची नाक भी कट जायेगी। आखिर उसने जो कदम उठाया है, कुछ-न-कुछ सोचकर ही उठाया होगा? फिर भी यदि आपने युद्ध का निर्णय ले ही लिया है, तो मैं भी आपके साथ चलता हूँ। वैसे उन महात्माजी को घर में तो आप ही लाये थे। दाऊजी बोले, अरे कृष्ण! ये सब व्यंग्य के बाण चलाने का अभी समय नहीं है। तुम्हें चलना हो, तो चलो। हाँ! भैया मैं आपके साथ चलूँगा। दोनों भैया चल पड़े।

अर्जुन का एक नाम है '**सव्यसांची**'। एक हाथ से घोड़े दौड़ा रहे हैं और एक हाथ से ही धनुष पर बाण चला रहे हैं - ये कौशल अर्जुन के अन्दर है। सुभद्राजी इस दिव्यकौशल देखकर गद्गद् हो गईं। हाथ

जोड़कर बोलीं, स्वामी! आज्ञा मिले तो मैं घोड़ों को सँभालती हूँ। मेरे भैया ने मुझे रथ चलाना सिखाया है। मुझे घोड़ों को चलाना अच्छी तरह से आता है। आप प्रेम से युद्ध करो, मैं घोड़े सँभालती हूँ। सुभद्राजी ने घोड़ों की लगाम अपने हाथ में लेकर दौड़ाना प्रारम्भ किया। अर्जुन तक-तक के बाण मारने लगे और उधर दोनों भैया आ गये। हल-मूसल तानें जो दाऊजी को देखा कि अर्जुन के पसीना छूट गये कि अब इनके हल से बचने वाले नहीं हैं। अर्जुन को घबड़ाता देख भगवान् दाऊजी के पीछे खड़े होकर इशारे में बोले, घबड़ाना मत! मैं खड़ा हूँ। नाटक बिल्कुल ठीक चल रहा है। परन्तु जैसे ही दाऊजी प्रहार करने को तत्पर हुए कि भगवान् हाथ पकड़कर बोले, दाऊजी! रुको-रुको!! अरे! आप तो कह रहे थे कि वह बाबाजी बहिनजी का हरण करके ले गये। पर मैं तो देख रहा हूँ कि बहिनजी बाबाजी का हरण करके ले जा रही हैं। वह देखो वह घोड़े कौन हाँक रहा है? जब दाऊजी ने ध्यान से दृष्टि डाली, तो सुभद्राजी घोड़े दौड़ा रही हैं। सुभद्राजी को घोड़े दौड़ाते जब दाऊजी ने देखा तो दाऊजी का माथा घूम गया, अरे कृष्ण! ये बहिन को क्या हो गया? ये सुभद्रा क्यों घोड़े दौड़ा रही हैं? मेरी तो कुछ समझ में नहीं आ रहा कि ये हो क्या रहा है?

भगवान् हंसकर बोले, दाऊ भैया! मेरी समझ में तो कुछ-कुछ आ रहा है। मैंने पहचान लिया, ये निश्चित्‌रूप से गाण्डीवधारी अर्जुन है। मैंने इसे पहचान लिया है। जो अर्जुन का नाम सुना, सोई दाऊजी सब समझ गये, अरे कृष्ण! यदि ये अर्जुन है, तो इसमें कोई संदेह नहीं कि ये सब तेरा ही किया हुआ है। तेरी इच्छा के विरुद्ध अर्जुन भला ऐसा कर सकता है? तूने ही सब करवाया है। भगवान् तुरन्त हंस पड़े और बोले, दाऊ भैया! क्या आप जानते है, सुभद्रा बहिन दिन-रात अर्जुन की ही माला रटती हैं और आप दुर्योधन से सम्बन्ध पक्का कर रहे हो? दाऊजी बोले, अरे राम-राम! ये बात है। तो तुमने तबसे क्यों नहीं बताया? बुलाओ इसे। भगवान् ने हाथ घुमा दिया, बस युद्ध विराम। दाऊजी राजी हो गये हैं। युद्ध समाप्त हो गया। अर्जुन त्रिदण्डी स्वामी बने बड़े शर्माते हुए आये। अर्जुन के निकट आते ही दाऊजी बोले, स्वामीजी! नमो नारायणाय! अर्जुन बड़े लज्जित हुए। क्षमा करना दाऊभैया! हम तो द्वारिकाधीश के क्रीडामृग हैं। ये जिधर नचाते हैं, जैसा नचाते हैं, हम वैसा ही नाचते हैं। दाऊजी बोले, ओ हो! मैं पहले ही समझ गया था, सब इसी की करामात है। धूमधाम से फिर दाऊजी ने दोनों का विवाह सम्पन्न कराया। शुकदेवजी कहते हैं, परीक्षित! तुम्हारे दादा-दादी का विवाह ऐसे हुआ था।

शुकदेवजी कहते हैं, राजन्! एक बार भगवान् अपने समस्त परिकर साथ जनकपुर आये। श्रीजनकजी महाराज भगवान् के अनन्य भक्त हैं। ध्यान दें 'जनक' पदवी का नाम है। सीताजी के पिताजी जो थे, उनका नाम था 'सीरध्वज जनक' और भगवान् जिनके पास आये, ये हैं 'बहुलाश्व जनक'। जनकजी के वंश में जितने हुए, सब जनक कहलाये और सभी ब्रह्मज्ञानी हुए। ये विशेषता इस निमिवंश की है। बहुलाश्वजनक, सीरध्वज, कुशध्वज, धर्मध्वज, आदि ये सब जनकपरम्परा के राजा हुए हैं, पर सबके सब जनक कहलाये। तो बहुलाश्व जनक भगवान् के अनन्यभक्त थे और मिथिलापुर में ही एक ब्राह्मण रहता था 'श्रुतदेव'। ये भी भगवान् का अनन्यभक्त था। भगवान् ने सूचना पहुँचा दी कि आज हम इनसे मिलने आयेंगे। जो प्रभु के आगमन का समाचार मिला कि जनकजी महाराज पूरे राजकीय सम्मान से भगवान् के स्वागत में खड़े हो गए। अब बेचारा श्रुतदेव ब्राह्मण, जिसकी टूटी-फूटी झोपड़ी और घर में कुछ भी नहीं पर भगवान् का अनन्य भक्त था, तो वह भी हाथ जोड़कर भगवान् के स्वागत के लिए खड़ा था। जैसे ही प्रभु पधारे दोनों ने कहा, आइये आइये सरकार! हमारे घर को पावन कीजिए।

अब भगवान् बड़ी दुविधा में किसके यहाँ पहले जायें? जनकजी के यहाँ पहले जाऊँगा, तो ब्राह्मण का मन खिन्न हो जायेगा, जिसके लिए प्रतीक्षा का एक-एक क्षण बड़ी कठिनाई से बीत रहा था कि कब सरकार के दर्शन हों? कब घर पधारेंगे? और इतना उतावला ब्राह्मण यदि अपनी आँखों के सामने मुझे जनक के घर जाते देखेगा, तो इसके मन में क्षोभ हो जायेगा। और ब्राह्मण के घर पहले चला जाऊँगा, तो जनकजी महाराज सोचेंगे, ब्राह्मण को ही महत्व देते हैं! मैं क्षत्रिय था, इसलिए मेरी भावना का आदर नहीं किया। मुझे दूसरे नम्बर पर रख दिया। प्रभु को दोनों तरफ से दुविधा हो रही है। जनकजी के यहाँ जायें तो धन का दोष मानेंगे कि वह धनवानों के यहाँ पहले जाते हैं और ब्राह्मण के यहाँ जायें, तो भी पक्षपात माना जायेगा। तो भगवान् के साथ जो संत आये थे, भगवान् ने उनकी तरफ इशारा किया। शुकदेव बाबा कहते हैं, परीक्षित! उस मण्डली में मैं भी था।

नारदो वामदेवोऽत्रि: कृष्णो रामोऽसितोऽरुणि: ।
अहं बृहस्पति: कण्वो मैत्रेयश्च्यवनादय: ॥ (भा. 10/86/18)

शुकदेवजी कहते हैं, मैं भी था! हमारी तरफ इशारा किया। हम उनके इस संकेत को समझ गये और हम जितने संत थे, सबने दो-दो रूप प्रकट कर दिये। हमारे सरकार प्रभु द्वारिकाधीश भी दो रूपों में प्रकट हो गये। तो हम सभी संतों के साथ द्वारिकाधीश ब्राह्मण के साथ भी चल दिये और जनकजी के साथ भी चल दिये। एक ही क्षण में एक साथ और दोनों का सम्मान स्वीकार किया। जनकजी के यहाँ राजोपचार के साथ भगवान् का स्वर्ण सिंहासन पर ठाठ से पूजन चल रहा है और उधर ब्राह्मण की झौपड़ी में कुशा के आसन बिछा दिये गये, अतिथियों को बैठा दिया, शीतल जल पिला दिया। इसके अलावा उसके पास कुछ था भी नहीं। केवल अपना उत्तरीय हाथ में लेकर **'धुन्वन्वासो ननर्त ह'** वस्त्र उड़ा-उड़ाकर नाच रहा था और भगवान् ने ये यहाँ समता का दर्शन कराया कि मैं भाव का भूखा हूँ। कोई कैसा भी हो, धनहीन हो या धनवान ब्राह्मण हो, क्षत्रिय कोई भी हो, भगवान् भाव में विराजते हैं। परीक्षित ने पूछा महाराज! जब ब्रह्म निर्गुण-निराकार है, तो श्रुतियाँ वर्णन कैसे करती हैं? तब शुकदेव बाबा ने वेदस्तुति का नरकुटक छंद में वर्णन किया,

जय जय जह्यजामजित दोषगृभीतगुणां
त्वमसि यदात्मना समवरुद्धसमस्तभग: ।
अगजगदोकसामखिलशक्त्यवबोधक ते
क्वचिदजयाऽऽत्मना च चरतोऽनुचरेन्निगम: ॥ (भा. 10/87/14)

ये वेदस्तुति है। जैसे सोते हुए सम्राट को सूत, मागध, बंदीजन, आदि बिरदावलियां गाकर जगाते हैं; ऐसे ही भगवती श्रुति उस परमात्मा की शक्ति का वर्णन करती हैं, हे अजित्! आपकी जय हो जय हो। प्रभु ने कहा, अरे! जय-जयकार उसकी करो, जिसकी पराजित होने की सम्भावना हो। जिसे हारने का डर लगता है, वही जिंदाबाद के नारे ज्यादा लगवाता है। हम तो अजित हैं, कभी पराजित होते ही नहीं, तो ये जय-जयकार की क्या जरूरत? भगवती श्रुति कहती हैं, प्रभो! आपकी तो जय-जयकार है! आप अजित हैं। परन्तु जीवों के हृदय में तो आपका पराभव दिख रहा है। महाराज! प्रत्येक प्राणी के भीतर काम, क्रोध, लोभ, मद, मत्सर, आदि छिपे हुए हैं और प्रत्येक प्राणी के हृदय में आप भी बैठे हो।

ईश्वर: सर्वभूतानां हृद्देशेर्जुन तिष्ठति

आप भी बैठे हो और ये विकार भी बैठे हैं, परन्तु विकारों का तो दर्शन होता है। काम का वेग दिखता है, क्रोध का उद्वेग दिखाता है, लोभ की प्रवृत्ति दिखती है। ये सब विकार तो दिखाई पड़ते हैं, पर आप कहाँ छुपे बैठे हो; आपका तो दर्शन कहीं होता ही नहीं। इसका मतलब कि इस घर में दुर्विकारों के झंडे लहरा रहे हैं और आपके झंडे का दर्शन ही नहीं हो रहा? इसलिए प्रार्थना है, हे जय जय! आप जीवों के हृदय में अपना उत्कर्ष बढ़ाइए। आपकी महिमा इन जीवों के हृदय में प्रकट हो। भगवान् बोले, तो मैं क्या करूँ अब? श्रुति भगवती कहती है, **'अजां मायां जहि'** इस माया को नष्ट कर दो महाराज! सो ही काम बन जायेगा। ये जीव को भटकाने वाली आपकी ये विचित्र माया है। भगवान् बोले, मेरी माया गुणात्मिका है।

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया

तो ऐसी दिव्य सत्त्व, आदि गुणों से समन्वित माया को मैं क्यों नष्ट करूँ? श्रुति भगवती कहती हैं, हे प्रभु! माया में जो गुण है, वह जीवों को ठगने के लिए हैं। जैसे एक गणिका वेश्या परमगुणों से सम्पन्न होती है, अद्भुत श्रृंगार करती है। उसमें नाचने की अद्भुतकला होती है, कण्ठ उसका बड़ा मधुर होता है, बहुत अच्छा गाती है; पर गाना बजाना-नाचना जो भी कुछ उसे आता है, वह केवल दूसरों को लूटने के लिए है। उस गणिका के सारे गुण जैसे जीवों को ठगने के लिए हैं, वैसे ही आपकी माया में जितने गुण हैं, वह भी जीवों को ठगने के लिए धोखा देने के लिए हैं - **'दोषगृभीतगुणाम्'**। इसलिए आप इस माया को नष्ट कर दें और जीव के हृदय में अपना उत्कर्ष बढ़ावें, क्योंकि ये जीव भी तो आपका ही बच्चा है, आपका ही अंश है।

ईश्वर अंस जीव अबिनासी ।
चेतन अमल सहज सुखरासी ॥ (रामचरितमानस 7/117/1)

ये जीव आपका अंश है प्रभु! और आपका अंश (आपका पुत्र) होकर भी माया के वशीभूत होकर नाच रहा है। इस मायामय जगत् में भटक रहा है, इसमें क्या आपकी बदनामी नहीं है? जीव आपका पुत्र है और आपका पुत्र होकर जीव काम, क्रोध, मोह, आदि की दासता कर रहा है, उनकी जूठन खा रहा है। उनका दास बनकर उनके पीछे भाग रहा है। तो क्या आपकी बदनामी नहीं है? आपका नाम पतितपावन, भक्तवत्सल, दीनबन्धु है। तो क्या इन नामों की बदनामी नहीं होगी? इसलिए प्रभु इस जीव पर अनुग्रह कीजिये, कृपा कीजिये! ये आपका ही है। भगवान् कहते हैं, तो मैंने इसे बुद्धि किसलिए दी है? बुद्धि दी है, विवेक दिया है। उस बुद्धि-विवेक का परिचय दो और माया से बचो। श्रुति कहती हैं, महाराज! **'अखिल सत्यवबोधकते'** अरे! जबतक आपकी कृपा नहीं होगी, शक्ति का बोध ही नहीं होगा। शक्ति तो बहुत भरी पड़ी है, परन्तु जब शक्ति का ज्ञान नहीं, तो सब बेकार। जब कोई समर्थ सदगुरु, जिसे अपना स्वरूप और शक्ति का पूर्ण ज्ञान हो, ऐसा जब ब्रह्मज्ञानी संत सदगुरु के रूप में प्राप्त होता है, तो जीव को उसके स्वरूप का ज्ञान करा देता है कि तू तो परमात्मा का नित्यसखा है। सदगुरु वह सम्बन्ध स्मरण दिलाकर ये गिड़गिड़ाना, ये दु:ख की राशि से हमेशा के लिए दूर कर देता है और हमें अपना वह ब्रह्मस्वरूप स्मरण में आ जाता है। **'ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति'** (मुण्डकोपनिषद् 3/2/9) माया की प्रबलता ने हमारे स्वरूप को हमसे बिल्कुल भुला दिया है। सदगुरु ही इस भूल को सुधारते हैं और स्वरूप का बोध कराते हैं।

एक दिना वन में बस के वनराजें की नारी ने नाहर जायो ।
काहू गड़रिया के संग लग्यो ता ने वाहि को भेडन बीच छुपायो ॥
भूल गयो कुल कर्म सबै जब बड़ो ही भयो तब खूब चरायो ।
ऐसे ही आत्म ज्ञान बिना नर भूल के ब्रह्म से जीव कहायो ॥

हम थे तो ब्रह्म, पर जब स्वरूप का विस्मरण हो गया, तो जीव बन गये। इस प्रकार से वेदस्तुति का एक-एक श्लोक बड़ा ही मार्मिक है। वेदों का ज्ञान इसमें भरा हुआ है। भगवती श्रुति परमात्मा की महिमा का इस प्रकार से निरन्तर प्रतिपादन करती हैं।

परीक्षित ने पूछा, गुरुदेव! एक बात बताओ। भगवान् भोलेबाबा महाफक्कड़ देवता हैं, पर उनके शिष्य भक्त जितने भी मिलेंगे, सब धनवान करोड़पति ही मिलेंगे। और लक्ष्मीपति नारायण के भक्त जितने मिलेंगे, सब निर्धन? ऐसा क्यों होता है? ये उल्टा क्यों है?

देवासुरमनुष्येषु ये भजन्त्यशिवं शिवम् ।
प्रायस्ते धनिनो भोजा न तु लक्ष्म्याः पतिं हरिम् ॥ (भा. 10/88/1)

श्रीशुकदेवजी कहते हैं, राजन्! हमारे भोलेनाथ ओघड़दानी हैं। जिसने जो माँगा, देकर पिण्ड छुड़ाया। पर भगवान् नारायण ऐसा नहीं करते, निरीक्षण-परीक्षण करके जब उचितपात्र समझते हैं, तब कुछ देते हैं। एक बार तो हमारे भोलेबाबा से वृकासुर दैत्य ने वरदान माँगा कि जिसके सिर पर हाथ रख दूं, वह भस्म हो जाये।

यस्य यस्य करं शीर्ष्णि धास्ये स म्रियतामिति

भोलेबाबा ने तुरन्त कह दिया 'तथास्तु' जाओ! उसी का नाम भस्मासुर हो गया। उसने जब भोलेबाबा के वामाङ्ग में विराजमान भवानी को देखा, तो '**गौरीहरण लालसाः**' भवानी का ही हरण करने का विचार बनाने लगा और भोलेनाथ की तरफ हाथ बढ़ाया। भोलेनाथ ने कहा, ये क्या कर रहा है? तुझे वरदान मिल गया, अब जा! दैत्य बोला, महाराज! वरदान तो मिल गया, ज़रा प्रयोग करके तो देखूँगा। भोलेनाथ ने कहा, मेरा ही वरदान और मेरा ही सिर मिला तुझे? दैत्य बोला, महाराज! वरदान आपका है, तो प्रयोग आप पर ही करूँगा। अब भोलेनाथ को भागना पड़ा। अब आगे-आगे भोलेबाबा, पीछे-पीछे भस्मासुर। शिवजी कहने लगे, हे गोविन्द! इस दुष्ट से हमारी रक्षा करो। भगवान् समझ गये, आज बाबा चक्कर में पड़े हैं। एक क्षण में बिना सोचे ही 'तथास्तु' बहुत कहते हैं। जब भोलेनाथ भागते-भागते परेशान हो गये, तब भगवान् नारायण बटुकवामन बनकर रास्ते में प्रकट हो गये,

शाकुनेय भवान् व्यक्तं श्रान्तः किं दूरमागतः ।
क्षणं विश्रम्यतां पुंस आत्मायं सर्वकामधुक् ॥ (भा. 10/88/29)

अरे भाई! शकुनिनन्दन वृकासुर! तू कहाँ भागा जा रहा है? वृकासुर ने सोचा कि छोटा-सा ब्रह्मचारी! मेरे बाप का नाम भी जानता है? वृकासुर पहले तो बोला, मैं इस समय बहुत जल्दी में हूँ। तुमसे बातों में उलझ जाऊँगा, तो शङ्कर भाग जायेगा। ओ हो! तो शङ्कर पीछे भाग रहे हो। ऐ शिवशङ्कर! खबरदार!! अगर एक कदम भी आगे बढ़े तो। भोलेबाबा तुरन्त खड़े रह गये। पीछे मुड़कर देखा तो भगवान् ने इशारा किया, बाबा! चिन्ता मत करो। भोलेनाथ समझ गये, प्रभु की कुछ लीला प्रारम्भ हो गई, सो भोलेनाथ खड़े हो गये।

वृकासुर ने सोचा, ये ब्रह्मचारी बड़ा करामाती है। एक फटकार में इसने शङ्कर को खड़ा कर दिया? मैं भी थक गया हूँ, तो इस बहाने थोड़ा आराम भी कर लूँगा। सो, बटुक के पास आकर वृकासुर बोला, कहिये! हमें क्यों बुलाया? भगवान् बोले, भैया! शरीर है, तो सब कुछ है और एक तुम हो कि पसीने में लथपथ हो और फिर भी भागे चले जा रहे हो। ऐसी क्या आफत आ गई? वृकासुर ने पूरी कहानी सुना दी, वह इसने हमें वरदान दिया। अब भाग रहा है? भगवान् बोले, ओ हो! तो मेरी तरह तुम भी इसके चक्कर में पड़ गये। तेरी तरह मैंने भी इससे एक दिन वरदान माँगा था और बिल्कुल यही वरदान माँगा था कि जिसके सिर पर हाथ रख दूं, वह भस्म हो जाये। पर ये इतना झूठा कि मुझसे कह दिया 'तथास्तु'। अब रोज अपने सिर पर खोपड़ी पर हाथ पटकता हूँ, कहीं कुछ नहीं होता। ये तो भांग के नशे में मस्त रहता है और मुँह से किसी से कुछ भी कह देता है, पर होता कहीं कुछ भी नहीं। तुम बेकार में इसके पीछे भाग रहे हो।

वृकासुर बोला, क्यों ब्रह्मचारीजी! हमें बिल्कुल पागल समझ रखा है क्या? अरे! वरदान झूठा होता, तो ये ऐसे प्राण बचाकर क्यों भागता? भगवान् बोले, बस! बस! इसमें यही विशेषता है। अब ये तुम्हें पूरा विश्वास दिलाना चाहता है कि मेरा वरदान सच्चा है। ये तो भांग के नशे में भाग रहा है और तुम बेकार में अपना शरीर बर्बाद कर रहे हो। वृकासुर बोला, अच्छा! तो ये झूठ भी बोलता है? पर एक बात बताओ, सच का पता कैसे चले, क्योंकि ये बात मुझे कुछ समझ में नहीं आ रही। भगवान् बोले, तो यूं समझो, यदि कोई सिर पर हाथ रख दे, तो क्या कोई एकदम भस्म हो जाता है? ऐसा थोड़े होगा। यदि सच का पता लगाना है, तो अपने सिर के थोड़ा-सा ऊपर हाथ रखना। यदि थोड़ी-थोड़ी यदि गर्मी भी मालूम पड़े, तो समझना खतरा है। और कुछ न समझ में आवे, तो समझो झूठा है। दैत्य बोला, ये बात कुछ समझ में आई। अब ज़रा सिर के ऊपर ये हाथ रखा। भगवान् ने पूछा, कुछ गर्मी लगी? असुर बोला, नहीं! भगवान् बोले, तो और नीचे लाओ। उसने झट से हाथ रख दिया और हाथ रखते ही राख का ढेर बन गया। भोलेबाबा दौड़े-दौड़े आये, जय हो सरकार! आपने बड़ी कृपा की। नहीं तो आज मेरी आफत आ गई होती। भगवान् भोलेनाथ से हंसकर बोले, बाबा! आजकल भक्त बड़े होशियार हो गये हैं। घरा सोच-समझकर ही वरदान दिया करो। भोलेबाबा ने तो कान पकड़ लिये '**अब खाई सो खाई, आगे खाई तो रामदुहाई**'। तो ऐसे भोलेबाबा औघड़दानी है। कुछ भी दे देते हैं, पर भगवान् नारायण ऐसे नहीं हैं। बहुत सोच विचार कर ही देते हैं।

शुकदेवजी कहते हैं, परीक्षित! एक बार तो महात्माओं के बीच तीनों देवताओं में श्रेष्ठता को लेकर बड़ा भारी प्रसंग छिड़ गया कि '**त्रिष्वधीशेषु को महान्**' तीनों देवताओं में बड़ा कौन है? ब्रह्मा, विष्णु या महेश? सभी महात्मा बोले, अब ये दायित्व हमने भृगुजी के ऊपर सौंप दिया। अब भृगुजी तीनों देवताओं की परीक्षा के लिए बढ़े। ब्रह्माजी को प्रणाम नहीं किया, तो वह क्रोधित हो गये। शिवजी से आलिंगन नहीं किया, तो शिवजी मारने को दौड़े। परन्तु नारायण की तो छाती में जाकर भृगुजी ने लात ही मार दी, फिर भी भगवान् तुरन्त खड़े होकर भृगुजी के चरण दबाने लगे।

अतीव कोमलौ तात चरणौ ते महामुने ।
इत्युक्त्वा विप्रचरणौ मर्दयन् स्वेन पाणिना ॥ (भा. 10/89/10)

भगवान् चरण सहलाते हुए बोले, महाराज! मेरा हृदय बड़ा कठोर है और आपके सुकुमार चरणों में मेरे हृदय पर प्रहार करते समय यदि पीड़ा हो गई हो, तो मेरी धृष्टता को क्षमा करें। भृगुजी तो गद्गद् हो गये, जय हो प्रभु! सबके बीच में घोषणा कर दी कि मेरी दृष्टि में श्रीमन्नारायण प्रभु से महान् कोई देवता नहीं।

शुकदेवजी कहते हैं, परीक्षित! एक बार अर्जुन द्वारिका में आये हुए थे। भगवान् की द्वारिकापुरी में प्रभु के सामने अचानक एक ब्राह्मण अपने मृतपुत्र को लेकर आया और भगवान् के सामने रखकर कहता है, राजा के पाप से ही प्रजा में ऐसा होता है कि पिता की उपस्थिति में पुत्र का अन्त हो जाये। आप लोग राजा नहीं, राजा के रूप को धारण किये नट हो। जब वह ब्राह्मण ऐसे अपशब्द बोलने लगा, तो पास में बैठे अर्जुन बोल पड़े, हे विप्रवर! ऐसा तो न बोलो। क्या बात है? ब्राह्मण ने कहा, मेरे एक-दो नहीं, कितने ही बच्चे पैदा होते ही समाप्त होते जा रहे हैं और मेरे बालकों का कोई ध्यान ही नहीं देता, कोई रक्षा ही नहीं करता। अर्जुन बोले, यदि ये बात है तो मैं आपको वचन देता हूँ। आपके बालक की मैं रक्षा करूँगा। ब्राह्मण बोला, तू क्या रक्षा करेगा? जिन बालकों की रक्षा श्रीकृष्ण, प्रद्युम्न, बलराम, संकर्षण, आदि नहीं कर सके, तो तुम क्या करोगे? जब ब्राह्मण ने ऐसा कहा, तो अभिमान में भरकर अर्जुन एकदम अकड़कर बोले, ऐ ब्राह्मण! तुमने मुझे क्या कृष्ण समझ रखा है? मैं कृष्ण नहीं, मैं बलराम नहीं, मैं प्रद्युम्न नहीं। क्या तूने मेरा और मेरे गाण्डीव का नाम नहीं सुना?

नाहं सङ्कर्षणो ब्रह्मन् न कृष्णः कार्ष्णिरेव च ।
अहं वा अर्जुनो नाम गाण्डीवं यस्य वै धनुः ॥ (भा. 10/89/33)

भगवान् ने अर्जुन की तरफ गौर से देखा, अच्छा! अर्जुन बोले, ब्राह्मण! मैं आपको वचन देता हूँ कि यदि रक्षा नहीं कर सका, तो आत्मदहन कर लूँगा। तब ब्राह्मण को विश्वास करना पड़ा। अर्जुन बोले, अब की बार जब बालक हो, तो मुझे बुला जरूर लेना। दसवें पुत्र का जन्म होने का समय आया तो ब्राह्मण बुलाने आया, अरे अर्जुन! चलो! अर्जुन दौड़े-दौड़े आये और प्रसूतिकागृह को बाणों से ऐसे आच्छादित कर दिया कि अन्दर की वायु भी बाहर न जाने पावे। बालक का जन्म हुआ और रोने का शब्द सबने सुना। ब्राह्मण तुरन्त बच्चे के पास दौड़ा, पर अचानक क्या देखता है कि अब की बार बालक सदेह अदृश्य हो गया। पहले तो कम-से-कम शरीर पड़ा रहता था, अबकी बार तो शरीर का ही पता नहीं? अब तो अर्जुन से ब्राह्मण ने कहा, महाराज! बालक का कहीं पता नहीं कहाँ गया? अब अर्जुन तीनों लोकों में भटकते फिरे; कहीं कोई सुराग नहीं मिला। निराश होकर जब लौटे, तो ब्राह्मण ने खूब खरी-खोटी सुनाई,

धिगर्जुनं मृषावादं धिगात्मश्लाघिनो धनुः

धिक्कार है तुम्हें और तुम्हारे धनुष के लिये!! अपनी बड़ी भारी प्रशंसा कर रहे थे? बड़ी शेखी बघार रहे थे? अर्जुन तो आत्मदहन के लिए तैयार हो गये, प्रतिज्ञा पूरी नहीं हुई, तो निश्चित् मैं भस्म हो जाऊँगा। जैसे-ही मरने की तैयारी की कि भगवान् द्वारिकाधीश आ गये, मित्र! अब इतनी भी जल्दी क्या है? एक बार हमारे साथ भी प्रयास करके देख लो और तुरन्त भगवान् ने अर्जुन को अपने रथ पर बैठाया और वायुवेग से रथ दौड़ा दिया। लोकालोक पर्वत को भी जब लांघकर आगे बढ़े, तो इतना भयंकर अंधकार कि घोड़ों का चलना भी कठिन हो गया। तब दिव्य सुदर्शनचक्र के प्रकाश में भगवान् ने रथ आगे बढ़ाया और अब इतना दिव्य प्रकाश प्रकट हुआ कि जहाँ पर भगवान् का प्रतिरूप भूमापुरुष विराजमान हैं। भगवान् ने उस दिव्यरूप को प्रणाम किया, तो अर्जुन ने भी प्रणाम किया। भूमापुरुष ने दोनों का स्वागत किया और कहा, भाई! हम तुम दोनों को यहाँ बुलाकर दर्शन करना चाहते थे, इसलिए हमने ही उन विप्रबालकों का हरण किया है। वह बालक सब सुरक्षित हैं। आप जिस उद्देश्य के लिए गय थे, वह उद्देश्य पूरा हो चुका है। सब असुरों का विनाश

हो चुका है। धर्मध्वज पृथ्वी पर लहरा रहा है। इसलिए अब अपना कार्य पूर्ण करके शीघ्र वापिस लौटकर आओ। तुम दोनों मेरे ही अंश हो। तुम दोनों ही नर और नारायण हो।

नरावतार अर्जुन और नारायणावतार भगवान् श्रीकृष्ण - दोनों को इस प्रकार से कहकर उन विप्र बालकों के साथ दोनों को विदा किया। भगवान् ने वह बालक सब ज्यों-के-त्यों उतनी ही अवस्था में लाकर ब्राह्मण को प्रदान किये। ब्राह्मण बड़ा प्रसन्न हो गया और भगवान् को बारबार धन्यवाद दिया। शुकदेवजी कहते हैं परीक्षित! इस प्रकार से भगवान् द्वारिकाधीश की दिव्य-लीलायें हैं। भगवान् का छप्पनकोटि यदुवंशियों का विशाल परिवार है। उन यदुवंशी बाल विद्यार्थियों को पढ़ाने के लिए करोड़ों अध्यापक नियुक्त थे।

भगवान् की जो सोलह हज़ार एक सौ आठ रानियां हैं, भगवान् का सामीप्य पाकर परमसुख प्राप्त करती हैं। परन्तु जब प्रातःकाल होने को आता है, तो उन्हें अज्ञात आशंका होने लगती है कि अब हमारे प्रियतम से हमारा विछोह हो जायेगा। कुररपक्षी की विकल ध्वनि जब सुनती हैं, तो उन पक्षियों से ही भगवान् की चर्चा करती हैं। इसे महिषीगीत कहते हैं। अरी कुररि! तू भी क्या हमारी तरह प्रियतम के वियोग से दुखी होकर विलाप कर रही है? क्या तुझे भी नींद नहीं आती है? इस प्रकार से पुकार-पुकारकर हमारे प्रियतम की निद्रा को भंग मत कर। हंस! स्वागत है आपका!! आओ! आओ!! हम तुम्हें बढ़िया दूध पिलाती हैं। ये सुन्दर दुग्ध का पान करो। हमें हमारे प्रियतम भगवान् श्रीकृष्ण के सुन्दर चरित्रों को सुनाकर मुग्ध करो।

हंस स्वागतमास्यतां पिब पयो ब्रूह्यङ्ग शौरेः कथां

क्या तुम्हें हमारे पास भगवान् ने ही भेजा है? इस प्रकार से **'को जड़ को चैतन, न जानत बिरही जन'** जैसे बिरही को सारा जगत् अपने प्रियतम से ही सम्बन्धित प्रतीत होता है, उसी प्रकार से भगवान् की परमप्रिय पटरानियां भी भगवान् की चर्चा उन पक्षियों से भी किया करती थीं और ऐसे ही उनका समय सम्पन्न होता था। इसके साथ ही भागवत के नब्बे अध्याय युक्त दशम स्कन्ध सम्पन्न होता है।

अथ श्रीमद्भागवतपुराणस्य

॥ एकादश: स्कन्ध: ॥

(मुक्ति)

यदुवंश को शाप — एकादश स्कन्ध को मुक्तिस्कन्ध कहते हैं। एकादश स्कन्ध को हम भलीभाँति सुनें और इसपर बारम्बार चिन्तन करें, तो जीवनमुक्ति का लाभ प्राप्त होता है। इसमें ज्ञान प्रधान है तथा जीवन का तत्त्व बतलाया गया है। भगवान् द्वारिकाधीश ने देखा कि मैंने अब असुरों का संहार करके पृथ्वी का प्राय: भार दूर कर दिया है। पर अब मुझे ऐसा लगता है कि कहीं मेरे जाने के बाद मेरा वंश ही पृथ्वी का भार न बन जाय। छप्पन करोड़ यदुवंशी हैं, जो एक-से-एक बलशाली है। प्रभु को लगा कि हम देख रहे हैं, यदुवंशी बालकों में भी बड़ी उद्दण्डता आती जा रही है। तो क्यों न अपने वंश के विनाश का भी बीज बो दिया जाये। भगवान् तो षडैश्वर्य सम्पन्न हैं। वह भार उतारने आये हैं, चाहे वह किसी भी प्रकार का हो। भगवान् की आसक्ति तो कहीं है नहीं वह तो असंग हैं। तो भगवान् का संकल्प हुआ और संतों का आगमन हुआ। द्वारिका में संत आ गये। भगवान् ने सबका सम्मान किया और कहा, महाराज! हमारी हार्दिक इच्छा है कि आप द्वारिका में अपना चातुर्मास्य सम्पन्न करें। महात्माओं ने कहा, प्रभु! जैसी आपकी इच्छा। एक बगीचे में महात्माओं का सुन्दर प्रबन्ध कर दिया गया। महात्माओं ने अपने आसन जमा लिये। अब भगवान् तो बड़े भाव के साथ उनके दर्शन करते हैं, उनकी कुशल-क्षेम पूछते रहते हैं; परन्तु कुछ बालकों ने एक दिन एकत्रित होकर आपस में चर्चा की कि ये बाबा लोग पड़े-पड़े खाते रहते हैं। इन्हें कुछ आता-जाता भी है कि नहीं? चलो! आज इनकी परीक्षा लें। सुना जाता है कि ये बड़े त्रिकालज्ञ होते हैं, भूत-भविष्य-वर्तमान सव जानते हैं। हम इनकी परीक्षा लेंगें।

सब बालक इकट्ठे होकर महात्माओं के पास चल पड़े और योजना बनाई कि जाम्बवतीपुत्र साम्ब बड़ा ही सुन्दर है। सबने मिलकर उसे साड़ी पहना दी और उसे इस तरीके से सजाया कि जैसे कोई गर्भवती महिला हो और महात्माओं के पास आगे-आगे करके ले गये, महाराज! नमो नारायणाय!! महात्मा सहजता से बोले, आओ-आओ बच्चों! कैसे आना हुआ? बच्चे बोले, महाराज! हमारी भाभीजी आपसे कुछ पूछने आई हैं। इन्हें पूछने में बड़ा संकोच लग रहा है,

प्रष्टुं विलज्जती साक्षात् प्रब्रूतामोघदर्शना:

आप तो त्रिकालज्ञ हैं। जरा ध्यान लगाकर बताइये कि अबकी बार क्या होने वाला है? अब बेचारे कोई नाक बंद करे, कोई आँख बंद करे, सब ध्यान लगाने लगे। पर सब परेशान हुए और किसी की समझ में कुछ भी न आये। अब बच्चे सब एक दूसरे की तरफ इशारा करके परिहास कर रहे हैं, देखें! क्या बताते हैं? परीक्षार्थ परिहास कर रहे हैं। एक महात्मा जान गये, ऐ बच्चों! लज्जा नहीं आती? महात्माओं से ऐसा मज़ाक करते हो? भागो यहाँ से! बच्चे तो पूरा मन बनाकर आये थे, अरे महाराज! आप बताओ, तब तो जायें? जब

आता-जाता ही कुछ नहीं, तो बताओगे कहाँ से? इस प्रकार से बच्चों ने जब व्यंग्य भरी बातें की, तो दुर्वासाजी बगल में ही बैठे थे और भी एक-से-एक महात्मा बैठे थे।

विश्वामित्रोऽसित: कण्वो दुर्वासा भृगुरङ्गिरा: ।
कश्यपो वामदेवोऽत्रिर्वसिष्ठो नारदादय: ॥ (भा. 11/1/12)

महात्मा दुर्वासाजी बोले, इधर आओ! मैं बताता हूँ। बच्चे उनके ही पास चले गये, हाँ महाराज! आप ही बता दो। उन्होंने क्रुद्ध होकर कहा, मूर्खो! इसके न बेटा होगा, न बेटी होगी; एक लोहे का ऐसा मूसल होगा, जो तुम्हारे सम्पूर्ण यदुवंश का विनाश कर देगा। '**जनयिष्यति वो मन्दा मुसलं कुलनाशनम्**' जो ये शब्द सुना सब घबड़ा गये। तुरन्त साम्ब के वस्त्र उतारे, तो जो उदर में वस्त्र लपेटे थे, उन्हें खोलते ही एक मूसल उत्पन्न हो गया। अब सब घबड़ा गये, हमने तो कपड़ों में ऐसा कुछ रखा नहीं था। ये लौह-पिण्ड कहाँ से आ गया? अब सब बालक संतो का वचन सत्य मानते हुए भागे और महाराज उग्रसेन के पास एकान्त में आकर सब रोने लगे। पूरी घटना सुनकर तो उग्रसेन भी घबड़ा गये, अरे राम राम! तुमने महात्माओं के साथ ऐसा मजाक किया? लज्जा नहीं आई तुम्हें? भगवान् श्रीहरि इतना समझाते रहते थे कि संत-ब्राह्मणों से दूर रहा करो। उस दिन तुमने नृग राजा की स्थिति को नहीं देखा? बच्चों ने कहा, महाराज! जो होना था, सो हो गया। अब क्या करें, ये तो बताओ? और कहीं प्रभु को इस घटना का पता चला, तो वह हम सबका परित्याग ही कर देङ्गे। एक पल भी वह संत-विरोधी को सहन नहीं कर सकते। इस बात का उन्हें पता नहीं चलना चाहिए। अब सभी ने ये बात प्रभु श्रीकृष्ण से छुपाई और निर्णय लिया कि अब कुछ भी हो इस मूसल को पीस-पीसकर समुद्र में फेंक देते हैं। उसी निर्णयानुसार मूसल पीस-पीसकर पानी में बहा दिया। घिसा हुआ मूसल समुद्रतट पर ऐरका नामक पैनी घास बनकर पैदा हुआ और उस मूसल को घिसते-घिसते एक पैनी-सी कील, जो बची हुई थी, वह मछली ने निगल ली। मछली को मल्लाह ने पकड़ा और मल्लाह ने कील निकाली। उससे एक बहेलिया ने उस सुन्दर कील का सुन्दर बाण बनाया। सर्वान्तर्यामी प्रभु को सब पता चल गया, परन्तु न प्रभु को किसी ने स्पष्ट कहा और न भगवान् ने किसी से कुछ पूछा; क्योंकि सब भगवदेच्छा से ही सम्पन्न हो रहा है।

नवयोगेश्वर संवाद— एक दिन देवर्षि नारद भ्रमण करते हुए द्वारिका में आये। भगवान् ने बड़ा दिव्य स्वागत किया और कहा, महाराज! मैंने सबको तत्त्वज्ञान दिया और स्वरूपस्थ कर दिया। पर मेरे ही माता-पिता देवकी-वसुदेव अभी तक मुझे केवल बच्चा ही समझ रहे हैं। कृपा करके आप उन्हें ऐसा कुछ ज्ञान दें, जिससे वह भी अपने स्वरूप को समझ सकें और मुझे पहचान सकें। अब मैं पुत्र होकर उन्हें उपदेश दूं, ये अच्छा नहीं होगा। अत: मेरे माध्यम से आप उन्हें समझाइये। भगवदाज्ञा से नारदजी वसुदेवजी के पास आये। वसुदेवजी ने पूजन किया, सम्मानपूर्वक आसन दिया और कहा, महाराज! कृपा करके हमारे कल्याण का कुछ उपाय बतायें, भागवतधर्म का स्वरूप हमें समझायें। नारदजी को लगा कि यदि मैं सीधे उपदेश देना प्रारम्भ कर दूं, तो वसुदेवजी को हो सकता है कि बात समझ में न आये। क्योंकि वसुदेवजी तो जानते हैं कि नारदजी तो हमारे लाला के ही आगेपीछे घूमते रहते हैं। तो नारदजी ने एक प्रसङ्ग सुनाया, वसुदेवजी महाराज! यही प्रश्न एक बार जनकजी ने नवयोगेश्वरों से किया था। भगवान् ऋषभदेव के अवतार की कथा आप जानते हैं, जिनके सौ पुत्र हुए। सबसे बड़े थे भरत, जिनके नाम से देश का नाम भारतवर्ष पड़ा। भरतजी से नौ छोटे भाई ऐसे हुए, जिन्होंने नवयोगेश्वर नाम से प्रसिद्धि पाई। कवि, हरि, अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, आविर्होत्र,

द्रुमिल, चमस तथा करभाजन - ये नौ महात्मा नवयोगेश्वर[1] हैं। महाराज वसुदेव! ये नौ महात्मा जैसे-ही जनकजी के दरबार में पहुँचे, तो जनकजी ने सबका पूजन किया और यही बात पूछी,

दुर्लभो मानुषो देहो देहिनां क्षणभंगुर: ।
तत्रापि दुर्लभं मन्ये वैकुण्ठप्रियदर्शनम् ॥ (भा. 11/2/29)

जनकजी नवयोगेश्वरों से कहते हैं, महाराज! मनुष्य शरीर बड़ा दुर्लभ है और उस पर भी मनुष्य शरीर मिल जाये, तो निश्चिन्त मत हो जाओ कि अब तो मनुष्य बन ही गये। अब आराम से अपने कल्याण की बात भी फुर्सत से सोच लेंगे। एक पल का भरोसा नहीं। किसी के पास गारंटी-कार्ड नहीं है कि सौ साल के लिए आया है, या पचास, या पाँच साल के लिए। शरीर मिल भी जाये, तो क्षणभंगुर है। कल का भरोसा नहीं, कल की खबर नहीं। मनुष्य शरीर तो दुर्लभ है ही, उससे भी अधिक दुर्लभ है भगवान् के भक्तों का दर्शन। भगवान् वैकुण्ठाधिपति नारायण के प्रिय अनुरागी-रसिक संत-भक्तों का दर्शन और भी अत्यन्त दुर्लभ है। मनुष्य शरीर से भी दुर्लभ भगवतभक्तों का दर्शन है। '**अत आत्यन्तिकं क्षेमं पृच्छामो भवतोऽनघा:**' अत: जीव के दु:ख की निवृत्ति कैसे हो? जीव का सच्चा कल्याण कैसे हो?

तब नवयोगेश्वरों में जो सबसे बड़े कवि नाम के योगेश्वर ने कहा, राजन्! हम बतलाते हैं। ध्यान से सुनो! भागवतधर्म का आचरण करने से जीव को परमपद की प्राप्ति होती है, उसका वास्तविक कल्याण होता है। दु:ख की आत्यन्तिक निवृत्ति होती है। तो भागवतधर्म का स्वरूप क्या है, अब ये बड़े ध्यान से सुनो,

मन्येऽकुतश्चिद्भयमच्युतस्य पादाम्बुजोपासनमत्र नित्यम् ।
उद्विग्नबुद्धेरसदात्मभावाद् विश्वात्मना यत्र निवर्तते भी: ॥ (भा. 11/2/33)

देखो! ये जन्म-मरण ही भवरोग है। भवरोग के भयंकर भय से मुक्त होने के लिये सबसे सुन्दर-सरलतम साधन है भगवान् के चरणकमलों की उपासना। अन्य दवाओं के रियैक्शन का डर है, पर भक्तिरूपी सुन्दर भवौषधि बड़ी मीठी दवा है। गोविन्द के पादपद्मों की उपासना करो - बस यही दवा है। यही भक्तिरूपी मीठी दवा तुम्हें जन्म-मरण के दु:ख से मुक्ति दिला सकती है। आजकल उद्विग्नता (टेंशन) सबसे बड़ी बीमारी है। बुद्धि में निरन्तर उद्विग्नता बनी हुई है - ये बीमारी का लक्षण है। दाल जबतक कच्ची रहती है, तबतक उफनती रहती है। उफनना बन्द हो जाएगी, जब समझो कि सिद्ध हो गयी। उसी प्रकार जबतक बुद्धि में उद्विग्नता बनी हुई है, चित्त में निरन्तर अशान्ति बनी हुई है; समझ लो कि अभी हमारी दाल कच्ची है, अभी हम सिद्ध नहीं हुए। जब उद्विग्नता बन्द हो जाये, तब समझो कि सिद्धत्व की प्राप्ति हो गयी।

---

1. श्रीनाभाजी ने भक्तमाल (छप्पय 9) में नवयोगिश्वरो का स्मरण किया है -

कवि हरि करभाजन भक्ति रत्नाकर भारी । अन्तरिच्छ अरु चमस अननिता पद्धति उधारी ।
प्रबुद्ध प्रेम की रासि भूरिदा आविरहोता । पिप्पल द्रुमिल प्रसिद्ध भवाब्धि पार के पोता ।
जयंती नंदन जगत के त्रिविध ताप आमय हरण । निमि अरु नव योगेस्वरा पादत्राण की हों सरण ॥

कवि - कौति मुमुक्षुभ्य उपदिशत्यात्मतत्वमिति। **हरि** - हरत्युपदेशेनाज्ञानमिति, यद्वा हं हर्ष राति श्रोतृभ्य इति। **अन्तरिक्ष** - अंतश्चेतसीक्षत आत्मानमित्यंतरिक्ष:। **प्रबुद्ध** - प्रकर्षेण बुद्धं ज्ञातं आत्मतत्वं येन स प्रबुद्ध:। **पिप्पलायन** - पिप्पलो विष्णु: स चायनमाश्रयोयस्य स। **आविर्होत्र** - आवि: प्रगटे होत्रं सर्वेषां कर्मणां होमो ज्ञानाग्निना । **चमस** - चयंति वेदतीर्थमिति चया वैदिकास्तान् सरति मुख्यत्वेमन प्राप्नोतीति चमस: वैदिकोत्तम:। **द्रुमिल** - द्रुषु वृक्षेषु, घनेषु मिल्यते प्राप्यते दिहमिति। **करभाजन** - भा प्रकाशंजनयतीति भाजनं वेदार्थज्ञानं करे हस्ते भाजनं स करभाजन: ॥

स्वस्थ होने की यही कसौटी है। स्वस्थ माने जो स्व-स्वरूप में स्थित हो, वही स्वस्थ है। हम सब बहुत अस्वस्थ हैं। जो जितना अधिक बेचैन, वह उतना अधिक अस्वस्थ है। स्वस्थ महापुरुष वह है, जो वन में बैठा हो तब भी मस्त है और हज़ारों की भीड़ में बैठा हो तब भी मस्त है; क्योंकि वह स्वस्थ है। हमलोग दूसरों पर निर्भर हैं क्योंकि हमारी चाबी दूसरों के हाथ है। किसी ने माला पहना दी, तो खुशी के मारे पागल हो गये और किसी ने नेक उल्टा-सीधा बोल दिया, तो दो दिन तक रोटी ही अच्छी नहीं लगी। इसका मतलब कि हमारी सुख की चाबी उसके हाथ, दु:ख की चाबी उसके हाथ ... हम तो पराधीन हैं। स्वस्थ वह है, जिसकी चाबी उसके अपने हाथ में है। वह सम्मान-अपमान से परे है। उसका आनन्द उसके हाथ है, वह दूसरे के उधार पर निर्भर नहीं है।

अच्छा! एक बात बताओ!! बीमारी जब आती है, तो उसका कारण जरूर होता है। खट्टी डिकार आ रही है, तो पेट में कुछ गड़बड़ है। जुखाम-खांसी हो रही है, तो सर्दी लग गयी ह ... इस तरह हर बीमारी का कोई-न-कोई कारण होता है। तो उद्विग्न बुद्धि का कारण है - '**असदात्मभावात्**' - असत् माने नाशवान्। अनित्य-असत् वस्तुओं में हमारी ऐसी आसक्ति हो गयी है कि उसी को हम अपना माने बैठे हैं। मकान मेरा, दुकान मेरा, पुत्र मेरा, पत्नी मेरी, परिवार मेरा ... ये मेरा-मेरा जहाँ जोड़ रखा है, उसी असत् में हमारी आत्मबुद्धि हो गयी है। यही बीमारी की जड़ है। अशान्ति की व्याधि यदि जीवन में है, इसका अर्थ है कि कहीं-न-कहीं असत् वस्तुओं में आत्मभाव है। अब इसे ठीक करने के लिए गोविन्द के पादपद्मों का आश्रय लो -

सब कै ममता ताग बटोरी । मम पद मनहिं बाँध बरि डोरी ॥

(रामचरितमानस 5/48/3)

ये जो ममता की रस्सियाँ इधर-उधर फैला रखीं हैं, इन सबको इकट्ठा बटकर गोविन्द के पादपद्मों में बाँधो। ऐसा करने से तुम्हारा उद्विग्नता का रोग ठीक हो जाएगा। अब रोग दूर होने का लक्षण क्या है? लक्षण यह है कि फिर विश्व की सभी आत्माओं में प्रीति हो जाएगी। कोई भी हमें पराया नज़र न आवे और सबमें स्नेह-प्रीति ऐसी हो जावे कि डर नज़र न आये - यही स्वस्थ हो जाने का लक्षण है। व्यक्ति उससे डरता है, जिसे पराया समझता है। यहाँ तो जब सब अपने लगेंगे, सब में वही सीतारामजी दिखेंगे, तो भय किससे करोगे?

निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध

(रामचरितमानस 7/112)

इस प्रकार कवि योगेश्वर ने राजा जनक को बड़ा सुन्दर उपदेश दिया। उत्तम, मध्यम और प्राकृत - ये वैष्णव-भक्तों के तीन भेद बताये। अन्तरिक्ष महाराज ने माया का स्वरूप बताया तथा प्रबुद्धजी ने माया से बचने का उपाय बताया। प्रबुद्ध माने जगा हुआ। जो स्वयं जगा हुआ है, वहीं दूसरों को जगा सकता है। इसलिए किसी जगे हुए सद्गुरु का आश्रय लो, वही तुम्हें जगायेंगे। आत्मा का स्वरूप क्या है - ये पिप्पलायनजी ने बताया। अजितेन्द्रिय पुरुषों की गति क्या है - यह आविर्होत्रजी ने बताया। अब जनकजी ने प्रश्न किया, महाराज! भगवान् के अवतारों का निरूपण करें। तो द्रुमिल नाम के योगेश्वर निरूपण करते हैं कि भाई! कोई पृथ्वी के परमाणु सम्भवत: गिन सके। परन्तु भगवान् के जो अनन्त गुणगण हैं, जो उन्हें गिनने का प्रयास करे, उसे तो बाल बुद्धि ही कहा जायेगा।

यो वा अनन्तस्य गुणाननन्ताननुक्रमिष्यन् स तु बालबुद्धि: ।
रजांसि भूमेर्गणयेत् कथञ्चित्कालेन नैवाखिलशक्तिधाम्न: ॥ (भा. 11/4/2)

भगवान् स्वयं उद्धव से कहते हैं,

संख्यानं परमाणूनां कालेन क्रियते मया ।
न तथा मे विभूतिनां, सृजतोऽण्डानि कोटिशः।। (भा. 11/16/39)

मेरी विभूति कितनी है, उनकी कोई गिनती नहीं हो सकती। फिर भी भगवान् के प्रमुख अवतारों का निरूपण द्रुमिल नामक योगेश्वर ने किया और भगवान् नर-नारायण के अवतार का विशेष रूप से गायन किया। भगवान् नर-नारायण की दिव्य तपस्या से इन्द्र घबड़ा गये कि कहीं इन्द्रासन न छीन लें। तो उन्होंने कामदेव सहित अनेक अप्सराओं को भेजा, जिन्होंने नृत्यगान करके भगवान् नर-नारायण के तप को भंग करना चाहा। पर पूरा बल प्रयोग करके भी विचलित नहीं कर सके, तो नारायण भगवान् मुस्कुराते हुए बोले, तुम अपना सौंदर्य मुझे दिखाकर प्रभावित करना चाहते हो और अगले क्षण उन्होंने अपनी जंघा (उरु) से एक सुन्दर अप्सरा को प्रकट किया, जिसका नाम पड़ गया 'उर्वशी'। ऐसी दिव्य-सौंदर्य की खान थी उर्वशी, जिसे देखकर जितनी अप्सरायें वहाँ आई थीं, उन सबका सौंदर्य धूमिल हो गया। भगवान् नारायण बोले, जाओ! इसे भी अपने साथ में ले जाओ। तुम्हारे स्वर्ग की शोभा बढ़ेगी और हमारी ओर से इन्द्र को ये आशीर्वाद-पारितोषक देना। इन्द्र का सारा अहंकार टूट गया। ऐसे भगवान् नारायण ऋषि हैं, जो आज भी बद्रीनाथ में विराजमान हैं। नर-नारायण भगवान् के अतिरिक्त कौन हैं, जो माया से अपने को बचा पावे? इस प्रकार से भगवान् के अवतारों का निरुपण किया।

अब राजा का प्रश्न है कि जो अजितेन्द्रिय पुरुष है, उसका संसार में क्या हाल होता है? उसका कल्याण कैसे होता है? तो चमस नाम के योगेश्वर कहते हैं कि जिनकी इन्द्रियां वश में नहीं हैं, वह शास्त्रों की भाषा भी अपने ढंग से अर्थ लगाकर अपने उपभोग की सामग्री एकत्र करते हैं। जैसे शास्त्रों में,

लोके व्यवायामिषमद्यसेव नित्यास्तु जन्तोर्न हि तत्र चोदना ।
व्यवस्थितिस्तेषु विवाहयज्ञसुराग्रहैरासु निवृत्तिरिष्टा ॥ (भा. 11/5/11)

शास्त्रों ने नियम बनाया कि जो हिंसा के बहुत प्रेमी थे, वे अमुक् यज्ञ करके अमुक् पशु का बलिदान कर दो। **'पशून् आलभेत्'**। अब **'आलभन्'** शब्द का स्पर्श भी अर्थ है और हिंसा से भी अर्थ है। तो वस्तुतः शास्त्र का अभिप्राय तो केवल उस पशु के स्पर्श में है, परन्तु जो हिंसा प्रेमी थे, वह तो उसकी हिंसा में ही अर्थ लगायेङ्गे। जो मदिरा के सेवन करने वाले थे, उनके लिए भी एक नियम बनाया। तो जो सुरा के गन्ध ग्रहणमात्र से शास्त्रों का तात्पर्य था, वह उन्होंने पीने में अर्थ लगा दिया। दिव्य सन्तान उत्पन्न करके माता-पिता के ऋण से उऋण होने के लिए स्त्रीप्रसंग का विधान शास्त्रों में निरूपित किया, परन्तु कामियों ने उसी में अपनी प्रवृत्ति कर ली। तो इस प्रकार से,

यद् घ्राणभक्षो विहितः सुरायास्तथा पशोरालभनं न हिंसा ।
एवं व्यवायः प्रजया न रत्या इमं विशुद्धं न विदुः स्वधर्मम् ॥ (भा. 11/5/13)

वेदों के तात्पर्य को हर कोई प्राणी सहजता से समझ नहीं पाता और अपने ढंग से उसका अर्थ कर लेता है क्योंकि वेद तो परोक्षवादी हैं, उसके तात्पर्य को वेदज्ञ पुरुष ही समझ पाते हैं। जैसे एक बहुत बड़े उद्योगपति थे और उनका मन चावलों का गर्मागर्म मांड पीने का हो गया। संकोच में छुपकर पीते थे कि कोई सुनेगा, तो हमारा परिहास होगा कि इतने बड़े धनवान् और चावल का मांड पीते हैं। पर एक दिन जब अपने इष्ट मित्रों के साथ बैठे थे, उधर उनकी धर्मपत्नी ने चावलों का गर्मागर्म मांड निकालकर रख दिया। बेटे से कहा, बेटा

जाओ! पिताजी को बुला लाओ! कहीं मांड़ ठंडा न हो जाये!! अब बेटा पिता को बुलाने के लिये गया। जब इतने लोगों के बीच अपने पिता को देखा, तो घबड़ाया कि यदि कहूँगा पिताजी! चलो मांड़ पी लो, तो अभी थप्पड़ मारेंगें। और नहीं कहूँगा, तो मांड़ ठंडा हो जायेगा और माताजी कुपित हो जायेंगी। तो वह इस ढङ्ग से बोला कि पिताजी के अतिरिक्त दूसरा कोई समझ ही नहीं पाया।

बेटा बोला, पिताजी! धानुपुर से मांडूजी आये हैं। कठोता घाट पर बैठे हैं, जल्दी चलकर मिल लो, नहीं तो शीतलपुर को चले जायेंगें। अब वहाँ जितने बैठे थे, उन्होंने समझा धानुपुर नाम का कोई गांव होगा, मांडू नाम का कोई व्यक्ति ठाकुर साहब से मिलने आया होगा, नहीं मिलेंगें तो शीतलपुर नाम के किसी शहर को चला जायेगा, जल्दी में होगा। अब उसका जो वास्तविक तात्पर्य है कि धान से उत्पन्न चावलों का मांड़ निकालकर रखा है। जल्दी चलकर पी लो, नहीं तो ठंडा हो जायेगा। अब शब्द वही था, परन्तु उसका वास्तविक तात्पर्य अकेले ठाकुरसाहबजी समझे, बाकी सब उल्टा-सीधा अर्थ करते रहे। उसी प्रकार से वेद की भाषा को वेदज्ञपुरुष ही भलीभांति समझ पाते हैं, अन्यथा लोग अर्थ का अनर्थ भी कर देते हैं।

अब महाराज जनकजी ने प्रश्न किया कि भगवान् का प्रत्येक युगों में जो अवतार होता है, उसका स्वरूप बतलाइये। करभाजन नाम के योगेश्वर कहते हैं, राजन्! भगवान् का प्रत्येक युग में अवतार होता है। सतयुग में प्रभु के स्वरूप को बतलाते हुए कहते हैं,

कृते शुक्लश्चतुर्बाहुर्जटिलो वल्कलाम्बरः

भगवान् का श्वेत शुभ्र स्वरूप है, चार भुजाऐं हैं, वल्कल, आदि धारण करते हैं, दण्ड-कमण्डलु, आदि ब्रह्मचारी का भगवान् का स्वरूप है। प्रायः सतयुग में सभी प्राणी सत्त्व में स्थित होते हैं। सभी प्राणी बड़े शान्त, निर्भय, सुहृदयी और समदृष्टि होते हैं। सभी बड़े तपस्वी एवं संयमपूर्वक सन्तुष्ट होते हैं - ये सतयुग का स्वरूप है। त्रेतायुग में भगवान् का रक्तवर्ण है। इसमें सभी प्राणी वेद-शास्त्रोक्त यज्ञों के द्वारा भगवान् को प्रसन्न करते हैं। इस युग में भगवान् विष्णु के यज्ञ पृश्निगर्भ, उरूक्रम, आदि अवतार होते हैं। द्वापर में भगवान् पीताम्बरधारी श्यामवर्ण के भगवान् श्रीकृष्ण का स्वरूप है, जहाँ पर सभी प्राणी भगवान् की आराधना वासुदेवरूप में करते हैं।

नमस्ते वासुदेवाय नमः सङ्कर्षणाय च ।
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय तुभ्यं भगवते नमः ॥ (भा. 11/5/29)

ये भगवान् का चतुर्व्यूह है। भगवान् वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध। परन्तु जो कलियुग में भगवान् का स्वरूप है, इसमें संकीर्तन का ही प्राधान्य है। संकीर्तन के द्वारा ही कलिकाल में भगवत्प्राप्ति सुगमता से जीवों को होती है और भगवान् राम और कृष्ण का ही आराधन किया जाता है। भगवान् श्रीकृष्ण का स्वरूप कैसा है? उनके चरणारविन्द कैसे हैं?

ध्येयं सदा परिभवघ्नमभीष्टदोहं तीर्थास्पदं शिवविरिञ्चिनुतं शरण्यम् ।
भृत्यार्तिहं प्रणतपाल भवाब्धिपोतं वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ॥
(भा. 11/5/33)

भगवान् के चरण ही ध्यान योग्य हैं, उनके ध्यान करने से क्या होगा? संसार का सारा रोग मिट जायेगा। भगवान् के चरण संसार का ताप नष्ट करने वाले हैं और तुम जो चाहोगे, सारे मनोरथों को पूर्ण करने वाले हैं।

भगवान् के श्रीचरणों में सारी कामनाऐं पूर्ण हो जाती हैं। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष - चारों पुरुषार्थ जीव को प्राप्त हो जाते हैं। गोपियों ने भी कहा है,

प्रणतकामदं पद्मजार्चितं धरणिमण्डनं ध्येयमापदि ।
चरणपङ्कजं शन्तमं च ते रमण नः स्तनेष्वर्पयाधिहन् ॥ (भा.मा. 10/31/13)

हे आधिहन्! हे मन की पीड़ा को दूर करने वाले! भगवान् के चरण कैसे हैं - '**प्रणतकामदम् - प्रणतानां कामं ददाति**' प्रणतजनों की सारी कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं। '**अभीष्टदोहं**' अथवा '**प्रणतानां कामं द्यति खण्डयति**' जो भगवान् के चरणों में प्रणत हो जाते हैं, उनकी सारी कामनाऐं ही समाप्त हो जाती हैं। वह निष्काम ही हो जाता है। तो '**प्रणतकामदं**' भगवान् के चरणों में तो सारी कामनाऐं पूर्ण होती हैं, '**पद्मजार्चितं**' पद्मा के द्वारा अर्चित हैं। लक्ष्मी जिनके चरणों की वन्दना करती हैं, उन चरणों की प्राप्ति में लक्ष्मी की क्या कमी पड़ेगी? तो कामना भी पूर्ण और अर्थ की भी पूर्ति। '**धरणिमण्डनं**' धरती पर धर्म की ध्वजा लहराने के लिये भगवान् के चरणों का अवतरण हुआ है। तो जिनके चरण ही धर्म की ध्वजा लहराने के लिए धरणी पर प्रकट हुए हैं, उन चरणों में धर्म की भी प्राप्ति होगी और इन चरणों में ही जीव को परमशान्ति अर्थात् मोक्षपद की प्राप्ति होती है। तो सब पुरुषार्थ भगवान् के चरणों में निहित हैं।

'**तीर्थास्पदं**' - तीर्थों को तीर्थत्व प्रदान करने वाले शिव और ब्रह्मा के द्वारा भी जिन चरणों की उपासना की जाती है और जो सच्चे शरण्य हैं, जिनकी शरण में जाने से ही जीवन की शरणागति सार्थक होती है। शरणागति भी उसकी लेना चाहिए, जो '**शरण्य**' हो। विभीषण की तो शरणागति सार्थक हुई क्योंकि रामजी शरण्य हैं। परन्तु रामजी ने समुद्र की शरण ली, तो शरणागति व्यर्थ गई। '**समुद्रशरणं गतः**' रामजी समुद्र की शरण में बैठे रहे, समुद्र ने सुना ही नहीं और जब कोप दिखाया, तो गिड़गिड़ाकर सामने आ गया। तो शरण्य की शरणागति सार्थक होती है। जब चाहे जिसकी शरणागति लेने लगोगे, तो शरणागति भी व्यर्थ हो जायेगी। '**भृत्यार्तिहं**' - भक्त की सारी पीड़ा का हरण करने वाले हैं। '**प्रणतपाल**' प्रणतजनों का पालन करने वाले हैं, '**भवाब्धिपोतं**'। संसार-सागर को पार लगाने के लिए जहाज के समान हैं। जो इस जहाज में बैठ गया, वह भव सागर पार हो गया। ऐसे भगवान् के पावन चरणकमलों को हम बारम्बार प्रणाम करते हैं।

त्यक्त्वा सुदुस्त्यजसुरेप्सितराज्यलक्ष्मीं धर्मिष्ठ आर्यवचसा यदगादरण्यम् ।
मायामृगं दयितयेप्सितमन्वधावद् वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ॥
(भा. 11/5/34)

श्रीराघवेन्द्र के चरणारविन्द कैसे हैं? '**सुदुस्त्यजसुरेप्सितराज्यलक्ष्मीं त्यक्त्वा**' अयोध्या का ऐश्वर्य साधारण नहीं है। बड़े-बड़े देवता भी इस अवध के साम्राज्य को पाने की अभिलाषा करते हैं। इन्द्र का ऐश्वर्य भी जिनके सामने तुच्छ हो जाता है, ऐसा अद्भुत ऐश्वर्य-राज्यलक्ष्मी जिसे त्यागना बहुत ही कठिन है। हमलोग तो एक गज़ भूमि के लिए भाई से झगड़ा प्रारम्भ कर देते हैं कि उन्होंने ज्यादा ले लिया। और जिसे त्यागना बहुत ही कठिन है, वह श्रीराघवेन्द्र ने एक पल में त्याग दिया और जंगल की ओर चल पड़े। धर्म का पालन करने के लिए माता-पिता के वचन का आदर करने के लिए सुरेप्सित-राज्यलक्ष्मी का भी परित्याग कर दिया। भगवान् राम का तो अवतार ही धर्म की स्थापना के लिए हुआ है। '**रामो विग्रहवान् धर्मः**' श्रीरामजी महाराज तो साक्षात् धर्म के मूर्तिमान् विग्रह हैं।

अयोध्या के दिव्य-ऐश्वर्य को तो त्याग दिया और सोने के मायामृग के पीछे वन में भागे? इतना प्रलोभन आ गया क्या? नहीं! प्रलोभन की बात नहीं थी। '**दयितयेप्सित**' - किशोरीजी को वह बहुत अच्छा लगा था और किशोरीजी ने उसे पाने की कामना प्रकट कर दी। तो प्रभु ने विचार किया कि जानकीजी ने पहली बार कुछ माँगा है। जो मेरे लिए अपना परिवार त्याग करके यहाँ आई, उसके बाद अपनी ससुराल त्याग करके वन में आई; तो जिन्होंने इतना बड़ा त्याग मेरे लिए किया, उन्होंने इस मृग को माँगा है तो उनका मनोरथ अवश्य पूर्ण करना चाहिए। तो जानते हुए भी उस मायामृग के पीछे भागे। किशोरीजी का मनोरथ पूर्ण करने के लिए '**मायामृगं दयितयेप्सितमन्वधावद्**' प्रभु ने अनुगमन किया। ऐसे श्रीराघवेन्द्र के पावन चरणकमलों को हम बारम्बार प्रणाम करते हैं। किशोरीजी ने जो मृग माँगा, वह तो नकली निकला, तो फिर भगवान् ने शाखामृग वानर भेजा। '**स्वर्णशैलाभदेहं**' - स्वर्ण के समान जिनकी आभा है, ऐसे श्रीहनुमन्तलालजी शाखामृग के रूप में रामजी महाराज के दूत बनकर जानकी मैया के यहाँ पहुँचे। तो इस प्रकार से कलियुग में प्राणियों के लिए रामजी और श्यामजी की आराधना ही सार्थक है।

यत्र सङ्कीर्तनेनैव सर्वः स्वार्थोऽभिलभ्यते

अन्य युगों में तो जब तक साधना न करो, यज्ञ न करो; तब तक विश्रांति नहीं मिलती। परन्तु कलियुग में नामसंकीर्तन से ही प्राणियों का कल्याण हो जाता। इससे सरल-सुगम और कोई दूसरा उपाय हो ही नहीं सकता। '**हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्**' संतों ने त्रिवाचा भर दिया कि हरिनाम का आश्रय लो, इसी में तुम्हारा कल्याण है। '**कलौनास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा**' और कोई दूसरी गति है ही नहीं। अरे! अन्य युगों के प्राणी तो कलियुग में आने को लालायित रहते हैं, हे प्रभु! कलियुग में जन्म लिया होता, तो इतना सब कठिन साधन नहीं करना पड़ता।

कृतादिषु प्रजा राजन् कलाविच्छन्ति सम्भवम् ।
कलौ खलु भविष्यन्ति नारायणपरायणाः ॥ (भा. 11/5/38)

कलियुग में भगवन्नाम का आश्रय लेकर ही जीव कल्याण को प्राप्त करता है। इसलिए अन्य युगों की प्रजा कलियुग में जन्म लेने के लिए तरस्नी है। जिसने भगवान् सर्वात्मा के चरणों में अपने को शरणागत कर दिया, वह समस्त ऋणों से उऋण हो गया।

देवर्षिभूताप्तनृणां पितृणां न किङ्करो नायमृणी च राजन् ।
सर्वात्मना यः शरणं शरण्यं गतो मुकुन्दं परिहृत्य कर्तम् ॥ (भा. 11/5/41)

भगवान् के चरणों में जो शरणापन्न हो गया, वह देवऋण-पितृऋण-ऋषिऋण, आदि समस्त ऋणों से उऋण हो गया। उसके ऊपर कोई ऋण शेष नहीं रहते। इसलिए भगवत्प्रपत्ति ही सर्वोपरि है। नारदजी ने इस प्रकार से नवयोगेश्वरों के माध्यम से श्रीवसुदेवजी को दिव्यज्ञान प्रदान किया और अन्त में बोले, वसुदेवजी! आपकी कीर्ति से आज सारा जगत् गूंज रहा है। '**युवयोः खलु दम्पत्योर्यशसा पूरितं जगत्**' आप कितने भाग्यशाली हैं, जो साक्षात् '**पुत्रतामगमद् यद् वां भगवानीश्वरो हरिः**' भगवान् श्रीहरि तुम्हारे पुत्र बनकर प्रकट हुए हैं। तुम कितने भाग्यशाली हो। परन्तु,

मापत्यबुद्धिमकृथाः कृष्णे सर्वात्मनीश्वरे ।
मायामनुष्यभावेन गूढैश्वर्ये परेऽव्यये ॥ (भा. 11/5/49)

वसुदेवजी! अब उन श्रीकृष्ण को तुम अपना बच्चा ही मत समझो। वह साक्षात् सर्वात्मा भगवान् श्रीहरि हैं, ये अच्छी तरह जान लो। माया के द्वारा मनुष्य बनकर लीला कर रहे हैं। इसलिए उनके सर्वात्मास्वरूप को जानकर उनसे अब हृदय से सच्ची प्रीति करो। उन्हें सर्वान्तर्यामी नारायण के रूप में अब भलीभांति जान लो। ऐसा उपदेश देकर नारदजी महाराज ने प्रस्थान किया।

अब भगवान् के पास देववृन्द प्रकट हुए और दिव्यस्तुति करके बोले, प्रभु! अब आपकी लीला का जो उद्देश्य था, वह परिपूर्ण हो चुका है। सवा सौ वर्ष के लिए इस धराधाम पर आपने आकर समस्त असुरों का संहार करके भार दूर किया।

यदुवंशेऽवतीर्णस्य भवतः पुरुषोत्तम ।
शरच्छतं व्यतीयाय पञ्चविंशाधिकं प्रभो ॥ (भा. 11/6/25)

एक सौ पच्चीस वर्ष तक आपने इस धरा का भार दूर कर दिया। अब कृपा करके अपने स्वधाम को प्रस्थान करें। देवता भी लालायित हैं, ताकि हमारे लोक से होते हुए जब प्रभु जावें, तो हम भी उनकी सेवा करें, कुछ स्वागत करें। जैसे कोई बड़े अधिकारी जहाँ से निकल जाते हैं, तो जिन नगरों से निकल जाते हैं, नगरवासी भी चाहते हैं कि कुछ हम भी उनकी सेवा करें। इसी प्रकार स्वर्ग में ब्रह्मा, आदि देवता सब चाहते हैं। प्रभु को स्मरण दिलाने के लिए सभी देववृन्द आये। अब विप्रशाप से यदुवंश दग्धप्राय: हो गया है - ये प्रभु जानते हैं। अपशकुन भी होने लगे हैं।

श्रीकृष्ण उद्धव संवाद—एक दिन भगवान् ने कहा, देखो भाई! हमने निर्णय लिया है कि अब हम प्रभासक्षेत्र में जाकर कुछ भजन-साधन करेंगे, दानपुण्य करेंगे; ताकि इन अनिष्टों की निवृत्ति हो - ऐसा भगवान् ने सब द्वारिकावासियों से कहा। परन्तु भगवान् के स्वधाम जाने के अभिप्राय को उद्धवजी महाराज जान गये। एकान्त में आकर प्रभु के चरणकमलों में प्रणाम किया और कहा, हे देवदेवेश! हे योगेश्वर! मैं आपके अभिप्राय को जान रहा हूँ। आप विप्रशाप को शमन करने में भी समर्थ हैं। परन्तु ये सब आपकी इच्छा से ही हो रहा है - ये भी मैं जान गया। पर ऐसा न हो कि आप मुझे छोड़कर अकेले ही स्वधाम चले जायें। मैं आधे क्षण को भी आपके श्रीचरणों से पृथक नहीं रह पाऊँगा।

नाहं तवाङ्घ्रिकमलं क्षणार्धमपि केशव ।
त्यक्तुं समुत्सहे नाथ स्वधाम नय मामपि ॥ (भा. 11/6/43)

यदि आपको स्वधाम जाना ही है, तो मुझे भी साथ में लेकर जाइये। मैं आपके बिना एक पल भी नहीं रहूँगा। मेरा तो सारा समय आपकी सन्निधि में ही सम्पन्न हुआ है। सबसे अधिक तो मुझे विछोह होगा। मैं आपके बिना कैसे रहूँगा? भगवान् बोले, नहीं मित्र! मेरा कुल विप्रशाप से नष्टप्राय: हो चुका है और मेरे जाने के बाद सारी द्वारिकापुरी सातवें दिन समुद्र में विलुप्त हो जायेगी। मैं तुमसे यही चाहता हूँ कि तुम मेरे जाने के बाद इस धराधाम पर मत रहना, क्योंकि अधर्म में रुचि रखने वाले सभी कलियुग के प्राणी इसमें उत्पन्न हो जायेङ्गे। ऐसी स्थिति में ये धरती तुम्हारे रहने योग्य नहीं रह जायेगी।

त्वं तु सर्वं परित्यज्य स्नेहं स्वजनबन्धुषु ।
मय्यावेश्य मनः सम्यक् समदृग् विचरस्व गाम् ॥ (भा. 11/7/6)

तुम तो सब कुछ त्याग करके, अपने सगे सम्बन्धियों से भी मन को असङ्ग करके, मुझमें अपने मन को

समर्पित करके, समद्रष्टा बने इस धरती पर विचरण करो। उद्धवजी ने कहा, प्रभु! हे योगेश्वर! हे योगात्मन्! संन्यास का लक्षण क्या है? मैं सबसे विरक्त रह करके कैसे रहूँगा? संन्यास का स्वरूप क्या है? वह तो मुझे बताइये। तब भगवान् कहते हैं, उद्धव! ध्यान से सुनो!! इस विषय में मैं तुम्हें इतिहास का एक बड़ा सुन्दर उपाख्यान सुनाता हूँ।

एक बार हमारे पूर्वज महाराज यदु वन में विचरण कर रहे थे कि अचानक उन्होंने देखा कि एक हृष्ट-पुष्ट महात्मा मार्ग में पड़ा हुआ है। तब यदु महाराज आये और उस महात्मा को प्रणाम करते हुए कहा, महाराज! आप बिल्कुल बालकों की तरह निर्विकार होकर इस वन में बड़े आनन्द के साथ लेटे हुए हैं। बिना खाये-पिये शरीर स्वस्थ होता नहीं। आपको यहाँ खाने-पीने की कोई अच्छी वस्तुऐं तो मिलती नहीं होङ्गी। फिर आप इतने स्वस्थ और इतने प्रसन्न कैसे हैं? अरे! हम राजा-महाराजा महलों में रहते हैं, अनेक प्रकार की उपभोग सामग्री हमारे पास है। फिर भी हम इतने प्रसन्न, स्वस्थ्य और इतने निश्चितभाव से कभी नहीं रह सकते, जितना कि आप घनघोर जङ्गल के बीच में पड़े हुए आनन्दित हो रहे हैं। ये आनन्द आपको कहाँ से प्राप्त हुआ? कैसे प्राप्त हुआ? आप यदि मुझे बताने योग्य समझें, तो अवश्य बताइये! जैसे गर्मी में संतप्त हाथी जब गङ्गाजी की शीतल लहरों में डुबकी मारता है, तो उसकी सारी गर्मी उड़ जाती है। पता ही नहीं चलता! उसी प्रकार से,

जनेषु दह्यमानेषु कामलोभदवाग्निना ।
न तप्यसेऽग्निना मुक्तो गङ्गाम्भःस्थ इव द्विपः ॥ (भा. 11/7/29)

श्रीदत्तात्रेय जी के 24 गुरु—संसार का तो प्रत्येक प्राणी काम, क्रोध, लोभ की दावाग्नि में संतप्त है और आप गङ्गा में डूबे हुए हाथी की तरह एकदम परमानन्द का लाभ ले रहे हैं। ये आनन्द आपको कैसे प्राप्त हुआ महाराज? तब वह ब्राह्मण उठकर बैठा और बोला, महाराज यदु! हमें दत्तात्रेय के नाम से लोग जानते हैं। हमने अपने जीवन को जीने का ढंग सीखा है और उसके लिए हमने प्रमुखरूप से चौबीस गुरु बनाये हैं। मेरे चौबीस गुरुओं से मैंने संन्यासधर्म सीखा और मुझे जीना आ गया, मैंने अपना आनन्द अपने भीतर ही पा लिया। यदु ने पूछा, महाराज! चौबीस गुरु! कौन-कौन से हैं? दत्तात्रेयजी बोले,

पृथिवी वायुराकाशमापोऽग्निश्चन्द्रमा रविः ।
कपोतोऽजगरः सिन्धुः पतङ्गो मधुकृद् गजः ॥
मधुहा हरिणो मीनः पिङ्गला कुररोऽर्भकः ।
कुमारी शरकृत् सर्प ऊर्णनाभिः सुपेशकृत् ॥ (भा. 11/7/33-34)

कुछ लोग कहते हैं, दो-चार गुरु हम भी बना लें, तो दत्तात्रेयमुनि ने ये शिक्षागुरु बनाये हैं। शरणागति और सद्गुरुत्व तो एक में ही होना चाहिए। दीक्षा तो एक से ही लो, पर शिक्षा अनेक से ले सकते हैं। जिसका विवेक जगा है, जिसके विवेक की आँख खुली है; वह संसार की हर वस्तु से कुछ-न-कुछ सीख सकता है। संसार की ऐसी कोई वस्तु नहीं, जिससे कुछ न कुछ सीखा ना जा सके।

जड़ चेतन गुण दोषमय बिस्व कीन्ह करतार ।
संत हंस गुन गहहिं पय परिहरि वारि विकार ॥ (रामचरितमानस 1/6)

हंस दुग्ध पी लेता है और पानी छोड़ देता है। ऐसे ही सन्त गुणग्राही होते हैं, सबसे कुछ-न-कुछ सीखं लेते

हैं। पृथ्वी को ही गुरु बनाकर सीखा है कि पृथ्वी कितनी सहनशील होती है। हम गड्ढे भी कर रहे हैं, तमाम खुदाई कर रहे हैं; वह बेचारी सब कष्ट सहन कर रही है, कुछ नहीं बोलती। हमारा शरीर भी तो पृथ्वी का ही भाग है। मच्छर जब हमारे शरीर पर बैठता है, तो ये समझकर नहीं बैठता कि मेरे बैठने से तुम्हें कष्ट हो रहा है। वह भी इसे पृथ्वी का ही अंश समझता है। जैसे हम पृथ्वी पर बैठे हैं, वह भी हमारे शरीर को पृथ्वी मानकर ही बैठता है। और जब उसे प्यास लगती है, तो डंक भीतर डालकर पानी पीने लगता है। हमें भी जब प्यास की अनुभूति होती है, तो कुआं खोद लेते हैं, बोरिङ्ग करा लेते हैं। तो पृथ्वी सब सहन कर लेती है और हम लोग तो एक क्षण में ही थप्पड़ मारकर उस मच्छर की छुट्टी कर देते हैं। तो संत को पृथ्वी के समान सहिष्णु होना चाहिए। पृथ्वी का नाम है क्षिति, इसका नाम है क्षमा। इसके समान क्षमावान् कौन होगा? पृथ्वी का ही अंश ये वृक्ष को देख लीजिये! सारा जीवन इनका परमार्थ के लिए है। कोई पत्थर भी मारे, तो बदले में ये वृक्ष फल देने वाले हैं। इतने सहनशील हैं कि कोई शरण में आ जाये, तो उसे छाया देते हैं, उसे फल देते हैं; उसका सम्मान करते हैं।

एक बार एक व्यक्ति को बड़ी तेज भूख लग रही थी। उसे फलदार वृक्ष दिखा, तो उसने सोचा कि चलो! पत्थर मारकर दो-चार फल तोड़कर खा लूं! बच्चे भी भूखे थे। तो उसने जोड़ से पत्थर मारा। वृक्ष को तो वह पत्थर लगा नहीं, राजा साहब निकल रहे थे, उनके सिर पर जाकर टकराया। तुरन्त सेवकों ने ललकारा, अरे! किसी ने महाराज को पत्थर मारा? दौड़कर उसे पकड़ लिया और बंदी बनाकर राजा के सामने प्रस्तुत किया। राजा ने कहा, क्यों भाई! तुमने हमें पत्थर क्यों मारा? हमने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था? वह बेचारा रोते हुए बोला, सरकार! हमने आपको पत्थर नहीं मारा! मैंने तो इस वृक्ष को पत्थर मारा था! इसमें पत्थर लगता, तो मुझे फल खाने को मिलते। पर विडम्बना देखो कि तीन दिन से भूखा हूँ। खाने को कुछ नहीं मिला, सो वृक्ष पर पत्थर मारा और पत्थर वृक्ष को न लगकर आपको लग गया; सो बन्दी बन गया। राजा ने तुरन्त विचार किया एक जड़ वृक्ष में यदि ये पत्थर लगता तो वह फल देता और मुझमें लग गया तो मैंने इसे बंदी बना लिया? अरे! हमसे अच्छे तो ये वृक्ष हैं, जो पत्थर मारने वाले को भी फल देते हैं। राजा बड़े प्रसन्न हुए और इस घटना से उन्हें बड़ा ज्ञान प्राप्त हुआ। तो तात्पर्य यह है कि पृथ्वी के समान सहनशील कौन है? (भगवान् दत्तात्रेय कहते हैं -) वायु को भी गुरु बनाया और उससे सीखा कि दुर्गन्ध हो या सुगन्ध - वायु समरूप से विचरण करती है। सुगन्ध को भी नहीं पकड़ती और दुर्गन्ध को भी नहीं पकड़ती। दोनों से असङ्ग रहकर विहार करती है। दुर्गन्ध सुगन्ध थोड़ी दूर तक वायु के साथ जायेंगी, इसके बाद छूट जायेंगी। संत को भी वायुवत् असङ्ग होकर विचरण करना चाहिए। किसी में कोई आसक्ति न रखे। भगवान् दत्तात्रेय कहते हैं - राजन आकाश को गुरु बनाकर हमने सीखा कि आकाश असङ्ग रहता है, उसी प्रकार आत्मा भी आकाशवत् असङ्ग ही है।

जल को गुरु बनाकर सीखा कि जैसे जल बड़ा सरस होता है, स्वच्छ होता है, ये उसका स्वभाविक गुण है। उसी प्रकार संत को भी सरस स्वच्छ और पवित्र होना चाहिए। अग्नि को गुरु बनाकर सीखा कि जैसे ईन्धन के भेद से अग्नि कहीं थोड़ी, कहीं ज्यादा टेढ़ी-मेढ़ी नजर आती है; उसी प्रकार से शरीरगत भेद से आत्मा में नानात्व दृष्टिगोचर होती है। वस्तुतः आत्मा छोटी-बड़ी नहीं होती। चन्द्रमा को गुरु बनाकर सीखा कि चन्द्रमा की कलायें घटती और बढ़ती रहती हैं। हमलोग कहते हैं, देखो! आज अष्टमी है, इसलिए आधा

चन्द्रमा है। देखो आज पूर्णिमा है, इसलिए पूर्ण चन्द्रमा है। अब चन्द्रमा आधे अथवा पूरे नहीं होते, ये तो उनकी कलाओं में घटना-बढना होता है। उसी प्रकार से हम जो शरीर में व्यवहार करते हैं, ये बच्चा है, ये बुजुर्ग है, ये युवक है - ये सब व्यवहार शरीरगत हैं, आत्मा में ये विकार नहीं होते। आत्मा बच्चा-बुजुर्ग नहीं होती।

सूर्य को गुरु बनाकर सीखा कि ग्रीष्मकाल में सूर्य अपनी दिव्यरश्मियों से रस को ग्रहण करता है **'सविता गोभिः रसं भुक्ते'** सूर्य अपनी रश्मियों के द्वारा पृथ्वी के रस को स्वात्म-तादात्म्यापन्न करता है। इसी को कहते हैं भोग। तो जैसे सूर्य रस ग्रहण करता है, बरसात में उसे वनस्पतियों में बिखेर देता है; उसी प्रकार संत को भी चाहिए कि किसी से कुछ मिल गया, तो ले लिया और किसी ने कुछ माँगा, तो दे दिया। सूर्य की भांति रहे। कबूतर को भी गुरु बनाया और उससे सीखा कि मोह ही बन्धन का मूल कारण है। एक बार कबूतर-कबूतरी वन में रहते थे। पर एक दिन वह दाना चुगने गये और इतने में बहेलिया ने जाल फैला दिया, तो उसके छोटे-छोटे बच्चे जाल में फंस गये। कबूतर-कबूतरी जब लौटे और अपने बच्चों को जाल में फंसा देखा, तो कबूतरी रोने लगी, हाय हाय! मैं अपने बच्चों के बिना कैसे रहूँगी! वह भी जाल में कूद पड़ी। कबूतर ने कहा, जब बच्चे और पत्नी नहीं रहे, तो मैं भी रहकर क्या करूँगा। वह भी कूद पड़ा। बहेलिया का काम बन गया, वह सबको पकड़कर ले गया। मैंने उसे गुरु बनाकर सीखा कि हम परमस्वतंत्र होकर भी मोह के कारण जान-बूझकर बन्धन को स्वीकार करते हैं। पुत्र, कुल, इत्यादि की आसक्ति में बंध जाते हैं। हमने अजगर को गुरु बनाकर सीखा,

अजगर करे न चाकरी पंछी करे न काम ।
दास मलूका कह गये सबके दाता राम ॥

अजगर सबसे हृष्ट-पुष्ट विशाल देहधारी होता है और खाने के लिए वह फिर भी कोई चिन्ता नहीं करता। भूख लगी सो श्वास खींचा और जो मुँह में आ गया, सो पा लिया। अज अर्थात बकरा और बकरे को भी जो ज्यों-का-त्यों निगल जाये, वह अजगर है। संत को भी चाहिए कि कभी खूब खीर मालपुआ मिल जाये, तो चकाचक प्रेम से पावे और कभी दो-चार दिन तक न मिले, तो घबड़ाये भी नहीं। प्रारब्धानुसार पड़ा रहे और प्रारब्धानुसार देहयात्रा के लिये कुछ-न-कुछ तो मिलेगा, सो पाता रहे और अजगर की तरह प्रसन्न मस्त रहे। हमने सागर को भी गुरु बनाया। जितनी नदियां हैं, सबका जल सागर में समाविष्ट हो रहा है पर सागर की अपनी एक मर्यादा है। वह अपनी मर्यादा में ही रहता है। और दूसरी बात - सागर का ओर-छोर पाना, थाह लेना बड़ा कठिन होता है। सागर में अनन्त-रत्न होते हैं। सागर के जैसे-ही संत को भी परम धीर-गंभीर और मर्यादित रहना चाहिए। उसके अंदर भी अनन्त गुणों के रत्न हैं। पात्रतानुसार किसी-किसी को वे प्राप्त भी हो जाते हैं।

पतंगे को गुरु बनाया। एक दीपक जल रहा था। अनेक पतंगे आकर उसमें गिर रहे थे, जलकर भस्म होते जा रहे थे। मैंने उसे गुरु बनाकर सीखा कि रूप के प्रति सावधान रहो। संत यदि रूप के प्रति आकृष्ट हुआ, तो पतंगे की तरह समाप्त हो जायेगा, जल कर भस्म हो जायेगा। मैंने मधुमक्खी को गुरु बनाया। मधुमक्खियां पूरा जीवन कितना कण-कण बीन-बीनकर शहद इकट्ठा करती हैं और जब बहुत सारा शहद उनके पास हो जाता है, तो कोई आता है और सारा शहद तोड़कर ले जाता है और अनेक मक्खियां मर जाती हैं। उन्हें गुरु

बनाकर हमने सीखा कि संत को संग्रह नहीं करना चाहिए, अन्यथा मधुमक्खी की तरह विडम्बना होगी। हमने एक हाथी को गुरु बनाकर सीखा कि हाथी पकड़ने वालों ने एक बहुत बड़ा गड्ढा जंगल में कर दिया और काठ की हथनी उस गड्ढे के पास में खड़ी कर दी। हाथी ने हथनी को देखा, कामांध होकर दौड़ा और गड्ढे में गिर पड़ा। बहुत दिनों तक खाने-पीने को कुछ नहीं मिला। फिर अंकुश मार-मारकर वन के उस गजेन्द्र को घर-घर का भिखारी बना दिया। उस हाथी को गुरु बनाकर सीखा कि

पदापि युवतीं भिक्षुर्न स्पृशेद् दारवीमपि

संत को काष्ठ की स्त्री का भी स्पर्श नहीं करना चाहिए, अन्यथा स्पर्शसुख की कामना उसके भवगर्त में गिरने का कारण बन सकती है। मैंने एक मधुकर को भी गुरु बनाया। भंवरा थोड़ा-थोड़ा कण हर पुष्प से लेता है। एक ही पुष्प पर बैठकर पराग नहीं लेता। संत को भी चाहिए माधुकरी वृत्ति से निर्वाह करे। दो मुट्ठी आटा यहाँ से ले लिया, दो-चार रोटी वहाँ से लीं अर्थात थोड़ा-थोड़ा लेकर अपना पेट भर ले, ताकि किसी के ऊपर भार न पड़े। और महात्मा भी प्रसन्न रहे। हमने एक मृगी को गुरु बनाया। एक ने इतनी प्यारी वंशी बजाई कि वह मृगी मुग्ध हो गई। कान खड़े करके जब मृगी वंशी की ध्वनि सुनने लगी, तो उसी वंशी वाले ने बाण मारकर उसे घायल कर दिया। मैंने उसे गुरु बनाकर सीखा कि **'ग्राम्य गीतं न श्रृणुयाद्'** श्रृंगारिक गीत संत श्रवण न करे, अन्यथा इस संसार में वह कामबाण से घायल हो सकता है। यदि संगीत में रुचि हो, तो सूरदासजी, तुलसीदासजी, जैसे दिव्यसंतों के दिव्य-सरस-सुमधुर-भावपूर्ण भक्तिमय गीतों का ही श्रवण करना चाहिए।

हमने एक पिङ्गला नाम की वेश्या को भी गुरु बनाया। अनेक श्रृंगारों से विविध भांति सुसज्जित होकर वह पिङ्गला अनेकों लोगों की राह देखती रही, पर कोई उसके पास नहीं आया, तो वह बड़ी दुःखी हुई। अन्त में उसके मन में बड़ा वैराग्य हो गया कि इन संसार के मिट्टी के पुतलों की सारा जीवन प्रतीक्षा करती रही। यदि इतनी प्रतीक्षा प्रभु की की होती, तो आज तक तो भगवान् प्रसन्न होकर मेरे घर आ जाते। इन हाड़मांस के पुतलों से मैंने प्रेम किया और सारा जीवन ऐसे ही बर्बाद कर दिया। उसने जब किसी के आने की आशा नहीं की, सबसे निराश होकर अंदर गई, तो बड़े आनन्द के साथ निश्चिंत होकर सो गई। मैंने तुरन्त उसे गुरु बनाकर सीखा,

आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम्

संसार के लोगों से अधिक आशा करना ही दुःख का कारण है। किसी से आशा मत करो, किसी से अपेक्षा मत रखो, तो यही जीवन का सच्चा सुख है। कोई दे दे तो अच्छा, अपेक्षा मत करो कि इससे कुछ मिलेगा। आशा करोगे तो फिर वह पूरी नहीं हुई, तो निश्चितरूप से मन को कष्ट पहुँचेगा। आशा ही दुःख का कारण है। हमने एक कुरर पक्षी को गुरु बनाया।

एक कुरर पक्षी मांसपिण्ड मुँह में लिये जा रहा था। उसके मुख में जब मांसपिण्ड देखा तो अनेक पक्षी टूट पड़े। उसकी ऐसी अवस्था हुई कि बेचारा घायल हो गया और अचानक उसके मुँह से जब मांसपिण्ड छूट गया और धरती में गिरा, तो सारे पक्षी उस मांसपिण्ड के साथ ही चले गये और वह छीना-झपटी से मुक्त हो गया। मैंने उसे गुरु बनाकर सीखा कि अधिक संग्रह यदि आपके पास हो, तो किसी को तुरन्त सौंप दो। क्योंकि यदि संग्रह तुम्हारे पास रहा, तो संसार के लोग चारों तरफ से चीटियों की तरह तुम्हारा पीछा नहीं छोड़ने

वाले। सभी अपेक्षाएं करेंगें कि शायद हमें कुछ मिल जाये और किसी को दे दोगे, तो आप स्वतन्त्र व निश्चिन्त होकर प्रेम से भजन करो। प्रपंचों से मुक्ति मिल जायेगी।

एक छोटे बच्चे को भी गुरु बनाया। छोटे-से बच्चे को किसी ने डांट दिया, थप्पड़ दिखाया तो रोने लगा और उसी ने जब बड़े प्यार से पुचकारकर गोदी में बिठाकर लड्डू खिला दिया, तो सब अपमान भूल गया, खुश हो गया। संत का स्वभाव भी बालवत् होना चाहिए। किसी ने कुछ उल्टा-सीधा बोल दिया, तो द्वेष की गांठ न लगावे। बालवत् मान-अपमान पर ध्यान न दे।

हमने एक कन्या को भी गुरु बनाया। एक कन्या की सगाई हो गई। उसके ससुर उसे देखने आये। अब माता-पिता घर में थे नहीं, बेटी घर में अकेली थी। तो ससुर बोले, बेटी! कोई बात नहीं, हम सम्बन्ध पक्का करने आये थे, तो हमनें सम्बन्ध पक्का कर लिया। ये चूड़ियाँ पहिन लो और हमारे लिए बढ़िया भात बनाओ। हम चावल बहुत पसन्द करते हैं। अब उस कन्या ने पूरा घर छान लिया, पर चावल नहीं मिले। अब घबड़ा गई कि कहीं घर की बदनामी न हो जाये, ये क्या सोचेंगें कि इनके घर में चावल तक नहीं है? बहुत ढूंढने पर थोड़ी-सी धान उसे प्राप्त हो गई। सोचा जल्दी से धान कूटकर इसी से चावल निकाल लूं। तो उसने धान कूटना प्रारम्भ किया। चूड़ियाँ बजने लगीं, अरे! वह सुनेंगें तो क्या सोचेंगे, लो धान कूटकर चावल निकाले जा रहे हैं? चूड़ियों का शब्द बहुत ज्यादा हो रहा था, तो उसने चूड़ियाँ उतारीं और दोनों हाथों में दो-दो चूड़ियाँ रखीं, फिर भी शब्द हुआ। अब जब दोनों हाथों में एक-एक चूड़ी रखी, तो शब्द होना बंद हो गया। तुरन्त उसे गुरु बनाकर सीखा,

वासे बहूनां कलहो भवेद् वार्ता द्वयोरपि ।
एक एव चरेत्तस्मात् कुमार्या इव कङ्कणः ॥ (भा. 11/9/10)

संत को एकान्तसेवी होना चाहिए। तपस्या एकान्त में ही अच्छी होती है,

एकेन तपः द्वाभ्यामध्ययनं त्रिभिगायनम।
चतुर्भिःपंथा पंचभिर्न्यायः बहुभिर्युद्धम् ॥

इसलिये तपस्या-भजन एकान्त में करना चाहिए। यदि दो भी रहेंगें, तो व्यर्थ की चर्चा में सांसारिक चर्चा में समय बर्बाद होगा। जैसे कंगन एक रहा तो शब्द नहीं हुआ, जबकि दो भी रहे तो शब्द हुए और बहुत रहे तो आवाज़ भी तेज रही। इसलिए संत को एकान्तसेवी होना चाहिए।

महाराज यदु! हमने एक बाण बनाने वाले को भी गुरु बनाया। एक व्यक्ति बाण की नोंक बनाने में इतना एकाग्र हो गया कि राजा की सवारी बैंड-बाजे के साथ सामने से निकल गई और उसे पता ही नहीं चला। हमने उससे पूछा, भैया! क्या यहाँ से राजा की सवारी निकल गई? उसने कहा, महाराज! मुझे पता नहीं!! मैं तो अपने बाण की नोंक बना रहा था। तो निकल गई कि नहीं निकल गई, मैं नहीं बता पाऊँगा। तुरन्त उसे गुरु बना लिया कि भाई! ध्यान हो, तो ऐसा हो। एक साधारण बाण की नोंक बनाने में कितना एकाग्र मन हो गया कि इसे बैंड-बाजों का भी पता नहीं चला? ये तादात्म्य होना चाहिए, ध्यान की ऐसी उदात्त स्थिति होनी चाहिए।

हमने एक सर्प को भी गुरु बनाया और सर्प से सीखा कि चूहे तो मेहनत करके बढ़िया-बढ़िया बिल खोदते हैं और सर्प जिस बिल में घुस जाये, उसी में बड़े आनन्द से रहता है। संत को भी अनिकेत होना चाहिए।

संसार के लोग जो निर्माण करना चाहें, प्रेम से करें। संत को स्वयं निर्माण, आदि के प्रपंच में पड़कर उसमें आसक्त नहीं होना चाहिए, वरन् अनिकेत होना चाहिए। जहाँ मन उचट गया कि चलते बने और असंग होकर विचरण करे।

हमने एक मकड़ी को भी गुरु बनाकर उससे सीखा। मकड़ी अपने उदर से ही विचित्र जाला बुनती है तथा उसी में विचरण करती है और उसी को अपने में लीन भी कर लेती है। उसी ने जाले को प्रकट किया, अपने द्वारा ही अन्य वस्तु से नहीं। ऐसे ही भगवान् ने इस संसार को अपने से ही प्रकट किया है। जैसे मकड़ी अपने जाले का अभिन्ननिमित्तोपादान कारण है, उसी प्रकार भगवान् इस जगत् के अभिन्ननिमित्तोपादानकारण हैं। जगत् भगवान् के द्वारा बना और भगवान् ही जगत् के रूप में बने क्योंकि भगवान् कहते हैं, ब्रह्माजी! मैं ही पूर्व में था '**अहमेवासमेवाग्रे**' मेरे अतिरिक्त और कुछ भी नहीं था। जब भगवान् के अतिरिक्त कुछ था ही नहीं, तो ये जगत् फिर कैसे बना? भगवान् ही तो फिर जगत् के रूप में बने, इसलिए वे निमित्तकारण भी हैं और उपादान कारण भी हैं।

भगवान् दत्तात्रेय कहते हैं, महाराज यदु! मैंने चौबीसवां गुरु भृङ्गी को बनाया। भृङ्गी एक कीड़े को पकड़कर मिट्टी में अन्दर बंद कर देता है और छोटा-सा छिद्र करके उसी पर गुनगुनाता रहता है। अंदर का कीड़ा भयाक्रांत होकर भृङ्गी का ही सतत् चिन्तन करता रहता है और भृङ्गी का चिन्तन करते-करते अन्त में स्वयं भृङ्गी बनकर मिट्टी से बाहर निकल पड़ता है। उसे गुरु बनाकर सीखा कि जिसका चिन्तन करोगे, वही आप बनोगे। भगवान् की आराधना करने वाले भगवद्-स्वरूप ही हो जाते हैं और भूतों की उपासना करने वाले भूतों-जैसे ही बन जाते हैं। इसलिए आपका इष्ट आराध्य दिव्य व श्रेष्ठ होना चाहिए। जैसा चिन्तन करोगे, वैसे ही आपके जीवन में स्थिति बनेगी। श्रीदत्तात्रेय मुनि कहते हैं, पच्चीसवां गुरु हम अपने शरीर को भी मानते हैं। इससे हमने विरक्ति और विवेक दोनों प्राप्त किये।

देहो गुरुर्मम विरक्तिविवेकहेतुर्बिभ्रत् स्म सत्त्वनिधनं सततार्त्युदर्कम् ।
तत्त्वान्यनेन विमृशामि यथा तथापि पारक्यमित्यवसितो विचराम्यसङ्गः ॥

(भा. 11/9/25)

देह भी हमारा गुरु है। इस शरीर से ही दिव्यज्ञान प्राप्त होता है और ये शरीर जिसे हम अपना समझते हैं, इसपर भी न जाने कितने लोगों का अधिकार है। ये भी किराये की पंचायती धर्मशाला है। किसी दिन इसे भी हमें खाली करके जाना पड़ेगा, इसलिए मैं बिल्कुल असंग होकर विचरण करता हूँ। देह भी मेरा नहीं है, ये मुझे मालूम है। ये जितनी इन्द्रियां हैं, सब अपने-अपने विषयों में हमें लूट रही हैं। जिह्वा कहती है, हमें स्वादिष्ट भोजन दो। नेत्र कहते हैं, सुन्दर रूप दो। कान कहते हैं, सुन्दर संगीत दो। तो जैसे बहुपत्नियों के बीच में घिरे हुए पति की दुर्गति होती है, ऐसे ही ये इन्द्रियां जीव को लूट रही हैं, अपने-अपने विषयों की तरफ खींच रही हैं।

चौरासी लाख यौनियां हैं। ब्रह्माजी ने इन सबके शरीर का निर्माण किया, परन्तु ब्रह्माजी को संतुष्टि नहीं मिली। किन्तु जब मनुष्य शरीर का निर्माण किया, तो '**ब्रह्मावलोकधिषणं मुदमाप देवः**' इस मानव की रचना देखकर ब्रह्माजी मुग्ध हो गये। पूरे ब्रह्माण्ड का एक छोटा-सा पिण्ड बनाकर तैयार कर दिया। जो हमारे देह में है, वही सब ब्रह्माण्ड में है। तो हम मनुष्यों का ये शरीर ब्रह्माण्ड का ही लघुरूप है। इसमें विवेक है, ज्ञान है, बुद्धि है; सब कुछ तो भगवान् ने दिया है। अब सब कुछ हमारे पास है, फिर भी हम भवसागर में गोते मारते

रहें और इन सब शक्तियों का प्रयोग किये बिना भटकते रहें; तो हमने अपने ऊपर स्वयं अपनी कृपा नहीं की। हम स्वयं आत्मघाती ही सिद्ध हुए। भगवान् ने तो कृपा करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। ये देवदुर्लभ मनुष्य शरीर हमें दिया, जो इस संसार सागर से बाहर निकलने के लिए प्रमुख दरवाजा है।

बड़े भाग मानुष तन पावा । सुर दुर्लभ सब ग्रन्थहिं गावा ॥
साधन धाम मोक्ष कर द्वारा । पाई न जेहिं परलोक संवारा ॥

(रामचरितमानस 7/43/4)

एक बहुत बड़ा भवन था। उस सम्पूर्ण भवन में दरवाजा केवल एक था। अब एक बेचारा अन्धा उस भवन में घुस गया। घुस तो गया, पर अब निकलने को दरवाजा न मिले। तो कभी इधर, कभी उधर, दरवाजों से सिर पटकता घूम रहा था। एक सज्जन बोले, इधर-उधर न भटको! दीवार का सहारा लेकर चल पड़ो, अपने आप दरवाजा मिल ही जायेगा। अब वह दीवार का सहारा लेकर चलता गया। जैसे-ही दरवाजे के पास पहुँचा कि उसके सिर में तेज खुजली हुई, सो खुजलाना प्रारम्भ किया और चलता भी गया। दो-चार कदम चला कि दरवाजा छूट गया। अब एक बार दरवाजा छूटा, तो पूरे भवन का फिर चक्कर लगाना पड़ेगा। अब दुर्भाग्य देखो! दरवाजे के पास आते ही उसे खुजली परेशान करती है और जहाँ खुजलाता है, तहाँ भटक जाता है, दरवाजा छूट जाता है।

यही हमारे जीवन की स्थिति है। चौरासी के चक्कर में भटक रहे थे। भटकते-भटकते साधनधाम-मोक्ष का दरवाजा मनुष्य शरीर प्राप्त हो गया, दरवाजे पर आकर खड़े हो गये। पर मानव देह के इस दरवाजे पर आकर जन्म-जन्मान्तरों के अभ्यास के कारण विषयसुख की खुजली ने हमें तंग करना प्रारम्भ किया। पूर्वाभ्यास के कारण विषयों के सुख में पुनः लिप्त हो गये और दरवाजा हमने यों ही निकाल दिया (गंवा दिया)। इसलिए इस दरवाजे पर आकर भी यदि हम इस भवाटवी से बाहर नहीं निकले, एक बार चूके तो बारबार उसी चक्रव्यूह में भटकना पड़ेगा। अब उद्धवजी ने बद्ध और मुक्त की परिभाषा पूछी, तो भगवान् कहते हैं, भैया उद्धव!

बद्धो मुक्त इति व्याख्या गुणतो मे न वस्तुतः ।
गुणस्य मायामूलत्वान्न मे मोक्षो न बन्धनम् ॥ (भा. 11/11/1)

उद्धव! ये बन्धन और मुक्ति वस्तुतः आत्मा में नहीं हैं। ये बन्धन और मोक्ष केवल व्यवहारसिद्धि के लिए कहा जाता है। जब बन्धन नहीं, तो मोक्ष का प्रश्न ही नहीं है। मोक्ष तो जब सार्थक होता, जब हम बंधे होते।

सुपर्णावेतौ सदृशौ सखायौ यदृच्छयैतौ कृतनीडौ च वृक्षे ।
एकस्तयोः खादति पिप्पलान्नमन्यो निरन्नोऽपि बलेन भूयान् ॥ (भा. 11/11/6)

एक वृक्ष पर दो पक्षी हैं। जो वृक्ष के फल को खाता है, वह दुबला-पतला है। और जो नहीं खाता, वह हृष्ट-पुष्ट और स्वस्थ है। इसी प्रकार जीवात्मा और परमात्मा इस संसाररूपी वृक्ष के दो ही पक्षी हैं। हम जीवात्मा इस संसार के कर्मफल में लिप्त हैं, इसलिए भटकते हुए दुःख पा रहे हैं। और परमात्मा अनासक्त असङ्ग होते हैं, वह मुक्त-निजानन्द में स्थित हैं।

एक व्यक्ति के पास दस गधे थे। एक दिन जब उसने उन गधों को लाकर उन्हें घर में बाँधना प्रारम्भ किया, तो एक रस्सी खो गई। अब बड़ा परेशान हो गया, नौ को तो बाँध दिया, अब एक को कैसे बांधें? एक

महात्मा बोले, भैया! जहाँ रोज बांधते थे, वहीं खड़ा करके झूठ-मूठ का ही हाथ फेर दो। उसने वैसा ही किया। वैसे ही गधे के पैर पर झूठा हाथ घुमा दिया, गले पर हाथ घुमा दिया, तो गधे को लगा कि मुझे बाँध दिया। वह रातभर ज्यों-का-त्यों खड़ा रहा। सुबह होने पर जो गधे बंधे थे, वह सब गधे खोल दिये। परन्तु जिसे बाँधा ही नहीं, उसे खोला भी नहीं। उस गधे को उसके मालिक ने बहुत डंडे मारे, पर वह टस-से-मस नहीं हुआ। महात्मा बोले, इस बेचारे को क्यों मारते हो? व्यक्ति बोला, महाराज! ये आगे ही नहीं बढ़ रहा? महात्मा बोले, अरे ये बढ़ेगा कैसे? तू खोल तो सही! तूने तो इसे इस भ्रम में डाल दिया कि तूने बाँध दिया है। तो जैसे तूने बन्धन का भ्रम उत्पन्न किया, वैसे ही मुक्ति का भी तो तुझे अभिनय करना पड़ेगा। तुझे दुबारा हाथ फेरना पड़ेगा, ताकि उसे विश्वास हो जाये कि अब मुझे खोल दिया गया है। और जैसे-ही उसने गधे पर दुबारा हाथ घुमाया तो गधे को लगा खुल गया, सो तुरन्त दौड़ता हुआ चल पड़ा। बन्धन भी झूठा और मुक्ति भी झूठी है। दोनों ही उस गधे के मालिक (बाँधने वाले) के लिए मिथ्या थीं, किन्तु जो बन्ध रहा था, उस गधे को तो बन्धन भी सच्चा लगा और मुक्ति भी सच्ची लगी।

उसी प्रकार से वस्तुत: बन्धन-मुक्ति आत्मा में नहीं होती। हम अज्ञानवश जान-बूझकर अपने को बंदी मान बैठे हैं। संसार को हमनें पकड़ रखा है और कहते हैं कि संसार ने हमें पकड़ रखा है। बंदर पकडने वाले क्या करते हैं, एक छोटे मुँह के घड़े में चना भर दिया और बंदर ने दोनों हाथ डालकर चने से मुट्ठी भर ली। अब घड़े में हाथ फंस गया। अब चिल्लाता है, घड़े ने पकड़ लिया! घड़े ने पकड़ लिया! तो घड़ा थोड़े-ही पकड़ सकता है? वह तो जड़ है। पर बंदर मुट्ठी खोलना ही नहीं चाहता और चिल्लाता है कि घड़े ने पकड़ लिया।

बंध्यो कीर मरकट की नांई

ऐसे ही हमलोग अज्ञानवश बंदर की तरह संसार को पकड़े बैठे हैं और चिल्लाते यही हैं कि संसार में फंसे हैं। जबतक सद्गुरु की कृपा से वस्तुत: ये ज्ञान हमें न हो जाये, तब तक ये बन्धन न होने पर भी हमारे लिए बहुत सख्त हो जाता है। ज्ञान तो सद्गुरु की कृपा से ही प्राप्त होता है। जो अविद्या से युक्त है, वही नित्यबद्ध है। जो विद्या से युक्त हो जाये, वही नित्यमुक्त है। इस प्रकार से बद्धमुक्त का स्वरूप उद्धवजी को प्रभु ने बतलाया। उद्धवजी ने जब भगवान् से संतों के लक्षण पूछे, तो भगवान् संतों के लक्षण बतलाते हुए कहते हैं -

कृपालुरकृतद्रोहस्तितिक्षुः सर्वदेहिनाम् ।
सत्यसारोऽनवद्यात्मा समः सर्वोपकारकः ॥ (भा. 11/11/29)

इस प्रकार से संतों के लक्षण बतलाते हुए भगवान् उद्धव को अपने वह बारह पूजन के स्थान बतलाते हैं, जिन विशिष्ट स्थलों पर भगवत्पूजन का महत्व है।

सूर्योऽग्निर्ब्राह्मणो गावो वैष्णवः खं मरुज्जलम् ।
भूरात्मा सर्वभूतानि भद्र पूजापदानि मे ॥ (भा. 11/11/42)

उद्धवजी ने पूछा, महाराज! आपकी प्राप्ति के मार्ग तो अनेक हैं, परन्तु आप अपने दृष्टिकोण से बताइये कि सबसे सुलभ-सुगम मार्ग कौन-सा है? किस सरल मार्ग से आपको पाया जा सकता है? तो भगवान् ने सारे साधन गिनाने के बाद एक को सर्वश्रेष्ठ सिद्ध किया,

न रोधयति मां योगो न सांख्यं धर्म एव च ।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूर्तं न दक्षिणा ॥

व्रतानि यज्ञश्छन्दांसि तीर्थानि नियमा यमाः ।
यथावरुन्धे सत्सङ्गः सर्वसङ्गापहो हि माम् ॥ (भा. 11/12/1-2)

हे उद्धव! मेरी प्राप्ति के अनेक मार्ग हैं। कोई योग से, कोई सांख्य से, कोई स्वाध्याय से, कोई तप-त्याग से, कोई दान से, कोई व्रत से, कोई तीर्थों की उपासना से, यम-नियम, आदि के द्वारा मुझे प्राप्त करते हैं। पर जितनी सुलभता से सत्सङ्ग के द्वारा मेरी प्राप्ति होती है, उतने किसी अन्य साधन से नहीं होती। बड़े-बड़े महापुरुषों ने सत्संग के द्वारा ही मुझे प्राप्त किया है।

सुग्रीवो हनुमानृक्षो गजो गृध्रो वणिक्पथः

अधम से अधम जीवों ने भी मुझे सत्संग के माध्यम से प्राप्त कर लिया है! अरे! इन गोपियों को देखो!! जिन बेचारियों ने कुछ नहीं किया था। उन ब्राह्मणपत्नियों को देखो!! ब्राह्मण तो रोते रह गये और ब्राह्मणपत्नियों ने प्रेमवश मुझे प्राप्त कर लियां। '**गोप्यो यज्ञपत्न्यस्तथापरे**', '**ते नाधीतश्रुतिगणा नोपासितमहत्तमाः**' जिन्होंने न श्रुतियों को पढ़ा, न कोई उपासना की।

केवलेन हि भावेन गोप्यो गावो नगा मृगाः ।
येऽन्ये मूढधियो नागाः सिद्धा मामीयुरञ्जसा ॥ (भा. 11/12/8)

भगवान् को इस प्रसंग में गोपियों का स्मरण कुछ ज्यादा ही हो गया,

रामेण सार्धं मथुरां प्रणीते श्वाफल्किना मय्यनुरक्तचित्ताः ।
विगाढभावेन न मे वियोगतीव्राधयोऽन्यं ददृशुः सुखाय ॥ (भा. 11/12/10)

हे उद्धव! जब मैं अक्रूरजी के साथ व्रज से मथुरा को प्रस्थान कर रहा था, उस समय उन व्रजगोपियों ने कितने प्रगाढ़भाव से मेरे स्वरूप का निरीक्षण किया। वियोग की तीव्रज्वाला को अपने हृदय में छुपाकर रखा। जो एक-आधे क्षण के लिए भी मुझसे पृथक नहीं हो सकती थीं, उन्होंने मेरे लिए कितना बड़ा बलिदान किया। पल-पल मुझे स्मरण रखा और मुझसे दूर रहकर भी मुझे सर्वदा याद रखा। '**मामेकमेव शरणमात्मानं सर्वदेहिनाम्**' प्रत्येक प्राणी का लक्ष्य है - मेरी शरणागति। जब तक जीव मेरी शरणागति स्वीकार न कर ले, तब तक जीवन की सार्थकता नहीं। सत्त्व, रज, तम, आदि से सारा जगत् बना है। सबसे पहले हमें सत्त्व की वृद्धि करना चाहिए।

सत्त्वं रजस्तम इति गुणा बुद्धेर्न चात्मनः ।
सत्त्वेनान्यतमौ हन्यात् सत्त्वं सत्त्वेन चैव हि ॥ (भा. 11/13/1)

हंसोपाख्यान — सत्त्व, रज, तम - इन तीनों में सबसे पहले सत्त्वगुण को बढ़ाकर, रजोगुण-तमोगुण को शान्त करना चाहिए। यदि सत्त्व की प्रधानता होगी, तो रजोगुण और तमोगुण शान्त हो जायेंगें। फिर धीरे-धीरे सत्त्व को भी शान्त कर देना चाहिए, क्योंकि सात्त्विक वृत्ति भी बन्धन का कारण बन जाती है। जैसे महाराज भरत ने कितना बड़ा त्याग किया, पत्नी त्यागी, पुत्र त्यागा, सम्राट् की पदवी त्यागी और सब कुछ त्याग दिया। त्याग करके भजन करने पुलहाश्रम में आये, परन्तु उस मृगशावक के प्रति पहले तो मन में दया आई कि ये बेचारा डूब जायेगा, मर जायेगा तो दया सात्त्विकवृत्ति है। दया, आदि सात्त्विकवृत्तियों को तो बढ़ाना ही चाहिए, परन्तु शनैः शनैः सात्त्विक वृत्तियों को भी शान्त कर देना चाहिए क्योंकि महाराज भरत ने इसी सात्त्विकवृत्ति को अपनाया और दया के कारण ही उस मृगबालक की रक्षा की। परन्तु धीरे-धीरे वही दया

मोह में परिणित होती चली गई और बन्धन का कारण बन गई। इसलिए सत्त्व को भी धीरे-धीरे विवेकपूर्वक शान्त कर देना चाहिए। दिव्यधर्मानुसार चलने से सात्त्विक वृत्ति की वृद्धि होती है।

भगवान् उद्धव से कहते हैं, प्रिय उद्धव! एक बार सनकादि ने अपने पिता ब्रह्माजी से प्रश्न किया कि महाराज! कृपा करके ये बतलाइये कि चित्त में विषय और विषय में चित्त इतने आत्मसात हैं। इन्हें पृथक कैसे किया जाये? विषय और चित्त दोनों को पृथक-पृथक कैसे किया जाये? अब तो ब्रह्माजी इस प्रश्न पर उलझ गये। अब बहुत प्रयास करके भी जब इसका उत्तर कुछ समझ में नहीं आया, तो **'ध्यायमानः प्रश्नबीजं नाभ्यपद्यत कर्मधीः'** कर्म में प्रवृत्त ब्रह्माजी इस प्रश्न के मूल को नहीं जान पाये, उसके तात्पर्य को भलीभांति नहीं समझ पाये। यद्यपि ब्रह्माजी सब देवताओं के शिरोमणि हैं और प्राणियों के जन्मदाता हैं, फिर भी बुद्धि से कर्म में प्रवृत्त होने से ब्रह्माजी उत्तर न दे सके। किन्तु जब बालक कोई प्रश्न पूछे और पिता उत्तर न दे पाये, तो बड़ा संकोच लगता है। ब्रह्माजी ने इस प्रश्न के समाधान के लिए भगवान् का ध्यान किया, तो उसी क्षण भगवान् श्रीहरि हंसरूप में प्रकट हो गये।

हंस के रूप में जब प्रभु प्रकट हुए, तो सनकादियों ने प्रश्न किया, **'को भवान्'**? आप कौन हैं? हंसरूप में प्रकट भगवान् ने पूछा, **भैया!** तुम्हारा तो ये प्रश्न ही घटित नहीं होता क्योंकि यदि तुमने इस शरीर के प्रति प्रश्न किया है, तो पंचभूतात्मक समस्त प्राणियों का शरीर है। तो तुम्हारा प्रश्न यदि पंचभूतात्मक देह के लिये है, तो जो मेरा देह, वह तुम्हारा देह। यदि तुम आत्मविषयक प्रश्न करते हो, तो भी तुम्हारा प्रश्न घटित नहीं होता। क्योंकि जो आत्मा मुझमें है, वही आत्मा तुममें है। सर्वत्र एक ही आत्मतत्त्व है। इसलिए,

वस्तुनो यद्यनानात्वमात्मनः प्रश्न ईदृशः ।
कथं घटेत वो विप्रा वक्तुर्वा मे क आश्रयः ॥ (भा. 11/13/22)

तुम्हारे प्रश्न का आश्रय क्या है - शरीर या आत्मा?

पञ्चात्मकेषु भूतेषु समानेषु च वस्तुतः ।
को भवानिति वः प्रश्नो वाचारम्भो ह्यनर्थकः ॥ (भा. 11/13/23)

पंचभूतात्मक सबमें समान रूप से है। इसलिए भी तुम्हारा प्रश्न **'को भवान्'** शरीर के लिए भी नहीं बनता और आत्मविषयक भी नहीं बनता, क्योंकि आत्मा भी एक ही है, एक ही परमतत्त्व सबमें विद्यमान है। तब सनकादिक बड़े चक्कर में पड़ गये, इन्होंने तो हमारा प्रश्न ही काट दिया? तो महाराज! कुछ तो बताइये, आप कौन हैं? तब भगवान् कहते हैं, मन-वाणी-दृष्टि-आदि इन्द्रियों से जो सबसे परे है, वही विशुद्ध आत्मतत्त्व मैं हूँ। तुम्हारा जो प्रश्न है, चित्त में विषय और विषय में चित्त को कैसे पृथक् किया जाये, तो तुम तो भैया! अपने इस आत्मस्वरूप में स्थित हो जाओ। न तो चित्त को विषय से अलग करने की आवश्यकता है और न ही विषय को चित्त से अलग करने की आवश्यकता है।

जीवस्य देह उभयं गुणाश्चेतो मदात्मनः

अपने स्वरूप में स्थित होकर **'मद्रूप उभयं त्यजेत्'** चित्त और विषय - दोनों के प्रपंच का परित्याग कर दो, क्योंकि ये दोनों ही तुम्हारे स्वरूप के स्वभाव में नहीं हैं। बार-बार विषयों का सेवन करते रहने से जो चित्त विषयों में आसक्त हो गया है और विषय भी चित्त में प्रविष्ट हो गये हैं, इन दोनों को अपने वास्तविक स्वरूप में ही अपने अभिन्नस्वरूप मुझ परमात्मा का साक्षात्कार करके त्याग देना चाहिए। भगवान् कहते हैं, उद्धव! चित्त और विषय से विरक्त भक्तों के तो मैं पीछे-पीछे भागता हूँ। इनके समान प्यारा मुझे जगत् में कोई

भी नहीं है।

अब प्रभु ने उद्धव को अणिमादिक सिद्धियों का विस्तार से वर्णन किया, वर्णाश्रमधर्म की व्यवस्था विस्तार से बतलाई। वैराग्य के सम्बन्ध में भगवान् ने उद्धव को विशद वर्णन करते हुए दो गीत गाये - ऐलगीत और भिक्षुगीत। ये वैराग्य के अद्भुत गीत भगवान् ने उद्धव को सुनाकर वैराग्य का उपदेश दिया और अपनी चरणपादुका देकर कहा, भैया उद्धव! अब तुम बद्रीनाथ जाओ। उद्धवजी प्रणाम करके बोले,

विद्रावितो मोहमहान्धकारो य आश्रितो मे तव सन्निधानात्

हे प्रभु! मेरे अज्ञान का घोर अन्धकार आपने अपने वचनों से दूर कर दिया। यूँ कहकर प्रणाम करके उद्धवजी ने बद्रीविशाल की ओर प्रस्थान किया। इधर प्रभु यदुवंशियों के साथ प्रभास क्षेत्र पहुँचे। वहाँ पर मदिरामदान्ध होकर यदुवंशी अपनी बुद्धि को विकृत कर बैठे और आपस में ही लड़ना-झगड़ना प्रारम्भ कर दिया। यदुवंशियों को भगवान् समझाते हैं, तो भगवान् के ऊपर भी झपट पड़ते हैं, (शुकदेवजी कहते है-) परीक्षित्! चार-पाँच ही अवशेष रहे, देखते-देखते छप्पन करोड़ यदुवंशी काल के गाल में समाते चले गये। भगवान् की आँखों के सामने ये सब हुआ। दाऊजी ने अपने दिव्यस्वरूप का ध्यान किया और शेषरूप में परिणत हो गये। भगवान् एक वृक्ष की छांव में आकर विराजमान हो गये और एक चरण पर दूसरा चरण रख लिया। एक बहेलिया ने भगवान् के श्रीचरण को मृग समझकर बाण मार दिया। **'मृगास्याकारं तच्चरणं विव्याध मृगशङ्कया'** बहेलिया को जब सुध आई, तब प्रभु के आगे रोया, प्रभु! मुझसे तो बड़ा भारी अपराध हो गया। प्रभु बोले,

मा भैर्जरे त्वमुत्तिष्ठ काम एष कृतो हि मे ।
याहि त्वं मदनुज्ञातः स्वर्गं सुकृतिनां पदम् ॥ (भा. 11/30/39)

मेरी इच्छा से ही तो तूने ये बाण मारा। तू डर मत!! जा! मेरी आज्ञा से तू उस स्वर्ग में निवास कर, जिसकी प्राप्ति बड़े-बड़े पुण्यवानों को ही होती है। देह त्यागकर दिव्यरूप बनाकर बहेलिया भगवद्धाम को प्रस्थान कर गया। अब प्रभु ने अपने सारथी दारुक को बुलाकर कहा, द्वारिका में जाकर घोषणा कर दो कि द्वारिकापुरी सातवें दिन समुद्र में डूब जायेगी, इसलिये सब द्वारिका खाली कर दें। दारुक प्रभु की आज्ञा पाकर प्रभु का संदेश पहुँचाने द्वारिका की ओर दौड़ पड़ा। आकाश में देवता प्रभु के स्वागत में खड़े हैं, प्रभु! पधारिये!! हम सब आपके स्वागत के इंतजार में आतुर हैं। और अचानक,

सौदामन्या यथाऽऽकाशे यान्त्या हित्वाभ्रमण्डलम् ।
गतिर्न लक्ष्यते मर्त्यैस्तथा कृष्णस्य दैवतैः ॥ (भा. 11/31/9)

परीक्षित! जैसे आकाश में बिजली चमककर गायब हो जाती है, ऐसे ही गोविन्द का वह सांवला-सलौना विग्रह एक दिव्यभव्य प्रकाश में परिणत हो गया। वह प्रकाश कहाँ गायब हो गया, कोई नहीं जान सका। और वही तेज **'स्वकीयं यद्भवेत्तेजः तच्च भागवते दधात्'** वही भगवान् का तेज श्रीमद्भागवत में आकर विराजमान हो गया। इसलिए **'तेनेयं वाङ्मयी मूर्तिः प्रत्यक्षा वर्तते हरेः'** श्रीहरि की शब्दप्रतिमा ही श्रीमद्भागवत है।

अथ श्रीमद्भागवतपुराणस्य

॥ द्वादशः स्कन्धः ॥

(आश्रयः)

कलियुग के कलुषित प्राणियों का कल्याण करने की कामना से श्रीकृष्णचन्द्र शब्दविग्रह के रूप में भागवत के मध्य विराजमान हैं। भगवान् के अन्तर्हित होते ही कलियुग ने पैर जमाना प्रारम्भ कर दिया। अन्त छः अध्यायों में कलिधर्म का वर्णन किया गया है,

दाम्पत्येऽभिरुचिर्हेतुर्मायैव व्यावहारिके ।
स्त्रीत्वे पुंस्त्वे च हि रतिर्विप्रत्वे सूत्रमेव हि ॥ (भा. 12/2/3

जिसने जिसे पसन्द कर लिया, विवाह हो गया - ये विवाह का रूप रह जायेगा। '**विप्रत्वं सूत्रमेव हि**' ब्राह्मण कहेंगे, देखो! जनेऊ धारण किए हैं, इसलिए पण्डितजी हैं। अब गोत्र, प्रवर, वेद, शाखा के झंझट में हम नहीं पड़ते। बड़े-बड़े डकैत सत्ता के अधिकारी हो जायेंगे, जो प्रजा को दिन-रात लूटने में ही लगे रहेंगे। परीक्षित! जब इस धरा पर घोर कलिकाल आ जायेगा, तब भगवान् का कलियुग में भी अवतार होगा,

सम्भलग्राममुख्यस्य ब्राह्मणस्य महात्मनः ।
भवने विष्णुयशसः कल्किः प्रादुर्भविष्यति ॥ (भा. 12/2/18)

उत्तरप्रदेश के मुरादाबाद जिले सम्भल नाम की तहसील में विष्णुयश नामक ब्राह्मण के घर भगवान् का कल्कि अवतार होगा। प्रभु के कल्कि अवतार का सांवला श्रीविग्रह होगा, श्वेत अश्व होगा, दिव्य सुगन्ध होगी। दुष्टों का असुरों का संहार करके धर्म की स्थापना करेंगे और मरु-देवापि राजा (जो कलापकग्राम में तपस्यारत हैं), उन्हें प्रकट करके सूर्यवंश और चन्द्रवंश की पुनः स्थापना करेंगे, बस वहीं से सतयुग का प्रारम्भ हो जायेगा। कलियुग के जब आठ सौ वर्ष शेष रहेंगे, तब कल्कि भगवान् का प्राकट्य होगा। कलियुग की आयु 432000 वर्ष की है, जिसमें से अभी लगभग 5116 वर्ष ही बीते हैं। श्रीशुकदेवजी ने इन भविष्य की घटनाओं का भी संकेत दिया और बोले, परीक्षित! अब अपने राम चलते हैं, समय पूरा हो गया। परीक्षित बोले, हाँ! अब आप जाओगे, तो आज ही तक्षक मुझे काटेगा; आज ही हमें मरना है। शुकदेवजी डाँटकर बोले,

त्वं तु राजन् मरिष्येति पशुबुद्धिमिमां जहि ।
न जातः प्रागभूतोऽद्य देहवत्त्वं न नङ्क्ष्यसि ॥ (भा. 12/5/2)

तू अभी भी सोच रहा है कि मैं मरूँगा? इस पशुबुद्धि को त्यागे। अरे! कुम्हार ने घड़ा बनाया और जहाँ मिट्टी ने घड़े का रूप बनाया कि घटाकाश अपने आप ही घड़े में आ गया। अब किसी ने डंडा मारा और घड़ा फूट गया, तो घटाकाश अपने आप ही महाकाश में बदल गया। न कोई आया, न कोई गया। इसी प्रकार तू भी विशुद्ध ब्रह्मस्वरूप है।

अहं ब्रह्म परं धाम ब्रह्माहं परमं पदम् ।
एवं समीक्षन्नात्मानमात्मन्याधाय निष्कले ॥ (भा. 12/5/11)

शुकदेवजी ने कहा, परीक्षित्! तेरा शरीर नष्ट होगा, तू तो अविनाशी सच्चिदानन्द का अंश है; तेरा विनाश तो किसी काल में सम्भव ही नहीं। सुनते ही परीक्षित गद्गद् हो गये और प्रणाम करके बोले, '**सिद्धोऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि**' अब आपने मुझे मेरा स्वरूप दिखा दिया। मैं समझ गया कि लाखों तक्षक मिलकर भी मुझे काट लें, तब भी मुझ अविनाशी का कभी विनाश नहीं हो सकता। शुकदेवजी प्रसन्न हो गये और तत्क्षण अन्तर्ध्यान हो गए -

जगाम भिक्षुभिः साकं नरदेवेन पूजितः

प्रारब्धानुसार तक्षक नाग छद्म वेश में आया और जैसे ही परीक्षित को काटा कि परीक्षित का देह भस्म हो गया और आत्मा परमात्मा में विलीन हो गई। परीक्षितपुत्र जनमेजय ने सर्पेष्टियज्ञ किया, तो बृहस्पतिजी ने आस्तिक मुनि के साथ आकर जनमेजय को समझाया और उस सर्पेष्टियज्ञ को शान्त करवाया। सूतजी कहते हैं, हे शौनकादिक ऋषियों! इस प्रकार से हमने तुम्हें शुक-परीक्षित के संवादरूप श्रीमद्भागवतसंहिता का श्रवण कराया, जिसमें अट्ठारह हज़ार श्लोक, तीन सौ पैंतीस अध्याय और द्वादश स्कन्ध हैं। अब अन्तिम श्लोक हम सब एक स्वर में बोलेंगे -

नामसङ्कीर्तनं यस्य सर्वपापप्रणाशनम् ।
प्रणामो दुःखशमनस्तं नमामि हरिं परम् ॥ (12/13/23)

जिन भगवान् के नामों का संकीर्तन सारे पापों को सर्वथा नष्ट कर देता है, उनके चरणों में समर्पण सर्वदा के लिए सब प्रकार के दुःखों को शान्त कर देती है; उन परमतत्त्वरूप श्रीहरि को मैं नमस्कार करता हूँ।

❋ ❋ ❋

॥ बोलो भागवत भगवान् की जय ॥

श्रीमद्भागवत की आरती

आरति अतिपावन पुरान की ।
धर्म भक्ति विज्ञान खान की ॥

महापुरान भागवत निरमल । शुक-मुख-विगलित-निगम-कल्प-फल ।
परमानन्द-सुधा-रसमय कल । लीला-रति-रस रस-निधान की ॥
आरति अतिपावन पुरान की ... ॥

कलि-मल-मथनि त्रिताप-निवारिनि । जन्म-मृत्युमय भव-भयहारिनि ।
सेवत सतत सकल सुखकारिनि । सुमहौषधि हरि-चरित-गान की ॥
आरति अतिपावन पुरान की ... ॥

विषय-विलास-विमोह-विनाशिनि । विमल विराग विवेक विकाशिनि ।
भगवत्तत्त्व-रहस्य प्रकाशिनि । परम ज्योति परमात्म-ज्ञान की ॥
आरति अतिपावन पुरान की ... ॥

परमहंस-मुनि-मन उल्लासिनि । रसिक-हृदय रस-रास-विलासिनि ।
भुक्ति-मुक्ति रति-प्रेम-सुदासिनि । कथा अकिञ्चन-प्रिय सुजान की ॥
आरति अतिपावन पुरान की ।
धर्म भक्ति विज्ञान खान की ॥

⌘ ⌘ ⌘